प्रकाशक हिंदी साहित्य भंडार
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

मुद्रक विद्यामंदिर प्रेस
रानीकटरा, लखनऊ

मूल्य पचीस रुपये

डा० मायारानी टंडन

डा० प्रेमनारायण टंडन

श्रद्धेय डा० प्रेमनारायण टंडन
को
प्रणतिपूर्वक

उपोद्घात

किसी देश के शिक्षित निवासी के लिए अपने राष्ट्र की संस्कृति के मूल तत्त्वों से परिचित होना आवश्यक है। अपनी संस्कृति की अनभिज्ञता की स्थिति में स्वदेश के प्रति प्रेम और आत्मगौरव की भावना का जाग्रत होना सामान्यतया संभव नहीं होता। परंतु इस अभीष्ट की सिद्धि तभी संभव है जब देश-विशेष के सांस्कृतिक विकास का ऐतिहासिक विवरण सुलभ हो। इसीलिए सांस्कृतिक इतिहास-संपादन का कार्य महत्त्व का समझा जाता है। जिन देशों के जन्म और विकास को जितना कम समय बीता है उनकी संस्कृति का इतिहास उतना ही सीधा-सादा है। कठिनाई तो ऐसे देशों के सांस्कृतिक विकास के अंकन में होती है जिनको सभ्य हुए कई सहस्र वर्ष बीत चुके हैं और जिनकी संस्कृति की अविच्छिन्न धारा आज तक अक्षुण्ण रूप में प्रवाहित है। भारतवर्ष ऐसे ही देशों में है।

हमारे देश की संस्कृति का इतिहास लगभग चार सहस्र वर्षों का है। देश और विदेश के अनेक इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के कुछ पक्षों पर भी विचार किया है, परंतु साहित्यिक ग्रन्थों के आधार पर युग-विशेष के साहित्यिक अध्ययन का महत्वपूर्ण कार्य अभी कम ही हुआ है। संस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों को लेकर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्रभृति विद्वानों के कुछ उच्च कोटि के ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, परंतु हिंदी के किसी युग के साहित्य से संबंधित वैसा कार्य अभी तक नहीं हो सका है। मुझे हर्ष एवं संतोष है कि लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अंतर्गत सांस्कृतिक अध्ययन का एक सफल प्रयास हुआ है जिसे कुमारी मायारानी ने संपन्न किया है। इनके इस शोधपूर्ण ग्रन्थ को स्वीकृत करके लखनऊ विश्वविद्यालय ने इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप-काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस कृष्ण-काव्य का भक्ति और दर्शन-विषयक विशिष्ट अध्ययन 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक मेरे ग्रन्थ में हो चुका है। सांस्कृतिक दृष्टि से उक्त काव्य के मूल्यांकन का कार्य शेष था। इसी विषय को लेकर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। अपने ढंग का हिंदी में सर्वप्रथम प्रयास होने के कारण यह प्रबंध बहुत अंशों में सर्वथा मौलिक है।

प्रस्तुत प्रबंध में विषय प्रवेश और उपसंहार को छोड़कर नौ अध्याय हैं जिनमें से प्रथम छह में अष्टछाप-काव्य के आधार पर प्राकृतिक वातावरण, सामान्य पारिवारिक और सामाजिक जीवन-चर्या, वाणिज्य-व्यवसाय और जीविका के साधन एवं राजनीतिक जीवन-चित्रण पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अंतिम परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-विषयक विचार दिये गये हैं। ये सातों परिच्छेद विदुषी लेखिका ने अत्यंत परिश्रम से लिखे हैं और सर्वथा मौलिक हैं। शेष दोनों परिच्छेद भक्ति और दर्शन से संबंध रखते हैं। इनका जो भाग साम्प्रदायिक और सैद्धांतिक विवेचन से युक्त है, उसके लिए स्वयं लेखिका ने मौलिकता का दावा नहीं किया है, हाँ भक्ति-विषयक चर्चा के अंतर्गत धार्मिक कृत्यों का वर्णन किसी अंश में मौलिक कहा जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय के सहायक प्रोफेसर डा० प्रेमनारायण टंडन के निर्देशन में लिखा गया है। मुझे यह कहते हुए बहुत हर्ष होता है कि उनके निर्देशन में लिखा गया यह प्रयास निश्चय ही एक सफल कृति है। डा० मायारानी के परिश्रम और अध्ययन की भी मैं प्रशंसा करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आगे भी उनकी लेखनी से और भी महत्व के ग्रन्थ लिखे जायेंगे। उनके लिए मेरी मंगल कामना है।

दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
हिंदी एवं आधुनिक भाषा विभाग

२१ जुलाई १९६०
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

निवेदन

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अष्टछाप-काव्य का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है और अष्टछापी कवियों में सर्वोपरि सूरदास को गोस्वामी तुलसीदास के बाद प्रथम स्थान देने में हिंदी के सभी विद्वान एकमत हैं। परमानंददास और नंददास भी अपने युग के प्रथम श्रेणी के काव्यकारों में हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों यथा कुंभनदास, कृष्णदास, गोविंद स्वामी छीतस्वामी और चतुर्भुजदास के काव्यों के सुसंपादित रूप में प्रकाशित न हो सकने के कारण यद्यपि उनका सम्यक् मूल्यांकन अभी तक नहीं किया जा सका है, तथापि हिंदी के विद्वान इस दिशा में भी प्रयत्नशील हैं। सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि के काव्य को लेकर अब तक जो कुछ लिखा गया है वह मुख्यतः उनके जीवन-वृत्त, काव्य की प्रामाणिकता, उनकी काव्य-कला और भक्ति तथा दर्शन-संबंधी उनके विचारों और सिद्धांतों से ही संबंध रखता है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबंध का विषय नवीन और उसका प्रतिपादन कई दृष्टियों से सर्वथा मौलिक है।

प्रस्तुत प्रबंध में विषय-प्रवेश और मूल्यांकन के अतिरिक्त सांस्कृतिक अध्ययन के सभी पक्षों पर विचार किया गया है। प्रथम परिच्छेद प्राकृतिक वातावरण से संबंधित है जिसको वल्लभ-संप्रदायी भक्त अपने परमाराध्य का नित्य लीला-धाम मानते हैं और जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपने जीवन-काल का अधिकांश समय व्यतीत किया था। यह परिच्छेद प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित है—प्राकृतिक स्थान, वनस्पति वर्ग और मानवेतर प्राणी। इनके सोदाहरण विवेचन से ब्रज के भौगोलिक वातावरण का परिचय स्पष्ट रूप से मिल जाता है।

द्वितीय परिच्छेद अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन के चित्रण को लेकर लिखा गया है। इसके सात उपशीर्षक हैं—आवास एवं अन्य विश्राम-स्थान, खानपान, वस्त्र, शृंगार-प्रसाधन, जीवनोपयोगी सामान्य और विशेष वस्तुएँ, धातु एवं खनिज पदार्थ

तथा वाहन । इस प्रकार यह परिच्छेद उन ब्रजवासियों के सामान्य जीवन का परिचय कराता है जिनके मध्य में अष्टछापी कवियों के परमाराध्य पले थे और जिनको अपनी रसमय लीलाओं से इस प्रकार आनंदित किया था कि उनके जीवन से देव-वर्ग को भी ईर्ष्या होने लगी थी।

तृतीय परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के काव्य में चित्रित पारिवारिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यह परिच्छेद चार उपशीर्षकों में विभाजित है— परिवार का संगठन और संबंधी, पारिवारिक जीवन-चर्या, पारिवारिक शिष्टाचार और संस्कार-वर्णन। इनमें अंतिम को छोड़कर प्रथम तीनों उपशीर्षकों की सामग्री के लिए समस्त अष्टछाप-काव्य की छानबीन करनी पड़ी है, क्योंकि अष्टछापी कवियों का ध्येय प्रत्यक्ष रूप से पारिवारिक चित्रण नहीं था।

चौथे परिच्छेद ने जिसमें सामाजिक जीवन चित्रण की विवेचना है प्रस्तुत प्रबंध के सबसे अधिक पृष्ठ घेर लिये हैं। यह परिच्छेद छह उपशीर्षकों में विभाजित है— सामाजिक व्यवस्था, मनोविनोद, पर्वोत्सव, सामाजिक लोकाचार और लोक-व्यवहार एवं विश्वास तथा मान्यताएँ। इन छहों उपशीर्षकों से संबंधित विषय पुनः अनेक उपविभागों में बँटा हुआ है। इस प्रकार यह परिच्छेद जितना विस्तृत है उतना ही रोचक भी है और इससे ब्रज के सामाजिक जीवन का अच्छा परिचय मिल जाता है।

पाँचवाँ परिच्छेद वाणिज्य व्यवसाय और जीविका के साधनों से संबंध रखता है। आरंभ में इस परिच्छेद को 'सामाजिक जीवन' के ही उपशीर्षक के रूप में रखा गया था परंतु उस लेख के प्रचुर बढ़ जाने पर इसे स्वतंत्र परिच्छेद के रूप में देना ही उचित प्रतीत हुआ। इसके पाँच उपशीर्षक हैं—व्यापारिक स्थान, रीति और वस्तुएँ, व्यापार के रूप और साधन, विविध व्यवसाय और व्यवसायी, जीविका के विविध साधन-रूप एवं अन्य व्यवसायी वर्ग। सामान्यतया काव्य और विशेषतया गीतिकाव्य में वाणिज्य और व्यवसाय एवं जीविका-साधन-रूपों के विवेचन के लिए कोई अवकाश नहीं रहता, परंतु लगभग पचास पृष्ठ का यह परिच्छेद लिखे जाने की सामग्री अष्टछापी गेय काव्य में मिल जाना एक ऐसी विशेषता है जो हिंदी-साहित्य के संभवतः किसी भी युग के कवियों में इतने स्पष्ट रूप में नहीं मिल सकती।

यही बात छठे परिच्छेद के संबंध में भी कही जा सकती है जिसमें राजनीतिक जीवन-संबंधी अष्टछापी कवियों के विचार दिये गये हैं। इस लेख के उपशीर्षकों की

संख्या पाँच है—राजधर्म का संगठन और उद्देश्य, शासन व्यवस्था, सेना और युद्ध, राजस्व एवं राजनीति-संबंधी अन्य बातें।

सातवें परिच्छेद में अष्टछापी कवियों के भक्ति और धर्म-संबंधी तथा आठवें में उनके दार्शनिक विचार दिये गये हैं। इनमें प्रथम परिच्छेद तीन उपशीर्षकों—सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप सामान्य धार्मिक विचार एवं धार्मिक कृत्य—में विभाजित है और द्वितीय में ब्रह्म, जीव, जगत-संसार, माया, मुक्ति, रास एवं गोपी के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार दिये गये हैं।

नवाँ परिच्छेद अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का परिचायक है एवं 'उपसंहार' में उनके भारतीय तथा विदेशी संस्कृति विषयक दृष्टिकोण की संक्षिप्त विवेचना करने के पश्चात्, संक्षेप में ही, उनके काव्य के सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार विषय-प्रवेश और उपसंहार को छोड़कर प्रबंध के नौ परिच्छेदों में सात तो सर्वथा मौलिक हैं ही भक्ति एवं दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन वाले दोनों परिच्छेदों के सांप्रदायिक और सैद्धांतिक विवेचन को छोड़कर धार्मिक विचार और धार्मिक कृत्य की चर्चा भी इस प्रबंध का मौलिक अंश है। हिंदी साहित्य के किसी अंग को लेकर इस प्रकार का कोई सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है। इस कारण प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता निस्संदेह निर्विवाद है।

अष्टछापी कवियों में सूरदास के लगभग पाँच हजार और परमानंददास के पंद्रह सौ पदों, नंददास के बारह छोटे-बड़े ग्रंथों के अतिरिक्त लगभग डेढ़ सौ पद तथा शेष कवियों में कृष्णदास को छोड़कर प्रत्येक के तीन से चार सौ तक पद प्रकाश में आ चुके हैं। रचना-विस्तार की दृष्टि से इन आठों कवियों का जो अनुपात है, वही विभिन्न विषयों से संबंधित उनके काव्य में प्राप्त उदाहरणों में भी है। सूरदास का काव्य, विस्तार की दृष्टि से यदि अष्टछापी कवियों में सबसे बढ़कर है तो उसमें प्राप्त विविध विषयों के उदाहरण भी अधिक हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत प्रबंध में उद्धृत पंक्तियों में सबसे अधिक संख्या सूरदास की ही है। इससे उस महाकवि की बहुज्ञता का स्पष्ट रूप से परिचय मिलता है। अन्य कवियों में परमानंददास कुंभनदास और गोविंदस्वामी के उदाहरणों की संख्या चतुर्भुजदास, कृष्णदास और छीतस्वामी से अधिक है; क्योंकि अनेक विषयों पर प्राप्त इनके पद सांस्कृतिक विवेचन की दृष्टि से सामान्य ही हैं।

प्रस्तुत प्रबंध आठ कवियों से संबंध रखता है और संप्रदाय की एकता होने पर भी संस्कारगत विभिन्नता के कारण उनके स्वभाव, विचार और आदर्श में भिन्नता के दर्शन होते हैं। ऐसी स्थिति में विषय के प्रामाणिक विवेचन के लिए उचित यही था कि समान विचारवाले प्रसंगों को छोड़कर मत-भिन्नता वाले स्थलों पर तो सभी कवियों के विचार सोदाहरण दिये जाते। अनेक स्थलों पर यद्यपि प्रस्तुत प्रबंध में ऐसा किया गया है, तथापि कुछ स्थलों पर, विस्तार भय से तद्विषयक संकेत करके ही संतोष करना पड़ा है। इसी प्रकार प्रबंध का कलेवर बहुत बढ़ते देखकर उदाहरणों के सुलभ होते हुए भी अनेक प्रसंगों में उनकी संख्या घटानी पड़ी है। यद्यपि उद्धरण न देकर केवल प्रसंग-निर्देश या पद संख्या देकर प्रबंध की पृष्ठ-संख्या सहज ही घटायी जा सकती थी तथापि विषय की विवरणात्मकता के कारण वैसा करना मुझे उचित नहीं प्रतीत हुआ। कारण वैसी स्थिति में विषय के विवेचन में वांछनीय स्पष्टता और रोचकता संभवतः न आ पाती। प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछापी कवियों के काव्य से लगभग दस हजार उद्धरण दिये गये हैं जिनका चयन विषय की स्पष्टता के लिए किया गया है। प्रबंध का कलेवर बढ़ने न देने के उद्देश्य से प्रायः सर्वत्र उतना ही अंश उद्धृत किया गया है जितना विषय की उपयुक्तता के लिए आवश्यक था। सारे प्रबंध में पूरे पद कदाचित् ही कहीं दिये गये हैं और जहाँ उनको उद्धृत करने के लिए अवकाश भी था, वहाँ प्रबंध को बढ़ने न देने के लिए केवल पद प्रसंग सूचित करके ही काम चलाया गया है। उदाहरण के लिए सामान्य जीवन चित्रण[1] के अंतर्गत भोजन के वर्णन में सूरसागर' के दशम स्कंध से १८३, २११ ८२ आदि कई लंबे पद उद्धृत किये जा सकते थे परंतु वैसा न करके केवल पद-संख्या सूचित करना ही पर्याप्त समझा गया है जिससे विषय में रुचि रखनेवाले पाठक तो लाभ उठा सकें और प्रबंध के कलेवर में भी अनावश्यक वृद्धि न हो। इसी प्रकार पद के लंबे चरणों का उतना ही भाग सर्वत्र उद्धृत किया गया है जितना प्रसंग से घनिष्ठतम रूप से संबंधित है। इसलिए सारे प्रबंध में अष्टछाप-काव्य से उद्धृत पूरे पदों की संख्या बहुत थोड़ी है और विवश होकर यदि कहीं पूरे पद उद्धृत भी किये गये हैं तो वे छोटे और मार्मिक हैं एवं प्रसंग की स्पष्टता में सहायक होने के साथ-साथ विषय-विशेष का प्रतिनिधित्व करने में भी सर्वथा समर्थ सिद्ध होते।

जिन जिन प्रसंगों में विविध प्रकार के व्यंजनों वस्त्राभूषणों आदि की सूचियाँ दी गयी हैं, वहाँ पाठक की सुविधा के लिए उनको अकारादि-क्रम से ही देने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा करने से लेखिका को अतिरिक्त समय अवश्य देना पड़ा है,

परंतु इससे पाठकों को विशेष सुविधा होगी जिससे लेखिका अपना श्रम सार्थक समझती है।

'सूरसागर' के पद निर्देशन में विशेष नीति अपनायी गयी है। नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित उसके सर्वसुलभ संस्करण के प्रथम स्कंध में ३४१ पद हैं और उसके दो से नौ तथा ग्यारहवें और बारहवें स्कंधों की पद-संख्या इससे कम है। 'सूरसागर' का केवल दशम स्कंध प्रथम से बड़ा है। इसलिए दशम स्कंध के ३४१वें पद तक से दिये गये उदाहरणों के साथ तो स्कंध की १ संख्या दी गयी है आगे के पदों के साथ नहीं। अन्य स्कंधों के उदाहरणों के साथ सर्वत्र स्कंध विशेष का निर्देश कर दिया गया है। ऐसा करना इसलिए आवश्यक था जिससे 'सूरसागर' से परिचित अध्येता स्कंध की सूचना पाते ही विषय को भी समझ ले। उदाहरण के लिए सभा के 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध में विनयपद द्वितीय से नवें तक पौराणिक प्रसंग दशम पूर्वार्द्ध में गोकुल वृन्दावन और मथुरा-लीला, एवं दशम उत्तरार्द्ध में द्वारका-लीला की ओर विज्ञ पाठक का ध्यान केवल स्कंध-संख्या देखते ही पहुँच सकता है।

प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछापी कवियों के सांस्कृतिक विचारों की तुलना में संस्कृत और हिन्दी के अन्य कवियों के तत्संबंधी विचार भी दिये जा सकते थे परंतु प्रबंध का कलेवर बहुत बढ़ते देखकर इस लोभ का भी संवरण करना पड़ा है। केवल कुछ ही स्थलों पर 'वाल्मीकि रामायण' 'श्रीमद्भागवत' 'हर्षचरित' 'कादंबरी' 'शकुन्तला', 'पद्मावत', 'रामचरित-मानस' 'गीतावली' 'कवितावली' 'साकेत' आदि काव्यों के बहुत संक्षिप्त उदाहरण देकर अथवा केवल पृष्ठ-निर्देश करके ही मुझे संतोष करना पड़ा है।

प्रस्तुत प्रबंध को सुचारु रूप देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग एवं आधुनिक भारतीय भाषा-विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्त ने अष्टछापी कवियों का हस्तलिखित संग्रह प्रदान करके मेरा कार्य तो सुगम कर ही दिया, समय-समय पर अनेक बहुमूल्य सुझाव देकर मुझे सस्नेह प्रोत्साहित किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर बलदेव प्रसाद जी मिश्र ने प्रबंध के अधिकांश देखकर अनेक उपयोगी सुझाव एवं डा० मुंशीराम शर्मा ने अनेक आवश्यक निर्देश देने की कृपा की। इन सब गुरुजनों का मैं हृदय से आभार मानती हूँ। जिन विद्वानों के ग्रंथों से इस प्रबंध में विशेष सहायता ली गयी है, उनके, विशेषकर डा० दीनदयालु गुप्त डा० वासुदेवशरण अग्रवाल और डा० मुंशीराम शर्मा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता सविनय प्रकट करती हूँ।

प्रस्तुत प्रबंध लखनऊ विश्वविद्यालय के सहायक हिंदी प्रोफेसर डा० प्रेमनारायण

टंडन के निर्देशन में लिखा गया है। प्रबंध की मूल प्रेरणा देकर जहाँ उन्होंने मेरे कार्य की दिशा निर्धारित की वहीं काम-काल में सतत प्रोत्साहन और सक्रिय निर्देशन देकर मेरा मार्ग भी प्रशस्त और सुगम किया। यों प्रस्तुत प्रबंध उन्हीं के आशीर्वाद और अनुग्रह का परिणाम है जिनकी कृपा का मुख्य औपचारिक अथवा व्यावहारिक कृतज्ञता-विज्ञप्ति द्वारा न आँककर आत्मानुभूत करने में ही मुझे हार्दिक संतोष है। प्रबंध की न्यूनताएँ अवश्य मेरी अपनी हैं।

हिंदी साहित्य-भंडार के अध्यक्ष श्री देवनारायण टंडन ने प्रस्तुत प्रबंध के प्रकाशन का समुचित प्रबंध करके मुझे इधर उधर भटकने से बचा लिया जिसके लिए मैं उनका भी बहुत आभार मानती हूँ।

लेखिका।

विषय-सूची

संकेत-सूची

अ	अध्याय
अनेकार्थ	अनेकार्थमंजरी
अयो या अयोध्या	अयोध्याकांड
अष्ट०	अष्टछाप
उत्तर	उत्तरकांड
कांक	कांकरोली
कीर्तन या कीर्तन सं	कीर्तन-संग्रह (दो भाग)
कुंभन	कुंभनदास कवि
	कुंभनदास-पद-संग्रह
कृष्ण	कृष्णदास कवि
	कृष्णदास पद-संग्रह
गीता	गीतावली
गोवि	गोविंदस्वामी कवि
	गोविंदस्वामी पद-संग्रह
चतु	चतुर्भुजदास कवि
	चतुर्भुजदास-पद-संग्रह
छीत	छीतस्वामी कवि
	छीतस्वामी पद-संग्रह
तुलसी	गोस्वामी तुलसीदास
दशम	दशम स्कंध
दो	दोहा
दोहा	दोहावली
नंद	नंददास कवि
	नंददास काव्य-संग्रह (दो भाग)
रूप	रूपमंजरी
रस	रसमंजरी

पद्मा संजी व्या	पद्मावत संजीवनी व्याख्या
परमा	परमानंददास कवि
	परमानंद-सागर
परि	परिशिष्ट
पृ	पृष्ठ
बाल	बालकांड
भँवर	भँवरगीत
भ्रमर	भ्रमरगीत
	भ्रमरगीत-सार
मान	मानमंजरी
मानस	रामचरितमानस
मीतल	प्रभुदयाल मीतल-अष्टछाप-पदावली
रस	रसमंजरी
रामाज्ञा	रामाज्ञाप्रश्न
रास	रासपंचाध्यायी
रुक्मि रुक्मिणी या रुक्मिनी	रुक्मिणी-मंगल
रूप	रूपमंजरी
लहरी	साहित्यलहरी
लहरी उ	साहित्यलहरी उत्तरार्द्ध
श्लो	श्लोक
संपा	संपादक
सा	सूरसागर (सभा)
सारा	सूर-सारावली
सा वें	सूरसागर वेंकटेश्वर प्रेस
सिद्धां या सिद्धांत	सिद्धांतमंजरी
सुंद	सुंदरकांड
सूर	सूरदास कवि
सोम अष्ट पदा	सोमनाथ गुप्त अष्टछाप-पदावली
श्याम या श्याम	श्याम-सगाई
हर्ष सां अध्य	हर्षचरित-सांस्कृतिक अध्ययन
हस्त	हस्तलिखित

अष्टछाप काव्य
का
सांस्कृतिक मूल्यांकन

१ विषय प्रवेश

'संस्कृति' और उसका क्षेत्र—

यों तो 'संस्कृति' शब्द का संबंध 'संस्कार', 'संस्क्रिया या 'संस्कृत' शब्दों से स्थापित किया जाता है, परंतु वस्तुतः अर्थ की दृष्टि से वह अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के अधिक निकट है। संस्कृत के एक विद्वान के अनुसार 'संस्कृति' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है— सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करने से 'संस्कृति' शब्द बनता है'[1]। इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'संस्कृति' का अर्थ होता है—भूषणयुक्त सम्यक् कृति या चेष्टा। इस वाक्य में 'सम्यक्' शब्द ध्यान देने योग्य है। सामान्य प्राणी की क्रियाएँ अपने मूल रूप में शरीर की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद होती हैं, उनमें स्थान, समय, संपर्क आदि का ध्यान नहीं रखा जाता। परंतु मनुष्य इस प्रकार की स्वच्छंदता को उचित नहीं समझता, वह अपने कार्य-व्यापारों को वही रूप देना चाहता है जो उचित और सम्यक् हो। उक्त व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' के अर्थ का संबंध ऐसी ही सम्यक् कृति या चेष्टा से जोड़ा गया है। एक अन्य विद्वान ने 'संस्कृति' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'परंपरागत अनुस्यूत संस्कार' बताया है[2]। इन दोनों अर्थों में प्रथम कार्य-प्रधान और द्वितीय संस्कार प्रधान है।

संस्कृत में 'संस्कृ' धातु के अनेक अर्थ होते हैं, यथा—सजाना, सँवारना, परिष्कृत करना[3] आदि। अँगरेजी के 'कल्चर' शब्द के कुछ अर्थ भी इसी से

१ 'कल्याण' हिंदू संस्कृति अंक पृ० २४।

२ 'कल्याण' हिंदू संस्कृति अंक पृ० ४१।

३ आप्टे के संस्कृत कोश में 'संस्कृ' धातु के ये अर्थ दिए गए हैं—(1) *to adorn grace decorate (2) to refine polish (3) to consecrate by repeating mantra (4) to purify (a person) by scriptural ceremonies perform purificatory rites over (a person) (5) to cultivate educate train (6) to make ready prepare equip fit out (7) to dress (food) (8) to purify cleanse (9) to collect heap together (10) to construct form well or thoroughly*

मिलते-जुलते हैं यथा—विचार, रुचि और आचार का शिक्षण तथा परिष्कार, एवं विचार, रुचि और आचार के शिक्षित और परिष्कृत किये जाने की स्थिति[४] आदि। इन अर्थों का उक्त तात्पर्य से सर्वथा विरोध ही हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। कारण 'कल्चर' शब्द के इन अर्थों में जिस शिक्षण या परिष्कार को महत्व दिया गया है, उसी की ओर इंगित करनेवाला 'सम्यक्' शब्द ऊपर प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य यह कि जिन कार्यों या व्यापारों से हमारा आचार-विचार सजाया-सँवारा हुआ माना जाय और हमारी रुचि शिक्षित या परिष्कृत समझी जाय, उन सबका संबंध 'संस्कृति' से है।

उक्त कथन के आधार पर सम्यक् कृतियों और परंपरा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को 'संस्कृति' कह सकते हैं[५]। दूसरे शब्दों में मानव के हृदय पर विभिन्न कारणों से जो भाव चित्र उत्पन्न होकर भाषा या कला-कौशल के माध्यम से धर्म, समाज आदि मानवीय कार्य क्षेत्रों में अनेक रूप धारण कर प्रस्फुटित होते हैं, उन सभी भाव-चित्रों और संस्कार-समुच्चयों को 'संस्कृति' कहना चाहिए। यों व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन-यापन की समग्र व्यवस्था को 'संस्कृति' समझा जा सकता है। इसमें ज्ञान, विश्वास, शिल्प-कला और अन्य कलाएँ, नैतिकता नियम रीति-रिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित हो जाती हैं, जिन्हें व्यक्ति, समाज का सदस्य होने के नाते, ग्रहण करता है[६]। सारांश यह कि 'संस्कृति' का संबंध मानव के उन वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों की अभिव्यक्ति है जिनके द्वारा मानवता को पशुत्व से मुक्ति मिलती है।

समान संस्कारों वाले मनुष्यों के समूह को ही साधारणतया 'जाति' या 'समाज' समझा जाता है। अतएव समाज की प्रकृति या स्वभाव और आस्था या विश्वास की प्रेरक भावनाओं में प्रायः समान संस्कार रहते हैं। संभवतः इसी कारण संस्कृत की एक प्राचीन उक्ति में किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापारों, सामाजिक संबंधों और मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले तत्वों की समष्टि को 'संस्कृति' कहा गया है[7]। इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं[8] और जाति विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को 'संस्कृति' समझना चाहिए[9]।

हिंदी के प्रमुख कोशकारों में एक ने संस्कृति को 'रहन-सहन की रुचि' कहा है,[10] तो दूसरे ने उसे 'आचारगत परंपरा' बताया है[11] और तीसरे ने इसके अंतर्गत मन, रुचि, आचार-विचार, कला-कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास-सूचक बातें ली हैं[12]। इस प्रकार मानव के रहन-सहन और आचार-विचार से संबंधित उन सभी परंपरागत बातों से 'संस्कृति' का संबंध बताया गया है जो उसकी विविध विषयक रुचियों के परिष्कार और विविध अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती हैं। यों 'संस्कृति' के दो पक्ष हो जाते हैं। पहले का संबंध उन बातों से रहता है जिनका निर्माण रहन-सहन, आचार-विचार आदि से संबंधित वातावरण, संस्कार, संपर्क आदि के फलस्वरूप हुआ करता है और दूसरे पक्ष का संबंध परंपरा से अर्थात् उन बातों से रहता है जो मानव अपने पूर्वजों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण करता है। प्रथम पक्षीय विषयों की नींव मानव के जन्म-काल से ही पड़ जाती है और उसके रहन-सहन,

७. कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिकसंबंधेषु वा मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणाप्रदानां तत्त्वानां समष्टिरेव संस्कृतिः।

—'भारतीय संस्कृति का विकास' (डा. मंगलदेव शास्त्री) में उद्धृत, पृ. १।

८. डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'अशोक के फूल', पृ. ७५।

९. *Culture or krishti is the outer expression of the inner genius of the people*

—Hirendra Nath Dutta Indian culture page 4

१०. डा. श्यामसुन्दर दास, 'हिंदी शब्द-सागर' चतुर्थ भाग, पृ. ३४१५।

११. सर्वश्री कालिका प्रसाद, राजवल्लभ, मुकुंदीलाल 'बृहत् हिंदी कोश', पृ. ११४४।

१२. श्री रामचंद्र वर्मा 'प्रामाणिक हिंदी कोश' पृ. १२५६।

आचार-विचार आदि पर जिन बातों का आरंभ मे ही प्रभाव पड़ने लगता है, उनमें प्रमुख हैं—प्राकृतिक वातावरण, जीवन की सामान्य रूपरेखा पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थिति आदि। द्वितीय पक्ष के अंतर्गत विभिन्न विषयों के संबंध में परंपरा से प्राप्त विश्वास और मान्यताओं के साथ-साथ अनेक पर्वोत्सव आदि भी आ जाते हैं जिनसे जीवन के प्रति समाज के दृष्टिकोण की संकुचितता या व्यापकता का सहज ही परिचय मिल सकता है।

सांस्कृतिक मूल्यांकन' से तात्पर्य—

साहित्य या काव्य के अंग-विशेष को लेकर 'संस्कृति' के उक्त दोनों पक्षों पर सम्मिलित रूप से विचार करना उसका सांस्कृतिक मूल्यांकन' कहलाता है। काव्य विशेष के सांस्कृतिक मूल्यांकन से उसके रचनाकालीन समाज की स्थिति पर दोहरा प्रकाश पड़ता है। एक तो पाठक उसकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक और कलात्मक स्थिति से परिचित हो सकता है और दूसरे, उन संस्कारों और आदर्शों का भी उसे परिचय मिल सकता है जो जाति या वर्ग-विशेष के लौकिक जीवन का परिचालन करते हैं। प्रथम प्रकार की जानकारी का घनिष्ठ संबंध इतिहास से रहता है क्योंकि ऐतिहासिक परिस्थिति के साथ-साथ उक्त सभी प्रकार की स्थितियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। द्वितीय प्रकार का परिज्ञान अपेक्षाकृत अधिक महत्व का होता है। कारण समाज-विशेष के लौकिक जीवन-संबंधी आदर्शों का निर्माण शताब्दियों में होता है उन आदर्शों की जड़ ऐतिहासिक भूमि में बहुत गहरी समायी रहती है, वस्तुतः ऐसे संस्कारों का बीज-वपन उसी दिन हुआ समझना चाहिए जिस दिन मानव समाज ने सभ्यता का प्रथम पाठ सीखा होगा।

काव्य का संबंध भी जाति के इतिहास से अधिक उसके संस्कार जन्य आदर्शों से रहता है। फलस्वरूप ऐतिहासिक स्थिति के संबंध में जो संकेत या विवरण किसी काव्य में मिलते हैं वे प्रायः सामान्य और असंबद्ध ही होते हैं। प्रबंध-काव्य में तत्संबंधी उल्लेखों के लिए थोड़ा-बहुत अवकाश हो भी सकता है, परंतु गीतिकाव्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं होता यद्यपि स्वयं कवि उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं करना चाहता। द्वितीय प्रकार की स्थिति से संबंधित अनेक संकेत सभी प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं, कारण तत्संबंधी उल्लेख कोई भी कवि अनायास ही कर जाता है; क्योंकि उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी उन्हीं संस्कारों और आदर्शों से होता है। ये संकेत कभी तो प्रत्यक्ष रूप से वर्णित विषयों में मिलते हैं और कभी परोक्ष

अलंकारों के रूप में इस उद्देश्य से अपनाये जाते हैं कि अबोधावस्था में ही संस्कार रूप में परिचित पाठक उन्हें सहज ही हृदयंगम कर सकें; अस्तु।

अतएव सामान्य रूप से काव्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन के मुख्य नौ पक्ष हो जाते हैं—प्राकृतिक पारिवारिक, सामान्य सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक जीवन की रूपरेखा धर्म और दर्शन-संबंधी विचार तथा साहित्य एवं कला की स्थिति का परिचय। प्रस्तुत प्रबंध में अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन इन्हीं शीर्षकों के अंतर्गत किया जायगा।

अष्टछाप काव्य के अब तक प्रस्तुत किये गये सांस्कृतिक अध्ययन का मूल्यांकन—

समस्त अष्टछाप-काव्य का प्रथम आलोचनात्मक अध्ययन डा० दीनदयालु गुप्त का 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' नामक विख्यात ग्रंथ है जो उसी प्रकार के किसी अन्य ग्रंथ के अब तक प्रकाशित न होने के कारण 'अंतिम' भी कहा जा सकता है। इस विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ में धर्म भक्ति, दर्शन आदि से संबंधित अष्टछापी कवियों के विचारों का सामाजिक विवेचन तो मिलता है, परंतु सांस्कृतिक अध्ययन के अन्य पक्षों पर कुछ नहीं लिखा गया है।

अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास के काव्य को लेकर इधर पाँच-सात सुंदर प्रबंध और ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जिनमें डा० मुंशीराम शर्मा का 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' डा० ब्रजेश्वर वर्मा का 'सूरदास', डा हरवंशलाल का 'सूर और उनका साहित्य', आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का महाकवि सूरदास', डा० प्रेमनारायण टंडन का 'सूर की भाषा' और सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अंतिम को छोड़कर शेष प्रायः सभी ग्रंथों में सूर काव्य के शास्त्रीय धार्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन जितने विस्तार से किया गया है उसको देखते हुए यही कहा जायगा कि उसके सांस्कृतिक पक्ष की किसी सीमा तक उपेक्षा ही की गयी है, यद्यपि डा० मुंशीराम शर्मा जैसे विद्वानों ने 'सूरदास और ब्रज की संस्कृति' जैसे नाम से एक परिच्छेद अपने ग्रंथ में देकर तद्विषयक अध्ययन की आवश्यकता का निर्देश अवश्य कर दिया है। डा० टंडन का 'सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन शीर्षक ग्रंथ यद्यपि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि किसी भी हिंदी कवि को लेकर वैसी कोई रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है तथापि उसमें विषय की एक प्रकार से रूपरेखा भर दी गयी है, उसका सम्यक् विवेचन नहीं किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध की मौलिकता—

हिंदी के अब किसी भी कवि के काव्य को लेकर कोई विधिवत सांस्कृतिक अध्ययन अब तक प्रकाश में नहीं आया है तब प्रस्तुत प्रबंध की 'मौलिकता' निर्विवाद ही है। इसके नौ परिच्छेदों में से धर्म और दर्शन वाले परिच्छेदों के लिए विशेष रूप से और संस्कार-वर्णन के लिए सामान्य रूप से उक्त ग्रंथों से कुछ सहायता मिल सकी है; यद्यपि उनमें भी प्राप्त सामग्री की सुधारु और स्पष्ट रूप से सोदाहरण विवेचना का लेखिका का ढंग एक प्रकार से 'निजी' ही है। फिर भी इन परिच्छेदों को प्रस्तुत प्रबंध में संक्षिप्त ही रखा गया है और उन परिच्छेदों को विस्तार दिया है जिनका विषय-प्रतिपादन मौलिक है। अतएव प्रस्तुत प्रयत्न हिंदी में अपने ढंग का सर्वप्रथम मौलिक प्रयास कहा जाना चाहिए।

प्रस्तुत मूल्यांकन के लिए प्राप्त प्रामाणिक अष्टछाप-काव्य —

अष्टछापी कवियों की जिन-जिन रचनाओं का उल्लेख विभिन्न खोज-रिपोर्टों में हुआ है, उनमें से अनेक की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अतएव प्रस्तुत प्रबंध मुख्यतः उन्हीं कृतियों के आधार पर लिखा गया है जिनकी प्रामाणिकता के संबंध में प्रमुख विद्वान एकमत हैं। इन कृतियों की सूची, संपादकों के नाम सहित नीचे दी जाती है—

कवि	ग्रंथ	संपादक या संकलनकर्ता
सूरदास	सूर-सागर (दो भाग)	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी।
	सूरसारावली [१]	श्री प्रभुदयाल मीतल
	साहित्यलहरी	श्री रामलोचन शरण।
परमानंददास	परमानंद-सागर (पद-संग्रह)	डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल

१। 'सूर-सारावली' और 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने वालों में प्रमुख हैं मिश्रबंधु (हिन्दी नवरत्न चतुर्थ संस्करण पृ २१२), पं रामचंद्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ १६४ १६५), डा दीनदयालु गुप्त ('अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' प्रथम भाग पृ २७८ और २९८) डा मुंशीराम शर्मा (भारतीय साधना और सूर-साहित्य', पृ ५४), आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी (महाकवि सूरदास पृ ६१-६२) आदि। डा ब्रजेश्वर वर्मा इनसे सहमत नहीं हैं ('सूरदास द्वितीय संस्करण पृ ५)।

कुम्भनदास	जीवनी, पद-संग्रह और भावार्थ	गो० ब्रजभूषण
कृष्णदास	हस्त लिखित पद-संग्रह[१४]	डा० दीनदयालु गुप्त
नंददास	नंददास' (दो भाग)[१५]	श्री उमा शंकर शुक्ल
चतुर्भुजदास	जीवन झाँकी तथा पद-संग्रह	गो० ब्रजभूषण
गोविन्दस्वामी	साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद-संग्रह	गो० ब्रजभूषण
छीतस्वामी	जीवनी तथा पद-संग्रह	गो० ब्रजभूषण

अष्टछाप काव्य के उक्त संस्करणों के अतिरिक्त उनके पदों के निम्नलिखित संकलनों से भी यत्र-तत्र सहायता ली गयी है—

नाम	प्रकाशित-अप्रकाशित	संपादक या संकलनकर्त्ता
अष्टछाप-पदावली	प्रकाशित	डा० सोमनाथ गुप्त
अष्टछाप-परिचय	"	श्री प्रभुदयाल मीतल
अष्टछाप-संग्रह	अप्रकाशित (हस्तलिखित)	डा० दीनदयालु गुप्त

अष्टछापी कवियों के वर्ण्य विषय

विषय की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के दो वर्ग किये जा सकते हैं।

१४. कृष्णदास के संपूर्ण पदों का कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। 'अष्टछाप-पदावली' और 'अष्टछाप-परिचय' में उनके कुछ पद संग्रहीत हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने कृष्णदास के साथ-साथ सूरदास को छोड़कर अष्टछाप के सभी कवियों के पदों का एक सुन्दर संग्रह तैयार किया था। प्रस्तुत अध्ययन में उसी का उपयोग किया गया है—लेखक

१५. श्री उमाशंकर शुक्ल ने अपने संपादित ग्रंथ 'नंददास' (दो भाग) में पदावली के अतिरिक्त नंददास के ग्यारह ग्रंथ दिये हैं—रूपमंजरी, विरहमंजरी, रस मंजरी, मानमंजरी, नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्याम-सगाई, भँवर गीत, रुक्मिणी मंगल, रास-पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी और दशम स्कंध। डा० दीनदयालु गुप्त ने भी उक्त ग्रंथों को तो प्रामाणिक माना ही है, उनके अतिरिक्त 'गोवर्द्धन-लीला' और 'सुदामा-चरित' को भी नंददास का रचा बताया है—अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, प्रथम भाग, पृ० १०७।

प्रथम वर्ग में परमानन्ददास, कुम्भनदास चतुर्भुजदास, कृष्णदास, गोविन्दस्वामी, और छीतस्वामी आते हैं जिन्होंने पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के आराध्य श्रीकृष्ण की केवल गोकुल-वृन्दावन की लीलाओं का ही वर्णन किया है। द्वितीय वर्ग सूरदास और नन्ददास का है जिन्होंने श्रीकृष्ण की गोकुल, वृन्दावन, मथुरा और द्वारका-लीला के विविध प्रसंगों के साथ-साथ कुछ पौराणिक कथाओं का भी विस्तार से वर्णन किया है। इस प्रकार यों तो इन कवियों की रचना का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड और किशोर लीलाएँ हैं, फिर भी प्रत्येक कवि को अपने आराध्य की लीला का अंश-विशेष अधिक प्रिय रहा है और उसी का वर्णन करने में उसे विशिष्टता प्राप्त है। ब्रज की भारी रीति का गान[१६] करने पर भी सूरदास वात्सल्य और शृंगार-वर्णन में अद्वितीय हैं तो परमानन्ददास का बाल पौगंड और किशोर-लीला-वर्णन सुन्दर है, क्योंकि उनकी भक्ति • बाल, कान्ता और दास-भाव की थी और तत्संबंधी विषयों की चर्चा भी ही परमानंद-काव्य में अधिकता है। कृष्णदास का विशेष कौशल रासलीला एवं प्रिया-प्रियतम-विहार-वर्णन में परिलक्षित होता है[१७]। नन्ददास ने जो कुछ कहा है वह राग[१८] या अनुराग रंग में रँगा हुआ है[१९]। कुम्भनदास की वृत्ति किशोर लीला में अधिक रमी है तथा

१६ परमानंद अरु सूर मिलि गाइ सब ब्रजरीति।
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिनि की प्रीति।
—ध्रुवदास 'भक्तनामावलि' संपा० राधाकृष्णदास दो० १५।

१७ 'परमानन्द के पद में बाल-लीला भाव और रहस्य भलकता है। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो ताही लीला के पद परमानन्द गाये'
—अष्टछाप काँकरोली, पृ० ८२।

१८ सुरत माधुरी रस-अब्धि में परचौ प्रवीन मन जाइ।
वृन्दावन रस माधुरी गाई अधिक लड़ाइ।
—भक्तनामावली दो० २६।

१९ नन्ददास जो कुछ कह्यो राग रँग सों पागि।
अच्छर सरस सनेह मय सुनत स्रवन उठि जागि।
—भक्तनामावली दो० ७०।

२० कुम्भनदास को किशोर लीला में निरोध भयो।
—'अष्टछाप' काँकरोली पृ० ६७।

चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी आदि की विशिष्टता भक्ति-रस का तन्मयता पूर्वक वर्णन करने में है।

दूसरी बात यह कि यद्यपि सूरदास और नंददास ने मथुरा-द्वारका-लीला-वर्णन द्वारा तत्कालीन नागरिक संस्कृति का भी परोक्ष संक्षिप्त परिचय दिया है तथापि अष्टछाप के सभी कवियों की वृत्ति अपने आराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला में ही रमी रही और इस प्रकार वे ग्रामीण संस्कृति का ही यथार्थ चित्र अंकित करने में पूर्ण सफल हो सके। उनका यह प्रयत्न दो दृष्टियों से बड़े महत्व का है। पहली बात तो यह है कि भारत का हृदय गाँवों में ही है, नगरों में नहीं। अतएव ग्रामीण संस्कृति ही भारतीय संस्कृति के वास्तविक रूप से परिचित करा सकती है। दूसरे, अष्टछापी कवियों के समय तक मथुरा-आगरा आदि ब्रज-प्रदेशीय प्रमुख नगरों के नागरिक जीवन पर इस्लामी जीवनचर्या और विचार-धारा का जो प्रभाव पड़ चुका था, उससे भी गोकुल, वृन्दावन आदि के ग्रामीण अपेक्षाकृत अछूते ही थे। अतएव सूरदास, परमानंददास, नंददास आदि ने तत्कालीन ग्राम्य जीवन के अध्ययन के लिए ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री सुलभ कर दी है जो ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूल्यवान है।

---

२ प्राकृतिक जीवन चित्रण

'ब्रज' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'व्रज' (जाना) धातु से है। ऋग्वेद काल से लेकर संहिता और महाकाव्य-काल तक यह शब्द पशुओं के समूह अथवा चरागाह के अर्थ में ही सीमित रहा[1]। पुराण-युग में अवश्य 'ब्रज' के अर्थ में कुछ स्थानपरकता का भाव आ गया[2] और डॉ० धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार, इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नन्द के ब्रज अर्थात् गोष्ठ-विशेष के अर्थ में होने लगा।[3] तदनंतर 'ब्रज' शब्द क्रमशः देशपरक अर्थ का द्योतक होता गया और हिन्दी-साहित्य के भक्ति-युग के आरम्भ से ही मथुरा के निकटवर्ती प्रदेश का वाचक रहा है। अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में[4] और उनके पश्चात् लिखी गयी 'चौरासी'[5] तथा 'दो-सौ-बावन-वैष्णवों की वार्ता'[6] में भी 'ब्रज' शब्द इसी अर्थ में

१ 'ऋग्वेद' मं २ सू ३८ मं ८ मं ५, सू ६५, मं ४ मं १, सू ४, मं २ इत्यादि—'ब्रजभाषा-व्याकरण' भूमिका पृ ६।

२ क वैम—'तद् ब्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम्'—'हरिवंश' विष्णु पर्व; अध्याय ६ श्लोक ३।

ख 'कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद्व्रजं गतः'—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध अध्याय १, श्लोक ६६।

३. डा धीरेन्द्रवर्मा 'ब्रजभाषा-व्याकरण' भूमिका, पृ १ की पादटिप्पणी संख्या २।

४ क ब्रज' में होत कुलाहल भारी—परमा २५।

ख ब्रज' बसि बोल सबन के सहिये—परमा ८९५।

ग हौं वारिनि ब्रजराज की 'ब्रज' तें आयी हो—चतु ७।

५. 'तब श्रीनाथ जी ने श्री आचार्य जी महाप्रभून सों कह्यौ जो तुम मेरी सेवा को पधारो 'ब्रज में श्री गोवर्धन पर्वत है तहाँ हम तीन दमन हैं। ''''''''तब श्री आचार्य जी महाप्रभु परिक्रमा आरम्भ मे रात्रि के 'ब्रज को पाउ धारे'

— चौरासी वार्ता' पृ २७५।

६ एक समय गोविंददास आंतरी गाम त 'ब्रज को आय और महावन में आयके रहे काहे तें जो या 'ब्रजधाम' है। यहाँ भागवत चरणारविंद की प्राप्ति होयगी"

—'दो सौ वार्ता' पृ १।

प्रयुक्त हुआ है। कालान्तर में 'ब्रज' की परिधि बढ़ कर चौरासी कोस की हो गयी और इसे 'ब्रज-मंडल' कहा जाने लगा।[७]

इस ब्रजमंडल के प्रति अष्टछापी कवियों में बड़ी श्रद्धा रही है। इसके दो मुख्य कारण जान पड़ते हैं। प्रथम तो यह कि इस मंडल के अन्तर्गत गोकुल, वृन्दावन गोवर्द्धन, बरसाना, मथुरा आदि ऐसे प्रसिद्ध स्थल हैं जो अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि रहे हैं। दूसरे, उक्त स्थानों में से कुछ यथा महावन, जमुनावती गोपालपुर आदि अष्टछापी कवियों के निवास स्थान थे। इनके अतिरिक्त गोवर्द्धन पर तो महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित श्रीनाथ जी का प्रसिद्ध मंदिर भी है जहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष ये कवि कीर्तन किया और पद रचा करते थे।[८]

अष्टछाप काव्य के अनुसार जब स्वयं श्रीकृष्ण ब्रजभूमि के दर्शन करके अत्यंत पुलकित हो जाते हैं,[९] तब उनके भक्त-कवियों का उस पुण्यभूमि को बैकुंठ से भी श्रेष्ठ मानना सर्वथा संगत ही समझा जायगा। यही कारण है कि कोई अष्टछापी कवि इसलिए बैकुंठ जाना व्यर्थ समझता है कि वहाँ बंसीवट, यमुना, गोवर्द्धन, वृन्दावन आदि नहीं हैं[१०] और कोई विधिना से सदैव ब्रज-वास का ही वरदान

७. ब्रजमंडल के विस्तार के संबंध में निम्नलिखित दो कथन प्रसिद्ध हैं—
(क) इत बरहद उत सोनहद उत सूरसेन को गाँव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मंडल मांह।
(ख) पूर्वे हास्यवनं नीपं पश्चिमस्योपहारिकं।
दक्षिणे जनु संज्ञकं भुवनाख्यं तथोत्तरे।

८. डा० दीनदयालु गुप्त 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' पृ० ७।

९. ए री देखियत हमारे गोकुल के कान्ह।
प्राची दिसि तें गऊ री चलिन भरी बाँसुरी के बाजत करो मूल गू।
× × × ×
ब्रजभूमि धन्य धाय गोविन्द प्रभु मन पुलकित मन भयो अति मूल गू।
—गोविंद स्वामी।

१०. कहा करों बैकुंठहि जाय।
जहाँ नहीं बंसीवट जमुना गिरि गोवर्धन नंद की गाय।
जहाँ नहीं ए कुंजलता द्रुम मंद सुगंध बाजत नहिं बाय।

चाहता है[११] क्योंकि वही नित्यधाम है जहाँ परमाराध्य का साहचर्य सदैव सुलभ रहता है।

अष्टछाप-काव्य में ब्रजवासियों के प्राकृतिक-जीवन का चित्रण बड़े विस्तार से किया गया है। अध्ययन की सुविधा और स्पष्टता के लिए उसको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१ प्राकृतिक स्थान, २. वनस्पति वर्ग और ३ जीव-जंतु।

१ प्राकृतिक स्थान—

इस शीर्षक के अंतर्गत ब्रज के जो प्राकृतिक स्थान आते हैं, उनको स्थूल रूप से पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—क वन, ख उपवन, ग पर्वत, घ नदी और ङ अन्य स्थान।

क वन—'मथुरा मेम्वायर' के अनुसार ब्रज के बारह वन ये हैं—मधु, ताल कुमुद, बहुला, काम, खिदर वृन्दा भद्र, भांडीर, बेल, लोह और महावन[१२]। 'सूरसागर' में इन वनों का उल्लेख मात्र है,[१३] 'सारावली' में अवश्य उनके नाम गिनाये गये हैं[१४]।

कोकिल मोर हंस नहिं कूजत ताको बसिबो कहा सुहाइ।
जहाँ नहीं बंसी धुनि बाजत कृष्न न पुरवत अधर लगाइ।
प्रेम पुलक रोमांचन उपजत मन क्रम वच आवत नहिं दाइ।
जहाँ नहीं ए भुव वृन्दावन बाबा नंद जसोमति माइ।
गोविंद प्रभु तजि नंद सुवन कौ ब्रज तजि वहाँ बसत बलाइ—गोविं ५७४।

११ माधौ विधिना ! तो पैं आँचरा पसारि माँगौं
जनम जनमु दीजै याही ब्रज बसिबो—छीत ११७।

१२ ग्राउज मथुरा मेम्वायर पृ ८-८१।

१३ द्वादस बन' रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले सू—सा ३४७२।

१४ यहि विधि क्रीड़त गोकुल में हरि नित वृन्दावन धाम।
मधुबन और कुमुदबन, सुन्दर बहुलाबन अभिराम।
नंदग्राम संकेत खिदरबन और कामबन धाम।
लोहबन माट बेलबन सुन्दर भद्र द्वादस बन नाम।
—सारा १०८८।

ब्रज के उक्त वनों में 'वृन्दावन'[१५] का उल्लेख सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, क्योंकि यह वन ही श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का मुख्य केन्द्र था। सूरदास परमानंददास और नंददास के काव्यों में वृन्दावन के अतिरिक्त कुमुदवन, कोकिलावन, तालवन और मधुवन का उल्लेख भी मिलता है। प्रथम अर्थात् कुमुदवन में श्रीकृष्ण के साथ सखाओं के बहुत दिन तक रहने की,[१६] कोकिलावन में राधा और उसकी सखियों के खेलने की,[१७] तालवन में जमुना-जल पीने की और मधुवन में कदंबवृक्ष की सघन डालों में झूला झूलने[१९] की बात कही गयी है।

अन्य वन—ब्रज के उपरोक्त वनों के अतिरिक्त अष्टछाप काव्य में दो वनों का उल्लेख और हुआ है—एक है सुंदारण्य और दूसरा दंडकवन। प्रथम का उल्लेख नंददास ने रासपंचाध्यायी प्रसंग में किया है[२०] और द्वितीय का सूरदास ने रामकथा के संबंध में[२१]।

ख उपवन—मथुरा मेम्वायर के अनुसार ब्रज के ये चौबीस उपवन प्रसिद्ध हैं[२२]—गोकुल, गोवर्द्धन बरसाना नंदगाँव संकेत परमानन्द अरींग शेषशायी, माट, ऊँचागाँव खेलवन, श्रीकुंड गन्धर्ववन परासौली बिलछू बच्छवन, आदिबद्री करहला अजनौख पिसायौवन कोकिलावन दधिवन, कोटवन और रावलवन। अष्टछाप काव्य में इन उपवनों की अधिक चर्चा नहीं है केवल परमानन्द-सागर

१५ क वृन्दावन कुंजधाम विहरत पिया संग स्याम—कुंभन १५।
ख चलहि वृन्दाविपिन बैठे जहाँ गिरिधरन —चतु ११२।

१६ बहुत दिवस हम रहे कुमुदवन कृष्ण तुम्हारे साथ—परमा कौंक २८८।

१७ सात पाँच मिलि चलन निकसीं कोकिलावन की डगर—परमा २६८।

१८ चलहु भैया हो अपने तालवन पी जमुना की पान्या—परमा कौंक २५२।

१९ मधुवन सघन कदंब की डारें झुलन झुकत गोपालैं-नंद की मा १ पृ १११।
सुंदरारन्य नाम है जहाँ अति गह्वर सुधि परत न ताहीं।
—नंद ग्रंथा पृ २८४।

२१ तहँ ते चले दंडकवन का सुखनिधि साँवल गात—सारा २५४।

२२ डा दीनदयालु गुप्त के 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', पृ ७ में उद्धृत मथुरा मेम्वायर (ग्राउज) तृतीय संस्करण पृ ८।

में नंदगाँव[२३] का सामान्य रूप से, परासोली का वेनु-प्रसंग में[२४] और मधुवन का दानलीला-प्रसंग में[२५] उल्लेख हुआ है।

ग पर्वत—ब्रज के चार पर्वत या टीले कहे जाते हैं—गोवर्द्धन[२६], बरसाना, नन्दीश्वर और चरण पहाड़ी। कृष्ण की लीलाओं में गोवर्द्धन-धारण का विशिष्ट स्थान होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने गोवर्द्धन का ही उल्लेख अधिक किया है[२७]। नंद और यशोदा को वृषभानु नन्दीश्वर' से निमंत्रित कर श्याम की सगाई के लिए बुलाते हैं[२८]। राधा का जन्मस्थान और वृषभानु जी का निवास स्थान होने के कारण 'बरसाने' की भी चर्चा अष्टछाप काव्य में हुई है[२९] क्योंकि यहीं श्रीकृष्ण की 'सगाई' होती है[३०]। 'चरन-पहाड़ी' का उल्लेख केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण के 'आँखमिचौनी' खेलने के प्रसंग में किया है[३१]।

अन्य पर्वत—उक्त पर्वतों के अतिरिक्त सूर-काव्य में द्रोणागिरि, ऋष्यमूक, त्रिकूट और मंदराचल का भी वर्णन मिलता है। प्रथम तीन का उल्लेख रामकथा प्रसंग में और अन्तिम का गजग्राह और सागर-मंथन के प्रसंग में हुआ है। द्रोणागिरि पर संजीवनी बूटी लेने के लिए हनुमान गये थे[३२]। ऋष्यमूक पर्वत पर राम और सुग्रीव में मित्रता हुई थी[३३]। त्रिकूट लंका का पर्वत है किन्तु सूर ने

२३ जो द् नंदगाँव दिसि जैहै—परमा ८८५।

२४ मनु मधुर मुनि चली री चपल मिल परासौली तें परे—परमा कॉक २१८।

२५ रोकत घाट बाट मधुबन की डीरत माट करत ही चुरां—परमा १७४।

२६ मथुरा से करीब तेरह मील दूर गोवर्द्धन की छोटी सी पहाड़ी और गाँव अब भी है—लेखिका।

२७ क गोवर्धन धरनी धरयो मेरे बारे कन्हैया—परमा ९८६।

ख नंदलाल गोवर्द्धन कर धारयौ। कुंभन ५६।

२८ नंदीसर तें नन्द जसोदा गोपिनि न्यौति बुलाए।

× × × ×

पठै आइ नन्दीसर को वृषभान पठायो करन सगाई—कुंभन १।

२९ चल कुंवर लै बरसाने कों प्रफुल्लित मन भ्रम-नाम—कुंभन ९।

३० बरसान वृषभान गोप के लाल की भई सगैया—परमा १७।

३१ दुकि दुकि खेलत आँखमिचौनी चरनपहारी ऊपर—परमा ११८।

३२ द्रोनागिरि पर आहि संजीवनि बैद सुषेन बताई—सा ९.१४६।

३३ रिष्यमूक पर्वत बिग्याता—सा ९.६८।

गजग्राह की कथा में इसका वर्णन किया है[१४]। सागर-मंथन के समय मंदराचल की नेति बनाये जाने की बात भी सूरदास ने ही लिखी है[१५]।

ग नदी—ब्रज की प्रमुख नदी है यमुना जिसके अतिरिक्त मानसी-गंगा का भी उल्लेख हुआ है। यमुना का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी उमंग से किया है। इसका मुख्य कारण यह ज्ञात पड़ता है कि यमुनातट ही कृष्ण-लीला का मुख्य स्थल रहा है जिससे जलविहार, कालीनाग-नाथन, पनघट-लीला आदि प्रसंगों में यमुना का उल्लेख स्वत ही गया है। इसके अतिरिक्त अष्टछापी कवियों की दृष्टि में यमुना की महिमा भी बहुत है। चतुर्भुजदास सदा यमुना की भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं[१६]। छीतस्वामी यमुना के भजन को 'कृष्णमन्दि का साधन'[१७] और 'बैकुंठ की निसैनी'[१८] बताते हैं। गोविन्दस्वामी ने यमुना को 'पतितोद्धारक' और 'भक्ति-मुक्ति-दात्री' कहा है[१९] क्योंकि वह भक्तों की इच्छा-पूर्ति करती हैं। परमानंददास की सम्मति में यमुना के दर्शन तथा जल-पान से प्राणी को यमयातना नहीं सहनी पड़ती[२०]।

अष्टछाप काव्य में 'यमुना' के लिए मुख्यतः ये नाम आये हैं—कालिंदी तरणि-

१४ भयौ त्रिकूट पर्वत गज जौ—सा ८-२।
१५ बलि कह्यौ बिलंब अब नैंकु नहिं कीजिये
मंदराचल अचल चलौ धाई—सा ८-८।
१६ चित्त म जमुना निसि दिन जो राखौ।
भक्ति के बस कृष्ण करत हैं सर्वदा, ऐसो जमुना जी को है साखौ।
—चतु १६५।
१७ गुन अपार एक मुख कहाँ ला कहिये।
तबो साधन भजौ नाम जमुना जी को लाल गिरिधरन को तब ही पइयै
—छीत १६२।
१८ छीत कूल गंग तरंग लौरी मनों जमुना जगत बैकुंठ निसैनी।
—छीत १६५।
१९ श्री जमुना अधम उधारन म जानी।
+ + + +
गोविंद प्रभु रवितनया प्यारी भक्ति मुक्ति की दानी—गोवि ५४८।
२० श्री जमुना को दरसन पावै अरु जमुना जल पान करै।
सो प्रानी जमलोक न देखै त्रिबगुण भोगी न मरै—परमा ५७९।

नंदिनी,[४१] तरनितनया,[४२] भानुतनया,[४३] रवितनया,[४४] सूर-सुता,[४५] सूरजा[४६] आदि। 'कलिंद' पर्वत से निकलने के कारण यमुना को 'कालिंदी'[४७] कहा जाता है। ब्रज की इस प्रसिद्ध नदी के उक्त सब नामों में 'यमुना' ही अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है[४८]।

मानसी-गंगा' वस्तुतः ब्रज का एक सरोवर है[४९] जिसके साथ 'गंगा' शब्द होने से इसे कभी कभी नदी कह दिया जाता है। अष्टछाप-काव्य में केवल चतुर्भुजदास ने 'मानसी-गंगा' के स्नान का उल्लेख गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में किया है। उन्होंने गोवर्द्धन की पूजा के समय मानसी-गंगा के जल में स्नान कराने के पश्चात् दूध की धार भी चढ़वायी है[५०]।

अन्य नदियाँ—ब्रज की उक्त दो नदियों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में चंद्रभागा, गंगा, गोदावरी सरयू, सरस्वती, सतद्रु और सिंधु का नामोल्लेख भी विविध प्रसंगों में हुआ है। 'चंद्रभागा' चंद्रभाग पर्वत से निकली 'चेनाब' नदी है जिसकी चर्चा 'सारावली' में है[५१]। धार्मिक दृष्टि से 'गंगा' की महिमा तो सर्वोपरि है ही। परमानंददास के विचार से 'गंगाजल' में मज्जन और गंगाजल-पान से प्राणी

४१ अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहन गावत अति 'तरनि-नंदिनी' —परमा ५७७।

४२ सुंदर सुभग 'तरनितनया' तट खेलत हैं हरि होरी हो—गोविं १२४।

४३ विहारी कृपा तें 'भानु की तनया' हरि पद प्रीति बढ़ाऊँ—परमा ५७८।

४४ गोविंद प्रभु 'रवितनया' प्यारी भक्ति मुक्ति की खानी—गोविं ५४८।

४५ सूर-सुता तट सदा बहति है त्रिविध पवन सुखकारी—गोविं १२२।

४६ 'सूरजा' तट परम रमनीक पवन सुखद मारुत मलय मृदु बहते। —गोविं १८।

४७ जै जै श्री सूरजा कलिंद-नंदिनी—छीत ११३।

४८ 'जमुना' जल तरंग सुन सजनी री सीतल सुगंध मंद बहत पवन। —गोविं ४७६।

४९ "विख्यातप्रसिद्ध राजा मानसिंह ने गोवर्द्धन में हरी मंदिर के पास 'मानसी गंगा' नामक सरोवर बनवाया"—ब्रज का इतिहास भाग १ पृ १५३।

५० मानसी गंगा' न्हवाइ नल-सिख तें पाछे दूध धौरी को नावत—चतु ४१।

५१ पुनि सतद्रु औरहु 'चंद्रभागा गंगा' प्यास जनवाए—सारा ८८२।

आवागमन से मुक्ति पा जाते हैं[५२] और उनके त्रिविध ताप नष्ट हो जाते हैं। तीर्थराज प्रयाग में 'यमुना' और सरस्वती के साथ 'गंगा' के प्रकट होने की बात भी उन्होंने कही है[५३]। इसी से त्रिवेणी-स्नान' का बड़ा माहात्म्य है[५४]। गंगा' के लिए 'सूरसागर' में 'सुरसरी' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है[५५]। गोदावरी का उल्लेख नंददास कृत दशमस्कंध' में है[५६]। अयोध्या की 'सरयू' नदी का वर्णन रामकथा में हुआ है[५७] जिसके तीर पर अयोध्या नगरी बसी बतायी गयी है[५८]। 'सरस्वती'[५९] का नाम विद्याधर-शाप-मोचन-प्रसंग[६०] और 'सिन्धु'[६१] का नाम कृष्ण के द्वारका जाने के प्रसंग में आया है। सतद्रू' अर्थात् पंजाब की 'सतलज' नदी में व्यास जी के स्नान करने की बात 'सारावली' में कही गयी है[६२]।

अन्य स्थान—इस शीर्षक के अन्तर्गत कन्दरा, कुंज, खादर, डूँगर, खोखर झरना, ताल-तलैया, दह, पुलिन, सर-सरवर सागर आदि प्राकृतिक स्थल लिये जा सकते हैं। गोवर्द्धन की सघन 'कन्दरा'[६३] में कृष्ण और राधा ने रात्रि-निवास किया

५२. मज्जन किये होत तन निर्मल, आवागमन मिटै—परमा कौंक १२४८।

५३ तीरथराज प्रयाग प्रकट भई बानी जमुना सनी संग—परमा ५८६।

५४ सुभ कुरुक्षेत्र अजोध्या मिथिला प्राग 'त्रिवेनी न्हाये—सारा ८२८।

५५. नाग नर पसु सबनि चाख्यौ 'सुरसरी' कौ नु द—सा १ १।

५६ ह गंगि ह हे गोदावरि' हे जमुने हे भावरि चावरि।

—नंद ग्राम, पृ २७।

५७ पाणिनि में नदियों में सरयू' का उल्लेख भी किया है। राप्ती नदी सरयू की सहायक थी—"इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि पृ ४५।

५८ उधर विधि इम नगर 'अयोध्या' है सरयू के तीर—सा १ ४४।

५९ प्राचीन नदियों क सरस्वती' नदी होने का संकेत किया गया है। उदीच्य तथा प्राच्य भागों को बाँटने वाली नदी इन सबमें प्रसिद्ध थी।

—'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि पृ ४९।

६० गए सरस्वति' तट इक दिन सिव अंबिका पूजा हेत—सा १८ २।

६१ पथिक कह्यो ब्रज जाइ हरि बात 'सिंधु' तट—सा ४८६७।

६२. पुनि सतद्रू' और दु चंद्रभागा गंगा व्यास अन्हवाये—सारा ८२८।

६३ गोवर्द्धन गिरि सघन कंदरा' रैनि निवास कियौ पिय प्यारी—चतु १९५।

था। 'कन्दरा' के पर्याय 'खोह'[६४] गुफा[६५] और 'गुहा'[६६] का वर्णन संन्यासियों के तपस्थान के रूप में हुआ है। ब्रज की 'कुंजों'[६७] में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ अनेकानेक मधुर लीलाएँ की थीं। 'खादर' या तराई भाग में चरती हुई गायों को मुरली बजाकर बुलाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[६८]। इन्द्र-मान-भंग-प्रसंग में इन्द्र गोवर्द्धन का 'डूँगर'[६९] कहते हैं। 'छीलर' का जल गंदा और अस्वास्थ्यकर होता है। इसीलिए सूरदास का कथन है कि सागर की लहर को छोड़कर 'छीलर' में किस प्रकार स्नान किया जाय[७०]? ब्रज में क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण 'झरना' 'सरिता' और 'सर' के सुरभित जल में अवगाहन करते थे[७१]। ब्रजवासियों के विश्वास के अनुसार इन्द्र की पूजा से ही 'ताल-तलैया' सब भर जाते हैं और पृथ्वी हरीभरी रहती है[७२]। ब्रज की प्रमुख 'दह' तो 'कालीदह' के नाम से प्रसिद्ध है ही[७३]। 'पुलिन' से तात्पर्य नदी-तट से है और 'वृन्दावन-पुलिन' पर मंडल बनाकर श्रीकृष्ण ने रासलीला की थी[७४]। 'मैदान' में श्रीकृष्ण के 'चौगान' खेलने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[७५]।

'वापी'[७६] सर[७७] या सरवर[७८] भी प्राकृतिक-स्थानों के वर्ग में ही आते

६४ सूर सुखली छाँड़ि परम सुख हमें बतावत खोह—सा १५७६।
६५ गुफा बसि मोहिं न पावै—सा १६१८।
६६ भ्रम गहि 'गुहा' रहौ—सा ८ १७।
६७ लिए अबीर अरगजा कुमकुम कुंज कुंज में खेलै—परमा १८५।
६८ बहुतक फैलि रही 'खादर' में मुरलि सुनावी हरि—कुंभन १९।
६९ 'डूँगर' को बल उनहिं बताऊँ ता पाछे ब्रज मोहि बसाऊँ—सा ९२५।
७० सागर की लहर छाँड़ि 'छीलर' कस न्हाऊँ—सा १ १६६।
७१ सौरभ जल 'झरना' सरिता सर अवगाहन पग पेलि—गोवि ४ ६।
७२ 'ताल तलैया' सब भरे बहुतृन उपजै भूमि—परमा २७२।
७३ हौं प्रभु यह 'दह' महा अगाध उरल गरल करि भर्यो अथाह।
—नंद ग्रंथाम पृ २७४।
७४ मंडल विमल सुभग वृन्दावन 'पुलिन' स्यामघन गौरी—परमा २१।
७५ खेलत नन्दकुमार बालक संग लीने वृन्दावन 'मैदान'—परमा ६५।
७६ बधिक ब्रह्मभित वापी—सा १४।
७७ सुन्दर सर' निर्मल जल ऐन—नंद ग्रंथाम पृ २७।
७८ भाने मठ कूप बाद 'सरवर' को पानी—सा ९-९६।

हैं। जलाशयों में समुद्र सबसे बड़ा होता है। अष्टछाप-काव्य में 'समुद्र' के लिए 'पयोधि',[79] 'उदधि' 'पयोनिधि',[81] 'वारिधि'[82] 'सरितापति',[83] 'सागर',[84] 'समुद्र',[85] 'सिंधु'[86] आदि शब्द व्यवहृत हुए हैं। सामान्य रूप के साथ-साथ प्रकृति के इन अंगों का उल्लेख उपमान-रूप में भी किया गया है। 'सागर' का उल्लेख अधिकतर संसार की गहनता, दुस्तरता, दुख की अगाधता आदि के लिए हुआ है। सागर 'दुख'[87] का बतलाया गया है और 'विषय-विष'[88] तथा 'भय'[89] का भी। सूर ने 'मोह' का समुद्र'[90] भी बतलाया है जिससे उद्धार होने का एकमात्र साधन भगवन्नाम ही है। सांसारिक 'भय'[91] को भी 'समुद्र' के समान विकराल कहा गया है। अष्टछापी कवियों ने कभी तो अपने परमाराध्य को सागर' बताया है[92] और कभी उनकी 'दया' या 'कृपा' की असीमता देखकर उनको 'कृपासिंधु'[93] 'कृपा-पयोधि'[94] आदि कहा है।

(२) वनस्पति-वर्ग—

वनों-उपवनों की अधिकता व्रजभूमि की उर्वराशक्ति की परिचायिका

७९ अब 'पयोधि' नाम निज नौका सूरहिं लेहु चढ़ाइ—सा० १-१५५।
८० मधुकर एक संकपुर भरी 'उदधि' बाँधि पाषाननि—परमा० कीर्तन १२११।
८१ मनहुँ पयोनिधि मथित फेन फुट—परमा० ५६४।
८२ सीता नवन कारन बारिधि कैसे के तरिबो—परमा० कीर्तन १२३४।
८३ तबहुँ और रची सरितापति आगें सौ जन सात—सा० ९-१४।
८४ सागर सूर बिकार भर्यौ जल—सा० १-९४।
८५ कहा कहौं कोउ पार न पायो स्याम समुद्र परयो—परमा० ४६५।
८६ मानों माई सिंधु छिरकी तनया निति—परमा० कीर्तन १२३।
८७ मन्यौ काल-व्यालिनि तैं बाँची मग्न रही दुखसागर—सा० १-९१।
८८ या संसार विषय विष-सागर' रहत सदा सब घेरे—सा० १-८५।
८९ पुनि पाऊँ भव-सिंधु पतन है सूर नाम बिन पाहन—सा० १-१०।
९० 'मोह-समुद्र' सूर बूड़त है लीजै भुजा पसारि—सा० १-१२१।
९१ भव उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार—सा० १-८८।
९२ क सनि गंभीर उदार उदधि हरि जान सिरोमनि राइ—सा० १-८।
ख परमानंद 'हरि सागर' तजि के नदी सरन कत जाऊँ—परमा० ८४२।
९३ कृपासिंधु उदधी के सबै सम लाज निरवारिए—सा० १-११२।
९४ कृपा-पयोधि भक्त चिंतामनि पल बिरद बुलाय—परमा० ८६२।

है, साथ ही इस बात को सूचक भी है कि ब्रजवासियों के जीवन का विकास प्रकृति की गोद में ही होता रहा है। श्याम सलिलावती यमुना के निकटवर्ती समतल भूभाग और गिरिगोवर्द्धन के पर्वतीय प्रदेश में, सभी प्रकार के उपयोगी पेड़-पौधे उपजाने की क्षमता रही है। यही भूभाग श्रीकृष्ण की बाल और किशोर लीला-भूमि है और यहीं प्रतिदिन गोचारण करते-करते श्रीकृष्ण और उनके सखाओं ने घने वनों और दुर्गम प्रदेशों की खोज की थी।

पेड़-पौधों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्द अष्टछाप-काव्य में व्यवहृत हुए हैं जैसे तरु,[९५] द्रुम,[९६] विटप[९७] वृच्छ[९८] आदि। अष्टछापी कवियों ने ब्रज की उर्वरा-भूमि में उगनेवाले जिन पेड़-पौधों के नाम गिनाये हैं, स्थूल रूप से, उनके तीन वर्ग किये जा सकते हैं—अ. पुष्पों के वृक्ष, आ फलों के वृक्ष और इ अन्य वृक्ष।

(अ) पुष्पों के वृक्ष—पुष्पों के वृक्षों में अशोक, कदंब करवीर, कुंद कोविद, टेसू, ढाक, तमाल, नीप, बकुल आदि का उल्लेख अष्टछाप काव्य में हुआ है। इनमें से 'करवीर' 'कुंद' टेसू' और 'बकुल' की चर्चा पुष्प' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी क्योंकि उनके पुष्पों का विवरण अधिक विस्तार से दिया गया है; शेष के संबंध में अष्टछापी-कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

'अशोक'[९९] वृक्ष का उल्लेख नन्ददास-कृत दशम स्कंध' की यज्ञपत्नी-कथा' और सूरसागर के 'नवम स्कंध में मिलता है। चीर-हरण लीला में

९५. पाहन पिघरे 'तरु' नए, मोहे खग मृग नाग—चतु २६६।
९६ द्रुम लता कुसुम मधु कलित सु नाना बरन—कुमन ७७।
९७ जोबन केउ विटप बली सब चूर चूर करि डारि—आरा ४१७।
९८ मनौ वृच्छ तमाल मली-कनक सुधा सिंचाई—सा ११६।
९९ अशोक' की पत्तियाँ आम की पत्तियों की भाँति लहरदार होती हैं। इस वृक्ष पर बैशाख में सुनहरे रंग का बौर आता है तथा इसका फल मिसौरी से मिलता जुलता होता है। कवि प्रसिद्धि के अनुसार अशोक वृक्ष रूपवती स्त्री के पदाघात से पुष्पित होता है।

—कालिदास-टीका मल्लिनाथ पादाघातदशोक उत्तर-मेघ श्लो १५,पृ ४७७।

१ जमुना निकट सुभग इक बाग, तहं 'अशोक' तरु अति बड़ भाग।
—नंद दशम पृ १ ?।

१ पुनि जाको सीता जहँ बैठी, वन 'अशोक' के माँहि—सा ९-७५।

आलिंगीधार के कदम्ब या 'कदंब' वृक्ष का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है[३]। कृष्ण की विरहिणी गोपियाँ 'कोविद' को फूला देखकर कृष्ण की याद करती हैं[४]। ढाक वृक्ष के नीचे कृष्ण के छाक खाने की बात 'परमानन्ददास' ने कही है[५]। 'मणि-मरकत' जैसे पत्तों वाले 'तमाल' वृक्षों की अधिकता यमुना के किनारे बतायी गयी है। कृष्ण के श्याम रंग के उपमान रूप में भी 'तमाल' की चर्चा इन कवियों ने की है।

(आ) फलों के वृक्ष—आम, कदली, गूलर, गोन्दा, जंबू या जामुन, धतूरा, नारिकेल, निंब, पीपर, पनस, बदरी, बट, मोंकीर आदि फलों के वृक्षों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से आम, जामुन, नारिकेल और निंब की चर्चा 'फल और मेवे' शीर्षक के अन्तर्गत आगे की जायगी। शेष वृक्षों में 'कदली' की ओट में जल-विहार के पश्चात् गोपियों के अंचल निचोड़ने का वर्णन सूर ने किया है[७]। 'कदली' अथवा 'कदली खंभ' की उपमा स्त्री की 'जंघा' से दी गयी है[८]। 'कदली' के पर्यायवाची 'रम्भा' शब्द का प्रयोग भी 'जंघा' के उपमान-रूप में हुआ है। राधा की जाँघों की उपमा 'मरकत-मनि रंभा' से सूर ने दी है[९]। 'गूलर' के फल में सैकड़ों जीवों की उपस्थिति की बात 'सूरसागर' के 'भ्रमर

२. क. कदम्ब का फूल हल्के पीले रंग का गोलाकार सा होता है जो सावन भादों में फूलता है। अबुलफजल ने इसे तुमागा शमली टोपी के समान वर्णित किया है—'आइने-अकबरी' पृ. १८१।

ख. नीप और कदंब का वृक्ष एक ही कहा जाता है—

कालिदास टीका मल्लिनाथ, 'उत्तर मेघ', श्लो. २।

३. बसन हरे सब कदम चढ़ाए—सा. ७८४।

४. कुरव, कुर कदंब 'कोविद' करनिकार सुकंज—सा. १११४।

५. स्याम 'ढाक' तर मंडल जोरि जोरि बैठे सब छाक खात हँसि मोहन।

—परमा. १४५।

६. क. तरनि-तनया तीर 'मरकत मनि द्रु' 'स्याम तमाल'—चतु. ११।

ख. हेमलता 'तमाल' अवलंबित सीस मल्लिका फूली हो—परमा. ९१६।

७. 'कदली' ओट निचोरत अंचल अधर सुधा रस भीनी—सा. ११९५।

८. जंघा 'कदली' की अति सोभा तापर गुल्फ बिराजै हो—परमा. ५७५।

९. जुगल जंघ मरकत-मनि-रंभा बिपरीत भाँति सँवारे—सा. १७२१।

वत्स-हरण' प्रसंग में स्वयं ब्रह्मा ने कही है[10]। 'गूलर' के फल की रसहीनता की बात गोपियाँ उद्धव से कहती हैं[11]।

'गोखरू' चने के आकार का छोटा सा कँटीला फल है। इसका उल्लेख कुंभनदास के काव्य में हुआ है[12]। 'बदरी' वृक्ष की चर्चा उन वृक्षों के साथ की गयी है जिनसे 'सूरसागर' में विरहिणी गोपियाँ प्रियतम कृष्ण का पता पूछती हैं[13]।

(ग) अन्य वृक्ष—इस वर्ग के अन्तर्गत आक, चंदन, ताल, धतूरा, नीम, पीपर, बट, बबूर बाँस मंदार, मालूर, सेमर आदि वृक्ष आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने यत्र-तत्र किया है।

'आक' को मदार' भी कहते हैं। इसका फल जब चिटकता है तो उसके बीज जिनके चारों ओर रुई के रेशे जैसे छोटे-छोटे रोयें लगे होते हैं, निकल निकल कर वायु में उड़ने लगते हैं। 'आक' के बीज बड़े हल्के होते हैं। इसीलिए सूरदास ने उपमान के रूप में इसका प्रयोग किया है और कहा है कि वह' (गोपिका) नेत्रों का अनुसरण करती हुई इस प्रकार चारों ओर दौड़ती फिरती है, जैसे 'आक' के बीज फूटने पर 'आकरुई' के फुवे वायु में लहरते हैं[14]।

'चंदन' का वृक्ष भारत में अत्यंत पवित्र माना जाता है। इसकी लकड़ी अति सुगंधित होती है। इसे घिस कर जो लेप तैयार किया जाता है, वह देवताओं पर चढ़ाया जाता है। यह लेप शीतलता प्रदान करता है। अतः ताप-निवारण के लिए लोग इसे शरीर पर लगाते हैं। धार्मिक कृत्यों और मृतक संस्कार के अवसर पर भी चंदन की आवश्यकता पड़ती है। अष्टछाप काव्य में परमानंददास ने अक्षय तृतीया के दिन स्त्रियों द्वारा 'चंदन' की पूजा का उल्लेख किया है[15]। सूरदास ने 'चंदन', अगर, घृत आदि सुगंधित पदार्थों की सहायता से 'चिता' तैयार करने

१० है सखा इक लोक कौ क्यों गूलर फल बीच'—सा ४६२।
११ सूर सु बहुत कहे न रहै रस 'गूलर' को फल फोरे—सा १६ ।
१२ काँटे बहुत 'गोखरू' खूँदे भारत सिर परागो तनो—कुंभन ३६८।
१३ कहि धौं री कुमुदिनी, कदली कहु कहि बदरी करबीर—सा १ ६१।
१४ डहिये उठी फिरति नैननि संग फर फूटे ज्यों आकरुई—सा १८५५।
१५ 'चंदन' पूजि प्रीतम मुख दीजे रीझि परै कहौं बनिता—परमा ७११

की बात कही है [१६]। चंदन जैसी पवित्र और बहुमूल्य लकड़ी को चूल्हे में जलनेवाले ईंधन के रूप में प्रयोग करने की मूर्खता की ओर भी परमानन्ददास ने संकेत किया है [१७]।

'ताल' का वृक्ष नारियल से मिलता जुलता होता है। इसे 'ताड़' भी कहते हैं। ब्रजभूमि में यमुना-तट पर यह वृक्ष पाया जाता है। इसका उल्लेख कहीं-कहीं 'नरवृक्ष' नाम से भी किया जाता है। सूरदास ने कृष्ण तथा अन्य ग्वालबालों का 'तालवृक्षों' के वन में जाने का उल्लेख किया है [१९]।

'धतूरे' के पौधे में कटीदार फल लगते हैं और इसके बीज विषैले होते हैं, जिन्हें कुछ लोग गहरा नशा लाने के उद्देश्य से 'भाँग' के साथ घोटकर पीते हैं। इसका फल महादेव जी पर चढ़ाया जाता है। सूरदास ने धतूरे के मादक प्रभाव का उपमान के रूप में वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की प्रीति में पगी गोपी इस प्रकार 'पागल' सी घूमती है जैसे उसने 'धतूरा' खा लिया हो [२०]।

'नीम' का वृक्ष भारत में सर्वत्र पाया जाता है। औषधि के रूप में यह गुणकारी है, परंतु इसकी पत्ती, छाल और इसके फल का स्वाद 'कटु' और अप्रिय होता है। इसीलिए अप्रिय स्वादवाली वस्तुओं के उपमान-रूप में 'नीम' का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है [२१]। नंददास ने ब्रज के वृक्षों में 'नीम' को भी गिनाया है [२२]।

'पीपर' अथवा 'पीपल' का वृक्ष हिंदुओं के लिए पूज्य माना जाता है [२३]।

१६ चंदन अगर सुगंध और घृत विधि करि चिता बनायी—सा १०५४।
१७ चंदन मीत सुकिरी के घर ईंधन करि डारि नामे—परमा ५४६।
१८ 'आइने अकबरी' पृ १५।
१९ चलौ ताल बन को वैसे भाव—सा ४६६।
२० सूरदास प्रभु दरसन कारन मानौ फिरति 'धतूरा' खाये—सा ४४।
२१ जो मन बावै सोइ फल पावै नीम' लगाइ आम को खावै—सा १२४।
२२ बूत प्रवाल कदंब निंब बदबंग पनस बहँ।
—नंद सिद्धांत, पृ १०८।
२३ भावडुरी के बड़ समान बट' पीपर घूमैं—नंद सिद्धांत पृ १०८।

सूरदास ने उत्पात शांति के हेतु 'पीपल' की पूजा का उल्लेख किया है[२४]। 'कदम्ब-वृक्ष' भी पवित्र और पूज्य है। सूरदास ने ब्रजभूमि के प्रमुख वृक्षों में इसकी गिनती की है[२५]। उन्होंने इसको स्त्रियों द्वारा वंदनीय ठहराया है[२६]।

'बबुर' या 'बबूल' का वृक्ष कंटीला होता है। इसमें छाया नहीं होती और न इसके फल ही खाने योग्य होते हैं। इस वृक्ष का आदर नहीं होता। यह कष्ट और पीड़ा का प्रतीक है। दुष्कर्म करके अच्छे परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। सूरदास ने इस तथ्य को 'बबूल' के उदाहरण से स्पष्ट किया है[२७]।

'बाँस' का वृक्ष भीतर से पोला होता है। इसका प्रयोग छप्पर छाने में होता है। इससे बाँसुरी या मुरली जैसे वाद्ययंत्र तैयार होते हैं। कृष्ण को मुरली अत्यंत प्रिय थी। अतः अष्टछापी कवियों ने मुरली संबंधी पदों में 'बाँस' के वृक्ष की चर्चा की है[२८]। वनों में जब आग लगती है, तो 'बाँस' बड़ी ज़ोर से चिटकता है। नंददास ने दावानल प्रसंग में 'बाँस' वृक्षों के चिटकने का वर्णन किया है[२९]।

'मंदार' वृक्ष अपने परागपूर्ण पुष्पों के लिए विख्यात है। पराग के लोभ में भौंरे उस पर मँडराते हैं। कुंभनदास ने हिंडोरा-वर्णन में फूले हुए 'मंदार' वृक्ष पर भौंरों के गूँजने का वर्णन किया है[१]। गोविंदस्वामी ने भी मधुलोभी भ्रमरों के 'मंदार' पर मँडराने की बात कही है[१]। 'मालूर' वृक्ष के पत्रों का शिवपूजा में प्रयोग किया जाता है। सूरदास ने गोपियों द्वारा शिव पर 'मालूर' के पत्रों

२४ अनुदिन अति उत्पात कहाँ लगि दीजे 'पीपर' को बन बाढ़िन।
—सा १४८८।

२५. कहि धौं कुंज कदंब, बकुल 'बट चंपक ताल तमाल—सा १६१।

२६. आवहु री व बड़ महान बड़ पीपर पूजैं—नंद सिद्धांत पृ १८८।

२७ बोवत बबुर' दाख फल चाहत जोवत है फल लागे—सा १६१।

८ मुरली तो यह बाँस बंस की—सा ४६।

२९ पटक बाँस' काँस कुस चटक—नंद दशम पृ २८५।

१ पारिजात मंदार' प्रफुल्लित पुनित अलिकुल गुंज—कुंभन १२।

११ लटपटी पाग 'मंदार माल लम्पटात मधुप मधु चाखैं—गोविं ३२१।

के पकाये जाने का उल्लेख किया है[१२]। सेमर' के वृक्ष में फल लगते हैं, परन्तु वे खाने योग्य नहीं होते क्योंकि उनसे रस-गूदे के स्थान पर रुई निकलती है। पक्षी उसके फल को रसमय समझ कर चोंच से प्रहार करता है, परन्तु उसे केवल पछताना पड़ता है[१३]।

(घ) झाड़-लता आदि—इस वर्ग के अंतर्गत करील, काँस सर, कुश, जवासा गुंजा तुलसी, सर्वगन्धा आदि झाड़ और लताएँ आती हैं।

'करील' की झाड़ियाँ ब्रजप्रदेश में अधिकता से पायी जाती हैं। कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में अष्टछापी कवियों ने करील का उल्लेख विभिन्न प्रकार से किया है। करील में पत्ते नहीं होते, केवल 'टेंटी' नामक फल इसमें लगता है। सूर के अनुसार यह फल कसैला होता है[१४]। 'काँस' फूलदार घास होती है। सूरदास ने 'काँस' के क्वार मास में फूलने की बात कही है[१५]। वर्षांत में 'काँस' में फूल लगते हैं। इस संबंध में एक लोकोक्ति भी है—फूले काँस, गयी वर्षा की आस। नंददास ने दावानल प्रसंग में 'काँस' के चिटकने का वर्णन किया है[१६]। 'सर' या सरपत के पत्तों से छप्पर छाये जाते हैं[१७]। इसके डंठल से लेखनी बनाने का निर्देश सूर ने किया है[१८]। 'कुश' एक प्रकार की घास है जो पवित्र मानी जाती है और पूजा आदि में इसका उपयोग किया जाता है। सूर ने दावानल-

१२ कमल-पुहुप मधूर एक फल नाना सुमन सुबास—सा ७६६।
१३ रसमय जानि सुआ सेमर कौं चोंच घालि पछितानौ—सा १-५८।
१४ जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल भावे—सा १ १९८।
१५ क्यों कुवार फूलहिंगे काँस—सा परि २ ।
१६ भरि भरि ताल तमाल सु लटके चटके बाँस काँस सुन चटके।
—नंद 'ग्रंथा' पृ २८२।

१७ सन ग्राम के घरों की दीवारें वेणुधार अर्थात् फटे बाँस और नल आदि अर्थात् नरकुल तथा सरकंडे से बनाई गयी थीं—हर्ष सां अ पृ १८९।

१८ क. कागद गरे मेघ मसि खूटी सर दव लागि जरे—सा ३९१८।

ल पाणिनि ने घास के अनेक प्रकार बताये हैं, यथा—शर काश कुश, मुञ्ज, नड शाद वेतस तथा तृण। गणों (पुराणों) में वीरण बल्वज, तथा पूतीक नाम भी मिलते हैं—डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' पृ २१४ २१५।

प्रसंग में कानों के साथ 'कुस' के डालने का भी उल्लेख किया है[३९]। 'जवासा' एक छोटा सा जंगली पौधा होता है। वर्षा ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और गर्मी में यह फूलता है। सूरदास ने 'जवास' का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में किया है[४०]।

तुलसी' एक घना झाड़दार पौधा होता है। भक्तजन को यह अत्यंत प्रिय है। स्त्रियाँ कई पर्वों में इसकी पूजा करती हैं। तुलसी के पौधे की सूखी डालों को टुकड़े-टुकड़े करके उनकी माला बनायी जाती है और साधु-संत उसे धारण करते हैं। परमानंददास ने तुलसी-माल' के धारण करने का उल्लेख किया है। कभी-कभी तुलसी के पत्तों की माला बनाकर पहनने का भी चलन है। यह माला मणि-माला के तुल्य बतायी गयी है[४१]। सूर ने 'तुलसी की माला' से कृष्ण के सौन्दर्य में वृद्धि की बात कही है[४२]। तुलसी की पत्ती को कानों में लटका कर भक्तजन अपना शृंगार करते हैं[४३]। तुलसी की 'पत्ती' चरणामृत के साथ दी जाती है और इसे प्रसाद के रूप में भी बाँटते हैं। इसे 'तुलसीदल' कहते हैं[४४]। भक्तों की दृष्टि में थोड़ा-सा तुलसीदल' चढ़ाने से ही भगवान प्रसन्न हो जाते हैं।

संजीवनी' एक प्रकार की बूटी होती है, जिसमें मृत व्यक्ति को फिर से जिला देने का गुण बताया गया है। राम-कथा में हनुमान के 'संजीवनी बूटी' लाने का वर्णन सूरदास ने किया है[४५]।

'लता' के लिए 'अष्टछाप-काव्य' में बेल बेली वल्ली आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है[४६]। लताओं में कुंदलता राजबेलि, राजवल्ली और लवंग लता प्रमुख हैं।

३९ लटकि जात जरि जरि द्रुम-बली पकत बाँस काँस 'कुस' ताल।
—सा ५६४।

४ सूर करम की नीर परोस्यौ फिरि फिरि चरत 'जवास्यौ —सा परि १६१।

४१ स्याम अंग 'तुलसी माला' उर मनि बरि याद ग्वालनि—परमा ८८२।

४२ स्याम देह दुकूल दुति छवि, लसति तुलसीमाल —सा १२७।

४३ भाल तिलक स्रवननि 'तुलसी-दल' मदं श्रंक बिम—सा १ १७१।

४४ अतुल प्रताप तनिक तुलसी-दल मानत सबा भारी—छीत ३८।

४५ द्रौनागिरि पर आहि 'सँजीवनि' बैद सुषेन बतार्इ—६ १४६।

४६ ब लता बिटप बन माँझ मगर है फल भरि भूमि नवावनि।
—परमा ८८२।

'राजबल्ली' का वर्णन अष्टछाप काव्य में स्वतंत्र रूप से नहीं मिलता। नंददास ने 'मानमंजरी' में 'राजबल्ली' के कई नाम गिनाये हैं[४७]।

'लवंग लता' लौंग की बेल को कहते हैं। सूरदास ने अन्य पुष्प वृक्षों के साथ 'लवंग लता' के फूलने का वर्णन किया है[४८]। लवंग की लता देखने में न केवल *सलोनी होती है, प्रत्युत गोविंदस्वामी* के अनुसार यह अति सुगंधदायिनी भी होती है[४९]। 'गुंजा' या 'घुँघुची' की भी लता होती है। इसमें लाल दाने निकलते हैं जिनका मुँह काला होता है। इनकी मालाएँ बनाकर पहनी जाती हैं। अष्टछापी कवियों ने भी *'गुंजाहार' या 'घुँघुचिनि की माल'* का उल्लेख किया है,[५०] क्योंकि यह श्रीकृष्ण की प्रिय वस्तुओं में है। एक पद में तो परमानंददास ने कामना की है कि मुझे 'गुंजाबन-बेली' के रूप में ही जन्म क्यों न मिला जिससे मैं श्रीकृष्ण को प्रिय लगता[५१]। 'घुँघुची' का प्रयोग तौलने के लिए भी होता है। परमानंददास ने 'सोने' या स्वर्ण के साथ 'घुँघुची' के भी तौले जाने की बात लिखी है[५२]।

(ङ) पौराणिक वृक्ष—भारतीय पौराणिक कथाओं में 'कल्पवृक्ष' और 'पारि जात' के वृक्षों का उल्लेख हुआ है। 'कल्पवृक्ष' मनुष्य को उसकी इच्छानुकूल फल

ख तरनि तनया तीर ठौर रमनीक अमित द्रुम लता—छीत ७।
ग फूली लता नवल गह्वर बन बरन बरन बहु भाँति—चतु ७९।
घ नाना बरन सघन वृन्दावन जहाँ तहाँ द्रुम 'बल्लनि' नभ—चतु ७२।
ङ फूल द्रुम बेली भाँति भाँति नव बसंत सोभा कहि न जात।
—चतु ८१।
च द्रुम बल्ली पद दीप बुग बनी अवलि अनल लिप जारिहैं।
—सा २११९।

४७ तुमहिं देखि फूली सु बलि दैचक द ट तन पाहि—नंद, मान पृ ६४।
४८ फूल चंपक बमेलि फूलि 'लवंग-लता बेलि—सा २६१७।
४९ ललित 'लवंग लता सुवास केतकी तरुनी मानों करत हास—गोविं १९।
५० अलक कमल अलक बरनी 'हार गुंजा नागक—परमा ६२१।
५१ क्यों न भए गुंजा बन बेली रहत स्याम जू की ओर—परमा ७५६।
५२ जो 'घुँघुची' तौले संग सोनो हमनीते बहुत बड़ाई—परमा काँक ११५४।

प्रदान करता है। इसलिए वह पूज्य है[५३]। 'कल्पतरु' को पाने की इच्छा सभी करते हैं और सत्यभामा भी पति श्रीकृष्ण से इस वृक्ष के दर्शन कराने की प्रार्थना करती है[५४]। परमानंददास ने बताया है कि 'कामधेनु' और 'कल्पवृक्ष' से मनोवांछित फल प्राप्त हो सकता है[५५]।

समुद्र-मंथन से प्राप्त होनेवाले रत्नों में 'पारिजात' भी था जो देवताओं के राजा इंद्र को दे दिया गया था[५६]। सूरदास ने हिंडोला-वर्णन में 'पारिजातक' की डंडी का उल्लेख किया है[५७]।

(ब) *वृक्षों का उपमान या प्रतीक-रूप में उल्लेख*—अष्टछापी कवियों ने पेड़-पौधों के केवल नाम गिना कर ही संतोष नहीं कर लिया प्रत्युत उन्होंने मानव-जीवन की गति का सूक्ष्म अध्ययन करके अनेक स्थलों पर ऐसे तथ्यों का संग्रह किया है जिनकी सत्यता मन को मुग्ध कर लेती है। ऐसे स्थलों पर वृक्षों का तथ्यात्मक उल्लेख मात्र न करके उपमानों के रूप में उनकी चर्चा द्वारा इस जीवन के गहन तथा गूढ़ दर्शन को स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिए सूर ने एक पद में राम-नाम के दो अक्षरों को 'धर्म रूपी वृक्षांकुर के दो दल' से उपमा दी है;[५८] दूसरे पद में उन्होंने संसार को 'द्रुम-दरिया' कहा है,[५९] तीसरे में तन को 'तरुवर' बताया है[६०] और चौथे में उन्होंने मलय-वृक्ष की उदारता को आदर्श माना है, क्योंकि वह अपने काटनेवाले कुठार को भी सुगंधित करता है[६१]। इसी प्रकार अष्टछापी

५३ कालिदास उत्तर मेघ श्लोक ११।

५४ कल्पतरु दासिन की भइ नाथ मोहिं कृपा करि नाथ दिखाइ।
—सा ४२६४।

५५ गोपन कामधेनु कल्पतरु गोपन पै माँगी सोई पावै—परमा २७८।

५६ अप्सरा 'पारिजातक' धनुष अमृत गजस्नेह य पांच गुरपतिहि दीन्हे।
—सा ८१५।

५७ सोहि डाँड़ 'पारिजातक' कनक पटली आनि—सा परि १६।

५८ अरजुन राम-नाम के अंक।
धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति बधू ताटंक—सा २।

५९ मन बनाव मैं जो द्रुम दरिया—सा १६७।

६० सा दिन मरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैं—सा १८८१।

६१ यद्यपि मलय वृक्ष जड़ काटै कर कुठार पकरै।
ता सुभाव न सीतल छाँड़ै रिपु तन ताप हरै—सा १११७।

कवियों ने 'उलझी हुई सिवार' में सांसारिक बंधन, माया की जंजीरों और मोह ममता की जकड़न का प्रतिबिंब पाया है[१२]। इनके लिए 'सेमर संसार के झूठे आकर्षण का प्रतीक है[१३]। इसी प्रकार 'बबूल' का वृक्ष 'बुरे कर्म का बुरा फल' के सिद्धान्त का और 'आम' का वृक्ष शुभ कर्मों के सुफल का प्रतीक कहा गया है[१४]।

(ख) फल—अष्टछाप-काव्य में ब्रज में उत्पन्न होनेवाले फलों की चर्चा तो है ही 'खुबानी' मेवा आदि उन फलों का भी उल्लेख हुआ है जो दूसरे प्रदेशों में उपजते हैं। स्थूल रूप से इन कवियों द्वारा उल्लिखित फलों को चार वर्गों में रखा जा सकता है—मीठे फल, खट्टे फल, अन्य फल और सूखे फल या मेवा। स्वयं सूरदास ने अशोकवाटिका-प्रसंग में 'मधुर मीठे चार खट्टे' फलों की चर्चा की है[१५]। सूखे फलों का वर्णन करने का वहाँ अवकाश ही नहीं था। अतएव इन सब की चर्चा अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य के भोजन-प्रसंग में ही प्रमुख रूप से की है।

(अ) मीठे फल—इस वर्ग के अंतर्गत अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित जो फल विशेष रूप से आते हैं वे हैं—आम, अनार, ऊख, केला, खरबूजा, खुबानी, तरबूज, बेर, सेब, श्रीफल, सफरी आदि।

'अंब' 'अँबुआ', 'रसाल' आदि नामों से प्रसिद्ध 'आम' भारत का प्रमुख फल माना जाता है। बर्नियर ने भारतीय फलों में 'आम' की बड़ी प्रशंसा की है[१६]। 'आम' प्राचीन काल से ही भारत में पैदा होता रहा है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में फलों के अन्तर्गत इसका उल्लेख है[१७]। सूर ने कृष्ण को प्रिय लगने वाले 'कलेऊ' के फलों की लंबी सूची में 'आम' का नाम सम्मिलित किया है[१८]। परमानंददास

१२ पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार'—सा १-९९।
१३ सेमर-फूल सुरँग अति' निरखत मुदित होत खग-भूप।
परसत चोंच तूल उधरत मुख परत दुःख कैं कूप—सा १ १ २।
१४ क जो तक बबुर' बोल फल चाहत जोवत है फल लागे—सा १-६१।
ख काटहु अंब' बबूर लगावहु' चंदन की करि बारि—सा ७५२१।
१५ अगनित तरु फल सुगंध 'मधुर मिष्ट खाटे'—सा ९ ७६।
१६ एफ बर्नियर ट्रैवेल्स इन दी मुगल एम्पायर' पृ २५१।
१७ डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि'—पृ ११।
१८ करत 'आम ऊख रस सीरा—सा १ २११।

के कृष्ण को 'आम' इतना प्रिय है कि आम बेचनेवाली की आवाज सुनकर वे माता यशोदा से 'आम' दिला देने का हठ करते हैं[६९]। पका आम तो मीठा तथा स्वादिष्ट होता ही है, कच्चे आम से भी अत्यंत स्वादिष्ट अचार तैयार किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूर ने कृष्ण के भोजन में 'आम के अचार' का भी वर्णन किया है[७०]। वसंत के दिनों में 'अँबुआ' के वृक्ष में 'बौर' आने तथा उनकी सुगंध एवं उनके पराग पर लुब्ध भ्रमरों के मँडराने की बात सूरदास ने कही है[७१]। 'आम' अथवा 'अंब' को सूर ने 'सुफल' कहा है जिसे छोड़ कर 'सेमर' का फल कौन पसंद करेगा[७२]?

'अनार' या 'दाड़िम' के फल के भीतर लाल, सफेद या गुलाबी रंग के दाने होते हैं। यह फल मीठा और खट्टा दोनों तरह का होता है, पर मीठा फल ही अधिक रुचि से खाया जाता है। परमानंददास ने एक पद में 'अनार' का उल्लेख किया है[७३]। 'ऊख', 'ईख', 'गन्ना', 'गौंडा' आदि नाम से बताया जानेवाला पौधा भारत में प्राय सर्वत्र होता है। इसके तने में ही 'रस' होता है जिसे कुचल कर 'रस' निकाला जाता है। इसे 'ऊख' या 'गन्ने का रस' कहते हैं। यह पेय अति प्रिय माना गया है। 'ऊख रस' से 'गुड़' और शक्कर तैयार होती है। इसकी खेती भारत में प्राचीन काल से होती आयी है। पाणिनि[७४] और बाणभट्ट[७५] ने 'इक्षु-वन' का वर्णन किया है। 'ऊख' के तने को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर चूसा जाता है इन्हें 'गँडेरी' कहते हैं। सूर के एक पद में हाथी को गन्ना प्रिय

६९ कोउ माइ 'आम' वचन कहा"।
मैया मोहिं आम लै दे री संग सखा सब भाई—परमा ६७१।
७० निबुआ सूरन 'आम' अथानो और करौंदनि की छबि न्यारी।
—सा १०-२४१।
७१ क मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूल—सा १८५४।
ख नव कमल मकरन्द नव रसाल—सा ८४६।
७२ अंब सुफल छाँड़ि कहा सेमर को धाऊँ—सा १.१६६।
७३ चम्पक बकुल गुलाब निवारी 'लाल अनार' सुधारी—परमा ७५।
७४ डा वासुदेवशरण अग्रवाल "इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' पृ १.२.११।
७५ डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'हर्ष' सां अ पृ १८३।

होने की बात का उल्लेख है [७६]। कृष्ण को ऊख का रस' प्रिय था और उनके 'कलेवे' में अन्य फलों के साथ इसे भी सम्मिलित किये जाने की बात सूरदास ने लिखी है[७७]।

'केला' या 'कदली' का फल अत्यंत मधुर और स्वादिष्ट होता है। यह पवित्र भी माना जाता है। कृष्ण के 'कलेवे' में इसको भी स्थान मिलने की बात सभी कवियों ने लिखी है[७८]। आज भी भगवान के भोग में 'केला' ही उन्हें सबसे अधिक प्रिय माना जाता है। 'खरबूजा' भी एक लोक-प्रिय फल है। कृष्ण के कलेवे में 'खरबूजा छील-काटकर धरे जाने की बात सूरदास ने लिखी है[७९]। ताजे फलों के अंतर्गत 'खुबानी' का भी नाम अष्टछाप काव्य में आया है। अकबर के समय में अपने रंग के कारण यह 'अर्द आलू' कहलाता था। सूरदास ने 'अरुण-खुबानी' का उल्लेख किया है[८०]। तरबूज की चर्चा भी इसी प्रसंग में की गयी है[८१]।

उक्त फलों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में बेर,[८२] सेब[८३] श्रीफल[८४] सफरी[८५] या अमरूद आदि का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। इन फलों की चर्चा के संबंध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इनमें से 'अनार' या 'दाड़िम' और 'श्रीफल' का उल्लेख भोज्य पदार्थों के साथ अष्टछापी कवियों ने न करके क्रमश: दाँतों[८६] और उरोजों[८७] के उपमान-रूप में अधिक किया है।

७६. कटु पल्पव कैसें लेवत है दामिनि कैं सँग गाँठि'—सा० १६ ८।
७७. केरा आम 'ऊख-रस' सीरा—सा० १ २११।
७८. केरा' आम ऊख-रस सीरा—सा० १ २११।
७९. छीलि धरे खरबूजा' करा। सीतल बास करत अति भरा—सा० १ ११६।
८०. सफरी बिउरा 'अरुन खुबानी—सा० १ २११।
८१. सफरी सेब छुहारे पिस्ता जे तरबूजा' नाम—सा० १ २१२।
८२. कोउ माइ बेर बेचन आई—परमा० १७४।
८३. सफरी सेब' छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम—सा० १ २१२।
८४. उर्जनि सरोज परसी श्रीफल पर तब अनुमति गई आ—सा० ६८२।
८५. सफरी' सेब छुहारे पिस्ता जे तरबूजा नाम—सा० १ २१२।
८६. क दाडिम दामिनि कुंदकला मिलि बदयो बहुत बखान—लहरी ७ १५।
ख दसन' कै 'दाडिम' दुति बा मनि प्रगटत यह दुरि जा—सा० ११३६।
८७. उर्जनि सरोज परसी श्रीफल पर तब अनुमति गई आइ सा० ६८२।

(आ) खट्टे फल—अष्टछाप काव्य में कुछ खट्टे फलों का भी उल्लेख हुआ है जो प्रायः अचार बनाने के काम आते हैं। इनका उल्लेख तरकारियों के साथ अधिक हुआ है। इनमें इमली', 'आँवला', 'करवैंदा', 'करौंदनि' या 'करौंदा', 'निबुआ', 'निबुआनि' या 'नीबू' प्रमुख हैं। 'इमली' का स्वाद खट्टा और मीठा मिला हुआ होता है। सूरदास की सम्मति में इसके आगे पंचरस भी मात हैं[८८]। 'आँवले' का अचार बड़ी विधि से तैयार किया जाता था। उसमें हींग, हल्दी, मिर्च, तेल अदरख आदि मिलाये जाने की बात सूर ने लिखी है[८९]। 'करौंदे' का अचार भी यत्न से तैयार होता है, जिसे कृष्ण चाव से खाते थे[९०]। 'नीबू' तो अपने गुणों के लिए प्रसिद्ध ही है। इसका अचार भी तैयार होता है जो कृष्ण को अत्यंत रुचिकर बताया गया है[९१]।

(इ) अन्य फल—इस वर्ग में ककड़ी, खीरा, सिंघाड़ा, पेठा कंदमूल आदि रखे जा सकते हैं जो या तो फीके होते हैं या जिनको पकाकर खाया जाता है। 'ककड़ी' पतली मुलायम और स्वादिष्ट होती है। इसको नीबू-नमक के साथ खाते हैं। कोई-कोई ककड़ी 'करुई' निकल आती है। सूरदास ने 'करुई ककरी' की चर्चा एक पद में की है[९२]। ककड़ी की जाति का दूसरा फल है 'खीरा' जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में कई स्थानों पर हुई है[९३]। सिंघाड़े कच्चे खाये जाते हैं और सुखाकर भी। कच्चे सिंघाड़े की तरकारी भी बनती है। आइने अकबरी' में 'सिंघाड़ों का उल्लेख हुआ है[९४]। कृष्ण के कलेवे में प्रस्तुत किये गये फलों में 'सिंघाड़े' भी बताये गये हैं[९५]। 'पेठे' की 'बड़ियाँ' बनती हैं और इसका 'मुरब्बा' भी अच्छा

८८ अरुइहिं इमली दई मराई। मैवत पंचरस अत लजाई—सा १२११।
८९ हींग हरद मिरच छौंके तल अदरख और 'आँवरे' मले—सा ११६६।
९० क विविध भाँति केला करि लीने है करवैंदा' हरदि रंग भीन—सा १२११।
ख राग 'करुना अंब करौंजी—सा परि १५३।
९१ क 'निबुआ' लोन नरु तर सूनी—सा परि १५३।
ग निबुआ' और करौंदनि की रुचि न्यारी—सा १०-२४१।
९२ जब लौ सूर कहति है उपजी सब ककरी करुई—सा १२६६।
९३ सारिक राग लापस खीरा'—सा ? ११।
९४ 'आइने अकबरी पृ १५।
९५ कौंन्दमे नटमिठे सिंघारे—सा परि १५३।

आता है। सूरदास ने कई प्रकार से पेठे के बनाये जाने की बात लिखी है[९६]।
'कंदमूल' का उल्लेख परमानंददास ने किया है[९७]।

(ई) *सूखे फल या मेवे*—जिन सूखे फलों या मेवों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है उनमें किसमिस दाख, छुहारा चिरौंजी, बादाम और खोपरा या 'गरी' और 'पिस्ता' प्रमुख हैं। 'किसमिस' नामक मेवा अंगूर के सुखाने से तैयार होता है। अंगूर के बड़े दाने के सूखने पर वही 'दाख' या 'द्राक्षा' कहलाता है। परमानंद ने इसके लिए 'द्राक्षा' शब्द का प्रयोग किया है[९८]। श्रीकृष्ण के कलेवे में 'खारिक' या छुहारा, 'दाख', किसमिस', खोपरा' या 'गरी' के साथ-साथ 'चिरौंजी' और 'बदाम' का वर्णन भी सूरदास ने किया है[९९]। 'छुहारे' का उल्लेख भी 'दाख' के साथ 'सूरसागर' के ही एक पद में हुआ है । खोपड़ा या 'खोपरा' नारिकेल या नारियल की 'गिरी' को कहते हैं। नारियल जब कच्चा और हरा होता है तो फल के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। यह मरुभूमि में और समुद्र के किनारे उत्पन्न होता है[१]। भीतर से पोला होने के कारण यह मधुर तथा स्वादिष्ट जल से पूर्ण होता है। इसे तोड़ कर जल पी लेते हैं और इसकी कच्ची 'गिरी' खाते हैं। सूरदास ने अपने आराध्य के कलेवे में 'खोपरा'[१] और 'पिस्ता'[२] होने की बात लिखी है।

(ए) *तरकारियाँ और साग*—भोज्य पदार्थों में तरकारियों और सागों (शाक) का भी महत्व खास है, भारतवासियों को यह बहुत पहले से ज्ञात था।

९६ पेठा बहुत प्रकारनि कीन्हे तिनकौं सबै स्वाद हरि लीने—सा १२११।
९७ 'कंदमूल' फल तर मेवा भरी खोर किये सुरबेला—परमा ६८१।
९८ कौन केरा 'द्राक्षा' किन किन साक केरी—परमा २७२।
९९ 'खारिक दाख' चिरौंजी' किसमिस' उज्ज्वल गरी' बदाम।
—सा १ २१२।
रूचो सन लागे की बात।
'दाख' 'छुहारा' छाँड़ि अमृत फल विष कीरा विष खात—सा ४ २१।
१ बाण भट्ट ने विन्ध्याटवी के फलों में 'नारिकेल' का उल्लेख किया है।
—वा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ पृ १८८।
खारिक दाख 'खोपरा' खीरा—सा १ २११।
२ सफरी सेब छुहारे 'पिस्ता' जे तरबूज नाम—सा १ २१२।

इस बात की पुष्टि दैनिक भोजन में इन वस्तुओं की प्रचुरता से होती है। फल और मेवों का आस्वादन अन्य दूरस्थ प्रदेशों से मँगाकर किया भी जा सकता था परन्तु तरकारियों और साग तीन-चार शताब्दी पूर्व किसी प्रदेश में बाहर से मँगाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतएव अष्टछाप-काव्य में उन्हीं तरकारियों और सागों का उल्लेख है, जो ब्रज प्रदेश की भूमि की देन रही हैं।

(अ) *तरकारियाँ*—इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा अपने काव्य में वर्णित ये तरकारियाँ आती हैं—अगस्त की फली या 'फरी', अदरख, अरुई या 'अरुहि' ककोरा कचनार, करेला कद्दुआ या कुम्हड़ा कुन्दरू या कुँदरू, कचरी या कचरिया चिचिंडी या चिचिंडा खीरा, टेंटी, ढेंड़स, परवल या 'परवर' पाकर की फली, पिंडारू, भंटा भाँटा या बैंगन, भिंडी, मूली या 'मूरी', रतालू, सैम, सूरन आदि। इनका संक्षिप्त सोदाहरण परिचय नीचे दिया जाता है।

'अगस्त' नाम का एक वृक्ष होता है, जिसके फूल तरकारी बनाने के काम आते हैं। सूर ने इस फूल को 'फरी' कहा है क्योंकि यह आकार में सैम या मटर की फली से मिलती जुलती है। प्रायः इसे बेसन में लपेट कर तल लेते हैं। सूर का तात्पर्य इसी से है। उन्होंने इसका स्वाद अमृत के समान बताया है[४]। 'अदरख' के पौधे की जड़ खायी जाती है। उसके छोटे-छोटे टुकड़े काट कर तरकारियों के साथ मिलाकर खाए जाते हैं। अचार और चटनी के साथ भी इसका प्रयोग होता है। सूरदास ने नींबू के साथ 'अदरख' के खाये जाने का स्वाद अच्छा बताया है[५]।

'अरुहि' 'अरुई' या 'अरवी' भूमि के भीतर होती है। इसकी तरकारी भी कई प्रकार से तैयार की जाती है। सूर ने इमली की खटाई के साथ 'अरुई' को बनाने का उल्लेख किया है[६]। ककोड़े परवल को ककोरा कहते हैं। इसकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट बनती है। सूर ने इसकी भी गिनती तरकारियों में की है[७]।

४ फूल करील फली पाकर नम। 'फरी अगस्त' करी अमृत सम—सा १२११

५. 'अदरख' अरु निबुआनि है है रुचि—सा १२११।

६ 'अरुहि' इमली डारी भाटा"—सा १२१३।

७ कुन्दरू और ककोरा' कौरे—सा १२११।

कचनार वृक्ष का फूल तरकारी बनाने के काम आता है। सूर ने कृष्ण के भोजन में इसकी तरकारी का उल्लेख किया है[8]।

'करेला'[9] खाने में कड़ुवा होता है। इसकी भी तरकारी बना कर खायी जाती है। कड़ुवाहट दूर करने के लिए इसके ऊपरी भाग को छील कर उस पर नमक मलते हैं फिर उसे घी में तल लेते हैं। सूर ने इसका उल्लेख करते हुए बताया है कि 'करेले' में नमक लगाकर तुरंत तल लेने से वे बहुत अच्छे बनते हैं[10]। 'कदुआ' या 'कुम्हड़ा' 'सीताफल' भी कहलाता है। यह प्रत्येक ऋतु में पैदा होता है। यह आकार में काफी बड़ा होता है। इसकी तरकारी बनती है और इसे पेठे की तरह शक्कर में पागा भी जाता है। 'कदुआ' को शक्कर के साथ घी में पागे जाने का उल्लेख सूर ने किया है[11]। एक ही खेत में धनिया, धान और 'कुम्हड़े' उत्पन्न न हो सकने की बात एक पद में सूर ने कही है[12]। उपमान के रूप में भी 'कुम्हड़े' या 'कुष्मांड' का प्रयोग किया गया है। गोपियाँ योग के सिद्धांतों को ग्रहण करने में उसी प्रकार असमर्थ हैं जैसे बकरी के मुँह में 'कुष्मांड' नहीं समाता[13]।

'कुनरू'[14] परवल के आकार का होता है और बेल में लगता है। हरे 'कुनरू' की तरकारी कई प्रकार से बनती है जो खाने में स्वादिष्ट होती है। पकने पर यह लाल रंग का हो जाता है, जिसे 'बिंबा' फल कहते हैं। 'ककोरा' के साथ 'कुनरू' की तरकारी का उल्लेख अष्टछाप काव्य में हुआ है[15]। 'कचरी'

८ कचरी कचरी अरु कचनारयौ—सा० [illegible]।

९ करेला का उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी है। उसमें करेले का भाव प्रति [illegible] दाम दिया हुआ है—पृ० १०७-१८।

१० भले बनाए करेला कीने लौन लगाई तुरत तल लीने—सा० १८३१।

११ कदुआ करत मिठाई घृत पाक—सा० ८२२।

१२ गृहवाल मीनी नहिं उपजत धनियाँ धान कुम्हड़े—सा० ३९४।

१३ जोग ठगौरी कुष्मांड जैसी अजा मुख न समाय—सा० ६ ।

१४ आइने अकबरी में इसका मूल्य [illegible] दिया गया है—पृ० १२६।

१५ [illegible] —सा० ३।

या 'कचरिया' की तरकारी का उल्लेख परमानंददास[१६] और सूरदास[१७] ने किया है। यह ककड़ी की तरह की होती है। श्रीकृष्ण को यह इतनी प्रिय है कि वह नंद बाबा से स्वयं वन जाकर 'कचरिया' ढूँढ़ लाने का आग्रह करते हैं। 'चिचिंडी' या 'चिचिंडा'[१८] ककड़ी की जाति की तरकारी है, परन्तु यह लंबाई तथा मोटाई में ककड़ी से बड़ा होता है। अष्टछापी कवियों ने तरकारियों में इसका भी उल्लेख किया है[१९]। 'खीरे' की चर्चा 'फल' के अंतर्गत पीछे हो चुकी है, सूरदास ने 'खीरे' की तरकारी को इतना अच्छा बताया है कि जिसे खाने की रुचि न हो, वह भी इसे बड़ी रुचि के साथ खाता है[२१]।

'टेंटी' का फल ब्रज में पायी जानेवाली करील की लकड़ी में लगता है। वहाँ के लोग इसकी तरकारी बना कर खाते हैं। सूरदास ने टेंटी को छीलकर तरकारी बनाने की बात कही है[२२]। टेंटी अथवा करील के फल का उल्लेख उद्धव-गोपी-संवाद में भी हुआ है और इसे कमल से हीन बताया गया है[२३]। 'करील के फूल' की सब्जी बनायी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है[२४]। 'देहस' का उल्लेख टेंटी के साथ हुआ है[२५]। 'परवल' का नाम भी तरकारियों में गिनाया गया है[२६]।

१६ क और भावे चाहे सेव कचरिया लाओ बना बन हेर—परमा १ ११।
ख कचरिया मुकचन की करी मु जेना बहु भाव—परमा २७२।

१७ 'कचरी चाव चिचींडा खीरे—सा १२११।

१८ 'आइने अकबरी में चिचिंडी' को 'चैचिंडा' नाम दिया गया है। फल वाली सूची में तरकारियाँ पका कर खाये जाने वाले फलों का नाम से दी गयी हैं—पृ ११७।

१९ क. कनकौरा पिडीक चिचींडी'—सा १६६।
ख कचरी चाव चिचींड़ा खीरे—सा १२१३।

२ 'आइने अकबरी' में खीरे' और ककड़ी के प्रचार का भी वर्णन है।
—पृ १२१।

२१ खीरा' रामतरोई तामें। अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामें—सा १२११।

२२ 'टेंटी टेंडस छीलि कियो पुनि—सा १२११।

२३ छाँड़ि मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल भावे—सा १ १६८।

२४ 'फूल करील' कली पाकर नम—सा १२११।

२५ टेंटी 'टेंडस' छौंकि कियो पुनि—सा १२११।

२६ पोई 'परवर' फाँग करी पुनि—सा १२१२।

'पाकर' या 'पकरिया' का वृक्ष 'गूलर' के समान होता है। इसकी कली का साग तैयार किये जाने की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है[२७]। 'पिंडार' सकरकंद' का ही एक प्रकार है। 'आइने अकबरी'[२८] में इसका नाम मिलता है। इसकी बेल के पत्ते पान के आकार के होते हैं। इसकी जड़ खोद कर निकाल लेते हैं और उसे पका कर तरकारी बनाते हैं। सूरदास ने इसका उल्लेख किया है[२९]। 'भँटा' 'भाँटा' या 'बैंगन'[३०] की तरकारी कई तरह से बनाई जाती है; इसका बना हुआ 'भरता' भी स्वादिष्ट होता है। इसे आग में रखकर भून लेते हैं, फिर ऊपर का छिलका निकाल कर गूदे को मसल कर भरता बनाते हैं। सूरदास ने 'भँटे' के भरते' में खटाई मिलाने का उल्लेख किया है[३१]। परमानंद दास[३२] ने कई शाकों के साथ बैंगन'[३३] के 'भुरता' के तैयार किये जाने की बात कही है।

भिंडी की तरकारी भी कई विधियों से तैयार की जाती है। भिंडी कड़ी हो जाने पर बेकार हो जाती है; मुलायम रहने पर अच्छी बनती है। इसीलिए सूर ने कोमल भिंडी की तरकारी बनाये जाने की बात कही है[३४]। 'मूरी' या 'मूली'[३५] का उल्लेख सब्जियों में नहीं है। 'उद्धव-गोपिका-संवाद' में सूरदास ने मूरी' के पत्तों का उल्लेख किया है[३६]। मूली' की फली सिंगरी के नाम से सूर ने गिनायी है[३७]। 'रतालू' देखने में सुन्दर होता है। सूर ने इसे घी या तेल में तल कर

२७ फूल करील 'कली पाकर नम—सा १ ११।
२८. आइने अकबरी पृ. १३६।
२९ सीप पिंडारू' कोमल भिंडी—सा ३९६।
३० आइने अकबरी में भी बैंगन का उल्लेख है—पृ १३६।
३१ भरता भँटा' खटाई दीनी—सा १२११।
३२. बैंगन 'भुरता शाक कई बहु भाँति बनाये—परमा २०२।
३३ बैंगन' भारत की प्राचीन तरकारियों में से है। इसकी चर्चा 'हर्ष-चरित म बैंगन नाम से है—दे वासुदेव शरण अग्रवाल हर्ष सां अ पृ १८१।
३४ सीप पिंडारू' कोमल भिंडी— सा ३९६।
३५. 'आइने अकबरी में अचारों तथा शाकभाजी की सूचियों में 'मूली' का नाम भी आया है—पृ १९९।
३६ मूरी के पातनि क बदलें को मुक्ताहल देहै—सा ३६६४।
३७ सेम सींगरी छौंकि धरी—सा १२११।

गर्म-गर्म खाने का उल्लेख किया है[३८]। परमानददास ने भी इसका नाम लिया है[३९]।

सेम की लता में सेम की फली लगती है। इसकी तरकारी बनती है और इसका अचार डाला जाता है। सूर ने इसको 'छौंक कर बनाने की बात कही है[४०]। 'सूरन' अथवा 'जिमीकंद' जमीन के भीतर उत्पन्न होता है। इसे कच्चा खाने पर मुँह में किनकिनाहट उत्पन्न हो जाती है। परमानंददास ने इसके साथ इमली की खटाई मिलाकर तरकारी बनाने का उल्लेख किया है[४१]। सूरदास ने भी 'सूरन[४२] की चर्चा की है[४३]।

इन सबके अतिरिक्त 'लहसुन का भी उल्लेख सूरदास ने एक पद में किया है। इसकी चर्चा साग-तरकारियों के साथ नहीं की गयी है। इसका प्रयोग वैष्णव लोग नहीं करते संभवतः इसीलिए अष्टछाप के कवियों ने 'लहसुन' की उपेक्षा की है। यह दुर्गंधयुक्त होता है। कपूर की तुलना में 'लहसुन' का महत्व ठीक उसी तरह नहीं है, जैसे हंस की तुलना में काग का[४४]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त तरकारियों के नामों में 'कटहल' का अभाव खटकता है। यह प्राचीन काल में भी प्रचलित था[४५]। नंददास ने 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में 'पनस' या कटहल के पेड़ का उल्लेख किया है,[४६] परन्तु अन्य

३८. सुन्दर रूप रतालू' तातौ तरि-तरि लीन्हों मगही तातो—सा १२११।
३९. अरबी रतालू जिमीकंद इमली जु मिलाइ—परमा २७२।
४० सेम' सींगरी छौंकि बनाई—सा १२११।
४१ अरबी रतालू जिमीकंद' इमली जु मिलाइ—परमा २७२।
४२ बाणभट्ट ने हर्ष चरित' में सूरनकंद का उल्लेख किया है।
—डा वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्ष सां अ, पृ १८१।
४३ 'सूरन करि तरि सरस तोरई—सा १ ११।
४४ जैसे काग हंस की संगति 'लहसुन संग कपूर—सा ११५२।
४५. क 'हर्ष-चरित' में वर्णित बिन्ध्याटवी के वृक्षों में 'कटफल अर्थात् कटहल भी है—डा वासुदेव शरन अग्रवाल हर्ष सां अ पृ १८६।
ख आइने-अकबरी में हिन्दुस्तानी मीठे फलों के अन्तर्गत कटहल का उल्लेख है—पृ ११५।
४६. नूत प्रयाल चंदन निंब अरु अंब पनस द्रुम—नंद सिद्धा पृ १८८।

कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया है। आज भी कटहल उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में कम उत्पन्न होता है। संभवतः ब्रजप्रदेश में कम होने के कारण इसका उल्लेख नहीं हुआ है।

उक्त तरकारियों के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों ने अन्य तरकारियों का भी उल्लेख किया है, जिनमें पिंडीक,[४७] फाँगी[४८] बनकौरा[४९] रामतोरई,[५०] सहिजन के फूल[५१] आदि हैं।

ख साग[५२]—हरे पत्तों की बनी हुई तरकारी को 'साग' कहते हैं। इसके लिए 'शाक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है[५३]। सूरदास ने विभिन्न प्रकार के सागों का उल्लेख भोजन-प्रसंग में किया है जिनमें चौराई, चने, मरुसे, सरसों मेथी सोवा पालक पोई लाल्हा आदि के साग प्रमुख हैं[५४]।

'चौराई' एक छोटे पौधे के पत्तों का साग है। यह कई प्रकार का होता है यथा—कटीला हरा लाल। कई प्रकार के पत्तों की 'चौराई' होती है। 'चौराई' को अन्य सागों के साथ मिलाकर और नींबू का रस उसमें निचोड़ कर खाने का उल्लेख हुआ है और इसे लाल्हा' तथा पोई के साथ मिलाने की बात कही गयी है[५५]। 'चने' और 'मरुसा' के साग बनाने का भी उल्लेख हुआ है[५६]। इसी प्रकार

४७ बनकौरा 'पिंडीक' चिचिंडी—सा १६६।

४८. रुचिर लसाहु लोनिका 'फाँगी'—सा १६६।

४९ बनकौरा पिंडीक चिचिंडी—सा १६६।

५० तोरा 'राम तरोई' तामें, कबिनि रुचि अंकुर मिर जामें—सा १२११।

५१ फूले 'फूल सहिजना छौंके—सा १२११।

५२. 'आइने अकबरी' में साग' नामक एक व्यंजन की भी चर्चा जो पालक सोवा तथा अन्य सागों म घी प्याज, अदरख कालीमिर्च लौंग इलायची आदि डालकर बनाया जाता था—पृ १७।

५३ शकरकंद मीठो, 'शाक रुचिर परबो बनाई—परमा २७२।

५४ 'आइने अकबरी में सोया पालक पोदीना जीरू पोई चूका बथुआ चौलाई आदि सागों के नाम आये हैं—पृ १२१।

५५. चौराई लाल्हा अरु 'पोई' मध्य मेलि निबुआनि निचोई—सा १६६।

५६ साग चना मरुसा 'चौराई—सा १२११।

'सरसों' मेथी', 'सोवा', 'पालक', 'पोई' और 'लाल्हा' आदि सागों की चर्चा सूरदास ने की है[५७]।

(म) फूल—अष्टछाप-काव्य में साग-तरकारियों के समान मुख्यतः उन्हीं फूलों की चर्चा है, जो ब्रजप्रदेश में पैदा होते हैं। अष्टछापी कवियों की विशेषता यह है कि मथुरा, द्वारका अथवा अयोध्या के उपवनों या वाटिकाओं में उपजाये जानेवाले फूलों की चर्चा में उन्होंने इतनी रुचि नहीं ली है, जितनी ब्रज के वन-उपवनों में पैदा होनेवाले फूलों में अस्तु। अष्टछाप-काव्य में 'पुष्प' शब्द के लिए कई पर्यायों का प्रयोग हुआ है; जैसे फूल[५८], पुहुप,[५९] कुसुम[६०] आदि।

अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में जिन फूलों की चर्चा विशेष रूप से की है, उनमें प्रमुख ये हैं—अतिसी, कमल, कदंब, कनिआरी, कनेल, करीर, करना, कुमुद, कुमुदिनी, कर्णिकार, केतकी, केवड़ा कुरंक, कूजा, गुलाब, चंपा, चमेली, जूही टेसू, निवारी, पाटल, बंधूक, बकुल, मल्लिका, माधवी, मालती, मौलसिरी, सेवती, मैमर आदि। इन नामों में से कुछ एक दूसरे के पर्याय भी हैं; परंतु सामान्य पाठक उनको स्वतंत्र समझता है। अतएव प्रत्येक की चर्चा स्वतंत्र रूप से करना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

अतिसी का फूल उन पुष्पों में है जिसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में बहुत कम हुई है[६१]। 'कमल' के लिए उसके अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है यथा अरविंद, अंबुज, अंभोज, इंदीवर, कंज, कुकंज, कुसेसय, जलजात, जलरुह, जलज पंकज पदुम, राजीव वारिज, सरोज आदि। कमल अनेक रंग के होते हैं। लाल रंग का कमल भारत के प्राय सभी भागों

५७ क. सरसों मथी सोवा 'पालक'—सा १६६।
ख 'चौराई' 'लाल्हा' अरु 'पोइ'—सा १६६।
५८. 'फूल' के अंग 'फूल की चोलरि' फूलनि बनी है गुरेस तिवारी।
—चतु ६६।
५९ क पहिरावत उर 'पुहुपन' दाम—चतु ५२।
ख पुहुप पान नाना फल मेवा षटरस अर्पन कीन्ही—सा १७६८।
६० ताको कुंजनि कुसुम' बिनावै—परमा ८५५।
६१ 'अतिसी कुसुम कलेवर बूँदै प्रतिबिंबित निरधार—सा ११५२।

कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया है। आज भी कटहल उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में कम उत्पन्न होता है। संभवतः ब्रजप्रदेश में कम होने के कारण इसका उल्लेख नहीं हुआ है।

उक्त तरकारियों के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों ने अन्य तरकारियों का भी उल्लेख किया है, जिनमें पिंडीक,[४७] फोंगी,[४८] बनकौरा,[४९] रामतोरई,[५०] सहिंजन के फूल[५१] आदि हैं।

ग. *साग*[५२]—हरे पत्तों की बनी हुई तरकारी को 'साग' कहते हैं। इसके लिए 'शाक' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है[५३]। सूरदास ने विभिन्न प्रकार के सागों का उल्लेख भोजन-प्रसंग में किया है जिनमें चौराई, चने, मरसे, सरसों, मेथी, सोवा पालक, पोई, लाल्हा आदि के साग प्रमुख हैं[५४]।

चौराई एक छोटे पौधे के पत्तों का साग है। यह कई प्रकार का होता है, यथा—कटीला हरा, लाल। कई प्रकार के पत्तों की 'चौराई' होती है। 'चौराई' को अन्य सागों के साथ मिलाकर और नींबू का रस उसमें निचोड़ कर खाने का उल्लेख हुआ है और इसे 'लाल्हा' तथा 'पोई' के साथ मिलाने की बात कही गयी है[५५]। 'चने' और 'मरसा' के साग बनाने का भी उल्लेख हुआ है[५६]। इसी प्रकार

४७ बनकौरा 'पिंडीक' चिचिंडी—सा १८६।

४८ रुचिर लसत तोरिया 'फोंगी'—सा १८६।

४९ बनकौरा पिंडीक चिचिंडी—सा १८६।

५० तोरई राम तरोई तामें, ... —सा १०११।

५१ फूले फूल सहिंजना छौंक—सा १०११।

५२ आईन अकबरी में साग नामक एक व्यंजन की भी चर्चा है जो पालक, सोवा तथा अन्य सागों में घी प्याज अदरक कालीमिर्च लौंग इलायची आदि डालकर बनाया जाता था—पृ ६७।

५३ शकरकंद मीठो 'शाक' रुचिर परसौ बनाई—परमा २७०।

५४ आईन अकबरी में सोवा पालक पोदीना और पोई मूली बथुआ, चौराई आदि सागों के नाम आये हैं—पृ ६२६।

५५ चौराई लाल्हा अरु पोई मध्य मेलि निबुआनि निचोई—सा १८६।

५६ साग चना मरसा चौराई—सा १२११।

उन कवियों ने लिखी है। 'कमल' पर भ्रमिगण की भीड़[७१] का उल्लेख क्षीरस्वामी ने किया है। 'कंज' अथवा 'कमल' के आसन की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है[७२]।

'कदंब' ब्रजप्रदेश का मुख्य फूल है जिसकी चर्चा प्रकृति-वर्णन-प्रसंग में की गयी है[७३]। 'कनियारी' भी प्रमुख फूलों में है[७४]। 'कुंद' का फूल सफेद रंग का होता है और बहुत बड़ी संख्या में फूलता है[७५]। अगहन-पूस इसके फूलने का समय है। सफेद होने के कारण 'कुंद' दाँतों का उपमान भी है। मेघदूत' में कालिदास ने कुंद पुष्प से अलंकृत केशराशि का वर्णन किया है[७६]। 'कनेर' का पुष्प पीले अथवा लाल रंग का होता है। सूर ने प्रमुख फूलों में इसकी गणना की है[७७]। 'कनीर'[७८] और 'करना'[७९] का उल्लेख भी अन्य पुष्पों के साथ हुआ है। 'कुमुद' और 'कुमुदिनी', दोनों फूल कवियों को कमल के समान ही प्रिय रहे हैं। कृष्णदास के अनुसार कुमुद-कुमुदिनी, दोनों चंद्रमा को देखकर रात्रि में फूलते हैं[८०]।

'करनिकार' या 'कर्णिकार' का पुष्प लाल, पीले और सफेद रंग का होता है। कविप्रसिद्धि के अनुसार वह पद्मिनी स्त्रियों के मुख्य से पुष्पित होता है[८१]।

७१ पंकज' पर मानो आए मधुप बारिकैं—क्षीर ११४।
७२ प्रतिचरन मनु हेम बसुधा देति आसन 'कंज'—सा १ २१८।
७३ क कहि धौं 'कदंब' बकुल बट चंपक ताल तमाल—सा १०९११।
ख कुंज, 'कदंब' सुदेस तमाल—गोविं १ ६।
७४ जाही जुही सेवती करना 'कनियारी'—सा १ १५।
७५ फूली बनराजि आइ 'कुंद' कुसुम बोरे—गोविं १ ६।
७६ मेघदूत उत्तर मेघ, श्लोक २।
७७ तहाँ कमल कमरा फूले केवकी 'कनेर' फूले—सा २६१७।
७८ कुल कदंब करनि कनीर' मिलि भ्रमक हौ—सा २६ १।
७९ जाही जुही सेवती 'करना' कनियारी—सा १ १५।
८० क सरद्धुन मलदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद 'कल्हार'।
—कृष्ण गीम, पृ ७८।
ख तु ब्रज सर की 'कुमुदनी' हरि वृन्दावन चंद—कृष्ण भाम, पृ ४६।
८१ 'कालिदास' मल्लिनाथ टीका उत्तर मेघ २ श्लोक १५।

में पाया जाता है। अंबुज शब्द लाल कमल के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्वेत कमल या पुंडरीक काशी के आस-पास तथा नील कमल अथवा 'इंदीवर' या 'राजीव' तिब्बत और चीन में होता है। पीला फूल अमरीका और जर्मनी में भी होता है।

भारतीय संस्कृति में 'कमल' अपनी कमनीयता और कोमलता के कारण बहुत मान पाता रहा है और भारतीय ललित कलाओं में भी उसे स्थान मिला है। काव्य में 'कमल' का प्रयोग मुख, नेत्र, हाथ, पैर आदि शरीरांगों के उपमान रूप में हुआ है। अष्टछापी कवियों ने भी 'कमल' का उल्लेख मुख्यतः इसी रूप में किया है। सूरदास ने राधा के कोमल हाथों की तुलना 'अंबुज' से[५२] और कृष्ण के पैरों की तुलना 'पदुम' से की है[५३]। मुख की तुलना भी 'सरोज' से की गयी है[५४]। साँवले रंग के कृष्ण के बड़े-बड़े नेत्र अष्टछाप-काव्य में 'वारिज' के समान बताये गये हैं[५५]।

उपमान-रूप में प्रयोग के अतिरिक्त 'कमल' का वर्णन और भी कई प्रकार से अष्टछाप-काव्य में हुआ है। कमल की माला कृष्ण धारण करते हैं[५६]। शुद्ध प्रकृति-वर्णन में 'जलज', 'इंदीवर', 'राजीव', 'कुमेमे', 'मुकंद' आदि का प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया है[५७]। 'कमल' के संबंध में प्रचलित परंपरागत विश्वासों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए सूर्य के उदय होने पर 'जलजात' के खिलने[५८], 'जलरुह' का चंद्रमा से बैर होने,[५९] रात में कमल के मुंदने पर 'अलि' तथा 'अरविंद' का मिलन होने[६०] की बात

५२ श्री राधा अंबुज-कर [illegible] भरि भरि छिरकत बारंबार—सा० ३१५६।

५३ [illegible] 'पद-पदुम रमत वृन्दावन [illegible] सिर धरि अगनित रिपु मारे—सा० १०९४।

५४ [illegible] मंद मुसकनि [illegible] सरोज-मुख सोभा बरनि न जाइ—सा० १८७५।

५५ साँवरो ढोटा को है माई वारिज नैन बिसाल—सा० १८७८।

५६ कंठ बनमाल नीलमनि [illegible] माल [illegible]—सा० १[illegible]१६।

५७ [illegible] फूल [illegible] जलज, मुकंद, 'इंदीवर', 'राजीव' [illegible]।

—नंद[illegible] रूप [illegible], पृ० [illegible]।

[illegible] मुंदत [illegible] बीथिन [illegible] मुकंद—सा० ३११४।

५८ [illegible] भोर [illegible] जलजात [illegible] रंग भीन दी—सा० ४८११।

५९ [illegible] जलरुह तजि बैर मिलन [illegible]—सा० १०६०।

६० [illegible] मूँदत [illegible] मिलाप [illegible] मिले 'अरविंद'—सा० ३३०१।

है[११]। 'गुलाब' विदेशी फूल है जो मुगलों के भारत में आने पर लोकप्रिय हो गया। अष्टछाप के कवियों ने इसका वर्णन किया है, परन्तु 'गुलाब' को उन्होंने 'कमल' अथवा 'कुमुद' जैसा महत्व नहीं दिया है। अन्य फूलों के साथ 'गुलाब' की चित्रसारी में सजाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है[१३]। चतुर्भुजदास ने भी गुलाब का उल्लेख किया है[१४]।

'चंपक' अथवा 'चंपे' का फूल भारतीय पुष्पों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसका उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी हुआ है[१५]। कवि प्रसिद्धि के अनुसार 'चंपा' पद्मिनी स्त्रियों के हास्य से पुष्पित होता है[१६]। एक दूसरी कवि-प्रसिद्धि यह है कि चंपे के फूल पर भौंरा नहीं बैठता[१७]। सूरदास ने भी भौंरे को 'चंपक' न रुचने की बात कही है[१]। एक अन्य पद में सूरदास ने 'नासिका' की तुलना 'चंपक-कली' से की है[११]। छीतस्वामी, परमानंददास, कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने भी पुष्प-वर्णन में चंपक का उल्लेख किया है[१]। 'चमेलि' अथवा 'चमेली' के फूल का नाम भी अष्टछाप-काव्य में आया है। संस्कृत में इसे 'जाही' अथवा मालती' कहते हैं[१]। सूरदास ने सामान्य चमेली का[१] और परमानंददास ने

९२ जूमैं मरवौ मोगरौ मिलि मूमक हो—सा २६ १।
९३ चंपक बकुल 'गुलाब' निवारी नीकी है चित्रसारी—गोविं १७५।
९४ चंपौ फूलौ फूल्यौ निवारौ नव गुलाब अरु जाई—चतु २१४।
९५ आइन अकबरी पृ १ ।
९६ 'कालिदास' मल्लिनाथ टीका उत्तरमेघ, श्लोक १५।
९७ चम्पा' प्रीति न भौरहिं दिन दिन आगरि बास।
—वा वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मा सं व्या २७-२१।
९८ जोग हमहिं ऐसो लागत ज्यों तुहिं चंपे को फूल—सा ४१४६।
९९ नासिका चंपक कली की आली भावे—सा १ ७३।
१ क चंपक बकुल गुलाब क सौंधे सिंधु तरंग—छीत ५७।
ख '[illegible]' बकुल गुलाब निवारी लाल अनार सुधारी—परमा ७५।
ग. नीम और प्रवाल 'चंपक बकुल अम्बू कदंब—कु मन १२।
घ कुरबक बकुल मालती चंपौ केवकी, नवल निवारे—कुंमन ८१।
ङ पुर्वक बकुल बेली घन 'चंपौ कुसुमनि रस संचत—गोविं १२।
१ कालिदास मल्लिनाथ टीका उत्तरमेघ श्लोक १५।
२. क फूले चंपक, 'चमेलि' फूलि लवंग लता बलि—सा २११७।
ख घनि चमेली' मालती भूमति द्रुम डारी—सा १ १५।

कालिदास ने पार्वती के केशों में 'कर्णिकार' के गुँथे होने का वर्णन किया है[८२]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार संस्कृत का 'कर्णिकार' हिंदी का 'अमलतास' है और 'कनेर' से भिन्न फूल है[८३]। 'आइने अकबरी' में 'कर्णिकार', को बहुरंगा बताया गया है तथा जो इसे सर पर धारण धारण कर लेता है वह बहकने लगता है[८४]। 'केतकी' का फूल सफेद होता है और कुँआर में फूलता है। इसका वर्णन सूरदास, चतुर्भुजदास, गोविंदस्वामी आदि ने किया है[८५]। 'केवड़ा या 'केवड़ा' बड़ी अच्छी सुगंध का फूल है। इसका इत्र तैयार किया जाता है, जो लगाने तथा खाने के काम आता है। अबुलफजल ने कपड़ों को सुगंधित करने के लिए सूखा 'केवड़ा' रखने का उल्लेख किया है[८६]। चतुर्भुजदास[८७] और सूरदास[८८] ने सुगंधित पुष्पों के साथ केवड़े का वर्णन किया है।

प्रकृति-वर्णन में 'कुरवक' अथवा 'कुर्बक' पुष्प का नाम कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने लिया है[८९]। 'कूजा' का उल्लेख सूर ने किया है[९०]। 'आइने अकबरी' में यह गुलाब के समान बताया गया है। सम्भवतः यह 'मोतिया' या 'बेले' का ही नामान्तर है। कहीं-कहीं सूरदास ने 'सुमौ' पुष्प का नाम लिया

८२ क 'कुमार सम्भवम्' तृतीय सर्ग, श्लोक ५५।
ख 'कुमारसंभवम्' तृतीय सर्ग श्लोक ६२।
८३ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ २१।
८४ 'आइने अकबरी' पृ १२१।
८५ क. फूल 'केतकि' करनि कनीर मिलि झूमक हो—सा २६ १।
ख 'केतकि' कनेल फूले सेवन हित फूल बोल—सा १६१७।
ग जूही जई केसरी 'केतकी' सौरभ सरस परम रुचिकारी—चतु १।
घ केतकी मालती बँधायी—गोविं १ २।
८६ 'आइने अकबरी' पृ १७८।
८७ जूही जई केसरी केतकी सौरभ—चतु १।
८८ तहाँ कमल 'केवरा' फूले हो—सा १६१।
८९ क कुरवक बकुल मालती चंपो केतकी नवल निवारे—कुंभन ८१।
ख कुर्बक बकुल बेली बन चंपो कुसुमनि दाम सँवारत—गोविं ११०।
९० कूजा मरुवा कुन्द सो कहैं गोद पसारी—सा १ १५।
९१ 'आइने अकबरी', पृ २०१।

है[१२]। 'गुलाब' विदेशी फूल है जो मुगलों के भारत में आने पर लोकप्रिय हो गया। अष्टछाप के कवियों ने इसका वर्णन किया है, परन्तु 'गुलाब' को उन्होंने 'कमल' अथवा 'कुमुद' जैसा महत्व नहीं दिया है। अन्य फूलों के साथ 'गुलाब' को चित्रसारी में सजाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है[१३]। चतुर्भुजदास ने भी गुलाब का उल्लेख किया है[१४]।

'चंपक' अथवा 'चंपे' का फूल भारतीय पुष्पों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसका उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी हुआ है[१५]। कवि प्रसिद्धि के अनुसार 'चंपा' पद्मिनी स्त्रियों के हास्य से पुष्पित होता है[१६]। एक दूसरी कवि-प्रसिद्धि यह है कि चंपे के फूल पर भौंरा नहीं बैठता[१७]। सूरदास ने भी भौंरे को 'चंपक' न रुचने की बात कही है[१८]। एक अन्य पद में सूरदास ने 'नासिका' की तुलना 'चंपक-कली' से की है[१९]। छीतस्वामी, परमानंददास कुंभनदास और गोविंदस्वामी ने भी पुष्प-वर्णन में चंपक का उल्लेख किया है[१]। 'चमेलि' अथवा 'चमेली' के फूल का नाम भी अष्टछाप-काव्य में आया है। संस्कृत में इसे 'जाही' अथवा मालती कहते हैं[२]। सूरदास ने सामान्य चमेली का और परमानंददास ने

९२ लूमी मरुवौ मोगरौ मिलि झूमक हो—सा २६ १।
९३ चंपक बकुल 'गुलाब निवारी नीकी है चित्रसारी—गोविं १४५।
९४ चंपो फूली फूल्यो निवारी नव गुलाब अरु जाइ—चतु २१४।
९५ 'आइन अकबरी १ १ ।
९६ कालिदास मल्लिनाथ टीका, उत्तरमेघ श्लोक १५।
९७ 'चम्पा' प्रीति न भौरहि दिन दिन आगरि बास।
—वा वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मा० सं० व्या० २७-२२।
९८ औगु इमहिं ऐसो लागत ज्यों तुहि चंपे को फूल—सा ४१४६।
९९ नासिका चंपक कली कौं अली भावे—सा १ ७६।
१ क चंपक बकुल गुलाब के सौंधे सिंधु तरंग—छीत ५७।
ख चम्पक बकुल गुलाब निवारी लाल अनार सुपारी—परमा ७५।
ग. नीम और प्रबाल चंपक बकुल अम्बु बौर—कुं मन १२।
घ कुरबक, बकुल मालती चंपौ केतकी नवल निवारे—कुंभन ८।
ङ कुर्बक बकुल बेली पन चंपौ कुसुमनि दल संपत—गोविं १२।
१ कालिदास, मल्लिनाथ टीका 'उत्तरमेघ' श्लोक १५।
२. क फूले चंपक, 'चमेलि' फूलि तरंग लता बलि—सा २६१७।
ख बेलि चमेली मालती चूमति द्रुम डारी—सा १ ६५।

पीली चमेली' तथा उसकी सुगन्धि का वर्णन किया है[३]। 'जूई' या 'जाही' का फूल सामान्यतया श्वेत रंग का होता है। अबुलफ़ज़ल ने इसके तिमाला फूलने तथा बेल के पेड़ में लिपट जाने का वर्णन किया है[४]। जूही' का फूल भी उपयुक्त फूलों के साथ अष्टछाप-काव्य में वर्णित है[५]।

टेसू' का सुंदर फूल पलाश' वृक्ष में पैदा होता है। यह लाल रंग का होता है। जिस समय 'टेसू' फूलता है, ऐसा जान पड़ता है मानो वन में आग लगी हुई हो। सूर ने 'टेसू' के फूलों से सुशोभित वन का वर्णन किया है[६]। निवारी' के फूल का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने अन्य फूलों के साथ किया है[७]। अबुल-फ़ज़ल ने बताया है कि इसका फूल एक पत्ते का होता है और 'रायबेलि' से ही मिलता-जुलता है। इसमें एक साथ इतने अधिक फूल आते हैं कि पौधे ढक जाते हैं[८]।

पाडल' पाँडर या 'पाडल' पुष्प 'गुलाब' का ही भारतीय नाम है। इसका उल्लेख सूरदास और चतुर्भुजदास के पदों में हुआ है[९]। 'बंधूक' के फूल का

३ 'पीत चमेली चित को चोरत रायबेलि महकारी—परमा ७५।

४ 'आइने अकबरी' पृ १७६।

५. क जाही जूही सेवती करना कनियारी—सा १९५।

 ख 'जूही' जई' केवरो केतकी—चतु १।

 ग 'जूही जई केवरी कूजी रायबेलि महकारे—कुंभन ८१।

६ क टेसू बन रतनार देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले—सा २८५४।

 ख ससि उर चढ़त प्रेम पावक परि बंक कुसुम रहे कुम्हिलाई।

 —सा १८८५।

७ क फूली 'निवारी एलि मौवारी मालति सुबलि—सा २६१७।

 ख चंपक बकुल गुलाब निवारी नीकी है चितसारी—गोवि १४५।

 ग [illegible] मालती माधवी चंपक बकुल गुलाब निवारी—चतु १।

८ 'आइने अकबरी' पृ १७६।

९ क मिलत सनमुख 'पाडल' भरत मानहि जुही—सा २८७४।

 ख जहाँ 'पाँडर' विपुल गँभीर मिलि भूमक री—सा २९ १।

 ग 'पाडल' मरी सेवती मल्ली मौलसरी रचि रुचिर सँवारी।

 —चतु १।

उपयोग प्राय अधरों और मसूड़ों के उपमानरूप में हुआ है[१०]। कालिदास ने 'बंधूक' के सिवा 'जपा' शब्द का भी प्रयोग किया है[११]। 'आइने अकबरी' में इसके लिए 'अड़हुल' नाम आया है[१२]। 'बंधूक' पुष्प माला में नहीं गूँथा जाता क्योंकि जन-विश्वास के अनुसार, सेंहुड़ी के काँटों की भाँति, यह 'घर' में लड़ाई करवाता है[१३]। परमानंददास ने 'बंधूक' के लिए 'जपा' शब्द का प्रयोग किया है[१४]। 'बकुल' के फूल का नाम अष्टछाप-काव्य में अनेक बार आया है[१५]। इसके लिए 'मौलश्री', 'मौलसिरी' और 'बोलसिरी' आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह फूल पीले रंग का और सुगंधि से परिपूर्ण होता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार 'बकुल' स्त्रियों के कुल्ले से पुष्पित होता है[१६]। 'आइने अकबरी' में इसका नाम 'मौलश्री दिया हुआ है। 'बेले' के फूल का उल्लेख सूरदास, चतुर्भुजदास और परमानन्ददास ने किया है। इसकी कई किस्में होती हैं, जैसे 'मोतिया', 'मोगरा', रायबेलि'[१७] आदि। इसीका साहित्यिक नाम 'माधवी' है[१८]। अष्टछापी कवियों ने 'माधवी' का उल्लेख अपने काव्य में बहुत उल्लास से किया है क्योंकि उसके विकास के समय प्रकृति में भी उल्लास छा जाता है[१९]। अष्टछाप-काव्य में भी 'माधवी' नाम

१० अधर बिंब, बंधूक निरादर दसन कुंद अनुहारी—सा ११६७।
११ कालिदास, मल्लिनाथ टीका पूर्व मेघ श्लोक ३६।
१२ 'आइन अकबरी' पृ १८२।
१३ 'कृषक जीवन' अध्याय ११ पृ १२।
१४ मनहुँ जपा की कुसुम' पात पर कहिवे कहा विवेक—परमा ५६५।
१५. क कहि धौं कुंद कदंब, बकुल बट चंपक ताल तमाल—सा ९६१।
ख कुरबक बकुल' मालती, चंपी केतकी नवल निवारे—कुंभन ८१।
ग. चंपक, बकुल गुलाब निवारी—परमा ७५।
घ ——— मल्ली बोलसिरी रुचि रुचिर सँवारी—चतु १।
१६ कालिदास मल्लिनाथ टीका 'उत्तरमेघ श्लो १५।
१७ क केतकी करवीर बेला बिमल बहु बिधि मंजु—सा ३११४।
ख जूही मरुवौ 'मोगरौ मिलि झूमक हो—सा २६ १।
ग. पीत चमेली विस को चौरस 'रायबेलि' महकारी—परमा ७५।
१८. 'कालिदास मल्लिनाथ टीका उत्तरमेघ श्लो १५।
१९ क बेलि चमेली 'माधवी मिलि झूमक हो—सा २६ १।
ख प्रफुलित नव मल्लिका मालती 'माधवी —गोविं १८।

का प्रयोग अष्टछाप काव्य में किया गया है। जीवन की असारता, क्षणभंगुरता और एक बार ही मिलने वाले अवसर की ओर संकेत करने में 'पत्ते' का उदाहरण ही हमारे कवियों ने उपयुक्त समझा है[९८]।

(ख) मानवेतर प्राणी—

इस वर्ग में अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित वे पशु, जलचर, कीट-पतंग, पक्षी आदि आते हैं जिनका मानव से या तो संघर्ष रहा है या जिनको वश में करके और पालतू बनाकर उसने उनको अपने लिए उपयोगी सिद्ध किया है। ध्यान देने की बात यह है कि ऋतु-वर्णन, लीला-चर्चा तथा उपमान-रूप में अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे पशु-पक्षियों का भी उल्लेख मिलता है जो ब्रज तो ब्रज में पाये ही नहीं जाते। जो हो, इससे इतना भी स्पष्ट होता ही है कि भारतीय संस्कृति में मानव-समाज के साथ-साथ मानवेतर प्राणियों के लिए भी सदा से स्थान रहा है।

क पशु—अष्टछाप-काव्य में वर्णित 'पशु वर्ग' को, स्थूल रूप से, दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रथम वर्ग में 'वन्य पशु' आते हैं और द्वितीय में पालतू पशु जिनको पुनः दो वर्गों में रखा जा सकता है—सामान्य पालतू पशु और सवारी के पशु। इन सबके संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार संक्षेप में, नीचे दिये जाते हैं।

ए वन्य पशु—वन्य पशु सामान्यतया हिंसक, मांसभक्षी और भयानक होते हैं। इनके अन्तर्गत सिंह, सूकर, स्यार और रीछ आदि पशु आ जाते हैं जिनकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनके कुछ पर्यायवाची शब्द भी उसमें प्रयुक्त हुए हैं। पशुओं में प्रमुख 'सिंह' अथवा 'केहरी' सबसे अधिक शक्तिशाली माना गया है, यद्यपि उसकी शक्ति भाग्य-बल के आगे निरर्थक सिद्ध होती है। सूर ने विनय-पदों में कहा है कि सिंह शक्तिशाली होते हुए भी भाग्यहीन होने पर कभी-कभी भूखों मर सकता है[९९]।

९८ क बरनि पात गिरि परे ते फिर न लागे डार—सा १-८८।
ख ता दिन तरे तन-तरुवर के सब पात झरि जैहैं—सा १-८६।
९९ मनि प्रचंड पौरुष बल पाये केहरि भूख मरै—सा १-१०५।

आया है। इसी प्रकार 'मल्लिका',[२०] 'मालती',[२१] 'मरुवी'[२२] और 'सेवती'[२३] आदि फूलों का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से 'सेवती' का उल्लेख 'आइने अकबरी' में भी है। इसका रंग सफेद और इसकी आकृति 'गुलाब' जैसी होती है[२४]।

उपर्युक्त फूलों में से अधिकांश का उल्लेख अष्टछाप के कवियों ने ऋतु-वर्णन अथवा स्त्रियों के शृंगार के प्रसंग में किया है। शैय्या के सजाने, अंगों तथा स्थानों के अलंकरण में भी फूलों का वर्णन आया है। 'सेमर' जैसे फूल के उपमान द्वारा संसार के दुरंगीपन—बाह्यरूप में आकर्षक और अन्दर से खोखला होने—का वर्णन करके इन कवियों ने संसार की असारता प्रदर्शित की है[२५]।

आ पत्र—अष्टछाप काव्य में जिन 'पत्तों' का उल्लेख हुआ है, उनमें 'तुलसी-दल' प्रमुख है। इसके संबंध में पीछे विस्तार से लिखा जा चुका है। अन्य वृक्षों या पौधों के पत्तों का अलग अलग उल्लेख नहीं है। उनका केवल सामान्य रूप से वर्णन आया है। 'पत्ता' का 'पात' के लिए 'पल्लव'[२६] और 'किसलय'[२७] शब्दों

२० क अनुन पुलिन 'मल्लिका' मनोहर शरद सुहाई जामिनि—सा १ ४८।
ख 'मल्लिका' मालती विकसति विविध मोद करंद—कुंभन १२ ।
ग मार जुही 'मल्लिका' जूही फूले निरमल फूल—परमा १८८।

२१ क फूमहुँ धौं मालती कहूँ तैं पाए हैं तन चंदन—सा १ ६१।
ख रायबेलि 'मालती' माधवी चंपक बकुल गुलाब निवारी—चतु १ ।
ग कमोदी मालती जुही बेंधाया—गोवि १ २।
घ मल्लिका मालती विकसित विविध मोद करंद——कुंभन १० ।

२२ क कुसुम मरुवा' कुंद सो करि गौद पसारी—सा १ ६५।
ग लाभो 'मरुवो मोगरो मिलि कुमक दी—सा ९९ १।

२३ क जही जुही मालती करना कनियारी—सा २ ६५।
ख पाटल करी सेवती मरुवी मौलसरी हांसि करिनर सैंवारी—चतु १
ग सौख जुही सिम सेवती मद बिम बिप मवन निवारी रो भारी।
—गोवि ११४।

२४ 'आइने अकबरी' पृ १७ ।

२५ सेमर फूल सुरँग अति निरखत मुदित होत खगभूप।
च मर नीन फूल पाम हम राम पुन्त के कूप—सा ११ ।

२६ अन ठहरन नारि नवल न पल्लव हाथ बिगारती—सा २६८।
किसलय पुसम बन मम तार चारन बान बिगारि—सा ०११६।

यह पूज्य भी है। एक ओर अष्टछाप-काव्य में इस पशु का अवतार के रूप में उल्लेख है,[३८] दूसरी ओर 'सूकर' के जीवन को अधम बताया गया है और ईश्वर भक्ति से विमुख जनों से उसकी तुलना की गयी है[३९]। 'रीछ' का नाम 'सूरसागर' में राम कथा के प्रसंग में आया है। प्रसिद्ध योद्धा जांबवान को रीछ ही कहा गया है जो आज के वैज्ञानिक युग में असंगत जान पड़ता है। जांबवान राम के भक्त थे। वृद्धावस्था में भी वे बड़े पराक्रमी थे। उनकी 'रीछ' सेना ने राम-राक्षस-युद्ध में भाग लिया था[४०]।

ञ. *सामान्य पालतू पशु*—अनादि काल से मनुष्य और पशुओं का निकटतम संबंध रहा है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उनका भी योग रहा है और उनकी सहायता से मनुष्य को अनेक सुख साधन उपलब्ध होते रहे हैं। मनुष्य अनेक पशुओं को पालता रहा है। उनको पालतू बनाने के दो कारण हैं प्रथम, व्यावहारिक जीवन में उनकी उपादेयता और दूसरे, उनके साथ सहानुभूति करने और उनसे सहानुभूति पाने के कारण रागात्मक संबंध का होना। कुछ पशुओं का पालन उनके रूप-रंग के प्रति आकर्षण से मनोरंजन प्राप्त करने की दृष्टि से भी किया जाता है।

पशुओं में 'बंदर' एक ऐसा पशु है जो रूप और आकार में मनुष्य के अधिक निकट है। इसके लिए अष्टछाप काव्य में 'बानर', 'कपि', 'मरकट', 'साखामृग', 'लंगूर' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस पशु के संबंध में अष्टछाप-काव्य में दो प्रकार की बातें कही गयी हैं। एक तो बानर जाति के प्रति आदर प्रकट किया गया है क्योंकि राम-कथा में हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि बानरों के वीरता

३८ क. तब हरि बपु बराह धरि आयौ—सा १ १।
ख. तब हरि धरि 'बराह'-बपु, ल्याए पृथी उठाइ—सा १ ११।
ग. पद्म पुरान कथा सब ऊपर बरनी सो 'बाराह' प्रभु गावै।
—परमा कॉक ११८।
३९ क. उदर भरयौ कूकर सूकर लौं प्रभु कौ नाम न लीनौ—सा १-६५।
ख. भजन बिनु कूकर 'सूकर' जैसौ—सा २ १४।
ग. परमानन्द प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे 'सूकर' स्वान सियार।
—परमा कॉक ११६४।
४० 'रीछ' लंगूर किलकारि लागे करन आन रघुनाथ की जाइ फेरी—सा ९ ११८।

'सिंह' की चर्चा उपमान-रूप में भी हुई है। उसका कटि-प्रदेश सुन्दर होता है; अतः मनुष्य के सुन्दर कटि-प्रदेश की तुलना 'सिंह' के कटि-प्रदेश से की गयी है[१०]। प्राचीन उपदेशात्मक पशु-कथाओं में एक ऐसी कथा है जिसमें 'सिंह' अपनी परछाईं देखकर मूर्खतावश कुएँ में कूद पड़ता है। इस प्रसंग का कहावत के रूप में सूर ने उल्लेख किया है[११]। 'सिंह' के साथ अष्टछाप-काव्य में 'बाघ' शब्द भी आया है। 'बाघ' एक क्रूर और घातक पशु है जो 'गाय' का घोर शत्रु है। अतएव उसकी सर्वत्र निंदा की गयी है[१२] और उसको मृगादि निर्बल पशुओं को सतानेवाले 'आततायी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है[१३]।

'सृगाल', 'स्यार', 'सियार' अथवा 'जंबुक' की गणना हीन पशुओं में की गयी है[१४]। 'सृगाल' अथवा 'शृगाल' कायरता का प्रतीक माना गया है[१५]। यह पशु शिकारी नहीं होता और प्रायः मृत शरीर का ही मांस खाता है। मनुष्य के शरीर की अंतिम गति 'स्यार' का भक्ष्य बनना भी है, जिसकी ओर संकेत करके सूरदास ने कहा है—इस मानव शरीर पर गर्व करना अनुचित है, क्योंकि मृत्यु के बाद 'स्यार' इसको नोच-नोच कर खा जायेंगे[१६]। 'वृक' भी हिंसक पशु है जो गायों के बछड़ों को मार कर खा जाता है। परमानन्ददास ने 'वृक' के भय से त्रस्त ब्रजवासियों के कष्टों का उल्लेख किया है[१७]।

'सूकर' या 'वाराह' 'घनैले सुअर' को कहते हैं। यों तो यह गंदा तथा घातक पशु है, परन्तु पुराणों में वर्णित विष्णु के अवतारों में 'वाराह' अवतार के होने से

१० क. कटि 'सिंह' गौर तनु सुभग सीता—कुंभन २६।
ख. कटि निरखत 'केहरि' डर मान्यो बन-बन रहे दुराइ—सा. १०५७०।
११. ज्यों 'केहरि' प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूदि परयो—सा. २।११।
१२. वैर परस्पर उपज्यो है बन बाघ गाय को मारत—परमा. कीर्त. ११४
१३. 'ब्याघ' ज्यु मृगनि बधत मुनि सज्जनी—परमा. कीर्त. १११०।
१४. क. समुझत नाहिं दीन दुख कोऊ हरि भज 'जंबुक' पानिहिं।
—सा. ४।११६
ख. सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जैहैं सूकर स्वान सियार'—सा. १।४१
१५. करनि सिंह तुम्हरी परी कैसैं भर्यो सृगाल—सा. ४।१८८।
१६. या देही को गरब न कीजै 'स्यार' काग गिध खैहैं—सा. १।८६।
१७. घर घर तैं बछरा 'वृक' मारत सब प्रानी अति आरत—परमा. कीर्त. ११४

यह पूज्य भी है। एक ओर अष्टछाप-काव्य में इस पशु का अवतार के रूप में उल्लेख है,[३८] दूसरी ओर 'सूकर' के जीवन को अधम बताया गया है और ईश्वर भक्ति से विमुख जनों से उसकी तुलना की गयी है[३९]। 'रीछ' का नाम 'सूरसागर' में राम कथा के प्रसंग में आया है। प्रसिद्ध योद्धा जांबवान को रीछ ही कहा गया है जो भारत के पौराणिक युग में असंगत ज्ञात पड़ता है। जांबवान राम के भक्त थे। वृद्धावस्था में भी वे बड़े पराक्रमी थे। उनकी 'रीछ' सेना ने राम-राक्षस-युद्ध में भाग लिया था[४०]।

घ *सामान्य पालतू पशु*—अनादि काल से मनुष्य और पशुओं का निकटतम संबंध रहा है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उनका भी योग रहा है और उनकी सहायता से मनुष्य को अनेक सुख साधन उपलब्ध होते रहे हैं। मनुष्य अनेक पशुओं को पालता रहा है। इनको पालतू बनाने के दो कारण हैं प्रथम, व्यावहारिक जीवन में उनकी उपादेयता और दूसरे, उनके साथ सहानुभूति करने और उनसे सहानुभूति पाने के कारण रागात्मक संबंध का होना। कुछ पशुओं का पालन उनके रूप-रंग के प्रति आकर्षण से मनोरंजन प्राप्त करने की दृष्टि से भी किया जाता है।

पशुओं में 'बंदर' एक ऐसा पशु है जो रूप और आकार में मनुष्य के अधिक निकट है। इसके लिए अष्टछाप-काव्य में 'बानर', 'कपि', 'मरकट', 'साखामृग', 'लंगूर' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस पशु के संबंध में अष्टछाप-काव्य में दो प्रकार की बातें कही गयी हैं। एक तो बानर जाति के प्रति आदर प्रकट किया गया है क्योंकि राम-कथा में हनुमान अंगद, सुग्रीव आदि बानरों के वीरता-

३८ क तब हरि बपु 'बराह' धरि आयौ—सा ३-२ ।
ख तब हरि धरि 'बराह'-बपु, ल्याए पृथी उठाइ—सा ३-११ ।
ग परम पुरान कथा सब ऊपर बरनी सो 'बाराह' प्रभु गावै ।
—परमा कीर्त० १३८ ।

३९ क उदर भरयौ कूकर सूकर लौं प्रभु कौ नाम न लीनौ—सा १६५ ।
ख भजन बिनु कूकर 'सूकर' जैसौ—सा २-२४ ।
ग परमानन्द प्रभु तुमरे भजन बिनु जैसे 'सूकर' स्वान सियार ।
—परमा कीर्त० १३६४ ।

४० 'रीछ' लंगूर किलकारि लागे करन आन रघुनाथ की जब फेरी—सा ९ ११८।

पूर्ण कार्य वर्णित है[८१]। यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि राम-रावण-युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करने वाले 'वानर' कौन थे। वे मनुष्य जाति के थे या पशु इसका निर्णय करना इतिहासकारों का काम है। अष्टछाप के कवियों ने तो इन्हें 'पशु' ही स्वीकार किया है। राम-रावण-युद्ध में ये 'वानर' मनुष्यों के साथ कंधे से कंधा मिला कर लड़े थे। दूसरी ओर 'वानर' का उपहास भी किया गया है। यह पशु मूर्ख होता है जो अच्छी या बुरी वस्तु का भेद नहीं जानता। यह 'मणि' को नष्ट कर देता है और 'कस्तूरी' को मिट्टी में फेंक देता है[८२]। हनुमान को 'मायामृग' कह कर, उनकी प्रिय वाणी की सीता ने प्रशंसा की है[८३]। 'वानर' खेल-तमाशे का साधन भी है। इसे पाल कर प्रशिक्षित किया जाता है और 'मदारी' इसे नचाता है। सूरदास ने 'कपि' वर्ग की इस मूर्खतापूर्ण विवशता की चर्चा भी की है[८४]। 'लँगूर' भी 'बंदर' की एक किस्म है। इसका मुख काला और दुम लम्बी होती है। राम-कथा-प्रसंग में इसका भी उल्लेख हुआ है[८५]।

'मृग', 'मिरग', 'मृगा', 'मृगी', 'कुरंग', 'सारंग', 'हरिन' आदि नामों से विख्यात पशु का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मुख्यतः संगीत-प्रेम के प्रसंग में हुआ है। इस पशु को संगीत से बड़ा प्रेम होता है और अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' सुनकर मृग के आत्मविस्मृत हो जाने की बात कही है[८६]। कृष्ण की वंशी की तान सुनकर यह पशु घास चरना भी भूल जाता है[८७]। 'मृग' की आँखों के सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने ब्रजबालाओं को 'मृगनैनी'

८१ क. 'कपि' सोभित सुभट अनेक संग, ज्यों पूरन ससि सागर तरंग।
—सा ६ १६६।
ख वानर' और 'लँगूर' मोकों ताको बहुत डराऊँ—सा ६-७५।

८२. मनि 'मरकट' कौं देत मूढ़ मति मृगमद रज में सानहि—सा ४०६६।

८३ महामधुर प्रिय बानी बोलत साखामृग तुम किहि के तात—सा ६-६६।

८४ ज्यों 'कपि' डोरि बाँधि बाजीगर कन कन को चौहटैं नचावै—सा १ ३२६।

८५ सैन सहित सबै हत समझि कै 'लँगूर'—सा ६-९६।

८६ थाए 'मृग' मन के सवन मुनि सुधि न रही सरीरन—चतु १६८।

८७ क तृन न चरत हैं 'मृगा मृगी' री तान परी जब कान—चतु ११६।
ग जैसे नाग 'मृग' पशु द्रुमलता बेली भोहैं—गोवि १२५।

या 'नैन कुरंगी' आदि कहा है[४८]। अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं 'मृग' शब्द[४९] पशु मात्र के लिए प्रयुक्त हुआ है । कहीं कहीं 'कस्तूरी मृग' की अज्ञानता का उल्लेख भी किया गया है। कवि प्रसिद्धि के अनुसार किसी-किसी 'मृग' की नाभि में कस्तूरी होती है, जिसकी सुगंधि से वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसकी खोज में वन-वन दौड़ता फिरता है यद्यपि वह उसी की नाभि में वर्तमान रहती है। इसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा में परमात्मा का आलोक न देखकर व्यर्थ के आडंबरों में फँसकर भटकता फिरता है[५१]। सूरदास ने राम-कथा प्रसंग में मृग के रूप में सीता को धोखा देनेवाले राक्षस का उल्लेख किया है[५२]। 'कपट कुरंग' और 'मृग' के अर्थ में 'सारंग' शब्द का प्रयोग भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है। अनेकार्थी होने के कारण 'सारंग' शब्द हिंदी कवियों के विशेष प्रिय रहा है[५३]। इसके आधार पर 'श्लेष' का चमत्कार उन्होंने खूब दिखाया है। इस शब्द को लेकर मध्यकालीन कवियों ने पूरे-पूरे पद लिख डाले हैं। सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भी इसी प्रकार पद-रचना की है[५४]।

'कूकर', 'स्वान' अथवा 'कुत्ता' पालतू पशु है जो प्रायः मनुष्यों की बस्तियों में रहना पसंद करता है और घरों की जूठन पर पलता है। 'कुत्ते' में स्वामिभक्ति की भावना रहने पर भी हमारे यहाँ इसे अधम ही माना गया है। इसका जीवन भक्तिभाव विहीन निरुद्देश्य जीवन का उपमान बन गया है। अष्टछापी कवियों ने 'कूकर' के

४८. (क) करि सिंगार चंचल मृगनैनी पहिरि कुसुमी चोली—कुंभन २८६।
(ख) नैन कुरंगी रति रसमाते पिरछ हरल अनियारे—चतु १९८।

४९. सबल मृग मर्ग पेंड पायक पौरिया प्रतिहार—सा १२२७।

५०. अष्टाध्यायी में मृग शब्द जंगली पशुओं के सामान्य अर्थ में आया है। पाणिनि ने दो प्रकार के हिरनों—ऋश्य और निगुण्ण (gazelle) के नाम दिये हैं।
—डा वासुदेव शरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' पृ २२८ २२१।

५१. (क) ज्यों मृग नाभि कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत।
—सा १४६।
(ख) ज्यों मृगा कस्तूरि भूले सु तो ताकें पास—सा १०।

५२. कपट कुरंग रूप धरि आयो सीता बिनती कीन्ही—सारा २६४।

५३. सारँग के कई अर्थ हैं जैसे मृग सर्प शेर हाथी कोयल कपूर आदि।

५४. (क) सारंग बिवस भयो सारँग में सारँग सुन्दर सरीर—सा १११।
(ख) सारँग नैनी सारंग गावै—चतु २२।

संबंध में ऐसे ही भाव प्रकट किये हैं[५५]। भोजन के पीछे कुत्ते को 'अस्म, लकुट और पद-त्रान' के प्रहार भी सहने पड़ते हैं[५६]।

'खर' अथवा 'गर्दभ', 'गधे' के नाम हैं। यह पशु बोझा ढोने के लिए प्रयुक्त होने के कारण उपयोगी तो है परन्तु गंदा और मूर्ख होने के कारण असम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सूरदास ने कहा है कि कहाँ अगर का सुगंधित अनुलेप और कहाँ 'खर'[५७]। गधे की सवारी अपमानजनक है हाथी-घोड़े की तुलना में यह कहाँ ठहरता है[५८]। होली के अवसर पर अवश्य गधे की सवारी किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[५९]।

भारतीय जीवन में 'गाय' की अत्यधिक उपयोगिता रही है जिसके फल-स्वरूप हिंदू उसे 'माता' मानते आये हैं। वैदिककालीन भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार गाय ही है जिससे उसका बहुत महत्त्व था। यज्ञों, पर्वों और धर्मोत्सवों से लेकर भोजन तथा वाणिज्य व्यापार तक में 'गाय' सभी अनुष्ठानों और क्रियाओं का केन्द्र थी और आज भी है। अष्टछाप काव्य में 'गाय' को लगभग उतने ही महत्त्व का स्थान दिया गया है। गोचारण, कवियों के आराध्यदेव कृष्ण की लीला का प्रमुख अंग रहा है। जिन ग्वाल-बालों के बीच वे पोषित हुए थे, वे गाय को गोधन मानते थे क्योंकि उनकी जीविका का प्रमुख आधार गाय ही थी।

अष्टछाप-काव्य में 'गाय' के लिए 'गाइ', 'गैया', 'धौ', 'धेनु', सुरभी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। रंगों के अनुसार भी गायों के अनेक नाम लिये गये हैं, जैसे धूमरि, धौरी, काजरि, राती, रौंछी, पियरी, भौंरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, दुलही,

५५. क भजन बिनु कूकर सूकर जैसो—सा २१४।
ख लालच दुख 'स्वान जूठनि ज्यौं' सोऊ हाथ न आई—सा १ १२८।
ग 'स्वान' तुल्य है बुद्धि तुम्हारी भोजन काज सहत दुख भारी।
—सा १-२८४।

५६. कौर-कौर कारन कुबुद्धि जड़ कित सहत अपमान।
जहँ जहँ जात तहीं तहँ त्रासत अस्म लकुट पदत्रान—सा १ १ १।

५७ 'खर' को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग—सा १ ३३२।

५८. हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ—सा १ १६६।

५९ राने कमल बदन तजि भ्रमरनि मद मतवार—सा २६१४।

धुमरी, धौरी, भूरी आदि। सूरदास,[९] चतुर्भुजदास,[११] और गोविंदस्वामी[१२] के पदों में विभिन्न रंगों की गायों का उल्लेख है। व्यावहारिक दृष्टि से 'गाय' का आदर इसीलिए है कि यह दूध देती है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत गुणकारी होता है। बच्चों के लिए तो यह दूध अमृत के समान जीवनदायक है। सामान्य विश्वास के अनुसार सबसे बढ़िया तथा उत्तम कोटि का दूध 'श्यामा' या 'कजरी' गाय का होता है और उससे उतर कर 'कपिलई' या 'लाल' रंग की गाय का। सूरदास ने 'कजरी' के दूध पीने पर कृष्ण की चोटी बढ़ने की बात कही है[१३]। गाय का गोबर भारत की उर्वरा भूमि के लिए बहुत उपयोगी खाद माना जाता है। यह भी उसके महत्व का एक कारण है।

अष्टछाप काव्य में, कृष्ण-जन्म के साथ ही, 'गायों' का उल्लेख प्रारंभ हो जाता है। नंद के घर पुत्र-जन्म होते ही आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है। इस अवसर पर 'गोदान' का उल्लेख है[१४]। दान में दी जानेवाली 'गायें' बढ़िया होती थीं। सूरदास के अनुसार नंद जी ने 'गायों' के खुर, ताँबे से पीठ, चाँदी से, और सींग, सोने से मढ़वा कर उन्हें दान में दिया था[१५]। अनिष्ट-निवारण के लिए या अनिष्ट टल जाने पर भी 'गायें' दान में दी जाती हैं। जब कृष्ण असुरों का संहार करते हैं या वे संकटों से बच जाते हैं तो 'गायों' का दान किया जाता है। 'गोदान' की यह प्रथा आगे चलकर स्थायी हो गयी और मृत्यु के समय 'गोदान'

९ धौरी धूमरि राती रौंछी बोल बुलाइ चिन्हौरी।
पियरी मौरी गोरी गैनी खैरी कजरी जेती।
दुलही फुलही भौंरी भूरी हाँकि ठिकाई तेती—सा १ ११।

११ सींग सुनाई धूमरि धौरी टेरत बेनु बजाई—चतु २१५।

१२. चढ़ि कदंब 'धौरी धूमरि कारी और पियरी' पूरत मधुरें सुर बेनु।
—गोविं ११२।

१३ कजरी' को पय पियहु लाल जासों तेरी बेनि बढ़ै—सा १०-१७४।

१४ क जुवतिन बहुविधि भूखन दीजे विप्रन को 'गोदान'—परमा १८।
ख हय गज, 'धेनु' वसन अंबर धन दीन्हें धन भांडार—चतु ५।
ग. कपिला धेनु कनक-सिंगी' नाना विधि के दान—गोविं १२।

१५. 'खुर ताँबे 'रूपे पीठि' सोनें सींग मढ़ी।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ी—सा १ -२४।

इतना आवश्यक बन गया कि उसके अभाव में मनुष्य का 'वैतरणी' पार कर सकना असंभव माना जाने लगा; अस्तु।

कृष्ण के बड़े होने पर, 'गाय' उनके जीवन का प्रमुख अंग बन जाती है। 'गोपालन' नंद जी के परिवार का मुख्य व्यवसाय था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि कृष्ण भी इस कार्य में रुचि लेने लगे। माता यशोदा उन्हें गाय चराने के लिए वन जाने से रोकती हैं, पर वे बराबर हठ करते हैं। कुछ और बड़े होने पर वे ग्वाल-बाल के साथ, 'गायों के झुंड लेकर वन जाते हैं और लगभग सारा दिन वहीं व्यतीत करते हैं। गायों को चराने ले जाना,[६६] वापसी के समय या उनके बहुत दूर चले जाने पर ऊँचे चढ़कर उन्हें टेर कर बुलाना,[६७] घाट पर पानी पिलाना,[६८] दूध दुहना[६९] आदि सभी बातें कृष्ण सीखते हैं। गायें भी कृष्ण से प्रेम करने लगती हैं। कृष्ण का मुरली-वादन तो उन्हें विशेष रूप से प्रिय है। जब वे बाँसुरी बजाते हैं तो वे तृण चरना भूल जाती हैं[७०]। वे चाहे जितनी दूर चर रही हों, कृष्ण के वंशी बजाते ही, दौड़कर निकट आ जाती हैं। कृष्ण उनके पीछे-पीछे वंशी बजाते चलते हैं[७१]। उस समय उनके साँवरे मुख पर गो-पद-रज' सुशोभित रहती है[७२]। इस प्रकार जब तक कृष्ण ब्रजभूमि में रहते हैं, गाय उनके जीवन का प्रमुख अंग बनी रहती है।

गाय के बच्चे को 'बछड़ा' कहते हैं। इसके लिए गोसुत' 'गोवत्स', 'वत्स',

६६ चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
   हेरी टेर सुनत लरिकन के दौरि गए नँदलाल—सा ४११।
६७ क गोविंद गिरि चढ़ि टेरत 'गाइ'—चतु २१५।
   ख 'गैयाँ' गईं दूरि टेरी बू कान्ह—गोविं ११६।
   ग गिरि पर चढ़ि गिरिवर-धर टेरे—सा ४२१।
६८ हौं मोहि बाट पिआवत गैया जहाँ भरत पनिहारी—परमा ६६६।
६९. छबीलो लाल 'दुहत है धेनु धौरी'—कुंभन २८।
७० पसु मोहैं 'सुरभी बिथकित' तृन दंतनि दाबि रहत—सा ६१।
७१ 'आगे धेनु' रेनु तन मंडित मधुरैं बेनु बजावत—कुंभन २१६।
७२. बन तैं आवत धेनु चराए।
   संध्या समय 'साँवरे मुख पर गो-पद-रज लपटाए'—सा ४१७।

'बछरू', 'बछरवा' आदि शब्द अष्टछाप-काव्य में आये हैं[७३]। गाय की भाँति इनके प्रति भी कृष्ण का परम स्नेह आलोच्य कवियों ने बताया है।

'छेरी' या 'अजा', जिसे प्रचलित भाषा में 'बकरी' कहते हैं, दूध देनेवाली पालतू पशु है। यद्यपि इसका दूध भी स्वास्थ्य की दृष्टि से गुणकारी होता है, परन्तु भारतीय समाज में इसे वह महत्व नहीं प्राप्त है जो गाय को है। अष्टछाप-काव्य में इस पशु की चर्चा केवल सामान्य रीति से की गयी है। सामान्य जीवन में बकरी, जब गाय से ही हीन समझी जाती है तब 'कामधेनु' की तुलना में तो सूरदास स्वभावतः उसे कोई स्थान नहीं देना चाहते[७४]।

बिलार' या 'बिलाव' की चर्चा सूरदास ने यह समझाने के लिए की है कि विषय-वासना में लिप्त व्यक्ति की स्थिति काल के सामने वैसी ही रहती है, जैसी 'बिलाव' के सामने 'मूसे' की[७५]। इसी प्रकार 'भैंसे' या 'महिष' और 'भेड़' की चर्चा भी सूरदास ने विषय-वासना में लिप्त जीवन की अधमता बताने के लिए की है[७६]।

'बैल', 'वृष' या 'वृषभ' भी पालतू पशु है, जो गाय से ही उत्पन्न होता है। यह मुख्य रूप से खेती का हल चलाने और बोझा ढोने के काम आता है[७७]। इन

७३ क. गोसुत अरु नर नारि मिले अति हेत लाइ गर—सा ४१७।
ख. छाक्यो गोपाल परत हैं गोसुत हम सब बैठि कलेऊ कीजै—सा० ४१८।
ग. प्रातहि उठत प्रभु लाइ के, ग्वाल बच्छ सब गाइ—सा ४११।
घ. भोजन करत सखा इक बोल्यो बछरू कतहूँ दूरि गए—सा ४१८।
ङ. लैनी हाथ बछरवा मिलवत कौन कौन छबि लागे—परमा १६८।

७४ क. सूरदास प्रभु कामधेनु तजि 'छेरी' कौन दुहावै—सा ११६८।
ख. कामधेनु छाँड़ि कहा 'अजा' लै दुहाऊँ—सा ११६६।

७५ क. काल फिरत बिलार तनु धरि, अब धरी तिहिं सेत—सा ११११।
ग. जैसे घर बिलाव के मूसा रहत विषय-बस वैसो—सा २१४।

७६ क. सूरदास भगवंत-भजन बिनु मनौ ऊँट वृष भैंसी—सा २११४।
ख. 'भेड़ महिष' गदहा गुरगरी मीर आयुसन वाहन गावन—सा ६७६।

७७ 'तीने अनेकास पशु मुख्य' नाम से पुकारे जाते थे। वाहनों के अनुसार भी अनेक नाम रखते जाते थे, जैसे रथ्य (रथ के बैल), 'शाकट' (शकट के) 'हालिक

दोनों कामों के लिए उपयोगी 'बैलों' का सामान्य रूप से अधिक आदर होता है। मेले या विशेष पर्व के अवसर पर बैलों को सजाया जाता है। उनके शरीर और सींग रँगे जाते हैं[७८]। इसके विपरीत, कोल्हू में जोते जानेवाले 'बैल' का जीवन बड़ा दुःखपूर्ण माना गया है। उसकी आँखें ढक दी जाती हैं और वह कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। सूरदास ने भक्ति-रहित तथा माया में फँसे मनुष्य की तुलना ऐसे ही 'बैल' से की है[७९] और एक अन्य पद में 'बिराने बैल' के दयनीय जीवन का मार्मिक वर्णन किया है[८०]।

ग. *सवारी के लिए उपयोगी पालतू पशु—*

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित तीन ही पशु इस वर्ग में आते हैं—घोड़ा, हाथी और ऊँट। इनमें से प्रथम दो का उल्लेख युद्ध-प्रसंग, सेना-वर्णन और आवागमन के साधन के रूप में हुआ है। 'घोड़े' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अश्व', 'तुरंग', 'बाजि', 'तुरी', 'ताजी'[८१] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विवाह प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़े' पर बैठने तथा उसकी जड़ाऊ जीन मूठ और साज-

तथा सीरिक (हल के बैल), 'सर्वधुरीण' तथा 'एकधुरीण' बैल (दोनों ओर अथवा एक ओर जोते जानेवाले बैल)। हिंदी में 'उपराल' तथा 'तरवाल' क्रमशः दाहिने तथा बाएँ बैल कहलाते हैं। पाणिनि ने 'गो-सार' तथा 'उष्ट्रसार' शब्दों का प्रयोग बैल और ऊँट पर लादनेवालों के लिए किया है। उन्होंने साल्वदेश के प्रसिद्ध 'साल्वक बैलों' का भी उल्लेख किया है। पतंजलि ने 'शातीक पाणि' का नाम और जोड़ दिया है।

—डा. वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज़ नोन टू पाणिनि' पृ. १५१।

७८. धौरी धेनु सिंगारी मोहन बछरे 'वृषभ' सँवारे—परमा. २५८।

७९. क. सूरदास भगवंत-भजन बिनु मनौ ऊँट बृष भैंसौ—सा. २१४।
ख. तेली के वृष लौं नित भरमत भजत न सारँगपानि—सा. १ २।

८०. भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि सिर सृंग गुंग मुख तब कैसैं गुन गैहौ।
चारि पहर दिन चरत फिरत बन तऊ न पेट अघैहौ।
टूटे कंधरु फूटी नाकनि को लौं धौं भुस खैहौ।
लादत जोतत लकुट बाजिहै तब कहँ मूड़ दुरैहौ।
सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि भार तरें मरि जैहौ—सा. १ ११।

८१. फारसी में 'ताजी' का अर्थ अरब देश का घोड़ा होता है—अभिधा।

सवा[८२] का वर्णन किया है[८३]। इस अवसर पर अन्य व्यक्ति भी 'घोड़े' पर चढ़कर चलते बताये गये हैं[८४]। सूर ने 'अस्व' पर सवार होकर 'मृगया' के लिए श्रीकृष्ण के जाने की चर्चा की है[८५]। 'घोड़े' या 'तुरंग' को इन कवियों ने सर्वश्रेष्ठ पशु माना है[८६]। लंबी यात्राओं के लिए द्रुतगामी 'घोड़ों' वाले रथ पर जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है[८७]। चौगान का प्रसिद्ध खेल 'घोड़ों' पर चढ़कर खेला जाता था। चौगान-प्रसंग में सूरदास ने 'घोड़ों' की अनेक किस्मों का उल्लेख किया है, जैसे 'उम्नैसखा' 'कुमैत' आदि[८८]। अष्टछापी कवियों के अनुसार दौड़ में घोड़ों की प्रतियोगिता भी हुआ करती थी[८९]।

'हाथी'[९०] के लिए अष्टछाप-काव्य में गज, कुंजर, गजेन्द्र, गयंद गजराज, मतंग आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सवारी ले जाने वाले पशुओं में हाथी सबसे अधिक मूल्यवान होता है और प्राय इसे राजा-महाराजा लोग ही पालते हैं। भक्ति-साहित्य में

८२. क 'जीन' अरित मराव पाखरि' लागी नव मुक्तालरी—सा ४१८९।
ख 'पाखरि' घोड़े पर पड़ी 'झूल' को कहते हैं—लेखिका।

८३ बाणकालीन घोड़ों की सज्जा में लवण-कलापी किंकिणी तथा चाली से युक्त 'पर्याण' अथवा जीन प्रचलित थी।
—डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष , सां अ , पृ १४१।

८४ सब सखा बरात चलैंग होउब चढ़ीगे घोरो—परमा ११३।
८५. कहुँ मृगया को चल 'अस्व' चढ़ि भी वसुदेव-कुमार—सारा ६६५।
८६ क 'कहीं तुरंग' कहीं गज कहरि हंस सरोवर मुनिप—सा १५५।
ख अति ही विचित्र रच्यो विस्वकर्मा सोभित चारु तुरंग—परमा ७४१।
८७ तजि द्वारका पोल गमन को कंचन जीन पलाने बाजि'—परमा कीर्त ११५२।
८८. क निकस सबै कुँवर असवारी 'उम्नैसखा' क ओर।
'नील' 'सुरंग' कुमैत' स्याम लोहि पराये सब मन रंग।
बरन अनक भाँति भाँतिनि के चमकत चपला ढंग—सा ४७८४।
८९ चंचल 'बाजि' नचावत आवत होड़ लगावत गान—परमा ६५।

९० 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' के अनुसार उस युग में 'हाथी' को 'हस्तिन', 'नाग' 'कुंजर' आदि नामों से पुकारा जाता था। बड़ी सूँड़ वाला हाथी 'सुंडार' कहलाता था; ऊँचाई-नीचाई के हिसाब से उनके 'द्विहस्तिन' 'त्रिहस्ति' आदि नाम थे। 'हस्ति-दंत' का उपयोग भी उस युग में होता था—इ २१६।

'गजेन्द्र-मोचन' की कथा प्रसिद्ध है। गज और ग्राह के युद्ध में 'गज' की आर्त पुकार सुनकर भगवान उसकी रक्षा के लिए दौड़ पड़ते हैं। इस कथा के उल्लेख द्वारा सूर तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने भगवान की भक्त-वत्सलता का चित्रण किया है[११]। पशु के रूप में 'गज'-दान की बात चतुर्भुजदास ने कही है[१२]। 'हाथी के दाँतों' का विवरण परमानंददास के पदों में आया है[१३]। हाथी का स्वभाव है कि वह नहाने के बाद अपने शरीर पर फिर धूल चढ़ा लेता है। सूरदास ने विषय-रत मनुष्यों के स्वभाव की तुलना हाथी की इस प्रकृति से की है[१४]। मस्त हाथी की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में उपमान-रूप में की गयी है। मस्त हाथी 'महावत' के वश में नहीं रहता। उस पर लोहे के नुकीले 'अंकुश' से बार पर बार किये जाते हैं, परन्तु वह नियंत्रण में नहीं आता। ऐसे हाथी से महावत भी भयभीत रहता है[१५]। 'सिंह' और मस्त हाथी की शत्रुता का भी उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है[१६]। कवि प्रसिद्धि के अनुसार मस्त हाथी के गंडस्थल से एक रस प्रवाहित होता रहता है। ऐसे गंडमद से सुशोभित काले हाथी का वर्णन सूर के काव्य में हुआ है[१७]।

'ऊँट' की चर्चा अष्टछाप काव्य में घोड़े और हाथी की तुलना में बहुत कम की गयी है। सूरदास[१८] के एक पद में भारवाही पशु वृष और भैंस के साथ 'ऊँट' का भी उल्लेख हुआ है जिसमें उसके जीवन को दुःखपूर्ण होने की ओर ही संकेत

११ क. हा करुनामय 'कुंजर' टेरयो रह्यो नहीं बल थाके—सा ११११।
ख. गहे चरन 'गजराज' सुनायो गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए—सा ५५९।
ग. कृपा करी गज-काज, गरुड़ तजि धाइ गए अब—सा ५८६।
घ. सुनत पुकार परम आतुर ह्वै दौरि छुड़ायो 'हाथी'—सा ११११२।
१२. हम 'गज' धेनु भरत धौंकर धन, दीन्हे धन भंडार—चतु ५।
१३. 'कुंजर' दंत कंप कर लीने रुधिर बिन्दु लपटाने—परमा ५।
१४. ज्यों गयंद अन्हाइ सरिता बहुरि वहै सुभाइ—सा १४५।
१५. क. ज्यों मदमत्त 'मतंग' मदा तैं बरषत रहत महावत—परमा ७२१।
ख. आवे निरंकुस मातो 'हाथी'—परमा ४६१।
ग. अगम न चलन महावत हू पै मरत न अंकुस मोरे—सा ११ १।
१६. मानो सिंह सैल तैं निकस्यो महामत्त गज जानि—सा०-१ २१९।
१७. स्याम सुभग तन चुवत 'गंडमद' बरसत थोरे थोरे—सा ११ ३।
१८. सूरदास भगवंत भजन बिनु मनो 'ऊँट' वृष भैंसो—सा २१४

है[११]। बोझ ढोनेवाला अन्य पशु है 'गर्दभ' जिस पर सवारी करना, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, अच्छा नहीं समझा जाता।

आ. जलचर—जल में रहनेवाले अनेक प्रकार के जीव होते हैं जिनमें से कच्छप, मगर, नक्र, ग्राह, दादुर, मच्छ, मीन आदि की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। इनके काव्य में इन जलचरों का उल्लेख मुख्यतः उदाहरण-रूप में ही हुआ है।

'कच्छ' या 'कच्छप' के लिए 'कमठ', 'कूर्म' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप काव्य में हुआ है। इसका उल्लेख विष्णु के अवतारों के प्रसंग में भी मिलता है। सूर ने 'कमठ' या 'कच्छप'-अवतार का वर्णन किया है[४]।

'मकर', 'मगर', 'नक्र', 'ग्राह' आदि नामों से प्रसिद्ध भयानक जीव जल में रहकर अन्य जलचरों और थलचरों का शिकार किया करता है। पुराणों में वर्णित 'गज और ग्राह' की कथा प्रसिद्ध है जिसमें गज के पुकारने पर भगवान ने दौड़कर चक्र से 'ग्राह' को मार डाला था। अष्टछाप-काव्य में, भगवान की इस भक्तवत्सलता-वर्णन में 'ग्राह' का उल्लेख हुआ है[१]। किसी-किसी कवि ने 'ग्राह' का स्मरण उपमान-रूप में भी किया है। सूरदास ने कामदेव को 'ग्राह' के समान माना है, जो मनुष्य को माया के जल में खींच कर ले जाता है और मार डालता है[२]। अन्य स्थलों पर भी 'मगर' का उल्लेख हुआ है[३]। कृष्ण के 'मकराकृत' कुण्डलों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में अनेक बार हुआ है[४]।

६६ 'ऊँट' के लिए 'उष्ट्र' तथा 'ओष्ट्रक' शब्द भी 'अष्टाध्यायी' में उल्लिखित है—डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि', पृ. ११६।

४ क 'कमठ' रूप धरि परयौ पीठि पर तहाँ न देख डाक—सा० १ २२१।
ख जैसे भयो 'कूर्म' अवतार, कहौं सुनौ सो अब चित धारि—सा ८-७।
ग मत्स्य, 'कच्छ' बाराह बहुरि नरसिंह रूप धरि—सा० २ ३६।
घ 'कच्छप' अब आसन अनूप अति डाँडी सहस फनी—सा० २-२८।

१ क नीरहु तैं न्यारौ कीन्हौ चक्र 'नक्र' सीस दीनौ—सा ८-५।
ख अव-जोग लौ कियौ कहा नग, कौन वेद गज-ग्राह कियौ—परमा ८८।

२ मिले जात अगाध जल कौं गहे ग्राह-अनंग—सा १-६६।

३ मेढा महिष 'मगर' गुदरारौ मोर आगुमन वाहन गावत—सा ६७६।

४ क दुबा-सर जनु 'मकर' क्रीडत, इंदु अव-अव डोल—सा ६२७।

'दादुर' या मेढक जल में रहने वाला जीव है। यह वर्षा ऋतु में निरंतर बोलता रहता है। वर्षा-वर्णन में अष्टछाप के कवियों ने इसका उल्लेख किया है[५]। इसकी चर्चा उपमान-रूप में भी की गयी है[६]।

'मच्छ', 'मछली', 'मीन', 'मत्स्य' आदि एक ही जीव के अनेक नाम हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में विविध प्रसंगों में हुआ है। भगवान के अवतारों में 'मत्स्य' के अवतार का वर्णन सूरदास ने किया है[७]। मछली को उपमान भी माना गया है। 'मीन' या 'मछली' पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती। इसलिए उसका आदर्श प्रेम कवियों को खूब भाया है[८]। मछलियों में एक तिमिंगल नाम की मछली होती है, जो आकार में बहुत बड़ी होती है और अन्य मछलियों को नबरस्त कर जाती है। इस तथ्य का उल्लेख नंददास ने किया है[९]।

२ कीट-पतंग—

अष्टछाप-काव्य में जिन कीट-पतंगों का उल्लेख हुआ है मुख्यतः उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में भूमि पर रेंगनेवाले कीड़े आते हैं और द्वितीय में उड़नेवाले पतंगे।

ख मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल मुरली की छबि न्यारी—चतु १११।

५. क दादुर मोर पपीहा बोलत नान्हीं नान्हीं बूँद सुहाई—चतु १११।

ख 'दादुर' मोर कोकिला अरु कोलाहल भारी—परमा ७६१।

ग. ज्यों पावस रितु घन प्रथम घोर जल जीवन 'दादुर' रटत मोर।

—सा ९ १६६।

६ मारू मार करत भट 'दादुर' पहिरे विविध सनाह—सा ११२१।

७ क. तिन हित हरि 'मच्छ' रूप धारयौ—सा ८ ११।

ख जहाँ सनक सिव हंस 'मीन' मुनि नख रवि प्रभा प्रकास—सा १ ३३७।

ग मत्स्य-भगवान कह्यौ मान पुनि नृपति सौं—सा ८-१६।

८. क सूर स्याम के रंगहि राँची, टरति नहीं जल तें ज्यों मीनी'—सा २७०१।

ख जो तौ 'मीन दूध में डारे बिनु जल नहिं सचु पावै'—सा ३५१।

९ तौ तहाँ तिमिंगल मारे अपनी जाति के भच्छनहार।
तिमि' इक जाति मीन' की आहि सत जोजन विस्तार है जाहि।
ताहि निगलत जो अजगर लहिये ताको नाउँ तिमिंगल कहिये।

—नंद दास पृ १९९।

६. कीट—

इस वर्ग में साँप, गिरगिट, पिपीलिका आदि वे कीट आते हैं जो भूमि पर रेंगकर या उससे सटकर चलते हैं।

'साँप' के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है, यथा—अजगर, अहि, उरग, नाग,[१] पन्नग, फनिग, व्याल, भुअंग, भुजंगम, आदि। यों तो सभी सर्प भयानक होते हैं, परन्तु अजगर भीमकाय होने के कारण बड़ा भयंकर होता है। भारी होने के कारण वह चल नहीं पाता; एक स्थान पर ही पड़ा रहता है और अपनी साँस से शिकार को निकट खींच कर निगल जाता है। इस प्रकार बिना उद्यम किये ही 'अजगर' के 'उदर भरने' की बात सूरदास ने लिखी है[११] और तर्क-रूप में यह कहा है कि भगवान के सहारे रहने पर प्राणी की सारी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी हो जाती हैं। 'काला सर्प' बड़ा विषैला होता है जिससे कभी-कभी 'कृष्ण' की तुलना की गयी है[१२]। साँप के काटने पर 'गुनी' अर्थात् विष झाड़नेवाले को बुलाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है[१३]। 'नागिनि' तो सामान्यतया और भी विषैली होती है। सूर ने रात्रि की उपमा 'नागिनि' से दी है। रात्रि यदि चाँदनी है तो जान पड़ता है कि नागिनि 'उलटकर' उलटी हो गयी है। ऐसी नागिनि का विष तंत्र-मंत्र से भी नहीं उतरता[१४]। किसी-किसी अष्टछापी कवि ने 'काल' को भी 'व्याल' कहा है[१५]। मलय या चंदन वृक्ष

१ 'नागों' के प्रसिद्ध कुल आठ हैं—वासुकि, तक्षक, कुलक, कर्कोटक पद्म, शंखचूड़, महापद्म और धनंजय। 'नागों' के रहने के देश को 'उरगद्वीप' या 'नागलोक' कहा गया है—लेखिका।

११ अनायास बिनु उद्यम कीन्हें 'अजगर उदर भरे'—सा ११ ५।

१२. ले ले बड़े उसास कही मैया मोहिं कारे स्याम—नंद स्याम पृ ११८।

१३ स्याम 'भुअंग' डस्यो हम देखत 'ल्यावहु गुनी बुलाई'—सा ७४६।

१४ पिया बिनु नागिनि कारी राति।
जो कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति।
जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जाति।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी मुरि मुरि लहरैं खाति—सा ३८८।

१५. नावत काल-व्याल लेत है खीँहि देहु तुम मन संभालहिं—मा १ ७४।

में 'नागों' के छिपे रहने का उल्लेख सूर ने किया है[१६]। 'साँप' की ऊपरी खाल 'केंचुल' कहलाती है जिसको वह छोड़ देता है, इस तथ्य की ओर भी अष्टछाप-काव्य में संकेत किया गया है[१७]। कुछ साँपों' के पास 'मणि' होने की कल्पना कवियों ने की है। सर्प इस मणि को प्राणों से अधिक चाहता है। यदि मणि खो जाय या छिन जाय तो वह निराश होकर अपना जीवन नष्ट कर डालता है। इसलिए इसे वह अपने 'फन' के नीचे छिपाये रखता है[१८]। कवियों ने प्रिय और बहुमूल्य वस्तुओं की तुलना सर्प की 'मणि' से की है। सूरदास को भगवान कृष्ण की बाल-लीला, उसी प्रकार 'प्रिय' है जैसे 'फनिग' को अपनी 'मणि'[१९]। अष्टछाप-काव्य में वेणी की तुलना 'नागिनि' से की गयी है । सूरदास के अनुसार, राधा की वेणी से 'व्याल' छोड़ न से पाते थे, परन्तु जब वे कृष्ण-वियोग में मूर्छित हो गयी तो ये गर्व और हर्ष के साथ 'बिलों' से बाहर निकल आये[२१]।

अष्टछापी कवियों ने 'साँप' का उल्लेख 'काली नाग के नाथे' जाने के प्रसंग में भी किया है। सूरदास के अनुसार कृष्ण ने उसको नाथ' कर उसके फन पर पैर रख कर, उसका गर्व चूर करके उसे 'उरगद्वीप भेज दिया'[२२]। अष्टछापी कवियों ने एक ऐसे साँप का भी उल्लेख किया है जो पानी में रहता है उसे 'गुहरारी' कहते हैं[२३]। साँप' के साथ-साथ 'छछूँदर' का भी उल्लेख हुआ है। कहते हैं कि साँप जब भूल से 'छछूँदर' को पकड़ लेता है, तब न उसे छोड़ सकता है और

१६ बिपुल बाहु भरि हृदि परिरंभन मनहुँ मलय-द्रुम 'नाग'—सा १२९१।
१७ ज्यों 'अहिपति' केंचुरि को लघु-लघु छीरत है अंग बदन—सा ११५८।
१८ मानो मनिधर मनि ज्यों छीनयो फन तर रहत दुराए—सा १९१२।
१९ निरखत रहौं 'फनिग' की मनि ज्यों सुन्दर बाल-बिनोद बिहारे—सा ६१४।
२ तू जो कहति बन की बनी क्यों है रे लाँबी मोटी।
काहत-गुहत-नवावत बैठे नागिनि सी भुँइ लोटी—सा १ १७५।
२१ मनो रह्यो 'पन्नग' पीवन कौं।
पूने 'व्याल' छुटे न सगर, परम पट भर लायो—सा ४१४१।
२२ व छू रातो चाँपि तिनति नाकी चाँपि देगि मव गौंपि अवमान भूले।
—सा ५५२।
त सूरदास प्रभु अभय ताहि करि उरग-दीप पहुँचाए—सा ५७१
२३ मग्र मीन, मगर गुहरारी मोर ग्रामुमन बाहन गाना—सा १०६।

न खा सकता है। सूरदास ने 'उरग' की ऐसी ही स्थिति की ओर एक पद में संकेत किया है[२४]।

रेंगनेवाले एक अन्य जीव, 'गिरगिट' की चर्चा शापग्रस्त राजा नृग के प्रसंग में की गयी है।[२५] रेंगने या भूमि पर चलने वाले क्षुद्र 'कीटों' के लिए अष्टछापी कवियों ने 'कृमि' शब्द का प्रयोग किया है[२६]।

'पिपीलिका' या 'चींटी' की गणना भी रेंगनेवाले 'कीट'-वर्ग में करना उचित प्रतीत होता है। 'पिपीलिका प्रसिद्ध ज्ञात कीटों में क्षुद्रकाय है और 'हाथी' विशालकाय। अतएव 'चींटी' से 'हाथी' तक कह देने से अष्टछापी कवियों का तात्पर्य समस्त चेतन जगत से रहा है[२७]।

ख पतंग—

इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाले जिन जीवों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है उनमें मुख्य ये हैं—पतिंगा, भौंरा, झिल्ली या झींगुर, मधुमक्खी आदि।

'पतिंगे' से तात्पर्य उड़नेवाले उन छोटे जंतुओं से है जो दीप शिखा की ओर आकर्षित होकर दौड़ते हैं और उसी में जलकर भस्म हो जाते हैं। सूर आदि कवियों ने इस तथ्य को त्यागप्रधान तथा अनन्य प्रेम के समर्थन में उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है[२८]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित कीट-पतिंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान 'भौंरे' को प्राप्त है। इसके अनेक नाम कवियों द्वारा व्यवहृत हुए हैं, यथा अलि, चंचरीक, छपद, भ्रमर, भृंग, भृंगी, मधुकर, मधुप, शिलीमुख, षटपद आदि। इतने अधिक पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से अष्टछाप-काव्य में भ्रमर-संबंधी वर्णनाधिक्य का प्रमाण मिलता है। 'भ्रमर' को लक्ष्य करके अन्योक्ति-रूप में सूरदास,

२४ भई रीति हठि उरग छूछूँदरि छाँड़े बने न खात—सा १७१६।
२५. सनक पूत तैं 'गिरगिट' कीन्हौं को करि सके बखान—सा ४१६१।
२६ 'कृमि' पावक तेरौ तन भखिहै, समुझि देखि मन माँहीं—सा १३१६।
२७ सब सौं बात कहत जमपुर की 'गज-पिपीलिका' लौं—सा १३५१।
२८. क दीपक पीर न जानई पावक परत पतंग—सा ११५५।
ख जैसैं प्रेम 'पतंग' दीप सौं, पावक हूँ न डरत—सा १५५५।

नंददास आदि ने कृष्ण-कथा का एक पूरा प्रसंग लिख डाला है, जो 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध है[२९]। प्रकृति-वर्णन में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' का उल्लेख अनेक प्रकार से किया है। खिले हुए कमलों पर 'चंचरीक' मँडराते और गुंजार करते हैं[१०] और कमल-दलों में रस लाते हैं[११]। 'भ्रमर' काले तथा घुँघराले बालों का प्रसिद्ध उपमान है[१२]। कहीं कहीं 'रोमावली' या 'रोमराजी' के वर्णन में भी भ्रमर' का स्मरण किया गया है[१३]। प्रेम के सच्चे और झूठे, दोनों पक्षों के स्पष्टीकरण में भी अष्टछापी कवियों ने 'भ्रमर' को उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किया है। कमल के प्रति भ्रमर का प्रेम आदर्श और सहज होता है;[१४] क्योंकि वह कमल कोष में बंद हो जाता है और कष्ट सहता है, फिर भी प्रेम नहीं छोड़ता। दूसरी ओर अनेक फूलों और लताओं पर भटकने के कारण कवियों ने स्वार्थी तथा लंपट कहकर 'भौंरे' की हँसी भी उड़ायी है[१५]। 'भ्रमर तथा 'कमल' का रूपक बाँध

२९ क मधुकर हमहीं क्यों समुझावत—सा ३५ २।
ख कहु 'षटपद' कैसे लेयतु हैं हाथनि के छँग गोद—सा ११ ४।
ग अलि 'षडलि' कालहि बात पठाई—सा २५६९।
१० क विकसित कमलावली, चले प्रपुंज 'चंचरीक'—सा १ २०५।
ख बिबिध सुर 'अलि' गुंज, कूजित मत्त पिक कीरे—कुंभन १८।
११ सघन गुंजन बैठि उन पर भौंरहु बिरमाहिं—सा १ ११८।
१२ क बिथुरि अलकैं रहीं मुख पर बिनहिं बपन सुभार।
देखि पंकजनि चंद के बस मधुप करत सहाय—सा १ २९५।
ख 'कुंचित अलक' बिना बपन के मनो अलि सिसु बसे'-सा १ २१४।
ग. घुंघित केस सुदेस कमल पर मनु 'मधुपनि माला' पहिराई-सा ११६।
घ कुंचित अलक सिलीमुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ान-सा २११६।
१३ क 'रुचिर रोमावली' हरि के चारु उदर सुदेस।
मनो 'अलि-स्र नी' बिराजति बनी पकरहिं भेस—सा ११४।
ख हरि रोमावली पर रही बनत नाहीं परनि।
— — — —
नील कदम अलि-पान पंगति जुरी एक नैमग—सा ११६।
१४ क भाग भीनी बन भमे भार न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करे कमल बँधावै आप—सा १ १९५।
ख सहज प्रीति 'कमल' और मानै—परमा १८२।
१५ मधुकर हम न होहि व बली।
जिन भंज तजि मुख सिरल और मैंग परस कुसुम रस अली—सा ४११६।

मधुर 'बानी' बोलनेवाले पक्षियों में भी 'कपोत' को अष्टछाप-काव्य में स्थान दिया गया है[५२]।

'कोयल', 'कोकिल', 'कोकिला' या 'पिक' नामक पक्षी वर्ण में तो कौए की तरह ही काला होता है परंतु अपने स्वर की मधुरिमा के लिए बहुत लोकप्रिय है। अष्टछापी कवियों ने भी कहीं तो 'मधुर बानी' बोलनेवाले पक्षियों में कोकिल की गणना की है[५३] और कहीं स्वतंत्र रूप से उसकी 'सुहाई गिरा' की,[५४] उसके 'कूजने'[५५] और उसकी 'मधुर बानी' की प्रशंसा की है[५६]। हमारे कवियों ने कोकिल का संबंध मुख्य रूप से वर्षा[५७] और बसंत ऋतुओं से बताया है

५२. हारिल 'परेवा' मृग पिक ऽरु कपोत कुल कुल ई ई।
बोलहिं गहगह मधुर बानी गगन गरजे भूमि—सा परि १ ६।

५३ क पपिहा गुंज, 'कोकिला' बन कूजत अरु मोरनि कियो गाजन।
—सा १२२।

ख ब दावन जमुना तीर बोलत 'पिक' मोर कीर—गोवि २ २।

५४ मंद सुगंध बहै मलयानिल 'कोकिल' कूजत गिरा सुहाई—परमा ५४९।

५५. तैसेई कोकिला' कूजति मधुरित पवन झकोरे—कुंभन १०८।

५६ क घटि मेहरि कोकिल कल बानी ससि मुख प्रभा घरी—सा १०६१।
ख बानी मधुर जानि पिक बोलति कदम करारत काग—सा ११२६।

५७ क कारी घटा पौन झकझोरे लता तरुन लपटानीं।
दादुर मोर चकोर मधुप 'पिक' बोलत अमृत बानी—सा १२६८।

ख अब बरषा को आगम आयौ।

× × ×

दादुर मोर पपीहा बोलत, 'कोकिल शब्द सुनायौ—सा १२६१।

ग ब्रज पर सजि पावस दल आयौ।

× × × ×

चातक, मोर इतर पैदर गन, करत अवाजैं 'कोयल'—सा ११ ४।

घ रिमिझिमि बरखत मेह प्रीतम संग री! चलौ सखी! भीजत सुख लागैगो।
जैसेई बोलत चातक, 'पिक , मोर तैसेई गरज मधुरी तैसोई पवन सीतल लागैगो—कुंभन ६१।

ङ आजु ब्रज पर बरखत लासी।

× × × ×

सकता है। प्रथम वर्ग 'लोकप्रिय' पक्षियों का है जिनमें कोई सुंदर रूप के कारण और कोई विशेष गुण के कारण मानव-समाज को प्रिय रहा है। इस वर्ग के अनेक पक्षियों को पालने का भी प्रयत्न सदा से होता आया है। दूसरा वर्ग उन 'लोक-तिरस्कृत' पक्षियों का है जो अपनी गुणहीनता और दुष्ट स्वभाव के कारण मानव समाज में प्रायः तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं।

अ लोकप्रिय पक्षी—इस वर्ग में कपोत, कुलाल, कोयल, खंजन, गररी, चकवा, चकोर,[४८] चातक, तमचुर, नीलकंठीर, मराली, मोर, लालमुनैया, सारिका,[४९] सुक, हंस, हारिल आदि पक्षी आते हैं। अष्टछाप काव्य में इन पक्षियों में से कुलाल, गररी, नीलकंठीर, मराली, लालमुनैया, हारिल आदि की सामान्य रूप से और शेष की विशेष रूप से चर्चा की गयी है।

'कपोत', 'कबूतर', 'परेवा' या 'पारावत' नामक पक्षी अपनी मिठाई और कुशाग्रबुद्धि-जनित स्मरण शक्ति के कारण लोकप्रिय है। अष्टछाप-काव्य में कुछ स्थलों पर इस पक्षी का अन्य पक्षियों के साथ सामान्य रूप से उल्लेख हुआ है;[४८] अन्यत्र इसकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर इसका वर्णन किया गया है। 'कपोत' की गर्दन सुडौल होने के कारण सुंदर लगती है। कुंभनदास ने एक पद में ग्रीवा की सुडौलता का वर्णन करते समय 'कपोत' का स्मरण किया है[४९]। सूरदास ने 'परेवा'[५०] की प्रीति को आदर्श मानकर उसका बखान किया है[५१]।

४६ बाणभट्ट ने विन्ध्याटवी के पक्षियों में चकोर वन-कुक्कुटी गौरैया, मुर्ग, तीतर आदि का उल्लेख किया है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष सां अ पृ १८८।

४७ बाणभट्ट ने घरेलू पक्षियों में शुक-सारिका हंस-मिथुन, चक्रवाक-युगल एवं सारसी आदि का वर्णन किया है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष, सां० अ, पृ ६०।

४८. क [illegible] दुरि मत्र और कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी—सा १५६।

ख. सुभग सर, सुक सारिका हंस 'पारावत'—सा ४१६५।

४६. क. नासा और 'कपोत ग्रीव छबि दाडिम दसन चुराई—सा १२६।

ख ग्रीवा कपोत' उरज श्रीफल कटि केहरि, भुज मृणाल-कुंभन २६९।

५ जायसी ने 'पद्मावत' में गिरहि परेवा या गिरिगिनि परेवा' का वर्णन किया है—'गिरहर परेवा और करवरहीं'—२६ ३ तथा गिरिगिनि परेवा' आदि अम।

—डा वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मा, संजी व्या, १५ २।

५१ परमि 'परेवा प्रेम की, चित लै चढ़त अकास।

तह चढ़ि तीय की देख्यौ भू पर परत निसास—सा ० १९५।

बनाना, 'कोयल' की चतुरता का प्रमाण है जिसकी ओर सूरदास ने स्पष्ट संकेत किया है[९०]।

'खंजन' या 'खंजरीट' एक बहुत चंचल सुंदर पक्षी होता है जिससे कविगण नेत्रों की उपमा देते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी नेत्रों के उपमान-रूप में 'खंजन' या 'खंजरीट' अनेक स्थानों पर उल्लिखित है[९१]।

'चकोर' और उसकी मादा 'चकोरी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में चंद्रमा के प्रति अनन्य प्रीति रखने के कारण हुआ है[९२]। गोविंदस्वामी के अनुसार, 'चकोर' का बोलना सारस, हंस आदि पक्षियों के स्वर के समान सुखदायी है[९३]।

९० क. ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आऐं बसंत रितु अंत मिलै अपने कुल जाइ—सा १६६१।
ख. करी जु प्रगट कपट पिक की रति आपु काम लगि पीर।
काज सरैं उड़ि मिले आपु कुल, कहा बापुरो की पीर—सा १६७६।
९१ क. कुटिल अलक मुख 'चंचल लोचन' निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मनु 'द्वै खग खंजन' बँधे आइ उड़ि फंदन—सा ७०६।
ख. 'खंजरीट' मृग मीन की गुरुता नैननि सबै निवारी—सा ११६७।
ग. देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन-मीन-मृगज-चपलाई नहिं पटतर इक सैन—सा १८११।
घ. भाल भाव अनुसरति 'भरति द्रग श्रम अंमु कन आने।
जनु 'खंजरीट जुगल जठरागुर लेत सुभग अकुलाने—सा २०५१।
ङ. मनोहर हैं नैनन की भाँति।
खंजरीट मृग मीन बिचारति उपमा को अकुलाति—सा ११४७।
च. 'खंजन नैन' सुरँग रस माते—सा २६६७।
छ. बारौं मीन 'खंजन' आली के 'हगन पर—परमा ६५६।
ज. मदन-कमल अलक मधुप 'नैन खंजरीट।
—सीम अष्ट पद्य कृष्ण ९५।
९२. क ज्यौं चितवत ससि ओर चकोरी' देखत ही सुख मान—सा ११६१।
ख स्याम भए राधा बस ऐसैं।
चातक स्वाति चकोर चंद ज्यौं' चकवाक रवि जैसैं—सा २११८।
ग मदन चंद-कर पान करैं ए चकोर दृगनि माई चैन—कुंभन २६।
९३ सारस हंस 'चकोर' सबै मिलि कूजन हैं सुखरासी—गोविं १७७।

है,७१ अन्यथा मर भले ही जाय, अन्य जल से अपनी प्यास बुझाने की बात वह कभी नहीं सोचता। सूर ने इस अनन्य-विश्वास की ओर संकेत किया है७२ और 'स्वाती' के प्रति उसकी प्रीति को आदर्श माना है७३। चातक को 'पपीहा', 'पपिहा' या 'पपैया' नाम भी हमारे कवियों ने दिये हैं७४। 'पपीहा' के काले रंग का प्रमाण सूर के एक पद से मिलता है७५। कहीं-कहीं पर भगवान के दर्शन के लिए भक्तों की व्याकुलता चातक के सादृश्य से व्यक्त की गयी है७६। पपीहा अन्य पक्षियों की तरह दिन में तो बोलता ही है, कभी-कभी रात में भी बोलता है७७। उसका 'पी-पी' शब्द कानों से उतर कर सीधा हृदय में पहुँचता है७८। प्रिय के वियोग में दुखी प्रेमिका को यह शब्द मानों जलाता है, क्योंकि उससे प्रिय की स्मृति मन्नग हो जाती है७९। अष्टछापी कवियों ने प्रकृति-वर्णन में, अन्य पक्षियों के साथ साथ, चातक का भी नाम लिया है८० ।

७१ आँचे बारहमास पिये पपीहा स्वाति जल'—तुलसी दोहा, १ ७।

७२ मन 'चातक जल तज्यौ स्वाति हित एक रूप व्रत धार्यो—सा १ १२।

७३ स्याम भए राधा बस ऐसें।
चातक स्वाति चकोर चंद ज्यौं, 'चक्रवाक रवि जैसें'—सा २११८।

७४ क पिउ पिउ लागे करें 'पपीहा'—पद्मा सं०ग्री व्या २६ ४।
ख 'पपिहा तउ बोलै पिउ पीऊ—पद्मा सं०ग्री व्या १४२ १।

७५ बहुत दिन जीवौ 'पपिहा' प्यारौ।
बासर रैनि नाम लै बोलत भयौ बिरह जुर कारौ'।
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय चातक' नाम तुम्हारौ—सा १६५५।

७६ तृषित हैं सब दरस कारन चतुर 'चातक' दास—सा १ २१२।

७७ क रात 'पपीहा बोल्यौ री माई—परमा ५११।
ख रे पापी तू 'पंखि पपीहा' पिव पिव कर अधराति पुकारत—सा ३३३८।

७८ उपवन सघन 'पपैया पिवु पिवु करे मधुव्रत गुंजमाल सरस उपंग।
—गोविं १८७।

७९ क पुनि तहँ पापी 'पपिहा' दई—नंद, रूप पृ १६।
ख 'चातक' पिक, मोर बोलत सुनि-सुनि मदननु उरिय—कुंभन १५।

८० क. मोर कोकिल हंस 'चातक', मधुप बोलत कीर—गोविं १६५।
ख 'पपिहा' गुंज, कोकिल बन गूँजत अरु मोरन किया गाजन—सा ९१२।
ग. दादुर मोर पपीहा बोलत नान्ही नान्ही बूँद फुहार—चतु १११।

चकोर के संबंध में अंगार खाने की बात प्रसिद्ध है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है[६४]।

'चकवा', 'कोक', 'चक्रवाक' या 'चक्रवाक' पक्षी के लिए सामान्यतया जल के किनारे रहने और रात्रि में अथवा चंद्र-दर्शन से दुखी होने की बात हमारे कवियों[६५] ने लिखी है[६६]। रात में यह अपनी मादा 'चकई', 'कोकी' या 'चक्रवाकी' से बिछुड़ जाता है[६७]। इसी से सूरदास ने 'चकई' को उस दिव्य 'चरन-सरोवर' पर चलने की सलाह दी है जहाँ कभी 'भ्रम-निशा' होती ही नहीं[६८]। सूर्योदय होने पर यह पक्षी और इसकी मादा, दोनों बहुत प्रसन्न होते हैं; क्योंकि तभी दोनों का मिलन होता है[६९]। अतएव सूरदास ने चक्रवाक का रवि के 'बस' में ही सदा रहना बताया है[७०]।

प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठा के आदर्श पर चलनेवाले, चकोर, चक्रवाक आदि पक्षियों के क्रम में चातक भी आता है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार यह पक्षी केवल स्वाती नक्षत्र में बरसनेवाले पानी को पीकर ही अपनी प्यास बुझाता

६४ पद-जल-मद-चकोर बिमुख मन खात अँगारमति—सा० १ २६६।
६५. क. कालिदास टीका मल्लिनाथ उत्तरमेघ श्लो० २१।
ख. चकई चकवा चलि कराहीं—'पद्मावत' ११।५।
६६ देखो माई, रूप-सरोवर साजो।

× × ×

मुख चक्रवाक बिलोकि बदन बिधु' बिछुरि रह अनबोल—सा० १ ८९।
६७ अपने रस को लखि 'चक्रवाकी बिछुरि चलति सुख चाहि—कुंभन १६०।
६८. चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम बियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नहिं कबहुँ, सोइ सायर सुख जोग—सा० १ ३३७।
६९ क. भोर भयो जागो नंदनंदन।

× × ×

चंद मलिन चकई रति राती—सा० १ २११।
ख. भोर भयो जागे नँदनंद।
तात निसि बिगत भई चकई आनंदमई तरनि की किरनि तें
चंद भयो मंद—सा० १२१।
७० स्याम भए राधा बस ऐसें।
चातक स्वाति चकोर चंद ज्यों, चक्रवाक रवि जैसें—सा० २११८।

मोर मुकुटधारी होने की बात तो प्रसिद्ध ही है,[९०] अतएव यह सम्मान या दुलार पाकर, सूरदास की गोपियों की सम्मति में, 'मोरवा' बहुत ढीठ हो जाते हैं[९१]। मोरपंखों के 'व्यजन' बनाये जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है जिसे देखकर सिंहासनासीन कृष्ण, व्रजवास की चर्चा न उठने देने के लिए, प्रसंग बदल देते हैं[९२]। सर्प और मोर में जन्मजात शत्रुता रहती है[९३] और उसे देखते ही यह खा जाना चाहता है। सूरदास ने मयूर की इस प्रकृति का भी वर्णन किया है[९४]।

'लालमुनिया' या 'लालमुनैया' नामक लाल चिड़िया का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने किया है। यह चिड़िया बहुत छोटी होती है और एक पिंजड़े में कई-कई 'लालमुनियाँ' पाल ली जाती हैं। कृष्ण के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए जानेवाली, वस्त्राभूषण से अलंकृता गोपियों को सूरदास ने पिंजड़ा खोलकर एक साथ उड़नेवाली 'लालमुनियों' जैसा बताया है[९५]। वृन्दावन

९ मुनि सखि 'ए बड़भागी मोर'।
जिनि पाँखनि कौ मुकुट बनायौ सिर धरि नंदकिसोर—सा ४७७।

९१ हमारे माई, मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत त्यौं त्यौं रटत खरे।
करि करि प्रगट पंख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तें न बदत बिरहिनि कौं मोहन ढीठ करे—सा ११२९।

९२ सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरिहि तैं सिंहासन बैठे सीस नाइ मुसकात।
मोर पच्छ को व्यजन बिलोकत बहरावत कहि बात—सा ११६१।

९३ कहलाने एकत बसत 'अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोबन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ— बिहारी बोधिनी' ५६५।

९४ क जननी मथि सनमुख संकर्षन खैंचत कान्ह खस्यौ सिर चीर।
मनहु सरस्वति संग उभय दुज कल मराल 'अरु नीलकंठीर'।
'सु दर स्याम गही कबरी कर मुक्तमाल गही बलबीर।
सूरज मर लैबे आप अपनौं' मानहु लेत निबेरे सीर—सा १०-१६१।
ख 'कबरी ग्रसत तिरंछी अहि भ्रम' बरन सिखीमुख लाग—सा ११९६।

९५ ते अपनैं अपनैं मन निकसीं भाँति भली।
मनु लाल मुनैयनि पाँति' पिंजरा तोरि चली—सा १ ७४।

'केकी'[८१] 'बरह', 'बरहो' 'मयूर', 'सिखंडी', 'सिखी'[८२] आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में 'मोर' नामक प्रसिद्ध पक्षी के लिए हुआ है। इस पक्षी को वर्षा ऋतु बहुत प्रिय है। वर्षा में यह अन्य पक्षियों के साथ बोलने लगता है[८३]। अष्टछापी कवियों के अनुसार वर्षा में घटा के घिर आने पर मोर सदा कोलाहल करते हैं[८४]। विरहणियों के लिए मोर का बोलना वर्षागम-सूचक[८५] होने के कारण दुखदायी भी है। इसी कारण कृष्ण-वियोग में विकल ब्रजबालाओं को 'मोर' बैरी जैसे लगते हैं[८६]। मोर के पंख चंद्राकृति चिह्नों के कारण बहुत सुंदर लगते हैं, इन्हें 'मोरचंद्र',[८७] 'मोर चंद्रिका'[८८] 'मोरचंदवा'[८९] आदि कहते हैं। श्रीकृष्ण के

८१ बीच बीच मुरली धुनि सुनियत केकी पिक चातक तिहिं ठाँइ।
—चतु १२१।

८२. देखि सखी बन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँदनंदन।
सिखी सिखंड सीस' मुख मुरली, बन्यौ तिलक, उर चंदन—सा ४७१।

८३ क. 'केकी' कोक, कपोत और खग करत कुलाहल भारी—सा २८५१।
ख दादुर 'मोर' पपीहा बोलत नान्हीं नान्हीं बूँद सुहाई—चतु० १११।
ग. बोलत मोर' कोकिला कूजति देखीये दामिनि अति दरसै री।
—कुंभन २१२।

८४ क. बहुरि बन बोलन लागे मोर।
करत सँभार नँदनंदन की सुनि बादर की घोर—सा ११२५।
ख देखियत स्याम घटा घन घोरनि चित का पाँति दिखावहिं।
देखत 'मोर' कुलाहल सुनि सुनि हरषि हिंडोरनि गावहिं—सा ११८०।

८५. सिखिनि' सिखर चढ़ि टेर सुनायो।
बिरहिनि सावधान ह्वै रहियो सजि पावस दल आयौ—सा ११९८।

८६ क हमारे माई, 'मोरवा' बैर परे।
घन गरजत बरस्यौ नाहिं मानत त्यौं त्यौं रटत खरे—सा ११३६।
ख कोउ माई, बरजै री इन मोरनि।
टरत बिरह रची न परै छिन सुनि धुन होत करोरनि—सा १११।

८७ मुरली मधुर चेप काँपा करि मोर चंद्र' फँदवारि—सा ११८५।

८८. क कंचित केस मयूर चंद्रिका मंडल सुमन सुपाग—सा १७७७।
ख नाहिन 'मोर-चंद्रिका माथे मौहिन उर बनमाल।
नहिं सोभित पुहुपनि के भूषन सुन्दर स्याम तमाल—सा ११६२।

८९ कब देखौं इहिं भाँति कन्हाई।
मोरनि के चँदवा माथे पर' काँध कामरी लकुट सुहाई—सा १२१७।

मोर मुकुटधारी होने की बात तो प्रसिद्ध ही है,[६०] अतएव यह सम्मान या दुलार पाकर, सूरदास की गोपियों की सम्मति में, 'मोरवा' बहुत ढीठ हो जाते हैं[६१]। मोरपंखों के 'व्यजन' बनाये जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है जिसे देखकर सिंहासनासीन कृष्ण, ब्रजवास की चर्चा न उठने देने के लिए, प्रसंग बदल देते हैं[६२]। सर्प और मोर में जन्मजात शत्रुता रहती है[६३] और उसे देखते ही वह खा जाना चाहता है। सूरदास ने मयूर की इस प्रकृति का भी वर्णन किया है[६४]।

'लालमुनिया' या 'लालमुनैया' नामक लाल चिड़िया का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने किया है। यह चिड़िया बहुत छोटी होती है और एक पिंजड़े में कई-कई 'लालमुनियाँ' पाल ली जाती हैं। कृष्ण के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए जानेवाली, वस्त्राभूषण से अलंकृता गोपियों को सूरदास ने पिंजड़ा छोड़कर एक साथ उड़नेवाली 'लालमुनियों' जैसा बताया है[६५]। वृन्दावन

६० सुनि सखि 'ध बड़भागी मोर'।
जिनि पाँखनि को मुकुट बनायो सिर धरि नंदकिसोर—सा ४७७।

६१ हमारे माई, मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहिं मानत त्यौं त्यौं रटत खरे।
करि करि प्रगट पंख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तें न बदत बिरहिनि कौं मोहन ढीठ करे—सा ३३२६।

६२ सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरिहि तें सिंघासन बैठे सीस नाइ मुसकात।
मोर पच्छ को व्यजन बिलोकत बहरावत कहि बात—सा ३९६१।

६३ कहलाने एकत बसत 'अहि मयूर' मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ—'बिहारी-बोधिनी' ५५५।

६४ क सजनी मधि सनमुख संकर्षन सैंचत आनंद लख्यौ सिर मौर।
मनहु सरसति संग उभय दुज, कल मराल 'अरु नीलकंठौर'।
सु दर स्याम गही कबरी कर' मुक्तमाल गही बलबीर।
सूरज भए लेबे अप अपनौ' मानहु लेत निबेरे मौर—सा १ १९१।

ख 'कबरी मनत किरीटी अहि भ्रम' बरन सिखीमुख लाग—सा ३३२६।

६५ ते अपनैं अपनैं मल निकसीं भाँति भली।
मनु लाल मनैयनि पाँति' पिंजरा तोरि चली—सा १ २४।

की हरित भूमि में 'बालमुनियों' के मुंड रहने की बात भी सूरदास के एक पद में मिलती है[१६]।

'सारिका', 'सारी' या 'मैना' भी पिंजड़े में पाली जानेवाली चिड़िया है[१७]। इसकी वाणी मधुर होती है और सिखाने पर यह मनुष्य की बोली तोते की तरह ही सीख जाती है। गो० तुलसीदास की जानकी तोते की तरह पढ़ाने के लिए सारिका को भी सोने के पिंजड़े में पालती हैं[१८]। हमारे कवियों ने 'शुक-सारिका' के साथ-साथ रहने का वर्णन किया है और श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के 'साकेत' का 'कीर' तो लक्ष्मण के द्वारा सिखाये जाने पर 'सलोनी सारिका' की कामना भी करता है[२०]। परंतु अष्टछापी कवि इन पक्षियों के पढ़ाये जाने की बात न कह कर वर्षा ऋतु में अन्य खगों के साथ इनके बोलने का ही वर्णन करते हैं[१]।

'कीर', 'तोता', 'शुक', 'सुअना', 'सुआ', 'सुवा' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी कदाचित इसीलिए पाला जाता है कि वह पढ़ाये जाने पर कुछ शब्दों का स्पष्ट उच्चारण कर लेता है। अष्टछापी कवियों ने भी 'शुक' के पढ़ाये जाने की बात का उल्लेख किया है और तोते को भगवन्नाम पढ़ाते-पढ़ाते तो 'गनिका' के तर तक जाने की बात उन्होंने लिखी है[२]। तोते का रंग हरा होता है जिसके कारण

१६ वृन्दावन कालिंदी कैं तट हरित सोभित भूमि।
तहँ 'बाल मुनियाँ झुंड' बैठे मत्त अलि कल गुंज—सा० परि० १०६।

१७ कालिदास टीका मल्लिनाथ उत्तर मेघ श्लो० २२।

१८ 'शुक-सारिका जानकी ज्याये कनक पींजरन्हि राखि पढ़ाए।
—मानस, बाल, ३३८।

१९ मृगनारी सौं बूझती बूझैं शुक-सारी—सा० ११२।

२० तदपि तुम यह कीर क्या कहने चला?
कह अरे क्या चाहिए तुमको भला?
जनकपुर की राजकुंज विहारिका
एक सुकुमारी सलोनी सारिका—'साकेत' प्रथम सर्ग, पृ० २३-२४।

१. ऐसो जो पावस रितु प्रथम सुरति करि माधो जू आवहिं।
× × ×
हंस शुक, पिक सारिका अलि गुंज नाना नाद—सा० ३३३४।

२ क कीर पढ़ावत' गनिका तारी—सा० १-६७।

सूरदास ने कृष्ण के गले में पड़ी हुई तुलसी-माला के उपमान-रूप में 'सेनिका सुक-जाल' का स्मरण किया है[3]। नख-शिख-वर्णन में 'कीर' को नासिका का उपमान बताया जाता है[4]। बसंत-वर्णन में अनेक पक्षियों के साथ 'कीर' या 'सुक' के बोलने की बात भी उन्होंने कही है[5]। अष्टछापी कवियों के अनुसार सांसारिक सुखों की ओर जीव उसी प्रकार आँख मूँदकर आकृष्ट होता है जैसे 'तोता' सेमर के फूल की ओर, उसकी निस्सारता देखकर इसे निराशा भी होती है,[6] फिर भी वह सचेत नहीं होता। संसार की स्वार्थ और कपटपूर्ण प्रीति भी सुक-सेमर के संबंध जैसी इन कवियों ने बतायी है[7]। संसार में जन्म लेकर अपनी मूर्खतावश प्राणी का 'अपुनपौ' अथवा 'आत्मशक्ति' भूल जाना अष्टछापी कवियों ने 'नलिनी के सुक' अथवा 'सुवना' के उदाहरण से समझाया है जो उलटा लटकते ही अपनी उड़ने की शक्ति को भूल जाने के कारण दूसरों के अधीन हो जाने पर दुख भोगता है[8]।

ख 'सुवा पढ़ावत' गनिका तारी—सा १-८२।
ग गनिका किए कौन व्रत-संजम सुक हित नाम पढ़ावै'—सा १ ११२।

३ स्याम-उर दुकूल-दुति मिलि लसति तुलसी माल।
तड़ित घन संजोग मानो 'सेनिका सुक-जाल'—सा १२७।

४ क अधर अरुन अनूप नासा निरखि जन-सुखदाइ।
'मनो सुक फल बिंब कारन, लेन बैठ्यो आइ'—सा १ २१४।
ख नासिका सुक' नैन खंजन करत कवि सरमाइ—सा १७५५।
ग. तिल प्रसून 'सुक नास' नयन जुग खंजन मीन कुरंग—कुंभन १६।

५ क हंस 'सुक' पिक सारिका अलि गुंज नाना नाद—सा ११२८।
ख गुंजत मधुप 'कीर' पिक कूजत ठौर-ठौर आनन्द उमे—चतु ७२।

६ क ज्यों 'सुक सेमर-फूल बिलोकत' जात नहीं बिनु खाए—सा० १ १।
ख सेमर-फूल सुरंग अति निरखत मुदित होत खग भूप'।
परसत चोंच तूल उधरत मुख, परत दुःख कैं कूप—सा १ १२।

७ क करत दु 'सुवा होत सेमर को' अंतहिं कपट न बचिहौ—सा १-५६।
ख पट ब्रज-प्रीति सदा सेमर ज्यौं' पावत ही उड़ि जात—सा ११९३।

८ क बिकल भयो 'नलिनी के सुक ज्यौं' बिनु गुन मोहि गह्यो—सा १ ४९।
ख अपुनपौ आपुन हीं बिसरयौ।
× × × ×
सूरदास 'नलिनी को सुवना' कहि कौनैं जकरयौ—सा २ ११।

'मराल' अथवा 'हंस' एक प्रसिद्ध पक्षी है जो सरस्वती का वाहन होने के कारण भारत में सदा से सम्मान पाता रहा है। इसका प्रसिद्ध वासस्थान कैलास पर्वत पर स्थित मानसरोवर माना जाता है । कृष्ण का वृन्दावन छोड़कर मथुरा जाना सूरदास की दृष्टि में वैसा ही है जैसे हंस मानसरोवर छोड़कर अन्यत्र चला गया हो[१०] । हंस के मोती या 'मुक्ताहल' चुगने की बात कवियों में प्रसिद्ध रही है[११]। हंस का उज्ज्वल श्वेत वर्ण भी कवियों का वर्ण्य विषय रहा है[१२]। सूरदास के एक पद में बलराम को उज्ज्वल वर्ण के कारण 'मराल' ही कहा गया है[१३]। कवि प्रसिद्धि है कि हंस नीर क्षीर विवेकी और कमल-दल-लोभी होता है। उसके स्वभाव की इस दूसरी विशेषता का सूरदास ने एक पद में स्पष्ट उल्लेख किया है[१४]। गज की तरह हंस और हंसी की गति को सुंदर मानकर उससे सुंदर चाल की उपमा जायसी आदि के साथ अष्टछापी कवियों ने भी दी है[१५]।

९. क 'मानसरोवर छाँडि हंस तट' काग-सरोवर न्हावै—सा २ ११ ।
ख मानसरोवर हंस न रावत'— गीवि ६ ।
१० पद सुन नंद अहीर के ।
× × × ×
उड़ि आए तजि हंस मात मनु मानसरोवर तीर के—सा १ ४११ ।
११ क अब तजि हंस चुगे मुक्ताहल' मीन कहाँ उड़ि जाहि—सा १२१ ।
ख 'हंस उज्ज्वल पंख निर्मल अंग मलि-मलि न्हाहिं ।
'मुक्ति मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि-चुनि खाहिं'—सा १ ३३८ ।
१२. 'हंस उज्ज्वल पंख निर्मल'—सा १ ३३८ ।
१३ जननी मथि सनमुख संकर्षन' खैंचत कनक कलसौ सिर चीर ।
मनहुँ सरस्वति संग उभय दुज, कल मराल' अरु नीलकंठीर—सा १ ४११ ।
१४ रतन जटित पग सुभग पाँवरी नूपुर परम रसाल ।
मानहुँ चरन-'कमल-दल लोभी बैठे बाल मराल—सा १८६१ ।
१५. क लंक सिंघिनी सारँग नैनी । 'हंस गामिनी' कोकिल बैनी—सा २८८ ।
ख लाल उन सुनी मनोहर बंसी ।
× × × ×
देखे आईं गीत सरोवर मगन भई 'गति हंसी —सा २११५ ।
ग गज गति मंद मराल विरोधी —सा १०११ ।
घ लाल गिरिधरलाल मानिनी मनावन नीकि बोलत प्रिया 'हंस गुरु गामिनी'—पनु ३१ ।

स्त्रियों के नूपुर, 'किंकिनी' जैसे आभूषणों की मधुर ध्वनि को 'मराल छौने' के मधुर 'रव' के समान हमारे कवियों ने कहा है[१६]। कभी-कभी 'हंस' का सांकेतिक अर्थ 'प्राण' अथवा 'आत्मा' में भी इन्होंने लगाया है[१७]।

अब रह गये इस वर्ग के 'गररी', 'तमचुर', 'कुलाल', 'नीलकंठीर', 'मराही', 'सुही', 'हारिल' आदि पक्षी जिनका सारे अष्टछाप-काव्य में एक-एक दो-दो बार ही उल्लेख हुआ है। 'गररी' का लड़ना सूरदास ने असगुन-सूचक बताया है[१८]। 'तमचुर' को प्रचलित भाषा में 'मुर्गा' कहते हैं। यह पक्षी दस-पाँच फीट से अधिक नहीं उड़ पाता। यों तो यह किसी भी समय बोल सकता है, लेकिन सामान्यतया उषाकाल में इसके बोलने के क्रम में निरंतरता रहती है। अष्टछापी कवियों ने अरुणोदय के आसपास ही इसके बोलने का उल्लेख किया है[१९]। कृष्ण-वियोगिनी

१६ क मनो मधुर 'मराल छौना' किंकिनी कल राव—सा १०७।
ख रतन-जटित पग सुभग पाँवरी नूपुर परम रसाल।
मानहुँ चरन 'कमल-दल-लोभी बैठे' बाल मराल—सा १७२१।
१७ क जा दिन 'हंस' तजी यह काया प्रेत-प्रेत कहि भागी—सा १७४।
ख बिछुरयौ 'हंस' काय घटई तें फिरि न आव घट माहीं—सा २२६।
१८. फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर गररी करति लराई'।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ कुसगुन बहुतक पाई'—सा ५४१।
१९ क भोर भौर तमचुर के रोल—१०६४।
ख भोर भयो जागौ नंदनंद।
× × × ×
अवन गगन 'तमचुरनि' पुकारयो—सा १ २११।
ग. भोर भयो जागौ नंद-नंद।
× × × ×
तमचुर खग रोर, अलि करें बहु सोर—सा १।
घ भोर भयो जब 'तमचुर' बोले—परमा १६६।
ड 'प्रात होन लागी' सुनि सजनी अबही 'तमचर बोलन'।
—गोम अष्ट पदा कृ चा २४।
च कहाँ धौं कहाँ तुम रैनि गँवाइ लाल अवन उदय भाय।
कौन संकोच स्याम घन सुंदर तमचुर बोलत उठि धाय।
—गोम अष्ट पदा, कुंभन ७।

गोपियों को 'तमचुर का बोल' अप्रिय लगने की बात परमानंददास ने कही है[१]। 'कुलाल' नामक पक्षी भी 'तमचुर' की ही जाति का होता है जिसे 'जंगली मुर्गा' कहते हैं। अष्टछापी कवियों में से केवल सूरदास ने इसका उल्लेख किया है[२१]।

'नीलकँठीर' और 'भरही' का उल्लेख भी आलोच्य कवियों में से केवल सूरदास के काव्य में मिलता है। 'नीलकँठीर' संभवतः 'नीलकंठ' अथवा उसी से मिलता-जुलता नीलवर्ण का पक्षी है जिसका स्मरण सूरदास को श्रीकृष्ण का श्याम वर्ण देखकर ही आता है[२२]। 'भरई' संभवतः 'भारद्वाज' पक्षी है जिसका अंडा, महाभारत के भयंकर युद्ध में भी नष्ट होने से बच जाने का उल्लेख सूर ने किया है क्योंकि उस पर गज का घंटा टोप' की तरह आ गिरा था। इस प्रसंग में सूरदास ने भगवत्कृपा से घोर संकट में भी रक्षित रहने की बात कही है[२३]। 'मुही' का उल्लेख 'सूरसागर' में वर्षाकालीन पक्षियों के साथ हुआ है[२४]।

'हारिल' पक्षी अपने हरे रंग के कारण 'हरियल' भी कहलाता है। सूरदास ने इसकी चर्चा वर्षा ऋतु में बोलनेवाले पक्षियों के साथ की है[२५]। इस पक्षी के स्वभाव की उल्लेखनीय विशेषता है हर समय लकड़ी का टुकड़ा या तिनका अपने पंजों में दबाये रखना। गोपियों ने अपने लिए कृष्ण को 'हारिल की लकड़ी' सी बताकर संकेत किया है कि हमने किसी लोभ, स्वार्थ या कामना से नहीं, अपने सहज स्वभाव के अनुसार ही नंदनंदन को दृढ़ता से पकड़ रखा है[२६]।

सुन री सखी, अब रंग कीजे सुन 'तमचुर' नाग बोले—परमा ५४१।

२१ ऐसैं स्यान कुलाल क पाछ लगि धावै—सा २-९।

२२ मनौं सुरसरि संग उमग जुग बग मराल अरु 'नीलकँठीर'।
सुंदर स्याम गरे बनमाल मुक्त माल गरे बलबीर—सा १ १६१।

२३ ज्यों भारत भरही के अंडा राखे गज के घंट तरी।
सूरश्याम तोहि कर काकी निसि बासर ही तपन हरी—सा ४१५६।

२४ कैसे कै भरिहौ दिन सावन के।

× × × ×

दादुर मोर सोर चातक पिक सुनि निसा मिलावन के—सा ३३२१।

२५ हारिल चकवा चुग पिक चातक बोलत द्रुम कुल ब द—सा परि १ ९।

२६ हमारे हरि हारिल की लकरी।

ग. लोक-तिरस्कृत पक्षी—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जो पक्षी इस वर्ग में आते हैं, उनमें उलूक, काग, गीध, बक, सचान, सारस आदि मुख्य हैं। यद्यपि इन पक्षियों से प्रत्यक्षतः मानव-समाज का कोई अहित नहीं होता जिससे इनका तिरस्कार किया जाय और 'कौआ' तो हर घर की छत पर दिन में किसी भी समय देखा जा सकता है, फिर भी इनमें से किसी के प्रति हमारे मन में वह सद्भाव नहीं रहता जो कपोत कोयल, खंजन चकवा, चकोर, चातक, मोर, सारिका, सुक, हंस आदि के लिए रहता है। यों तो प्रायः सभी पक्षी कीड़े-मकोड़े खाते हैं, परंतु इस लोक-तिरस्कृत वर्ग के प्रायः सभी पक्षी मांसाहारी हैं, कुछ मछलियाँ खाते हैं, कुछ छोटी चिड़ियों या चूहे आदि छोटे जंतुओं का शिकार करते हैं और कुछ मृतकों का मांस खाते हैं जो संभवतः उनके प्रति हमारी तिरस्कार-भावना का प्रथम कारण है। इस वर्ग के पक्षियों के तिरस्कृत होने का दूसरा कारण, प्रथम वर्गीय पक्षियों जैसा रूप-गुण आदि इनमें न होना भी हो सकता है।

तिरस्कार की दृष्टि से देखे जानेवाले पक्षियों में सर्वप्रथम है 'उलूक' या 'उल्लू'। इसका बोलना अशुभ माना जाता है और घर की छत पर बैठ जाना तो सर्वनाश का ही सूचक समझा जाता है। यह पक्षी सामान्यतया रात के अँधेरे में ही निकलता है। सूरदास ने उलूक की इस प्रवृत्ति का उल्लेख एक विनय पद में करते हुए बताया है कि आकाश में सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश के रहते हुए भी 'उलूक' अपनी टेव के अनुसार उसको पसंद नहीं करता[२७]।

'काग', 'कौआ', 'वायस' आदि नामों से प्रसिद्ध पक्षी अपने काले रंग और कर्कश स्वर के कारण निरादृत रहता है। प्रथम अर्थात् रंग-दोष के कारण हंस के साथ कौए का रहना अष्टछापी कवियों को कृष्ण-कुब्जा[२८] और कृष्ण

मन-क्रम-बचन नँदनंदन उर यह दृढ़ करि पकरी —सा. ११८८।

२७. क. ज्यौं दिनकरहिं उलूक न मानत' परि आइ यह टेव—सा. ११।

ख. रवि को तेज उलूक न जानै तरनि सदा पूरन नभ ही री—सा. ११११४।

२८. क. कंस बधी कुबिजा कैं काज।

और नारि हरि कौं न मिली कहुँ कहा गँवाई लाज।

जैसें 'काग हंस की संगति' लहसुन संग कपूर—सा. ३१५२।

शिशुपाल[११] जैसा लगा है। और द्वितीय दोष अर्थात् कर्कश स्वर के कारण वह कोकिल के सामने सदैव तिरस्कृत होता रहा है[३]। यह पक्षी मूर्ख इतना होता है कि कोयल द्वारा सदैव ठगा जाता है और अपने बच्चे 'सेने' का भ्रम वह 'कौए' की माता से ही सदैव कराती है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों ने ऊधव से उनके ऐसे ही व्यवहार की ओर संकेत किया है[३]। 'काग' को अष्टछापी कवियों ने मृतक मांस का भक्षी भी बताया है[१२]। अपना स्वभाव न बदल पानेवाले कुटिलजनों का वर्णन करते समय भी 'काग' का स्मरण उन कवियों ने किया है[१३]। बायीं ओर काग का बोलना,[१४] माथे पर होकर 'काग' का उड़ना[१५] अथवा रात में 'काग का बोलना[१६] अष्टछापी कवियों ने कुसगुनों में

क 'हंस काग को संग भयो —सा १४१८।

ग हेम कॉच 'हंस काग' लरि कपूर जैसी कुविजा अरु कमलनयन संग बनी ऐसी—सा १६५१।

घ ऊधौ जाक माथैं भाग।
बिलपत छाँड़ि सकल गोपीजन चेरी चपल सुहाग।
गोरी भली बनी है उनकी, 'राजहंस अरु काग'—सा १६५७।

२६ द्विज, कहियौ हरि को समुझाइ।
परमिति गये लाज तुम्हीं कौं 'हंस को भाग काग लै जाइ—सा ४१७।

१ मनी मधुर जान पिक बोलहि 'कदम करारत काग'—सा ११२६।

११ क करि निज प्रगट कपट पिक की रति आपने काज लगि पीर।
काज सरे तब गये कहाँ धौं का बायस की पीर—सा १६४६।

ख ज्यौं कोइल सुत 'काग जिवावै', भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आये बसंत रितु अन्त मिले अपने कुल जाइ—सा १६६१।

ग कोकिल कपट कुटिल बायस छलि फिरि नहिं उहिं बन जाति।
—सा १७५१।

१२. क. या देही को गरब न करिए स्यार काग' गिध खैहैं—सा १-८६।

ख बहै सन-गति जनम मूठौ स्वान 'काग' न खाइ—सा १११६।

१३. कागहि कहा कपूर चुगाएँ' स्वान न्हवाए गंग—सा १११२।

१४ बाएँ काग, दाहिनैं खर-स्वर व्याकुल घर फिरि आई।
सूर स्याम को टरति जननी नैकु नहीं मन लाति—सा ५४।

१५. माथे पर ह्वै काग उडान्यो कुसगुन बहुतक पाए—सा ५४१।

१६ रोवें वृषभ तुरग अरु नाग स्यार दौस निसि बोलें काग'—सा १२८६।

गिनाया है। एक 'कौए' के मरने पर दूसरों का भारी ढेर 'कौं कौं' करके मच जाना भी सूर के एक पद में वर्णित है[१७]। किसी संबंधी के आगमन का शकुन 'कौए' को उड़ाकर जानने का विश्वास भारतीय समाज में प्रचलित है। अष्टछाप काव्य में इस विश्वास की ओर भी अनेक पदों में संकेत किया गया है[१८]। काग के द्वारा इस प्रकार के 'सगुन' जानकर प्रियतम कृष्ण के आने का समाचार पाने के लिए गोपियाँ 'वायस' को दिनभर उड़ाती रहती हैं जिससे उनकी बाहें थक जाती हैं[१९]। श्राद्धपक्ष में 'कौए' को बलि खिलाने की प्रथा है जिसकी ओर बिहारी ने भी संकेत किया है[२०] परंतु सूरदास के अनुसार कृष्ण के वियोग से पीड़ित ब्रज में 'वायस' 'बलि' भी नहीं खाता[२१]।

१७ जैसें काग काग के मूएँ काँ काँ करि उड़ि आएँ। —सा० १२९८।

१८ क. बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन राम मिलैं अब मोकौं दोउ अमोलक मोती।
इतनी सुनत सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई सुख भाग्यौ सुत सु आनि घर पैठ्यौ—सा० ९।१६४।

ख. हौं बलि जाउँ आजु सखी हरि आवन की बात री।
सगुन मैं ऐसो ही सुन्यौ घर आँगन बोलै काग री—सा० २८५६।

ग. जबहिं कह्यौ ऊधौ मधुबन तैं गोपिनि सबहिं सुनाइ गए।

× × ×

उठे सब काग उड़ावन लागी हरि आवत उड़ि जात नहीं।
समाचार कहि कहिं सुनावति उड़ि बैठत मुनि आँगन ही।
सखी परस्पर यह कहति बातें आजु स्याम कै आवत हैं।
किधौं सूर कोउ ब्रज पठयौ आजु सबहिं कै पावत हैं—सा० ३९५०।

घ. सीं न उड़ि न जाइ रे काग।
जौ गुपाल गोकुल कौं आवें तौ ह्वै हौं बड़ भाग।
दधि ओदन भरि दौनी दैहौं अरु अंचल की पाग—सा० ३८५९।

१९ बाँह थकी बारंबार उड़ावत कब हरी घनटारि—सा० ३९८३।

२० क. दिन दस आदर पाइके करि लै आपु बखान।
जौ लौं काग सराधपख तौ लौं तौ सनमान—बिहारीबोधिनी ६६०।

ख. मरत प्यास पिंजरा परो सुआ दिनन के फेर।
आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर—बिहारीबोधिनी ६६८।

२१ कहाँ लौं कहिये ब्रज की बात।

के उपमान-रूप में भी 'बग-पाँति' का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है[४९]। कृष्ण की 'रोमावली' भी सूरदास को 'बग पाँति' सी जान पड़ती है[५०]। भजन-भाव से रहित गृहस्थ के सारहीन जीवन को 'सूरसागर' के एक पद में 'बग-बगुली' के जीवन-सा बताया गया है[५१]।

'सचान' या 'बाज' शिकारी पक्षी होता है। इसे 'शिकरा' भी कहते हैं। इसके द्वारा अन्य पक्षियों का शिकार कराया जाता है। इसे सिखाकर आकाश में उड़ाते हैं और यह छोटे पक्षियों को पकड़ कर ले आता है। बिहारी ने एक दोहे में 'बाज' की इस प्रकृति की ओर संकेत किया है[५२]। सूरदास भी एक निरीह पक्षी पर आक्रमण के लिए तैयार 'सचान' का उल्लेख करते हैं[५३]।

'सारस' पक्षी वर्षा ऋतु में प्राय जल से भरे हुए खेतों और अन्य जलाशयों के निकट दिखायी देता है। लंबी टाँगों वाले इस पक्षी की चोंच भी लंबी होती है जिससे यह जल-जीवों से अपना पेट भरा करता है। जायसी ने 'सारस' के जोड़े के साथ-साथ रहने की बात लिखी है और यह भी प्रसिद्धि है कि एक की

ग बग पंगति छहानी—कुंभन १४६।
घ इन्द्र धनुष 'बग पाँति' स्याम छवि लागत है सुखकारी—परमा ७६१।
४९ क स्याम-हृदय जलसुत की माला' अतिहिं अनूपम छाजै।
मनहुँ 'बलाक-पाँति' नव घन पर यह उपमा कछु भ्राजै—सा १८७।
ख है बग पंगति राजति मानौ, मुक्तमाल सुभी—सा १८७।
ग. जनु बग-पाँति माल मोतिनि की—सा ११९५।
घ इन्द्रधनु बनमाल मोतिनि हार बलाक कोर—कुंभन ६१।
५. रोमावली सुभग बग पंगति जाति नाभि ह्रद भुँइ—सा १७७५।
५१ 'भजन बिनु' कूकर-सूकर जैसी।
× × ×
बग-बगुली' अरु गीध-गीधिनी आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहू कैं गृह सुत दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ—सा २१४।
५२. स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा देखु विहंग ! बिचारि।
बाज' पराये पानि परि तूँ पंछीहिं न मारि—'बिहारी बोधिनी', ४६६।
५३ हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत 'ऊपर ढुक्यौ सचान —सा १२९७।

मृत्यु होने पर दूसरा भी आजीवन वियोगी रहता है[५४]। अष्टछापी कवियों ने सारस के संबंध में अधिक नहीं लिखा है, सरोवर या जलाशय-तट के पक्षियों में उसको गिनाकर ही उसकी चर्चा समाप्त कर दी है[५५]।

पौराणिक पशु-पक्षी और कीट—

अष्टछाप-काव्य में कुछ ऐसे पशु पक्षी कीट आदि का उल्लेख हुआ है जो रूप, रंग अथवा आकार में इस जगत के प्राणियों से मिलते-जुलते हैं; परंतु अपनी विशेषताओं के कारण इनसे भिन्न भी हैं। इन पशु-पक्षियों का वर्णन पुराणों तथा प्राचीन महाकाव्यों में आया है। सूर आदि अष्टछापी कवियों ने भी पौराणिक कथाओं के प्रसंग में इनका नाम लिया है। गुण और शक्ति में ये सब इस जगत के समवर्गीय प्राणियों से बहुत बड़े बड़े बताये गये हैं। अकार-क्रम से उनके नाम इस प्रकार हैं—उच्चैश्रवा ऐरावत, कामधेनु, गरुड़, तक्षक, वासुकि, शेषनाग आदि।

'उच्चैश्रवा' इन्द्र के घोड़े का नाम है। यह समुद्र से निकले चौदह रत्नों में था[५६]। इसके कान खड़े और मुँह सात थे। अष्टछाप-काव्य में इस घोड़े की चर्चा नहीं है, परंतु चौगान के खेल में श्रीकृष्ण और अन्य कुँवरों का उच्चैश्रवा जैसे घोड़ों पर सवार होकर खेल खेलने निकलना बताया गया है[५७]।

श्वेत रंग का 'ऐरावत' हाथी देवराज इंद्र का वाहन है। यह समुद्र-मंथन से प्राप्त हुआ था और जब विष्णु ने जो पाँच रत्न इन्द्र को दिये थे उनमें 'ऐरावत' भी एक था[५८]। सूर ने आकाश-मार्ग से दौड़कर पृथ्वी की ओर तीव्र गति से

५४ सारस जोरी किमि हरी मारि गयेउ किमि खागि।
—पदमा संग्री त्या १४१।

५५ इन्ही माहं रूप सरोवर मानसो।
सारस हंस मोर सुर स नी बैसरीति सम तूल—सा १ ४६।

५६ अम्मरा पारिजातक धनुष धन्व गज न्याग य पाँच सुरपतिहि दी—।
—सा ८८।

५७ निकस भये कुँवर समवारी 'उच्चैश्रवा' से घोर—सा ४१६६।

५८ अम्मरा पारिजातक धनुष धन्व गज भेज के पाँच सुरपतिहि दी—।
—सा ८८।

आते हुए 'ऐरावत' का उल्लेख किया है[५९]। उनके एक अन्य पद में भी 'ऐरावत' की चर्चा की गयी है[६०]। परमानंददास ने इंद्र द्वारा 'ऐरावत' आदि प्रस्तुत करके गंगाजल से कृष्ण का अभिषेक किये जाने की बात लिखी है[६१]।

'कामधेनु' या 'कामनाधेनु' भी 'सागर-मंथन' से प्राप्त चौदह रत्नों में थी जो सप्तर्षियों को दी गयी थी[६२]। सप्तर्षियों में परशुराम के पिता जमदग्नि भी थे; अतएव उनके यहाँ 'कामधेनु' होने और सहस्रार्जुन द्वारा बलपूर्वक उसके छीन लिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[६३]। रंक सुदामा की निर्धनता दूर करने के लिए भी 'कामधेनु' दिये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है[६४]। परमानंददास के अनुसार गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर पराजित होकर देवराज इंद्र 'कामधेनु' आदि दिव्य पशु प्रस्तुत करके गंगाजल से श्रीकृष्ण का अभिषेक करता है[६५]। भूलोक-वासियों की चर्चा में 'कामधेनु' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर हुआ है। प्रथम, नंद जी जिन दो लाख गैयों का दान करते हैं वे 'कामधेनु' से किसी प्रकार कम नहीं हैं[६६]। दूसरा प्रसंग रुक्मिणी-विवाह का है जिसमें उसको शिशुपाल से ब्याहना वैसा ही अमंगल बताया गया है जैसे 'कामधेनु' स्यार को सौंपी जा रही हो[६७]।

५९ सुरगन सहित इन्द्र ब्रज आवत।
 'धवल बरन ऐरावत' देख्यौ उतरि गगन तै धरनि धँसावत—सा ६७६।
६० तब तिहि समय आनि 'ऐरावत' ब्रजपति सौं कर जोरे—सा ११ १।
६१ 'ऐरावत' कामधेनु अरु गंगाजल आनी।
 हरि कौ अभिषेक कियौ जय जय सुर बानी—परमा २८८।
६२. कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौं दई—सा ८-८।
६३ क फिरि नृप जमदग्न्याश्रम आयौ 'कामधेनु' बल करिकै ल्यायौ।
 —सा ९ ११।
 ख कामधेनु जमदग्नि की लै गयौ नृपति छिनाइ—सा ९ १४।
६४ रंक सुदामा कियौ अजाँची दियौ अभय पद ठाऊँ।
 कामधेनु चिंतामनि दीन्हौं कल्पवृक्ष तर छाऊँ—सा १ १६४।
६५. ऐरावत 'कामधेनु' अरु गंगाजल आनी।
 हरि कौ अभिषेक कियौ अवधप सुरबानी—परमा २८८।
६६ कामधेनु तैं नैकु न हीनी द्वै लख धेनु द्विजन कौं दीनी—सा १०-१२।
६७ कामधेनु सार लैर—सा ४१८८।

गरुड़, पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन माना गया है। अष्टछाप-काव्य में गज-ग्राह-युद्ध में गज की रक्षा करने के लिए गरुड़ छोड़कर विष्णु के नंगे पैर ही दौड़ पड़ने की बात अनेक पदों में कहकर करुणामय प्रभु की भक्त-वत्सलता सिद्ध की गयी है[18]। गरुड़ सर्पों का शत्रु माना गया है जिसके भय से कालियनाग के यमुना में आकर छिपने की बात अष्टछाप काव्य में कही गयी है[19]। कालियदह में कालियनाग के छिपने का कारण यह था कि गरुड़ को वहाँ जाने पर प्राण से हाथ धोने का शाप सौभरि ऋषि द्वारा दिये जाने की बात वह जानता था[20]। अतएव कृष्ण का कृपापात्र बन कर आज वह ऋषि का परम उपकार भी मानता है[21]।

'तक्षक' या 'तच्छक', 'वासुकि' और 'शेषनाग' प्रसिद्ध पौराणिक नाग हैं। प्रथम अर्थात् 'तच्छक' का उल्लेख शृंगी ऋषि द्वारा परीक्षित को दिये गये शाप के प्रसंग में हुआ है[22]। 'वासुकि' की चर्चा सागर-मंथन-प्रसंग में की गयी है

१८ छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरो पवन के गवन तें अधिक धायौ।
—सा १५१।

१९ गरुड़ त्रास तें जो ह्याँ आयौ।
तौ प्रभु-चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैं सीस धरायौ।
× × ×
प्रभु-वाहन डर भाजि बस्यौ यहि नातरु लेतौ मार—सा ५७१।

२० तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥६॥
मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१ ॥
अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥
तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः।
अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥
—श्रीमद्भागवत दशम स्कंध सप्तदशोऽध्यायः, श्लो ९-१२।

२१ चलि रिषि साप दियौ खगपति कौं ह्याँ तब रह्यौ दुराई—सा ५७१।

२२ दियौ साप रिषि तच्छक मार—सा १९९।

जिसमें उसकी 'नेति' बनायी जाने की बात का उल्लेख मिलता है[७३]। शेषनाग का उल्लेख अष्टछाप काव्य में दो प्रसंगों में हुआ है। प्रथम में यह शेषशायी विष्णु की 'शैया' बताया गया है[७४]। दूसरे प्रसंग में मथुरा के बंदीगृह से निकलकर वसुदेव जब शिशु कृष्ण को गोकुल ले जाते हैं तब शेषनाग द्वारा उन पर अपने 'फन' फैलाकर उनकी रक्षा करते चलने की बात सूरदास ने एक पद में कही है[७५]।

समीक्षा—पशु-पक्षियों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अष्टछापी कवियों ने अनेक प्रकार के जीवों का उल्लेख उपमान-रूप में अथवा प्रकृति-वर्णन के साथ स्वतन्त्र रूप से किया है। इन सभी प्रकार के वर्णनों के आधार पर तीन निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के सामान्य जीवन को लेकर उनकी प्रवृत्तियों और प्रभावों का ज्ञान प्रदर्शित किया है। उदाहरण के लिए 'कपि गुंजा की नाईं' से बंदर का स्वभाव प्रकट होता है। इसी प्रकार भ्रमर के फूल-फूल पर मँडराने, काग, स्वान, खर तथा मरकट का अपने स्वभाव को न छोड़ने आदि का उल्लेख भी उनकी प्रकृति से संबंधित है।

दूसरे, मनुष्य जिस प्रकार पशु-पक्षियों का अपने जीवन में उपयोग करने लगा है, उसको ध्यान में रखकर अष्टछाप के कवियों ने अनेक उक्तियाँ कही हैं जैसे 'तेली के वृष ज्यौं नित भरमत' उक्ति द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि तेली के कोल्हू में जो बैल जोता जाता है उसका जीवन कितना कष्टमय होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी भक्ति का सहारा न लेकर माया-जाल में फँसा रहकर दुःख पाता है

तीसरे अष्टछापी कवियों ने पशु-पक्षियों के पारस्परिक संबंधों, उन पर आनेवाले संकटों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं से संबंधित कुछ बातें कही हैं; जैसे 'वृष महिष भजा' आदि। पहले दोनों निष्कर्षों के अनुसार अष्टछापी कवियों का

७३ बासुकि नेति अरु मंदराचल रई—सा ८८।
७४ सहसनाग के ऊपर पौढ़त सेजिक नाहिं बहार—सा १०२१५।
७५. क सेस सहस फन ऊपर छायो लै गोकुल को भाग—सा १० ४।
ख सीस धरि श्रीकृष्ण लीने चले गोकुल घाट।
सिंह गाजैं, सर पावैं नदी भई भरिपूरि—सा १० ५।

गरुड़, पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन माना गया है। अष्टछाप-काव्य में गज-ग्राह-युद्ध में गज की रक्षा करने के लिए गरुड़ छोड़कर विष्णु के नंगे पैर ही दौड़ पड़ने की बात अनेक पदों में कहकर करुणामय प्रभु की भक्त-वत्सलता सिद्ध की गयी है[६८]। गरुड़ सर्पों का शत्रु माना गया है जिसके भय से कालियनाग के यमुना में आकर छिपने की बात अष्टछाप काव्य में कही गयी है[६९]। कालियदह में कालियनाग के छिपने का कारण यह था कि गरुड़ को वहाँ आने पर प्राण से हाथ धोने का शाप सौभरि ऋषि द्वारा दिये जाने की बात वह जानता था[७०]। अतएव कृष्ण का कृपापात्र बन कर आज वह ऋषि का परम उपकार भी मानता है[७१]।

'तच्छक' या 'तक्षक' 'वासुकि' और 'शेषनाग' प्रसिद्ध पौराणिक नाग हैं। प्रथम अर्थात् 'तक्षक' का उल्लेख शृंगी ऋषि द्वारा परीक्षित को दिये गये शाप के प्रसंग में हुआ है[७२]। 'वासुकि' की चर्चा सागर-मंथन-प्रसंग में की गयी है

६८ छाँड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरो पवन के गवन तें अधिक धायो।
—सा १५१।

६९ गरुड़ त्रास तें जो ह्याँ आयो।
सो प्रभु-चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैं सीस धरायो।
× × ×
प्रभु-वाहन डर भाजि बच्यौ अहि नातरु लेतो खाइ—सा ५७१।

७० तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥६॥
मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥
अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥
तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः।
अवात्सीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥
—श्रीमद्भागवत दशम स्कंध, सप्तदशोऽध्यायः, श्लो ६-१२।

७१ बनि रिनि श्राप दियो खगपति कौं ह्याँ तब रह्यो दुराई—सा ५७१।

७२ दियो श्राप भिड़ि तच्छक खाइ—सा १२६।

३ सामान्य जीवन चित्रण

जो भाव प्रकट होता है, वह उतना अनुभवजन्य नहीं प्रतीत होता जितना तृतीय प्रकार की उक्तियों से ध्वनित है। प्रथम दोनों प्रकार की उक्तियों का आधार वे अनेक लोकोक्तियाँ हैं, जो मनुष्य-समाज में अनादि काल से प्रचलित रहकर हमारी जन-भाषा का स्थायी अंग बन गयी हैं। अतः इन कवियों ने उनका संग्रहमात्र किया है। इसके विपरीत, तृतीय प्रकार की उक्तियों से अष्टछापी कवियों की पर्यवेक्षण शक्ति तथा सूक्ष्मग्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनमें उनकी प्रतिभा और सूझबूझ का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियाँ मौलिक कही जा सकती हैं।

३ सामान्य जीवन चित्रण

जो ज्ञान प्रकट होता है, वह उतना अनुभवजन्य नहीं प्रतीत होता जितना तृतीय प्रकार की उक्तियों से ध्वनित है। प्रथम दोनों प्रकार की उक्तियों का आधार वे अनेक लोकोक्तियाँ हैं, जो मनुष्य-समाज में अनादि काल से प्रचलित रहकर हमारी जन-भाषा का स्थायी अंग बन गयी हैं। अतः इन कवियों ने उनका संग्रहमात्र किया है। इसके विपरीत, तृतीय प्रकार की उक्तियों से अष्टछापी कवियों की पर्यवेक्षण शक्ति तथा सूक्ष्मग्राहिणी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे उनकी प्रतिभा और सूझबूझ का परिचय मिलता है। किसी सीमा तक उनकी ये उक्तियाँ मौलिक कही जा सकती हैं।

चेतन-जगत के समस्त प्राणियों की प्रमुख आवश्यकताएँ केवल तीन हैं—आवास, भोजन और वस्त्र। इनके लिए मनुष्य को व्यवहार की अनेक सामान्य और विशेष वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनका प्रबंध हो जाने पर उसका ध्यान शृंगार के विविध प्रसाधनों की ओर जाता है। अतएव अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन का अध्ययन मुख्यतः सात उपशीर्षकों के अंतर्गत करना उपयुक्त होगा—१ आवास एवं अन्य विचरण-स्थान, २. खानपान, ३. वस्त्र, ४ आभूषण एवं शृंगार प्रसाधन, ५. व्यवहार की सामान्य एवं विशेष वस्तुएँ, ६. धातु एवं खनिज पदार्थ और ७ वाहन।

१ आवास एवं अन्य विचरण स्थान—

सरल और छलकपटरहित प्रकृति[1] के व्रजवासी गोवर्द्धन के निकटवर्ती वनों और उपवनों में बसे[2] गोकुल और वृंदावन के ग्रामों में रहते थे[3]। यद्यपि अन्य भारतीय ग्रामों की भाँति ही इन ग्रामीणों के 'आवास' भी आर्थिक स्थिति के अनुसार विभिन्न स्तरों के होते होंगे, परंतु अष्टछापी कवियों ने सुदामा की 'मड़ैया'[4] या मिट्टी के कच्चे घर[5] के अतिरिक्त किसी निर्धन ग्रामीण की फूस की झोपड़ी या कच्चे घर की चर्चा नहीं की है। उन्होंने नंद और मथुरा के राजमहलों के अतिरिक्त दशरथ, नंदराय और वृषभानु के उन असाधारण और भव्य भवनों का उल्लेख किया है जहाँ उनके आराध्य और आराध्या निवास करते थे। इन धाम स्थानों का

नाहिं तुम्हारे घर को ग्राम, नाहिन गाऊँ कन को नाम।
तुम तो बन परबत के बासी तुम पावें तहाँ रहैं ब्रजबासी—गोवि ० ।
[2] हम तुम अनन गैल निवासी नहिं काहू सों हम—गोवि ६० ।
[1] ब्रजवासी पद अनहीं तामस को व्यवहार—सा ११२८ ।
[3] तुम तो सूधे ब्रज के बासी तुम पावें तहाँ रहैं ब्रजबासी—गोवि ० ।
[5] 'गोकुल' ग्राम सुनायनौं 'वृन्दावन' सो ठौर—परमा ३३४ ।
[1] ब्रज में एक बसी है ग्राम गोकुल वर्द्धिपन आपो नाम—गोवि ० ।
[4] हहाँ दुखी मरी तनक मड़ैया—सा ४७१५ ।
[5] ... भयी मेरी 'पद मारी' की—सा ४८३६ ।

चेतन-जगत के समस्त प्राणियों की प्रमुख आवश्यकताएँ केवल तीन हैं— आवास, भोजन और वस्त्र। इनके लिए मनुष्य को व्यवहार की अनेक सामान्य और विशेष वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनका प्रबंध हो जाने पर उसका ध्यान शृंगार के विविध प्रसाधनों की ओर जाता है। अतएव अष्टछाप-काव्य में चित्रित सामान्य जीवन का अध्ययन मुख्यतः सात उपशीर्षकों के अंतर्गत करना उपयुक्त होगा—१ आवास एवं अन्य विचरण-स्थान, २. खानपान, ३. वस्त्र, ४. आभूषण एवं शृंगार प्रसाधन, ५. व्यवहार की सामान्य एवं विशेष वस्तुएँ, ६. धातु एवं खनिज पदार्थ और ७ वाहन।

१ आवास एवं अन्य विचरण स्थान—

सरल और छलकपटरहित प्रकृति[1] के व्रजवासी गोवर्द्धन के निकटवर्ती वनों और उपवनों में बसे[2] गोकुल और वृंदावन के ग्रामों में रहते थे[3]। यद्यपि अन्य भारतीय ग्रामों की भाँति ही, उन ग्रामीणों के 'आवास' भी आर्थिक स्थिति के अनुसार विभिन्न स्तरों के होते होंगे परंतु अष्टछापी कवियों ने सुदामा की मड़ैया[4] या मिट्टी के कच्चे घर[5] के अतिरिक्त किसी निर्धन ग्रामीण की फूस की झोंपड़ी या कच्चे घर की चर्चा नहीं की है। उन्होंने कंस और मथुरा के राजमहलों के अतिरिक्त बरसाना, नंदराय और वृषभानु के उन असाधारण और अन्य भवनों का उल्लेख किया है जहाँ उनके आराध्य और आराध्या निवास करते थे। इन धाम स्थानों का

१ नाहिं तुम्हारे घर को ग्राम नाहिन गाउँ वन को नाम।
तुम तो बन परवत के वासी सुख पावैं तहाँ रहैं व्रजवासी—गोवि ७।
२.क. हम तुम कानन बेल निवासी नहिं कहूँ सों द्वंद—गोवि १७।
ख व्रजवासी कह जानहीं नगर को व्यवहार—सा ११९८।
ग. तुम तो सूधे व्रज के वासी सुख पावैं तहाँ रहैं व्रजवासी—गोवि ७।
३.क गोकुल' ग्राम सुहावनों 'वृन्दावन' सों ठौर—परमा १२४।
ख व्रज में एक बड़ो है ग्राम गोकुल वर्द्धमन जाको नाम—गोवि ७।
४ हहाँ हुती मरी तनक 'मड़ैया —सा ४ १५।
५. कहा भयो मेरी घर माटी को—सा ४२१९।

अष्टछापी कवियों ने 'अवास', 'आलय', 'गृह', 'घर', 'धाम', 'भवन', 'महल', 'मंदिर' आदि कहा है[६]। इनके द्वारों की चौखटों का निचला भाग 'देहली' कहा गया है जिसे पार करने में शिशु कृष्ण की कठिनाई का वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है[७]। इन भवनों के निर्माण में 'कनक' का उपयोग बहुत अधिक होना कहा गया है यहाँ तक कि उनके आँगन तथा कमरों के गच भी सोने के होते थे जिनमें मणियाँ जड़ी रहती थीं[८]। अष्टछापी कवियों ने नंद-भवन के मणिमय आँगन में बालकृष्ण को घुटनों चलते बताया है[९]। घरों की ऊँची छत को 'अटा' या 'अटारी' कहा गया है। परमानंददास ने 'अटा' पर चढ़कर कृष्ण के पतंग उड़ाने का उल्लेख किया है[१०]। ऊँचे महलों में कँगूरे होते थे, जो देखने में बड़े सुन्दर लगते थे[११]। परमानंददास ने राम-जन्म के समय लंका में सिंधु काँपने और महलों के कंगूरों के गिरने का वर्णन किया है[१२]। घरों में झरोखे होते थे, जिनके द्वारा भीतर का व्यक्ति बाहर का दृश्य देख सकता था। इनका प्रयोग अधिकतर स्त्रियाँ

६ क देखि 'अवास' लोग लोभ जिन उपजै—परमा ४८८।
ख मनिमय-भूमि नंद के 'आलय' बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि—सा १ १२१।
ग. मंगलचार करो 'गृह' भरे, सँग के सखा बुलाओ—परमा ४११।
घ आजु 'घर' नंदमहर के बधाई—सा १०-११।
ङ नंदमहर 'घर' आजु बधाई—गोविं ४।
च अपने 'धाम' आँ देखन को बुरि बुरि नवलकिशोरी—परमा ११२।
छ. सूनो भवन सिंहासन सूनो नाहीं दसरथ ताता—सा ९ ४९।
ज. भूलि भवन जिनि जाहु नंद के निरखि बिहार जसोदा लेहि—परमा ४११।
झ. बने माधो के 'महल'—परमा ७४९।
ञ दसरथ कौसल्या केकेई बैठि आप 'मंदिर' के द्वार—परमा ११९।
७ क. 'देहरि' चढ़त परत गिरि गिरि कर पल्लव गहत जु मैया—सा १०-११।
ख तिरपद भूमि मापी न आलस भयो अब जो कठिन भयो 'देहरी' उलंघना।
—परमा ६१।
८. बने 'अवास' रच कंचन के बनो कंस-निकंदन—परमा ४९४।
९ क मनिमय भूमि नंद के 'आलय' बलि बलि जाऊँ तोतरे बोलनि—सा १०-१२१।
ख 'मनिमय आँगन' नंदराय के बाल गोपाल तहाँ करें रिंगना—परमा ६२।
१० चढ़ि 'अटा' पर पंच उड़ावत—परमा १९८।
११ कंचन कोट 'कँगूरनि' की छबि मानों बैठे मैन—सा ९ २।
१२. काँप्यो सिंधु 'कँगूरा' हरियो लंका आगम जनायो—परमा ११७।

करती थीं। होली के पर्व पर स्त्रियों का इन्हीं के द्वारा पिचकारी से रंग फेंकना कहा गया है[१३]। मेले या उत्सवों के अवसर पर ये छज्जों पर बैठकर 'झरोखे' से बाहरी दृश्य देखती थीं[१४]।

कुछ गृहों में 'धरहरा' या 'धौरहर' होता था। यह स्तंभ की तरह का मकान का बहुत ऊँचा भाग होता था, जिस पर चढ़ने के लिए भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ होती थीं। इन पर चढ़कर बाहर की ओर देखने से दृश्य सुन्दर दिखायी देता था[१५]। धौरहर ऊँचा होने के कारण उसी प्रकार शीतल रहता था जैसे कैलास। ठंडक के लिए लोग 'बँगला' छवाते थे। चंदन से बने बँगले में कृष्ण के बैठने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[१६]। कुछ आवासों में धुजा, पताका आदि फहराने की बात अष्टछापी कवियों ने कही है[१७]।

भवनों के साथ 'उपवन', 'बाग' अथवा 'फुलवारी' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[१८]। एक स्थान से दूसरे तक जाने के लिए चौड़े जन-पथों को अष्टछापी कवियों ने 'मारग' और 'पंथ'[१९] एवं सँकरे को 'खोरि', 'गलियारा' 'गली', 'गैल', 'बीथी' आदि कहा है[२०]। इसी प्रकार 'हाट-बाजार' की चर्चा भी अष्टछाप

१३ विविध बिध 'झरोखनि' 'मोखनि' चलत कनक पिचकारी—छीत ५६।

१४ क कोउ महलनि पर कोउ 'छज्जनि' पर मुख लख्य न करयो—सा १ २५।

ख 'छज्जे' बैठ 'झरोखे' झाँक री—परमा काँक २५२।

१५ चढ़ि 'धरहरा' झरोखा चितयौ सखी लियौ मन चौरि—परमा काँक २१४।

१६ 'चंदन को बँगला' अति सोभित बैठे तहाँ गोवरधनधारी—परमा ७१६।

१७ पचरंग 'धुजा पताका' शुभ्र रच मनिमय कनक अवास—सा ६-८१।

१८ क ब्रज युवतिन 'उपवन' मैं पाए, लयौ उठाइ कंठ लपटानी—सा १ -७८।

ख छाँड़ि नारि बिचारि पवनसुत लंक 'बाग' बसही—सा ६-६१।

ग संध्या समय 'बाग' तें बिछुरी अर्धरात्रि सुधि पैया—परमा २५६।

घ हँसि हँसि हरि पर वारती, चञ्चल नैन 'फुलवारी'—सा २८१४।

१९ क गारी देत संक नहिं मानत आवत 'मारग' घेरी—परमा १८९।

ख कबहुँक पंथ के तिनका दूर करन कौं धावत—परमा ७२१।

२० क. लरिका पाँच-सात सँग लीने निपट साँकरी खोरि'—परमा १२४।

ख द्वार द्वार मारग 'गलियारे' तोरन कंचन कलस धराये—परमा १४।

ग तहाँ ले आऊँ मदन मोहन पैं मैं देखी इक बंक 'गली'—परमा ११७।

घ बाँकी चितवन गैल' मुस्कानी—परमा ७११।

काव्य में मिलती है[२१]।

२ खानपान—

अष्टछाप काव्य में खानपान की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। विषय की स्पष्टता के लिए तत्संबंधी विवरण का अध्ययन पाँच उपशीर्षकों में करना उचित जान पड़ता है—क भोजन के समय और पदार्थ, ख घी और तेल, ग मसाले, घ पेय पदार्थ और ङ ताम्बूल।

क. *भोजन के समय और पदार्थ*—अष्टछाप काव्य में ब्रजवासियों के चार समय के भोजनों का उल्लेख हुआ है—'अ' कलेऊ, 'आ' मध्यकालीन भोजन, 'इ' छाक और 'ई' 'बियारी' 'ब्यारी' या 'ब्यालू'।

अ कलेऊ—प्रातःकालीन जलपान को 'कलेवा' या 'कलेऊ' कहा गया है[२२]। वल्लभ-संप्रदाय में इसके लिए व्यवहृत 'मंगलभोग' शब्द परमानंददास के एक पद में मिलता है[१]। सूरदास ने कृष्ण के 'कलेवे' का विस्तृत वर्णन तीन-चार पदों में किया है। उनमें 'कलेऊ' के लिए जो खाद्य पदार्थ, मिठाई, पकवान, फल मेवा आदि प्रस्तुत किये गये हैं, अकारक्रम से वे इस प्रकार हैं—औंटरसे, आम, अमरस किसमिस केरा, खजूरी, खाजा खारिक, खिर खाड़, खीरा, खुबानी खुरमा खोपरा खोवा गरी, गाल-मसूरी, गूझा घेवपूरी, घेवर, चिउरा, चिरौंजी, छुहारे, जलेबी, तरबूजा, दधि दधिवरा दाख, दूध दूधवरा, पकौरी पिराक, पिस्ता प्यासर फैनी बादाम मठरी मधु, माखन मालपूआ, मिठाई मिसिरी, मोतीलाडू, रानी लाडू, मीठफल, सक्करपारे मठरी, माठी, सीरा सुहारी, सेव,

ङ मानहुँ मदन मंडली रास पुर बीथिन बिपिन बिहार—सा ९८४१।
च बिहरत ब्रज बीथिन वृन्दावन गोपी सन मनुहारी—परमा ७४२।
२१ क गोकुल 'हाट-बजार' करत जु हुलासन हे—सा १०-२८।
ख दमनक उत बजार पधारे मारी सुरंग बनावी—परमा ११७।
२२ क कुमकुम भर लाला आँगन मही करत 'कलेऊ' लाल—परमा १११।
ख प्रात समै उठि मात जसोदा बलदाऊ को आनि जगावे।
उठो लाल तुम करो 'कलेऊ' बात कहु घर खाटि करि बुलावे—चतु १४।
ग आजु गोपाल कलेऊ न कीनो—गोविं २१२।
१ उठत प्रात मात जसोदा 'मंगलभोग' लै दाऊ धौरा—परमा ११६।

हेसमि आदि[२४]। अन्य अष्टछापी कवियों ने कलेव में मुख्य रूप से दही, दूध, मलाई, माखन, मिश्री, मेवा आदि होने की बात कही है[२५]। परमानंददास ने एक पद में 'पैया'[२६] का और दूसरे में 'मीसी की छोटी रोटी' माखन से खाने का उल्लेख किया है[२७]।

ख दोपहर का भोजन—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस समय के भोजन का वर्णन विस्तार से किया है। व्यंजनों, मिठाइयों और पकवानों के साथ-साथ इस समय के भोजन में तरह तरह की तरकारियों और फलों की भी उन्होंने चर्चा की है। उनके द्वारा गिनाये गये खाद्य पदार्थों की लम्बी सूची इस प्रकार है—अगस्त की फली, अँचार, अँदरसा अमरस, ईंडहर, इमली की लगाई, उमकौरी, ककरी कचनार, कचरी, कचौरी, कढ़ी, करवँदा, करील के फूल, करेला कुनरू, केला, खाँड की खीर, खीचरी, खीरा, खोवा, गाल मसूरी, गोमठ, घेवर, चने का साग चिचींडा, चौराई, चौंध छुँगारी, जलेबी, टेटी डरहरी तोरई, दही, निमुआ, निमोना, पकौरी, परवर, पाकर की कली, पानौरा पापर, पूरी, पेठा, फौंगफली, फैनी बथुआ, बरा, बरी, बेसन-माखन, भौंटा-भरता, भात, माखन, मालपूआ मुँगछी, रतालू, रायता, रामतोरई, रोटी, लाडू, लपसी, लुचुई, सरसों, सहिजना के फूल, सिखरन, सींगरी, सुहारी, सूरन, सेम, सीवा आदि[२८]।

२४ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद १८१ २११, २१२ और ८ ।

२५.क लेहु ललन कछु करो कलेऊ अपने हाथ खिमाऊँगी।
सीतल माखन' मन मिसी कर' सीरा लाल लड़ाऊँगी।
औट्यो दूध सद्य धौरी को सीवरो करि करि प्याऊँगी—परमा १०८।

ख उठौ लाल तुम करो कलेऊ कान्ह कुँवर तोहि टरि बुलावै।
माखन मिसी दही मलाई', मौंट थार भरि संग पठावै।
जमुनोदक झारी भरि लावै इस्त परावत लाल खवावै—चतु १४ ।

ग. आजु गोपाल कलेऊ न कीनों।

२६ मुन्दन भर लायो आँगन जहाँ करत कलेऊ दोऊ भैया।
× × ×
परमानन्द प्रभु जननी कहत बात प्यावत मथि मथि 'दूध की पैया —परमा ६११।

२७ हारे ठाढे ग्वाल-बाल करौ हौ कलेऊ लाल मीसी रोटी छोटी माखन सों गाइए।
—परमा ६११।

२८. 'सूरसागर' दशम स्कंध पद १२११।

परमानंददास ने दोपहर के भोजन में 'षटरस व्यंजन' कंचन थाल में परोस आने की बात कही है[९]। उनके लाल को 'मीठी खीर' बहुत प्रिय है[१०]। मधु, मेवा, पकवान, मिठाई दूध, दही, घृत, ओदन आदि पदार्थ उन्होंने इस समय के भोजन[११] में गिनाये हैं। अन्य अष्टछापी कवियों ने इस प्रकार की लंबी सूचियाँ प्रस्तुत करने में अधिक रुचि नहीं ली है।

इ. छाक—वन में गाय चरानेवाले ग्वाल-बालों के लिए दोपहर या तीसरे पहर भेजा जानेवाला भोजन 'छाक' कहलाता है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने बड़ी रुचि से किया है। घर से 'छाक' लेकर आनेवाली प्रायः कोई 'स्त्री' ही कही गयी है[१२]। 'छाक' में माखन, दधि, मधु, मेवा, पकवान, मिष्टान्न, भात सिखरन टेंटी, शाक, संधानो आदि पदार्थ भेजे जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है[१३]। चतुर्भुजदास ने 'छाक' में 'छप्पन भोग' और 'छत्तीसों व्यंजन' होना बताया है[१४] और परमानंददास की यशोदा तो 'छाक' में इतना सामान भेज देती थी कि कभी कभी काँवर भर कर जाती थी[१५]। केवल कृष्ण के यहाँ से ही नहीं सभी ग्वाल-बालों के यहाँ से 'छाक' आती थी और इस प्रकार खट्टे, मीठे, सलोने,

९ भोजन करत हैं गोपाल।
'षट रस करे बनाय जसोदा साजे कंचन थाल—परमा. १११।
१० लाल को मीठी खीर जो भावे।
मेवा भरि भरि लावति जसोदा दूरो अधिक मिलावे—परमा. ११२।
११ मधु मेवा पकवान मिठाई दूध दही घृत ओदन सों—परमा. १११।
१२.क प्रेम सहित ले चली छाक वह—सा. ७५।
ख भरी छाकहारी चार-पाँच आवति मध्य ब्रजराज लाला की—परमा. १४२।
१३.क सद माखन माखी दधि मीठो मधु मेवा पकवान—सा. १ ७४।
ख लवनी दधि मिष्ठान्न जोरि के जसुमति मों हाथ पठाई—सा. १ ८४।
ग. 'भावनि पे चरत भात दधि सिखरन लिए हाथ।

× × ×

विंजन सब भाँति भाँति अनुपम कछु कहि न जात—छीत ७७।
घ टेंटी साक सँधानो रोंगी गोरस सरस महेरी—कुंभन १७५।
१४ तिन में बैठे छाक खात मदन रूप मैंमली रची।
'छप्पन भोग' 'छत्तीसों व्यंजन आनि आगे धार सँची—चतु. १७।
१५ 'काँवर इक भरि के छाक पठाई नन्दरानी आप—परमा. १४४।

सभी प्रकार के व्यंजन एकत्र हो जाते थे[३६]। यों तो संभवतः भद्रावश परमानंददास ने 'जगमगाते-कनक थारों' में 'छाक' मिजवायी है,[३७] पर अन्य कवियों ने वन में 'पनवारे',[३८] 'कमल-पत्र' या 'पलाश के दौनों'[३९] में जाति-पाँति, धनी-निर्धन का सारा भेद्-भाव भुलाकर[४०] एक दूसरे के हाथ से छीन कर 'छाक खाने'[४१] का उल्लेख किया है। यहाँ तक कि कभी कभी शाम हो जाती है गैया इधर उधर हो जाती हैं, फिर भी 'छाक' का सम्मिलित भोज चलता रहता है[४२]।

ई *बियारी*—रात्रि का भोजन 'बियारी'[४३] 'ब्यारू'[४४] या 'बियारू'[४५] कहा गया है। सूरदास ने 'बियारी' के व्यंजनों की जो सूची दी है, वह इस प्रकार है—अँदरसा अथानी, अमिरती, इलायचीपाक, उरद की दाल कढ़ी, करौंदा, काचरी, कूरवरी केरा, कोरी, खजूरी, खरबूजा, खारिक, खाँड की खीर, खाजा, खुरमा, गरी, गाल-मसूरी गिंदौरी गोभा, गुड़वरा गोंदपाक, घेवर, चने की भाजी और दाल, चिंचीड़ा, चौराई, जलेबी भोरी, तिनगरी, दाख, दूध, दूधवरा, निमोना, पतवरा, पिंड, पिंडारू, पिंडीक, पिठौरी, पूआ पेठापाक पोई, फीर फुलौरी, फैनी बथुआ, बदाम,

३६ घर घर तें आइ छाक।
  खाटे मीठे और सलौन बिबिध भाँति के पाक—कु भन १७५।
३७ 'कनक थार जगमगात मेवन की भाँति भाँति भरे नन्दरानी आप—परमा १४४।
३८ यमुन, तुम लेहु भरवा 'पनवारे' लेहु डारि—कु भन १७६।
३९ क 'कमल पत्र दौना पलास के' सब आगे धरि परसत खात।
  ग्वाल मंडली मध्य स्याम घन सब मिलि भोजन रुचिकर खात—सा १०८१।
  ख 'पाने पात बनाय दौना' दिये सबन को बाँट—परमा १४१।
४० जाति पाँति सबकी हौं जानौं बाहर छाक मँगाई—सा १२४४।
४१ सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने—सा १०८५।
४२. जेंवत छाक गाइ बिसराई।
  सखा श्रीदामा कहत सखनि सौं, छाकहिं मैं तुम रहे भुलाई।
  धनु नहीं देखियत कहूँ नियरे 'भोजन ही में साँझ कराई'—सा १०८९।
४३. सूर-स्याम कछु करौ बियारी पुनि राखौं पौढ़ाई—सा ८४४।
४४ क. 'ब्यारू' कीजै मोहन लाल—परमा ७०५।
  ख 'ब्यारू स्याम करीमन लाग—चतु ८८१।
४५ क वली लाल 'बियारू' कीजै दोऊ मैया एक थारी—परमा ७०८।
  ख गिरिधर लाल 'बियारू' कीजै—गोविंद ११३।

घनफीरा, बरी, बाटी बसन-सीने, बेसनपुरी, भात, मिश्री, मसूर की दाल सिखौरि, मूँग की दाल मूँग पकौरा, मूरा, मेथी, मैदा की पूरी, मोती लाडू, रोटी, लापसी, लाल्हा, लापनि-भात, सुबुई, सोनिया, सरसों, सीरा, सूरन, सेब और सोवा आदि[४६]। इनके अतिरिक्त 'हींग-हरद-मिर्चें' आदि मसाले डाल कर अदरख, आँवरे और आँब के टुकड़े मिलाकर, तेल में छौंके और कपूर से सुवासित किये हुए अनेक प्रकार के सालनों की चर्चा भी सूरदास ने की है[४७]।

अन्य अष्टछापी कवियों ने अपने आराध्य को सुरमा, लावा, पापर, फैनी, मधु, मिश्री, मेवा, दूध आदि के साथ दार भात, कढ़ी भी 'ब्यारू में'[४८] खिलायी है। 'बियारी' के समय नींद के आलस्य में भरे सूरदास के बालक कृष्ण[४९] बार-बार जमुहाते हैं,[५०] तब माता मुख पखराकर पौढ़ाने की बात करती है[५१]।

ल घी और तेल—भोजन को स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाने के लिए घी और तेल का उपयोग किया जाता है। खाने के उपयोग में आनेवाले मीठे और कड़ुये, दो प्रकार के तेलों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। सूरदास ने मीठे तेल[५२] में चने की भाजी तैयार करायी है तो परमानन्ददास ने 'कडुए तेल'[५३] में

४६. सूरसागर' दशम स्कंध पद २१४ २२७ और १९६।

४७ हींग हरद मिर्च छौंके तेले अदरख और आँवरे मेले।
सालन सकल कपूर सुवासत स्याम लेत सुंदर हरि मासत—सा १९६।

४८.क ब्यारू कीजे मोहन राय।
मधु मेवा पकवान मिठाई विंजन सरस बनाय।
दार भात और कढ़ी बरी की मिश्री पनो छनाय—परमा ७५।

ख फैनी पापर सुरमा लावा गुंझा मिसी लडुवा लीजे—परमा ७७।

ग ब्यारू स्याम करोगन लागे।
बहु मेवा पकवान मिठाई व्यंजन करे मधुर रस पागे।
दार भात घृत कढ़ी मँथनो रुचिकर मुख सों माँगि—चतु २८१।

४९ आलस सों कर कौर उठावत नैननि नींद झमकि रही भारी—सा ८०१।

५० बार बार जमुहात हर प्रभु—सा ८०१।

५१ कछु-कछु खाइ अँचवो तब जम्हात जननी आगे।
बदन सान करि मुख पखरायो तुमको ले पौढ़ाऊँ—सा ८०८।

५२. मीठे तेल चना की भाजी—सा १९६।

५३ पापर 'कडुए तेल' में तरे सँवार बनाय—परमा २०२।

पापड़ तलवाये हैं। इन दोनों प्रकार के तेलों से घी या घृत अधिक पौष्टिक मा जाता है और इसका मूल्य भी अधिक होता है। इस कारण उच्च वर्गों में तेल अपेक्षा घी का प्रचलन अधिक रहता है। सूरदास ने एक पद में इसी बात को व्य में रखकर कहा है कि जो तेल खाता है, वह घी का स्वाद क्या जानेगा;[५४] के सामने तेल को कैसे पसंद करेगा ?

ग *मसाले*—भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए 'मसालों' का उपयं किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में मसालों की चर्चा दो-तीन रूपों में हुई है प्रथम 'दानलीला-प्रसंग' में उनकी सूची दी गयी है जिसकी चर्चा 'वाणिज्य-व्यवसा के अन्तर्गत आगे की जायगी। दूसरे, तरकारियों तथा अन्य व्यंजनों में पड़नेव मसालों' का उल्लेख 'भोजन प्रसंग' में हुआ है। ऐसे मसालों में अजवाइन इम की कर्णाई जीरा, मिर्च या मिच, राई, लोन या सेंधा, सोंठ, हरद या हरदि, ई आदि मुख्य हैं[५५]। इनके अतिरिक्त सूरदास ने तरकारियों के साथ-साथ जल 'कपूर' से सुवासित करने की बात लिखी है[५६]। दूध और पान में कपूर डाल पीने-खाने की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है जिसके उदाहरण पीछे दिये चुके हैं। मृगमद और चंदन के साथ कपूर मिलाकर तिलक[५७] लगाने का उल्ले भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

५४ सूरदास तिल-तेल खवारी स्वाद कहा जान घृत ही री—सा १६९४।
५५ क रोटी रुचिर कनक बेसन करि 'अजवाइन सैंधौ' मिलाइ घरि—सा १२११
ख मरवा मैदा लटाई दीनी—सा १२११।
ग पकवहिं 'इमली' की खटाई—सा १२११।
घ सिखरन बही भात 'जीरा' जु मिलायी—परमा ७७२।
ङ मिले मिरच' मेंटत चकचौंधी—सा १२११।
च हींग लगाइ राई' दधि सौंध्यौ—सा १२११।
छ. भले बनाइ करेला कीने 'लौन' लगाइ तुरत तरि लीने—सा १२११।
ज. च्यौसर धरि सरस बनाई तिहि 'सोंठ' मिरिच रुचि नाई—सा १०-१८३।
झ. विविध भाँति करी करि लीने दै करवेंधा 'हरदि' रँग भीने—सा १२११।
ञ. हींग हरद मिच छौंक तल—सा ३९६।
५६ क. साजन सकल कपूर सुवासत—सा ३९६।
ख सीतल जल 'कपूर' रस रचिया—सा १२११।
ग. अरगजा घस लगाइ कपूर रला' सँचाए —गोविं १६४।
५७ मधि मृगमद मलय कपूर' माथै तिलक किए—सा १०-२४।

मसालों की चर्चा का तीसरा रूप स्फुट प्रसंगों में मिलता है। ऐसे मसालों में 'धनियाँ'[५८] राइ-लोन'[५९] और हल्दी मुख्य हैं। इनमें एक स्थान पर तो 'हरदी' अक्षत, दधि दूब फल-फूल आदि के साथ पूजन की शुभ वस्तुओं में गिनी गयी है[६०] और दूसरे स्थान पर दधि के साथ 'हरद' मिलाकर परस्पर छिड़कना[६१] कहा गया है। उबटन में तेल के साथ 'हरदी' मिलाने[६२] की भी चर्चा है। हल्दी और चूना मिलने से इसका रंग 'लाल' हो जाता है जो 'अनुराग' के रंग का स्मरण कराता है। गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी ऐसी ही गहरी प्रीति होने की बात कही है[६३]।

घ पेय पदार्थ—प्राणी का सर्वप्रधान और सर्वप्रिय पेय है जल जो कपूर आदि से सुवासित होने पर रुचि से पिया जाता है[६४]। भारत जैसे गरम देश में शीतल जल सभी को प्रिय होता है। सूरदास के कृष्ण माता से यही माँगते हैं[६५]। कुछ देर रखा रह जाने पर शीतल जल' गरम हो जाता है और पीने में स्वादिष्ट नहीं लगता। इसीलिए परमानंददास की यशोदा ऐसे 'तातो' जल को पीने से लाल को रोकती और भोजन के समय ताजा जल भर लाने की बात कहती है[६६]। कृष्ण

५८. सूरदास तीनों नहिं उपजत 'धनियाँ धान कुम्हाड़े—सा १६ ४।
५९ क अनुमति माय बाय डर लीन्हों 'राई-लोन उतारो—सा ४५७।
ख सूरदास प्रभु हमहिं निदरि दाव पर 'लोन लगावत—सा १६१६।
ग. 'राई-लोन' उतारि बहु न्यौछावर कीन्ही—परमा २७२।
६ दधि-दूब-'हरद' फल फूल पान, कर कनक थार तिय करति गान—सा ६ २६६।
६१ क कनक को माट लाइ 'हरद दही मिलाइ' छिरकैं परस्पर छल बल धाइ कै।
—सा १०-११
ख 'हरद दूब दधि माखन छिरकें मच्यो महैया फाग—परमा ५।
६२. 'हरदी' तेल सुगंध सुवासित लाले उबटि न्हवावै—परमा १२।
६३. मानति नहीं लोक-मरजादा हरि क रँग मजी।
सूर स्याम कौं मिलि 'चूनो हरदी ज्यौं रँग रची—सा १६११।
६४ सीतल जल कपूर' रस रँचयौ—सा १२११।
६५ कान्ह कह्यौ हौं मातु अघानौ अब मोकौं 'सीतल जल' आनौ—सा १२६।
६६. लालिहो यह जल जिनहि पियो।
× × × ×
अब आरोगोगे मरि लाऊँ तातो जल दियो डारि—परमा ६८।

यमुना और गंगा के जलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में हुई है। इनमें 'गंगाजल' सर्वश्रेष्ठ है जिसको छोड़कर, जल के लिए उसी के तीर पर रहनेवाले प्यासे का 'कूप' खनाना सूरदास को सर्वथा मूर्खता का क्रम जान पड़ता है[६७]। वृन्दावन वासियों के लिए यमुना-जल पीने की बात भी उन्होंने कही है[६८] जो नितान्त स्वाभाविक है।

दूसरा पेय पदार्थ है दूध। अष्टछाप के परम आराध्य जिन लोगों के बीच पले थे गाय पालना ही उनका मुख्य कार्य था इसलिए 'दूध' उनका प्रिय पेय होना ही चाहिए, क्योंकि वह उन्हें जल की भाँति सुलभ भी था। यों तो अष्टछापी कवियों ने प्रात कालीन भोजन के साथ मथा' या ताजा और अन्य भोजनों के साथ 'अधावट' 'दूध' पीने की बात कही है, परंतु 'बियारी' के पश्चात् अच्छी तरह औटाया हुआ गरम गरम दूध फूँक मारकर अपने आराध्य को पिलाये जाने की चर्चा उन्होंने बड़ी रुचि से की है[६९]।

तीसरा पेय 'मधु' कहा जा सकता है क्योंकि रामायण-काल' में इसकी गणना 'पेयों'[७०] में की जाती थी। नंददास और गोविंदस्वामी ने मधु-पान' का उल्लेख विशेष रूप से किया है[७१]।

मदिरा' 'वारुणी या 'सुरा' की गणना मादक पेयों' में है जिसका पान कुछ वर्गों में सदा से प्रचलित रहा है[७२]। सामान्य वर्ग यद्यपि विशेष अवसरों पर उसका पान करता है, तथापि साधारणतया उसके लिए मदिरा-पान वर्जित रहा है।

६७ क. परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै—सा १ १६८।
ख. बसत सुरसरि तीर मंदमति कूप खनावै—सा २-१।
६८. जमुना जल राख्यो भारी भरि—सा १९६।
६९ क. धाखी दूध औटि धौरी को लै आई रोहिनि महतारी—सा ८७५।
ख. फूँकि फूँकि जननी पय प्यावति—सा ८७६।
ग. दूध पियो मनमोहन प्यारे—परमा ७१?।
७० 'रामायणकालीन संस्कृति' पृ ८८।
७१ क. तुम पियो मधुपान घूमत—नंद परि ६६।
ख तुम कीनो मधुपान मोहि तो तुम्हारो ध्यान—गोविं ५११।
७२. रामायण-काल में भी वारुणी पी जाती थी—'रामायणकालीन संस्कृति' पृ ८६।

नन्ददास ने 'द्विजवर' के लिए सुरापान करने के बाद पछताने की बात कही है[७३] जिससे स्पष्ट है कि इस वर्ग के लिए मदिरा-सेवन वर्जित रहा है। सूरदास ने सुरापान किये जानेवाले स्थान का कलियुग का वास-स्थान बताया है[७४]। विशेष पर्वोत्सवों पर आनंदातिरेक में 'वारुणी' आदि का थोड़ा-बहुत प्रयोग सभी वर्ग के लोग करते हैं। परमानंददास ने 'होली' पर बलराम के वारुणी पीने की बात कही है जिससे उनके नैन 'रसमसे', कच ढीले, पाग लटपटी और भौंहें चढ़ी-चढ़ी हो जाती हैं[७५]। सूरदास ने निशाचरों को सदा मदपान करनेवाला बताया है[७६]।

नशीले पेयों में 'विजया' भी है जिसको पीकर ग्वालिनि के 'बौरी' हो जाने की बात परमानंददास ने लिखी है[७७]।

क. तांबूल—प्रतिदिन के चारों भोजनों—कलेऊ, मध्याह्न का भोजन, छाक और बियारी—के अंत में कपूर और कस्तूरी से सुवासित 'तमोल' या 'पान' दिये जाने की बात सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[७८]। पुराने पीले पान अधिक

७३. करनि मीड़ पछितात हैं ऐसे, सुरापान करि द्विजवर जैसे—नंद, दशम ६ १११।

७४. कही हरि त्रिभुवन बसा जहाँ 'सुरापान' अधिकनि-गृह तहाँ।
 यथा कलत ज्यों जुआरी ये पाँचौ हैं और तुम्हारी—सा १ २९०।

७५. हो हो होरी हलधर आवे।
 × × ×
 पिये 'वारुनी' मन संकरषन नैन रसमसे कच कछु ढीले।
 भौंह चढ़ी चढ़ी सिर पाग लटपटी बचन गँभीर अधर गीले—परमा ११।

७६. नाना रूप निसाचर अद्भुत सदा करत मद-पान—सा ९ ७५।

७७. ग्वालिनि बीच ठाढ़ी नंद की पौरी।
 बेर बेर इति उत फिर आवति विजिया खाय भई बौरी—परमा ४ १।

७८. क. तब बीरी उनके मुख नामौ अति लाल अधर ह्वै आमौ—सा १ १८१।
 ख. तब 'तमोल' रचि तुमहिं खवावौं—सा १ २११।
 ग. कमला 'पान' कपूर कस्तूरी आरोगत मुख की छबि रूरी—सा १९९।
 घ. पान मुख 'बीरी' रची हरि के रँग सुरंगि—परमा ६७९।
 ङ. 'बीरी' देत अनाय अनाय—परमा ६७७।
 च. परमानंददास को ठाकुर हँसि दीनो मुख 'बीरा'—परमा ७१२।
 छ. बीरी मुखन स्याम को देत—चतु १७१।
 ज. मुख पखारि 'बीरी' कर लीनी रुचि सों जुगल बिहारी—छीत ७८।

स्वादिष्ट होते हैं। सूरदास ने एक पद में अपने आराध्य के लिए पुराने पानों के बीड़े लगवाये हैं[७९]। 'पान' या 'नागबेलि चबाती मदमाती ग्वालिनि' की भी चर्चा उन्होंने की है[८०]। 'प्रसाद' में पान का 'बीड़ा' दिये जाने का उल्लेख परमानंद दास ने किया है[८१]।

अष्टछाप-काव्य में 'पान' या 'तँबोल' का उल्लेख दो रूपों में और हुआ है। प्रथम रूप में उसकी गणना दूध, दधि रोचन आदि पूजन-सामग्री के साथ की गयी है[१] और द्वितीय रूप में 'पान का बीरा' लेकर किसी महत्वपूर्ण कार्य करने का दायित्व लेना समझा जाता है। राम के सेवक हनुमान सीता की खोज कर आने का दायित्व लेते समय 'तँबोर' लेते हैं[३]। कंस भी कृष्ण को मारने का 'बीड़ा' सकटासुर को देता है[४]।

समीक्षा—

दिन के प्रत्येक भोजन में खाद्य पदार्थों की जो विविधता अष्टछापी कवियों के उक्त वर्णन से ज्ञात होती है उससे स्पष्ट है कि केवल संपन्न व्यक्तियों के लिए ही उनका प्रबंध करना संभव रहा होगा। अष्टछापी कवि स्वयं संपन्न नहीं थे और न उनको संपन्नता की कामना ही थी अतएव अपने परमाराध्य के लिए छप्पन प्रकार के व्यंजनों को प्रस्तुत करने के मूल में उनका प्रेममयी भावना ही थी। पुष्टिमार्गीय सेवा में 'छप्पन-भोग' का महत्व होने से भी इस प्रकार के वर्णनों के लिए उनको

७८. अँचवन करिकै रा[?] को 'बीरी देति' सखि इक भाजे दधि पवन—गोविं २६४।

७९ 'बीरे पान पुराने बीरा' खात मई दुति दाँतनि हीरा।
मृगमद-कन कपूर कर लीने बाँटि बाँटि ग्वालनि को दीन—सा १२११।

८० 'नागबलि' चाबति फिरे मदमाती हो—सा २८६२।

८१ लै राधे मोहन पठयो है यह 'प्रसाद को बीरा'—परमा १६।

८२. धरि 'तमोर' दूध दधि रोचन हरषि जसोदा ल्याई—सा ६११।

८३ लियो बुलाइ मुदित चित ह्वै कै, कह्यो 'तँबोलहिं लेहु'।
ल्यावहु जाइ जनक-तनया-सुधि रघुपति को सुख देहु।
× × × ×
लियो तँबोल माथ धरि हनुमत कियो चतुरगुन गात—सा ६-७४।

८४ कंस नृपति मे सकट बुलायो ले करि बीरा दीन्हौ—सा[?] ४२४।

प्रेरणा मिली होगी। जो हो, ऐसे उल्लेखों से यह तो स्पष्ट होता ही है कि व्रज-संप्रदायी मंदिरों की आर्थिक स्थिति बहुत उत्तम थी, जहाँ भोजनों का राजसी प्रबंध सहज ही किया जा सकता था। आज भी कुछ मंदिरों में उस परंपरा का निर्वाह बड़े उल्लास से किया जाता है। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन निस्संदेह इनको इस बीच में बराबर प्रोत्साहित करता रहा होगा। प्रतिदिन के सामान्य और पर्वोत्सवों के विशेष भोजन-आयोजनों में जिस प्रकार का अंतर जनसाधारण के घर में देखा जाता है, वैसा ही आयोजन इन मंदिरों में भी रहता है। सूरदास आदि ने जो सूचियाँ प्रस्तुत की हैं, वे विशेष आयोजनों की ही जान पड़ती हैं, जिनके आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि अष्टछाप के आराध्य के भोजन का प्रतिदिन किया जानेवाला प्रबंध भी असाधारण ही रहा होगा और भक्तों की श्रद्धा-भावना वैसा करके ही सदैव संतुष्ट होती रही है।

३ वस्त्र—

आवास और भोजन की प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मानव को शरीर-रक्षा के लिए वस्त्र चाहिए जो ऋतु, स्थान और पद या स्थिति के अनुकूल हों। दैनिक वस्त्रों के अतिरिक्त पर्वोत्सवों या संस्कारों के शुभ और हर्ष के अवसरों पर विशेष रूप से सुंदर और आकर्षक वस्त्र पहनने के सुख का अनुभव भी मानव-समाज सहस्रों वर्षों से करता आया है। अष्टछाप-काव्य में अपने परमाराध्य और आराध्या के तो सामान्य और विशेष दोनों अवसरों के वस्त्रों की चर्चा बड़ी रुचि से की गयी है; शेष पात्रों के वस्त्रों में दीन सुदामा के 'कुचील चीर'[८८] या 'छीन वसन'[८८] और मातुश्री के 'कंथा'[८९] की तरह ही उन व्रजवासियों के वस्त्रों की चर्चा भी बहुत चलते ढंग से की गयी है जिनके बीच में श्रीकृष्ण पले थे।

८८. क. पट जीरन कुचील चढ़ि बिथि—सा. ८ १८।
ख. कहिए कौन काज किहि पठए बसन कुचील छीन अति गाता—सा. १०२८।
ग. छीन अंग तिन बसन छीन सुत निहारे—सा. १०४८।
८९. क. सीत लगत अंग सु। कता बीती बार बिरह भस्म मसार बैठी महम कंथा' बीर।
—सा. मे. पृ. ११२९।
ख. कंथा धारि बिभूति लगाई बन बैराग बन—सा. मे. पृ. २०५८।

सूती रेशमी और ऊनी वस्त्रों में प्रथम दो का ही उल्लेख अष्टछाप-काव्य में अधिक है। 'ऊनी' वस्त्रों में ग्वाल-बालों की तरह कृष्ण के भी 'कंबर', 'कमरी' या 'कामरि' * का उल्लेख कई पदों में मिलता है, जिसके एक एक रोम पर श्रीकृष्ण ने चीर-पटंबर तक वारने की बात कहकर मोटे वस्त्र की महिमा बतायी है[८८]।

वस्त्र के लिए अष्टछाप-काव्य में 'अंबर', 'चीर', 'पट', पटंबर' या 'पाटंबर', 'बसन', 'वस्त्र' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है[८९]। बिना धुले हुए कपड़े को 'कोरा कापरा'[९] कहा गया है। जिन सूती कपड़ों के वस्त्र अष्टछाप-काल में प्रसिद्ध थे, उनमें 'तनसुख', 'ताफता', खासा' आदि[११] मुख्य हैं। दक्षिण के 'चीर'

---

८७ क कान्ह काँधे 'कामरिया' कारी, लकुट लिये कर घेरै हो—सा ४५२।
ख काँधे 'कमरिया हाथ लकुटिया बिहरत बछरनि साथ—सा ४८७।
ग बन बन गाय चरावत डोलत काँधे 'कमरिया' राजै—सारा ७४१।
घ देहु कान्ह ! काँधे को कंबर—कुंभन ६६।
८८. या 'कमरी' के एक रोम पर वारौं चीर-पटंबर—१५१५।
८९.क मनि मानिक पाटंबर 'अंबर' लेत न बनत विभूत—सा १०-११।
ख मनि मानिक के भूषन 'अंबर' आनक जन लुटायो है—परमा ४।
ग जल तें निकसि आइ तट देख्यौ भूषन 'चीर' तहाँ कछु नाहीं—सा ७८५।
घ अगमन देत विविध 'पट' भूषन फूले अंग न समाई—गोविं ४।
ङ हीरा रतन पटंबर हमकौं दीन्हैं ब्रज के नाथ—सा १०-१८।
च पाट 'पटंबर' खासा झीनो जैसो भावै मन भावो—परमा ११७।
छ. दै दै कनिक पाटंबर भूषन ग्वालिनि सबै पहिराई—परमा २१।
ज. नाना बसन' अनूप—सा १०-१८।
झ. घर घर तें सुंदरि चलीं सजि भूषन बसन' सिंगारि—गोविं १२।
ञ संपति देहु, लेहुँ नहि एकौ अम 'वस्त्र' किहिं काम—सा १ ११।
९ काके कोरे कापरा काको घी के मोन—सा १ ४ ।
११ क यौं है तरल तरयौना काकें धर 'तनसुख की सारी—सा १८१७।
ख 'तनसुख' स्वेत सुदेस अंस पर बहुत आरगजा भीनी—परमा ७७५।
ग 'तनसुख सारी पहिरि झीनी अति मधुर सुर बीन बजावे—गोविं २ २।
घ. गावौ सुरंग ताफता सुंदर लरे बाँह छवि न्यारी—परमा ७४२।
ङ कुलह सुरंग सिर ताफता की लाल अगुनी पीत सुदेस—गोविं १८।
च पीत ताफता की अगुला कसी है—गोविं ५११।

का भी उल्लेख सूरदास और गोविंदस्वामी ने किया है[६२]। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित वस्त्रों का अध्ययन करने के लिए उनको, मुख्य रूप से, चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—बालकों, पुरुषों, बालिकाओं और स्त्रियों के वस्त्र।

क. बालकों के वस्त्र—अष्टछाप-काव्य के अनुसार 'कुलह', 'कुलही' या 'कुलहिया' 'चौतनिया', 'चौतनी', 'टिपारा' या 'टिपारो' और 'पाग', 'पगा' 'पगिया' या पागरी' आदि बालक सिर पर पहनते थे[६३]। अष्टछाप के प्राय सभी कवियों ने बालकों के अन्य प्रमुख वस्त्रों में उपरैना,[६४] कछनी या काछनी,[६५]

ख. पिछौरा लाला' को कटि बाँधे—परमा ५६२।
ग पाट-पटंबर लाला' भीनों—परमा ११७।
६२.क 'दच्छिन चीर' तियाह को लहगा पहिरि विविध पट मोलनि महँगा।
—सा २६०१।
ख विम 'चीर पहिरे दच्छिन कों—गोविं २८।
६३ क 'कुलह' सुत फूलन भरी झुमर—चतु १८६।
ख कुलही लसत सिर स्याम सुन्दर कैं बहु विधि सुरँग बनाई—सा १ १ ८।
ग सेत कुलही सीस राजति सोभित सु धरे बाल—गोविं १५।
घ स्याम बरन पर पीत झँगुलिया सीस 'कुलहिया' चौतनियाँ—सा १ ११२।
ङ तन झँगुली सिर लाल 'चौतनी'—सा १ ८६।
च माथ चमन बरन को टिपारो तन चंदन को लोरा—परमा काँक ४२६।
छ. माथ कनक बरन को 'टिपारो' ओढ़े पीत पिछौरा—परमा ६२।
ज. रोकि रहत गहि गली साँकरी टेढ़ी बाँधत पाग—सा १ १९८।
झ. 'पाग' सुरंगी कुसुम रंगी पेच रतन के महाके—परमा काँक ११।
ञ नाना बिधि सिंगार 'पाग जरकसी बागो पहरन छंद—परमा २ ८।
ट तिपेची 'पाग टेढ़ी सोहति स्याम धारी—चतु १८८।
ठ कहु न करि परत तब सबहिं फिरि हरि के पेच दै छबीली 'पगिया' सँवारी।
—सा १ ६।
ड बलि कुंतल बलि 'पाग लटपटी बलि कपोल बलि उर बनमाल—सा १२०१।
ढ 'चुनरी की पाग चुनरी पिछौरा कटि—चतु १६५।
६४ क सिर पर मुकुट पीत उपरैना भृगु पद उर भुज चारि धरे—सा १ ८।
ग ओढ़े लाल उपरैनी भीनी—परमा काँक ५४१।
६५.क नटवर हरि भिवग ब्रज गोरी कटि कछनी पीताम्बर बाँधे—सा ६१४।

चोलना[९६] झगा, मगुलि या मगुलिया[९७] जो सादा या 'कंचन तगा'[९८] से बना होता था, तनिया,[९९] निचोल,[१] पटुका,[१] पामरी,[२] पिछौरा या पिछौरी,[३] पितंबर या पीतांबर,[४] वागा या बागे,[५] सूथन[६] आदि का उल्लेख हुआ है।

ख पुरुषों के वस्त्र—पुरुषों के वस्त्रों में मुख्य रूप से 'धोती'[७] और 'पिछौरा'[८] का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है। पटुका, पीतांबर आदि पुरुषों के अन्य वस्त्रों का उल्लेख बालकों के वस्त्रों के प्रसंग में हो चुका है।

ख लाल 'काछनी' काछें—सा ९८ ६।
ग. काछनी कटि अति सुदेस लाल अंबर सोहै—गोवि १८७।
९६.क पीत 'चोलना' स्याम-कटि सोभित—कुंभन १ ।
ख स्याम गात पर स्वेत 'चोलना छूटे बंद सुहावै—नंद , पदा , पृ १११।
ग. सूथन लाल अरु सेत 'चोलना' कुल्है जरकसी अति मन भावत—गोवि ५१।
९७ क लाल की बधाई पाऊँ लाल को झगा —सा १ १६।
ख पीत चोलना स्याम कटि सोभित पहिरें पीत 'मॅंगुलिया' सुदेस—कुंभन १ ।
ग मोहन पीत 'मॅंगुलिया' सोहै—परमा ६ ।
घ पीत मॅंगुलिया' लाल तनियाँ—गोवि १५।
९८. पकुलिन है के आनि, दीनी है जसोदा रानि मनीय मगुलि ताम कंचनतगा'।
—सा १ १६।
९९ पीत मगुली लाल 'तनियाँ' कंठ श्री उरमाल—गोवि १५।
१ क सिर चौतनी डिठौना दीन्हो आँखि आँजि पहिराइ निचोल —सा १ -२५।
ख नील निचोल' पहिरि, तजि नूपुर सबै ओगन सजु सुंज—कुंभन २५५।
१ कंठसिरी बनी लाल 'पटुका कटि छोरनि छबि—चतु २८७।
२. मारै पीरी 'पामरी पहिरे लाल निचोल—सा १८५०।
३ क सुरंग चुनरिया भिजीई तेरी भीग्यो पिछौरा —चतु २५।
ग पहिरत दास परमो स्यामा को पीत पिछौरी हारी—परमा ३३३।
४ क पीतांबर कटि-तट छबि अद्भुत—सा ६२५।
ख मोर-मुकुट पीतांबर काछे—सा १५ २।
५.क माथे दै मखार लीनो लाल को बगा'—सा १ १६।
ख बाग धरि बनाइ भूषन पहिरायो—सा १ -२५।
६ सूथन लाल अरु सेत चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत—सा १०-८४।
७ क पट कटि मंद गए जमुना-तट लै 'धोती' मारी बिबि बर्मर—सा १०-८४।
ख घन मुनिपत है 'धोती' पहिरे, पट गाढ लाल—सा १८२०।
८.क कटि तट पीत पिछौरा बाँधे काकपच्छ धर सीस—सा ६-२ ।

ग. बालिकाओं के वस्त्र—अष्टछापी कवियों ने व्रज की किसी बालिका के वस्त्रों की चर्चा नहीं की है। परमानंददास, चतुर्भुजदास गोविंदस्वामी आदि जिन कवियों ने राधा के जन्मोत्सव 'पलना' आदि का वर्णन किया है, वे भी वस्त्रों के प्रसंग में मौन रहे हैं। सूरदास ने कृष्ण से बालिका राधा का नहीं, किशोरी राधा का परिचय कराया है। उस अवस्था में राधा के केवल दो वस्त्रों का उल्लेख अष्टछाप काव्य में मिलता है। प्रथम है 'फरिया' और द्वितीय है 'चूनर' या 'चूनरिया'। 'फरिया' से आशय कहीं 'लहँगे' से लिया जाता है और कहीं 'ओढ़नी' से[९]। सूरदास ने 'फरिया' का उल्लेख 'किशोरी राधा' के छोटे लहँगे के अर्थ में ही किया जान पड़ता है[१०]। किशोरियों के 'सूथन' और उसके 'नाराबंद' का उल्लेख भी सूरदास ने किया है[११]। बालिकाओं के पहनने के वस्त्रों में 'उढ़निया' या 'ओढ़नी'[१२] का उल्लेख तो कम हुआ है और 'चुनरिया' 'चूनरि' या 'चूनरी' का अधिक[१३]।

घ. स्त्रियों के वस्त्र—स्त्रियों के प्रमुख वस्त्र तीन हैं—लहँगा या सारी, कंचुकी और ओढ़नी जिनके अनेक प्रकारों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है। लहँगा' साधारण रूप में वर्णित है और 'तिपाड़' का भी बताया गया है[१४]।

ग. पिछौरा ग्वाला को कर्यो बाँध्यौ—परमा. ६१४।

९. वर्मा मैरी प्रा० १६२।

१० क. सारी चीर नई फरिया ले अपने हाथ बनाई—सा. ७४८।

ख. तिन ओढ़नी गौर अरु दीन्ही फरिया दई फारि नव सारी—सा. ७८८।

ग. नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रुलति झकझोरी—सा. १२७०।

११. सूथन जंघन बाँधि नारा द निरनी पर छवि भारी—सा. ५४।

१२ क. पीत उढ़निया कहाँ बिसारी—सा. ६६१।

ख. ओढ़नि आनि दिखाई मोको—सा. ६६५।

१३ क. सुरंग चुनरिया जिनौई नयी ओढ़ना पिछौरा—चतु. ७५।

ख. नीलांबर पहरि सारी लाल पीत चूनरी पहराइ—सा. ७८८।

ग. ओढ़े नयी चूनरी चटक बनी—परमा. १०६।

१४ क. [illegible] और तिपाड़ को लहँगा [illegible] पर मोहनि [illegible]।
—सा. २८११।

ख. [illegible] पर और [illegible] सारी लाल [illegible]—परमा. ६१६।

ग. [illegible] लहँगा [illegible]—चतु. ७०।

'सारी' का, जिसे 'सट' या 'साफ'[१५] भी कहते हैं, उल्लेख भी सामान्य और विशेष, दोनों रूपों में हुआ है,[१६] विशेष रूप में 'सुरँग'[१७] और 'पँचरँग' सारी[१८] की चर्चा मिलती है। चतुर्भुजदास ने 'चुनरी की सारी'[१९] और 'तनसुख की सारी'[२०] का उल्लेख किया है तथा सूरदास, परमानन्ददास तथा कुंभनदास ने 'झूमक सारी'[२१] का। रेशमी साड़ी को सूरदास ने 'पटोरी'[२२] कहा है। सूरदास और परमानन्ददास की नायिकाएँ लाल किनारे या 'डिगनि' की सारी[२३] पहनती हैं। 'सारी', 'चुनरी', 'दुपटिया' आदि के पल्ले का किनारा 'खूँट'[२४] कहलाता है। 'सारी' तथा 'अंचलपट' से 'घूँघट'[२५] काढ़ने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

'कंचुकी' के लिए 'अँगिया', 'आँगी', 'कंचुकी' 'चोली' आदि शब्द अष्टछाप काव्य में प्रयुक्त हुए हैं जिनमें सिलाई या बनावट के कारण प्रायः अंतर होता है। सूरदास ने 'कटाव की अँगिया'[२६] के साथ-साथ 'जड़ाऊ अँगिया'[२७] का भी उल्लेख

१५. 'प्राचीन भारतीय वेशभूषा', पृ ९७ ।
१६. लाल 'सारी' पहिरि बैठी प्यारी—छीत ८९ ।
१७ तैसीये 'सुरँग सारी' पहिरे सुभग अंग—चतु १२६ ।
१८. पगनि जेहरि, लाल लहँगा, अंग 'पँचरँग सारि'—सा १ ०६ ।
१९ चुनरी चोली बनी 'चुनरी की सारी —चतु १६५ ।
२० 'तनसुख सारी' पहिरि झीनी—चतु २ ।
२१ क 'झूमक सारी' तन गोरैं हो—सा २७६४ ।
ख छापे री झूमक अंग साज चहुँ विधि लगी किनारी—परमा ६१६ ।
ग लहँगा लाल 'झूमकी सारी' कसूँभी बरन पिय हेत रँगाई—कुंभन ११६ ।
२२ क अंग मरगजी 'पटोरी' राजति—सा वें १२१२ ।
ख आइ भीवासा तें आवत तब दे मानिनि बहु भाँति पटोरी—सा वें, २७७५ ।
२३ क यह तो 'लाल डिगनि' की चोली, ए काहू की सारी—सा ६६१ ।
ख लाल डिगनि की सारी ताकी पीत उढ़नियाँ कीनी—सा ६६४ ।
ग. ये तो 'लाल डिगनि' की चोली है काहू की सारी—परमा ६६६ ।
२४ नीलाम्बर गहि 'खूँट' चूनरी हँसि हँसि गाँठि जुराई—सा २८७१ ।
२५ क सबै छिपानी हरि मुख हेरैं 'घूँघट-पट-ओट करैं—सा १६५१ ।
ख कर 'अंचल पट ओट' नाना की आधी ज्यार जुराबै—परमा ११२ ।
२६ सुभग हमेल कटाव की अँगिया' नगनि जटित की चोकी—सा १५४ ।
२७ बहु नग जरे जराऊ अँगिया —सा १४७५ ।

लटकाये जाने की बात सूरदास ने कही है[१८]। स्त्रियों के ओढ़ने के वस्त्रों में 'चुनरिया', 'उढ़निया' और 'चूनर' का उल्लेख बालिकाओं के वस्त्रों में हो चुका है।

समीक्षा—वस्त्रों के संबंध में अष्टछापी कवियों के जो विचार ऊपर दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि अपने आराध्य के तत्संबंधी विवरण में ही उन्होंने विशेष रुचि ली है और सामान्यतया उनके उसी रूप का वर्णन उन्होंने किया है जो दीर्घकाल से भारतीय जनता का परिचित रहा है। हाँ, 'तनसुख', 'ताफ्ता', 'ख्वासा' जैसे कपड़ों से यह अवश्य सूचित होता है कि अष्टछाप काल में इनका अच्छा प्रचार था। ऐसे उल्लेख ही वस्तुतः सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं और अष्टछापी कवियों ने प्रायः सभी विषयों से संबंधित ऐसी सामग्री उपस्थित करके अध्येताओं के कार्य को सुगम ही नहीं, रोचक भी कर दिया है।

४ *शृंगार प्रसाधन*—

शृंगार के सोलह अंग कहे गये हैं—उबटन, मंजन, मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश-विन्यास, माँग भरना, अंजन, महावर, बिंदी, ठोढ़ी पर तिल बनाना, मेंहदी, गंध-द्रव्य, आभूषण, पुष्पमाला और पान रचाना[१९]। अष्टछाप-काव्य में पुरुषों के शृंगार में मुख्यतः छह अंगों यथा उबटन, स्नान, सुवसन, आभूषण, पुष्पमाला और पान रचाना का वर्णन किया गया है। इनमें से 'मंजन' और 'मिस्सी' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं की गयी है और 'सुवसन' के संबंध में इसी परिच्छेद में, पीछे लिखा जा चुका है। अतएव 'पुनरावृत्ति' से बचने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों के 'शृंगार' के शेष अंगों की चर्चा अष्टछाप काव्य के आधार पर, साथ-साथ की जायगी।

क उबटन—अष्टछाप-काव्य के अनुसार माता यशोदा श्रीकृष्ण को स्नान कराने के पूर्व सदैव 'उबटन' लगाती हैं[४]। 'उबटन' के स्थान पर कभी कभी 'तैल

१८. सिरनी उपरना छीनि दूरि डारनि पटकाती—सा ११२४।
१९. श्री रामचंद्र वर्मा, 'प्रामाणिक हिंदी कोश', पृ १२२८।
४ क. कन्हरि को उबटनौ बनाऊँ रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ—सा १०-१८५।
ख तेल उबटनो लै आगे धरि लालहिं चोटन पोटन री—सा १ १८६।
ग. ललित सुगंध सुवास अंग करि उबटन गुन गाऊँगी—परमा ६ ८।
घ 'उबटि' न्हवाय दोऊ भैया—चीत ८।

तेल के बालों की 'लटें' बँध जाती हैं। विरहिणी गोपियों को कृष्ण के प्रवास-काल में 'केश-विन्यास' नहीं सुहाता, बालों में वे तेल तक नहीं डालतीं, इससे उनके बालों की 'लटें' जट-जट' सी हो जाती हैं[५१]। घुँघराले बालों के लिए 'अलक'[५२] और 'कुंतल' शब्दों का ही नहीं, 'जुल्फों' तक का प्रयोग किया गया है[५४]।

सामान्यतया बाल 'वेणी' या 'चोटी' के रूप में बाँध लिये जाते हैं, उनका खुला रखना दुख, शोक, रोग, अरुचि आदि का सूचक माना जाता है। इसी से परमानंद दास की विरहिणियों के बाल खुले रहते हैं, उन्हें बाँधने में उनको रुचि ही नहीं होती[५५]। बँधे हुए बालों के लिए अष्टछाप-काव्य में 'चोटी', 'बेनी', 'कबरी' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और उसे बनाने के लिए 'गूँथना', 'गुहना' आदि कहा गया है[५६]। चोटी में 'फुँदना' भूलने की बात भी परमानंददास ने लिखी है[५७]। 'बेनी' में चंपे आदि फूलों का गूँथा जाना उन्होंने[५८] कहा है और तीन लड़ों में गूँथी जाने वाली 'मेंढ़ी' का भी उल्लेख किया है[५९]।

घ मांग—बालों को सुलझाकर चोटी करके 'माँग' निकाली जाती है जिसे 'मंग', माँग, 'सीमंत'[६०] आदि कहा गया है। 'माँग' निकालने के लिए 'पाटी' या

५१ 'अलक' जु हुती भुवंगम हू सी लट लट मनहु भई'—सा १४ ८।
५२ क राजति राधे 'अलक भली री—सा १७ १।
ख सहज सुगंध साँवरी अलकें, [किनहिं] फुलेल' उलेल सी मलकें—नंद, रूप पृ ४।
ग. 'अलक' मधुप सम राजहीं अरु मुक्तावलि माल—परमा ६१८।
५३ कुंतल' अतिमाल तापै मुरली कल रटना—परमा १२४।
५४ लटकत अरु जुल्फ' घुँघरारी मोहत सब्द हलाहल कूट—परमा ३१।
५५ व्याकुल बार न बाँधति छूटे—परमा ५५८।
५६ क बनी ललित ललित कर 'गूँथत' सुन्दर माँग सँवारत—सा २६२८।
ख बनी चंपक बकुलन ग्रंथित' रुचि रुचि रुक्मिनि सँवारी—परमा ६११।
ग बनी सुंदर स्याम गुही री—गोविं २ १।
५७ चोख चँवर पटिफल पे गूँथी डोर बुनाए मे झूले।
फूलत अति कवि सुंदरता फुँदना अहीं समतूले—परमा ६१२।
५८. बेनी चंपक बकुलनि ग्रंथित' रुचि रुचि रुक्मिनि सँवारी—परमा ६११।
५९ मृगमद तिलक अलक घुँघरारे गुही दै ओटा 'मढ़ी'—परमा कीर्त ११४।
६ क गजमोतिनि सुन्दर लसत 'मंग'—सा २८७६।
ख बेनी गुही सिर माँग सँवारी सीस फूल लटकारी—कुम्भन २५२।

'पन्निया' 'पारना' शब्द प्रयुक्त हुआ है[११]। 'माँग' को मोती आदि से भरने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[१२]। सधवा हिंदू स्त्रियाँ सेंदुर से 'माँग' भरती हैं जिसका उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में मिलता है[१३]।

क *अंजन*—नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल' लगाने से सामान्यतया उनकी शोभा बढ़ जाती है। अष्टछापी कवियों ने भी सुंदरी गोपियों के नेत्रों में 'अंजन' या 'काजल-रेख' का वर्णन किया है[१४] और परमानंददास की विरहिणी गोपी ने तो निश्चय कर लिया है कि नंदनंदन के नयनों से 'नयना' मिलने पर अर्थात् उनका दर्शन होने पर ही नेत्रों में काजल लगाऊँगी[१५]।

ख *महावर*—पैरों में 'महावर' या 'जावक' लगाने की बात अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर लिखी है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर यशोदा के पैरों में 'महावर' लगाने के लिए 'नाइन' को बुलाने की बात सूरदास कहते हैं[१६]। उनकी गोपियाँ तो शृंगार करते समय 'महावर' या 'जावक' लगाना कभी भूलती ही नहीं[१७]।

ग *बिंदी और तिलक*—अष्टछापी कवियों की गोपियाँ 'सेंदुर' या 'चंदन'

ग सिर सीमंत सँवारि—सा २११८।

११ क बेनी गूँथि माँग सिर पारी—सा २८७६।

ख मुँ[illegible] 'पाटी' पारि सँवारे—सा वें १ २६।

ग बे मोरे सिर 'पटिया पारै' कंघा काढ़ि उझाऊ—सा वें १४६६।

१२. मोतिन माँग बिथुरी ससि मुख पर मानहुँ नक्षत्र आए करन पुजा—कुंभन १ ५।

१३ क मुख मंडित रोरी रंग सेंदुर माँग छुही'—सा १०-२४।

ख मुखहि तँबोल नैन भरि काजर सेंदुर माँग सुदेस जू—कुंभन ६२।

१४ क नवीकरम रस सों भिजी रचि पचि 'अंजन रेख' बनाई—परमा ६१६।

ख चिबुक बिंदु बर लुँभी 'नैन अंजन भरि' बै भव बोरै—चतु १६६।

१५. ता दिन काजर देहौं सखी री।

जा दिन नंदनंदन के नैना अपने नैन मिलैहौं सखी री—परमा ५४४।

१६ नाइन बोलहु नवरंगी ल्याउ 'महावर' बेग—सा १ ४।

१७ क ललनि रंग 'जावक' की सोभा देखत पिय-मन भावत—सा १ ५४।

ख नागनि 'महावर' सुन रच्यो—सा ११८।

ग. पीन पिंडुरिया नैमीर चरनन 'जावक' दीनो ललिता—परमा ६१६।

'रोरी' या 'रोली', 'चंदन' आदि की 'बिंदियाँ'^{६८} और 'मृगमद', 'केसर' आदि का 'तिलक' या 'टीका'^{६९} लगाती हैं जिससे उनके गोरे मुख की शोभा और भी बढ़ जाती है। कभी कभी 'सिंदूर' आदि की बिंदी के साथ साथ 'कस्तूरी' या 'मृगमद' का आड़ा तिलक लगाये जाने^{७०} की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कुंभनदास ने काजल का तिलक लगाया जाना लिखा है^{७१}। सूरदास ने 'बिंदी' और 'तिलक' के चारों ओर लाल 'चूनी' भी लगाये जाने का वर्णन किया है^{७२}। शुभ अवसरों पर 'गोरोचन' या 'रोचन' के तिलक लगाने की भी बात उन्होंने कही है^{७३}।

घ *तिल*—गोरे मुख की ठोढ़ी' पर काला 'तिल' सुंदर लगता है। अष्टछापी कवियों ने भी चिबुक' पर 'तिल' अथवा 'काजल-बिंदु' की शोभा का वर्णन किया है^{७४}। सूरदास ने गोरे मुख पर श्यामल 'तिल' की प्राकृतिक शोभा की ओर संकेत किया है^{७५}। चिबुक पर 'तिल' बनाने के अतिरिक्त कपोलों पर विविध रंगों से चित्र बनाये जाने की^{७६} बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। कहीं कहीं

६८.क गोरे ललाट सोहै 'सेंदुर को बिंदु'—सा १ ७६।
 ख चंदन बिंदु निरखि हरि रीझे, ससि पर बाल बिभास—सा १ ५१।
६९.क तिलक' केसरि को 'ता बिच सेंदुर बिंदु बनायौ —सा २६११।
 ख ससि मुख 'तिलक' दियौ मृगमद कौ —सा १ ५५।
 ग. सेंदुर तिलक तबोल मुस्मिता बने बिसाल—चतु ८।
 घ भृकुटी धनुष नैन सर साँधे सिर केसरि कौ टीका —सा १७ २।
७० क. भाल लाल 'सिंदूर बिंदु पर मृगमद दियौ सुधारि—सा २११८।
 ख कुमकुम आड़ सवत श्रम जल मिलि—सा १७ १।
 ग. 'सेंदुर तिलक तंबोल मुदिता बने बिसेन।
 मोप्रत 'केसरि-आड़' कुमकुम काजर-रेख —चतु ८।
७१ 'काजल तिलक दियो नीकी बिधि कचि कचि माँग सँवारी—कुंभन ११६।
७२. ताटक तिलक मुदेस झलकत रचित 'चूनी लाल—सा १८४२।
७३ क गौरोचन दूब दधि माथ रोरी अच्छत लाय—परमा ११२।
 ग. दधि रोचन को तिलक कियो सिर—परमा ४८६।
७४ क चिबुक स्याम बिंदु'—सा १ ४१।
 ख चिबुक चारु तिल' नारि बनायौ—सा २६११।
 ग. चिबुक मध्य सामल बिंदु राजे मुख मुख मदन लजानी—परमा ११६।
७५. चिबुक बिंदु' बिन दियौ बिधाता रूप सींव निरुवारि—सा २११८।
७६ क काजर आँजि नैन रोरी हरद कपोल—चतु ८।

कृष्ण के अंगों पर भी इसी प्रकार के चित्र बनाये जाने का उल्लेख मिलता है[७७]।

७. मेंहदी—हाथ-पैरों में मेंहदी रचाने का प्रचलन भी बहुत समय से रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने इसका उल्लेख किया है[७८]।

८. गंध-द्रव्य—स्नान के पश्चात् शरीर को विविध द्रव्यों से सुगंधित करना इस देश की स्त्रियों को बहुत प्राचीन काल से प्रिय रहा है। अष्टछाप काव्य में भी उनकी इस रुचि की चर्चा अनेक स्थलों पर की गयी है। जिन सुगंधित द्रव्यों का इसके लिए उपयोग किया जाता रहा है, अष्टछापी कवियों के अनुसार वे अकार क्रम से ये हैं—अगरु, अरगजा, कपूर, कस्तूरी या मृगमद, केसर, चंदन, चोवा आदि[७९]।

९. आभूषण—स्त्री और पुरुष दोनों सदा से आभूषण प्रेमी रहे हैं और कभी-कभी तो आभूषण ही उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के द्योतक मान लिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में भी आभूषणों का उल्लेख बहुत हुआ है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि तत्संबंधी लौकिक वैभव के जिस आदर्शतम रूप की कल्पना मानव-समाज कर सकता था वह सभी अष्टछापी कवियों ने अपने परम आराध्य और उनकी प्रियाओं के लिए सहज ही सुलभ कर दिया है। श्रीकृष्ण, राधा, गोपी तथा अन्यान्य स्त्रियों के आभूषण अष्टछापी कवियों ने 'कंचन या 'हाटक' के साथ-साथ मोती, रत्न, मणि-माणिक्य लाल आदि के बताये हैं[८०]। इन बहुमूल्य धातुओं और रत्नों के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'काँच की मनियाँ' आदि

ग. 'उर परवा रत पातु चित्र बधि' सुभग श्रीअंग लसन की—चतु. १६१।
७७. 'स्याम सुभग तन पातु चित्र अंग बदन प्रथम मनु हासि—परमा. ५६५।
७८. क. 'अवतः सुहाग भाग्य की लहरें हस्त हैं मेंहदी दागे'—परमा. ११६।
ख. 'और दैयर्नी मेंहदी राजति पीठि पुरट के पान'—कुम्भन ५।
७९. क. 'चंदन अरगजा सूर अंग्हरि धरि सऊँ'—सा. १ ७४।
ख. 'चंदन अगर कुमकुमा' मिश्रित—सा. २७०८।
ग. 'चोवा चंदन और अरगजा' अरु सुख में हम राची—सा. १९ १।
घ. मृगमद मलय कपूर कुमकुमा केसर मलिये साथ—सा. १६१७।
८०. क. कुंडल 'कनक जड़े मनि मरकत' अभमगात बैस मीन—परमा. ५६५।
ख. 'कंचन नगनि' जरि त आभूषन विधि सों कर सिंगार बनावे—चतु. १४।

का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। बाहु के आभूषण 'अंगद' और 'केयूर' बताये गये हैं[१]। बालकों के हाथ में 'चूरा' और 'पहुँची'[१२] भी अष्टछापी कवियों ने पहनायी है और कमर में 'करधनी', 'किंकिनी' या 'क्षुद्रघंटिका'[१३]। बालकों के पगों में 'नूपुर' और 'पैजनिया या पैजनी' पहनाये जाने का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[१४]।

ख स्त्रियों के आभूषण—सूरदास ने एक पद में स्त्रियों के 'द्वादश आभरणों' का उल्लेख किया है,[१५] परन्तु अन्यत्र उन्होंने तथा अन्य अष्टछापी कवियों ने सोलह आभूषण धारण करने की बात कही है[१६]। स्त्रियों के बारह आभूषण ये हैं—शीशफूल, टीका बाली, बेसर, कंठश्री, हार, बाजूबंद चूड़ी, कंगन, मुँदरी, किंकिणी तथा नूपुर, परंतु थोड़े-बहुत अंतर से अष्टछाप-काव्य में वर्णित उनके भेदों और उनसे मिलते-जुलते आभूषणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। स्थूल रूप से इनको नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—शीश, माथे कान नाक, गले, बाहु, कलाई, कटि और पैर के आभूषण।

अ शीश के आभूषण—'टीका' या शीशफूल', 'माँगपाटी', 'चंद्रक' या

ग नग सिर अंग सिंगार मगर मनि 'मोतिनि की माल पहराइ—परमा १ १।

११ क ले 'कयूर भुज स्याम निहारति—सा ५१२।

ग कटि किंकिनी कर कंकन 'अंगद बनमाला पद कमल सुभाई—गोवि ११।

१२ क. तन झँगुली सिर लाल चौतनी 'चूरा' दुहुँ कर पा"—सा १ ८८।

ग कर 'पहुँची नूपुर बाजे पाय—परमा कीर्तन सं भाग १ पृ १७२।

ग करमा कंठ रुचिर 'पोहोंची कर—नंद ६।

घ 'पहुँची कर बनी चारु छीत ७६।

१३ क तनक कटि पर कनक करधनि छीनि छवि चमकति—सा १०-१८४।

ग नूपुर कंकन 'किंकिनि' कटि रुनझुन बाजे—परमा ७७।

ग रुनन झुनन परत पाँय किंकिनी विचित्र राव—छीत ७६।

घ नूपुर कनक 'क्षुद्रघंटिका' रनु बाकरपित बाज—परमा ४७।

१४ क आँगन पंकराग मन मोहन नाच नूपुर' धुनि मुनि मन मोह—परमा ८४।

ग रुनुक झुनुक पग बाजत 'पैजनियाँ —परमा ४४।

ग पाँव पैजनी रुनझुन बाजे आँगन मनिमय डोलना—परमा ८५।

१५. द्वा म आभरन साजि कंचन तन—सूर कीर्तन संग्रह भाग २ पृ १७८।

१६ नूतन धार नख भ्रम सुन्दार प १६ भूषन नारी—परमा ७२१।

'चंद्रिका' आदि शीश के आभूषणों की चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है[१७]। इनके अतिरिक्त मोतियों की लड़ों से माँग को अलंकृत[१८] करने की भी बात उन्होंने लिखी है।

आ माथे के आभूषण—अष्टछाप-काव्य में माथे के मुख्य आभूषण के रूप में 'बेंदी' या 'बेना'[१९] का उल्लेख हुआ है।

इ कान के आभूषण—'अवतंस', 'कर्णफूल', 'कुण्डल', 'खुँमी' या 'खुभी', 'झुमका' या 'झूमक' आदि आभूषण कान के बताये गये हैं[२०]। इनके अतिरिक्त 'तार्टंक' भी कान का ही आभूषण है जिसे 'तरकी' 'तरिवन', 'तरयौना' आदि भी

१७ क मोतिनिमाल मराइ को टीको—सा १५४।
ख 'टीका' टीक, रिकावली हीरा हार, हमल—छीत ५७।
ग टूटत बुरी मिलत 'सिरफूल'—परमा २११।
घ बनी गुही बिच माँग सँवारी 'सीसफूल' लरकारी—गोविं २४।
ङ बिबिध बनी रची माँग पाटी' सुमग माल बैंदी बिंदु इन्दु लाजै—सा १४२।
च 'चंदक' मनहुँ महाउत मुख पर अंकुस बसरि लावै—सा १४११।
छ. कटि किंकिनी 'चंद्रिका' मानिक—सा १-६७।
१८. 'मौतिनि मांग बिथुरी ससि मुख पर—कुभन १५।
१९ क बदन बिंद मराइ की बेंदी—सा २६२८।
ख दीनी नई नकबसरि बेंदी मराऊ की—चतु ७।
२ क मिलि राजत 'अवतंस'—सा ६१२।
ख 'करनफूल कर लिए सँवारति—सा २१८९।
ग मानौं करनफूल पारा कौं रवन्त बारंबार—सा २६१।
घ कित स्रवननि तार्टक खुभी और करनफूल कुटिलाऊ—सा १८१५।
ङ कनक करनफूल भृकुटी गति मोहत कोटि अनंग—चतु १८।
च खुभी मराइ जरी है—सा १५५।
छ. सेंदुर तिलक उँबोल कुटिला' कन बिसेखि—चतु ८।
ज 'कुटिला' खुँभी रुचिर नकबेसरि—चतु ६२।
झ. ललाक तिलक रतन 'खुभी' गंड अति बिराज—कृष्ण, हस्त प्रति पृ १४२।
ञ. 'कुटिला' खुँभी मराय की मृगमद आड सुदेस—गोविंद कीर्तन भाग २ पृ ११।
ट चंचल चंचल 'झूमका'—सा ११८।
ठ गजमौतिनि के झूमका' बाँधे—चतु ११।
ड. करनफूल झूमका गजमौतिनि बिथुरि रहे तापराने—चतु १६६।

कहा गया है[1]। 'बीरा' भी 'तारक' से मिलता-जुलता ही आभूषण है जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है[2]।

ई नाक के आभूषण—अष्टछापी कवियों ने नाक के आभूषणों में 'नथ', 'बेसरि' या 'बुलाक'[3] आदि का उल्लेख किया है।

उ गले के आभूषण—स्त्रियों के सभी अंगों के आभूषणों में अधिक संख्या अष्टछाप-काव्य में गले के आभूषणों की मिलती है। एक एक आभूषण के कई कई नाम भी उन कवियों ने लिखे हैं। अकारादि-क्रम से गले के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त पर्यायवाची शब्द ये हैं—कंचनहार, कंठश्री या कंठसिरी, खँगवारो[4], गज-मोतिनि-हार, चौकी, टीक, तिलरी, तौक या तौकी, दुलरी, नौसरिहार, पदिक, मनिमय ग्रन्थित हार, मुक्तामाल, मुक्तावली, मोतिसिरी, मोतीमाला, हमेल, हँसुली,

१ क. श्री मनिमय रच्यो तिलक तरिवन रचो रचित सहसाज—सा. २८८५।
ख. सकल पास 'तारक' सोहत मानो रवि ससि जुगल परे मन फंद।
—कृष्ण सोम पदावली पृ. ५४।
ग. फूलन के तराना कुंडल फूलन की किंकिनी सरस सँवारी—नंद पृ. १०८।
घ. नकबेसरि 'तारक' कंठसिरी अनुभाँति—चतु. ८।
२ क. कानन की बीरें अति राजति मनहुँ मदन रथ-चक्र चलायो—सा. १११।
ख. कनक ग्रथित मणि बीरे कवि जु उपमा पाइ—सा. २८११।
३ क. नासा नथ मुक्ता व भाँति राजै अधर तट आइ—सा. १८६८।
ख. नासा नथ अति ही छबि राजति अधरन बीरा रंग—? २७।
ग. करन नथ नव माँहि संगम और भूप अनंग—सा. २१११।
घ. भाल तिलक, काजर चख, नासा नकबेसरि नथ फूली—सा. १८१५।
ङ. लटकनि बेसरि अधरनि की दुलरी छवि लागे—सा. १०७२।
च. नासा सुभग निरख बुलाकी चमक लिखी [illegible]—परमा. ९१६।
छ. मुक्तिमा मुँदी चिबुक नकबेसरि दूरि करत रवि कांति अ—चतु. ९२।
ज. कटि किंकिनि पग नूपुर बाजे नाक बुलाक हले री—सा. परि. १११।
४ क. कंचन हार हिय सोहै माला मुक्ता मनोजी हार—सा. [illegible]।
ख. कंठश्री दुलरी विराजति चिबुक श्यामल बिंद—सा. [illegible]।
ग. नकबेसरि तारक कंठसिरी अनुभाँति—चतु. ८।
घ. कंठ कंठसिरी मोहे कनक [illegible] की माल गरे—छीत. ८९।
ङ. रतनग्रथित [illegible] गर की [illegible]—सा. परि. ८।

हार, हारावली आदि^ ।

ज. बाहु के आभूषण—अष्टछाप काव्य में स्त्रियों का बाहु के आभूषणों में केवल तीन का प्रमुख रूप से उल्लेख हुआ है—गौंड़, बहुँटा और बाजूबंद[१] ।

ए कलाई के आभूषण—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित कलाई के प्रमुख आभूषण और उनके लिए प्रयुक्त अन्य नाम इस प्रकार हैं—अँगूठी, कंकन या कंगन, कड़ा, चूरा, चूरी, पहुँचिया, पहुँची या पोहोंची वलय, मुँदरी, मुँदरिया, मुद्रिका आदि^ ।

५.क कंचन बर किंकिनी उर गजमोतिनि हार —चतु ८ ।
ख उर गजमोतिनि हार नृ—चतु ६२ ।
ग. 'चौकी' हेम नंद्रमनि लागी रतन जराइ लचाइ—सा १ ५५ ।
घ 'चौकी पर नग बन्यो बनायो—सा २६११ ।
ङ 'चौकी' बनी जराइ दूरि करत रवि-कांति—चतु ८ ।
च 'चौकी हेम जराय की रत्न खचित निरमोल—गोविं , कीर्तन भाग २, पृ ११ ।
छ. टीका टीक' टिकावली हीरा-हार 'हमेल —छीत ५७ ।
ज. कंठसिरी दुलरी तिलरी उर' मानिक मोती हार—सा १८७५ ।
झ. बहुँटा कर कंकन बाजूबंद एते पर है 'तौकी'—सा १५४ ।
ञ. फुलन की दुलरी हमेल हार—नंद पृ १३८ पद ४६ ।
ट. कंठसिरी दुलरी तिलरी उर और हार इक नौसरि —सा १५७ ।
ठ कंठसिरी उर 'पदिक' बिराजत 'गजमोतिनि' के हार—सा २६१ ।
ड 'मनिमय जटित हार' ग्रीवा कौ—सा १ १५ ।
ढ कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल'—सा १ ६५ ।
ण कंठ कपोत 'मुक्तावलि हार'—सा २६ ।
त बाहु तहाँ 'मोतसिरी गँवाई—सा ११७२ ।
थ हरि तोरी 'मोतिनि की माला'—सा १६११ ।
द पचिरि लेहि सोने के तरिका रतन जटित कौ 'हाँसुरी'—परमा कॉक ७२१ ।
ध चंचल चपल कुच 'हारावली बनी खचित खचित कुसुमाकर—परमा ११७ ।
६.क कर कंकन तैं भुज टॉड भई—सा ४ ६ ।
ख 'बहुँटा' कर कंकन बाजूबंद' एते पर है तौकी—सा १५४ ।
ग बाजूबंद तउ हिंग सोहत नग बहु मोती लागे—परमा ९११ ।
घ 'बाजूबंद' जटित कर पहुँची—चतु २ ६ ।
७.क तब कर काढ़ि 'अँगूठी' दीन्ही जिहिं जिय उपज्यौ धीर—सा ९-८६ ।

ग कटि के आभूषण—कटि का केवल एक प्रमुख आभूषण है 'करधनी' जिसके लिए 'किंकिनी', 'क्षुद्रघंटिका', 'छुद्रावली' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है। इनके अतिरिक्त 'करधनी' के लिए 'काँची' 'दाम', 'मेखला' और रसना' शब्द भी प्रयुक्त होते हैं[१]। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'मेखला' और 'हेमदाम'[१] का उल्लेख प्रमुख रूप से मिलता है।

क गई री गिराइ करतु ते 'कंकन' द्वारे आइ सँभारयौ।
'ढीली बील निसरि गई क्यों ही जसोमति द्वारे बारयौ—परमा कीर्त २२१।
ग कर 'कंकन' कटि किंकिनि राजत—गोविं १०२।
घ झनुक झुनुक कर 'कंगन' बाजै बाँह डलावत ढीली री—परमा ११६।
ङ बाहनि बाजूबंद 'कड़ा' जटित कर अँगुरिनि मुँदरी राजै—कुंभन १।
च कर कंकन 'चूरा' गजरौटी नख मेटत मनि मानिक कंठी—सा २६ १।
छ. टूटत हार कंचुकी फाटत चुरी' खिसत सिरफूल—परमा २११।
ज अबहीं नौ पहिरि हौं आई 'चुरियाँ' गई सब टूटि—परमा ११५।
झ. निमित बाँह पहुँचिया पहुँचे—सा ४५१।
ञ बाजूबंद जटित कर पहुँची—चतु २ १।
ट नवग्रह गजरा अमागमें नग 'पोहोंची' चुरियन आगे—परमा ६१६।
ठ नौग्रही कर पाहोंचिया हो—गोविं ११५।
ड कनक 'कलय' मुद्रिका मोद प्रद सदा सुभग संतन भाजे—१-६१।
ढ मुक्त बहूँटनि बलय' संग को—सा १४७५।
ण मिले कुंडल हार दई कर मुदरी —चतु ७।
त दरपन निरख मुँदरिमा' धरनी तंत्र पुंज की नगरी—परमा ६१६।
थ कर पल्लवनि 'मुद्रिका सोहत ता छबि पर मन लावति—सा १ ५१।
द पल्लव पानि 'मुद्रिका' सोभित छुद्रावलि गजगति चाली हो—गोविं २ ४।
८.क 'किंकिनी नूपुर बाजनी सबर री कोलाहल केलि—परमा ६१६।
ख कटि किंकिनी हार तरलित ताटंक अलक घुँघरारो—गोविं २९७।
ग. कर कंकन कटि किंकिनी की छबि—गोविं ६२।
घ कटि तट पर किंकिनी कल नूपुर रव रुनझुन करे—छीत ४।
ङ 'क्षुद्रघंटिका पग नूपुर जहरि बिछिया सब लेलो—सा १५४।
च 'छुद्रावलि उदारति कटि तें सैति धरति मनहीं मन धारति—सा ५४१।
९. 'रामायणकालीन संस्कृति पृ. ११।
१ क अब कत दुरावि 'कनक मेखला मिलि सुरति निसान बजाई।
—कृष्ण हरव मति, पद १४।

झ पैर के आभूषण—'घुँघरू', 'जेहरि', 'झाँझ', 'नूपुर', 'पायल', 'पैंजनी'[११] आदि पैर के आभूषणों का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। इनके अतिरिक्त पैर के अँगूठे में 'अनवट' और उँगलियों में 'बिछिया' या 'बिछुवन' पहनने की बात भी कही गयी है[१२]।

ट फूल-माल—इस देश के शृंगार-प्रसाधनों में फूलों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और ब्रज में तो 'फूलमंडली' नाम से फूलों का उत्सव भी मनाया जाता है जिसमें श्रीकृष्ण और राधा का सारा शृंगार फूलों से ही होता है[१३]। इसकी चर्चा 'उत्सवों' के अंतर्गत आगे की जायगी। फूलों की 'माला'[१४] धारण करने की बात भी अष्टछापी कवियों ने बराबर लिखी है।

ख मुखरित कटि घट 'मनिमय माला' अभिनव गति चंचल करतला।
—कृष्ण, सौम पद्य पृ ७५।

ग कटि तट सोहत हेमनि 'दाम'—कृष्ण सौम पद्य, पृ ७५।

११ क 'घुँघरू' घंट घुमाइ गजाशि मदमाती हौ—सा २८६२।

ख पग 'जेहरि' जंजीरनि जकरयौ—सा १४१६।

ग. जेहर जेहर पायन सौं—परमा ६१६।

घ जेहर' जेहर पाय बिछुवन छवि उपजावत—नंद कीर्तन भाग २, पृ १२१।

ङ चरन महावर नूपुर मनिमय बाजत भाँति भली—सा २६११।

च बन्यौ है कटि मेखला चरन झाँझ' री—परमा झाँझ २५१।

छ. चरन नूपुर रीझि कटि छुटि क्षुद्रघंटिका—कृष्ण सौम पद्य पृ ६६।

ज सोहै नकबेसरि चाइ 'पायल झनझुन बाजनी—कृष्ण कीर्तन, भा २ पृ. १२१।

झ. मन ट नूपुर चूरा रत्न जटित है पायल—नंद कीर्तन, भा २, पृ १२१।

ञ कंचन चुरी, किंकिनी नूपुर पैंजनि बिछिया सोहत—सा १०५८।

ट पाँन पैंजनी मेंहदी राजति, पीठि पुरट के पान—कुंभन ५ ।

१२.क जेहर जेहर पायन सौ 'अनवट' कुंदन हीरा जटित—परमा ६१६।

ख 'अनवट' नूपुर चूरा रत्न जटित है पायल—नंद कीर्तन भाग २, पृ १२१।

ग. कंचन चुरी किंकिनी नूपुर पैंजनि बिछिया' सोहत—सा १ ५८।

घ मंजुल कोकिल रव मर्दन करि नूपुर बिछिया' बोलै—परमा ६११।

ङ जेहर जेहर पाय बिछुवन' छवि उपजावत—नंद कीर्तन भाग २, पृ. १२१।

१३ क करि सिंगार सब फूलन' ही को—सा २८८२।

ख 'फूलनि नख सिख सिंगार'—सा ११२७।

ग कुसुमनि के आभूषन' कुसुमनि के परदा—गोविं १४६।

१४ क क्रीट मुकुट सिर सुभग लाल गरे 'फूलन की माला'—परमा ६२८।

ङ पान रचाना— पान की कुछ चर्चा पीछे की जा चुकी है। अष्टछापी कवियों ने शृंगार प्रसाधन के रूप में भी उसका वर्णन किया है[१५] कपोल आदि पर जिसकी पीक का वर्णन खंडिता-संबंधी पदों में मिलता है[१६]।

शृंगार में सहायक 'दर्पण'—शृंगार करने के लिए 'दर्पण' या 'आरसी' अत्यंत आवश्यक है। केवल यथोचित शृंगार करने के लिए ही नहीं, स्वरूप को देखकर स्वयं ही मुग्ध होने की मानवीय कामना भी 'दर्पण' या 'आरसी' देखने पर ही पूरी होती है। अष्टछापी कवियों में छीतस्वामी ने शृंगार के समय दर्पण दिखाये जाने[१७] का वर्णन किया है तो सूरदास ने शृंगार करके[१८] दर्पण में स्वप्रतिबिंब देखकर राधा के इतना मुग्ध होने की बात कही है कि वह उसे ब्रज की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझकर उस पर कृष्ण के रीझने के डर से खीझने तक लगती है[१९]। सूरदास की यह कल्पना कितनी कमनीय और साथ ही कितनी अद्भुत है, सहृदय ही समझ सकते हैं।

ख फूलन की सेज फूलन गलमाला'—परमा ६२८।
ग पिय प्यारी को बनी बनावत 'फूल के हार' सिंगार करत—गोविं १५ ।
१५.क मुख तँबोर नहिं अधर विरह सरीर बिगोय—परमा ५२१।
ख परमानंद दास को ठाकुर हँसि दीनो मुख बीरा—परमा ७१२।
१६ क पीक कपोलनि' तरिवन कें ढिग मलमलाति मोतिनि छवि ओप—सा २६६१।
ख अधर अधर नयन रँगमग रची 'कपोलनि पीक'—परमा ६६।
ग. अधर दसन क्षत वसन 'पीक' सह भाल 'कपोल' समबिंदु देखियत—गोविं २७५।
१७ विविध भाँति भूषन लै करति सिंगार रुचि अपनी मुखर।
'लै दर्पन श्रीमुख दिखरावति निरखि निरखि हँसि लेत है मन हर—छीत ७१।
१८.क दरपन लै कबरीहिं सँवारत—सा २१८८।
ख करति सिंगार वृषभानु बारी।
× × ×
निरखि आपनो रूप आप ही विवस भइ, सूर परछाहिं को नैन जोरे-सा २१६ ।
१९.क यह सुंदरी कहाँ तें आई।
कर तें मुकुर' दूरि नहिं डारति हृदय माँझ कछु रिस उपजाई।
बार-बार प्रतिबिंब निहारति नागरि मन मन रही लुभाई।
देखें कहूँ नन भरि याको, नागर सुदर कुँवर कन्हाई—सा २११९।
ख मुकुर छाँह निरखि देह की दसा गँवाई।

समीक्षा—अष्टछापी कवियों के शृंगार-प्रसाधन के प्रमुख अंग, अलंकार वर्णन से स्पष्ट है कि उन्होंने सामान्य लौकिक नर-नारियों की कल्पना से परे समृद्धिशाली नायक-नायिकाओं का चित्रण किया है। 'दान-प्रसंग' के एक पद में गोपियों के लगभग बीस आभूषणों की चर्चा श्रीकृष्ण ने की है[२] जिससे खीझकर गोपियाँ कहती हैं कि जितना हम आज पहनकर आयी हैं, उससे दूना अभी घर पर है[२१]। निस्संदेह यह समृद्धि उन्हीं ब्रजवासियों की हो सकती है जहाँ सिद्धियाँ और निधियाँ विचरी फिरती हों। जो हो, अष्टछापी कवियों के शृंगार-वर्णन से ब्रज के समकालीन युग की जन-मनोवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है और उससे उनके समाज के सर्वाधिक समृद्धिशाली वर्ग का चित्र भी सहज ही सामने आ जाता है।

४ *व्यवहार की सामान्य वस्तुएँ*—

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित इस वर्ग में आनेवाली वस्तुओं को मुख्य रूप से पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, ख पात्र, ग बैठने और सीने के उपकरण, घ खिलाने के उपकरण और ङ रंग।

क *दैनिक उपयोग की वस्तुएँ*—इस वर्ग में आने वाली वस्तुओं में सर्वप्रथम है 'ईंडुरी' जिसके लिए अष्टछापी कवियों ने 'ईंडुरिया ईंडुरी' ईंडुरी', 'गिंडुरी', 'गोंडुरी' यहनिया आदि शब्दों का प्रयोग किया है[२२]। इस वर्ग की अन्य वस्तुएँ

बोली यों कौन की आपुन ही गवन कियो पसी को बैरिन है या ब्रज में माइ।
—सा २११२।

ग नाम कहा सुन्दरी तुम्हारो क्यों मारो नहिं बोलति हो।
हँसे हँसति चितवें चितवति तुम उन बोलैं तन डोलति हो—सा २११८।

२ 'मोतिनि माल जराइ को टीको करनफूल, नकबेसरि।
'कंठसिरी दुलरी तिलरी उर और 'हार इक नौसरि'।
सुभग हमेल' जराव को अँगिया नगनि जरित की चोली'।
'बहुँटा कर-कंकन बाजूबँद एते पर है 'ताकी।
'छुद्रघंटिका' पग नूपुर जहरि' बिछिया' सब कहैं लेखौ—सा १५४।

२१ जितनो पहिरि आजु हम आई पर है यातैं दूनो—सा १५४१।

२२ क वेही लाल ईंडुरिया' मरी—गोवि ५४२।
ख काहू की ईंडुरी हटकावै—सा ११११।

ईंधन,[२३] उखलल या उखल,[२४] कुठार [२५] कुलुफ, [२६] चाक,[२७] चूल्हा,[२८] छुरी,[२९] छींका,[३०] दीप या दीपक,[३१] पिंजरा या पींजरा,[३२] मथनिया या मथनी अथवा मथानी,[३३] संदूक [३४] साँकरि[३५] आदि हैं।

ख पात्र—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित पात्र, स्थूल रूप से, दो वर्गों में रखे जा सकते हैं —क दैनिक व्यवहार के पात्र और ख अन्य पात्र।

क दैनिक व्यवहार क पात्र—इस वर्ग में कचौरा,[३६] कटोरा या कटोरी,[३]

ग. मलयुली इँडुरी' भाविनि की मसलरि मुसका—गोवि ५४ ।
घ नीकें देहु न मेरी गेंडुरी —सा १४१६।
ङ काहू की छीनत हो गेंडुरी काहू की फोरत गगरी—सा ८५१।
च मेरे सिर की नई 'मथनिया' लै गोरस में सानी जू—सा १०-११७।
२१ क ब्रज करि अबौं जोग कारि 'ईंधन' सुरति अगिनि सुलगाए—सा १७८१।
ख चंदन नील पुलिदी के वर 'ईंधन करि ताहि माने—परमा ५४२।
२४ क. मालन लागि उखूलल' बाँध्यौ सकल लोग ब्रज जोवें—सा १४७।
ख देखि स्याम 'ऊखल' सौं बाँधे—सा १७ ।
ग. काहे को दाम उखूलल' बाँधे ऐसी महतारी—परमा कौंक ११७।
२५. जदपि मलय-वृच्छ जड काटे कर कुठार पकरै—सा १ ११ ।
२६. कनक कुलुफ मणि मंदिर में पल संदूक पट आटके—सा २१२१।
२७ सदा रहति चित 'चाक चढ्यो सो और न कछु सुहात—परमा ४४९।
२८. एक जेंवन करत स्यारो बारी 'चूल्है' बार—सा ६६५।
२९ लै-लै 'छुरी कुमारि राधिका कमलनैन पर वारैं—सा २८५४।
३ 'छींकें' ते काढि खाट चढि मोहन कछु खायो कछु भू ढरकायो—परमा १४७।
३१ क. 'दीप' सौं दीप जैसें उजारी—सा २४६५।
ख दीपक' प्रेम कोष मारत विनु परसत जनि बुझि जाई—सा १८२१।
३२. दौरि गहन मुरन मदु मुसक्यावनि लोभ 'पींजरा डारे—सा २२७२।
३३ क दाम दोहिनी माट 'मथानी'—परमा ५१ ।
ख गोपी दई 'मथनियाँ' फेरै अपनो-अपनो दह्यो बिलोवे—पद्म ११।
ग. ब्रज की औरे रीति भई।
प्रात समय अब नागिन मुनियत घर-घर चलत 'रई'—परमा ५११।
३४ संदूकनि' भरि धरे सो न खोले री—सा १६७४।
३५. आँजन आँजि दई कर साँकरि —कुंभन २११।
३६ मुकुलित कच मुदेस वेलिवत नील वसन लपटाये।
भरि अपने कर कनक 'कटोरा' पीवति मिवहि चलाये—सा १ उ ११८।
३७-क कनक 'कटोरा' भरि-भरि पीजै—परमा ७११।

कूँड़ या कूँड़ी,[३८] कोपर,[३९] भारी,[४०] डकनिया,[४१] तप्टा अर्थात् तश्तरी[४२] आदि पात्र आते हैं जो दैनिक व्यवहार के लिए आवश्यक होते हैं। कमोर या कमोरी,[४३] गगरी, गगरिया गागर, गागरिया या गागरी [४४] और थार, थारी, थाल, थालिका[४५] एवं दोहनी[४६] भी इसी वर्ग के पात्र हैं।

आ अन्य पात्र—इस वर्ग के पात्रों में कमंडल या कमंडली,[४७] कलसा,[४८]

ख कंचन थार थार स्फटिक 'कटोरा पृथक-पृथक करि राखे—कुंभन १ ।
ग. गागी घृत भरि धरी कमोरी —सा ३६६ ।
घ कनक कटोरी भरि कुंकुम मंजुल आगे लै राखी मदन गोपाला—गोविं ८८८ ।
३८. पूँगी फल युत जल निरमल करि, धरि आनी भरि 'कूँड़ी' जो कनक की—सा ६ २५।
३९ दधि फल युव कनक 'कोपर भरि, साजत सौंज विचित्र बनाई—सा ६ ११२ ।
४० ढिग-ढिग धरी सबनि कौं 'भारी' जमुनोदक भरि लाय—कुंभन १ ।
४१ सुभग डकनियाँ ढाँकि बाँधि पट जतन राखि छीकें समुदायी—सा १६ ।
४२. धरि 'तष्टा भारी जल स्याई—सा १२११ ।
४३ क सौंधै भरयो 'कमोर' लाल रँग होरी—सा ८८६६ ।
ख जो चाहो सब देउँ कमोरी' अति मीठो कत ढारत—सा १ २६५ ।
४४ क काहू की 'गागरि' भरि फोरैं—सा ११६१ ।
ख हँसि ब्रजनाथ गह्यौ कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै—परमा ७२८ ।
ग कीनी भार उलेही गागर'—परमा ६१६ ।
घ आइ रूपनिके 'गागरि' पटकी भरी—चतु ८५ ।
४५ क 'थार' कटोरा बरित रतन के, धरि सब साजन विविध जतन के—सा १२११ ।
ख कनक थार थला परिपूरन मलकत दोऊ ठौर तें—परमा ४५१ ।
ग जसोमति थार' परोसि धरी है—गोविं २८१ ।
घ माँगत कछु बहुन 'थारी'—सा १ १८१ ।
ङ चली लाल बिचारु कीजै दोऊ मैया एक 'थारी'—परमा ७०८ ।
च सुनत चली सब ब्रज की सुंदरि कर लिए कंचन 'थाल'—परमा ९८ ।
छ मलमल दीप समीप सौंज भरि लै कर कंचन 'थालिका'—सा ८ १ ।
४६ क. कैसे गहत दोहिनी घुटुरुनि कैसें बछरा बन लै जावु—सा ४ १ ।
ख लै जु रह कर कनक दोहिनी बैठे हो अपपेली—परमा ७ २ ।
ग हाथ कनक की दोहिनी —परमा ७ ४ ।
४७ क हुतो 'कमंडल' दह आठी को—सा ४११६ ।
ख लिए बोलि होत जहाँ आसन लिए 'कमंडल' हाथन—परमा २ १ ।
४८ क कनक कलस कुच प्रगट देखियत आनँद कंचुकि भूली—सा २५११ ।

बेला,[४९] मटकी या मटुकिया अथवा मटुकी या माट,[५०] ढँढिया या दोहनी[५१] आदि पात्र आते हैं।

ग. बैठने और सोने के उपकरण—बैठने के उपकरणों में अष्टछापी कवियों ने आसन,[५२] चौकी,[५३] बैठकी,[५४] पटुली[५५] और पीढ़ा[५६] का उल्लेख किया है। सोने के उपकरणों में सर्वप्रचलित है चारपायी जिसको शिशु या बालकों के लिए 'खटोला'[५७] कहा गया है और वयस्कों के लिए खाट,[५८] पर्यंक या

ख. मनु मधु 'कलस' स्यामताई की स्याम छाप सी दीनी—सा २८२६।
ग. मंगल 'कलस' दूध दधि अच्छत अरु पकृत हिय धीर—परमा ४।
घ. कंचन 'कलस' परचि कसर कै बाँधति बंदनवार—चतु १।
ङ. मंगल 'कलस' कनक केसरि भरि बाँधी बंदनवार—गोवि २।
४९. कनक थार 'बेला' परिपूरन भगवत दोऊ ठौर तें—परमा ६५१।
५०. क. 'मटुकी' भरी मोहन दीजै—चतु १६।
ख. उचित मोल करि दधि को लेहुँ 'मटुकिया' सगरी—परमा १८५।
ग. भरि मटुकिया' कनक की सिर धरि—चतु २१।
घ. लेउ छिनाइ मटुकिया सीस तें—गोवि ७५।
ङ. छबीले सुदर स्याम 'मटुकी' धरि कै धाम—गोवि १८।
च. बड़ी माट' इक बहुत दिनन को ताहि करयो दस टूक—सा १ ११०।
छ. हौं दधि माट मेलि भुन मथनी तन सु गइ मथानी—परमा ७९५।
ज. कंचन माट मराव सौंधे भरी है कमोरी—नंद, कीर्तन, भाग १ पृ १ १।
५१. 'ढाकया मूँदि जसोदा मैया तुमको दै पठई ब्रजनाथ—परमा ६४१।
५२.क. करि दंडवत सुआसन' दीन्हौ—सा ११८१।
ख. बुलाय दियो 'वरआसन'—परमा ५८।
५३.क. मज्जन करत गोपाल चौकी पर।

× × × ×

पुनि सिंगार करन को बैठी रतन जटित 'चौकी पर—छीत ७१।
ख. कनक खचन कंचन चौकी पर अगर नगर दुति भवन—गोवि २९४।
५४. हेम महल चंदनहिं लिपायो चौक दए 'बैठकी' लिपायो—सा १०-११।
५५.क. 'पटुली' हेम बिछौना साजै—गोवि १९६।
ख. झूलन के खंभ दोउ 'पटली' फूलन की—गोवि २ १।
५६. आवति 'पीढ़ा' बैठनि दीनो—सा १०-५।
५७. झूलौ बाँस बुत क्यो खटोला काहू को पलँग कनक मानी को—सा ४२१९।
५८. छाँड़ि तें सादि बाट पाठ मोहन काहु लायो कहू मू दरकायो—परमा १४०।

पर्लंग,[८९] पलिका,[९०] मञ्च या सेज्या[९१]। 'तकिया' और 'तल्प'[९२] भी सेज से संबंधित उपकरण हैं।

घ. *लिखने के उपकरण*—अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थलों पर 'पत्र' या 'पाती'[९३] लिखने का उल्लेख हुआ है। ये पत्र 'कागद' या 'कागर'[९४] पर लिखे बताये गये हैं, यद्यपि प्राचीनकाल की तरह रुक्मिणी की 'लगन' ताड़पत्र[९५] पर लिखी जाने की बात भी सूरदास ने लिखी है। लिखने के अन्य उपकरण लेखनी[९६] और मसि[९७] हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप काव्य में हुआ है।

ङ. *रंग*—अष्टछापी कवियों ने अरुन या लाल, काले, कुसुंभी, गुलाबी, नीले पीले, स्येत या स्वेत, हरे आदि रंगों की चर्चा की है[९८]। रंगों के हल्के और गहरेपन को ध्यान में रखकर उन्होंने 'चटक', 'धुहि धुहि' 'डहडहे' आदि भेदों का

८९ क. मृदु 'पर्यंक' सवारि मृदुल अति तापर सौहिं सुवारे—गोवि. ५६६।
ख. नींद उचाट लाग पर भीतर बैठि 'पर्लंग'—नन्द. १४।
९० हमुमति लै 'पलिका' पौढ़ावति—सू. १०-१६७।
९१ क. सुरंग सेज' पौढ़े श्री-वल्लभ—परमा. ६६१।
ख. लाल कुसुम की सेज बनाई—परमा. ६६४।
ग. मञ्च पर सेज लै पौढ़ावति—सू. ५१८।
९२ क. कुसुम के गादी कुसुम के तकिया कुसुम की सेज बनाई—गोवि. १८६।
ख. [illegible] 'तल्प', विपिन [illegible]—सू. ६ ३४।
ग. हम तो वनिता [illegible] 'तल्प' [illegible]—परमा. ८८२।
९३ क. पत्री पत्र पठायो [illegible]—सू. [illegible]।
ख. [illegible] 'पाती' [illegible]—सू. ३८८५।
ग. 'पतियाँ' [illegible]—परमा. ५३६।
९४ क. 'कागद' [illegible]—सू. ३१ ।
ख. [illegible]—सू. ३८९३।
९५. ताड़पत्र पर लिखे [illegible]—सू. ४७३४।
९६ [illegible]—सू. ८८५।
९७ क. [illegible]—सू. ३३ ।
ख. [illegible]—सू. ३८ ३।
९८ क. [illegible]—छीत. २०६।
ख. [illegible]—छीत. ३१५।

वर्णन किया है[६९]। एक ही वस्त्र का कई रंगों से रँगा जाना, जैसे 'पँचरँग' सारी' का उल्लेख भी उनके काव्य में मिलता है। 'नवरंग' शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण का बहुनायकत्व सूचित करने के लिए किया गया है[७१]। 'केसर', 'मेघू', 'मजीठ' आदि

ग भीजत देखी राधा माधव लै कारी कामरी ठाढ़े—सा १६६ ।
घ भीजे कान्ह कांधे को कंबर ।
नान्ही-नान्ही बूँदन बरसन लागी भीजत कसूँभी' अंबर—सा १५५५ ।
ङ पहिरि 'कसूँभी' अठान की चोली चन्द्र-बधू सी ठाढ़ी सोहै—परमा १६६ ।
च नवल बन म पहिरि तन में 'कसूँभी' चीर कनक बरनि—चतु ११२ ।
छ नवल 'कसूँभी' सारी पहिरे नव बधू प्यारी—चतु १२१ ।
ज सुभग कुसुँभी कंचुकी बिधुरित पीत बंद बिबिध मोमें—गोवि ४१५ ।
झ 'गुलाबी' पिछोरा पाग 'गुलाबी'—चतु १७५ ।
ञ गौर स्याम मिलि 'नील' पीत छबि—सा २८१२ ।
ट खसि-खसि परत 'नील' पीतांबर—परमा ७६४ ।
ठ. नील बसन सों अंग गोरें—गोवि १६५ ।
ड मोर मुकुट मनोहर कुंडल 'पीत' बसन रुचिकारि—सा १७५६ ।
ढ मोर पर 'पीत' अंग सुंदर अति सोभा—सा १४६ ।
ण 'पीत' पिछौरा उर चंदन को—परमा ६१ ।
त कटि नील लहँगा 'लाल' चोली, उपरि केसरि अंग—सा २८१ ।
थ 'लाल' सारी नील लहँगा—सा २८११ ।
द कटि पर पीत सुहावनो बसन उपरैना 'लाल'—परमा ६१८ ।
ध लहँगा लाल गुलाल रंग सम पुरट ठबक सा झूले—परमा ६१६ ।
न लाल काछ कटि किंकिनी पग नूपुर—गोवि १६१ ।
प. लाल सारी नील लहँगा 'स्वेत' अँगिया अंग—सा २८११ ।
फ लहँगा पीत हरे और राते सारी 'स्वेत' सुहाई—परमा ६१५ ।
ब लहँगा पीत 'हरे' और रात—परमा ६११ ।
६९ क मरे सिर की 'चटक' चूनरी लै गोरस में सानी जू—परमा १५६ ।
ख पहिरे चीर सुभि सुरंग सारी 'चुहचुह' चूनरी बहुरंगनी—सा १९८ ।
ग सुभि-सुभि चूनरि बहुरंग—सा २८१ ।
घ नीलांबर पीतांबर ओढ़े हो आए, अति '[illegible]' नयो—सा २५०८ ।
७० क 'पँचरँग' सारी बहुत बिराजे—सा ९९१ ।
ख कंठ माल पीरी उपरैना कनी रुमाल 'पँचरँग'—चतु १ ८ ।
ग अति सुरंग 'पँचरँग' कनी पहिरे श्री राधा प्यारी—गोवि ११५ ।
७१ क आजु बनी 'नवरंग' पियारी—सा २६४५ ।

से रंग बनाये जाने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[७२]।

६ धातु एवं खनिज पदार्थ—

धातुओं में सर्वाधिक उल्लिखित है 'कंचन' जिसके लिए 'कनक', 'सोना', 'हाटक', 'हेम' आदि शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने किया है[७३]। शुद्ध कंचन को 'बारह बानी' कहते हैं और मिलावटवाले को 'खोटा'। इन दोनों का प्रयोग सूरदास की गोपियों ने अपने और ऊधव के लिए किया है[७४]। 'सुहागा' डालकर सोना पिघलाये जाने की बात भी अष्टछाप-काव्य में कही गयी है। परमानंददास की मानिनी राधा को मनाती हुई दूती कहती है कि 'सुहागा' डालकर तो 'जड़ कंचन' भी पिघला लिया जाता है, पर तू कैसी है कि इतनी खुशामद पर भी द्रवित नहीं होती है[७५]। 'पारे' की सहायता से 'रासायनिक' द्वारा सोना बनाये जाने का उल्लेख सूरदास

ख गोपिनि नाम धरयौ 'नवरंगी'—सा १६७५।
७२.क सोभे लाल अबीर अरगजा, तैसी 'अरुन कसूरि' चटकारी—सा २८७१।
ख 'टसू कुसुम निचोइ कै—सा २८७४।
ग. एक 'पलास कुसुम रँग बरसत—गोवि ११२।
घ यह कलंक तुमहीं कौं लाग्यौ जैसे रंग मजीठी—सा १४६२।
७३ क 'कंचन कोट कँगूरन की छबि मानहु बैठ मैन—सा २५५५।
ख रतन जटित 'कंचन' को पलना झुलवत हैं ब्रजधाम—चतु ११।
ग रांचौ नहीं कनक मुक्ता नग लेहौ कछु मो लाग—चतु १६।
घ अनगढ़ सोना होमना (गढि) स्याए चतुर सुनार—सा १०-४।
ङ मान सींग मढ़ा अरु कठुला पीठ पत्र समुदाई—परमा २५४।
च सघन तारक 'हाटक' रत्न-खचित—कुम्भन १६।
छ. मणि चरन मनु हेम वसुधा रचि आसन कीन—सा १-२१८।
ज. हँसुली 'हेम' हमेल अरु दुलरी बनमाला उर पहरैया—परमा २ १।
७४ मधु आदु ऊधो अब ही पहिचाने हौ।
× × ×
सूरदास प्रभु हम हैं खोटी तुम तौ बारहबान हौ—सा ४५२।
७५. बिछुरे होय तो फिर मिलें रूठो लेहि मनाय।
मिल्यो रहे अरु ना मिले तासों कहा बसाय।
'डारत सुहागो तार के जड़ कंचन पिघलाय'।
महा सुहागिनि राधिका क्यों न कृष्ण रिझाय—परमा हस्त प्रति १५२।

ने किया है[७६]। आँच में तपाकर सोने को पिघलाने की बात भी उनके भ्रमर-गोपी-संवाद में कही गयी है[७७]। 'कंचन' के आभूषण तो बनते ही हैं, सूरदास जी ने नंद और वसुदेव जी द्वारा दान में दी गयी गायों के सींग भी 'सोने' से 'मढ़े' जाने का उल्लेख किया है[७८]।

सोने के अतिरिक्त प्रमुख धातुओं में 'चाँदी' या 'रजत' और 'ताँबे' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। 'चाँदी' या 'रूपे' से दाम या 'सिक्का' बनाने[७९] एवं 'मरुवा-मयारि' तथा दान में दी जानेवाली गायों की पीठ, मढ़ी जाने की बात सूरदास ने लिखा है[८०]। ऐसी गायों के खुर 'ताँबे' से मढ़ा जाना कहा गया है[८१]।

अन्य धातुओं में अष्टछापी-कवियों ने 'काँच', 'पारा', 'लोहा' आदि का उल्लेख किया है।

७६ प्रेम हाग्व ले रमाइनी पारहिं आग दई।
अब मन लाग्यो दृष्टि तब बौरयो सीसी फूटि गई—सा १२६६।
७७ क 'आँच लगे ज्यानो सोनों सौं यों तनु धातु हई'—सा १४ ४।
ख 'तीनों' धातु गलाय की 'परिया' को कहत हैं लनिका।
७८ क गुर ताँबे रूपे पीठि, सोन सींग मढ़ी।
ते दीन्हीं द्विजन अनेक हरषि असीस पढ़ी—सा १ २४।
ख धेनु ज सैकरुप राम्री लाई न गनाइ कै।
ताँबे रूप सोन मनि राम्री पै बनाइ कै—सा १ ६२।
७९ माग्न रूपा दाम—परमा १४।
८० क रनि रजत मरुव मयारि—सा २८१।
ख गुर ताँबे रूपो पोठि माने सींग मढ़ी।
ते दीन्हीं द्विजन अनेक हरषि असीस पढ़ी—सा १ २४।
ग. धेनु ज सैकरुप रा नी लाई न गनाइ कै।
ताँबे रूपे सोन मनि राखी पै बनाइ कै—सा १ ६२।
८१ गुर ताँबे रूपे पीठि, सोन सींग मढ़ी—सा १०-२४।
८२.क सूरदास कंचन अरु काँचहिं एकहि धगा पिरोयौ—सा १ ४१।
ख कंचन-मनि तजि काँच हि सैंतत गर मैं पाऊँ—सा १ १६६।
ग. 'पारहि' आगि दई—सा १२६६।
घ इन लोहा पूजा म त्यजन—सा १ १२।

खनिज पदार्थों में इंद्रनील या नीलम, पन्ना, पिरोजा, प्रवाल या विद्रुम, वज्र या हीरा, मरकत, माणिक्य, मुक्ता लाल[८३] आदि रत्नों के साथ साथ अबीर, गेरू और फटिक या स्फटिक का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है [८४]।

७ वाहन—

जल, थल और आकाश, तीनों स्थानों में विचरण की कामना मनुष्य में आदि काल से रही है जिसके लिए विविध वाहनों का निर्माण वह करता आया है। अष्टछापी कवियों ने भी तीनों स्थानों के वाहनों की चर्चा की है। थल के वाहनों में प्रमुख है 'रथ' जिसके लिए 'स्यंदन' [८५] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। आर्थिक स्थिति के

८३ क 'इंद्रनील मनि तैं तन सुन्दर—सा १ २१६।
ख मोतिनि झालरि सुलभ राजत बिच 'नीलम' बहु भावनो—सा २८१२।
ग. 'पन्ना' पिरोजा लागे बिच बिच—सा ४१८६।
घ हीरा पिरोजा' पाँति मुक्ता और अति आरम्भ—परमा ७८९।
ङ रतन जटित के खंभ दोऊ लगे 'प्रवालहिं' लाल—परमा ७६२।
च विद्रुम खंभ जटित नग पद्मुली—गोवि २ ६।
छ. वज्र की लौ लागी सुठि सोभाकारि—सा ३८४१।
ज. 'हीरा' हाटक हार अमोलक रानी जू पहिराए—परमा १६१।
झ. श्यामगात 'हीरा' ज्यों चिबुक छबि निरखत रति लाजै—कुम्भन १।
ञ. डाँडी लची पचि पचि मरकत' मय सुपाँति सुढार—सा २८४१।
ट मरबे सों मानिक' चुनी लागी बीच हरि तरंग—सा २८११।
ठ 'मुक्ताहार' कंठ उर पर सघि पंगति बक गन की—कुम्भन १४६।
ड रेसम बनाइ नवरतन पालनो लटकन बहुत पिरोजा 'लाल'—सा १०८४।
८४ क उड़त गुलाल 'अबीर' जोति रबि दिसि उँजियारी—सा २८५४।
ख जैसे कंचन काँच बराबरि गेरू' काम सिंदूर—सा ३१५२।
ग. लाल डाँडी 'फटिक' पद्मुली मनिनि मरुवा चौर—सा २८१५।
घ 'स्फटिक' सिंहासन मध्य बिराजत—सा २८१२।
ङ कंचन थार भर स्फटिक' कटोरा पृथक पृथक करि राखे—कुम्भन १।
८५.क यदि कहि चले आप हरि रथ चढ़ि सीमा कही न जाय—सारा ६२७।
ख 'रथ' आरूढ़ भये जल-थली वे देखो विमल पुण्य फहरात—परमा ४६।
ग चढ़ि आयो अक्रूर आजि पर 'स्यंदन' अब मन आवति री—सा ३७५८।
घ चतुर तुरँग भँवर स्यंदन' पर—सा ४१६२।

अनुसार 'कंचन रथ' होने की बात सूरदास ने लिखी है[८६] तो परमानन्ददास ने अपने आराध्य को हीरे-मोती जड़े 'रथ' में बैठाया है[८७]। 'सारावली' में घोड़े जुते 'रथ' के साथ साथ 'गज-रथ' का भी उल्लेख मिलता है[८८]। स्थल मार्ग से सामान लाद कर ले जानेवाली गाड़ी को 'शकट' कहा गया है जिस पर ब्रजवासी गोवर्द्धन-पूजा की सामग्री लादकर ले जाते हैं[८९]।

जल के वाहनों में नाव या नौका और 'जहाज' या 'पोत' अथवा 'बोहित' के साथ-साथ 'बेड़े' का भी उल्लेख हुआ है[९०]। आकाश-मार्ग का प्रमुख वाहन 'विमान' कहा गया है। देवगण विमानों पर बैठकर ही आकाश से फूल बरसाते हैं और राम की लंका से अयोध्या-यात्रा भी विमान पर ही होती है[९१]। मानवों की 'विमान यात्रा' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है क्योंकि पाश्चात्य आविष्कारकों को वायुयान के निर्माण में अष्टछाप-काल तक सफलता नहीं मिली थी।

८६ मदन गोपाल बैठि 'कंचन रथ'—सा ११६१।

८७ तुम देखौ माई रथ बैठे गोपाल।
हीरा मोती पाँत' बनी है बिच बिच लाल लाल—परमा ७४१।

८८, कहुँ गजरथ कहुँ बाजिरथनि' सजि डोलत हैं गृह-द्वार—सारा १७४।

८९ सब सामग्री सकट' भरि लै सबहिनि जु धराई।
अपने सकट' जुराय चली रोहिनी जसोमति माई—परमा १७२।

९० क जमुना जल खेवत हैं हरि 'नाव'—परमा ७७५।
ख नाहिं चितवन देत सुत तिय नाम नौका ओर—सा १-९९।
ग. बुधि-बल-बचन 'जहाज' चढ़ि गहि—सा १ ११७।
घ जदपि पथिक मनु काग 'पोत' को कूल न कबहूँ पायौ री—सा १०-११७।
ङ बारिधि लाग अपार अगम को निगम न थाह लहो।
बुधि बिबेक 'बोहित' चढ़ि सम करि तौ तिय पथ परी—सा ९९१।
च समर-सागरहिं पाटि कै बाँधौ तुम बेरौ—सा ९ ४२।

९१ क अंबर 'बिमाननि सुमन बरषहिं, हरषि सुर सँग नारि—सा ९८१।
ख सुर सुमननि बरषावत गावत व्योम बिमाननि ठाढ़—सारा १६४।
ग व्योम बिमान महाछबि छाजत—सा ९११७।

४ पारिवारिक जीवन चित्रण

ख. *दादा-दादी*—दादा के रूप में अष्टछाप-काव्य में कौरव-पांडवों के केवल भीष्म पितामह की चर्चा हुई है जिनके पद और जिनकी आयु का सम्मान उनके संबंधी ही नहीं, उनके संपर्क में आनेवाले सभी व्यक्ति करते हैं। अपने अंतिम समय में भीष्म पितामह युधिष्ठिर की विनम्रता देख कर सुखी होते हैं और बहुमूल्य उपदेश देते हैं[२क]। परमानंददास ने भी एक पद में 'पितामह' द्वारा 'मन्मथराज' का तिलक किया जाना लिखा है[३]। किसी दादी का चित्रण अष्टछाप-काव्य में नहीं है।

ग *नाना-नानी*—मातृ पक्ष में नाना-नानी का पद दादा-दादी के समकक्ष होता है। अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण के नाना उग्रसेन की चर्चा की गयी है, परंतु उनकी पत्नी का उल्लेख नहीं है। श्रीकृष्ण के प्रति नाना-नानी के सहज वात्सल्य-पूर्ण व्यवहार के दर्शन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं होते। 'नानी-नानन' (नाना) का प्रयोग अवश्य गोपियों ने एक पद में सामान्य अर्थ में किया है और कृष्णदास भी एक स्थल पर उन्हें स्मरण करते हैं[४]।

घ *माता-पिता*—माता जन्मदात्री होती है, अतः उसे 'जननी' या 'जननि'[५] कहा जाता है। इसके अतिरिक्त माता के लिए सात-आठ अन्य शब्द अष्टछाप

२.क. राजधर्म तब भीषम गायो। दानापद पुनि मोच्छ सुनायो।
पै नृप को संदेह न गयो। तब भीषम नृप सौं यौं कह्यो।
धर्मपुत्र तू देखि विचार। कारन करनहार करतार।
नर के किये कछू नाहिं होइ। करता हरता आपुहिं सोइ—सा १ २११।
ख. जे पद-कमल 'पितामह भीषम' भारत में देखन पाए—परमा १।
३. मन्मथराज सिंघासन बैठे तिलक 'पितामह' दीनों—परमा १११।
४.क. कहा कहत मौसी के आगै जानत 'नानी नानन'—सा १०.४६।
ख. 'नाना' मामा 'नानी' मामी मौसी।
—कृष्णदास 'कीर्तन संग्रह' भाग १ (जन्माष्टमी के पद) पृ. ११९।
५.क. 'जननी' माता पाय चले जन पंच बरस सुकुमार—सारा २१।
ख. ता दर पूत सुंदर सौं पायौ 'जननी' जठर बीच तब पायौ—नंद, दशम, पृ. २११।
ग. जननी मुदित मन चितै चितै सिसु तन कंठ लाइ सुंदर स्याम सुभग।
—चतु. १४६।
घ. अपनी 'जननी' के अनु लागि पय पीवत नवल धसाके—छीत ९।
ङ. 'जननि' जसोदा करति आरती मोतिनि भरि-भरि थाल—गोविं ८२।

काव्य में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे महतारी,[६] मा,[७] माइ,[८] मात,[९] माता,[१०] मातु,[११] माय[१२] और मैया[१३]। 'माता' की तुलना में 'पिता' का प्रयोग कम पाया जाता है; अत: इसके लिए चार-पाँच शब्द ही अष्टछाप काव्य में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे पिता,[१४] पितु,[१५]

६ कहि अबकी ऐसो सुत बिछुरे, सो कैसे जीवै 'महतारी'—सा १ ११
७ क सूर स्याम पय पकरत जननि सा रहि री 'मा' धीरज उर धारे—सा ५६५।
ख 'मा' कहे मरौ, पितु कहे मरौ मोल लयौ सु कहे मो परा।
—नंद, दशम पृ २४, पं १०।
८ कबहुँक लछिमन पास सुमित्रा 'माइ माइ' कहि मोहि सुनैहै—सा ९-८१।
९ क. तब लघु 'मात' कह्यौ तब बैठो जब मरे भरतार—सारा ७२।
ख मात' सात पतिव्रतन भुवन मं सबहिनि की कहिबो सिर धारयो—परमा ४५८।
ग. घर में 'मात पिता मोहि त्रासत तैं कुल-लाज गँवाई—कुमन २१७।
घ 'मात पिता मैया सुनैं साँझ परत बन माँहि—चतु ६।
ङ 'मात जसोदा रानी बाँचति बन कैं ब्रज श्रीगोपाल कैं—छीत ६७।
च आवो हो तात रिसात मात अब कहा चित में ठानी—गोवि २१२।
१ क राम गु कहाँ गए री माता'—सा ९-४६।
ख सुखी माता क गाद बैठिकैं मुनि मदन मन करत—परमा ५१।
ग. नंद पिता रमुमति है माता—नं रूप पृ २१।
११.क. बिनु रघुनाथ और नहिं काऊ मातु पिता न सहली—सा ९-६४।
ख बाल रूप जब करन लग्यो रोहिनी मातु लै भागी—परमा ५३।
१२ धनमाखन [illegible] न नंदलाल पै करत जसोदा माय—परमा ५।
१३ क पाछैं चितै परस्पर 'मैया मया बोले—सा १०-११।
ख 'नाग उनी ' मैया सुनत गिरी परनि मुरझाइ—नंद स्याम पं ६०।
ग. मैया' मोहि माखन मिश्री भावै—चतु १६२।
घ प्रातकाल उठि जसोदा मैया बीनों द तब माऊ—गोवि ८१।
१४ क बिनु रघुनाथ और नहिं काऊ मातु पिता न सहली—सा ९-६४।
ख घरी मैं लाख बद की मारग छाड़यो मात पिता की लाज री—परमा ८१५।
ग घर मे मात पिता मोहि त्रासत तैं कुल-लाज गँवाई—कुमन १७।
घ नंद पिता' रमुमति है माता—नंद रूप पृ २१।
ङ मात पिता' मैया सुन साँझ परत बन माँहि—चतु ६।
च बैठ बाइ पिता' की गोद देखत श्री मुख भरी मनोरथ—गोवि ७।
१५.क कहौ पितु मौसौं मोर मनिभार—सा १ ५३५।
ख मा कहे मरौ, पितु कहे मरौ, मोल लयौ सु कहे मो परा।
—नंद दशम पृ २४ पं १०।

बाप,[१६] तात,[१७] गुसाई[१८]। 'पिता' के लिए 'गुसाई' शब्द अत्यंत आदरसूचक होने पर भी प्रायः अप्रचलित ही है।

क *माता-पिता के समधर्मी*—इस वर्ग में सास-ससुर, विमाता, चाचा-चाची या काका-काकी, ताऊ-ताई, बुआ (फूफी) फूफा, मामा-मामी, मौसा-मौसी आदि आते हैं। इनमें से अष्टछाप-काव्य में 'सास-ससुर', 'काकी', 'फूफी', 'मामा' और 'मौसी' का ही उल्लेख हुआ है। 'सास-ससुर' के लिए अष्टछाप-काव्य में मुख्य रूप से तीन शब्द आये हैं—सास[१९], सासु,[२०] ससुर[२१]। 'फूफी' शब्द का प्रयोग कम हुआ है, राधा के विवाह के अवसर पर उसकी 'फूफी' और 'काकी' बड़ी ममता से उसे गले लगाती हैं[२२]। मथुरा का राजा कंस श्रीकृष्ण का 'मामा' था परंतु उसके लिए 'मातुल'[२३] शब्द का प्रयोग अधिक किया गया है। किसी 'मामी' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'मौसी'[२४] शब्द अवश्य दो-एक पदों में प्रयुक्त हुआ है।

१६ क सूर परेखो काको कीजै 'बाप' किसी बिन बूझौ—सा १६५।
ख है 'बाप' सबै कोउ जानै आदि वेद-पुरान बखानै—परमा ६२६।
ग 'बाप' बेद कर कंस रजा को पूत सँगाती ढोलत मेरे—कुंभन १९।
१७ क मात 'तात' पतिव्रत सुतन में सबहिनि को कहिबो सिर धारयौ—परमा
ख मात 'तात' अरु भ्रात बंधुजन सबै परी भठ—नंद रुक्मिनी पृ १४६।
ग आयो हो 'तात' रिसात मात अब कहा चित में ठानी—गोविं २६२।
१८. होहु बिदा घर जाहु 'गुसाई' मानै रहियो नात—सा ३१२४।
१९.क नाहीं डर-चास 'सास' ऐसी बिधि मरौ—सा १-२७६।
ख अनै 'सास' ननद बैरिनि सब मन में आजु न भटको—परमा १७४।
ग. 'सास' रिसाउ, मात यह आसो हौं पति सों मानहुँ भट फोरयौ—कुंभन २४२।
२ क. 'सासु' नैनंदि घर-घर लिए डोलति याको रोग बिचारो री—सा १०-११५।
ख 'सासु' ननद अरु पास-परोसिनि हँसि बहु बार कह्यौ—चतु १५७।
२१ क तजी सील सब सास 'ससुर' की लाज कनेऊ बारे—सा १५६६।
ख मागध जरासंध बल-बंध तासों आहि 'ससुर' संबंध—नंद, दशम पृ २०५,पं ५।
२२.क तरी 'फूफी' पंच मरतारी ता तो अर्जुन की महतारी—परमा ६२६।
ख 'काकी' माभी बहिनि पुनि 'फूफी' तिन लीनी उर धार।
—कृष्ण कीर्तन भाग १, पृ १०५।
२३.क. 'मातुल' मारि बहुत अघ कीन्हें कहैं लौ करौं बढ़ाई—सारा ७४।
ग किधि 'मातुल' हति किसी आतङ्क कौन मधुपुरी छाए—सा ३११७।
२४ कहा कमन 'मौसी' क आगें आनत नानी-नानन—सा ११४६।

शब्दों को अष्टछाप के कवियों ने प्रयुक्त किया है जिनमें ये प्रमुख हैं—बहिन,[३६] भगिनि या भगिनी[३७] भैनी[३८] सखि,[३९] स्वसा या सुसा[४०] । 'छोटी बहन' के लिए 'अनुजा'[४१] शब्द का प्रयोग हुआ है। बहन के पति अर्थात् बहनोई को 'भगिनी भर्ता'[४२] कहा गया है। बहन की बेटी के लिए नंददास ने 'भनेजी' शब्द का प्रयोग किया है[४३] ।

छ पति-पत्नी—परिवार में पति पत्नी का स्थान कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण होता है और संभवतः इसी कारण साहित्य में उनके लिए प्रयुक्त शब्दों की संख्या भी सबसे अधिक होती है । 'पति' के लिए अष्टछाप काव्य में जिन सारगर्भित शब्दों का प्रयोग हुआ है उनमें कंत[४४] पति[४५]

३६.क बहिन' देवकी बसुदेव सुअन उनकी दीनों त्रास—परमा ४८१ ।
ख बहिन' सुभद्रा अरु बल महया और सखा सब लीन्हें साथ—कुंभन ६ ।
ग. भाई सूत्र जानि कै अनुमति बहिन' सुभद्रा न्यौति बुलावति—गोविं ८ ।
३७ क रिपि-तनया कह्यो मोहिं बिवाहि रूप कह्यो तू गुरु भगिनी याहि—सा ६ १०१।
ख भगिनी रथ को सारथि भयौ प्रीति बिवस सु दूरि लौं गयौ ।
—नंद दशम , पृ २ २।
३८. सुनहु सूर नाते की भैनी कहति बात हरुआत—सा ११६ ।
३९.क सखि ! कहा कहौं तुव रूप की निकाई—कुंभन १६ ।
ख सखि' कहै वारि फेरि हौं डारी—नंद रूप पृ ११।
ग. कहा री सखी तोहि लागी ठौरी !—चतु २८२ ।
घ 'सखी नंदनंदन आजु अति बिराजैं—गोविं ४१६ ।
४० जिहिं बिस्वास 'सुसा' के तात सौनक बनी में कीनी घात—नंद दशम पृ २१५।
४१ याहि न मारि देखि बिसि मेरी हौं 'अनुजा' अनुजाधिप तेरी ।
—नंद , दशम पृ ११४।
४२. अहो भगिनि ! अहो भगिनीभर्ता' ! मो सम नहिन पाप को कर्ता ।
—नंद दशम पृ २१५।
४३ भैया न करि भनेजी मह—नंद दशम पृ २१४।
४४ क फाग मनावहु संग कंत । हा हा कर तुन गहत कंत—सा २८५१ ।
ख कमला कंत दियो ठैकारो जमुना पार भयो—परमा १४।
ग मन विहाय पर-दीप मनें भरि भौंकरि किधौं ताहि को कंत'—चतु ७१ ।
४५.क मातु पिता-'पति बंधु सजन जन सखि आँगन सब भवन भरयौरी—सा १८७२।
ख लाज दिखाऊ, मातु पद आसौ हौ पति' लौ मानहुँ पर फोरयौ—कुंभन २४१।

पिय,[४६] प्रानपति,[४७] प्रीतम[४८] आदि प्रमुख हैं। पति, सर्वत्र गृह का स्वामी होता है; इसलिए उसे 'गृहपति'[४९] भी कहा जाता है। 'पति' के लिए 'खसम' शब्द का भी प्रयोग सूरदास और परमानन्ददास ने किया है[५०]। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों की संख्या 'पति' के लिए प्रयुक्त शब्दों से लगभग दुगुनी है। 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त प्रमुख शब्द ये हैं—अर्धंगी,[५१] घरनी,[५२] तिया,[५३] तिरिया,[५४] दारा[५५] पत्नी,[५६] बनिता,[५७] बाम,[५८] भामिनी,[५९]

ग. तात, पिता, पति बंधु रह सुकि, नहिन रही कछि—नंद, रास, पं १३६।
घ. काके तात-मात अरु भ्राता को 'पति' मह नवेली—चतु २४५।
४६ क. गोर बरन मेरे देवर सखि 'पिय' मम स्याम सरीर—सा ६.८४।
ख. तुम 'पिय'! मेरे सकल दुख हरहु—कुंभन २६।
ग. जौ न मनोरथ-रथ तहँ होइ क्यौं पहुँचै 'पिय' पै तिय सोई।
—नंद, रस, पृ ५५ पं ९८१।
घ. 'पिय'-सनमुख गवनति गजगामिनि—चतु ३२।
४७. तबहिं तें मोहिं कछु न सुहाइ 'प्रान पति' गोय परे कल ना—कुंभन २२५।
४८.क. जा को 'प्रीतम' गमन्यौ चाह भीत भई कछु नहिं कह—नंद रस पृ ५६।
ख. 'प्रीतम' प्रीति तें बस कीनों—छीत ११२।
ग. 'प्रीतम' प्रीत ही तें पैये—गोविं १४१।
४९. अब तो लाज सकल बिसराए 'गृहपति' तें नाहिन सकुचानि—कुंभन १६४।
५० क. सूरदास प्रभु हमारी सीकरी क्यौं पर 'खसम' गुनैगी—सा ७१४।
ख. परमानन्द हौं हरि मैं बांधी क्यों पर 'खसम' गुनैगी—परमा ७१।
५१ 'अर्धंगी' पूछन मोहन सौं कैसे हितू तुम्हारे—सा ८२१।
५२. तस्वर मूल अकेली ठाढ़ी दुखित राम की 'घरनी'—सा ९-७३।
५३ क. परसत तन गोतम 'तिया' को ताप नसावे—सा १४।
ख. इहि बिधि ब्रज 'तिय' मुख किमरे—नंद दसम पृ २४१।
५४ 'तिरिया' रैनि पर मधु पारै—सा ३३७३।
५५. पर 'दारा' कैं आर आपु कत लगा हारे—सा १६१८।
५६ मनु रघुपति भयभीत सिंधु 'पत्नी' न्यौछार पठाई—सा ९.१२८।
५७ क. सुत-संतान-स्वजन 'बनिता'-रति धन समान उनई—सा १-५।
ख. देखि-देखि ब्रज 'बनिता' सब मिलि मोतिनि चौक पुराइ—कुंभन ६।
ग. अद्भुत 'बनिता'-बर बनाइ अँग अँग रूप अनूप सुभाइ—नंद दसम पृ २२१।
घ. ब्रज 'बनिता' मन-रंजन कारन राम बिलास नमो नमो—गोविं १।
५८. सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए पंथ चलत नर 'बाम'—सा ६.४४।
५९ गहि पग सूरदास कहे 'भामिनि' राज बिभीसन पायो—सा ६.११६।

सजनी,[९] स्वामिनी,[१०] प्रिय[११] आदि। पति-पत्नी के लिए प्रयुक्त होनेवाले उक्त शब्द गृहस्थी में उनकी स्थिति और अधिकार के भी द्योतक हैं। घर के आंतरिक क्षेत्र में पत्नी का ही पूर्ण अधिकार होता है; अतः उसे 'स्वामिनी', 'घरनी' आदि की संज्ञा प्रदान की गयी है। पत्नी को पति की 'अर्धंगी' या 'अर्धांगिनी' भी कहा गया है।

४. देवर-देवरानी—पति का छोटा भाई 'देवर' कहलाता है और उसकी पत्नी देवरानी। 'देवर' की चर्चा[१३] अष्टछाप-काव्य में है, 'देवरानी' की नहीं।

५. ननद-ननदोई—पति की बहन को 'ननद' या 'ननदी'[१४] कहते हैं। पति की बहन का पति 'ननदोई' कहलाता है, परंतु अष्टछाप के कवियों ने इस शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

६. पुत्र-पुत्रवधू—पुत्र के लिए कुँवर[१५] छौरा[१६] छोहरा,[१७] ढिंग[१८] ढोटा,[१९]

९ क. उनके बचन सत्य करि सजनी बहुरि मिलैंगे आई—सा ६ ४४।
 ख. कुसुम सौरभ ब्यार ढोरै सजनी परमानंद—परमा २४७।
११ कौसिल्या सों कहति सुमित्रा जनि 'स्वामिनि' दुख पावै—सा ६ १५२।
१२. ऐसी कृपा करी नहिं, अब पिय नगन समय पति राखी—सा ५६६।
१३ गोर बरन मेरे देवर सखि पिय मम स्याम सरीर—सा ९ ४४।
१४ क. सासु 'ननद' घर त्रास दिखावैं—सा १६२१।
 ख. ननदी तो न दिन बिनु गारी रहति—सा १९१६।
 ग. जन सास 'ननद' बैरिनि सब मन में आजु न भटको—परमा १७४।
 घ. सासु ननद घर पास-परोसिनि हँसि बहु बार कह्यौ—चतु १५७।
१५. नंदराइ को 'कुँवर' लाड़िलो सुरपति गर्वप्रहारी—गोविं १९२।
१६ बाप की तू मानै नाहीं कौन को है छौरा—चतु ७५।
१७ क. मो आगे को छोहरा भीख्यो चाहे मोहिं—सा १११८।
 ख. भरी बड़ नन्द महर को 'छौरा' बरजौ नहिं मानै—गोविं १११।
१८. गहि मनि खंभ डिंभ डग डोलै कल-बल बचन तोतरे बोल—सा १ ११०।
१९ क. जसुमति 'ढोटा' ब्रज की सोभा देखि सखी कछु औरै सोभा—सा १ १२।
 ख. 'ढोटा' भयो नन्द बाबा कै गुननिधि स्याम सरीर—परमा ४।
 ग. हनि 'ढोटा' की करनी री मेरी माई—कुंभन २२०।
 घ. तो सी 'ढोटा' नंद कौ, पाइन परि परि देहि—नंद स्याम ? ११०।
 ङ. नंदराइ घर 'ढोटा' जायो सखि लै दिखराउ करन बधाई—गोविं ११।

ग *प्रभु अथवा स्वामी के लिए*—पतित भक्त अपने 'प्रभु' से कहता है—

आनिहौं अब नान की आस।

मोसौं पतित उधारो प्रभु जौ तौ मनिहौं निज दास [७]।

घ *संबंध-स्थान सूचक शब्द*—प्रमुख संबंधों के आधार पर संबंधियों के घर का भी नामकरण कर लिया जाता है। इसीसे नानी के घर को 'ननिहाल' या 'ननसार', [८] लड़की के ससुर के घर को 'पतिगृह', [११] और माता के घर को 'मायका' या 'प्यौसार' [१] कहा गया है।

ङ *परिवार के दास-दासी*—अत्यधिक संपर्क में रहने के कारण दासी, दास, सेवक आदि भी परिवार के ही अंग हो जाते हैं। इनके लिए अष्टछाप-काव्य में दास,[१] दासी [२] भृत्य,[३] लौंडी,[४] सेवक [५] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

च *परिवार के अतिथि*—भारतीय परिवार में अतिथि का सत्कार विशेष आदर और श्रद्धा से किया जाता रहा है। अष्टछाप के कवियों ने भी 'अतिथि' के लिए पाहुनो [६] और उसके स्त्रीलिंग-रूप 'पाहुनी' [७] का प्रयोग किया है।

२ *पारिवारिक जीवन-चर्या*—

अष्टछाप काव्य में ब्रजवासियों का ही अधिक वर्णन मिलता है। ब्रज के अधिकतर निवासी जाति के अहीर थे। उनका मुख्य व्यवसाय गोपालन, दूध-दही बेचना आदि था। स्त्री-पुरुष दोनों को ही दिन भर कार्य करना पड़ता था। छोटे बालक भी गृह-कार्यों में सहायता करते थे।

क. *पुरुषों के कार्य*—पुरुष प्रातःकाल उठकर गायों की सानी-पानी करके, खरिक में से जाकर उन्हें दुहते हैं। सभी ग्वाले इस कार्य को बड़ी तत्परता से करते हैं। गोपों के प्रधान नंद जी भी अपनी गायों को स्वयं ही दुहते हैं और कृष्ण को भी वैसा करना सिखाते हैं[८]। अन्य ग्वाल-बाल भी बालक कृष्ण को प्रात होते ही गाय दुहने आने को उत्साहित करते हैं[९]। गायें दुहने का कार्य प्रात और सायं,[१०] दोनों ही समय होता है। उसके बाद ग्वाल-बाल गायों को चराने[११] ले जाते हैं। यह कार्य सभी ग्वालों के बालक करते हैं। नंदनंदन कृष्ण, भाई बलराम के साथ समस्त ग्वाल-बालों को लेकर गाय चराने जाया करते हैं।

ख *स्त्रियों के कार्य*—स्त्रियों का कार्य प्रातःकाल दही से माखन निकालना

८. बाबा मोकौं दुहन सिखायौ—सा १२८५।
९ क. सूर स्याम सों कहत ग्वाल सब धेनु दुहन' प्रातहि उठि आवहु—सा ४ १।
ख तनक कनक की दोहिनी दै री मैया।
तात मोहि सिखवन कह्यौ 'दुहन' धौरी गैया—परमा ११८।
ग. छबीलो लाल दुहत' है धेनु धौरी—कुंभन २०८।
घ देहु री माई! खरिक जान गौ दोहन' की टरति बार—चतु २७५।
ङ गाइ 'दुहावन' क मिसि आवत—परमा ८६८।
१० क गाइ दुहन' समयौ भयौ रही रैन अब थोर—नंद परि पृ ४४१।
ख क्या री सखी! तोहिं लागी गैरी!
'संध्या' समै खरिक बीथिनि में इत उत भाँकति डोलति दौरी—चतु २८२।
ग. सन्ध्या समै खरिक में ठाढ़ो सखी! करत 'गोदोहन'—परमा ७ ।
११.क. मैं अपनी सब 'गाइ चरैहौं'।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौं तेरे कहैं न रैहौं—सा ४१ ।
ख प्रथम गोचारन' चले कन्हाइ—परमा १२ ।
ग. अब तैं री! 'गाइ चरावन' जात—चतु २२६।

पुत्र-वधू को बहुरिया [८०] बधु या बधू [८१] कहा गया है।

ट पुत्री-जामाता—अष्टछाप के कवियों ने पुत्री को कुँवरि,[८२] तनया [८३] नंदिनी,[८४] बिटिया [८५] बेटी,[८६] लली [८७] सुता [८८] आदि शब्दों से संबोधित किया है। पुत्री का पति 'जामाता' [८९] कहा गया है। परिवार में 'जामाता' का पर्याप्त आदर किया जाता है वह मान्य [९०] होता है। वसुदेव-देवकी के विवाह के अवसर पर जब कंस बहन-बहनोई का अपमान करने को आगे बढ़ता है तभी लोग उसको दोनों के मान्य होने की बात समझाते और उनका अपमान करने से रोकते हैं।

ठ अन्य संबंधी—समधी-समधिनि और सौति का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में और हुआ है जो ऊपर के वर्गों में नहीं आ सके हैं। अतएव उनकी चर्चा स्वतंत्र रूप से करना है।

८० मैया मोहिं ऐसी बहुरिया भावै—चतु १४९।
८१ क कबहुँक कृपावंत कौसिल्या बधू बधू' कहि मोहिं बुलावैं—सा ९-८१।
ख जे वे गोप बधू ही ब्रज में तेह अब वेद रिचा भइ येह—छीत १५।
ग. गोप बधू' देखन सब निकसीं किये शृंगार नवीन—गोविं ८१।
८२. प्रगटी कुंवरि श्री राधा प्यारी आनंदनिधि सुखदाई—कुंभन १।
८३ क सुंदरी वृषभानु 'तनया' नैन चपल कुरंग—सा १८३५।
ख सरनि तनया तीर मरकत मनि सु स्याम तमाल—चतु ३३।
ग. सुंदर सुभग तरनि तनया तट भावत है हरि होरी—गोविं १२४।
८४ क दृष्टि परे वृषभान 'नंदनी' अंग्म नयन निरधार न भयो—परमा ७३।
ख नंदनंदन वृषभानु 'नंदिनी' बैठे फूल-मंडली राजैं—छीत ६१।
८५. बड़ी बार की उठी बहू बिटिया' कोउ दे मोरी कोउ दे सयानी—कुंभन १८४।
८६ क तू वृषभान गोप की बेटी मोहन लाल भाग तें भेंटी—परमा ४५५।
ख धनि धनरासि बराइब दूजे बड़ गोप की बेटी—कुंभन ११।
८७ बरसगाँठि वृषभान लली की बहुरि कुंभन सों आई—कुंभन ६।
८८.क द्रुपद 'सुता' दिन हरि सुमिरै नृपति नगन बहु करि न सिथी—परमा ८१।
ख कीरति सुता बदन बिधु देख्यो निरखि निरखि सुख पाई—कुंभन १।
ग सुत अनुमति की हित पौढ़ाइ 'सुता' परी तहँ तें इक पाइ।
—नंद, दशम, पृ २११।
८९ तनया जामातनि की समुझत नैन नीर भरि आए—सा ९ २७।
९० तुम्हारे मान्य' वसुदेव देवकी—सा ६२७।

अ *समधी-समधिनि*—वर और कन्या पक्ष के गुरुजन परस्पर 'समधी'[११] कहलाते हैं। 'समधी' वर्ग की पत्नियाँ 'समधिनि' कही गयी हैं[१२]।

आ *सौति*—यों तो अनेक पौराणिक राजाओं की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है जिनकी कई-कई पत्नियाँ परस्पर 'सौति' थीं, स्वयं श्रीकृष्ण की ही अनेक रानियों का नामोल्लेख अष्टछाप-काव्य में है; परंतु वे परस्पर सौति नहीं कही गयी हैं। इस शब्द का प्रयोग तो दो प्रसंगों में विशेष रूप से हुआ है। पहले प्रसंग में सीता वनवासिनी स्त्रियों से कहती है कि सासु की 'सौति'[१३] ने हमको वन भेजा है। दूसरे प्रसंग में 'सौति' शब्द का प्रयोग गोपियों ने उस कुब्जा के लिए किया है जो श्रीकृष्ण का प्रेम पाकर अपने सौभाग्य पर इठला गयी है और 'श्याम के दाम' चलाने जैसा अन्याय का कार्य कर रही है[१४]। दोनों प्रसंगों से स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'सौति' का प्रयोग ईर्ष्यालु या कलहप्रिय सपत्नियों के अर्थ में करते हैं, सामान्य सपत्नी के अर्थ में नहीं।

इ अनेक संबंध-सूचक *तात शब्द*—अष्टछाप-काव्य में 'तात' शब्द का प्रयोग कई संबंधों के लिए हुआ है, जिनमें तीन मुख्य हैं—पिता, पुत्र और प्रभु।

- क *पिता के लिए*—श्रीराम छोटे भाई भरत को समझाते हुए कहते हैं—
  चौदह बरस तात (पिता) की आज्ञा मोपै मेटि न जाइ[१५]।

- ख *पुत्र के लिए*—नंद की पुत्र श्रीकृष्ण के संबंध में यशोदा से कहते हैं—
  कहत नन्द जसुमति सुनि बात।
  यह अपने जिय सोच करति कत जाके त्रिभुवन पति से तात[१६]।

---

११ ताल पखावज बाजे बाजत समधी सोभा पाई—सा ९ १५२१।

१२ ईहि भाँति चतुर सुजान 'समधिनि' सकल रति सब सौं करे।
 × × × ×
 ईहि भाँति समधिनि संग निसि दिन फिरति भ्रम भूल गए—सा ४१८०।

१३ सासु की सौति सुहागिनि सो सखि अतिहीं पिय की प्यारी।
 अपने सुत कौं राज दिवायौ हमकौं देस निकारी—सा ९ ४४।

१४ सिर पर सौति हमारे कुबिजा चाम के दाम चलावै—सा ३९३९।

१५ सूरसागर नवम स्कंध पद ५१।

१६ सूरसागर दशम स्कंध पद १८९।

ग प्रभु अथवा स्वामी के लिए—पतित भक्त अपने 'प्रभु' से कहता है—
अनिहौं मन मान की बात।
मोसों पतित उधारी प्रभु ज्यों, तौ मनिहौं निज तात[९७]।

ङ संबंध-स्थान सूचक शब्द—प्रमुख संबंधों के आधार पर संबंधियों के घर का भी नामकरण कर लिया जाता है। इसीसे नानी के घर को 'ननिहाल' या ननसार,[९८] लड़की के ससुर के घर को 'पतिगृह',[९९] और माता के घर को 'मायका' या 'प्यौसार'[१] कहा गया है।

च परिवार के दास-दासी—अत्यधिक संपर्क में रहने के कारण दासी, दास, सेवक आदि भी परिवार के ही अंग हो जाते हैं। इनके लिए अष्टछाप-काव्य में दास,[१] दासी,[२] भृत्य,[३] लौंडी,[४] सेवक[५] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

छ परिवार के अतिथि—भारतीय परिवार में अतिथि का सत्कार विशेष आदर और श्रद्धा से किया जाता रहा है। अष्टछाप के कवियों ने भी 'अतिथि' के लिए 'पाहुनो'[६] और उसके स्त्रीलिंग-रूप 'पाहुनी'[७] का प्रयोग किया है।

९७ 'सूरसागर', प्रथम स्कंध, पद १७६।
९८ हौं 'ननसार' गई ही ज्योंतें बार-बार बूझत ब्रज वासी—परमा ५१६।
९९ 'पतिग्रह' काज सबै कियराज नंदनंदन वृत के छोर—परमा ४१८।
१ क स्यु रघुपति मनभीत सिंधु पत्नी 'प्यौसार' पठाई—सा ९ १२४।
ख बरसानो 'प्यौसार' हमारो अपबस हैं कबहूं न करौं री—परमा ८८४।
१ तृषित हैं सब दरस कारन चतुर चातक 'दास'—सा १०-२१८।
२.क चौदह सहस किसरी जेती सब 'दासी' हैं तेरी—सा ६-७६।
ख भर बरनी तरुनी रँग भीनी 'दासी' बीनि वोइ सत दीनी।
—नंद दशम पृ २ २।
३ प्रेम मत्त फिरत 'भृत्य' गुनत गुन तिहारे—सा १ २०५।
४ 'लौंडी' की डौंडी जग बाजी बढ्यौ स्याम अनुराग—सा ३६५२।
५ इन्द्र समान हैं जाके 'सेवक' नर बपुरे की कहा गनी—सा १ ३६।
६ सब मिलि गईं जसोदा के घर कौन तुम्हारे 'पाहुनो' आयो—परमा ४८२।
७ क. 'पाहुनी' कर दै तनक मह्यौ—सा १ १८२।
ख स्वामिनि एक 'पाहुनी' आई ताकी यह गति कीनी—परमा ४५४।

२ *पारिवारिक जीवन-चर्या*—

अष्टछाप काव्य में व्रजवासियों का ही अधिक वर्णन मिलता है। व्रज के अधिकतर निवासी जाति के अहीर थे। उनका मुख्य व्यवसाय गोपालन, दूध-दही बेचना आदि था। स्त्री-पुरुष दोनों को ही दिन भर कार्य करना पड़ता था। छोटे बालक भी गृह-कार्यों में सहायता करते थे।

क. *पुरुषों के कार्य*—पुरुष प्रातःकाल उठकर गायों की सानी-पानी करके, खरिक में से लाकर उन्हें दुहते हैं। सभी ग्वाले इस कार्य को बड़ी तत्परता से करते हैं। गोपों के प्रधान नंद जी भी अपनी गायों को स्वयं ही दुहते हैं और कृष्ण को भी वैसा करना सिखाते हैं। अन्य ग्वाल-बाल भी बालक कृष्ण को प्रात होते ही गाय दुहने आने को उत्साहित करते हैं। गायें दुहने का कार्य प्रात और सायं, दोनों ही समय होता है। उसके बाद ग्वाल-बाल गायों को चराने ले जाते हैं। यह कार्य सभी ग्वालों के बालक करते हैं। नदनंदन कृष्ण, भाई बलराम के साथ समस्त ग्वाल-बालों को लेकर गाय चराने जाया करते हैं।

ख *स्त्रियों के कार्य*—स्त्रियों का कार्य प्रातःकाल दही से माखन निकालना

८. बाबा मोकों दुहन सिखायो—सा १२८५।

९ क सूर स्याम सों कहत ग्वाल सब, धेनु 'दुहन' प्रातहि उठि आवहु—सा ४ १।

ख दनक कनक की दोहिनी दै री मैया।
तात मोहि सिखवन कह्यो 'दुहन' धौरी गैया—परमा ११८।

ग. छबीलो लाल 'दुहत' है धेनु धौरी—कुंभन २०८।

घ देखु री माई! खरिक मान गो 'दोहन' की टरति बार—चतु २७५।

ङ गाइ 'दुहावन' के मिसि आवत—परमा ८२८।

१ क. गाइ 'दुहन' समयौ भयौ रही रैन अब थोर—नंद परि पृ ४४१।

ख. कहा री सखी! दौहि लागी दौरी!
संध्या' समै खरिक बीथिनि में इत उत भौंकति डोलति दौरी—चतु २८२।

ग. सन्ध्या समै खरिक में ठाढ़ो लखी! करत 'गोदोहन'—परमा ७ ।

११ क. मैं अपनी सब 'गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कैं सँग जैहौं तेरे कहैं न रैहौं—सा ४२ ।

ख प्रथम गोचारन चले कन्हाई—परमा १२ ।

ग. अब तें री! गाइ 'चरावन' आए—चतु २२६।

है। गोप-वधुएँ और बालाएं दही मथने लगती हैं[१२]। घर घर से 'रई' चलने की आवाज आती है[१३]। प्रात ही राधा जब यशोदा के घर जाती है तो वह उससे दधि मथने के लिए कहती हैं[१४]। दधि-मंथन के पश्चात् गोप-बालाएँ गोरस, " दधि या दही,[१५] माखन और घृत के माट[१६] भरकर बेचने के लिए निकटस्थ नगर मथुरा को जाती हैं। गोपियों का यही मुख्य दैनिक कार्य है जिसका वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। कृष्ण की दान-लीला मुख्यत इसी कार्य से संबंधित है। दही बेचने जाती हुई गोपियों को जब कृष्ण दही-माखन खाने के

१२. रवि के उठे कमल परकासे, भ्रमर उड़ चले तमचुर भासे ।
गोप बधू 'दधि मन्थन' लागी हरि जू की लीला रस पागी—परमा १ ।

१३ क. प्रात समय सब नारिन सुनियत, घर-घर बाजत 'रई'—परमा ५११ ।
ख बैसैं धरयौ दधि बिना मथनु किए देहु जसोमति नैंकु अपनी 'रई'—चतु १५९ ।
हमरे अजौं हूँ कि रही उठि अँधियारे हूँ पावत न मथन सौंहि कहौं यौं गई ।

१४ महरि मुदित हँसि यों कह्यो 'मथि' भान दुलारी—सा ७१५ ।

१५ क हों परभात समै उठि आई कमलनयन देखन तुम्हरो मुख ।
गोरस बेचन जात मधुपुरी लाभ होत मारग पाऊँ सुख—परमा ५२८ ।
ख हमरी दान दै मुकरेटी ।
नित तू चोरी बेचति 'गोरस आजु अचानक भेंटी—कुंभन ११ ।
ग तुम चले आजु पौरा अपने मग फिरत रोकत ब्रज जमुन बाट ।
कहत कहा सौं कहौ जु दूरि भए जिन परसौ 'गोरस' के माट—गोविं ११ ।

१६ क सब आवति हैं 'दधि' लीन्हे घर घर तें ब्रज नारी—सा २११२ ।
ख हरि जू को दरसन भयौ सवेरो ।
बहुत लाभ पाऊँगी री माई बहुयो बिकैगो मेरो—परमा ५२९ ।
ग दान ब्रजराज को लाडिलो लेत है ।
धरें सिर माट 'दधि' चली जाही डगर—कुंभन २२ ।
घ कहो किनि कीनौ दान 'दही' कौ—चतु २ ।
ङ होत अबार 'दधि' बेचन कौं मारग मों ठाढ्यौ कन्हारौ—गोविं १२ ।

१७ क कान्ह कहत दधि दान न देहौ ?
लैहौं छीनि दूध-दधि 'माखन' देखत ही तुम रैहौ—सा १५०८ ।
ख ग्वालिनि यह भली नहि करति ।
दूध दधि 'घृत' नितहि बेचति दान देत डरति—सा १५ ४ ।

लिए रोकते हैं तब गोपियाँ इसी कारण खीझती हैं कि उन्हें दही बेचने की देर हो रही है[१८]।

दूध-दही बेचकर घर लौटने के बाद गोपियों को अन्य गृह कार्य भी करने पड़ते हैं। अपने कार्य में बाधा डालनेवाले श्रीकृष्ण से वे कहती हैं कि तुम भले ही खाली हो, हमें तो रात-दिन घर के कार्य करने पड़ते हैं[१९]। बाल-बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त नदी से पानी भरने का काम भी स्त्रियों को ही करना पड़ता है। इसके लिए पास-पड़ोस की सब स्त्रियाँ एकत्र होकर पनघट जाती हैं[२०]। श्रीकृष्ण की पनघट-लीला में भाग लेने का सौभाग्य पनघट पर जानेवाली गोपियों को ही प्राप्त होता है।

३ *पारिवारिक शिष्टाचार—*

सामान्यतया पारिवारिक शिष्टाचार का विशद चित्रण प्रबंध-काव्यों में ही सुचारु रूप से होता है, गीतिकाव्य में कथा-प्रसंगों की न्यूनता के कारण उसके लिए कम अवकाश रहता है। प्राय समस्त अष्टछाप-काव्य मुक्तक गेय रूप में होने के कारण पारिवारिक शिष्टाचार-परिचायक स्थल उसमें बहुत कम हैं। नंददास के जिन दो-एक काव्यों में—यथा भ्रमरगीत, रासपंचाध्यायी आदि—एक ही प्रसंग को अधिक विस्तार दिया गया है, वहाँ भी कथा के सामान्य पारिवारिक या लौकिक पक्ष पर कवि की दृष्टि न रहने के कारण शिष्टाचार के उदाहरण उसमें भी नहीं के बराबर ही हैं। अन्य विषयों की तरह इस विषय के भी सबसे अधिक उदाहरण महाकवि सूरदास के ही काव्य में मिलते हैं।

यों तो पारिवारिक सुख-शांति के लिए सभी को एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार करना वांछनीय होता है, तथापि मर्यादा-निर्वाह की दृष्टि से

१८.क. हमकौं जान देहु दधि बेचन पुनि कोऊ नहिं लैहै।
गोरस लेत प्रातहीं सब कोउ सूर बदयौ पुनि दैहै—सा १५०९।
ख होत अबार 'दधि बेचन' कौं मारग मों ठाढ़ौ झगरौ—गोवि १२।
१९. तुम तौ डोले फिरत हौ जु निसि दिन हम 'घर-काम' करैं—गोवि १७।
२ क तुम कैं ओट रहे हरि आपुन 'जमुना-तट' गई बाम।
कर ढरोरि गागरि 'भरि' नागरि, अबहीं सीस उठावौ—सा १४ ४।
ख कन्हैया मारै! 'पनघट' बाट रोकि रहत—नन्द परि पृ ४१४।

परिवार में जो व्यक्ति आयु या पद में बड़े होते हैं, छोटों का उनके प्रति सम्मान दिखाना और शालीन व्यवहार करना ही 'शिष्टाचार' के अंतर्गत आता है। छोटों की व्यावहारिक शालीनता देखकर बड़ों को संतोष होता है और उनके हृदय से जो आशीर्वाद निकलता है वह छोटों के लिए सदैव कल्याणकारी समझा जाता है।

क अभिवादन के विविध रूप—बड़ों के प्रति आदर प्रदर्शित करने का सबसे प्रचलित रूप है अभिवादन करना। पारिवारिक गुरुजनों को अभिवादन करने के लिए अष्टछाप-काव्य में 'पालागन', 'प्रनाम' और 'जुहार' करने और 'हाथ जोड़ने' का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

ख पालागन—अभिवादन के लिए 'पालागन' कहने में पूज्य व्यक्ति के चरण-स्पर्श करने का भाव निहित रहता है, यद्यपि यह कहने के साथ चरणों का स्पर्श किया नहीं जाता। इसी 'पालागन' को और स्पष्ट करके इसके स्थान पर कभी-कभी पायँ लागना भी कहा जाता है। जो व्यक्ति सामने नहीं है उसके प्रति भी विनम्रता सूचित करने के लिए 'पालागन' या 'पायँ लागने' की बात अष्टछाप-काव्य में अनेक स्थानों पर कही गयी है। लक्ष्मण की भाभी सीता जब अशोक वाटिका में हैं तब हनुमान जाकर उनका 'सविनय पालागन' सीता से कहते हैं[२१]। पंथी द्वारा नंदरानी ने देवकी को 'पालागन' कहलाया है[२२]। श्रीकृष्ण मथुरा के द्वारा पिता नंद[२३] और माता यशोदा के लिए 'पालागन' कहलाते हैं[२४]।

'पालागन' का समानार्थ लेकर स्त्रियाँ जिनके प्रति आदर रखती हैं उनके 'पायँ लागने' की बात कहती हैं। श्रीकृष्ण जब मथुरा जाते हैं और उनका मामा कंस उनसे शत्रुता का व्यवहार करता है, तब मथुरा के स्त्री-पुरुष उसके आचरण को अनुचित बताते हुए उसे अपनी बहन देवकी के 'पायँ लागने' की सलाह देते

२१ लछिमन 'पालागन' कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता—सा ९-८७।
२२. हौं यहाँ गोकुल ही तें आर।

× × × ×

तुमसौं बहुर जुहार कह्यौ है 'पालागन' नँदरानी—सा ११७८।
२३ बाबा नन्दहिं 'पालागन' कहि, पुनि पुनि चरन गहौगो—सा १४४।
२४ ता पाछें मरे 'पालागन' कहियो जसुमति माइ सौं—सा १४४९।

है[२५]। इसी प्रकार गोपियों ने ऊधव के द्वारा श्रीकृष्ण से 'पायँ लगने' की बात बड़ी अनुनय-विनय के साथ कहलायी है[२६]। श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजती हुई यशोदा ऊधव से विनती करती हुई 'पा लगने' की[२७] और देवकी के प्रति 'पालागन' करने की बात कहलाती है[२८]। जिस ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास प्रेम-पत्र भेजती है पहले 'पालागौं' कहकर उसका अभिवादन करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती है[२९]।

'पालागन' कहने या 'पायँ लगने' का ही एक रूप है 'चरण' स्पर्श करना या पकड़ना। पूज्य व्यक्ति के प्रति सामान्य स्थिति में श्रद्धा प्रकट करने के लिए तो 'चरण स्पर्श' करने की बात कहा ही जाती है, परंतु भावावेश की दशा में विनयी व्यक्ति पूज्य पुरुष या स्त्री के 'चरण पकड़' भी लेता है। श्रीकृष्ण का संदेश लेकर जब अक्रूर पांडवों के पास आते हैं, तब श्रद्धा के आवेश में वे उनकी माता कुंती के चरण 'पकड़' लेते हैं[३०]। इसी प्रकार अत्यधिक भावावेश में चरणों से लिपट जाने की बात अष्टछाप काव्य में कही गयी है। चित्रकूट में अग्रज राम के दर्शन करते ही अनुज भरत भक्ति-विह्वल होकर उनके चरणों से 'लिपट' जाते हैं[३१]।

आ *प्रणाम या प्रनाम*—कभी कभी 'पालागन' के स्थान पर 'प्रणाम' शब्द भी कहा जाता है। अष्टछापी कवियों ने सामान्यतया इस शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों से कराया है जो साक्षर हैं। चित्रकूट में भरत और शत्रुघ्न अयोध्यावासियों के साथ जब राम, सीता और लक्ष्मण से विदा लेते हैं तब दोनों भाइ अग्रज को 'प्रणाम'

२५. बहन देवकी 'पायँ लागियें' बसुदेव बंदि छिड़ाइये—परमा ५०८।
२६ ऊधौ इतनी आइ कहौ।
  सबै बिरहिनी 'पा लागति हैं मथुरा कान्ह रहौ—सा ४ ६७।
२७ ऊधौ 'पा लागनि' टी कहियो स्यामहिं इतनी बात—सा ४ ८२।
२८. इतनी सीस करौं 'पालागौं' यदै निहोरी मानें सा ४०८१।
२९ द्विज, पाती दै कहियो स्यामहिं।
  × × ×
  पालागौं तुम जाहु द्वारिका नन्दनन्दन के पासहिं—सा ४११८।
३ — — — पुनि पांडव पहं आए।
  पकरि चरन कुंती के पुनि पुनि सब गहि कंठ लगाए—सा ८११ ।
३१ देखि दरस 'चरननि लपटाम गदगद कंठ न कछु कहि आए—सा १५१।

करते हैं[१२]। ऊधव द्वारा पत्र और संदेश भिजवाते हुए श्रीकृष्ण सबसे पहले पिता नंद को 'प्रनाम' कहलाते हैं[१३]।

इ. जुहार—पारिवारिक शिष्टाचार के रूप में 'जुहार' करने की बात अष्टछाप-काव्य में कम मिलती है। पंथी के द्वारा संदेश भेजते हुए नंद महर, श्रीकृष्ण की माता देवकी के प्रति 'जुहार' कहलाते हैं[१४]।

ई. हाथ जोड़ना और विनती करना—छोटों द्वारा बड़ों को किये गये प्रत्येक अभिवादन में यों तो विनय का भाव निहित रहता ही है और उसका प्रदर्शन प्रायः हाथ जोड़कर किया जाता है, परंतु कभी कभी, विशेष कर बड़ों को पत्र लिखते समय, इन भावों का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है। ऊधव के द्वारा नंद-यशोदा को पत्र भिजवाते समय श्रीकृष्ण पिता से 'विनै' और माता से 'कर जोरनै' की बात लिखते हैं[१५]।

ख. आशीर्वाद के विविध रूप—अभिवादन—पालागन, प्रणाम, जुहार आदि—के उत्तर में गुरुजन अथवा जिन्हें अभिवादन किया गया है वे, आशीर्वाद या असीस देते आलिंगन करते और प्रीति जताते हैं।

अ. आशीर्वाद या असीस—छोटे जब अभिवादन करते हैं तो बड़े उनकी कल्याण-कामना करते हुए प्रत्युत्तर में आशीर्वाद या असीस देते हैं। किसी स्नेह-भाजन को जब संदेश कहलाया जाता है, तब भी आशीर्वाद या असीस देकर अपनी बात कहने की प्रथा भारतीय परिवार में सदा से प्रचलित रही है। लक्ष्मण जब सीता को 'पालागन' कहलाते हैं तब उनके सामने न रहने पर भी सीता अपने सूर्यवंशी देवर को सूर्यदेव की साखी करके असीस देती हैं[१६]। श्रीकृष्ण को ऊधव द्वारा संदेश

१२. भरत-सत्रुहन किया 'प्रनाम' रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ—सा. ९.५५।
१३. पहिलैं 'प्रनाम' नन्दराइ सौं—सा. १०४९।
१४. हौं इहाँ गोकुल ही मैं आइ।

 ✓ × × ×
 कुमरी महर 'जुहार' कहयौ है पालागन नन्दरानी—सा. ११०८।
१५. स्याम कर पत्री लिखी बनाइ।
 नन्द बाबा सौं 'बिनै' कर जोरे जसुमति माइ—सा. १४३६।
१६. दै असीस तरनि सन्मुख ह्वै चिरजीवौ दोउ भ्राता—सा. ९.८८।
 टिप्पणी—यहाँ दोउ भ्राता से तात्पर्य राम और देवर लक्ष्मण से है। देवर को

भेजती हुई यशोदा भी सबसे पहले उनको असीस ही कहलाती हैं[३७]।

आ आलिंगन करना (कंठ लगाना)—समवयस्क स्त्री-पुरुष सखा-सखियों को भावावेश में प्राय कंठ, गले या छाती लगाकर अर्थात् उनका आलिंगन करके अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। कभी कभी प्रणामकर्ता यदि विनयावेश में अथवा अन्य किसी कारण से पैरों पर इस प्रकार गिर पड़ता है कि स्वयं नहीं उठता तब आयु में बड़ा व्यक्ति उसे उठाकर छाती या गले से लगा लेता है। चित्रकूट में पहुँचकर भरत जब अग्रज राम के चरणों से लिपट जाते हैं तब राम उन्हें उठाकर हृदय से लगा लेते हैं[३८]। ऊधव द्वारा ब्रजवासियों को भिजवाये गये पत्र में अपने सखाओं गोप ग्वालों को श्रीकृष्ण ने 'हिलि-मिलि कंठ लगाने' की बात लिखी है[३९]। इसी प्रसंग में श्रीदामादि ग्वालों की 'कौरी भेंटने' की बात भी उन्होंने कही है[४०]। श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर पाण्डवों को बड़े प्रेम से 'गले लगाते' हैं[४१]।

इ प्रीति जनाना—जो प्रेम या स्नेह-भाजन सामने नहीं होते उनको किसी प्रकार का संदेश भेजते या पत्र लिखते समय उनके प्रति 'प्रीति जनाने' की बात अष्टछाप-काव्य में लिखी गयी है जिसका तात्पर्य है संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को सप्रेम स्मरण करना। ऊधव द्वारा भेजे गये पत्र में ब्रज के नर-नारियों के प्रति श्रीकृष्ण प्रीति जनाते' हैं[४२]।

असीस देने की बात तो ठीक है पति को असीस देने की बात कुछ अटपटी जान पड़ेगी। वस्तुतः यहाँ 'असीस' से तात्पर्य हृदय की शुभाशा-कामना से है जो सभी आत्मीयों के लिए सीता जैसी वात्सल्यमयी नारियों के हृदय में सदैव रहती है।

—लेखिका।

३७ कहियौ जसुमति की 'आसीस'—सा ४ १।

३८. देखि दरस चरननि लपटान।
× × × ×
लीनो 'हृदय लगाइ' सूर प्रभु पूछत अंग भए क्यों आइ—सा १-५१।

३९ गोप-ग्वाल सगनि कौ हिलि-मिलि 'कंठ लगाइ'—सा १४१६।

४० श्रीदामादिक सकल ग्वालनि कौ मेरी 'कौरी भेंटियौ'—सा १४१६।

४१ ... ... पुनि पांडव-गृह आए।
पकरि चरन कुंती के पुनि पुनि सब गहि कंठ लगाए—सा ४१६।

४२. स्याम कर पत्री लिखी बनाइ।
और ब्रज नर-नारि जे हैं तिनहिं प्रीति जनाइ'—सा १४१६।

ग पत्र-संबंधी शिष्टाचार—स्वजनों के प्रवास-काल में पत्र-व्यवहार की आवश्यकता विशेष रूप से होती है जिससे अपना कुशल-समाचार दिया जा सके और दूसरों का जाना जा सके। पत्र लिखते समय यों तो शिष्टाचार का निर्वाह करने के लिए अभिवादन के सामान्य रूप ही व्यवहृत होते हैं, तथापि पत्र-प्रेषक और पत्र-प्राप्तकर्ता दोनों के लिए इनके अतिरिक्त कुछ अन्य बातों का भी निर्वाह करना वांछनीय होता है। यद्यपि यह ठीक है कि पत्र-लेखन का जो सौंदर्य गद्य में परिलक्षित होता है वह काव्य, विशेषत गीतिकाव्य, में नहीं; तथापि शिष्टाचार-संबंधी कुछ संकेत पद्य में लिखे गये पत्र में भी रहते ही हैं। अष्टछाप काव्य में पत्र-प्रेषक के लिए शिष्टाचार की जिन बातों का परोक्ष रूप से उल्लेख किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख बात है स्वयं ही पत्र लिखने की। किसी परम आत्मीय जन को दूसरों से लिखवाकर पत्र भेजना शिष्टाचार के प्रतिकूल समझा जाता है और स्वयं पत्र लिखना उसके अनुकूल। श्रीकृष्ण मथुरा जाने पर नंद यशोदा और व्रजवासियों को ऊधव द्वारा जो पत्र भेजते हैं वह उन्होंने 'स्वयं बनाकर' अर्थात् बड़ी आत्मीयता के साथ लिखा है[४३]। इसी प्रकार ऊधव को व्रज जाते सुनकर देवकी-वसुदेव भी नंद-यशोदा को 'आपु लौ पाती' लिखते हैं[४४]। राधा और अन्य गोपियों को कुब्जा ने भी अपने हाथ से ही पाती लिखी है[४५]।

अपने प्रियजन का पत्र उसके मिलन से कम सुखदायी नहीं होता। इसी कारण पत्र की प्राप्ति पर किया गया व्यवहार उसके प्रति हमारे व्यवहार पोषक होता है। परोक्ष रूप से किसी के पत्र के प्रति किये गये आचरण का संबंध शिष्टाचार से भी होता है। किसी के पत्र को छाती से लगाना किसी को सर-आँखों से लगाना किसी को स्वयं पढ़ना, किसी को दूसरे पढ़वाना, किसी को झपटकर दोनों हाथ से लेना, किसी को बायें हाथ में इत्यादि बातें पत्र-प्रेषक के प्रति हमारे व्यवहार के साथ-साथ हमारे संबंध

४३ स्याम कर पत्री लिखी बनाइ —सा १४११ ।

४४ ऊधौ आत अबहिं सुन देवकी वसुदेव सुनि कै हरे हेत पुनि।
आपु लौ पाती लिखी कहि कुशल जसुमति नन्द—सा १८४२ ।

४५ कुबिजा सुन्यौ आत अब ऊधौ महलनि लियौ बुलाइ।
अपने कर पाती लिखि राधेहिं गोपिनि सहित पठाई—सा १८४३ ।

घनिष्ठता-अघनिष्ठता की भी द्योतक है। अष्टछाप-काव्य में जिन दो-तीन पत्रों की चर्चा है उनमें व्यावहारिक शिष्टाचार की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है गोपियों को लिखा गया श्रीकृष्ण का पत्र जिसकी सूचना पाते ही व्रजबालाएँ घर से दौड़ पड़ती हैं, उसे बार-बार छाती से लगाती हैं, नेत्रों से लगाती हैं, फिर भी उनकी प्रेम-तृषा नहीं बुझती[४६]। अपने प्रियजन के हाथ की लिखी हुई 'पाती' पाकर हमें वास्तव में बड़ा संतोष होता है, क्योंकि इससे अपने प्रति प्रियजन की आत्मीयता का परिचय पाकर हम आश्वस्त हो जाते हैं। इसीलिए गोपियाँ स्वयं श्रीकृष्ण के हाथ की लिखी 'पाती' पाकर अत्यंत प्रफुल्लित हो जाती हैं, उसकी चर्चा बड़े गर्व से करती फिरती हैं[४७] और कोई-कोई गोपी तो स्वयं श्याम के ही पत्र लिखने की बात बार-बार सुनने के लिए ऊधव से पूछती है—क्या यह पाती' कन्हाई की ही लिखी हुई है[४८] ?

४ संस्कार—

'संस्कार' से आशय शास्त्रविहित उन मांगलिक कृत्यों[४९] से है जो मानव के सर्वांगीण विकास के लिए किये जाते हैं। इन कृत्यों का आरंभ जन्म के पूर्व से ही हो जाता है और अंत शरीरांत के साथ होता है। संस्कारों की संख्या के संबंध में भारतीय संस्कृति के विद्वान एकमत नहीं हैं, किसी ने मनु के अनुसार

४६.क पाती मधुबन ही तैं आई
सुन्दर स्याम आपु लिखि पठई आइ सुनौ री माई
अपने अपने गृह तैं दौरीं लै पाती उर लाई।
'नैननि निरखि' निमेष न लावति प्रेम-तृषा न बुझाइ—सा १४८६।
ख निरखति अंक स्याम सुंदर के 'बार-बार लावति लै छाती'—सा १४८७।
ग. पाती मधुबन तैं आई।
ऊधौ हरि के परम सनेही ताकैं हाथ पठाई।
कोउ पढ़ति कोउ धरति नैन पर काहू हृदै लगाई—सा १४८८।
४७ पाती मधुबन ही तैं आई।
सुन्दर 'स्याम आपु लिखि पठई' आइ सुनौ री माई—सा १४८६।
४८. कोउ पूछति फिर फिर ऊधौ कौं 'आपुन लिखी कन्हाई'—सा १४८६।
४९ 'मानक हिन्दी शब्द कोश में 'संस्कार' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है— द्विजातियों के शास्त्रविहित कृत्य जो मनु के अनुसार बारह हैं और कुछ लोगों के अनुसार सोलह हैं—पृ १९४४।

उनकी संख्या बारह मानी है[५०] और किसी ने सोलह। सोलह संस्कारों[५१] के नाम ये हैं—१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकर्म, ९ कर्णवेध, १० उपनयन, ११ वेदारंभ, १२ समावर्तन, १३ विवाह, १४ वानप्रस्थ, १५ संन्यास और १६ अंत्येष्टि।

उक्त संस्कारों में प्रथम तीन प्रारंभिक हैं जिनका स्पष्ट वर्णन अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। बंदीगृह में जन्म होने के कारण कृष्ण के ये प्रारंभिक संस्कार हुए भी नहीं थे। इसी प्रकार समावर्तन, वानप्रस्थ, संन्यास आदि संस्कारों का वर्णन भी अष्टछाप-काव्य में नहीं है। अतएव जिन संस्कारों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, वे दस हैं—१ जातकर्म, २ नामकरण, ३ निष्क्रमण, ४ अन्नप्राशन, ५ कर्णवेध, ६ चूड़ाकर्म, ७ उपनयन, ८ वेदारंभ, ९ विवाह और अंत्येष्टि। इन संस्कारों का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। परमानंददास के काव्य में भी 'अंत्येष्टि' को छोड़कर शेष संस्कार वर्णित हैं, केवल 'निष्क्रमण' संस्कार का उल्लेख उन्होंने भूमि-उपवेशन' के रूप में किया है। अष्टछाप के शेष कवियों ने दो-एक संस्कारों का ही वर्णन किया है जिनमें राधा और कृष्ण अथवा किसी एक के जन्म-संस्कार का वर्णन तो सभी के काव्यों में मिलता है। छीतस्वामी और चतुर्भुजदास ने केवल जन्म संस्कार का वर्णन किया है। कुंभनदास ने जन्म के साथ सगाई अथवा विवाह-संस्कार की चर्चा संक्षेप में की है। नन्ददास के काव्य में जातकर्म नामकरण विवाह और अंत्येष्टि, चार संस्कारों का उल्लेख हुआ है। गोविंदस्वामी ने केवल जन्म के अवसर पर बधाई' और 'ढोहिला' गाये हैं।

शास्त्रविहित उक्त संस्कारों की भाँति ही इनसे मिलते जुलते कुछ और कृत्य भारतीय परिवारों में अत्यंत निष्ठा से किये जाते हैं जिन्हें 'कुलाचार' का सकते

५० 'हिंदी शब्द-सागर' भाग ४ में निम्नलिखित बारह संस्कार माने गये हैं—
१ गर्भाधान २. पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८. चूड़ाकर्म, ९ उपनयन १० वेदारंभ, ११ समावर्तन और १२. विवाह—पृ ३४१४।

५१ श्री शिवदत्त ज्ञानी 'भारतीय संस्कृति' पृ ६५-६६।

हैं। उदाहरणार्थ छठी और वर्षगाँठ को संस्कारों के रूप में तो मान्यता नहीं प्रदान की गयी, फिर भी ये उत्सव संस्कारों के समान ही अत्यंत उत्साह से मनाये जाते हैं। अधिकांश अष्टछापी कवियों ने 'छठी' का और कर्णछेदन के पूर्व 'वर्षगाँठ' का वर्णन किया है। जनसमाज में इस प्रकार की परम्परागत रीतियों की मान्यता शास्त्र-सम्पादित आचारों से कम नहीं होती और इनके वर्णन से तत्कालीन व्रज-संस्कृति का अच्छा परिचय मिल सकता है। अतएव विषय की स्पष्टता और क्रमबद्धता के लिए उक्त संस्कारों के वर्णन के साथ 'छठी' और 'वर्षगाँठ' को भी सम्मिलित करके इनकी भी चर्चा क्रमानुसार की गयी है।

क जन्मोत्सव—अष्टछाप-काव्य में राम, कृष्ण, राधा तथा गोसाईं गिरिधर के जन्म का वर्णन हुआ है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के जन्म-संस्कार का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। सर्वप्रथम वे देवकी और यशोदा की गर्भावस्था का वर्णन करते हैं। हरि के गर्भ में आते ही देवकी का शरीर उजला (या पीला) होने लगता है और वह हर समय अलसामी-सी रहती है[५२]। इसी प्रकार यशोदा की गर्भावस्था के वर्णन में आठ मास चंदन और नवें में कपूर पीने की बात उन्होंने लिखी है। दसवें मास श्रीकृष्ण का जन्म होता है[५३]। नंददास ने भी गर्भावस्था में देवकी के प्रकाशपूर्ण तथा हर्ष और शोकयुक्त होने की बात लिखी है[५४]।

पुत्र-जन्म[५५] की शुभ सूचना पाकर जाति-बंधु और ग्वाल-बाल बधाई देने

५२. हरि के गर्भ बास जननी को बदन उजारो लाग्यो।
अलु दिन गए 'गर्भ को आलस' उर देवकी जनायो—सा १०-४।
५३ आठ मास 'चंदन पियो (हो) नवएँ पियो कपूर'।
'दसएँ मास मोहन भए (हो) आँगन बाजे तूर—सा १०-४।
५४ सप्तम गर्भ विष्णु को धाम।
देवकि तहाँ 'भावित परकासी, हर्ष सोक दोऊ मिलि भासी'—नंद दशम पृ १५।
५५. बाण ने भी हर्ष के जन्मोत्सव का विशद चित्रण किया है जो सूर के वर्णन से मिलता है। 'हर्षचरित' में शंख दुंदुभी आदि मंगल वाद्य, सुवर्ण शृंखलाओं से बँधी कलशियाँ सभाप्रांगणों में प्रज्वलित अग्नि ब्राह्मणों का वेदोच्चारण परिचारकों का प्रसन्नता से नृत्य आदि उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त प्रसव में महाजनों की दूकानें लूटने और कारागार से बंधन-मुक्ति की प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। षष्ठिपद में जात मातृ

आते हैं[५५]। उनकी प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं है। कोई मंगल-सूचक दधि-दूब सिर पर रखता है, कोई आवेश में पैरों पर लोट्य जाता है, कोई परस्पर बधाई देता है और कोई प्रसन्नता से गा उठता है[५७]। कोई नाचता-गाता, कल्लोल करता और परस्पर 'हरद दही' छिड़कता है तथा कोई 'दधि-गोरोचन-दूब' दूसरे के शीश पर रखकर शिशु की मंगल-कामना करता है[५८]। स्त्रियों का हर्ष तो और भी बढ़ा चढ़ा है। अत्यधिक प्रसन्नता के कारण अंचल तक सम्हालने की उनको सुधि नहीं है और वे फूल बरसाती हुई नंद महर के घर भागी चली आ रही हैं[५९]। उनके आगमन की सूचना पाते ही सबको भवन में बुला लिया जाता है। पुत्र की सलोनी सूरत देखकर सब उसके पैर पड़ती हैं, बार बार उसका मुँह खोलकर देखती और प्रफुल्लित होकर शुभ आशीस देती हैं[१]। 'हरद-दही' आदि परस्पर छिड़कने में भी वे पुरुषों से पीछे

देवी अथवा चर्चिका की आकृति बनायी गयी थी। दूसरे दिन सामन्तों की स्त्रियों व तथा अन्य छोटे बड़ों के सुख करने फूल मालाएँ, कपूर कुमकुम चंदन आदि सुगंधियों तथा सिन्दूर पात्रों को एकत्रित करने का उल्लेख है। वारविलासिनी स्त्रियाँ रसिक पदों को गा गाकर नाचने लगीं तथा अनेक प्रकार के बाजों का कोलाहल हुआ—डा वासुदेव शरण अग्रवाल,हर्ष सां अ पृ ६५।

५६ क नंद महर के 'पुत्र भयो है' आनंद मंगल गाई।
गाम-गाम ते अति आपनी घर-घर तें सब आई—परमा १।
ख मुनि के 'गोप महामुद भरे चले' महरि-घर रंगनि ररे।
पहिरे अंबर सुंदर-सुंदर, ज कबहुं निरखे न पुरंदर।
मंगल भेंट करन मे लिय, मैन स लरिकन आगे किय।
गोपी मुदित, भयो मन भायो, 'महरि जसोदा ढोटा जायो।
—नंद , दशम पृ २१७।

५७ एक फिरत 'दधि-दूब धरत सिर एक रहत गहि पाइ।
एक परस्पर 'देत बधाइ एक उठत हसि गाइ—सा १०-२।

५८. इक मिलि नाचत 'करत कलोल छिरकत हरद दही।
× × × ×
इक 'दधि-गोरोचन-दूब सबक सीस धरे—सा १०-२४।

५९. आनँद भर अंचल न सम्हारति' सीस 'सुमन बरसावति'—सा १०-२१।

१ लइ भीतर भवन बुलाइ सब शिशु पाँइ पाँइ परी।
इक बदन उघारि निहारि देहिं असीस खरी—सा १०-२४।

नहीं है[११]। ब्रजजन बजाते-गाते तरह-तरह के उपहार लेकर शिशु का मुख देखने आते हैं। बधाई के लिए लाये हुए दूध, दही, तेल आदि की मात्रा इतनी अधिक है कि ब्रज में उनकी सरिता बहने लगती है[१२]। कंचन-कलशों को केशर चर्चित करके वंदनवारें बाँधी जाती हैं[१३]।

नंद महर के घर पुत्र होने पर दाई अपने नेग के लिए झगड़ा करती हुई यशोदा से कहती है कि मणि-जटित हार मिल जाने पर ही मैं 'नार-छेदूँगी', पहले नहीं[१४]। हार पाकर दाई नार छेद कर बधाई देती है और कंचन के आभूषण तथा मोतियों से भरा थाल लेकर जाती है[१५]। इस अवसर पर होम, द्विज-पूजा और घर लीपने का कई बार उल्लेख है[१६]। बारिनि या मालिनि वंदनवार और तोरना[१७] बाँधती है और हार गूँथती है[१८]।

ख *जातकर्म और जन्मोत्सव*—बालक का जन्म होने पर पिता द्वारा देव-पितर-पूजन, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन आदि जो कार्य किये जाते हैं वे 'जातकर्म' कहलाते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म होने पर नंद जी ब्राह्मणों को सादर बुलाते हैं जो

११ छिरकत हरद दही पथ तरुनी अति ही सोभा देत।

—कृष्ण कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृ १६।

१२. उमड़त नवनीत दूध दधि हरद तेल बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै।

—कुंभन २।

१३ कंचन कलस परचि केसरि के बाँधति बंदनवार—चतु १।

१४ अमुदा 'नार न छेदन देहौं'।
मनिमय जटित हार ग्रीवा को वही आजु हौं लैहौं—सा १०-१५।

१५. सूरदास 'कंचन के आभरन लै अजारिनि पहिराई'—सा १०-१६।

१६ क कंचन कलस होम द्विज पूजा' चंदन भवन लिपायो—सा १ ४।
ख आँगन लीपौ चौक पुरावो 'विप्र पढन लागे वेद'—परमा ११।

१७ 'तोरना' या 'तोरण' से तात्पर्य ऐसी बड़ी चंद्राकार बंदनवार से है जो द्वार पर बाँधी जाती है—लेखिका।

१८.क घमकत दूब लिए रिपि आये बारिनि बंदनवार बँधाई'—सा १ १६।
ख मालिनि बाँधे तोरना (रे) आँगन रोपे केरि—१ ४।
ग. गुनी गँधर्व मिलि मंगल गावें मालिनि गूँथे हार'।

—कृष्ण कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ २।

उनके यहाँ पधार कर वेद-पाठ करते, पितर और देव-पूजन कराते तथा स्वस्तिवचन पढ़कर आशीर्वाद देते हैं[६९]। पुत्र के जन्म-लग्न की गणना करके आचार्य गर्ग द्वारा जन्मपत्री बनाये जाने की बात भी इसी प्रसंग में आती है[७०]। नंद जी स्नान करके कुश हाथ में लेकर नांदी मुख श्राद्ध और पीतरों का पूजन करते हैं[७१]। इसके पश्चात् वे चंदन घिसकर विप्रों का तिलक करते और उनको तथा गुरुजनों को वस्त्रादि पहनाकर उनके चरण छूते हैं[७२]।

इसके अनंतर दान का क्रम आरंभ होता है। सबसे पहले ब्राह्मणों को बहुत सी अन्य सामग्री के साथ दो लाख गायें दान में दी जाती हैं[७३]। जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर नंद जी अपने इष्ट-मित्रों और बंधु-बांधवों को सादर निमंत्रित करते हैं और कपूर चंदन-कस्तूरी का तिलक लगाकर अपनी प्रीति एवं प्रसन्नता प्रकट करते हैं[७४]। इस प्रकार उनके द्वार पर भारी भीड़ एकत्र हो जाती है जिसमें जाति-बंधुओं के साथ-साथ पुरजन प्रजाजन याचक, बंदीजन आदि सभी हैं। नंद जी सभी को यथा योग्य गाय, वस्त्र, आभूषण नग-रत्न, पुहुप-माल, चंदन दूब-रोचना आदि देकर सबका सम्मान करते हैं[७५]। याचकों और ढाढ़ी-ढाढ़िनि को इतना अधिक सामान

६९ नंदराय घर ढोटा जायौ महर महा सुख पायौ।
बिप्र बुलाय वेद-धुनि कीन्हीं स्वस्ती बचन पढ़ायौ।
जातकर्म करि पूजि पितर सुर-पूजन बिप्र करायौ—सारा १६१-६२।

७० क 'ग्रह-लगन-नखत-पल सोधि' कीन्ही वेद धुनी—सा १०-२४।
ख गर्ग आचारज पाँव धारिय लिखी जनम की पाँति'—गोवि १२।

७१ तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े अरु कुस हाथ धरे।
'नांदी मुख पितर पुजाइ' अंतर सोच हरे—सा १०-२४।

७२. 'घसि चंदन चारु मँगाइ' बिप्रन तिलक करे।
द्विज गुरुजन को पहिराइ' सबके पाइ परे—सा १ २४।

७३ 'दोइ लच्छ धेनु दई' तिहि अवसर बहुतहिं दान दिवायौ—सारा १६२।

७४ सब इष्ट मित्र अरु बंधु हँसि-हँसि बोलि लिये।
'मथि मृगमद मलय कपूर माथे तिलक किये'—सा १०-२४।

७५. एकनि कौं 'गो-दान समर्पत एकनि कौं 'पहिरावत चीर'।
एकनि कौ 'भूषन पाटंबर एकनि कौं जु देत नग-हीर।
एकनि कौं 'पुहुपनि की माला एकनि कौं चंदन घसि नीर।
एकनि माथें 'दूब रोचना एकनि कौं बोधत दै धीर'—सा १०-२५।

दान में मिलता है कि वे उस गयंद पर लादकर ले जाते हैं[७६]। अनेक याचक तो मार्ग में जाते हुए 'राजा' के समान प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे कंचन-मणि-भूषण पहने हैं और नाना प्रकार के वस्त्र धारण किये हैं[७७]। कपिला धेनु, सींगों को सोने से मढ़ाकर रत्न, भूमि, वस्त्राभूषण[७८] आदि के साथ विप्रों को दान में दी जाती हैं।

राधा के जन्म पर वृषभानु-भवन में भी याचकगण मणि, कंचन, मुक्ता, पट भूषण आदि दान में पाते हैं[७९]।

कुछ भारतीय परिवारों में शुभ संस्कारों के अवसर पर गाली गाने की प्रथा है। श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर 'गाली', 'गारी' या 'गारि'[८०] भी गायी गयी हैं[८१]। ढाढ़ी-ढाढ़िनि भी मनचाहा नेग पाकर बधावा और बकसीस गाते हैं[८२]।

७६ दीन्हीं है सारी सोंधें भींजी कंचुकी नारु की।
कीन्ही है मालिनि ढाल सुहागिनि गेह की।
'ढाढ़ी गयंद लदाइ बस्यो' चित चाहिलो।
चिरजीवो 'चतुभुज' को प्रभु गिरिधर लाड़िलो—चतु ७।

७७ बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि दूरि-दूरि तैं आए।
इक पहिलैं ही आसा लागे, बहुत दिननि तैं छाए।
ते पहिरे कंचन-मनि-भूषन नाना बसन अनूप।
मोहिं मिले मारग मैं 'मानो जात कहूँ के भूप'—सा १ १५।

७८. तब ब्रजराज गोप सब मिलि कें अति आदर सों विप्र बुलाई।
रतन भूमि मँगाइ दान दे कें आसिस बचन पढ़ाई—गोवि ११।

७९ क तब मागध बंदीजन बधुवा जाचक बनिक करे।
'भवन भँडार खोलि सौंप सब बकसत' सकट भरे।
—कृष्णन कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ १८२।

ख देत दान 'वृषभानु भवन में जाचक बहु निधि पाई'।
मनि कंचन मुकता पट हीरा अरु नाना बिधि गाई—गोवि २।

८० गाली गीतों में संबंधियों पर अश्लील व्यंग्य होते हैं। हर्ष के जन्मोत्सव में बाण ने भी चार विलासिनियों के अश्लील रासक पदों (डीठनों) के गाने का उल्लेख किया है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल,—हर्ष, सां अ, पृ ६७।

८१ निर्भर अभय निसान बजावत 'देति महरि कौं गारी'—सा १०-४।

८२.क. मैं तेरे घर को हौं ढाढ़ी मो सरि कोउ न आन।
सोइ लैहौं 'जो मो मन भावै नंद महर की आन'—सा १ १६।

जिस स्थान पर बालक का जन्म होता है वह 'सूति गृह' कहलाता है[८३]। उसके द्वार पर स्त्रियाँ सीक से सथिया (स्वस्तिक चिन्ह) बनाती हैं[८४]। पुत्र जन्म के शुभ अवसर पर असीम प्रसन्नताद्योतक उक्त कार्यों के साथ-साथ ताल, मृदंग, मुरज, वेनु, पखावज, ढोल, तूर दमामा, भेरी, निसान, सहनाई आदि विविध वाद्य बजते हैं[८५]।

इनके अतिरिक्त घर-घर में 'टीका' आता है[८६]। गोपगण नाना प्रकार के वस्त्राभूषण और उपहार लेकर दूध-दही आगे करके आते हैं[८७]। परमानन्ददास ने

ख. ढाढ़ी थान-मान के आइ।
नन्द दुआर भए ठाढ़े, बहुत असीस बनि आइ।
अब अब नाम परी ढाढ़ी को जनम करम गुन गाऊँ।

× × ×

ले दाड़िनि कंचन-मनि-मुक्ता, नाना बसन अनूप।
हीरा-रतन पटंबर हमको दीजै ब्रज के भूप—सा १ १२।

८३ उपरत परत सु बिलखत भयो, करत करत सूतीगृह गयो।
—नन्द०, दशम, पृ० २१४।

८४ द्वार सथिया देत स्यामा माल सीक बनाइ—सा १ २६।

८५ क. बाजत ताल मृदंग अघटनि—सा १०-११।
ख. बाजत मुरज बरन [illegible] मुरज बजावा—परमा ९।
ग. बाजत बेनु पखावज मनोहर गावत गीत सुहाए।

× × × ×

[illegible] करत [illegible] देव सबद [illegible] ढोल —परमा १५।
घ. बाजत तूर [illegible] निसान [illegible] बैठारा—परमा १६।
ङ. बाजत ताल मृदंग [illegible] दमामा भेरी —परमा ११।
च. [illegible] निसान [illegible] —परमा० २०।
छ. [illegible] निसान।
[illegible] ॥
—[illegible] भाग १, पृ० ४३।

८६ [illegible] —सा [illegible]।

८७ [illegible] भूषन बसन [illegible]।
[illegible] —सा ११०।

राम-जन्मोत्सव पर लोगों के पान-फूल, उपहार आदि लेकर आने का वर्णन किया है[८८]।

कृष्ण जन्म पर केवल व्रजवासी ही नहीं, देवता भी प्रसन्न होकर पुष्प-वर्षा करते और नगाड़े बजाते हैं[८९]। अष्टसिद्धि[९०] और नवनिधि[९१] जन्मोत्सव में भाग लेती हैं। वे उनका द्वार बुहारती और 'सथिये' रचती हैं[९२]।

ग छठी—छठी (सं० षष्ठी) का उत्सव जन्म के छठे दिन होता है। यह उत्सव मुख्यतः सूतिगृह की स्वच्छता का है। स्त्रियाँ स्वयं इसके प्रमुख कार्य कर लेती हैं। बच्चे की बुआ 'सौवर' (सं० शोभागृह) के द्वार पर गोबर से लिपे चौक पर गोबर और जौ[९३] से सथिया (सं० स्वस्तिक) रखती है और बच्चे के काजल लगाती है। यह बच्चे के लिए वस्त्र, खिलौने आदि लाती है[९४] और शिशु की जननी (अपनी भावज) से 'नेग' के लिए झगड़ती है।

कृष्ण के जन्म के छठे दिन व्रजनारियाँ और यशोदा उनकी छठी मनाती हैं। सभी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर 'सोहर' गाती और 'काजर-रोरी' से छठी का 'चार' करती

८८ 'पान फूल फल मेवा चन्दन बहु उपहार' लोग लै आये—परमा १४।
८९ हरष देव सुमन बरसे नभ निशान बजायो है—परमा ६।
९० अष्ट सिद्धियाँ ये हैं—अणिमा महिमा, गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व—श्री रामचंद्र वर्मा प्रामाणिक हिन्दी कोश पृ ११२८।
९१ नवनिधि अर्थात कुबेर के नौ रत्न ये हैं—पद्म, महापद्म शंख मकर कच्छप, मुकुंद, कुंद नील और खर्व—'प्रामाणिक हिन्दी कोश' पृ ५६१।
९२ क द्वार बुहारति फिरति अष्टसिद्धि'। कौरनि सथिया चीतति 'नवनिधि'।

—भा १ १२।

ख और भई है नन्द के द्वारे अष्ट महासिद्धि' आई—परमा १६।
९३ बाण ने कादम्बरी में सूतिका-गृह के वर्णन में सौवर के बाहर जन सथिये' का उल्लेख किया है। यह कपास के रंग बिरंगे फूलों से अलंकृत किए गए थे।

—डा वासुदेव शरण अग्रवाल हर्ष ० सां अ० पृ ७२।

९४ जब ननद बच्चे के लिए कुरता-टोपी लाती है उस समय व्रज में गाया जानेवाला एक प्रसिद्ध गीत 'जगमोहन लुगरा' गाया जाता है। इसमें ननद अपनी भाभी से नेग में जगमोहन नामक साड़ी और 'लुगरा' नामक लहँगा माँगती है।

—डॉ सत्येन्द्र व्रजलोक साहित्य का अध्ययन पृ १८६।

हैं[९५]। नाइन यशोदा के पैरों में महावर लगाती है और पुरस्कार में 'लाल टका' और 'भुमका' पाती है। व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती हैं[९६]। इस अवसर पर सोहिले, बधाई तथा मंगलचार गाने का भी वर्णन हुआ है[९७]। 'सोहिलो' का लोक-गीतों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसे व्रजवाली में 'सोहर' कहा जाता है। इस गीत में ननद सास जिठानी, देवर आदि के नेगों और उस समय पर होनेवाली प्रसन्नता का उल्लेख विशेष रूप से होता है। इसी प्रकार 'बधाई' के गीत मांगलिक अवसरों पर गाये जानेवाले बधाई-सूचक होते हैं। राधा के जन्म पर रावल में और कृष्ण-जन्म पर नंद महर के यहाँ बधाई गायी गयी है। कृष्णदास ने चंद्रावली की भी बधाई गायी है और कुंभनदास ने राधा का सोहिलो' गाया है[९९]। सूरदास कृष्ण जन्म पर और गोविन्दस्वामी राम जन्म पर 'सोहिला' गाते हैं। घर-घर से सब स्त्रियाँ टोल बनाकर सजधज कर आती हैं और सोहिलो गाती हैं[१]।

९५. अजर रोरी आनहु करौ 'छठी को चार'—सा १०-४।

९६ क आजु छठी' जसुमति के सुत की चली बधावन ओप माई—कुंभन ६।

ख आज 'छठी सुभीत लाल की।

उबटि न्हवाइ भूषन बसन लिए सुंदर स्याम तमाल की—चतु ११।

९७ कनक थार लिए व्रजसुंदरि गावति मंगलचार'—चतु ४।

९८.क. आजु तो बधाइ बाजै मंदिर महर के—सा १०-१४।

ख सुनियत 'रावलि होत बधाई'।

× × × ×

सब सखियनि मिलि गावति मंगल आजु अधिक बनि आई—गोवि २।

९९ चंद्रभान के नवनिधि आई।

सुखमा कूखि अवतरी कन्या 'घर-घर बजत बधाई'।

—कृष्ण कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ १८९।

२ आरी माई प्रकटी है आनंद कंद लाली जू को सोहिलो'।

—कुंभन, कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ १८८।

१ क गौरि गनेसुर बीनऊँ (हो) देवी सारद तोहि।

गावौं 'हरि को सोहिलो' (हो) मन-आखर दे मोहि।

हरषि बधावा मन भयौ (हो) रानी जायौ पूत।

घर-बाहर माँगैं सबै (हो) ठाढ़ मागध-सूत—सा १ ४।

ख मेरी राम लला को सोहिलो सुनि गावैं सुर-नारि—गोवि १५४।

छठी के अन्य मांगलिक कार्यों में 'मंडप रचाने',[२] 'घृत-दीप' जलाने[३] और षष्ठी देवी के सामने मंगल-दीप तथा 'लेखनी-मसिदानी' रखने[४] आदि का उल्लेख भी 'परमानंदसागर' में मिलता है। उसके एक पद में षष्ठी का पूजन 'नांग' और 'लेखनी मसिदानी' सहित द्विजवर द्वारा कराने का उल्लेख भी 'छठी' के उत्सव के अंतर्गत हुआ है[५]।

इस अवसर पर शिशु की कल्याण-कामना के लिए कुलदेवी या देवता की पूजा भी की जाती है। माता यशोदा कृष्ण को नहलाकर कुल-देवी के पाँव पड़ाती और विविध व्यंजनों का भोग लगाती है[६]। पीले वस्त्राभूषण धारण किये, 'ऐपन'[७] की पुतली-सी बनी व्रजनारियाँ बधाई लेकर आती और नंद-पुत्र के तिलक करती हैं[८]। छठी के अवसर पर 'चहरका' नामक गीत-विशेष भी गाया जाता है[९] जिसमें बच्चे की माता को गालियाँ दी जाती हैं। यह गीत प्रायः रात में सबसे बाद में गाया जाता है।

२ 'मंडल रचनि' रचनि पुरपनि के कमल-कली कुजनि भाव—परमा कॉक ५८।

३ क 'दीपावलि घृत-पूरि पात्र भरि कोटिक पंच छिपा छाजे'—परमा कॉक ५८।

ख 'दीपक पंगति भवननि राजति'—परमा कॉक ५८।

४ रतन चौक राजत चौकी पर 'मंगलदीप' निकट धर धी को।
'कनक रचित लेखनि-मसिदानी धरी जहँ चित्र रच्यो षष्ठी को।
—परमा कॉक ५६।

५ मंगलचार बँधी चहुँ ओरे दीपक रचि हाटक धारी।
रच्यो विचित्र षष्ठी को पूजन जसुमति रानी सुकुमारी।
करि उपचार पुजावति द्विजवर 'नांग' कास में करि न्यारी।
पत्र लेखनी धर मसिदानी लेख लिखनि की करि न्यारी—परमा कॉक ६।

६ मंगल चौस छठी को आयो।
× × ×
कुँवर न्हवाय जसोदा रानी कुलदेवी को पाँय परायो।
बहु प्रकार विजन धरि भोजन सब विधि भलो मनायो—परमा १८।

७ 'ऐपन पिसे हुए कच्चे चावल या हल्दी मिला वह पदार्थ है जिससे मांगलिक अवसरों पर चौक पूरा आदि बनाए जाते हैं'—मेदिका।

८ क 'ऐपन की सी पूतरी सब सखियनि कियो सिंगार'—सा १४।

ख सब व्रजनारी बधावन आईं सुत को तिलक करायो—परमा १८।

९ गोपी गावनि चहर क'—सा १०-१।

उक्त आचार्यों के पश्चात् गर्ग मुनि शिशु कृष्ण के उच्च ग्रहों की स्थिति और प्रभाव की व्याख्या करके उनके परमोज्ज्वल भविष्य की शुभ सूचना देते हैं[१]।

घ *नामकरण*—इस संस्कार में बालक का नाम रखा जाता है और यह जन्म के दसवें या बारहवें दिन सम्पन्न होता है। इसी से इस संस्कार को जनबोली में 'दृष्ठौन' (सं दशोत्थापन) या 'बरही' भी कहते हैं। इस संस्कार को सम्पन्न करने के पूर्व मुहूर्त निकलवाया जाता है। नंद के घर बलराम और श्रीकृष्ण के नामकरण-संस्कार के लिए मुनिवर गर्ग जी आते हैं[११]। नंद जी कंस के भय से चुपचाप स्वस्तिवाचन और 'अग्निहोत्र करके' बालकों का नामकरण-संस्कार करने का निवेदन करते हैं[१२]। परमानंददास ने इस अवसर पर 'मोतियों से चौक पूरने' तथा 'मंगलगान करने' का भी वर्णन किया है[१३]। नंद जी के सबको सावधान करने के पश्चात् भी नामकरण-संस्कार के दिन गोकुल में बड़ा कोलाहल होता है। गर्ग जी नामकरण के अवसर पर कृष्ण के विमल यश का वर्णन करते हैं[१४]। रोहिणी पुत्र बलराम के साथ उन्होंने नवजात शिशु कृष्ण के अनेक नामों का उल्लेख किया है[१५]। तदनंतर नंद जी के द्वारा यथेष्ट दान-मान पाकर याचक सन्तुष्ट होते हैं।

१ क नंद जू आदि जोतिषी तुम्हरे घर को पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
'लगन सोधि सब जोतिष गनि कै' चाहत तुम्हहिं सुनायौ—सा १ ८६।
ख गर्ग निरुपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत है अविनासी—सा १ ८७।
ग बाण ने भी हर्ष के जन्म पर 'ग्रह संहिताओं' में पारंगत 'तारक नामक गणक द्वारा हर्ष का भविष्य बताने का उल्लेख किया है—हर्ष सां अ पृ ६५।
११ नन्द घर आये गर्ग बिधि जानी।
राम-कृस्न के 'नामकरन हित कुल में सनमानी—परमा ५६।
१२ तनक 'स्वस्तिवाचन' करि लीजै तरिकन कछु नाँव धरि दीजै।
गर्गहिं अरग गय लै नंद 'अगिनि होम करि' मंदहिं मंद।
—नंद, दशम पृ २२१।
१३ गजमोतिनि के 'चौक पुराये नामकरन बिधि नीकी'—परमा ५६।
१४ गोकुल आय कुलाहल पाई
ना जानों यह अस्ट महासिधि कहो कहाँ ते आई।
बोले 'नामकरन के कारन' गर्ग बिमल जस गाई।
'परमानंद' सन्तन हित कारन गोकुल आये माई—परमा २४।
१५ प्रथम रोहिनी-सुत के नाम धरन लाग्यौ' हित सब गुन धाम।

ब्रजवासियों को कृष्ण के गुणों के बारे में सुनकर हार्दिक प्रसन्नता होती है।

क *निष्क्रमण*—यह संस्कार बालक के चार महीने का हो जाने पर किया जाता है। बालक को खुली हवा में भूमि पर बैठाया जाता है। केवल परमानंददास ने श्रीकृष्ण को गोद से उतार कर भूमि पर बैठाने का वर्णन किया है[१६]। अन्य कवियों ने इस संस्कार को विशेष महत्त्व नहीं दिया है।

ख *अन्नप्राशन*—जब शिशु की आयु छः महीने की हो जाती है तब उसको पहली बार अन्न चखाने के लिए 'अन्नप्राशन संस्कार' सम्पन्न होता है। श्रीकृष्ण के 'कुछ दिन कम षण्मास' के होने की शुभ सूचना पाकर नंद जी उनका 'अन्नप्राशन' करने की सोचते हैं[१७]। ब्राह्मण को बुलाकर संस्कार का मुहूर्त दिखाया जाता है। दिन निश्चित हो जाने पर सखियों को निमंत्रित किया जाता है। ब्रज की वधुएँ मंगल-गीत गाती हैं[१८]। विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं और अपनी पाँति की ब्रजवधुओं को ज्योनार दी जाती है। माता यशोदा अत्यंत उल्लासपूर्वक बालक कृष्ण को उबटन मलकर नहलाती हैं, बदन में झगुली, सिर पर चौतनी और हाथ पैरों में 'चूड़ा' पहनाती हैं। नंद बाबा अपनी मंडली के बीच कृष्ण को गोद में लेकर बैठते हैं। सोने का थाल खीर भर कर रखा जाता है। उसमें घृत और मधु डाला गया है। वही बालक को चखाया जाता है। यहीं रस से उस दिन श्रीकृष्ण का मुख जुठराया जाता है[१९]। इसके बाद ज्योनार होती है। परमानंददास की यशोदा भी

याको एक नाम संकर्षन मन-हर्षन सबको मन कर्षन।
कहुरयो राम' परम अभिराम अति बल तें कहिहैं 'बलराम।
अब सुनि अपन सुत के नाम अद्भुत अद्भुत गुन के धाम।
इक श्रीकृष्ण' नाम अब है है, ससि सम सुधा सबन पर स्रवै है।
कबहूँ पूर्व जन्म सुत तेरो पूत भयो है वसुदेव केरो।
तातें 'वासुदेव इक नाम पूरन करिहैं सबके काम।
याके अपर जु नाम अगनित गनत गनत कोउ लहै न अंत—नंद दास पृ २२९

१६ कर तें उतारि भूमि धर्‌यो'—परमा ९१।

१७ कान्ह कुँवर की करहु पासनी कछु दिन घटि षट मास गये'।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय हरि 'अन्नप्राशन जोग भये—सा १०-८८।

१८ आयो दिन सुनि महरि जसोदा 'सखिनि बोलि शुभ गान करयो।
जुवति महरि कों गारी गावति, और महर को नाम लिए—सा १०-८८।

१९ 'षटरस के परकार जहाँ लगि लै लै अधर छुवावत—सा १०-८८।

श्रीकृष्ण का अन्नप्राशन-संस्कार बड़े उत्साह से करती हैं कि वह शीघ्र ही छह मास का हो जाय[२] । तब वे देव, कुल-देवी और ब्राह्मण की पूजा करती, दान देती, मागध-भाट आदि का यथोचित सम्मान करतीं, कुटुम्ब के लोगों को खाना खिलाती और वस्त्राभूषण पहिराती हैं[२१] ।

ङ *वर्षगाँठ*—शिशु जब एक वर्ष का होता है तब उसकी पहली 'वर्षगाँठ' मनायी जाती है । श्रीकृष्ण भी जब साल भर के होते हैं तब उनकी पहली 'वर्षगाँठ' मनाने का वर्णन आलोच्य कवियों ने किया है । स्त्रियों का *मंगलगान* करना, आँगन को चंदन से लीपना, मोतियों से चौक पूरना, तूर बजना, विप्र द्वारा शोधी हुई शुभ घड़ी में, अक्षत-दूर्वादल गाँठ में बाँधना आदि 'वर्षगाँठ' के अवसर पर होनेवाले विभिन्न चार हैं[२२] । यशोदा बच्चे को उबटन लगाकर स्नान कराती हैं तथा चौतनी टोपी, निचोल आदि नये वस्त्र और विविध आभूषण उसे पहनाती हैं[२३] । प्रत्येक जन्म-दिन पर एक डोरे में गाँठ बाँधी जाती है और एक गाँठ आयु के एक वर्ष की प्रतीक मानी

२ परमानन्द अभिलाख जसोदा वेगि बढ़े षटमासन—परमा ५१ ।

२१ अनप्राशन दिन नन्दलाल को करत जसोदा माय ।
ब्राह्मन देव पूजि कुलदेवी' बहोत दक्षिना पाय ॥
कुटुम्ब जिमाय पटंबर दीन' भवन आपुने आय ।
'मागध भाट सूत सनमान' सब हित हरख बढ़ाय—परमा ५ ।

२२. आजु मेरे लालन की आजु बरस-गाँठि, सबै
सखिनि कौं बुलाइ मंगल गान करावौ ।
'चंदन आँगन लिपाइ मुतियनि चौकैं पुराइ'
उमँगि अंगनि आनँद सौं 'तूर बजावौ' ।
मेरे कहैं विप्रनि बुलाइ एक शुभ घरी धराइ'
बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ ।
'अच्छत-दूब-दल बँधाइ' लालन की गँठि जुराइ,
इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ—सा १०-९५ ।

२३ फूली फिरति जसोदा तन-मन 'उबटि कान्ह अन्हवाइ' अमोल ।
तनक बदन दोउ तनक-तनक कर तनक चरन 'पाछति पट झोल' ।
कान्ह गरे सोहति मनिमाला 'अंग अभूषन अँगुरिनि गोल' ।
'सिर चौतनी' डिठौना दीन्हौ आँखि आँजि 'पहिराइ निचोल—सा १०-९४ ।

जाती है। सूर ने इस प्रथा की ओर भी संकेत किया है[५४]। इस प्रथा से ही संभवत 'बरस-गाँठि' शब्द बना है[५५]। आज भी अधिकांश भारतीय परिवारों में 'वर्षगाँठ' इसी प्रकार मनायी जाती है, परंतु डोरे में गाँठ बाँधने का प्रथा कहीं-कहीं लुप्त हो गयी है।

कुंभनदास ने 'गिरिधरन लाल' की वर्षगाँठ के पुन कुशलपूर्वक आने की प्रसन्नता का वर्णन किया है[५६]। माता यशोदा पुत्र को तिलक लगाकर अक्षत लगाती हैं। सखियाँ कृष्ण को पीताम्बर और आभूषण पहना कर उनका शृंगार करती हैं[५७]। पश्चात् बड़े हर्षोल्लास के बीच वर्षगाँठोत्सव संपन्न होता है।

भ चूड़ाकर्म—इस संस्कार में जन्म के पश्चात् पहली बार सिर के सब बाल मूँड़ दिये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में गभुआरे और झँडूले बालों का उल्लेख तो है, पर चूड़ाकर्म-संस्कार का वर्णन नहीं है[५८]।

म. कर्णवेध—यह संस्कार बालक के तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है। इसमें बालक के कान छेदे जाने की प्रथा है। निपुण ज्योतिषियों को बुलाकर माता यशोदा तिथि, नक्षत्र, ग्रहो आदि का विचार कराकर मुहूर्त निकलवाती हैं[५९]। बालक के कष्ट की पूर्व आशंका म वात्सल्यमयी माता का हृदय स्वभावत ही काँप उठता

---

५४ क मनमोहन मोहन बरस गाँठि को डोरा खोलन—सा १ -६ ।
 ख प्रभु बरस गाँठि' जोरत—सा १ -९६।

५५. वर्ष-गाँठ का ही एक समानार्थक शब्द सालगिरह' है। अँग्रेजी संस्कृति म प्रभावित नागरिक परिवारों में विदेशी पद्धति मे वर्षगाँठ मनाने का ढंग भी आज प्रचलित हो गया है। उनके यहाँ कुछ घटना वर्षों की प्रतीक जलती हुई मोमबत्तियाँ बुझाना फूल और भेंट देना मंगल कामनाओं से अंकित छपे कार्ड भेजना भोज, गान, नृत्य आदि कार्य होते हैं—लेखिका।

५६ बरसगाँठि गिरिधरन लाल की बहुरि कुसल सों आई—कुंभन ६।

५७ पीतांबर आभूसन मनिमनि 'कर सिंगार बनाई।
 निरखि निरखि फूलत ललतादिक आनन्द उर न समाई—परमा १ ।

५८.क. 'गभुआरे सिर केस हैं वर घूँघरवारे —सा १ ११४।
 ख उर बघ-नहाँ कंठ कठुला 'झँडूले बार
 बेनी लटकन मसि-बुन्दा मुनि-मन-हर—सा १०-१५१।

५९. गुरु कल तिथिबल, नक्षत्र-बार' बलि सुभ घरी बिचारि लीजै।
 गनिक निपुन है धारि बैठि के मनो बिचारयो बीजै—परमा ५१।

है। माता यशोदा के हृदय में भी धुकधुकी होती है कि मेरे कान्ह को कर्णछेदन के अवसर पर कष्ट न हो और वह मचल न जाय। उसका ध्यान हटाने के लिए सुहारी, पूरी और गुड़ उसे पकड़ा दिया जाता है[१०]। माता बच्चे को गोद में लेकर बैठ जाती है। हिलकर सुई लेकर मंत्र पढ़ते हैं जिससे बालक को जरा भी कष्ट न हो[११]। सींक से 'रोचन' का निशान लगाकर चतुर नाई सोने की सुई से शीघ्र ही कान छेद देता है[१२]। तब कानों में कंचन के बुर' पहनाये जाते हैं। कोमलहृदया माता की आँखों में 'कर्णवेध' देखकर आँसू आ जाते हैं, किन्तु बालक की आँखों में आँसू देखकर वह नाई को घुड़की देती है। नंद जी समस्त व्रजवासियों के साथ आँख में आँसू और मुख पर हँसी लिए यह दृश्य देखते हैं[१३]।

'कर्णवेध' के बाद कृष्ण के ऊपर से मणि, मुक्ता आदि निछावर किये जाते हैं। नंद जी अपनी जाति और कुटुंब के लोगों को पहरावनी बाँटते हैं। अन्नदान, गोदान, धन आदि दान भी इस अवसर पर दिये जाते हैं[१४]।

१० क कान्ह कुँवर को 'कनछेदन है, 'हाथ सोहारी भली गुर की—सा १ १८।
ख आयो 'कर्णवेध दिन नीको।
गुर की भेली हाथ दिवाई किवो रोचन को टीको।
गुर सखि नखम बार' कन पहुँचे दिनमनि अति सुखदाई।
सोने कंठ भूखन पहराय हाथ सुहारी पाई'
—कृष्ण कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ १८५।
११ सूधी पड़ि दीनी हिलकर देवा।
जाते पीर न होय करन कौं हम करिहैं सब सेवा—परमा ५४।
१२ जसुमति माई गोद ले बैठी लाल देखि मन हरखे।
सूधी माता के गोद बैठि के मूँदि नयन मन करखे॥
कनिक सूचि लै श्रवन को बीनी नयन बार न लागी—परमा ५३।
१३ रोचन भरि लै देत सींक सौं श्रवन-निकट अति ही आतुर की।
कंचन के द्वै बुर मँगाए लिए कहौं कहा छेदनि आतुर की।
लोचन भरि भरि दोऊ माता कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी दियो 'तुरत नौआ कौं घुरकी'।
हँसत नन्द गोपी सब बिहँसी झमकि चली सब भीतर दुरकी।
सूरत नँद करत बधाई अति आनंद बाल ब्रजपुर की—सा १०-१८
१४ कुँवर को कर्णबेध करि लीनो।

म उपनयन (यज्ञोपवीत)—बालक के सात वर्ष का होने पर उसका उपनयन या यज्ञोपवीत-संस्कार करके उसे विद्याभ्यास के लिए गुरु के पास भेजने की प्रथा भी उच्च वर्गीय समाज में रही है। श्रीकृष्ण का यह संस्कार उचित अवसर पर नहीं हो पाया था। परमानंददास ने एक पद में श्रीकृष्ण का उपनयन संस्कार गोकुल में न हो सकने का उल्लेख किया है[३५]। इसलिए जब कृष्ण, वसुदेव और देवकी के पास मथुरा गये तब उनका 'यज्ञोपवीत-संस्कार' कराया गया। इस संस्कार के द्वारा लौकिक और वैदिक कार्यों का अनुष्ठान किया जाता है। इसी से वसुदेव जी कुल-व्यवहार का विचार करके हरि-हलधर का जनेऊ करते हैं। उस समय गर्ग जी दोनों भाइयों को गायत्री मंत्र सुनाते हैं। वसुदेव जी विविध अलंकारों से अलंकृत करके अनेक गायें ब्राह्मणों को दान में देते हैं। स्त्रियाँ उल्लासपूर्वक सामूहिक रूप से मंगलगान गाती हैं[३६]। विभिन्न वाद्य बजाये जाते हैं और हर्षातिरेक में माता देवकी विभिन्न मूल्यवान वस्तुएँ न्यौछावर करती हैं[३७]। राजा के घर जनेऊ होने के उपलक्ष में देश-देश से 'टीका' भी आता है[३८]।

'उपनयन' या 'यज्ञोपवीत'-संस्कार के अवसर पर भिक्षा माँगने की प्रथा भी कहीं-कहीं देखने में आती है। इस संस्कार के पश्चात् विद्याध्ययन का आरंभ

आदि कुटुम्ब पाटंबर पहिरी जिन जो माँगयो सो दीनों।
'बम्र दान गोदान' करि दिय धन जो जाको अधिकारी।
—कृष्ण, कीर्तन-संग्रह भाग १, पृ १४५।

३५. 'पांच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नाँगो।
परमानन्ददास को ठाकुर काँधे परयो न तागो—परमा ६१।
विशेष—इस वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि साधारणतया बालकों का जनेऊ ५ वर्ष की अवस्था तक हो जाता था—लेखिका।

३६. हरि हलधर कौं दियौ जनेऊ करि षट्रस ज्योनार।
जाके स्वाँस-उस्वाँस लेत में प्रगट भए स्रुति चार।
तिन गायत्री सुनी गर्ग सों प्रभु गति अगम अपार।
बिधि सौं धेनु दई बहु बिप्रनि सहित सर्वऽलंकार।
अनुकुल भयौ परम कौतूहल अरु तहँ गावति नार—सा १६१।

३७. हरि कर पाटंबर न्योछावरि करत रतन परनारी।
'बाजत ढोल निसान संख' रव होत कुलाहल भारी—सा ३०६४।

३८. लोक लोक की टीको आयो मुदित सकल नर-नारी—१ ६४।

होना माना गया है जिसके लिए बालक गुरुकुलों में जाते थे जहाँ गुरु की आज्ञा से उन्हें भिक्षा माँगने भी जाना होता था। संभवतः इस संस्कार के अवसर पर उसी परंपरा की ओर संकेत 'ब्रह्मचारी' या 'बटु' (जिसका यज्ञोपवीत हो रहा हो) द्वारा भिक्षा माँगने की प्रथा में है। अष्टछापी कवियों ने इस परंपरा के संबंध में कुछ नहीं लिखा है, केवल 'सारावली' में यज्ञोपवीत के अवसर पर 'भिक्षा' माँगने की रीति का वर्णन किया गया है जिसमें सब देवता बालक को भिक्षा देते हैं[३९]।

ट *वेदारंभ*—'उपनयन' संस्कार के पश्चात् बालक की शिक्षा आरंभ होती है। प्रारंभ में शिक्षा में वेदों का प्रमुख स्थान था, संभवतः इसी से विद्यारंभ को 'वेदारंभ'-संस्कार कहा जाता है। बहुधा यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन सम्पन्न होता है। मथुरा में कृष्ण के यज्ञोपवीत के बाद ही 'वेदारंभ' संस्कार करके उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए अवन्तीपुरी भेजे जाने का उल्लेख 'सारावली' में हुआ है, अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं[४०]।

ठ *विवाह*—मानव-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार 'विवाह' है जिसका भारतीय धर्मशास्त्रों में बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है। मनुस्मृति में आठ प्रकार के—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच—विवाह माने गये हैं[४१]। भारतीय संस्कृति में विवाह को सामान्य समझौता नहीं, ऐसा महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है जिसमें युवक-युवती का जन्म जन्मांतर का संबंध भाग्य द्वारा निश्चित किया हुआ समझा जाता है। विवाह के लिए 'पाणिग्रहण'

३९ यज्ञोपवीत निमेख' किमो विधि सब सुर भिक्षा दीन्ही—सारा ३३२।
४० गर्ग बुलाय बद विधि कीन्ही शुभ उपवीत कराणी।
विद्या पढ़न काज गुरु एक दीउ पुरी पठाने पठायो—सारा ५३८।
४१ वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या की पूजा करके श्रुति-शीलवान वर को सौंपना 'ब्राह्म' वस्त्राभूषण से सज्जित कन्या ऋत्विक को सौंपना 'दैव' एक या दो गो मिथुन लेकर यथा विधि कन्या देना 'आर्ष' 'दोनों साथ-साथ धर्माचरण करो' कहकर कन्या देना 'प्राजापत्य' धनादि देकर कन्या प्राप्त करना 'आसुर' वर-कन्या का इच्छानुसार संयोग 'गांधर्व' बलपूर्वक कन्या हरण 'राक्षस' और सुप्त अथवा प्रमत्त कन्या से एकांत मैथुन के उपरान्त किया गया संबंध 'पैशाच' विवाह कहलाता है—मनुस्मृति ३ २७-३४।

और 'कन्यादान' शब्द भी प्रचलित रहे हैं तथा इस्लामधर्मावलंबियों के भारत में आने के बाद 'शादी' शब्द भी उसी अर्थ में प्रचलित हो गया, यद्यपि अष्टछाप-काव्य में उसका प्रयोग नहीं हुआ है। विधिवत् विवाह के अवसर पर किये जानेवाले मंगल कार्यों, कुलाचारों और शास्त्रविहित कृत्यों का भी विशद वर्णन भारतीय धर्माचार्यों ने किया है और उनकी संख्या चालीस से भी अधिक बतायी है[४२]।

अष्टछापी कवियों में सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास और नंददास ने विवाह-संस्कार का वर्णन जितने विस्तार से किया है, अन्य कवियों ने नहीं। नंददास ने रूपमंजरी, देवकी राधा और रुक्मिणी के विवाहों का; कुंभनदास ने केवल राधा-कृष्ण की सगाई का और परमानंददास ने वाग्दान, सगाई, टीका आदि वैवाहिक कुलाचारों के साथ-साथ राधा-कृष्ण-विवाह का वर्णन किया है। सूरदास विवाह-संस्कार के विशद वर्णन में अन्य अष्टछापी कवियों से बहुत आगे हैं। उन्होंने 'सूरसागर' के चतुर्थ स्कंध में शिव-पार्वती के, नवम में हलधर रेवती और राम-सीता के, दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में वसुदेव-देवकी और राधा-कृष्ण

४२. संस्कार-मयूख के 'वीर मित्रोदय संस्कार कांड' में स्मृति तथा विवाह पद्धतियों पर आधारित वैवाहिक कृत्यों की विस्तृत सूची इस प्रकार है—वर-वधू गुण परीक्षा वर प्रेषण (कन्या को देखने के लिए वर को भेजना) वाग्दान (विवाह की स्वीकृति), मंडपकरण पुण्याहवाचन तथा नांदीश्राद्ध वधू गृहागमन (कन्या पक्ष के घर वर पक्ष का आना) मधुपर्क विष्टरासन (वर को बैठने के लिए आसन देना), गौरी-हर पूजा स्नापन परिधापन तथा संनहन समंजन (वर वधू को अंगराग लगाना) प्रतिसरबंध (कन्या के हाथ में कवच बाँधना) वधू-वरनिष्क्रमण परस्पर समीक्षण, कन्यादान अक्षतारोपण कंकणबंधन (वधू की कलाई में कंकण बाँधना) आर्द्राक्षतारोपण तिलककरण अष्ट कलिदान मंगल-सूत्र-बंधन, गणपति-पूजा वधू वरयोरुत्तरीयप्रांत-बंधन (वधू और वर की चादरों का छोर बाँधना), लक्ष्मी-पार्वती शची-पूजा वापनदान अग्निस्थापन तथा होम पाणिग्रहण लाजा-होम अग्नि परिणयन अश्मारोहण गाथागान सप्तपदी मूर्धाभिषेक सूर्योदीक्षण हृदयस्पर्श सिंदूरदान (सिंदूर लगाना—सुमंगली) प्रेक्षकानुमंत्रण दक्षिणादान गृह प्रवेश गृहप्रवेशनीय होम ध्रुवारुंधती-दर्शन आग्नेय स्थालीपाक त्रिरात्रव्रत चतुर्थीकर्म देवकोत्थापन तथा मंडपोद्वासन—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (संपा डा राजबली पाण्डेय), खंड १ भ ५ पृ ७१२।

के, एवं दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में रुक्मिणी जांबवती, सत्यभामा, पंचपटरानी—कालिंदी मित्रविंदा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा—के साथ कृष्ण के विवाह के, तथा प्रद्युम्न,[४३] अनिरुद्ध उषा, सांब-लक्ष्मणा एवं अर्जुन-सुभद्रा के विवाहों का उल्लेख किया है। इन विवाहों में सीता के स्वयंवर में धनुष तोड़ने की[४४] और सत्या के विवाह में सात बैल एक साथ नाथने की[४५] प्रतिज्ञा पूरी करने पर विवाह हुआ है। रुक्मिणी का पत्र पाकर देवी-मंदिर से बाहर आने पर उसका हरण करके[४६] और लक्ष्मणा का स्वयंवर से हरण करके[४७] श्रीकृष्ण ने उनसे राक्षस विवाह[४८] किया है। दुर्योधन की पुत्री का सांब ने[४९] और श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का अर्जुन ने भी हरण ही किया है[५०]। शेष विवाहों के सामान्य रीति से होने का वर्णन है जिनमें पिताओं ने अपनी कन्याएँ योग्य पात्रों को इच्छा अनिच्छा से सौंपी हैं।

विवाह-संबंध में सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संकेत सभी अष्टछापी कवियों ने किया है और वह यह कि समस्त विवाहों में पुत्री के विवाह-योग्य अवस्था की होने पर ही उसके इस महत्वपूर्ण संस्कार का प्रसंग उठाया गया है। रूपमंजरी,[५१]

४३ प्रद्युम्न की पत्नी का नाम सूरसागर में नहीं है—लेखिका।

४४ यह अति दुसह पिनाक पिता-प्रन राघव-बयस किशोर।
इनपै दीरघ धनुष चढ़ै क्या सखि यह संसय मोर—सा ९-२१।

४५ हरि परननि सत्या चित दीन्हौ ताकै पिता परन यह कीन्हौ'।
सात बैल ए नाथै जोइ सत्या ब्याह तासु सँग होइ'—सा ४१९२।

४६ रुक्मिनि देवी मंदिर आई।
× × ×
हरि अंतर आरोपति आप, 'रुक्मिनि रथ बैठाई'—सा ४१८१।

४७ बहुरि लक्ष्मना सुमिरन कीन्हौ ताहि 'स्वयंबर मैं हरि लीन्हौ'—सा ४१९३।

४८ श्रीमद्भागवत म रुक्मिणी के विवाह को 'राक्षस विवाह' ही कहा गया है—'और बलपूर्वक राक्षसविधि से वीरता का मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिए'।
—दशम स्कंध अध्याय ५२, पृ ४६।

४९ स्याम-सुत सांब गयौ हस्तिनापुर तुरत लछमना तहाँ स्वयंबर रचायौ।
देखतै सबनि कै 'ताहि बैठारि रथ आपन देस कौं पलटि धायौ'—सा ४२०१।

५० एक दिन सो हरि मंदिर गई। तहाँ भेंट पारथ सौं भई।
× × × ×
'पारथ लै ता रथहि परायौ' रथ के तुरगनि धरि सहायौ—सा ४१ १।

५१ 'ब्याहन जोग जानि' पितु-माता कीनौ मंत्र बोलि सब ग्याता—नंद रूप , पृ ५।

पावती,[५२] देवकी[५३] और रेवती[५४] के प्रसंग में 'वय-प्राप्ति' का स्पष्ट उल्लेख है। अन्य विवाहों में स्वयंवर आदि के वर्णन से भी स्पष्ट होता है कि बाल-विवाह की चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है[५५]।

अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-संस्कार की रीतियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वर-प्रेषण, वाग्दान, मंडपकरण, वधू-गृहागमन, मधुपर्क, समंजन, पाणिग्रहण, अग्नि-प्रदक्षिणा, गृह प्रवेश आदि रीतियाँ आती हैं जिनको 'शास्त्रविहित कृत्य' कहा जा सकता है। द्वितीय वर्ग में वैवाहिक निमंत्रण, हल्दी-तेल चढ़ना, वर की सज्जा कंकण-पूजन, देवी-पूजन जुआ खेलना कंकण-मोचन गाली गाना भूर या न्यौछावर बाँटना आदि बातें आती हैं जिनको 'कुलाचार' के अंतर्गत समझना चाहिए। सूरदास के 'विवाह-ब्यौहार' और 'कुल-ब्यौहार' प्रयोगों में संकेत शास्त्रीय विधि' और 'कुलाचारों' से ही जान पड़ता है[५६]। अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित विवाह-रीति को स्पष्ट रूप से समझने के लिए शास्त्रीय कृत्यों और कुलाचारों को सम्मिलित करके विवाह-संस्कार का क्रमबद्ध विवरण देने का प्रयास प्रस्तुत प्रबंध में किया गया है[५७]।

क. वर-प्रेषण—इसमें कन्या को देखने के लिए वर को भेजा जाता है। कुंभनदास ने 'स्याम-सगाई' में इसका वर्णन किया है। वृषभानु जी नंद, यशोदा आदि के साथ कृष्ण को बरसाने में बुलाते और राधा की सगाई करते हैं[५८]।

५२ पारवती बय-प्रापत भइ—सा ७४।
५३. 'ब्याहन जोग जानि सुधि मन, सौं देवक बसुदेवहि दई—नन्द दशम पृ २१।
५४ मम पुत्री 'बयप्रापत आहि। आज्ञा होइ, देऊँ तिहि ब्याहि—सा ९४।
५५. श्री एस सेनगुप्त ने 'मेडिवल इंडिया' में अकबर द्वारा बाल विवाह रोकने की बात लिखी है—पृ २५२।
५६ क और बहुत बाम्हन बीने उन करि विवाह-ब्यौहार—सा ४१६।
ख 'कुल-ब्यौहार' सकल कराइयौ—सा ४१८८।
५७ विवाह की शास्त्रीय विधि सभी भारतीय हिंदुओं में प्राय: समान होती है परंतु कुलाचारों में सर्वथा अंतर रहता है और एक कुल दूसरे के कुलाचार कभी-कभी अपना भी लेता है जिसका एक प्रमाण है आधुनिक विवाहों में 'जयमाल' का प्रचलन सभी जातियों में हो जाना—लेखिका।
५८. नन्दीश्वर तें नन्द जसोदा गोपनि न्यौति बुलाए'।

× × ×

स *सगाई या मँगनी और वाग्दान*—आज भी विवाह का बीजारोपण 'सगाई' या मँगनी' से होता है जिसको 'गोद भरना' भी कहा जाता है। यह विवाह पक्का होने का छोटा-सा उत्सव है[८]। विवाह के पहले का दूसरा उत्सव 'सगुन' के नाम से प्रसिद्ध है। लड़की के हाथ पर रखकर लग्नपत्रिका तथा भेंट की सामग्री लड़के के घर भेजी जाती है और उसके हाथ पर भी रखी जाती है। यह निश्चित विधि पर कन्या के घर आने का निमंत्रण है। बहुत से परिवारों में सगाई और वाग्दान-संस्कार अलग अलग किया जाता है।

च *सगाई*—अष्टछाप-काव्य में बहुधा ब्राह्मण ही सगाई का प्रस्ताव लेकर आनेवाला बताया गया है[९]। नंददास ने इस प्रसंग में एक बहुत रोचक संकेत किया है कि यदि सगाई करानेवाला ब्राह्मण धन का लोभी हो तो वह कुपात्र के साथ भी कन्या का विवाह करा देने में संकोच नहीं करता। इसीलिए रूपमंजरी के माता-पिता सगाई करानेवाले ब्राह्मण से प्रार्थना करते हैं कि धन का लोभ न करके कन्या के योग्य सुपात्र ही की खोज कीजिए,[१] अस्तु। परंतु 'श्याम-सगाई' में ब्रिज-नारी सगाई का संदेश लेकर आती है और यशोदा उससे कहती है—वृषभानु महर से जाकर कहना कि अपने पुत्र के लिए मैं तुम्हारी पुत्री गोद पसार कर माँगती हूँ[११]। सगाई का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर कन्या को वर की माता की गोद में

हमारी लली, तुम्हारे लालन यह क्या आए अनूप—कुंभन ? ।

५८ बाण ने राज्यश्री का विवाह पक्का होने की जो विधि दी है उससे तत्कालीन वाग्दत्ता बनाने की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। प्रभाकर वर्द्धन ने शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मा के दूत के हाथ पर राजकुल के समक्ष 'कन्या-जल' गिराया।
—डा वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्ष सां म पृ ६६।

९ कहुँ मिलि विप्र महरि सब हिनि सों बालक करन सगाई—सारा १०६।

१९ ब्याहन जोग जानि पितु-माता कीनों मंत्र बैठि सब ग्याता।
× × × ×
करि विचारि निज विप्र बुलायौ बार बार सब विधि समझायौ।
अहो विप्र ! धन-लोभ न कीजै या लायक नायक कौं दीजै।
लोभी द्विज कुबुद्धि धन लीनौ कूर कुरूप कुँवर कौं दीनौ—नंद , रूप पृ ५।

६२ अनुमति महरबीज 'एक ब्रिजनारि बुलाई ।
× × ×

बैठा दिया जाता है और वर को कन्या की माता की गोद में[९३]। सगाई होने का सुसमाचार सुनकर यशोदा अपना घर सजाती और 'मोतियों से चौक पूरती' हैं। नंद जी के घर बधाई बजती है[९४]। ब्रज की स्त्रियाँ अवसरानुकूल गीत गाती और आनन्दोत्सव मनाती हैं[९५]।

ख *वाग्दान*—वाग्दान में कन्या-पक्ष से वर के घर 'टीका' आता है और विवाह पूर्ण रूप से निश्चित समझा जाता है। 'टीका' आने की सूचना पाकर माता पुत्र को सजाती-सँवारती है। ब्राह्मण वर को तिलक लगाता है। विविध मंगल-वाद्य बजते हैं। कुँवर के ऊपर से वस्त्राभूषण आदि उतार कर न्यौछावर किये जाते हैं[९६]। सर्वत्र प्रसन्नता छा जाती है तथा यह शुभ समाचार फैल जाता है।

ग *निमंत्रण*—विवाह के अवसर पर परिवार और समाज के लोगों को निमंत्रित किया जाता है। किसी विवाह का विधिवत् विस्तृत वर्णन न होने के कारण यद्यपि सजातियों और मित्रों को 'निमंत्रण' भेजने का स्पष्ट उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है, तथापि बरातियों की संख्या कभी-कभी 'छप्पन कोटि' तक बताने से स्पष्ट

---

९३ कह्यौ वृषभानु सौं करियौ बहु मनुहारि।
'यह कन्या मैं स्याम कौ माँगौं गोद पसारि'—नन्द स्याम पृ ११५।
 रतनी सुनत कीरति 'कुँवरि कौं जसुमति गोद बैठाई'।
जसुमति लालन कीर्ति गोद दै' कुँवरि मुदित खिलाई—कुंभन १।
९४ सुनत सगाई स्याम ग्वाल सब अँगनि फूले
× × × ×
जसुमति रानी घर सज्यौ मोतिनि चौक पुराइ।
बजत बधाई नन्द के 'नन्ददास' बलि जाइ।
कि ओरी सोहनी।
—नन्द स्याम, पृ ११२।
९५ कीरति बोलि सबै 'ब्रज नारी ब्याह के गीत गवाए'।
सुनि सबहिनि मन हरष भयौ अति भए मनोरथ मन-भाए—कुंभन १।
९६ आज लालन की होत सगाई।
× × ×
'वृषभान गोप टीका दै पठयौ' सुन्दर अति कन्हाई।
× × ×
विप्र प्रवीन तिलक कर मस्तक अच्छत चोप लियो अपनाई—परमा १६।

है कि विवाह का निमंत्रण पाकर ही सब एकत्र हुए होंगे[६७] । श्रीकृष्ण के गंधर्व विवाह में गोपियाँ मुरली द्वारा निमंत्रित की जाती हैं[६८] ।

५ *मंडपकरण*—विवाह के लिए मंडप[६९] तैयार किया जाता है। इसे 'मँडवा' भी कहते हैं। यह अधिकतर कदली खम्भों से बनाया जाता है जिसे अनेक प्रकार के फूलों से अलंकृत करते हैं[७०] । मंडप के भीतर 'वेदी' बनाये जाने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है[७१] । यह मंडप कन्या के गृह में बनता है। कृष्ण-राधा के विवाह में मंडप बनाया जाता है जिसके नीचे कृष्ण बैठते हैं, [७२] किंतु रुक्मिणी-हरण के कारण 'सारावली' में द्वारका में 'मँडवा' छाये जाने का उल्लेख मिलता है[७३] ।

मंडप और 'वेदी' या 'चौरी' का वैवाहिक कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त वैवाहिक कार्य होम, कन्या-दान आदि इसी के नीचे सम्पन्न होते हैं। इसी कारण शुभ मुहूर्त में वेदी या चौरी रची जाती है[७४] । कन्या को उबटनादि लगाकर स्नान कराने के पश्चात् विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके चौरी में लाया जाता है और मुक्ताओं से चौक पूरा जाता है[७५] ।

६७ चले साजि बराति आवौ कोटि छप्पन' अति बली—सा ४१८६।
६८. गोपीजन नेवते आई। मुरली धुनि तें पठाइ बुलाई—सा १ ७२।
६९ राज्यश्री के विवाह के निमित्त वेदी के खंभे गीले ऐपन की थापा आलता के रंग में रँग लाल कपड़ों और आम एवं अशोक के पल्लवों से सजाये गये थे।
—वा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ पृ ७२।
७० 'कदली खंभ अनूप किसलमदल सुरंग सुमन लै मंडप छायनु—सा ४१८५।
७१ छाए सु फूलनि 'कुंज मंडप' पुलिननि में वेदी रची—सा १ ७९।
७२. सजनी री गावी मंगलचार।

× × ×

मंडप छायो देखि बरसाने बैठे नन्द उदार—परमा ११४।
७३ 'आयं नाम द्वारिका' नीके रच्यो माँडयो छाय —सारा ५३६।
७४ सोधि मुहूरत 'चौरी' विधि रची।

× × ×

'रची चौरी' आपु ब्रह्मा खचित खंभ लगाइ कै—सा ४१८६।
७५.क इत उबटि खोरि सिंगारि सखियनि कुँवरि चौरी आनियो'—सा १ ७९।
ख 'चौक मुक्ताहल पुरायौ' आइ हरि बैठे तहाँ।

क हल्दी-तेल चढ़ाना—विवाह के पहले दूल्हे और दुलहिन के शरीर पर हल्दी और तेल चढ़ाने की रस्म होती है जिसके पश्चात् स्नान कराया जाता है। कृष्णदास ने हल्दी चढ़ाकर और उबटन लगाकर कृष्ण के नहलाये जाने का वर्णन किया है७६। कन्या को सात सुहागिनें तेल चढ़ाती हैं। लाल रंग का 'सालू' नामक कपड़ा बाँधकर वितान बनाया जाता है जिसके बीच में पकवान रखा जाता है। कन्या को उबटन लगाकर नहलाने के बाद उसको वस्त्राभूषण पहनाये जाते हैं। तब वह सब स्त्रियों की गोद में पकवान देती है। परमानंददास ने सालू के वितान के नीचे सात सुहागिनों द्वारा वृषभानुनंदिनी के तेल चढ़ाये जाने और पश्चात् उबटन लगाकर नहलाये जाने का वर्णन किया है। तदनंतर वस्त्राभूषणों से अलंकृत राधा के हाथों से सबको पकवान खिलाया जाता है७७।

ख वर की सज्जा—विवाह के अवसर पर वर के वेश की प्रधान विशेषता 'मौर' और 'सेहरा' धारण करने में होती है। 'मौर' विवाह के समय के एक शिरोभूषण को कहते हैं जो ताड़पत्र या 'खुखड़ी' का बनाया जाता है। परमानंददास

× × ×

कुमारि सात पोडस कला 'सिंगार कर स्यार्ई' भली—सा ४१८६।

ग मनि मानिक 'मंडप रच्यौ फूलन' बंदनवार।
बारोठी दूल्हे आयो कुअमहल के द्वार।
मैं सु 'राधा उबट न्हवाय षोडस किय सिंगार—सूर, कीर्तन भाग २ पृ ६८।

७६ तेल चढ़ावैं हरद लगावैं उबट न्हवावैं सब ब्रजनारी।
कृष्नदास गिरिधरन छबीले रंग रँगीले की बलिहारी।
—कृष्ण कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ६५।

७७ बरसानैं वृषभान गोप कैं 'तेल चढ़ावत' गोरी।
नव तरुनी ले संग बाल रूप अनुपम जोरी।
सालू तान वितान बनायौ कर गहे कुँवर किसोरी।
ताके मध्य पकवान विविध धरि करि कंकन विधि कंकन जोरी।
सात सुहागिनि तेल चढ़ावैं भाग्य सुहागिनि जोरी।
राधा सु 'तब उबटि न्हवाई छबि की तरनि झकोरी।
आभूषन वसन पहिराय कुँवरि को मस्तक कर मुख रोरी।
स्यामा कर 'पकवान दिवायौ सबहूँ भरि भरि झोरी।
—परमा, 'कीर्तन-संग्रह भाग २ ब्याह के पद, पृ १०४।

अपने आराध्य के मौरधारी वेश को देखने की कामना करते हैं[७८] तो नंददास उनके 'मौरधारी' रूप का सोल्लास वर्णन करते हैं[७९]।

वैवाहिक अवसर पर नंददास ने कृष्ण के वस्त्र 'जरी' के बताये हैं, साथ साथ वे मणि-मोतियों तथा रत्नों से जटित 'सेहरा'[८१] भी पहने हुए हैं[८२]। राजकुल के लोग 'मौर' के स्थान पर 'मुकुट' धारण करते हैं। इसीसे रुक्मिणी-विवाह के अवसर पर राजा कृष्ण 'मुकुट' धारण करते हैं जिसमें रत्न, हीरे, मणि, माणिक्य आदि लगे हैं, 'मुकुट' के साथ ही माथे पर 'सेहरा' भी बँधा है[८३]। परमानंददास के कृष्ण का 'सेहरा' फूलों का न होकर मोतियों का है[८४]। 'सेहरा' बनाकर लानेवाली नाइन होती है।

वर का वाहन 'घोड़ी', 'घोड़ा' अथवा 'रथ' होता है। रुक्मिणी से विवाह करने के लिए श्रीकृष्ण 'घोड़े' पर चढ़कर आते हैं जिसकी जीन जड़ाऊ है[८५]। परमानंददास ने दूल्हे कृष्ण की नीली ऊँची घोड़ी का उल्लेख किया है[८६]।

७८. कब देखोंगी मौर धरे सिर ऊपर पनरथ वापन की—परमा ११।

७९. मौर बन्यो सिर' कानन कुंडल मरगट मुरली सुहाय।

—नन्द 'कीर्तन-संग्रह, भाग २ पृ १ ५।

८०. पहिरें जरकसी' पट आभूषन अँग अँग मन अवभास।

—नन्द 'कीर्तन-संग्रह' भाग २ पृ १ ६।

८१. वर पक्षधर्मा के सिर पर मल्लिका पुष्पों की माला तथा उसके बीच में फूलों का सेहरा' वर्णित है—वा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ पृ ८१।

८२. 'रत्नजटि को बन्यो सेहरो' उर मोतिनि की माल।

—नन्द , कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ १०८।

८३. वसुधौ-नन्दन त्रिभुवन-वंदन। मुकुट तरनि मनि कुंडल सघनन।

'मुकुट कुंडल जरित हीरा लाल' सोभा अति बनी।

'पना पिरोजा' लगे बिच बिच चहूँ दिसि लटकन्त मनी।

'सेहरा सिर' मुकुट लटकत कंठमाला राजही—सा ४१८९।

८४. मनि-मोतिनि को सेहरा सोहै बसियो मन मेरे—परमा ११५।

८५. 'तुरी ताजी' चिना ताजन चपल चपला भी हरी।

जीन जरित जराव पाखरि लागी सब मुक्ता लरी—सा ४१८९।

८६. 'अति उतंग नीली घोरी चढ़ि' और छवि मँवर दुरन की—परमा ११।

छ कंकण-बंधन—विवाह के पूर्व वर और कन्या, दोनों के हाथों में 'कंकण' या 'कँगना' बाँधा जाता है[८७]। सूरदास के अनुसार कृष्ण के हाथ में द्विजवर के द्वारा जो 'कंकण' बाँधा गया था वह मणि-मोतियों का है[८८]।

ज देवी-पूजन—विवाह के पूर्व और पश्चात् देवी-पूजन की प्रथा अनेक कुलों में पायी जाती है। सूरदास की रुक्मिणी भी विवाह के पूर्व सखियों सहित पूजन-सामग्री लेकर गौरी पूजने जाती हैं । राधा-कृष्ण के गन्धर्व-विवाह में भी 'सूरसागर' में पहले देवी-पूजन का उल्लेख मिलता है । नंददास ने 'रुक्मिनी-मंगल' में देवी-पूजन की कुल-रीति [१] का वर्णन किया है [२]।

८७ तेल चढ़ाते समय वर-वधू के हाथ में 'कंकण' बाँधने की प्रथा आज भी है। एक छोटी सी पोटली में हल्दी सुपारी और लोहे का छल्ला 'कलावे' से बाँध देते हैं। दोनों ओर की स्त्रियाँ (प्राय भाभियाँ) उसमें खूब गाँठें बाँध देती हैं जिसमें वह सरलता से खुल न सके। 'कलावा' तिरंगा—लाल, पीला और सफेद—होता है। आजकल इसी प्रकार और भी कुछ लोक कोहबर में (जिस कोठरी में कुल-देवी देवता स्थापित किये जाते हैं) सम्मिलित हैं जैसे वर-वधू का दीपक की लौ बढ़िया मिलाकर एक करना, मटकी में पुए मुट्ठी से भरकर निकालना आदि। ये सभी दो व्यक्तियों के एक भाव होने के प्रतीक हैं। हर घर में किसी न किसी रूप में यह लोकाचार सुरक्षित है—लेखिका।

८८. रतन जटित मनिमोतिनि ममागग द्विजवर पवि बाँधत हितकारी।

—कृष्ण कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ६५।

८९ रुक्मिनि देवी-मंदिर आई।

'धूप-दीप पूजन सामग्री अली संग सब ल्याई।

× × ×

कुँवरि पूजि गौरी विनती करी वर देउ जादवराई—सा ४१८१।

९ यह व्रत हिय धरि देवी पूजी'। है कछु मन अभिलाष न दूजी।

दीजै नन्द-सुवन पति मेरैं। जौ पै होउ अनुग्रह तेरैं—सा १७२।

९१ श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी अपनी पत्रिका में इस कुल-रीति की चर्चा करती हैं—'हमारे कुल का तो ऐसा नियम है कि विवाह के पहले दिन कुलदेवी का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है जिसमें विवाही जानेवाली कन्या या दुलहिन को नगर के बाहर गिरिजा देवी के मंदिर में जाना पड़ता है'—दशम स्कंध, अध्याय ५२ पृ ४१।

९२. जहाँ देवि अंबिका नगर बाहिर मठ अपन'।

है आई कुलरीति चली दुलही तिहिं पूजन—नंद रुक्मिनी पृ १५१।

ङ —*अग्नि-प्रदक्षिणा*—'अग्नि-प्रदक्षिणा' से तात्पर्य है वर द्वारा वधू के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करना। इसे ही 'भाँवर' या 'फेरे लेना' भी कहते हैं। दूलह-दुलहिनि 'भाँवर' लेते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'फेरे' शब्द के स्थान पर 'भाँवर' का ही प्रयोग अधिक हुआ है। 'गँठबंधन' के पश्चात् दूलह-दुलहिनि 'अग्नि-प्रदक्षिणा' करते या 'भाँवर लेते हैं' जिसके मूल में अपने संबंध का साक्षी अग्निदेव को बनाये जाने का भाव रहता है। सूरदास और परमानंददास ने 'भाँवर लेने' का उल्लेख कई पदों में किया है[६]।

च *कंकण-मोचन*[७]—विवाह के पूर्व वर-वधू के बाँधा गया कंकण विवाह के पश्चात् वर-वधू परस्पर खोलते हैं। इस कुलाचार का वर्णन भी अष्टछापी कवियों में सूरदास ने ही सबसे अधिक किया है। 'सूरसागर' में राम-जानकी और कृष्ण-राधा के कंकण खोलने का रोचक वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि दूलह के द्वारा कंकण-मोचन-वर्णन में उन्होंने जितनी रुचि दिखायी है, उतनी दुलहिनी द्वारा 'मोचन'-वर्णन में नहीं। श्रीराम जब सीता का कंगन खोलने में सफल नहीं होते तब सखियाँ हास-परिहास करने में भी नहीं चूकतीं और सहायता के लिए माता कौशल्या को बुलाने की सलाह देती हैं[८]। इसी प्रकार राधा का कंकण न खोल

ख प्रीति-ग्रंथि हिये परी—सा १ ७२।

६ क. ता परि पानिग्रहन विधि कीन्ही। तब मंडप भमि भाँवरि दीन्ही—सा १ ७२।

ख विविध विधि सब कीनी। मंडप करिके भाँवर दीनी।

—सूर कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ६७।

ग भाँवर लेत' प्रिया और प्रीतम तन मन दीजे वार—परमा ३१४।

७ ब्याह के 'कँगने' के लिए सूत की लच्छियों के रँगने का चाचा ने उल्लेख किया है।

—पृ ८१।

विवाह के पहले गृहधर्मों को स्त्रियों के कौतुक-गृह में ले जाने का उल्लेख किया गया है। यहाँ लोकाचार तथा हँसोड़ स्त्रियों के परिहास की चर्चा भी है। बाण ने 'कोहबर' का उल्लेख विवाह के पहले वर्णन किया है। पंजाब में यही प्रथा है तथा कुरुक्षेत्र में भी प्रचलित होगी। दिल्ली व मेरठ में उल्टा होता है जहाँ स्त्रियों के देवताओं की थापना वाले पूजाचार विवाह-कर्म के बाद होते हैं।

—वा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ, पृ १७२।

८ 'कर कँपे कंकन नहिं छूटे'।

राम सिया-कर परसि मगन भये कौतुक निरखि सखी सुख लूटें।

पाने पर उसकी सखियाँ वर से कहती हैं—हे कृष्ण ! यह गिरि उठाने का काम नहीं है, यह तो कंकण खोलना है । इसी प्रसंग में 'कंकनधार' कराती हुई सखियाँ कहती हैं—यदि कंगन न खोल सको तो सहायता के लिए माता यशोदा को बुला लो अथवा राधा के पाँव छुओ° ।

श्रीकृष्ण जब अपने प्रयत्न में सफल हो जाते हैं और राधा का कंकण खोल देते हैं तब सखियाँ प्रसन्नता से किलक उठती हैं और सुकुमारी राधा से दूलह का कंकण खोलने को कहती हैं । राधा के असफल होने पर, दोनों की प्रीति देखकर वे सलाह देती हैं—बाबा वृषभानु को बुलाकर सहायता ले लो°° । इस प्रकार हास-परिहास के बीच यह कुआधार सम्पन्न होता है ।

त जुआ खेलना—विवाह के बाद वधू के यहाँ ही वर-वधू को जुआ

गावत नारि गारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै' ।
तब कर छोरि छुटे 'रघुपति जू जब कौसल्या माता आवै'—सा ९ २५ ।

६. गावे जु मानिनी मिलि के मंगल करत कंकन छोरियौ ।
नहीं 'होम यह गिरि उचकैबौ' लाला हँस मुख मोरियौ ।
'छोरयौ न टूट डोरना यह प्रीति-रीति ग्रंथी कही ।
—सूर कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ९७ ।

१ प्रथम ब्याह विधि होइ 'रह्यौ हो कंकनधार' विचारि ।
रचि रचि पचि पचि गूँथि बनायौ नवल निपुन ब्रजनारि ॥
बड़े हुबौ तौ छोरि लेहु जौ सकल घोष के राइ ।
'कै कर जोरि करौ बिनती कै छुवौ राधिका पाइ' ।
'यह न होइ गिरि कौ धरिबौ हो', सुनहु कुँवर ब्रजनाथ ।
आपुन कौं तुम बड़े कहावत काँपन लागे हाथ ।
बहुरि सिमिटि ब्रजसुंदरि सब मिलि दीन्ही गाँठि छुराइ ।
छोरहु बगि कि बालहु अपनी, 'जसुमति माइ बुलाइ'—सा १ ७१ ।

११ सहज सिथिल पल्लव तें हरि जू लीन्हौ छोरि सँवारि ।
किलकि उठीं तब सखी स्याम की 'तुम छोरौ सुकुमारि' ॥
पचिहारी कैसेंहु नहिं छूटत बँधी प्रेम की डोरि ।
देखि सखी यह रीति दुहुनि की मुदित हँसीं मुख मोरि ॥
अब जिनि करहु सहाइ लखौरी छाँडहु सकल सयान ।
दुलहिनि छोरि दूलह कौ कंकन बोलि बबा वृषभान'—सा १ ७१ ।

म. वर-गृहागमन—विवाह के हेतु वर पक्ष वाले बरात लेकर कन्या-पक्ष वालों के घर आते हैं। अष्टछाप-काव्य में राम जानकी, और कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह-प्रसंग में बरात का वर्णन हुआ है। 'बरात' में सम्मिलित होनेवाले लोग 'बराती' (सं० वर-यात्रिक) कहलाते हैं[९३]। महाराज दशरथ बरात लेकर जनकपुर जाते हैं जहाँ मोतियों से चौक पूरा जाता है। ब्राह्मण वेद-मंत्र उच्चारण करते हैं और युवतियाँ मंगलगान करती हैं[९४]। इसी प्रकार उग्रसेन, वसुदेव आदि आनंदपूर्वक 'बरात' सजाकर रुक्मिणी का विवाह करने जाते हैं, भाट विरुदावली गाते हैं तथा अनेक वाद्य बजते हैं[९५]।

वर और कन्या के पिता तथा अन्य गुरुजन 'सजन-समधी' कहलाते हैं। विवाह के समय 'समधी' परस्पर पान बदलते हैं जिसका उल्लेख कृष्णदास के एक पद में हुआ है[९६]। स्वयंवर के अवसर पर 'बरात' बुलाने के लिए विप्र को भेजने का उल्लेख भी कहीं-कहीं मिलता है। 'सारावली' के राम-विवाह-वर्णन में जनकराज ने महाराज दशरथ को बुलाने विप्रदेव को ही भेजा है[९७]।

प. मधुपर्क—मधु, शर्करा घृतादि से निर्मित मधुपर्क से बरात के आगमन पर उसका स्वागत किया जाता है[९८]। पूजन-सामग्री में भी मधुपर्क का स्थान रहा

९३.क मनमथ सैनिक 'भए बराती'—सा १ ७२।
ख ये सब सखा 'बरात चलेंगे' होंहुँ चलौंगी भोरी।
जन परमानंद पान खवावै बीरा राखे भरि कमोरी।
—परमा, कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ १४।

९४ महाराज दशरथ तहँ आए।
बैठे आइ जनक मंदिर महँ मोतिनि चौक पुराए।
'विप्र लगे पुनि-बेद उचारन', 'युवतिनि' मंगल गाए—सा ९.२४।

९५. 'चले साजि बरात चारों कोटि छप्पन अति भली'।
उग्रसेन वसुदेव हलधर करत मन मन अति रली।
संख भेरि निसान बाजे बजे विविध सुहावने।
'भाट बोलैं बिरद' बाल बचन कहैं मनभावने—सा ४१८८।

९६ बीरी बदल 'समधी दोऊ हरखे' बरखे रंग अपार।
—कृष्ण, कीर्तन-संग्रह भाग २, पृ १८५।

९७ जनकराज तब विप्र पठाये वेगि बरात' बुलाई—सा २९९।

९८ श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी-विवाह के पूर्व ही कृष्ण के आगमन पर उनका स्वागत

है[११]। 'सूरसागर' में राधा-कृष्ण के गंधर्व-विवाह प्रसंग में 'मधुपर्क' का स्पष्ट उल्लेख हुआ है[१]।

ग विवाह—वेद विधि के अनुसार पंडित मंत्रोच्चारण करके विवाह सम्पन्न कराते हैं। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह के वेद विधि से सम्पन्न किये जाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। इसी प्रकार राम-जानकी-विवाह के भी वेद-शास्त्र विधि से किये जाने की बात 'सारावली' में कही गयी है जिसमें होम-हवन के साथ द्विज गणपति, सूर्य शक्र और महेश की पूजा का वर्णन है[२]।

ड पाणिग्रहण—वेद-ध्वनि और मंत्रोच्चारण के बाद 'पाणिग्रहण' होता है जिसमें वर वधू का हाथ पकड़ कर आजन्म साथ देने का वचन देता है। मीरा, राधा आदि के विवाह में इसका उल्लेख हुआ है[३]। 'पाणिग्रहण' को व्रजभाषा में 'हथलेवा' कहते हैं जिसका प्रयोग नंददास ने राधा-विवाह-प्रसंग में किया है[४]।

ढ गठबंधन—'पाणिग्रहण' के साथ ही वर के दुपट्टे या पीतांबर से वधू की साड़ी या चादर का छोर बाँधकर 'गँठबंधन' किया जाता है। अष्टछाप-काव्य में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है परंतु 'प्रीति-ग्रंथ के हिय या जिय' में पड़ने का इसी प्रसंग में उल्लेख निश्चय ही 'गँठबंधन' की ओर संकेत करता है[५]।

इस प्रकार वर्णित है—'तब तुरही भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजा की सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की और 'मधुपर्क' निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की—श्रीमद्भागवत भाग २ पृ ४६४।

११ पूजन के सोलह अंगों में 'मधुपर्क' भी है—लेखिका।

१ आचर मधु मधुपरक करिकै करत आनन हास—सा १०७१।

१ वेद विधि किया ब्याह विधि वसुदेव मन उपजी रली—सा ४१८६।

२. वेद-शास्त्र मधि करी ब्याह-विधि सीय श्रीजी नृपराव।

× × ×

होम हवन द्विज पूजा गनपति सुरज शक्र महेस—सारा २१४।

३ क. 'पानिग्रहन' रघुवर बर कीन्हों जनक-सुता सुख दीन—सा ६ २६।

ख ता परि 'पानिग्रहन' विधि कीन्ही—सा १०७२।

४ पढ़त बेद बहुँ दिसि द्विज जन भय मंगल मन भाय।

'हथलेवा' करि हरि राधा सों मंगलचार पढ़ाय।

नंद कीर्तन-संग्रह भाग १, पृ १८।

५ क प्रिय परी ग्रंथि कौन छोरै निकट मनहि न मान—सा १ ७१।

ङ—*अग्नि प्रदक्षिणा*—'अग्नि-प्रदक्षिणा' से तात्पर्य है वर द्वारा वधू के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करना। इसे ही 'भाँवर' या 'फेरे लेना' भी कहते हैं। दूलह-दुलहिनि 'भाँवर' लेते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'फेरे' शब्द के स्थान पर 'भाँवर' का ही प्रयोग अधिक हुआ है। 'गठबंधन' के पश्चात दूलह-दुलहिनि 'अग्नि प्रदक्षिणा' करते या 'भाँवर लेते हैं' जिसके मूल में अपने संबंध का साक्षी अग्निदेव को बनाये जाने का भाव रहता है। सूरदास और परमानन्ददास ने 'भाँवर लेने' का उल्लेख कई पदों में किया है[६]।

च *कंकण-मोचन*[७]—विवाह के पूर्व वर-वधू के बाँधा गया कंकण विवाह के पश्चात् वर-वधू परस्पर खोलते हैं। इस कुलाचार का वर्णन भी अष्टछापी कवियों में सूरदास ने ही सबसे अधिक किया है। 'सूरसागर' में राम-जानकी और कृष्ण-राधा के कंकण खोलने का रोचक वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि दूलह के द्वारा कंकण-मोचन-वर्णन में उन्होंने जितनी रुचि दिखायी है, उतनी दुलहिनी द्वारा 'मोचन'-वर्णन में नहीं। श्रीराम जब सीता का कंगन खोलने में सफल नहीं होते तब सखियाँ हास-परिहास करने में भी नहीं चूकतीं और सहायता के लिए माता कौशल्या को बुलाने की सलाह देती हैं[८]। इसी प्रकार राधा का कंकण न खोल

ग प्रीति-ग्रंथि हिये परी—सा १ ७२।

६ क. ता परि पानिग्रहन विधि कीन्हीं। तब मंडप भ्रमि भाँवरि दीन्हीं—सा १ ७२।

ख विविध विधि सब कीनी। मंडप करिके भाँवर दीनी।

—सूर कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ १०।

ग भाँवर लेत पिया और प्रीतम तन मन दीजै वार—परमा ११४।

७ ब्याह के 'कँगन' के लिए सूत की लच्छियों के रँगने का बाण ने उल्लेख किया है।

—पृ ८१।

विवाह के पहले गृहकर्मों का स्त्रियों के कौतुक-गृह में ले जाने का उल्लेख किया गया है। यहीं लोकाचार तथा हँसोड़ स्त्रियों के परिहास की चर्चा भी है। बाण ने 'कोहबर' का अनुसार विवाह के पहले वर्णन किया है। पंजाब में यही प्रथा है तथा कुरुक्षेत्र में भी प्रचलित होगी। दिल्ली व मेरठ में उत्सव होता है जहाँ स्त्रियों के देवताओं की पूजना साथ पूजापाठ विवाह-कार्य के बाद होते हैं।

—डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ, पृ १०२।

८. कर कंपे कंकन नहिं छूटै।

राम सिया कर परसि मगन भये कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।

पाने पर उसकी सखियाँ वर से कहती हैं—हे कृष्ण ! यह गिरि उठाने का काम नहीं है, यह तो कंकण खोलना है' । इसी प्रसंग में 'कंकनचार' कराती हुई सखियाँ कहती हैं—यदि कंगन न खोल सको तो सहायता के लिए माता यशोदा को बुला लो अथवा राधा के पाँव छुओ' ।

श्रीकृष्ण जब अपने प्रयत्न में सफल हो जाते हैं और राधा का कंकण खोल देते हैं तब सखियाँ प्रसन्नता से किलक उठती हैं और सुकुमारी राधा से दूलह का कंकण खोलने को कहती हैं । राधा के असफल होने पर, दोनों की प्रीति देखकर वे सलाह देती हैं—बाबा वृषभानु को बुलाकर सहायता ले लो'' । इस प्रकार हास-परिहास के बीच यह कुलाचार सम्पन्न होता है ।

स *जुआ खेलना*—विवाह के बाद वधू के यहाँ ही वर-वधू को जुआ

गावत नारि गारि सब दै दै तात भ्रात की कौन चलावै' ।
तब कर जोरि छुटे 'रघुपति जू जब कौसल्या माता आवै'—सा ६ २५ ।

९. गावें जु मानिनी मिलि के मंगल करत कंकन छोरियो ।
नहीं 'होय यह गिरि उचकैबो' लला हँस मुख मोरियो ।
'छोरबो न टूट डोरना यह प्रीति-रीति प्रथी कही ।
—सूर कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ६७ ।

१ प्रथम ब्याह बिधि होइ रह्यो हो कंकनचार बिचारि' ।
रचि रचि पचि पचि गूँथि बनायौ नवल निपुन ब्रजनारि ॥
बड़े छुओ तो छोरि लेहु जो सकल घोष के राइ ।
'कै कर जोरि करौ बिनती कै छुवौ राधिका पाइ' ।
'यह न होइ गिरि को धरिबो हो सुनहु कुँवर ब्रजनाथ ।
आपुन कौं तुम बड़े कहावत काँपन लागे हाथ ।
बहुरि सिमिटि ब्रजसुंदरि सब मिलि दीन्ही गाँठि घुराइ ।
छोरहु बेगि कि आनहु अपनी 'जसुमति माइ बुलाइ'—सा १ ७१ ।

११ सहज सिथिल पल्लव तें हरि जू लीन्हो छोरि सँवारि ।
किलकि उठीं तब सखी स्याम की 'तुम छोरौ सुकुमारि' ॥
पचिहारी कैसेहु नहिं छूटत बँधी प्रेम की डोरि ।
देखि सखी यह रीति दुहुनि की मुरिग हँसी मुख मोरि ॥
अब जिनि करहु वहाइ सन्धीरी छाँड़हु सकल सयान ।
दुलहिनि छोरि दूलह को कंकन बोलि बबा वृषभान'—सा १ ७१ ।

खिलाया जाता है। नवम सर्ग में राम-जानकी के विवाहोपरांत जुआ खेलने का वर्णन है। सोने की कुँडी में पुँगीफल युक्त निर्मल जल रखा जाता है। उसी में राम और जानकी जुआ खेलते हैं[१२]। रुक्मिणी-विवाह में भी वर-वधू के जुआ खेलने का उल्लेख हुआ है[१३]।

ब *गाली गाना*—विवाह के समस्त 'आचारों' के बीच में, 'गाली' भी गायी जाती हैं जिनमें अधिकतर निकटतम संबंधियों के नाम रहते हैं। राम के विवाह में जुआ खेलने के अवसर पर सूरदास ने 'गाली' गवायी है[१४]। ऐसी गालियों में प्राय माता के अनुचित संबंध की बात कहकर वर-वधू के साथ उपहास किया जाता है। सूरदास का एक लंबा पद इन गालियों का प्रतिनिधित्व कर सकता है[१५]।

द *न्यौछावर देना या भूर बाँटना*—विवाह के बाद वर और वधू के ऊपर से न्यौछावर उतारकर याचकों को दी जाती है। इसी को 'भूर' भी कहा जाता है। सूर ने न्यौछावरी' में मुक्ति-मुक्ति पायी है[१६] और परमानंददास ने प्रेम-भक्ति और रत्नों के हार भूर' में देने का उल्लेख किया है ।

घ *बिदा*—विवाह के पश्चात् कन्या पिता के घर से बिदा होती है। बेटी

१२ 'पुँगीफल जुत जल निरमल धरि' आनी भरि कुँडी जो कनक की।
'खेलत भूप सकल जुवतिनि मै, हारे रघुपति जिती जनक की—सा ९ २५।
१३ 'जुआ जुवति खिलाइ' जुआ न्योछार सकत कराइयौ—सा ४१८६।
१४ 'गावत नारि गारि' सब दै दै— सा ९ २५।
१५ तेरी माइ सकल जग सोयौ। सो को जो इहि मिलि न बिगोयौ।
सो को जु मिलि करि नहि बिगोयौ फिरति निसि बासर बनी।
सिर सेत पर कटि नील लहँगा लाल चोली बिनु तनी।
कछु मंद मुख मुसकाइ सुर नर नाग मुख भीतर लिए।
बलि जाउँ जादौपति तुम्हारी माइ कुल बिनु तुम किए—सा ४१८७।
१६ 'मुक्ति भुक्ति न्यौछावरी पावै' सूर सुजान—सा ४१८८।
१७ कुंज भवन में मंगलाचार।
× × × ×
दीनी भूर दास परमानंद प्रेम भक्ति रत्नन के हार।
—परमा कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ ११६।

की विदा का यह दृश्य इतना करुण होता है कि कन्या-पक्ष के लोग ही नहीं, वर पक्ष के उपस्थित जन भी आँसू बहाने लगते हैं। संस्कृत के महाकवि कालिदास के कण्व मुनि अपनी पालिता पुत्री शकुंतला की विदा के अवसर पर इस तरह आँसू बहाते हैं कि गृहीजन भी बेटी को विदा करते समय उतने द्रवित न होते होंगे[१८]। वस्तुतः बेटी की विदा के समय का दृश्य इतना करुण और मर्मस्पर्शी होता है कि सहस्रों लोकगीतों का वर्ण्य विषय यही रहा है। आश्चर्य की बात है कि अष्टछाप के सहृदय कवि अनेक विवाहों का वर्णन करने पर भी इस विषय को विस्तार देने का लोभ संवरण कैसे कर सके। इसका समाधान यद्यपि यह कहकर किया जा सकता है कि उनके काव्य में कृष्ण या राम के जिन विवाहों का उल्लेख है उनमें ही भक्त की प्राप्ति इतनी सुखदायिनी है कि उसके लिए वधुएँ मायका छोड़ने को सदैव उत्सुक रहती हैं और शेष व्यक्तियों के विवाहों के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि नहीं दिखायी है, तथापि माता के हृदय के पारखी उन कवियों की इस संबंध में उदासीनता कुछ न कुछ खटकती अवश्य है। जो हो, कृष्णदास के एक पद में विदा होती हुई राधा के साथ-साथ निकट संबंधियों की करुण दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। पिता के घर से विदा होती हुई कीरति-सुता सगे-संबंधियों से लिपट लिपटकर रोती है। उसकी काकी, मामी, बहिन, फूफी उसे बार-बार कलेजे से लगाती हैं। पिता बहुत पुचकार कर सांत्वना देता है कि घबराओ मत। मैं जल्दी ही तुम्हारे भैया को भेजकर तुम्हें बुला लूँगा[१९]।

[१८] यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥
—अभिज्ञानशाकुन्तलम् ४-८, पृ २७१।

[१९] कनकलता-सी लपट रही है कीरति की सु कुमारि।
मेह नीर करि सींचत छिन छिन कौन सके निरवार।
काकी मामी बहिन पुनि फूफी लिन लीनी उर धार।
× × ×
लैहौं बेगि बुलाय लड़ैती 'पिता कह्यौ पुचकार।
देहौं बेगि पठाय भैया को सो करि रथ बैठार।
—कृष्ण, कीर्तन-संग्रह भाग २, पृ १५।

न दायज या दहेज—भारतीय विवाह की एक प्रमुख रूढ़ि है कन्या के साथ-साथ भेंट में ऐसा बहुत-सा सामान वर को देना जो गृहस्थ-जीवन में उनके लिए उपयोगी सिद्ध हो। इस सामान में धन-संपत्ति, मणि-रत्न, हाथी-घोड़े, दास-दासियाँ सभी कुछ दिया जाता है। भारतीय कवियों ने विवाह के साथ-साथ दायज या दहेज का भी वर्णन किया है[२०]। अष्टछापी कवि भी इस संबंध में उनसे पीछे नहीं हैं। वसुदेव से देवकी का विवाह कराते समय सूरदास ने कंस के द्वारा 'हय-गय-रतन-हेम पाटंबर' आदि बहुत-सा दायज दिलाया है[२१] तो नंददास ने देवकी को पिता देवक द्वारा 'कनकरथ', 'सेत चारि गज', 'पंद्रह सहस किंक्यान', 'दोइ सत दासी' आदि दहेज में दिये जाने का उल्लेख 'दशम स्कंध' में किया है[२२]। राधा के विवाह में कृष्णदास ने 'हय-गय-भरन-भँडार' के साथ सोनामढ़े सींग वाली मोती-हार से सजी चार लाख गायें दहेज में दिलायी हैं जिनका साज भी बहुमूल्य है[२३]। सत्यभामा के विवाह में उनके पिता सत्राजित ने सूर्य-प्रदत्त मणि के साथ अनेक

२० राज्यश्री को दहेज में दिए जानेवाले हाथी एवं घोड़ों का उल्लेख बाण ने किया है। इस प्रकार ससुराल में दस दिन रहकर ग्रहवर्मा वधू व दहेज के साथ चले गए—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष० सां० अ० पृ० ७१।

२१ आदि ब्रह्म जननी सुर देवी नाम देवकी बाला।
दई बिवाहि कंस बसुदेवहिं दुख भंजन सुख माला।
हय गय रतन हेम पाटंबर आनन्द मंगलचारा—सा० १०-४।

२२ भयौ बिवाह परम रँग भीनौं देवक बहुत दायजौ दीनौं।
'कनकरथ रथ कंचन के नये गज सत चारि मत्त छबि छये'।
'पंद्रह सहस सुभग किंक्यान कनक भरे नग जरे पलान'।
वर बरनी तरुनी रँगभीनी दासी नौनि दोइ सत दीनी'।
—नन्द० दशम पृ० २२।

२३ देत दायजो भान बड़े नृप 'हय-गय-भरन भँडार।
× × ×
गोधन के गोधन अति प्यारी धौरी धेनु सिंगार।
झूमर झुकाफुल मनि नूतन दीनी है लख चार'।
'जगमग सोने सींग सबन के गर घंटन बरु प्यार'।
'मोतिनि हार फबी पग पैंजनी' चलत मनन झनकार।
—कृष्ण० कीर्तन-संग्रह प्रथम भाग पृ० १५।

प्रकार का 'धामम' श्रीकृष्ण को दिया है[२४]। इसी प्रकार सत्या के पिता, श्रीकृष्ण को[२५] और उषा के पिता, अनिरुद्ध को[२६] पुत्री सहित बहुत 'दाइज' देते हैं।

प *गृह-प्रवेश*—विवाह के बाद नवविवाहिता वधू को लेकर वर अपने घर आता है। उस समय बहन आरती उतारती है और माताएँ पानी उतारकर पीती हैं। रुक्मिणी से विवाह करके घर आने पर बहन सुभद्रा कृष्ण की आरती उतारती है और माता देवकी पानी वार कर पीती है[२७]। परमानंददास ने व्रजनारियों द्वारा घर के मुख्य द्वार पर कृष्ण और वृषभानु-नंदिनी राधा की आरती उतारे जाने का उल्लेख किया है[२८]।

विवाह के समय दुलहिन के घूँघट काढ़ने की प्रथा का इन प्रसंगों में उल्लेख नहीं है। कारण यह जान पड़ता है कि पौराणिक काल में परदा प्रथा भारत में थी ही नहीं। वह तो संभवतः मुसलमानों के भारत में आने के बाद इस देश में आरंभ हुई थी। विवाह के समय अधिकांश परिवारों में आज भी वधू का मुख घूँघट से ढका रहता है और एक रस्म 'मुँहदिखायी' की होती है। उसमें सब गुरुजन नव वधू का मुख देखकर भेंट देते हैं।

प *अंत्येष्टि*—मानव का अंतिम संस्कार 'अंत्येष्टि' है जो मृत्यु के पश्चात होता है। भारतीय विश्वास के अनुसार जिस व्यक्ति का यह संस्कार उचित रीति से हो जाता है, उसका परलोक सँवर' जाता है। इसका प्रमाण 'सूरसागर' में भरत से कहे गये वशिष्ठ के इस कथन में मिलता है कि पिता की अंत्येष्टि करके उनका परलोक सँवार दो[२९]। मृत्यु के पश्चात शीघ्र से शीघ्र यह संस्कार कर दिया जाता

२४ और बहुत दायज दीन्हे उन करि विवाह-व्यौहार—सा ४११६।
२५ ताकी पिता व्याह तब कीन्हो 'दाइज' बहु प्रकार तिन दीन्हो—सा ४११२।
२६ बहुरि ऊषा दई ब्याहि 'दाइज सहित हरि हरष करत निज पुरी आए।
—सा ४१६८।
२७ बहुरि निज मंदिर सिधारे करि सुभद्रा आरती।
देवकी पीवति वारि पानी दै असीस निहारती—सा ४१८६।
२८ बाम भाग वृषभान-नन्दिनी ललितादिक गावैं सिंगार।
कंचन थार लिये कर मुक्ताफल अरु पुहुपन के हार।
रोरी चन्दन तिलक विराजत करत आरती हरष अपार—परमा ११७।
२९ गुरु बसिष्ठ भरतहिं समुझायो।

है, क्योंकि सामान्य वर्ग का यह विश्वास रहता है कि देर होने पर मृत प्राणी 'भूत' बन जाता है[१] । सामान्यतया मृत प्राणी की तीन ही गतियाँ होती हैं। मरने पर वह यों ही पड़ा रहे और जीव-जंतु का भोजन बनकर उनकी विष्ठा बन जाय या जमीन में गाड़ दिये जाने पर कीड़ों का भोजन बन जाय अथवा जला दिये जाने पर मुट्ठी भर राख के रूप में शेष रह जाय। मृतक शरीर की इन तीनों गतियों की ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है[११] जिससे भारतीय संस्कृति की शव का दाह करने की प्रथा के साथ-साथ उसको गाड़ देने के चलन की बात भी सूचित होती है।

परमानंददास ने अंत्येष्टि संस्कार के लिए 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है यद्यपि सामान्यतया इसका तात्पर्य मृतक के श्राद्ध आदि कर्मों से होता है। ऊधव-गोपी-संवाद में उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—ज्ञान योग की निष्ठुर बातें कहकर तुम हमें जब मारने ही आये हो तो हमारी 'क्रिया करके जाना जिससे बनवारी तुम्हारा गुन' मानेंगे[१२] अस्तु। अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल सूरदास ने 'अंत्येष्टि' क्रिया का वर्णन किया है जो दो रूपों में है। प्रथम में इस संस्कार के संबंध में सामान्य संकेत किये गये हैं और द्वितीय में प्राणी या व्यक्ति-विशेष—यथा महाराज दशरथ, जटायु, शबरी आदि—के अंत्येष्टि-संस्कार का उल्लेख हुआ है। प्रथम अर्थात् सामान्य वर्णन में इस संस्कार के अनेक कृत्यों में से केवल एक,

राम को 'परलोक सँवारो', जुग-जुग यह जस गावो—सा ९५ ।

१ जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
× × ×
जिन लोगनि सौं नेह करत है तेई-देखि घिनैहै।
घर के कहत सवारे काढ़ौ 'भूत होइ धरि खैहै'—सा १-८६।

११ जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।
या देही को गरब न करिये स्यार काग-गिध खैहैं।
'तीननि मैं तन कृमि कै विष्टा कै ह्वै खाक उड़ैहै'—सा १-८६।

१२ ऊधो जी मृतक मारन आए, सूर सुभट अबलनि पर धाए।
अब 'क्रिया' करि जाहु हमारी तुम्हरो गुन मानैं बनवारी—परमा हस्त १९८।

'कपाल-क्रिया'[३३] की ओर सूरदास ने संकेत किया है कि मरते समय मैया, बंधु आदि कुटुम्बी ही नहीं, अपने ही रक्त से पैदा किये हुए जिन पुत्रों को देवी-देवता मनाकर पाया और पाला था, वे कुछ काम न आयेंगे और मृत्यु होते ही शीघ्र से शीघ्र 'कपाल-क्रिया' करके गाड़े हुए धन की खोज में लग जायेंगे[३४]।

दशरथ, जटायु और शबरी में से अंतिम दो के अंत्येष्टि-संस्कार के संबंध में केवल इतना कहा गया है कि जटायु को अपना सेवक जानकर श्रीराम ने उसके शव को अपने हाथ से जला दिया[३५] और शबरी के मरने पर उन्होंने 'तिलांजलि[३६] दी[३७]। महाराज दशरथ के 'अंत्येष्टि संस्कार' का सूरदास ने अवश्य अधिक विस्तार से वर्णन किया है। एक बड़ा 'बिमान' बनाकर नृप का शव उस पर रखकर परिजन और पुरजन सरयू के किनारे 'स्मशान घाट' पर ले जाते हैं। वहाँ चंदन की लकड़ी की चिता बनायी जाती है जिस पर राजा का शव रखकर अगर, सुगंध, घृत आदि

३३ कपाल-क्रिया शव-दाह का एक कृत्य होता है। जला दिया जाने पर जब शव के सिर के बीचोंबीच का भाग सफेद हो जाता है तब मृतक का दाह संस्कार करने वाला व्यक्ति बाँस या किसी लकड़ी से खोपड़ी फोड़ देता है। इस 'क्रिया' के मूल में विश्वास यह है कि प्राणी के मर जाने पर भी उसके प्राण ब्रह्मांड में अटके रहते हैं जो 'कपाल क्रिया' के पश्चात् निकल जाते हैं—लेखिका।

३४ क. भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे तिनतें कछु न सरी।
लै देही घर-बाहर जारी सिर ठोंकी लकरी।
मरती बेर 'सम्हारन लागे' जो कछु गाड़ि धरी—सा १-७१।

ख. जिन पुत्रनिहि बहुत प्रतिपास्यौ देवी-देव मनैहैं।
तेई लै 'खोपरी बाँस दै सीस फोरि बिखरैहैं'—सा १-८५।

३५. श्री रघुनाथ जानि जन अपनो अपनैं कर करि ताहि जरायौ—सा ९-६६।

३६ भारतीय संस्कृति में 'तिलांजलि' का संबंध अंत्येष्टि-संस्कार से है। मृतक के शव के साथ जो लोग जाते हैं वे शव-दाह के पश्चात् नदी तालाब आदि में स्नान करके हाथ में तिल और जल लेकर उसी में छोड़ देते हैं। यह 'क्रिया' इस बात की सूचक है कि इसके पश्चात मृतक से सदा को संबंध टूट जाता है—लेखिका।

३७ करि दंडवत भई बलिहारी पुनि तन तजि हरि लोक सिधारी।
सूरज प्रभु अति करुना मय। निज कर करि तिल-अंजलि दई—सा ९-६७।

डालकर आग लगायी जाती है[४८]। पश्चात् तिलांजलि दी जाती है[४९]। इसके अनंतर पुरजनों-परिजनों का कार्य समाप्त हो जाता है और 'अंत्येष्टि संस्कार' के शेष कृत्य शव-दाह करनेवाले के लिए रह जाते हैं। महाराज दशरथ का दाह-संस्कार भरत ने किया था अतएव शेष कृत्य भी वे ही करते हैं। शव-दाह के पश्चात् दस दिन तक वे जल से पूर्ण घट श्मशान घाट पर टाँगते हैं और उस पर दीपक जलाकर 'दीपदान' करते हैं। ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों को बुलाकर वे बड़े आदर-सत्कार से भोजन कराते और अनेक प्रकार के दान देकर उन्हें संतुष्ट करते हैं[५०]।

'अंत्येष्टि-क्रिया' करनेवाले को सिर भी मुड़ाना पड़ता है। राजा दशरथ की दाह-क्रिया भरत ने की थी इसलिए उन्होंने भी सर मुड़ाया था। चित्रकूट में भरत से भेंट होने पर राम उनका 'मुंडित केस सीस' देखकर किसी की मृत्यु का अनुमान करके अत्यंत विह्वल हो जाते हैं, पश्चात्, पिता की मृत्यु की बात सुनते ही मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। सीता की भी यही दशा होती है और वह भी धरती पर गिरकर बिलखने लगती है[५१]। 'सूरसागर' में यह प्रसंग यहीं पर समाप्त कर दिया

४८ प्रभाकरवर्द्धन के अंत्येष्टि-संस्कार से तत्कालीन प्रथा पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उनकी चिता काले अगरु के काष्ठ से बनायी गयी थी। हर्ष एवं सामन्त तथा पुरोहितादि अरथी सरस्वती तट पर ले गये और वहाँ अग्नि के अर्पण की। उस रात्रि हर्ष ने जमीन पर बैठकर काटी तथा सेवक कुशाओं पर सोये। सम्राट् के फूल कलशों में रखने के बाद हाथियों द्वारा विभिन्न तीर्थों एवं नदियों में ले जाए गये। दूसरे दिन हर्ष ने सरस्वती में स्नान करने के बाद जलांजलि दी। बाण ने दस अशौच दिवसों का भी वर्णन किया है—हर्ष० चौ० अ० पृ० ११।

४९. 'चंदन अगर सुगंध और घृत' विधि करि 'चिता बनायौ।
चले बिमान' संग गुरु-पुरजन तापर नृप पौढ़ायौ।
भस्म अंत तिलांजलि दीन्ही देव बिमान चढ़ायौ—सा० ९-५०।

५० 'दिन दस लौं जल कुंभ साजि सुचि दीपदान करवायौ'।
पुनि एकादस बिप्र बुलाए भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौ दान बहुत नाना बिधि, इहिं बिधि कर्म पुजायौ—सा० ९-५०।

५१ भ्रात मुख निरखि 'राम बिलखान।
मुंडित केस-सीस' बिहवल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने।
तात-मरन सुनि स्रवन 'कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।

गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने प्रसंग की पूर्णता के लिए समस्त अयोध्यावासियों के साथ राम के मंदाकिनी नदी में स्नान करके पवित्र होने का वर्णन किया है और सब उस दिन निर्जल व्रत भी करते हैं[१४२]।

समीक्षा—

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि यद्यपि अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र तत्संबंधी ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे तत्कालीन जन-जीवन का कुछ परिचय मिल सकता है, तथापि ये संकेत एक प्रकार से बिखरे हुए सूत्रों के रूप में हैं जिनको एकत्र करके क्रमबद्ध रूप से सजाने पर ही वर्ण्य विषय का ज्ञान होना संभव है। मुक्तक और गेय काव्य-रचना-संबंधी प्रतिबंधों के कारण यद्यपि अधिकांश विषयों का सांगोपांग वर्णन अष्टछापी कवियों ने नहीं किया तथापि अपने आराध्य के जन्म और विवाहोत्सवों का वर्णन इतने उत्साह से उन्होंने किया है कि उनका यथार्थ चित्र आज भी सामने आ जाता है पाठक के अंतजगत में उनका यथार्थ चित्र अंकित हो जाता है और कुछ समय के लिए तो वह अपने को भूल ही जाता है। पारिवारिक जीवन के अन्य प्रसंगों का परिचय देने के लिए भी जो संकेत उन्होंने किये हैं वस्तुतः वे महत्वपूर्ण हैं और उनके लिए ये कवि बधाई के पात्र हैं।

मोह-मगन लोचन जल धारा विपति न हृदय समाइ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता' समुझति नहिं समुझाई—सा २-५२।

१४२ नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा।
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर-धारी।
कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी।
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राजु अकाजेउ आजू।
मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए'।
'व्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा'। मुनिहु कहें जलु काहु न लीन्हा।
—'रामचरित-मानस' अयोध्याकांड, पृ ५२।

५ सामाजिक जीवन चित्रण

अष्टछाप-काव्य में चित्रित तत्कालीन सामाजिक जीवन-चर्या से भली-भाँति परिचित होने के लिए, उसका अध्ययन, स्थूल रूप से, छह शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१ सामाजिक व्यवस्था, २. मनोविनोद, ३. पर्वोत्सव, ४ त्योहार, ५. लोकाचार-लोकव्यवहार और ६. विश्वास-मान्यताएँ।

१ सामाजिक व्यवस्था—

मानव सामाजिक प्राणी है जिसकी सहज प्रवृत्तियाँ उसे अपने साथियों के साथ रहने के लिए प्रेरित करती हैं[1]। विकास, आत्मरक्षा तथा संगठन की कामना या भावना ही समाज-निर्माण की मूल प्रेरणा है। मानव के उन गुणों का विकास भी समाज में ही सम्भव है जिनसे संस्कृति और सभ्यता का विकास होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'समाज' शब्द में ही संगठन-शक्ति, सांस्कृतिक विकास आदि के भाव समाविष्ट रहते हैं[2]।

सामाजिक भावना का उदय होने पर मानव वर्ग का ध्यान आचार-विचार और व्यवहार-आदर्श-संबंधी सिद्धांतों की ओर जाता है। कालांतर में ये ही प्रत्येक देश या समाज के सामाजिक संगठन के मूल या विशिष्ट आधार बन जाते हैं। भारतीय सामाजिक संगठन के भी दो मूलाधार हैं—वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था।

क. *वर्ण-व्यवस्था*—भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र[3]। ऋग्वेद के एक रूपक[4] के आधार पर कहा जा

१ लास्की की मूल पुस्तक 'ए ग्रैमर आव पालिटिक्स' के हिंदी अनुवाद, 'राजनीति के मूल तत्त्व' पृ १।

२ श्री शिवदत्त ज्ञानी, 'भारतीय संस्कृति', पृ १११।

३ एफ. बर्नियर-कृत 'ट्रैवल्स इन मुगल इम्पायर' (सन् १६५६ १६६८ ई) में भी भारतीय समाज के इस विभाजन का उल्लेख है। उन्होंने चार युगों—सत्, त्रेता, द्वापर और कलि का भी उल्लेख किया है—पृ ३४१ ४२।

४ 'समाज-रूपी पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं'—ऋग्वेद १ -९ १२।

सकता है कि आरंभ में उक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम-विभाजन का आर्थिक सिद्धांत था किंतु आगे चलकर इस व्यवस्था में रूढ़ात्मकता आ गयी; वर्ण-व्यवस्था कर्ममूलक के स्थान पर जन्ममूलक हो गयी और अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति[५] भेद-भावना की पृष्ठभूमि बन गयी जो समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। प्रारंभ में उक्त चारों वर्णों में प्रथम अर्थात् ब्राह्मण के मुख्य तीन कार्य थे—पुरोहिती शिक्षण और मंत्र-रचना[६]। इन कार्यों का संपादन करके ब्राह्मण समाज में उदात्त विचारों के संचालन का श्रेय प्राप्त करता था परंतु उसे श्रेष्ठ तभी समझा जाता था जब वह विद्या में पारंगत हो; अन्यथा ब्राह्मण 'ब्रह्मबंधु (ब्राह्मण का भाई) कहलाता था, 'ब्राह्मण' नहीं[७]।

इसी प्रकार क्षत्रिय-वर्ग का कार्य प्रबलों के उत्पीड़न से निर्बलों की बचाना था और अन्य वर्ण भी जब राजनीतिक सत्ता स्वायत्त कर लेते थे तो उनका भी आदर क्षत्रिय के समान ही होता था[८]। वैश्य-वर्ग का संबंध मुख्यतः वाणिज्य व्यवसाय से था और राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव उन पर साधारणतया कम पड़ता था। इस वर्ग का आर्थिक महत्त्व प्रायः बना रहा, परंतु उनकी संख्या में एक परिवर्तन अवश्य हुआ। कृषि और पशुपालन करनेवाले बहुत से वैश्य शूद्रों

५. डा पी के आचार्य-कृत— ग्लोरीज आव इंडिया आन "इंडियन कल्चर ऐंड सिविली जेशन' के अनुसार 'ऋग्वेद' के अन्तिम भाग के पुरुष सूक्त में केवल चारों वर्णों का उल्लेख हुआ है। पुराण-काल में इस भेद भावना का पूर्ण विकास हो गया था। धीरे धीरे अनेक उपजातियों का भी जन्म होता गया तथा महाकाव्य-काल ई पू ७ से ईसा पश्चात् ५ शती तक इस संबंध में निश्चित नियम भी बन गये थे—पृ ५६-६१।

६ ऋग्वेद में 'ब्राह्मण' शब्द 'ऋषि' अथवा 'प्रधान पुरोहित' के अर्थ में प्रमुख रूप से अकतालिस बार प्रयुक्त हुआ है वर्ण-सूचक अर्थ में केवल आठ बार आया है और मंत्र रचयिता के अर्थ में सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है— ग्लोरीज आव इंडिया आन इंडियन कल्चर ऐंड सिविलीजेशन' पृ० ५६-६ ।

७ डा राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' भाग १, खंड १ पृष्ठ ' १ में उद्धृत –'शुक्र-नीति—१ (७५-७६), १ (७७-७८)।

८. डा राजबली पांडेय द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास'—भाग १ खंड १, मेधातिथि (मनु १ १११ ४, ८४, ११ ५, ६१, ६, १ २ पर भाष्य), पृ १ १।

में गिने जाने लगे[९]। शूद्र वर्ग को निर्विकारभाव से तीनों वर्गों की सेवा का कार्य सौंपा गया था। कालांतर में यह वर्ग उच्च वर्णों द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाने लगा[१०]।

अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था-संबंधी उल्लेख—अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव के समय राजनीति के क्षेत्र में बहुत-कुछ उथल-पुथल हो जाने पर भी चारों वर्णों के संबंध में समाज की धारणा में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था, यद्यपि अपनी उदारता के कारण इन कवियों ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि अष्टछाप-काव्य में वर्ण-व्यवस्था के विषय में अधिक वर्णन नहीं मिलता। वास्तव में इन कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप को अपनी रचना का विषय बनाया था, लोकरक्षक को नहीं जिसका घनिष्ठ संबंध समाज से रहता है। अत: उन्हें सामाजिक नियमों या विधानों पर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था। दूसरी बात यह कि भक्ति के क्षेत्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, सभी का समान माना गया है। प्रभु की दृष्टि में सभी समान हैं, क्योंकि सभी उनकी ही सृष्टि हैं। इसी से भगवान भक्त की जाति या उसके कुल-गोत्र[११] का कोई विचार नहीं करते[१२]। इतनी उदारता होते हुए भी समाज में ब्राह्मण-वर्ग की श्रेष्ठता संबंधी जो धारणा उस वर्ग के व्यक्ति के अंतर्जगत में संस्कार-रूप में बन जाती है, उससे सर्वथा छुटकारा पा लेना भी उसके लिए संभव नहीं होता। इसका प्रमाण

९. डा. राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १ खंड १ का फुटनोट— 'यह परंपरा 'अमरकोश' में प्रारम्भ हुई जो वैश्य वर्ग के अन्तर्गत वर्णों का महत्व सत्यानृत के आधार पर आँकता है। व्यापार और कृषि में उस असत्य और हिंसा अधिक दिखायी पड़ती है। अत: वैश्य क्रमश: शूद्रों के साथ परिगणित होते गये—'अमरकोश (२ ६—२ १), पृ ११३।

१०. 'पराशर स्मृति' के अनुसार शूद्र का भोजन उसका संपर्क एक आसन पर उसके साथ बैठना और उससे पढ़ना तेजस्वी व्यक्ति को भी पतित कर देने वाला था—डा. राजबली पांडेय द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' भाग १ खंड १, पृ ५११।

११. "पाणिनि ने वैदिक शब्द 'वर्ण' के साथ बाद में प्रचलित 'जाति' शब्द का अधिक उल्लेख किया है। 'जाति' शब्द में गोत्र तथा 'चरण' दानों ही सम्मिलित थ"।
—डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि' पृ ७५।

१२. 'जाति गोत कुल नाम गनत नहिं रंक होय कै रानो'—१ ११।

है सूरदास के 'सूरसागर' की एक पंक्ति जिसमें श्रीकृष्ण और कुब्जा के संबंध की अनुपयुक्तता बतायी गयी है और जिससे शूद्र और ब्राह्मण में असमानता की मान्यता पर भी परोक्ष रूप से प्रकाश पड़ता है। उनकी सम्मति में कृष्ण और कुब्जा का साथ हंस-काग, कपूर-लहसुन, कंचन-काँच, सिंदूर-गेरू और भोजन में ब्राह्मण-शूद्र जैसा है[१३]। सूरदास का यह कथन तत्कालीन मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शक है, स्वयं उनकी धारणा इतनी संकुचित नहीं थी। परमानन्ददास भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता विप्र-कुल में जन्म लेने में नहीं मानते उनकी सम्मति में तो ईश्वर की सेवा-उपासना न करनेवाले ब्राह्मण से ईश्वर-भक्त स्वपच ही श्रेष्ठ है[१४]।

अष्टछाप-काव्य में उक्त चारों वर्णों में से ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र की चर्चा ही मुख्यतः मिलती है, वाणिज्य-व्यवसाय में लगे हुए वैश्य[१५] कहलानेवाले वर्ण की नहीं, यद्यपि उनके कार्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र के अतिरिक्त कुछ अन्य उपजातियों की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है जिनमें अहिर या अहीर प्रमुख है[१६]।

क अष्टछाप-काव्य में ब्राह्मण—'ब्राह्मण के लिए 'पंडित', 'पांडे' 'ब्राह्मण', 'द्विज', 'विप्र', 'बाँभन' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'ब्राह्मण' का संबंध विद्या से रहने के फलस्वरूप 'पंडित' शब्द ब्राह्मणमात्र का प्रतीक हो गया है। परमानन्ददास ने एक पद में 'पंडित' के लिए 'द्विज' शब्द लिखा है[१७]। 'ब्राह्मण' का कार्य 'पुरोहित

१३ कंस बध्यो कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहूँ, कहा गँवाई लाज॥
जैसें काग हंस की संगति लहसुन संग कपूर।
जैसें कंचन काँच बराबरि गेरू काम सिंदूर॥
भोजन साथ शूद्र-बाम्हन के, तैसो उनको साथ—सा १११२।

१४ कहा भयो जौ बिप्र कुल जनम्यो भजन सुमिरन नाहीं।
स्वपच पुनीत दास परमानंद जो हरि सन्मुख जाहीं—परमा दस० १७६।

१५ वैश्यों को 'आर्य' उपाधि प्राप्त थी जिससे उनके सामाजिक मान का अनुमान लगाया जा सकता है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' पृ ७७।

१६ और 'अहीर' सब कहाँ तुम्हारे हरि सी धेनु दुहाई—ना ७४।

१७ सुनो हो जसोदा आज कहुँ न गोकुल में इक पंडित आयो।

का भी होता है जिसके घर पधारने पर राजा द्वारा भी बड़ा सम्मान किये जाने का वर्णन परमानंददास ने किया है[१८]। हिंदू गृहस्थ के प्रत्येक शुभ कार्य में 'ब्राह्मण' का विशेष सम्मान होता है। उन्हें स्वच्छ जल से स्नान कराने के पश्चात् वस्त्राभूषणादि दान दिये जाते हैं[१९]। प्रातःकाल उनके वेद-पाठ करने का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है[२०]। साथ-साथ ब्राह्मणों के बाह्याचारों जैसे उनका छिपे हुए स्थान पर अलग भोजन बनाना,[२१] किसी के छू लेने पर भोजन का अपवित्र हो जाना, खाना तैयार होने पर उसका भोग लगाकर भोजन करना आदि बातों का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में है। नंद जी के यहाँ आनेवाला 'पाँड़े' स्थान लीपकर अलग भोजन बनाने बैठता है। भोजन तैयार हो जाने पर भोग लगाने के लिए आँख मूँदता है कि कृष्ण आकर 'मिष्ठ पाक' जूठा देते हैं। तब यशोदा बहुत विनय करके सारा सामान फिर मँगा देती हैं और पाँड़े जी पुन भोजन बनाने बैठते हैं[२२]। 'ब्राह्मण' या पंडित, ज्योतिषी का काम करनेवाला भी

× × ×

पाँय पखारि पूजि अँजुली ले तब द्विज पै माँग्यो अनुसासन—परमा ५८।

१८ पुरोहित आयो नृप के द्वारे।

× × ×

पिता-सदन कुल मोहित मानव जोड कर चरन पखारे—परमा कीर्तन १ ३।

१९ बोले ब्रज के 'द्विज' बड़भागी जिनकू दुती मई लौ लागी।

स्वच्छ सुगंध सलिल अन्हवायें विप्रन कंचन तिलक करायें।

—नन्द, दशम पृ २१७।

२ गोप बधू दधि-मंथन लागीं विप्र पढ़न लागे वेद—परमा कीर्तन ७४।

२१ करयो पाक मोहित अपनी रुचि विप्रन विविध निवारे—परमा कीर्तन १ ३।

२२.क महरान तैं 'पाँड़े' आयो।

ब्रज घर-घर बूझत नंद-राउर पुत्र भयो सुनि क उठि धायो।

पहुँच्यौ आइ नंद के द्वारें जसुमति देखि अनंद बढ़ायो।

पाँइ धोइ भीतर बैठारयो भोजन कौं निज भवन लिपायो।

जो भावै सो भोजन कीजै विप्र मनहिं अति हर्ष बढ़ायो।

बड़ी बैस विधि भयो दाहिनो धनि जसुमति ऐसो सुत जायो।

धेनु दुहाइ दूध लै आई, 'पाँड़े' रुचि करि खीर चढ़ायो।

घृत मिष्ठान खीर मिश्रित करि परसि कृष्ण हित ध्यान लगायो।

कहा गया है। परमानंददास ने इसी उद्देश्य से यशोदा के पास एक 'पंडित' के आने की बात लिखी है[२३]।

कंस का दरबारी श्रीधर 'बाँभन' भी 'ब्राह्मण' वर्ग का है जो श्रीकृष्ण को मारने के उद्देश्य से गोकुल आता है। बाँभन होकर भी क्रूर कर्म करनेवाले को 'कसाई' कहा गया है। श्रीधर बाँभन इसी प्रकार का था;[२४] किन्तु ब्राह्मण होने के कारण ही नीच और कुकर्मा होने पर भी वह अवध्य समझा जाता है। स्वयं श्रीकृष्ण का कथन है कि 'बाँभन' को मारना उचित नहीं, अंग-भंग कर देना ही उसके क्रूर कर्म का पर्याप्त दंड है[२५]।

आ अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय—अष्टछाप-काव्य में क्षत्रिय के लिए 'खत्री', 'ठाकुर' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[२६]। भ्रमरगीत प्रसंग में 'ठाकुर' शब्द स्वामी के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है[२७]। जब गोपियाँ ऊधव से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि

नैन उघारि विप्र जौ देखै खात कन्हैया देखिन पायौ।
देखौ आइ जसोदा सुत-कृति सिद्ध पाक इहिं आइ जुठायौ।
महरि बिनय करि दुहुँ कर जोरे घृत-मधु-पय फिरि बहुत मँगायौ।
—सा १-२४८।

ख 'पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै'।
करि-करि पाक जबै अर्पत है 'तबहीं तब छ्वै आवै'।
इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यौ ताकौं स्याम खिझावै—सा १०-२४९।

२३ सुनो हो जसोदा आज कहूँ तैं गोकुल में 'एक पंडित आयो।
अपने सुत को हाथ दिखावौ सो कर जो विधि निरमायो—परमा ५८।

२४ श्रीधर बाँभन करम कसाई कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई।
प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नन्द सुवन कौं आवौं मारी—सा १ ५७।

२५ बाँभन मारे नहीं भलाई अंग-भंग माप्यो मैं देउ कसाई—सा १ ५६।

२६ क मारे छत्री इकबिस बार—सा ९ ११।

ख ऐसौ को ठाकुर जनकारन दुख सहि, भलो मनावै—सा १ १२२।

ग प्रो० सिल्वें लेवी के मतानुसार 'ठक्कुर' अथवा 'ठाकुर' शब्द का उद्गम प्राचीन तुर्की शब्द 'तीगिन' है।
—डा० सुनीति कुमार चैटर्जी भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृ० १ १।

२७ कत भयो मो गाई को ठाकुर इहि कैसी लरकाई—परमा ऑक ६ ।

कहाँ तो ब्रजाधिप के 'ठाकुर' श्रीकृष्ण और कहाँ कंस की दासी कुब्जा! खूब साथ बना है[२८]।

इ अष्टछाप-काव्य में शूद्र—दृष्टिकोण की उदारता के कारण अष्टछापी कवि किसी की हीनता या तुच्छता की चर्चा करना उचित नहीं समझते। यद्यपि उन्होंने समाज में शूद्र के साथ उच्चवर्गीय व्यक्ति, विशेषतः ब्राह्मण के संबंध की अनुपयुक्तता पर कृष्ण-कुब्जा-संबंध के अनौचित्य को लेकर एक पद में संकेत किया है[२९]।

स आश्रम-व्यवस्था—शारीरिक और मानसिक शक्तियों के नियमित और व्यवस्थित विकास के लिए मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर भारतीय मनीषियों ने उसके जीवन को सौ वर्ष का मानकर उसकी आयु को चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास[१]—में विभाजित किया था। प्रथम आश्रम पचीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर शक्तियों का सम्यक विकास करते हुए विद्याध्ययन के लिए, द्वितीय, विवाह के पश्चात् गृहस्थ-जीवन बिताने और आश्रितों के पालन के लिए, तृतीय चित्तवृत्तियों को संयमित करके लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने और पारलौकिक विषयों का चिंतन-मनन करने के लिए तथा चतुर्थ आश्रम सभी क्षेत्रों में चित्तवृत्तियों का निरोध और इंद्रियों का दमन करके मोक्ष-साधन के लिए निश्चित किया गया था। ये चारों आश्रम ब्राह्मण वर्ग के लिए अनिवार्य थे, अन्य तीन वर्गों के लिए संन्यास-आश्रम नहीं था, प्रारंभिक तीन आश्रम ही थे[११]।

२८. सुनि-सुनि ऊधौ आवति हाँसी। कहँ वै ब्रजाधिप के ठाकुर कहाँ कंस की दासी।
—सा १५४१।

२९. कंस बध्यौ कुबिजा कैं काज।
और नारि हरि कौं न मिली कहुँ, कहा गँवाई लाज॥
जैसें काग हंस की संगति लहसुन संग कपूर।
जैसें कंचन काँच बराबरि गेरू काम सिंदूर॥
भोजन साथ सूद्र बाम्हन के तैसो उनको साथ—सा १५५२।

१. पाणिनि ने चार आश्रमों के लिए ब्रह्मचारिन् गृहपति परिव्राजक तथा भिक्षु शब्दों का उल्लेख किया है।
—डा वासुदेव शरण अग्रवाल, 'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि' पृ ८१।

११. 'शुक्रनीति' ४।३६।८१।

ख. अष्टछाप-काव्य में ब्रह्मचर्याश्रम चर्चा—अष्टछापी कवियों का प्रादुर्भाव होने तक आश्रम-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, अतएव उसका विशद वर्णन उनके काव्य में नहीं मिलता। परन्तु उन कवियों ने अनेक पौराणिक प्रसंगों को भी काव्य का विषय बनाया था इस कारण चारों आश्रमों का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य हुआ है। श्रीकृष्ण के विद्याध्ययन प्रसंग में आचार्य संदीपन की चटसार में सुदामा के साथ उनके पढ़ने की बात कही गयी है[३२] और बहुत दिन बाद भेंट होने पर श्रीकृष्ण ने सुदामा को गुरु-पत्नी की आज्ञा से लकड़ी तोड़ने के लिए वन जाने की बात का स्मरण कराया है[३३]। शिक्षा की समाप्ति पर समावर्तन के पूर्व आचार्य को 'दक्षिणा' देने की बात भी अष्टछाप-काव्य में मिलती है। श्रीकृष्ण अपने आचार्य से 'दक्षिणा' माँगने की प्रार्थना करते हैं और गुरु-पत्नी की आज्ञा से उनके मृतक-सुत यमपुर से ला देने पर उन्हें गुरुवर का आशीर्वाद प्राप्त होता है[३४]। हिरण्यकशिपु ने बालक प्रह्लाद को पाँच वर्ष की आयु में ही आचार्य संडामर्क को बुलाकर उनके साथ राजनीति पढ़ने के लिए चटसार भेज दिया था[३५]। गुरुकुल के प्रति सदैव श्रद्धा रखना और उसकी सेवा करना ही व्यक्ति का कर्तव्य है, उसका अपकार करना पाप है। महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि के मारे जाने के पाप का भागी धर्मराज युधिष्ठिर अपने को समझ बहुत दुखी होते हैं और उसका निवारण करने के लिए वन जाकर तपस्या करने की बात कहते हैं[३६]।

३२. संदीपन कैं हम अरु सुदामा पढ़े एक चटसार—सा —४२११।

३३ क. गुरु-गृह हम जब बन कौं जात।
तोरत हमरे बदलैं लकरी सहि सब दुख गात—सा ४२११।

ख. वह सुधि आवत तोहि सुदामा।
जब हम तुम बन गए लकरियनि पठये गुरु की भामा—सा ४२११।

३४ गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ दछिना कहौ सो देउँ मँगाई।
गुरु-पतिनी कह्यौ पुत्र हमारे मृतक भये सो देहु जिवाई॥
आनि दिए गुरु-सुत जमपुर तैं तब गुरुदेव असीस सुनाई—सा १४ २।

३५. पाँच बरस को भयौ जब जान्यौ संडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनकैं सँग चटसार पठायौ, राम-नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हारि राजनीति कहि बारंबारि—सा ७-२।

३६ गुरुकुल-हत्या मोमैं भई। याप कौ कैसी करिहै दई।

× × ×

आ *अष्टछाप-काव्य में गृहस्थाश्रम-चर्चा*—अष्टछापी कवियों में सूरदास ने तो अनेक पौराणिक व्यक्तियों के साथ श्रीकृष्ण के गृहस्थ-जीवन का वर्णन किया है, परन्तु अन्य कवियों ने इन प्रसंगों को विस्तार से नहीं लिखा है। गृहस्थाश्रम का प्रारंभ विवाह से होता है और विवाह की आयु शास्त्रीय दृष्टि से पचीस वर्ष के आस-पास मानी गयी है परन्तु सूरदास के कपिलदेव सामान्य रूप से पुत्र के किशोर होते ही माता-पिता द्वारा उसका विवाह कर दिये जाने की बात कहते हैं जिसके पश्चात् वह धनोपार्जन में लगता है[१७]।

इ *अष्टछाप-काव्य में वानप्रस्थाश्रम चर्चा*—इस आश्रम का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में विस्तार से नहीं है। ऊधव ने एक पद में गोपियों से श्रीकृष्ण के ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सभी कुछ होने की बात अवश्य कही है[१८]।

ई *अष्टछाप काव्य में संन्यासाश्रम चर्चा*—इस आश्रम का उल्लेख लौकिक सुखों के त्याग के प्रसंग में 'ऊधव-गोपी-संवाद' में हुआ है। ऊधव जब व्रजबालाओं को सुखों की कामना त्यागने का उपदेश देते हैं तब उत्तर में गोपियाँ व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि रसिकप्रवर श्रीकृष्ण (और बलराम) के साथी अभि-मनोवृत्तिधारी इस व्यक्ति को संन्यास से क्या लेना-देना है[१९]।

२ *अष्टछाप-काव्य में मनोविनोद*—

जीवन में मनोविनोद का महत्त्वपूर्ण स्थान है और बाल्यकाल से लेकर बुढ़ापे तक वह इसके लिए लालायित रहता है। प्रारंभिक अवस्था में इसकी आवश्यकता शारीरिक शक्तियों के विकास के लिए होती है तो प्रौढ़ावस्था में जीविका

गुरु-दक्षा मान दै चार। चली सो छूटै कौन उपाई
× × ×
करि तपस्या पाप निवारौं। राजपुत्र नाहीं सिर धारौं—सा १-२११।

१७ कहीं व्यतीत बालक जब होइ कछुक किशोर होइ पुनि सोइ।
सुन्दर नारी ताहि बिवाहै धनन बनन बहु बिधि सो चाहै।
पुनि लछमी हित उद्यम करै — —सा ३.१३।

१८. चातुर्वि वानप्रस्थ ब्रह्मचारी—सा ४१४।

१९ स्याम राम की संगी पर अभि बीजत का संन्यास—सा १५८१।

के श्रम की व्यस्तता-जनित क्लांति या शिथिलता को दूर करने के लिए मनोविनोद की आनन्ददायी योजना मनुष्य मात्र बनाता रहता है। अतएव अवस्था के विकास के साथ साथ मनोविनोद के साधन भी बदलते रहते हैं। बाल्यकाल में दौड़-धूप के ऐसे कार्यक्रमों से हमारा मनोरंजन होता है जो जल्दी थकानेवाले होने के कारण शरीर को स्वस्थ और मांसल बनाते हैं। ऐसे कार्यक्रम सामान्यतया युवावस्था तक चलते रहते हैं। उसके पश्चात् मनोरंजन के अपेक्षाकृत कम दौड़-धूप वाले कार्यक्रमों में वह अधिक भाग लेता है। इस प्रकार, स्थूल रूप से मनोरंजन के साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम में बाल्यकाल के खेल और विनोद आते हैं और द्वितीय में मनोविनोद के वे साधन आते हैं जिनकी आवश्यकता अवस्था के उत्तरार्द्ध-काल में होती है। दोनों वर्गों के कार्यक्रम समाज के बीच में चलते हैं, और घर से बाहर आकर, समाज के अन्य व्यक्तियों सहित उनमें भाग लेने पर सहयोग की भावना के विकास के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी होता है।

क. *बाल्यावस्था के खेल और विनोद*—शिशु की बहुत छोटी अवस्था में माता-पिता तथा अन्य संबंधी कभी तो तरह तरह से बातें करके उसका मन बहलाते हैं, और कभी खेलने के लिए उसको खिलौने देते हैं। छोटे बालकों के खेलने के खिलौने प्राय उनके पालनों से भी बाँध दिये जाते हैं। विश्वकर्मा द्वारा रचे गये पालने में लटकते रंग-बिरंगे रत्नों खिलौनों और मोतियों की झालरों को देखकर शिशु कृष्ण बार-बार प्रसन्न होकर किलकारी भरता है[४]। सूरदास के एक पद में 'सोने की उड़न चिरैया' की चर्चा की गयी है[५]। सोने की तो नहीं हाँ कागज मिट्टी तार रुई आदि की चिड़ियाँ आज भी बाजार में बच्चों के खिलौने के रूप में बिकती हैं। इसीलिए, संभव है, शिशु कृष्ण के खिलौनों में सोने की उड़न चिरैया' जैसी चीजें भी रही हों।

कभी कभी शिशु का विनोद करने के लिए 'झुनझुना' या 'झुनझुना' बजाकर उसे रिझाया जाता है। नन्ददास की यशोदा पालने में लेटे हुए शिशु कृष्ण का मन

४ रेसम बनाइ नव रतन पालनौ लटकन बहुत पिरोजा-लाल।
मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना' रचे बिसकर्मा सुतहार।
'देखि देखि किलकत दँतियाँ द्वै' राजत क्रीड़त विविध बिहार—सा १०-८४।

५ कित सोने की उड़न चिरैया कारी भाँति दिखाई—सा ११६८।

इसी प्रकार कहलाती है[४२]। जब बालक कुछ और बड़ा हो जाता है तब उसको स्वयं खेलने के लिए 'झुनझुना' या 'झुनझुना' दिया जाता है जिसे बजाकर वह बहुत प्रसन्न होता है। सूरदास का कृष्ण तो 'झुनझुना' बजाकर कवि को उसी प्रकार हँसता जान पड़ता है जैसे शिव डमरू बजाकर हँसते हैं[४३]। अपने दोनों बालकों, बलराम और श्रीकृष्ण, के लिए तरह-तरह के मूल्यवान खिलौने खरीदने नंद जी कभी-कभी मथुरा जाते हैं। ऐसे खिलौने 'रत्नों' के मूल्य के होते हैं[४४]। साधारण खिलौने माता अपने गाँव में ही खरीद लेती है। बालक कृष्ण के 'भौंरा चकडोरी' माँगने पर सूरदास की यशोदा कहती है—कल ही मैंने उन्हें खरीद लिया था आले पर दोनों चीज़ें रक्खी हैं जाकर ले लो[४५]।

बालक कृष्ण जब और बड़ा होकर घर से बाहर जाता है तब अपनी अवस्था के दूसरे बालकों से उसका परिचय होता है। धीरे-धीरे परिचय के घनिष्ठ होने पर वह उनका साथी या सखा बन जाता है। तब वह सामाजिक जीवन का पहला पाठ पढ़ता और सभी साथियों के साथ खेलने लगता है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित इस अवस्था के खेल तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग में 'चिंगी' या 'फिरकी' 'बट्टा-बट्टी' 'चकई' या भौंरा चकडोरी गुड़ियाँ' आदि के खेल आते हैं जिनके लिए ज्यादा दौड़-धूप की आवश्यकता नहीं होती। दूसरे वर्ग में 'आँख-मिचौनी', 'छुआछुऔवल', 'घुड़ारोहण' 'बैल-बैल' 'कंदुक-क्रीड़ा' 'चौगान-बटा' आदि खेल आते हैं जिनमें अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती है। तीसरा वर्ग 'पतंगों' आदि अन्य खेलों का है। अष्टछाप-काव्य में बालकों के उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा आयी है।

अ कम दौड़-धूप के खेल—परमानंददास के कृष्ण भवन के भीतर अनेक

४२ सुंदर स्याम 'पालने झूले'।
जसुमति माय निकट अति बैठी निरखि निरखि मन फूले।
'झुनझुना लेके बजावत' कवि सौं लाल ही के अनुकूले—नंद भाग १ परि ८।
४३ झुनझुना कर हँसत हरि हर नचत डमरू बजाइ—सा १ १७।
४४ नाना विधि के 'विविध खिलौना रतननि अधिक अमोले।
ताको लेन गए मथुरा को" .... "—सा ४११।
४५ दै मैया भौंरा चकडोरी।
जाइ लेहु आरे पर राखी कालि मोल लै राखे कोरी'—सा ६६१।

बालकों के साथ कभी डोरी[४६] से 'बंगी' नचाते फिरते हैं,[४७] और कभी फिरकी और 'भौंरा-चकडोरी' से खेलते हैं[४८]। 'चकई' का स्थान बालक कृष्ण के प्रिय खिलौनों में जान पड़ता है, तभी तो जब वह 'चंद-खिलौने' के लिए मचलता है तब माता यशोदा 'चकई-डोरि' का प्रलोभन देकर उसका ध्यान बँटाना चाहती हैं[४९]। 'भौंरा' आजकल के लट्टू की तरह डोरी में बाँधकर खेला जाता था। सूरदास और परमानंद दास, दोनों के कृष्ण पाँच-सात लड़कों के साथ कभी नंद-भवन के द्वार पर और कभी ब्रज की सँकरी गलियों में भौंरा चकडोरी खेलते फिरते हैं[५०]। इसी प्रकार काठ का 'घट्टे बट्टे' नामक खिलौना और पी-पी करके बजनेवाला 'पपैया'[५१] भी

४६ गोपाल 'फिरावत हैं बंगी ।
भीतर भवन भरे सब बालक नाना बिधि बहु रंगी ॥
सहज सुभाव 'डारी नेंचत हैं' लेत उछंग कर पै संगी—परमा १२५।

४७ 'चकई' के बीच के भाग में डोर लपेट कर उसे इस तरह हवा में फेंका जाता है कि खींचने पर वह उसमें फिर लिपट जाती है। चकडोरी का तात्पर्य इसी से है। चकई में डोर खुलने और लिपटने की इसी क्रिया को लक्षित करके गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—
ऊधौ 'हरि गुन हम चकडोर ।
× × ×
चकडोरी की रीति गहे फिरि गुनही सौं लपटाइ' ॥
सूर सहज गुन गँथि हमारें दई स्याम उर माँहि—सा १५४४।

४८ प्रेम घुमरे खेलत हैं 'फिरकी भँभना' मनहि सलौना ।
घघाघुट्टा नौबत चकई मित्र सु सबही करौं ना—परमा १२६।

४९ ऐसो हठी बालगोविंदा ।
अपने कर गहि गगन बतावत 'खेलन को माँगे चंदा ।
'चकई डोरि पाट के लटकन' लेहु मेरे लाल खिलौना'—१ १९८।

५० गोपाल माई खेलत हैं चकडोरी ।
लरिका पाँच-सात सँग लीने निपट साँकरी खोरी—परमा १२४।
त दे मैया भौंरा चकडोरी ।
× × ×
बोलि लिए सब सखा संग के खेलत कान्ह नन्द की पौरी ।
तैसेइ हरि तैसेइ सब बालक, कर भौंरा चकरिनि की जोरी—सा ९९६।

५१ 'पपैया' और बच्चों का बाजा भी प्रिय खिलौना है और आम की गुठली की भीतरी

बालकों को सदा प्रिय रहता है। इन दोनों के साथ उक्त सभी खेल-खिलौनों की चर्चा परमानंददास के एक पद में मिलती है⁵²। 'नोई' का स्थान खिलौनों में तो नहीं है, परन्तु बालक कृष्ण की प्रिय वस्तुओं में वह भी है जिसको सम्हालकर रखने की बात वे ऊधव के द्वारा माता यशोदा से कहलाते हैं⁵³। 'बिषान और बाँसुरी' जैसे खिलौनों में भी बालक कृष्ण की रुचि बराबर रही है। बाँसुरी या मुरली बजाने में तो वे अतुलनीय थे ही, 'बिषान' जैसे बाजे दूसरे बालकों को भी बहुत प्रिय थे।

आ. दौड़-धूप के खेल—घर से बाहर आने और समवयस्क बालकों से परिचय होने के पश्चात् बालकों का मन दौड़-धूप के खेलों में अधिक लगता है। मामीण बालकों को इसके लिए वातावरण और अवकाश, दोनों सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। गाय चराने जाने पर हरे-भरे मैदानों में दौड़ने, फलदार वृक्षों पर चढ़ने नदी-सरोवर में स्नान करने आदि में उन्हें खूब आनन्द आता है। दौड़-धूप के इन्हीं सब खेलों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। इन कवियों द्वारा वर्णित आँखमिचौनी, छुआ-छुऔवल, वृक्षारोहण, वृषभारोहण, कंदुक-क्रीड़ा और चौगान-बटा आदि को दौड़-धूप के खेलों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

१. आँख-मिचौनी—पाँच-छह वर्ष का बालक जब घर से बाहर जाकर खेलना चाहता है, तब माता यशोदा का वात्सल्य उसकी सुरक्षा के विचार से अपने

सींगी को घिस कर अथवा बाँस के टुकड़ों को चीर कर सरलता से बना लिया जाता है—लेखिका

५२. लाल आज ल्यावत सुरँग खिलौना।
काम सबद उपटत है 'पपीहा' बड़ी मधुर मिलौना।
प्रेम घुमेरे लेत है फिरकी 'झुँझना' मनहि सलौना।
'चटुआचटटा' 'चौवत' 'चकई' हित जु सची करौना।
भुमिरि भूमि झुकि बार देखत 'हमचंगी' मनु छौना—परमा १२१।

५३. नाई बैंत बिषान बाँसुरी द्वार अबेर सबेरें।
लै जनि जाय चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरे—सा ३४३१।
विशेष—यहाँ 'नोई' को भी खिलौनों के साथ गिनाने का संकेत यह जान पड़ता है कि बालक कृष्ण के गाय दुहने की 'नोई' साधारण ग्वालों की 'नोई' से भिन्न बहुत सुन्दर होगी जिसका उनकी प्रिय वस्तुओं में गिना जाना स्वाभाविक ही है—लेखिका।

ही सामने खेलने की प्रेरणा देता है। अपने पुत्र के संगी-साथियों को बुलाकर वह 'आँख-मिचौनी' का खेल खिलाती है जिसमें एक बालक की आँख मूँदी जाती है, बाकी सब भागकर इधर उधर छिप जाते हैं। आँख खोल दी जाने पर 'चोर' बालक छिपे हुए साथियों को ढूँढ़ने निकलता है। उसके हटते ही छिपे बालक दौड़-दौड़कर आँख मूँदनेवाले को छूते हैं। जिस बालक को इसका अवसर नहीं मिलता और जो आँख मूँदनेवाले को छूने के पहले ही 'चोर' बालक द्वारा छू लिया जाता है, वह आगे के लिए 'चोर' हो जाता है और तब उसकी आँख मूँदी जाती है। सूरदास की यशोदा बलराम और कृष्ण को आँख से ओझल नहीं करना चाहती। इसलिए वह दोनों पुत्रों से कहती है—अपने सब साथियों को बुलाकर यहीं खेलो। बालक कृष्ण इसमें सहमत हो जाता है और 'आँख-मिचौनी' का खेल खेलने के लिए अपने सखा ग्वाल-बालों को घर बुलाता है। 'आँख कौन मूँदेगा' का प्रश्न उठते ही यशोदा का सहृदय वात्सल्यमयी माता का नाम ले देता है[५४]। खेल शुरू होता है। श्याम स्वयं 'चोर' बनता है और माता यशोदा[५५] उसकी आँख मूँदती है। सब ग्वाल-बाल इधर उधर छिप जाते हैं। सबके छिप जाने पर 'चोर' की आँख खोल दी जाती है और वह छिपे हुए खिलाड़ियों को खोज कर छूने दौड़ता है। 'चोर' के इधर उधर जाते ही छिपे हुए ग्वाल-बाल दौड़-दौड़ कर माता यशोदा को छूते हैं[५६]।

इस खेल के प्रसंग में कवि ने माता यशोदा के विनोद-भाव और बालक कृष्ण के स्पर्धा-भाव के संबंध में रोचक संकेत किये हैं। छोटे भाई को बड़े भाई से जितवा कर दोनों की बाल-लीला देखने के लोभ से माता यशोदा आँख मूँदने की

५४ बोलि लेहु हलधर भैया कौं।
मेरे आगैं खेल करौ कछु, सुख दीजै मैया कौं।
'मैं मूँदौं हरि आँखि तुम्हारी' बालक रहैं लुकाई।
हरषि 'स्याम सब सखा बुलाए खेलन 'आँखमुँदाई'।
हलधर कह्यौ 'आँखि को मूँदै हरि कह्यौ मातु जसोदा—सा १ २१६।

५५ तब हरि 'अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने जहँ-तहँ गए भगाई—सा १ १४।

५६ दौरि दौरि बालक सब आवत, 'छुवत महरि कौ गात'—सा १ २४।

अवस्था में बालक कृष्ण के कान में बलराम के छिपने का स्थान बता देती है परन्तु कृष्ण के मन में प्रतिद्वंद्विता का भाव बलराम के प्रति नहीं श्रीदामा के प्रति है। इसलिए वह स्पष्ट कह देता है—मुझे बलदाऊ से नहीं, श्रीदामा से से काम है[५७]। सब बालक यशोदा को छू लेते हैं, केवल सुबल और श्रीदामा बच रहते हैं। तभी श्रीकृष्ण दौड़कर अपने प्रतिद्वंद्वी को छूकर 'चोर' बना देता है। यह देखकर सब बालक श्रीदामा को 'चोर' 'चोर' कहकर बहुत प्रसन्न होते हैं और आँख मुँदाने के लिए अब उसे यशोदा के पास आना पड़ता है[५८]।

परमानंददास ने भी श्रीकृष्ण के 'आँख-मिचौनी' के खेल की ओर संकेत किया है[५९] तथा सारावली' में भी 'आँखमिचौनी' खेले जाने का उल्लेख है[६०]।

२ छुआ-छुऔवल—बालक कृष्ण जब कुछ और बड़ा होकर घर के बाहर आ जाता है तब अपने सखाओं के साथ दौड़ कर छूने का खेल खेलता है। छुआछुऔवल के इस खेल में एक लड़का 'चोर' बनता है जो संकेत होते ही भागनेवाले दूसरे लड़कों को दौड़ कर छूता है[६१]। इस खेल में जीत उसकी होती है जो खूब तेज दौड़ता हो। बालक कृष्ण की अभी छोटी अवस्था है और दौड़ने का उसे अभ्यास भी नहीं है। इसलिए दौड़कर खेलते हुए दूसरे बालकों के साथ जब वह भी खेलना चाहता है तब हलधर उसे मना करते हैं। अपने बड़े भाई के रोकने पर कृष्ण तत्काल उत्तर देता है—मेरे शरीर में भी बल है, मैं भी दौड़ना जानता हूँ और जब मेरी जोड़ी श्रीदामा आगे जा रहा है तब मैं कैसे पीछे

५७ 'कान लागि कह्यौ जननि जसोदा वा घर में बलराम।
बलदाऊ कौं आवन दैहौं श्रीदामा सौं काम'—सा १०-२४।
५८ सब आए, रहे सुबल श्रीदामा हारे अब कैं तात।
सौर पारि हरि सुबलहिं आए, 'गायौ श्रीदामा आ'।
दै दै मोहिं नन्द बबा की, 'जननी पै लै जाइ'।
हँसि हँसि तारी देत सखा सब भए श्रीदामा चोर'—सा १ २४।
५९ 'मूँदे दृग' दुरि हो ग्वाल तुम दीने बहाँ बताई'—परमा १२१।
६० कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली 'आँख मीचनी-ख्याल'—सारा ६ ४।
६१ 'खेलत स्याम ग्वालनि संग।
सुबल हलधर अरु श्रीदामा करत नाना रंग।
हाथ तारी देत भाजत सबै करि करि होड़'—सा १ २११।

रह सकता है[१२] ? इधर श्रीदामा ने भी श्रीकृष्ण की बात सुनी, वह भी किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। उसने तत्काल श्याम को दौड़ने की चुनौती दी। सब साथियों के सामने दी गयी चुनौती को भला श्याम कैसे न स्वीकार करता ! तब दोनों में दौड़ हुई श्याम आगे, श्रीदामा पीछे। जरा देर ही में श्रीदामा ने तेज दौड़कर कृष्ण को छू लिया[१३]।

खेल में जीतनेवाले को स्वभावत खुशी होती है और हारनेवाला खिसियाकर बहाने बताने लगता है। बालक कृष्ण भी श्रीदामा से हार कर कहने लगा—तुमने मुझे छुआ क्या, मैं तो जान कर खड़ा हो गया था[१४]। इस प्रकार झगड़ा बढ़ा। सच्ची बात यह थी कि कृष्ण हार गया था; इसीलिए सब बालक श्रीदामा की ओर थे और श्याम को खिझा रहे थे। कृष्ण को कुछ आशा बड़े भाई बलराम से थी। उसने भी श्याम का पक्ष लेकर कहा—कृष्ण को कुछ आता-जाता है नहीं हार-जीत समझने की भी बुद्धि नहीं है। इसी से हार जाने पर दूसरों से झगड़ा करता है। और करे भी क्यों न ? न इसके माँ है, न बाप। खेल में हार की बात से खीझा हुआ श्याम भाई का अपने प्रति यह 'अन्याय' देखकर रोता हुआ घर की ओर चल पड़ा[१५]। सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने दौड़ के खेलों का इस प्रकार वर्णन नहीं किया है।

२ वृक्षारोहण[१६]—बालक कृष्ण कुछ और बड़ा होने पर सखाओं के

१२. बरजे हलधर स्याम 'तुम जनि चोट लागे गोड़'।
तब कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात—सा १ २११।

१३ उठे बोलि तबै श्रीदामा जाहु तारी मारि।
आगैं हरि पाछैं श्रीदामा धरयौ स्याम हँकारि—सा १०-२११।

१४ जानि कै मैं रह्यो ठाढ़ौ छुवत कहा जु मोहिं—सा १ -२११।

१५. सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने।
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
हारि जीत कछु नैंकु न समुझत लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखनि सौं झगरत यह कहि दियौ पठाइ—सा १ -२१४।

१६ श्री हरिदत्त शास्त्री ने इस खेल को 'मर्कटोत्प्लवन-क्रीडा' कहा है—'कल्याण', हिंदू संस्कृति अंक में प्रकाशित 'भारतीय प्राचीन क्रीडाएँ' शीर्षक लेख, पृ ७२१।

साथ गाय चराने जाता है। वन में पहुँचने पर जब गायें चरने लगती हैं तब ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण तरह-तरह के खेल खेलता है जिनमें एक है वृक्षों पर चढ़कर छूने का खेल[१७]। साधारण दौड़ से इसमें अंतर यह है कि वह खेल गली या मैदान में होता है और यह खुले स्थान में जहाँ वृक्ष अधिक हों। दौड़ के साधारण खेल में जीत होती है तेज दौड़नेवाले की, लेकिन इस खेल में जीतता वह है जो बंदर की तरह फुर्ती से पेड़ पर चढ़ जाता है और जरूरत पड़ने पर जमीन पर कूद सकता या एक डाल से दूसरी डाल पर पहुँच सकता है। इसको 'चकापकड़ी' का खेल भी कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का बयान 'सारावली' में मिलता है जिसमें 'श्यामल' डार पर ग्वाल-बालों के चढ़ने और 'विटप' से धरती पर कूदकर 'चकापकड़ी' का खेल खेले जाने की बात कही गयी है[१८]।

४. बैल-बैल—इस खेल में कई बालक 'बैल' बनने के लिए उसके रंग से मिलता-जुलता कपड़ा ओढ़ कर वैसा ही शब्द करके आपस में लड़ते हैं। कभी-कभी बैलों के साथ कुछ बालक 'गाय' भी बनते हैं। दूसरे पशु-पक्षियों का रूप धरना या केवल बोली बोलना भी इस खेल का एक अंग है। इस खेल को 'कृत्रिम वृषभ-क्रीड़ा' कह सकते हैं। नंददास ने कृष्ण की इस क्रीड़ा का उल्लेख 'दशम स्कंध' में करते हुए लिखा है कि कृत्रिम गाय-बैल बना कर, उनका-सा ही शब्द बुलवाकर कृष्ण अपने सखाओं को लड़ाते हैं[१९]।

५. कंदुक-क्रीड़ा—घर के बाहर खेले जानेवाले दौड़ धूप के खेलों में 'कंदुक-क्रीड़ा' या गेंद का खेल प्रायः सभी देशों और कालों के बालकों को बहुत प्रिय

१७. गाँवों में आज भी बालक पेड़ पर चढ़कर एक दूसरे को छूने का खेल खेलते हैं जिसको 'लम्बीचार' कहते हैं। इसका तात्पर्य 'लचीली डार' से जान पड़ता है जिस पर बालक जल्दी चढ़ सकें और जिससे सरलता से कूद भी सकें—लेखिका।

१८. चकापकड़ी को खेल सगरनि में उत्तम है रस-रेल।
जहँ श्यामल डार बिटप की गहत सगरनि सँभार।
कूदि कूदि धरनी सब धावत खेलत खेल बिलवार—सारा० ६४५।

१९. कहुँ कृत्रिम गो-वृषभ बनावत खेलत नाचत तिनहिं लरावत।
—नंद० दशम, पृ० २८०।

रहा है[७०]। अष्टछाप-काव्य में श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की कंदुक-क्रीड़ा का वर्णन हुआ है[७१]। श्रीकृष्ण स्वयं गेंद खेलने का प्रस्ताव करते और आकर उसे ले आने का आग्रह करते हैं[७२]। गेंद का खेल भी सीधे-सादे ढंग से होता है। एक बालक गेंद लेता है और भागते हुए दूसरे साथियों को गेंद फेंक कर मारता है। जब जो गेंद पा जाता है, वही मारनेवाले को गेंद से मारता है और दूसरे तरह-तरह से झुक कर, दायें-बायें हट कर उस मार से अपने को बचाते हैं[७३]। इस खेल में भी श्रीदामा ही कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी है। हाथ में गेंद आते ही कृष्ण उसे ही ताक कर मारते हैं। श्रीदामा फुर्ती से एक ओर हट कर बच जाता है और गेंद कालीदह में जा गिरता है[७४]।

६ चौगान-बटा—गेंद या 'बटा' को एक सिरे पर टेढ़े या मुड़े हुए डंडे से, जिसे 'चौगान' कहते हैं, मार कर खेलने का खेल 'चौगान-बटा' कहलाता है। यह खेल बालकों के साथ युवकों को भी बहुत प्रिय रहा है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। बालकों के इस खेल में 'बटा' को चौगान से मारने या ढरकाने का ही वर्णन अधिक मिलता है। श्रीकृष्ण की इस खेल में बड़ी रुचि रही है और माता यशोदा उनका 'चौगान-बटा' सम्हाल कर रखती फिरती है[७५]। कृष्ण और बलराम

७० वाल्मीकि रामायण में 'कंदुक' का उल्लेख रावण और सुग्रीव के द्वंद्व-युद्ध के वर्णन में उपमान-रूप में हुआ है—६ ४ १३।

७१. 'रामायण-कालीन संस्कृति' में इस खेल का प्रचार अधिकतर स्त्रियों में होना बताया गया है—पृ १११।

७२. गेंद खेलत बहुत बनि है आनो कोऊ जाइ—सा ५१२।

७३ खेलत स्याम सखा लिए संग।
'इक मारत इक रोकत इक भाजत करि नाना रंग।
'मार परस्पर करत आपु मैं अति आनंद भए मन माहिं।
मारि भजत जो जाहि ताहि सो मारत लेत आपनो दाउँ'—सा ५११।

७४ स्याम सखा कौं गेंद चलाई'।
'श्रीदामा मुरि अंग बचायौ' गेंद परी कालीदह मांही—सा ५१५।

७५. बार-बार हरि मातहिं बूझत कहि 'चौगान कहाँ है'।
दधि-मथनी के पाछे देखौ लै मैं धरयो तहाँ है।
लै 'चौगान बटा' अपनैं कर प्रभु आए घर बाहर।
सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि खेलौगे किहिं ठाहर—सा १०-२४१।

सुबल, श्रीदामा आदि ग्वाल-बालों को दो दलों में बाँट लेते हैं और तब धरती पर 'घटा' डालकर खेल 'शम' जाता है[७६]। कृष्ण जब हारने लगते हैं तब बाल स्वाभावानुसार कुछ 'पैल' कर बैठते हैं[७७]। परमानंददास ने वृन्दावन के मैदान में 'बाजि' पर चढ़ कर चौगान खेलने का वर्णन किया है[७८]।

अन्य खेल — इस वर्ग में पतंग' उड़ाना कथा-कहानी कहना और पहेली बूझना जैसे वे खेल आते हैं जिनमें न ज्यादा दौड़-धूप चाहिए और न अधिक संगी-साथी ही।

१ पतंग—श्रीकृष्ण या उनके सखाओं के पतंग या चंग उड़ाने की चर्चा सूरदास के काव्य में नहीं है और अष्टछाप के अन्य कवियों में केवल परमानन्द दास ने इसका वर्णन किया है। उनके कान्ह अटारी पर चढ़ कर चंग उड़ाते हैं[७९]। कृष्ण के साथ दूसरे ग्वाल-बाल भी पतंग या गुड़ी उड़ाने में रुचि लेते हैं । पतंग उड़ाने पर बिना 'पेंच' लड़ाए उड़ानेवालों को उसमें पूरा आनंद नहीं आता। परमानंददास ने भी पतंगों के पेंच लड़ाये जाने की ओर एक पद में संकेत किया है[८१]। सूरदास ने श्रीकृष्ण या उनके सखाओं द्वारा तो पतंग या 'गुड़ी' नहीं

७६. कान्ह हलधर बीर दोऊ भुजा बल अति जोर।
सुबल श्रीदामा सुदामा 'वे भए इक ओर'।
'और सखा बँटाइ लीन्हे गोप बालक-वृंद।
चले 'ब्रज की खोरि खेलत' अति उमँगि नँद नंद।
घटा धरनी डारि दीनौं ले चले हरषाइ।
आपु अपनी घात निरखत खेल जम्यो बनाइ—सा १०-२४४।
७७ सखा जीतत स्याम जाने 'तब करी कछु पैल'—सा १०-२४४।
७८ गोपाल माई खेलत हैं चौगान।
ब्रजकुमार बालक सँग लीने वृन्दावन मैदान।
चंचल बाजि नचावत आवत होड़ लगावत प्रान।
तब ही हरत ले गेंद 'चलावत' करत बाबा की आन—परमा ६५।
७९ कान्ह अटा पर 'चंग उड़ावत'—परमा ६२८।
८० गुड़ी उड़ावन लागे लाल'।
सुंदर पतँग' बाँधि मनमोहन नाचत हैं मोरन के ताल।
कोउ पकरत कोउ ऐंचत कोउ देखत नैन बिसाल—परमा ६४।
८१ कोउ गुड़ी ले उरझावत आपुन पेंचत और रसाल—परमा ६४।

अज्ञात है, परन्तु उसकी चर्चा अवश्य की है[८१] जिससे पता चलता है कि उनके समय में पतंग उड़ाना निश्चय ही मनोरंजन के प्रमुख साधनों में था।

२ *कहानी सुनाना*—मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-वर्द्धन के उद्देश्य से बालक-बालिकाओं को सोते समय दादा-दादी या नाना-नानी प्रायः कहानियाँ सुनाया करते हैं। कभी-कभी लंबी यात्रा में भी साथ के बालकों का मन बहलाये रखने के उद्देश्य से प्राचीन कथाएँ सुनायी जाती हैं। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का मनोरंजन इसी प्रकार किया था[८३]। अष्टछाप-काव्य में यात्रा प्रसंग में तो कहानी कहने की बात कहीं आती नहीं है, हाँ परमानंददास के कृष्ण-बलराम जब रात को सोते हैं तब माता यशोदा अवश्य उन्हें कहानी सुनाती हैं जिसे दोनों बड़े ध्यान से सुनते हैं[८४]। सूरदास ने केवल कृष्ण को राम कथा सुनाये जाने की बात लिखी है जिसे सुनते समय वे बराबर 'हुंकारी' भरते जाते हैं। इस समय तक उनकी स्मृतबुद्धि का इतना विकास हो गया है कि सीता-हरण की बात सुन कर वे बहुत सावधान हो जाते हैं[८५]। सूरदास के बलराम की अनुपस्थिति का कारण संभवतः उस समय उनका अपनी माता रोहिणी के पास होना जान पड़ता है।

३ *पहेली-बुझौवल*—दौड़-धूप के पश्चात् थक जाने पर बालक प्रायः पहेली बूझकर अपना मनोरंजन करते हैं। इसकी चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में है। सूरदास

८२ क. बैंची दृष्टि यों 'डोर गुडी' बस पाछे लागति धावति—सा. ने १४११।
  ख. 'परबस भई गुडी ज्यों डोलति' परति पराये कर ज्यों—सा. ने. ए. ११२।
८३. 'वाल्मीकि रामायण' १ २२ २१।
८४. 'राम कृष्ण दोऊ सोये माई'।
  कहानी कहत जसोदा रानी सुनत हैं दोऊ मन लाई—परमा. १६१।
८५. सुनि सुत एक कथा कहौं प्यारी।
  कमल-नैन मन आनँद उपज्यो 'चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
  दसरथ नृपति हुतो रघुबंसी ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
  तिनमैं मुख्य राम जो कहियत जनक-सुता ताकी वर नारी।
  तात बचन लगि राज तज्यौ तिन अनुज घरनि सँग गए बन चारी।
  धावत कनक मृगा के पाछैं राजिवलोचन परम उदारी।
  'रावन हरन सिया को कीन्हो सुनि नँद-नंदन नींद निवारी'—सा. १ १६८।
  विशेष'—यही पद कुछ पाठांतर के साथ 'परमानंदसागर' में भी मिलता है जो सूरदास का ही जान पड़ता है—लेखिका।

के कृष्ण वन में ग्वाल-बालों के साथ जोड़ी या पार्टी बनाकर पहेली-बुझौवल खेलते हैं और दूसरों की पहेलियों का उत्तर देकर अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हैं[८६]।

४ शर-क्रीड़ा—ऊपर जिन खेलों की चर्चा है, उनमें सामान्य बालकों की रुचि अधिक रहती है; परन्तु राजकुमारों को उन खेलों के साथ-साथ अस्त्र-शस्त्र चलाने की शिक्षा आरंभ से दी जाती है जिससे उनका मनोरंजन भी होता है। सूरदास के राम और उनके भाई छोटी ही अवस्था में धनुष-बाण लिये आँगन में खेलते-फिरते हैं [८७]।

ग बालिकाओं के खेल—बालकों की तरह बालिकाओं को भी खेलों की आवश्यकता होती है परन्तु अष्टछाप-काव्य में बालकों के खेलों की चर्चा जितने विस्तार से की गयी है, बालिकाओं के खेलों की उतने विस्तार से नहीं। इन कवियों ने राधा तथा उनकी सखियों के खेल खिलौनों के नाम नहीं गिनाये हैं; परन्तु राधा के मुख से अपनी 'पौरी' पर खेलते रहने की बात अवश्य कहला दी है[८८]। अपनी पौरी पर खेलते रहने का संकेत संभवतः यह है कि अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव काल में, कदाचित् सुरक्षा के विचार से, लड़कियों को घर से बाहर जाने की बहुत कम स्वतंत्रता थी। बालक तो कहीं भी खेलने जा सकते थे लेकिन बालिकाओं को घर से दूर नहीं जाने दिया जाता था।

बालिकाओं का सबसे प्रिय खेल 'गुड़ियाँ' खेलना रहा है जिससे उनको आरम्भ से ही गार्हस्थ्य जीवन की शिक्षा, परोक्ष रूप से मिल जाती है। गुड्डे-गुड़िया' को सजाने-सँवारने और उनकी गृहस्थी जुटाने में बालिकाओं को बड़ा आनंद आता है। कभी-कभी सखियों के 'गुड्डे-गुड़ियों' से विवाह रचाने में भी वे बड़ा उत्साह दिखाती हैं। किशोरी रूपमंजरी के गुड़ियाँ खेलने उनके विवाह रचाने और तदन्तर

८६ 'और सखा सब जुरि जुरि आवे' आपु हमुज सँग जोरि।
'फल को नाम बुझावन लागे' हरि कहि दियौ 'अमोरि'—सा सं २१०७।

८७ 'करतल सोभित बान धनुहियाँ'।
'खेलत फिरत कनकमय आँगन' पहिरे लाल पनहियाँ—सा ६ १८।

८८ आई तौं हम अपने आवति खेलति रहति आपनी पौरी'—सा ६७१।

उनको सेज पर सुलाते समय की लज्जा का[८८] अनुभव करने की बात का उल्लेख नंददास ने 'रूपमंजरी' में किया है।

बालिकाओं का दूसरा प्रिय खेल 'झूला झूलना' है जिसकी चर्चा अष्टछाप काव्य में अनेक स्थलों पर हुई है। परन्तु झूला झूलने का आनंद केवल वर्षा ऋतु में आता है, ग्रीष्म, शरद, शिशिर आदि में नहीं। अतएव झूले की चर्चा ऋतूत्सवों के अंतर्गत विस्तार से की जायगी।

घ युवकों के खेल—ऊपर जिन खेलों की चर्चा की गयी है, वे मुख्यतः आठ-दस वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए ही हैं। अवस्था में किशोर, परन्तु बुद्धि में बालक भी उनमें सरुचि भाग ले सकते हैं। युवकों और प्रौढ़ों को उक्त खेलों में अधिक आनंद नहीं आता। यद्यपि शारीरिक विकास में सहायक दौड़-धूप, चौगान या मल्लक्रीड़ा-जैसे खेल युवकों के लिए भी बहुत उपयोगी होते हैं, तथापि उनके साथ-साथ वे मृगया-जैसे अधिक साहस के खेलों में संगीत वाद्य और नृत्य-जैसी कला-संबंधी योजनाओं में एवं चौपड़ और द्यूत-क्रीड़ा जैसे बौद्धिक दाँव पेंच के खेलों में भी सरुचि भाग लेना चाहते हैं। युवकों के लिए मनोविनोद के ऐसे ही साधनों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। स्थूल रूप से उन साधनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. साहस के खेल आ. बौद्धिक दाव-पेंच के खेल इ. कला-कौशल के खेल तथा ई. मनोरंजन के अन्य साधन।

अ साहस के खेल—इस वर्ग के अंतर्गत चौगान मल्लयुद्ध और मृगया आदि मनोरंजन के साधन आते हैं जिनसे शारीरिक शक्ति के विकास में सहायता मिलती है और जिनमें सफल होने के लिए बल के साथ साथ शरीर में स्फूर्ति की भी आवश्यकता होती है।

१ चौगान—'बटा चौगान' नामक एक खेल की चर्चा बालकों के खेलों के अंतर्गत की जा चुकी है जिसमें दो दल बँटकर धरती पर पड़े हुए 'बटा' को 'चौगान' से मारा जाता है। युवकों का 'चौगान' खेल बालकों के खेल से भिन्न होता है और घोड़ों पर चढ़कर 'पोलो' के ढंग पर खेला जाता है।

८८ गुड्डा गुड़ी के ब्याह बनावे। लाज गहे अब संग सुवावे'—नंद , रूप पृ ५।

'चौगान' का यह खेल एक सिरे पर मुड़े या मुड़े हुए डंडे से जिसे 'डेंगुरि' भी कहते हैं,[१] खेला जाता है[१]। जायसी ने 'चौगान' का खेल खेलने वाले पुरुषों के साथ इस खेल में रुचि रखनेवाली स्त्रियों की भी चर्चा की है[२]। इस खेल के मैदान में दोनों सिरों पर, आजकल के हाकी-फुटबाल के मैदानों के सिरों पर बने 'गोल पोस्ट' की तरह, दो-दो खंभे लगे रहते थे जिन्हें 'हाल' कहते थे[३] और 'हाल' के बीच से गेंद निकालने पर 'गोल' हो जाता था। इस तरह 'हाल करने' से तात्पर्य 'गोल' करने से और 'हाल' होने से 'गोल' होने से है। अष्टछाप-काव्य में इस खेल का वर्णन सूरदास और परमानददास, केवल दो कवियों ने किया है। परमानंददास ने, जैसा पीछे कहा जा चुका है, घोड़े पर चढ़े हुए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं को वृन्दावन के मैदान में यह खेल खिलाया है[४]। 'श्रीमद्भागवत' में कहीं

६ डा वासुदेवशरण अग्रवाल, 'पद्मावत' पृ ६८४।

११ दहुँ चौगान तुरक कस खेला होइ खेलार रन जुरीं अकेला।
तब पावौं बादिल अस नाऊँ जीति मैदान गोइ लै जाऊँ।
आजु खरग 'चौगान' गहि करौं सीस रन 'गोइ'।
खेलौं सौंह साहि सौं हाल जगत महँ होइ।
—डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'पद्मावत', ५१५।

१२. होइ मैदान परी अब 'गोई'। खेल 'हाल' दहुँ काकरि होई।
जोबन तुरै चढ़ी सो रानी। 'चली जीति अति खेल सयानी'।
कट 'चौगान गोइ' कुच साजी। हिय 'मैदान चली लै बाजी'।
'हाल सो करै गोइ लै बाढ़ा'। कूरी दुहुँ बीच कै काढ़ा।
भए पहार दुवौ वै कूरी। दिस्टि निवर पहुँचत सुठि दूरी।
ठाढ़ बान अस जानहुँ दोऊ। सालहिं हिए कि काढ़े कोऊ।
सालहिं तेहि न अमु हियँ ठाढ़। सालहिं तासु चहै ओन्ह काढ़े।
मुहमद खेल पिरेम का घरी 'कठिन चौगान'।
सीस न दीजै गोइ जौं 'हाल न होइ मैदान ॥
—डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'पद्मावत पृ ६८३।

१३. 'आइने अकबरी' भाग दो जालि २९, पृ १६।

१४ 'गोपाल' याई 'खेलत हैं चौगान'।
'ब्रजकुमार बालक सँग लीने वृन्दावन मैदान ॥
चंचल वाजि नचावत आवत' हैंसि लागवत मन।
सब ही हस्त लै गेंद चलावत' करत आवा की आन—परमा १५।

ऐसा उल्लेख नहीं है कि श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में घुड़सवारी भी की थी संभवत: इसी कारण सूरदास मथुरा आने के पूर्व तक घोड़े पर चढ़कर श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौगान' खेलने की बात नहीं लिखते। उन्होंने द्वारकावासी श्रीकृष्ण को घोड़े पर चढ़कर 'चौगान' खेलते अवश्य कहा है। उनके साथ यदुकुल के अनेक 'कुँवर' हैं जो 'उचैश्रवा' जैसे ऊँचे और सयल अनेक रंगों के घोड़ों पर सवार होकर द्वारावती के रुचिर मैदान में 'चौगान' खेलने आये हैं। उनके घोड़े की जीन और साज जड़ाऊ है। खिलाड़ियों के बटते ही खेल शुरू हो जाता है। श्रीकृष्ण जब गेंद बढ़ाते हैं तब हलधर और दूसरे खिलाड़ियों के रोके भी नहीं रुकते और 'हाल' करके खेल में जीत ही जाते हैं[१५]।

२ मल्लयुद्ध—भारतीय संस्कृति में मनोरंजन के साथ-साथ शारीरिक बल-वृद्धि के लिए 'मल्लयुद्ध' का इतना महत्वपूर्ण स्थान रहा है कि इसको हमारे यहाँ 'मल्लविद्या' भी कहा गया है। यों तो सिंह, बाघ वाराह आदि पशुओं से भी मल्लों के युद्धों का वर्णन प्राचीन साहित्य में कहीं कहीं मिलता है,[१६] तथापि सामान्यतया यह समवयस्क पुरुषों के ही मनोरंजन का प्रमुख साधन रहा है। मनोरंजन का यह साधन इतना लोकप्रिय था कि राजवंशी लोग भी मल्ल-विद्या' सीखते थे। भीम तथा जरासंध दोनों ही इस विद्या में इतने निपुण थे कि उनका

१५. 'मनमोहन खेलत चौगान।
'द्वारावती कोट कंचन मैं, रच्यौ रुचिर मैदान'॥
'यादव बीर बटाइ बटाई हरि बल इक इक ओर।
निकसे 'सबै कुँवर असवारी उचैश्रवा के पौर॥
नीले सुरँग कुमैत स्याम तेहि, परत सब मन रँग।
बरन अनेक भाँति भाँतिनि के, चमकत चपला ढंग॥
'जीन जराइ सु जगमगाइ रहि देखत हस्ति प्रभाइ।
सुर नर मुनि कौतुक सब लागे, इक टक रहे लुभाइ॥
जबहीं हरि लै गेंद चलावत' कंदुक कर सौं लाइ।
तबहीं दौरकरी करि धावत हलधर हरिके पाँइ॥
कुँवर सबै घोड़े फेरे पै 'ठौंकत नहिं गोपाल'।
'बलौ चढ़त छल-बल करि जीत सूरदास प्रभु हाल—सा ४१६६।
१६ डा शान्तिकुमार नानूराम व्यास 'रामायणकालीन संस्कृति' पृ १११।

मल्लयुद्ध कई दिन तक चलता रहा था। राजदरबारों में अनेक मल्ल भी रहते थे और कंस का राज-दरबार तो इनके कारण बहुत प्रसिद्ध था, यद्यपि उसके दरबारी मल्ल मनोरंजन से अधिक ध्यान व्यायाम के द्वारा शरीर पुष्ट करने की ओर देते थे।

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण और उनके सखा ग्वाल-बालों के परस्पर मल्लयुद्ध का वर्णन कहीं नहीं किया है केवल 'सारावली' में कंस अवश्य श्रीकृष्ण और बलराम से यह कहता है—हमने सुना है कि वृन्दावन में तुम लोग गोपों के साथ खूब मल्लक्रीड़ा करते हो। इसलिए अपने युद्ध-कौशल का प्रदर्शन हमारे सामने भी करो'[१७]। कृष्ण और बलराम ने उसका तात्पर्य समझ लिया; फिर भी अनजान रहकर उन्होंने कंस के मल्लों से खूब दाँव-पेंच दिखाकर कुश्ती लड़ी । उनका कौशल देखकर व्रजराज नंद भी प्रसन्न हो गये । 'सूरसागर' में कंस के योद्धाओं की ललकार पर श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि हम काल से भी भिड़ने को तैयार हैं, तुम बेचारे किस गिनती में हो' । पश्चात् मल्लयुद्ध में कंस के महामल्लों की भी कृष्ण-बलराम के सामने कुछ नहीं चलती और सब मारे गये'। परमानंददास ने भी कृष्ण-बलराम द्वारा अनेक मल्लों के पछाड़े जाने की बात कही है'। इससे यह मानना ही पड़ता है कि गोकुल-वृन्दावन में उन्होंने मल्ल-विद्या का अभ्यास अवश्य किया होगा। वहाँ उनकी यह क्रीड़ा मनोरंजन के साथ-साथ बल-वृद्धि के लिए ही होगी जिसका लाभ उन्हें आगे चलकर सहज ही प्राप्त हो गया।

१७ अब उन कह्यौ मल्ल-क्रीड़ा तुम करत गोप के संग'।
'वृन्दावन में हम सुनियत हैं क्रीड़त हो बहुरंग'—सारा ५१९।
१८. तब 'हरि भिरे मल्ल-क्रीड़ा करि बहु विधि दाँव देखावे'—सारा ५२१।
१९ 'मल्ल-युद्ध हरि करि गोपनि सों लखि फूले व्रजराज'—सारा ५२१।
१ काल सौं भिरैं हम कौन तुम बापुरे'—सा १ ७२।
१ स्याम चानूर, बलवीर मुष्टिक भिरे 'सीस सौं सीस भुज-भुज मिलावैं।
दै उन्हें गहत दै छोरि उनकौं गहत करत बल-छल नहीं दाँव पावैं॥
धरि पछारयो दुहुँ बीर दुहुँ मल्ल कौं हरषि कह्यौ हते ये नँद दुलारे।
सूर-प्रभु परस लहि गयौ निरवान पद सुरनि आकास जय धुनि सुनाई।
—सा १ ७२।
२.क. तोरयौ धनुष कुबलया मारयौ चारयौ 'मल्ल पछारे'—परमा ४९९।
ख 'मल्ल पछारि कंस सिर तोरयो नौतन भूपन साज—परमा ५११।
ग. रंगभूमि में 'मल्ल पछारे कंस बहु बल मारयो—परमा ५१२।

लंका-वर्णन में रावण के योद्धाओं की चर्चा भी 'सूरसागर' में मिलती है, और वे लोग ठौर-ठौर कुंत-असि-बान का अभ्यास करते हैं[३]।

३ मृगया— 'चौगान' की तरह मृगया भी साधनसंपन्न वर्ग[४] के मनोरंजन का साधन है जिसके लिए व्यक्ति में पर्याप्त साहस भी चाहिए। आरंभ में 'मृगया' के नाम पर पशुओं के साथ पक्षियों का भी शिकार खेला जाता था[५] परंतु अष्टछाप-काव्य में 'मृगया' के अंतर्गत केवल मृग आदि के आखेट का ही उल्लेख हुआ है[६]। पक्षियों को मारने या जाल में फँसानेवाले को 'पारधि' या 'पारधी'[७] और 'व्याध'[८] आदि कहा जाता है। मृगया के लिए जानेवाले व्यक्ति या 'अहेरी' कभी घोड़े पर चढ़कर जाते हैं, कभी रथ पर। 'सारावली' में वसुदेवकुमार के अश्व पर चढ़कर 'मृगया' के लिए जाने का उल्लेख हुआ है[९] तो 'सूरसागर' में एक राजा रथ पर आखेट के लिए जाता है[१०]। नंददास की 'रूपमंजरी' में धर्मराज नामक राजा ऐसा अहेरी है कि उसका कौतुक देखकर सबको अचरज होता है[११]। 'सारावली' में दशरथ-पुत्र राम अपने भाइयों के साथ 'चरिम' आदि

३ ठौर-ठौर 'अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान —सा ९-७४।

४ वाल्मीकि रामायण के अनुसार मृगया राजाओं की क्रीड़ा थी—४ १८ ३८-४ तथा राजर्षियों के विनोदार्थ उसका प्रचलन हुआ था २-४९ १९।

५ डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' में शिकारी के लिए 'मार्गिक' और 'पाक्षिक या 'शाकुनिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम का अर्थ है 'मृग आदि पशुओं का मारनेवाला और द्वितीय का अर्थ है 'पक्षियों को मारने वाला —पृ १९।

६ धुनुधि-'कमान चढ़ाइ' कोप करि धुनि-तरकस रितयो।
सदा सिकार करत मृग' मन कौं रहत मगन भुरयौ—सा १-६४।

७ अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया 'पारधि' साधे बान।
× × ×
सुमिरत ही अहि डस्यौ 'पारधी' कर छूट्यौ संधान—सा १-९७।

८ बिरम आल बल बाँधि 'व्याध' लौं नृप 'मृग' अधिक कठोरी—सा ४२११।

९ कहूँ 'मृगया' को चले 'अस्व चढ़ि' श्रीवसुदेवकुमार—सारा ६६५।

१० जब अखेट पर इच्छा धार तब रथ साजि चले पुनि भोर।
ता बन की नृप इच्छा करै मारी धार होइ निस्तरै—सा ४ १२।

११ अस अहेर नित खेलै औ° जो देखै सो अचरज होई—नंद रूप पृ ४।

अंसुओं का आखेट करने जाते हैं[१२]। तात्पर्य यह कि अष्टछाप-काव्य में केवल पौराणिक प्रसंगों में 'मृगया', 'अहेर' या 'सिकार' का वर्णन हुआ है, उसमें वसुदेव-कुमार के रुचि लेने की बात केवल 'सारावली' में कही गयी है[१३]।

आ पौरुषिक दाँव-पेंच के खेल—इस वर्ग के अंतर्गत 'चौपड़' और 'द्यूतक्रीड़ा' आते हैं, बैठकर खेले जाने के कारण जिनके लिए अधिक शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं होती। 'चौपड़' का खेल प्राय उनके लिए होता है जिनके पास अधिक अवकाश हो इस प्रकार यद्यपि निर्धन भी अवकाश के समय 'चौपड़' खेलते हैं, तथापि आर्थिक दृष्टि से मध्यम और धनी वर्गों में यह खेल सामान्यतया अधिक प्रचलित है। 'चौपड़' को 'चौसर' भी कहते हैं[१४] और यह बिसात पर 'पासों' और 'गोटियों' से खेला जाता है। 'चौपड़' खेलने के तीन पासे होते हैं जो प्राय हाथीदाँत के बने होते हैं। इसके खिलाड़ियों की संख्या सामान्यतया चार होती है। अष्टछापी कवियों में केवल 'सूरदास' ने इस खेल का वर्णन किया है। 'अष्टछाप' के अंतर्गत 'सूरदास की वार्ता' में चौपड़ खेलते हुए कुछ व्यक्तियों की चर्चा आयी है[१५]। इसी प्रसंग में सूरदास ने 'चौपड़' खेलने का आदर्श रूप बताते हुए निम्नलिखित पद कहा है—

> मन, तू समुझि सोचि बिचारि।
> भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि॥
> साधु संगति डारि 'पासा' फेरि रसना 'सारि'।
> दाँव अबकै परयौ पूरौ उतरि पेली पारि॥
> राखि 'सत्रह' सुनि 'अठारह' पंच ही को मारि।
> दूरि तें तजि तीनि काने चतुर 'चौक' बिचारि॥

१२ कबहुँक बार मात मिलि मृगया ब्रत' परम सुख पावत।
'हरिनि आदि बहु जंतु किय बध' निज सुर-लोक पठावत—सारा १९१।

१३ 'कहूँ मृगया को चले धरत धनु श्रीवसुदेव कुमार'—सारा ९९५।

१४ श्री रामचन्द्र वर्मा 'प्रामाणिक हिंदी कोश' पृ ४२१।

१५ 'और एक समय सूरदास जी मार्ग में चले आवते हते। सो मार्ग में कोऊ (दस पाँच जने) 'चौपड़ि' खेलत हते। सो वा चौपड़ि के खेल में ऐसे लीन ह्वे रहे जो काहू आवते जावते की खबरि नाहीं। एसे खेल में मगन हैं।
—'अष्टछाप', काँकरौली पृ ३८।

काम-क्रोध संभाल भूल्यौ ठग्यो ठगिनी नारि।
'सूर' हरि के भजन बिनु चल्यो दोउ कर झारि [१६] ॥

'सूरसागर' के एक अन्य पद में 'चौपड़ खेलने का विस्तृत वर्णन है जिसमें 'पाँसों' से पड़नेवाले विविध अंकों का अध्यात्मपरक अर्थ लगाया जा सकता है [१७] जैसे 'पाँच' का अंक अर्थात् पंचशर कामदेव से पीड़ित होना 'सात' अर्थात् सात द्वीप या सात द्वीपवती पृथ्वी, 'आठ अर्थात् आठों पहर तथा आठ 'सिद्धियाँ' 'नौ अर्थात् नौ द्वारवाला शरीर, 'दस' अर्थात् दस दिशाएँ 'ग्यारह' अर्थात् पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ और एक मन, 'बारह' अर्थात् बारह महीने जिसका तात्पर्य हुआ 'सर्वदा', 'तेरह' अर्थात् स्वर्ग-साधना की तेरह युक्तियाँ, 'चौदह' अर्थात् चौदहों भुवन, 'पंद्रह' अर्थात् पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ एवं रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श 'सोलह' अर्थात् सोलहों शृंगार से युक्त षोडशवर्षीया युवती आदि [१८] । सारावली' में 'चौपड़' खेलने का उल्लेख तीन छंदों में मिलता है जिनमें

१६ 'अष्टछाप', काँकरोली पृ १६।
१७ सूर विनयपत्रिका' गीता प्रेस गोरखपुर पृ ७८-७९।
१८ 'चौपरि जगत मड़े जुग बीते ।
गुन 'पाँसे, क्रम 'अंक' चारि गति सारि न कबहूँ जीते।
चारि पसार दिसानि मनोरथ 'घर' फिरि फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै।
बाल विनोद वचन हित अनहित बार-बार मुख मानै।
मानो बग आवाह प्रथम दिसि 'आठ-सात-दस' नावै।
'षोडस' जुक्ति जुवति चित षोडस षोडस बरस निहारै।
षोडस अंगनि मिलि प्रजंक पै 'छ-दस' अंक फिरि डारै।
'पंद्रह पित्र-काज 'चौदह' दस-चारि पढ़े सर साँधे।
तेरह' रतन कनक रुचि 'द्वादस' अग्नि जरा जम बाँधे।
नहिं रुचि पंथ पयादि डरनि छकि पंच 'एकादस' ठानै।
'नौ दस आठ प्रकृति तृष्णा सुख सदन 'सात' संधानै।
'पंच' पंच प्रपंच नारि-पर भजत 'सारि फिरि मारी।
'चौक' चबाउ भर दुविधा छकि रसना रुचि भारी।
बाल किसोर तरुन जर जुग सौ सुपक सारि' ढिग ढारी।
सूर एक 'पौ नाम बिना नर फिरि-फिरि 'बाजी हारी —सा १-६ ।

प्रथम दो में अनेक युवतियों के साथ द्वारकावासी श्रीकृष्ण के 'चौपड़' खेलने की
त है[19] और तीसरे में युधिष्ठिर का उस खेल में लगा होना बताया गया है[20]।

द्यूतक्रीड़ा—यों तो किसी भी खेल को लेकर 'दाँव' बदकर उसे 'द्यूत' का
प दिया जा सकता है, जैसा कि ऊपर उद्धृत अंतिम उदाहरण से स्पष्ट है
जसमें 'चौपड़' के खेल को युधिष्ठिर 'द्यूत' मानकर ही खेलते हैं, तथापि सामान्यतया
द्यूत' से तात्पर्य 'बाजी' बदकर 'पाँसे' फेंकने या 'चाल' चलने से है जिसमें
त्काल हार-जीत हो जाती है[21]। जुए के खेल से यद्यपि मनोरंजन होता है,
थापि हार-जीत के आवेश में कभी-कभी ऐसी हानि भी हो जाती है जिसके लिए
यक्ति को अनेकानेक कष्ट भोगने पड़ते हैं और जीवन भर पछताना पड़ता है;
फिर भी, संभवतः जीत जाने के लोभ से, 'द्यूत' का चलन समाज में सदा से रहा
। यों तो निम्न वर्ग के व्यक्ति भी 'द्यूत' में सर्वत्र लगे दिखायी देते हैं, तथापि

१९ क कहुँ 'चौपर खेलत जुवतिनि सँग' पाँच-सात उरझार—सारा ६६५।
ख 'चौपर खलत' भवन आपने 'हरि हारिका मँझार'।
'पाँसे ढारि परम आतुर सों की है अनत उचार—सारा ७६७।
२० सभा रची चौपर क्रीड़ा' करि कपट कियौ अति भारी।
जीति जुधिष्ठिर भइ सब जानी तउ मन में अधिकारी—सारा ७६९।
२१ क द्यूत-क्रीड़ा' से संबंधित तीन शब्द वाल्मीकि रामायण' में आये हैं—'अक्ष'
(२-७१.४१) 'देवन (५-९१) और 'पण' (६ ९१४)। 'अक्ष' का अर्थ
है 'पाँसा' 'पासों से जुआ खेलना 'देवन' कहा जाता था और 'पण' उस वस्तु
को कहते थे जो जुए के दाँव पर लगायी जाती थी।
—डा शांतिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायणकालीन संस्कृति', पृ १ ।
ख 'अष्टाध्यायी में 'द्यूत' अथवा 'अक्ष द्यूत' नाम मिलते हैं। 'जुआरी को 'आक्षिक'
कहा गया है। पतंजलि के अनुसार जुए की आदतवाला व्यक्ति 'अक्ष कितव' या
'अक्ष-धूर्त' था। कितव' या जुआरी प्राचीन वैदिक शब्द है। ये शब्द इसी
अर्थ में बौद्ध साहित्य तथा महाभारत' महापथ (५८।१) में मिलते हैं। अष्टा-
ध्यायी' तथा 'अर्थशास्त्र' के अनुसार यह खेल 'अक्ष तथा 'शलाका', दो प्रकार
से खेला जाता था। भरहुत के द्यूत चित्रों में 'अक्ष चौकोर टुकड़ों के रूप में
चित्रित है। संस्कृत साहित्य में ग्लह' का अर्थ 'दाँव' रहा है 'चाल नहीं;
वैदिक साहित्य में 'चाल' का ही अर्थ था। शकुनि के विचार से ग्लह' के कारण
ही द्यूत' निंद्य खेलों में गिना जाने लगा।
—डा वासुदेवशरण अग्रवाल 'इंडिया ऐज़ नौन टु पाणिनि', पृ १६१ १६२।

पौराणिक प्रसंगों में मुख्य रूप से, शासक-वर्ग की ही 'द्यूत-क्रीड़ा' की बात कही गयी है। सूरदास ने दुर्योधन द्वारा 'कपट पाँसों' से युधिष्ठिर का 'द्यूत' या 'जुआ' खिलाकर सब भूमि-भँडार', यहाँ तक कि द्रौपदी नारी भी जीत लेने की बात एक पद में कही है[२२]। सारावली में भी चौपड़ के खेल में कपट से ही युधिष्ठिर के हारने का उल्लेख हुआ है[२३]।

'द्यूत' या 'जुए' के खेल को सूरदास सदैव निंदनीय ही समझते रहे, तभी तो उन्होंने व्यर्थ ही जन्म खोने को 'जुए' में हारने जैसा कहा है[२४]। 'जुए' में व्यक्ति चाहे जिस उत्साह से भाग ले, धन-संपत्ति हार जाने पर उसकी दशा बहुत दीन हो जाती है। श्रीकृष्ण को मथुरा में छोड़कर अकेले लौटनेवाले नंद जी की तुलना सूरदास ने हारे हुए जुआरी से की है[२५]। जुए में हारा हुआ 'जुआरी' सदैव सर नीचा किये रहता है, ऊपर देखने या किसी से दृष्टि मिलाने का उसम साहस नहीं होता इस बात को भी सूरदास ने लक्ष्य किया है[२६]। सूरदास की दृष्टि में 'द्यूत' या 'जुआ' कितना अधम कर्म था इसका पता उनके एक और पौराणिक उल्लेख से लगता है। कलियुग जब राजा परीक्षित से अपने निवास-स्थान पूछता है तब उन्होंने उसके पाँच स्थान बताये हैं—जहाँ हरि-विमुख, वेश्या, मद्यप, वधिक और 'जुआ खेलनेवाले' रहते हों वहाँ वास करो[२७]। तात्पर्य यह कि सूरदास 'जुए' को निंदनीय कर्म समझते हैं और इसलिए विवाह के अवसर की

२२ कौरव 'पासा कपट बनाए' धर्मपुत्र कौं जुआ खिलाए।
तिन 'हारयौ सब भूमि भँडार' हारी बहुरि द्रौपदी नार—सा १२४६।

२३ सभा रची 'चौपर क्रीड़ा करि कपट कियो अति भारी।
जीति युधिष्ठिर भए सब जानी दुष्ट मन में अधिकारी—सा ७९२।

२४ माधौ गात अकारथ गारयौ।
करी न प्रीति कमललोचन सौं 'जनम जुवा ज्यौं हारयौ'—सा ११११।

२५ कहौ नंद कहाँ छाँड़े कुमार।
× × ×
चितवत नंद ठगे से ठाढ़े 'मानौ हारे हेम जुआर'—सा वें २९७१।

२६ अधोमुख रहत उरध नहिं चितवत 'ज्यौं गथ हारे थकित जुआरी'—सा वें १४२५

२७ कही, हरि विमुखऊ वेस्या जहाँ सुरापान वधकन पद तहाँ।
जुआ खेलत जहाँ जुआरी ये पाँचौ हैं ठौर तुम्हारी—सा ११६।

'द्यूत-क्रीड़ा' को छोड़कर, जो केवल विनोदार्थ होती है, जिसमें किसी प्रकार की आर्थिक या सांपत्तिक हार-जीत का प्रश्न ही नहीं उठता और जिसके उदाहरण विवाह-संस्कार के वर्णन में पीछे दिए जा चुके हैं, उन्होंने अपने आराध्य अथवा उनके अन्य अवतारी रूपों के 'जुआ' खेलने की बात नहीं लिखी है। अष्टछाप के अन्य कवि भी इस विषय में उनसे ही सहमत जान पड़ते हैं। केवल परमानंददास ने इस प्रसंग में संभवत अपनी मौलिकता का परिचय देने के उद्देश्य से, श्रीकृष्ण की 'द्यूतक्रीड़ा' का भी वर्णन दो प्रसंगों में किया है। पहले प्रसंग में दीपमालिकावाली अमावस्या को बलराम के साथ उनको 'द्यूत' खेलने की प्रेरणा परमानंददास देते हैं । दूसरे प्रसंग में श्रीकृष्ण प्यारी राधा के साथ 'पाँसा' खेलते हैं जिसमें राधा का पहला दाँव पड़ने पर स्याम 'पीत पिछौरी' हार जाते हैं और दूसरे दाँव में मुरली [१]। 'द्यूतक्रीड़ा' के ये दोनों प्रसंग वस्तुत शुद्ध विनोद की दृष्टि से लिखे गये हैं।

ग *कला-कौशल के खेल*—इस वर्ग में संगीत, वाद्ययंत्र और नृत्य-संबंधी मनोरंजन के वे साधन आते हैं जो सभी देशों और सभी कालों में मानवमात्र को प्रिय रहे हैं। वस्तुत संगीतमय शब्दों में ही आंतरिक उल्लास की अभिव्यक्ति अभीष्ट मनोहारी रूप में हो सकती है और संगीत का वाद्य से अभिन्न संबंध है। इसी प्रकार नृत्य भी मानव के आंतरिक उल्लास की अधिकता का परिचायक है और सदैव से मनोरंजन का लोकप्रिय साधन रहा है [१]। अष्टछापी कवियों ने सभी सामूहिक उत्सवों और रास जैसी लीलाओं के अवसर पर संगीत और

२८. आज 'कुहू की राति' माधौ 'दीपमालिका मंगलचार।
'खेलौ द्यूत सहित संकर्षन' मोहन मूरति नंदकुमार।—परमा २६१।

२९ 'पासा खेलत हैं पिय-प्यारी।
'पहलो दाँव' परयो स्यामा को 'पीत पिछौरी हारी'॥
अबकी बर पिय मुरली लगाओ' तौ भलो लैंग भारी।
'परमानंददास को ठाकुर जीती है वृषभानु-दुलारी'—परमा ६११।

१ 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार अयोध्या किष्किंधा लंका आदि नगरियाँ संगीत से गुंजित रहती थीं। जब पिता की मृत्यु से अनभिज्ञ भरत कैकय देश से अयोध्या लौटे तब नगर में वाद्यंत्रों की गूँज बंद पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ।
—डा शांतिकुमार नानूराम व्यास 'रामायणकालीन संस्कृति' पृ १ २।

पौराणिक प्रसंगों में मुख्य रूप से, शासक-वर्ग की ही 'द्यूत-क्रीड़ा' की बात कही गयी है। सूरदास ने दुर्योधन द्वारा 'कपट पाँसों' से युधिष्ठिर का 'द्यूत' या 'जुआ' सिखाकर सब 'भूमि-भँडार', यहाँ तक कि द्रौपदी नारी भी जीत लेने की बात एक पद में कही है[२२]। 'सारावली' में भी चौपड़ के खेल में कपट से ही युधिष्ठिर के हारने का उल्लेख हुआ है[२३]।

'द्यूत' या 'जुए' के खेल को सूरदास सदैव निंदनीय ही समझते रहे, तभी तो उन्होंने व्यर्थ ही जन्म खोने को 'जुए' में हारने जैसा कहा है[२४]। जुए में व्यक्ति चाहे जिस उत्साह से भाग ले, धन-संपत्ति हार जाने पर उसकी दशा बहुत दीन हो जाती है। श्रीकृष्ण को मथुरा में छोड़कर अकेले लौटनेवाले नंद जी की तुलना सूरदास ने हारे हुए 'जुआरी' से की है[२५]। जुए में हारा हुआ 'जुआरी' सदैव सर नीचा किये रहता है, ऊपर देखने या किसी से दृष्टि मिलाने का उसमें साहस नहीं होता इस बात को भी सूरदास ने लक्ष्य किया है[२६]। सूरदास की दृष्टि में 'द्यूत' या 'जुआ' कितना अधम कर्म था, इसका पता उनके एक और पौराणिक उल्लेख से लगता है। कलियुग जब राजा परीक्षित से अपने निवास-स्थान पूछता है तब उन्होंने उसके पाँच स्थान बताये हैं—जहाँ हरि-विमुख, वेश्या मद्यप बधिक और 'जुआ खेलनेवाले' रहते हों, वहाँ वास करो[२७]। तात्पर्य यह कि सूरदास 'जुए' को निंदनीय कर्म समझते हैं और इसलिए विवाह के अवसर की

२२ कौरव 'पासा कपट बनाए' धर्मपुत्र कौं जुआ सिखाए।
तिन 'हारयौ सब भूमि भँडार' हारी बहुरि द्रौपदी नार—सा १।२४६।

२३ सभा रची 'चौपर क्रीड़ा करि कपट कियो' अति भारी।
जीति युधिष्ठिर भए सब जानी तउ मन में अधिकारी—सा ७६२।

२४ वादी गयत अधरम गारयौ।
करी न प्रीति कमललोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारयौ'—सा १११।

२५ कहो नंद कहाँ छाँड़े कुमार।
× × ×
चितवत नंद ठगे से ठाढ़े 'मानौ हारे हेम जुआर'—सा १० ३६७१।

२६ अधोमुख रहत उरध नहिं चितवत 'ज्यौं गथ हारे थकित जुआरी'—सा १० ४४५२

२७ कह्यौ हरि विमुखउ वेस्या जहाँ सुरापान बधिकन ग्रह तहाँ।
जुआ खेलत जहाँ जुआरी ये पाँचो हैं ठौर तुम्हारी—सा १।२९०।

में भाँति-भाँति के फूल खिले रहते हैं और शीतल-मंद-सुगंध पवन बहती रहती है[१५]। सारस, हंस, मोर, पारावत आदि भाँति-भाँति के पक्षियों की बोलियों से ये कुंज सदैव गुंजायमान रहते हैं[१६]। ऐसी रमणीय कुंजों का उल्लेख समस्त अष्टछाप-काव्य में, मुख्यतः संयोग-लीला के प्रसंग में, हुआ है जहाँ श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य गोपियों के साथ नित्य आमोद प्रमोद और विहार किया करते हैं[१७]।

आ जल-विहार—यों तो शीतप्रधान देशों के निवासी भी तैरने का आनंद लिया करते हैं परंतु भारत-जैसे गरम देश में तो जल-विहार एक प्रकार से जीवन-चर्या का प्रमुख अंग है। भारतीय धर्म चर्या में नदी के स्नान को महत्त्वपूर्ण स्थान भी इसी कारण दिया गया है। भारतीय संस्कृति का जन्म और विकास भी नदियों के तटवर्ती नगरों में ही मुख्य रूप से हुआ है। अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन भी श्याम सलिलवती यमुना नदी के किनारे बसा है और इसलिए जलविहार या जल-क्रीड़ा भी श्रीकृष्ण के मनोरंजन के मुख्य साधनों में वर्णित है। छोटे-छोटे बालकों को नदी में स्नान करने का बड़ा चाव रहता है और बालक कृष्ण भी प्रारंभ से ही इसमें रुचि लेता रहा है परंतु माता-पिता ममतावश किसी अनिष्ट की आशंका से उसे नदी में नहाने से रोकते रहते हैं। यही कारण है कि जब बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा माँगता है तब पहले ही यमुना-जल में न नहाने की बात शपथपूर्वक कह देता है[१८]। श्रीकृष्ण का यह कथन

से लौटने पर भरत ने उन उद्यानों को जहाँ प्रवासीजन क्रीड़ार्थ एकत्र होते थे निरानंद सूना और वीरान पाया था।

—डा॰ शांतिकुमार नानूराम व्यास, 'रामायणकालीन संस्कृति' पृ॰ १६।

१५. तैसोई तरनि-तनया तीर तैसोई शीतल सुगंध मंद बहत पवन तैसेई सघन फूली द्रुमी निवारी ॥

तैसो 'प्रफुलित बनराजीव' तैसेई अलिकुल राजै री—गोविं॰ १६७।

१६ सारस, हंस मोर पारावत बोलत अमृत बानि—सारा॰ ६१२।

१७ क नवल निकुंज' नवल नवला मिलि नवल निकेतन रुचिर बनाए।

बिलसत बिपिन बिलास बिबिध बर बारिज-बदन बिकच सचु पाए—सा॰ १६८७।

ख 'कुंज-घर' श्री स्याम स्यामा बैठे करत बिहार—सा॰ २४६४।

ग. कुंजभवन में मंगलाचार—परमा॰ ११८।

१८. सूरदास है साखि जमुन-जल सौंह देहु जु नहैहौं—सा॰ ४२२।

परोक्ष रूप से सूचित करता है कि बाल्यकाल से ही उसकी रुचि जमुना-स्नान के प्रति थी और माता यशोदा भी उसकी इस रुचि से परिचित हो गयी थीं।

आगे चलकर तो जल-विहार में श्रीकृष्ण का मन खूब ही रमता है। ग्वालबालों और गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की जल-क्रीड़ा का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक स्थलों पर किया है। रासलीला के पश्चात् 'रास-रस से श्रमित' व्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण प्रात जमुना-तट पर आते हैं[३९] और जल-विहार प्रारंभ होता है। स्याम-स्यामा जमुना म विहार करते और परस्पर जल छिड़कते हुए अत्यंत सुशोभित होते हैं[४०]। इस क्रीड़ा में मग्न राधा की कंचुकी के बंद छूट जाते हैं, उसकी गीली लटें इधर उधर लटकने लगती हैं, सिंदूर फैल जाता है, किंकिणी ढीली हो जाती है[४१]। गीला वस्त्र उसके शरीर से लिपटा हुआ है[४२]। जल-क्रीड़ा के बीच स्याम स्यामा परस्पर गलबाहियाँ डालकर खड़े होते हैं। सभी व्रज-बालाएँ भी जल में ही हैं, कोई जाँघ तक कोई कमर तक, कोई हृदय और कोई गले तक जल में खड़ी है[४३]। श्रीकृष्ण, राधा तथा व्रजबालाओं के शरीरों से मलयज, कुंकुमा आदि छूटकर जमुना-जल में मिल गया है[४४] और तट पर भी उसकी 'कीच'

३९. रास रस स्रमित भई व्रजबाल'।
निसि सुख दै जमुना-तट लै गए, भोर भयो तिहिं काल—सा ११५६।

४० स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निस म करत विहार।
पीत कमल इन्दीवर पर मनु भोर भयौं नीहार।
श्री राधा अंजुलि कर भरि भरि छिरकति-बारंबार'।
कनक-लता मकरंद झरत मनु डारत पवन सँवार—सा ११५६।

४१ राधे छिरकति छींट छबीली।
कुच कुंकुम 'कंचुकि-बंद छूटे, लटकि रही लट गीली'।
बंदन सिर ताटंक गंड पर रतन जटित मनि नीली'।
गति गयंद मृगराज सुकटि पर सोभित किंकिनि' ढीली।
मग्नौ राज जमुना जल-भीतर प्रेम मुदित रस भीली—सा ११६ ।

४२. भीजि पट लपटयौ सुभग उर—सा ११६१।

४३ विहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाहीं जोरी दंपति अरु व्रज-बाम।
कोउ ठाढ़ी जल जानु जाँघ लौं कोउ कटि हिरदय ग्रीव—सा ११६२।

४४ मलयज पंक कुंकुमा मिलि कै जल-जमुना इक रंग—सा ११६२।

सी हो गया है[४५]।

'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने भी श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का वर्णन किया है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण उन्हें 'तरुणी करिनी सहित गजराज' से जान पड़ते हैं[४६]। वे परस्पर जल भी छिड़कते हैं[४७]। जल में लुकती, छिपती और खेलती हुई गोपियाँ बादलों में चमकती बिजलियों सी जान पड़ती हैं[४८]। भीगे हुए वस्त्रों के शरीर से लिपट जाने की शोभा का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है और गीले वस्त्रों को निचोड़ने से गिरता हुआ जल ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस सुन्दर शरीर से बिछुड़ने की पीड़ा पर वे आँसू बहा रहे हों[४९]।

अष्टछाप के अन्य कवियों ने श्रीकृष्ण और गोपियों के जल-विहार का इतना विस्तृत वर्णन नहीं किया है परंतु तद्विषयक उल्लेख उनके काव्यों में भी मिलते हैं। परमानंददास ने गोपाल की जल-क्रीड़ा के समय ग्वाल-बालों के उछलने-कूदने और हँसने-हँसाने की बात लिखी है[५०]। इसी प्रकार गोविंदस्वामी ने श्याम-श्यामा के परस्पर दृष्टि फेंककर विविध केलि करने और गीले वस्त्रों से शरीर की अनुपम शोभा होने की बात कही है[५१]।

४५. 'चंदन अंग कुमकुमा छूटत' जल मिलि 'तट भइ कीच'—सा ११६१।

४६. धाय जमुन जल पैठ लाल छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु 'गज-राज संग लिय तरुनी करिनी'—नंद रास पंचम २६।

४७ छिरकत 'होनी होन जमुन जल अंजलि भरि भरि'—नंद, रास पंचम २८।

४८. जमुना-जल में दुरि दुरि 'कामिनि करत कलोलें।
मानों नव घन मध्य दामिनी दमकत डोलें'—नंद रास पंचम २९।

४९. भीजि बसन तन लिपटि निपट छबि अंकित है जस
नैननि कै नहिं बैन बैन कै नैन नहीं अस।
नीर निचोरत जुवतिनि हेरि अधीर भए मनु
तन बिछुरनि की 'पीर नीर रोवत अँसुवनि जनु'—नंद रास, पंचम ३१।

५. क करत गोपाल 'जमुन जल क्रीड़ा'—परमा ७१८।
ख लाल को 'छिरकत है ब्रजबाल।
जमुना जल उछरत 'चहुँ दिसि तें हँसत हँसावत ग्वाल—परमा ७६६।

५१. 'गोविंद छिरकत डीठ अनूप।

जल-विहार का एक अंग नौका-विहार भी है जिसकी ओर केवल परमानंददास ने दो पदों में संकेत किया है"[५२]। अन्य कवि इस संबंध में मौन हैं।

ह पशु-पक्षियों से क्रीड़ा—मानव का आमोदप्रिय हृदय पशु-पक्षियों की विविध क्रीड़ाओं से भी अपना मनोरंजन करता रहा है। अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण का संबंध पशुओं में केवल गायों से दिखाया है जिनको वे बड़े दुलार से चराते हैं और जिनकी याद उनको मथुरा चले जाने पर भी बराबर बनी रहती है तभी तो वे ऊधव के द्वारा पिता नंद से कहलाते हैं कि मेरी अनुपस्थिति में 'धौरी-धूमरि गैयों' को किसी तरह का दुख न हो"[५३]। गायें भी श्रीकृष्ण से इतना हिली थीं कि उनके मथुरा चले जाने पर सगे संबंधियों के समान ही वियोग-दुख का अनुभव करती रही थीं"[५४]। इसी प्रकार 'सुवा पढ़ावत गनिका तारी"[५५] जैसी उक्तियों से यह तो स्पष्ट होता है कि तोता, मैना जैसे पक्षियों को पालना और उनको 'पढ़ाना' मनोरंजन के सामान्य साधनों में था, जिसकी ओर परमानंददास ने भी एक पद में

उत वृषभानु-नंदिनी राजत इत घनस्याम सरूप।
पावन जल जमुना कौ निरमल करत विविध रस केलि।
सजल बसन सोभित अंगनि मैं उठत तरंगनि रेलि—गोवि १६६।

५२.क. बैठे घनस्याम सुंदर खेवत हैं नाव'—परमा ७४४।
ख जमुना-जल खेवत हैं हरि नाव —परमा ७४५।

५३ बार बार मिलयौ नँद बाबा सौं तब कहियौ समुझाइ।
तौ लौं दुखी होन नहि पावैं धौरी धूमरि गाइ—सा १४१८।

५४ क धेनु नाहिं पय स्रवति रुचिर मुख चरति नाहिं तृन कंद—सा ११५७।
ख ऊधौ इतनी कहियौ जाइ।
अति कृस गात भई ये तुम बिनु, 'परम दुखारी गाइ'।
जल समूह बरसति दोउ अँखियाँ 'हूँकति लीन्हैं नाउँ'।
जहाँ जहाँ गो-दोहन कीन्हौ सूँघति सोई ठाउँ"।
'परति पछार खाइ छिन ही छिन' अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तैं मीन—सा ४ ७ ।
ग. इनि गाइनि चरिबौ छाँड्यौ है जौ नहिं लाल चरैहैं—सा ४०८०।

५५. जो जो न तर्यौ हरि नाम लिएँ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी ब्याध तर्यौ सर घात किएँ—सा ८९।

संकेत किया है,[५६] परन्तु किसी अष्टछापी कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा पक्षियों के पाले जाने की बात नहीं कही है। 'सूरसागर' के एक पद में अवश्य 'ग्वाल-मंडली' द्वारा 'खगों' के खिलाये जाने का उल्लेख हुआ है[५७] जिससे पक्षियों के द्वारा भी कुछ देर मनोरंजन होने की बात की पुष्टि होती है।

ई *नट-विद्या*—इस शीर्षक के अंतर्गत वे बातें आती हैं जिनका आनंद दर्शक बनकर ही लिया जा सकता है। बाजीगर और नट के खेल इसी वर्ग में आते हैं जिनसे दर्शकों का मन बहलाकर ये लोग आजीविका का अर्जन करते हैं। अष्टछाप-काव्य में 'बाजीगर' और नट[५८] का उल्लेख मात्र हुआ है। नंददास के 'अनेकार्थ-मंजरी' नामक काव्य में 'नगर विद्या' का एक स्थान पर उल्लेख हुआ है[५९] जिसका संकेत संभवतः 'इंद्रजाल' की ओर ही है। अन्य अष्टछापी कवियों ने इसकी चर्चा नहीं की है।

समाहार—बालकों, किशोरों और युवकों के उक्त सभी खेलों के संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं जिनका संबंध भारतीय संस्कृति से है। पहली बात यह है कि दौड़-धूप के फुटबाल हाकी आदि नवीनतम खेलों के समान ही सहकारिता की भावना का विकास करने का गुण अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित उक्त भारतीय खेलों में भी कम नहीं है, क्योंकि खिलाड़ियों को दो दलों में बाँटने का प्रश्न आते ही सहयोग के भाव का जन्म स्वतः ही जाता है। परंतु आधुनिक विदेशी खेलों से एक दूसरी बात में ये भारतीय खेल बढ़े चढ़े हैं और वह यह है कि भारतीय खेल हाकी, क्रिकेट जैसे विदेशी खेलों की तरह अधिक व्यय-साध्य नहीं होते और निर्धन से निर्धन वर्ग के बालक उनमें सहज ही साधिकार भाग ले सकते हैं। 'चटा-चौगान' का राजसी खेल अवश्य ऐसे खेलों में है जिसको सामान्य व्यक्ति नहीं खेल सकते। घोड़ों पर चढ़कर खेला जानेवाला यह खेल वास्तव में धनी वर्ग के लिए ही है और

५६. 'सुआ पढ़ावति सारँगनैनी।
बरनि सैंकिन लाल गिरिधर सौं गुरुजन निरट गुपति मनि कैनी—परमा० कीं०८४१।
५७ नाचिन मोर बकत पिक दादुर ग्वाल मंडली खगनि खिलावनि—सा० ४१८६।
५८.क. के कहूँ रंग कहूँ हँसरता नट बाजीगर जैंम—सा० १२६१।
ख कहौ बहु कला काछि दिखरावै लोभ न छूटत नट कै—सा० ११६२।
५९ काम नगर विद्या अगन [ ] नि म भूमि नैंदनंद—नंद अनेकार्थ १४।

श्रीकृष्ण भी उसकी तभी खेलते हैं जब उनका ऐश्वर्य चक्रवर्ती सम्राटों से भी बढ़कर ही जाता है, अस्तु। इन भारतीय खेलों की तीसरी विशेषता उनके नियमों की सरलता में मानी जा सकती है। जटिल या सूक्ष्म नियमों वाले खेलों में खिलाड़ियों के लिए असंतोषदायी स्थल और अवसर बार-बार आते हैं। सरल नियमों वाले खेल, इसके विपरीत परस्पर प्रीति बढ़ानेवाले सिद्ध हो सकते हैं।

स्वयं परम भक्त होने के कारण अष्टछापी कवि तो मनोविनोद के उक्त साधनों में से किसी में भाग लेना समय का अपव्यय ही समझते थे; जैसा कि पीछे उद्धृत चौपड़ खेलते हुए व्यक्तियों के संबंध में सूरदास के कथन से सूचित होता है,[१] परंतु अपने आराध्य को अनेक खेलों में भाग लेते दिखाना उन्हें निस्संदेह रुचिकर रहा है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के पुजारी वे अष्टछापी कवि जीवन में मनोविनोद का महत्त्व भली-भाँति समझते थे और इस दृष्टि से उनके विचारों का अध्ययन भी मनोरंजन का एक रोचक साधन माना जा सकता है।

३ पर्वोत्सव—

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पारलौकिक जीवन पर सदैव दृष्टि रखते हुए भी भारतवासियों ने लौकिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की और ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उनकी परलोक-विषयक धारणाओं के मूल में भी इहलोक के जीवन की सुख समृद्धि-वृद्धि करना ही रहा है। भारतीय सामाजिक जीवन में 'पर्वोत्सवों' की अधिकता से भी सूचित होता है कि जहाँ एक ओर जीवन की व्यस्तता-जनित क्लांति के अनुभव से बचने के लिए वे अनेक प्रकार के 'पर्वोत्सवों' में सोल्लास भाग लेते हैं, वहाँ दूसरी ओर इनकी योजना से सामाजिक सहकारिता की भावना की भी वृद्धि होती है। 'पर्वोत्सवों' के अवसर पर अच्छा खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सजने-सजाने का भी चलन सदा से रहा है। इससे भारतीय समाज की समृद्धि का परिचय तो मिलता ही है, अर्जित और संचित धन वैभव के सार्वजनिक प्रदर्शन द्वारा दूसरों को उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा भी देता है।

अष्टछाप-काव्य में जिन पर्वोत्सवों का वर्णन मिलता है, स्थूल रूप से, उनको

१ देखिए इसी प्रबंध के पृष्ठ २५५ की पाद टिप्पणी १५—चौपड़।

तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क ऋतूत्सव, ख लीलावतारोत्स और ग. अन्योत्सव।

क ऋतूत्सव—वर्ष की छहों ऋतुओं में मनाये जानेवाले छह उत्सव—ग्रीष्म में 'फूलमंडली', वर्षा में 'हिंडोरा', शरद में 'रास' हेमंत में 'देवि-प्रबोधिनी', शिशि में 'होरी' और वसंत में 'डोल'—इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 'होली' की चर्चा। 'त्यौहारों' के अंतर्गत की जायगी शेष उत्सवों के मनाये जाने का अष्टछाप-काव्य जो वर्णन हुआ है, उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

ख फूलमंडली—ग्रीष्म ऋतु के इस उत्सव में राधा-कृष्ण और उनक किशोरी सखियाँ बड़े उत्साह से भाग लेती हैं। जैसा नाम से स्पष्ट है, इस उत्स में फूलों की ही प्रधानता रहती है। राधा के चोली, चोलना आदि वस्त्र औ हार, 'कंकन', 'सिंगारहठे' चौकी आदि आभूषण फूलों के ही हैं[११]। मदनगोपाल क रिझाने के लिए ही राधा का इस प्रकार का फूलों से शृंगार सखियों ने किया है[१२] श्रीकृष्ण भी फूलों के ही 'बागे', 'पाग' और आभूषण धारण करते हैं[१३]। इ प्रकार फूलों के वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर श्रीकृष्ण कभी तो 'फूलों के चौबार में बैठते हैं,[१४] कभी 'चौखंडी',[१५] कभी तिबारी'[१६] और कभी 'फूलों' के बंगला 'फूलों' के भवन में, 'फूलों' ही की सेज पर 'फूलों' के गेंदुआ-तकिया लगाये प्रियतम राधा के साथ बैठकर शोभित होते हैं[१७]। 'फूलों' की तिबारी के 'झरोखे' की

११ क. फूलनि की चोली फूलनि के 'चोलना'—परमा ७७।
ख फूलनि के बसन-आभूषन विराजैं, 'फूलनि के फौंदा फूल उर हार हैं'।
—नंद परि ७५
ग फूलनि के 'फोंदा रचि गूँथे फूलनि ही की माल' बनाई।
फूलनि के कंकन सिंगारहठे फूलनि की चौकी ढरकाई—चतु १ १।
१२. फूल सिंगार प्यारी तन सोहत 'मदन गोपाल रीझिबे कारें'—छीत ११।
१३ 'फूलनि के बागे' बर भूषन 'फूलनि ही की पाग' सँवारी—चतु १ ४।
१४ बैठे लाल 'फूलनि के चौबारे'—कुंभन ८१।
१५.क बैठे लाल 'फूलनि की चौखंडी'—चतु १ २।
ख अति विचित्र 'फूलनि की चौखंडी' बैठे तहाँ रसिक गिरिधारी—चतु १ ।
१६. बैठे लाल 'फूलनि की तिबारी'—चतु १ ४।
१७ 'फूलनि की मंडली' मनोहर बैठे तहाँ रसिक पिय-प्यारी।

उसकी 'अटारी' भी फूलों की है[१८]। वस्तुतः 'फूलों' के बीच, 'फूलों'-से फूले सखा-सखियों के साथ, 'फूल' से सुंदर और सुकुमार राधा-कृष्ण की सरस लीला सारे वातावरण को 'फूल'-सा प्रफुल्लित कर देती है[१९]।

आ *हिंडोरा*—'हिंडोरे' का उत्सव वर्षा के आगमन पर मनाया जाता है। यमुना-तटवर्ती कुंजों में 'हिंडोला' डालकर किशोर-किशोरियाँ, सभी झूला झूलते हैं। अष्टछाप-काव्य में कृष्ण और अन्य गोप बालकों का गोपियों के साथ 'हिंडोरा' झूलने का उल्लेख मिलता है। परमानंददास के अनुसार उनके 'हिंडोरे' के खम्भे रत्न-जटित हैं तथा मरुआ और पटुली कंचन की हैं[७०]। वस्तुतः सावन मास में चारों तरफ हरियाली छा जाती है, चातक बोलने लगते हैं, कभी हल्की फुहार पड़ती है और कभी मेघों का मंद गर्जन होता है। ऐसे मनोहारी समय और वातावरण में कुंभनदास के कृष्ण और राधा मणिजटित पटली पर बड़े आनंद से 'हिंडोरे' में झूलते हैं[७१]। चतुर्भुजदास ने झूले की चार 'चौकियों' के बीच हेमजटित चौकी

सोभित सबै साज नाना विधि 'फूलनि को भवन' परम रुचिकारी।
'फूल के खंभ फूल की चौलटि फूलनि बनी है सुदेस तिवारी।
'फूलनि के भूमका झरोखा' फूलनि के छाजे छवि भारी।
सघन फूल चहुँ ओर कँगूरनि 'फूलनि बंदनवार सँवारी।
'फूलनि के कलसा' अति सोभित 'फूलनि सबी विचित्र चित्रसारी।
'फूल की सेज' गेंदुआ तकिया 'फूलनि की माला' मनुहारी।
'चतुर्भुजदास' प्रफुलित राधा रस-फूले गोवर्धनधारी—चतु ६६।

१८. 'फूलनि' के छाजे झरोखा अरु 'फूलनि' की सबी अटारी—चतु १४।

१९. 'फूलनि की बर बेनी गंथित फूल हिये पिय अंग लसे हैं।
'फूल की धज' आभूषन फूल के फूल के कोटिक कमल लसे हैं।
फूलि बढ़ी अब दास 'चतुर्भुज' सखि सुख फूलि हिये बिलसे हैं।
फूली निसा ससि फूलि रहे गिरिधारी जु आपुन कुंज बसे हैं—चतु ११।

७०. 'रतन जटित के खम्भ' दोऊ लगे प्रवालनि लाल।
'कंचन को मरुआ' बन्यो पटुली जु परम रसाल।
तन कुसुंभी चीर पहिरें आई सब ब्रज बाल।

× × ×

गोपी सु हरि संग 'झूलहिं' आनंद सुख के जाल—परमा ७९२।

७१. 'हिंडोरे हरि झूलत ब्रजनारी।

और मोतियों के भूमक लगे होने का वर्णन किया है[७२]। 'हिंडोरा'-प्रसंग में भूलने और भुलाने के ढंग का भी सुंदर वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोविंदस्वामी के अनुसार नारियाँ बड़ी उमंग से भुक-भुक कर सबै "मोंटा" देती हैं[७३]। उन्होंने मणिजटित हिंडोरे पटरी आदि में नहीं, फूलों की डोरीवाले, फूलों के हिंडोरे में, फूलों की पटली आदि पर राधा-कृष्ण को भुलाया है[७४]।

साधारणतया कुंजों में 'हिंडोरा' पड़ने की बात कवियों ने लिखी है, परंतु कृष्णदास के अनुसार नंद-गृह में ही 'हिंडोरा' रोपा गया है जिसमें हीरा, पिरोजा आदि बहुमूल्य रत्न लगे हैं[७५]।

इ रास—शरद ऋतु का सर्वोत्तम उत्सव 'रास' है। 'रास' से तात्पर्य नृत्य-विशेष से है जिसमें स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का हाथ पकड़कर सामूहिक रूप से नृत्य करते हैं। 'रास' का वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है, जिनमें सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास का है। नृत्य करते हुए राधा-कृष्ण का अत्यंत आकर्षक

सावन मास फूली धौरी धौरी देखिये भूमि हरियारी।
नव घन नव वन नव चातक पिक, नवल कसूँभी सारी।
नवल किसोर बाम अँग सोभित नव वृषभानु-दुलारी।
कंचन खंभ मनि जटित मेंदला डाँडी सुभग सँवारी—कुंभन १०८।

७२. डाँडी चारि सुदेस सुहाई चौकी हेम जराए।
× × ×
गरजत गगन दामिनी कौंधति राग मलार बजाए—चतु० ११६।

७३ 'भुकि भुकि मोंटा देत सुहावनी नारि हो।
रमकति भमकति धमकि रह्यो रँग भारी हो—गोविं० ११६।

७४ 'हिंडोरा फूलनि को फूलनि की डोरी' फूले नँदलाल फूली नवल किसोरी।
'फूलनि के खंभ' दोउ 'पटली फूलनि की डाँडी फूलनि की जराबजरी है।
—गोविं० २६।

७५. हिंडोरना हो रोप्यो नंद अवास'। हिंडोरना हो मनिमय भूमि सुवास।
हिंडोरना हो विश्वकर्मा सूत्रधार। हिंडोरना हो कंचन खंभ-सुढार।
कंचन खंभ सुढार डाँडी लाल मरुवा फब रहे।
हीरा पिरोजा कनक मनिमय जोति अति जगमग रहे।
—कृष्ण, कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ० १६।

चित्र 'सूरसागर' में है[७६]। परमानंददास ने गलबहियाँ वाले गोपी-कृष्ण के 'रास' का वर्णन किया है[७७]। नृत्य के साथ ही विविध वाद्यों के बजने की चर्चा अन्य कवियों के साथ गोविंदस्वामी ने भी की है[७८] । चतुर्भुजदास के अनुसार 'रास' करते समय अनेक प्रकार के भाव भी बताये जाते हैं[७९] ।

नंददास ने 'रासलीला' का सांगोपांग चित्रण करने के लिए 'रास-पंचाध्यायी' नामक एक काव्य ही लिख डाला है। उसके पंचम अध्याय में रासलीला का वर्णन विस्तार से है। श्रीकृष्ण कमलवत् आसन पर राधा के साथ नृत्य करते हैं । उनके चारों ओर दो-दो गोपियों के बीच मोहन की एक-एक मूर्ति शोभित है[८१]। नृत्य के समय करताल, मुरली, मृदंग उपंग, चंग, ताल, वीणा आदि

७६ क. 'नृत्यत स्याम स्यामा हेत' ।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत ।
कबहुँ चलत सुघंग गति सौं कबहुँ उघटत बैन ।
लोल कुंडल गंडमंडल चपल नैननि सैन—सा ११४८।

ख अरुझी कुंडल लट बेसरि सौं पीत पट बनमाल बीच आनि उरझे हैं दोउ जन।
माननि सौं प्रान नैन नैननि अटकि रहे, चटकीली छबि देखि लपटात स्याम घन।
होड़ा-होड़ी नृत्य करैं, रीझि रीझि अंक भरैं ता ता थेई थेई उघटत हैं हरषि मन।
सूरदास प्रभु प्यारी मंडली-जुवति भारी नारि को अंचल ले ले पोंछत हैं स्रमकन।
—सा ११४९।

७७ रास विलास गहे कर पल्लव 'इक-इक भुजा ग्रीवा मेली ।
द्वै-द्वै गोपी बिच बिच माधव निरतत संग सहेली—परमा २९८।

७८ नाचत लाल गोपाल रास में सकल ब्रज बधू संगे।
× × ×
ताल मृदंग झाँझ अरु झालरि बाजत सरस सुघंगे—गोवि ५७।

७९ निर्तत सुलप लेत नूपुर सब बहु विधि हस्तक भेद दिखावै—चतु २४।

८ एक अनल 'ब्रज-बाल लाल तहँ चढ़े' जोरि कर।
छिन छन इत उत होत सबै निर्तत विचित्र वर।
मनि-दर्पन सम अवनि रमनि तापर छबि देही।
विलुलित कुंडल अलक-तिलक झुकि मारैं लेही—नंद रास ५४।

८१ कमल-कर्निका मध्य जु स्यामा स्याम बनी छबि।
द्वै-द्वै गोपिनि बीच जु मोहनलाल' रहे फबि।

बाधों की ध्वनि से मिलकर नूपुर, किंकिणि आदि का मधुर स्वर चारों ओर प्रतिध्वनित होता है[८२]। उसी ध्वनि में पद चालन और करतालों का स्वर मिलाती हुई गोपियों के साथ श्रीकृष्ण चपलामाला से युक्त घनमंडल-जैसे, जान पड़ते हैं[८३]।

ई देव-प्रबोधिनी—हेमंत ऋतु में दीपावली के बाद एकादशी के दिन 'देव-प्रबोधिनी' का उत्सव और जागरण होता है। अष्टछापी कवियों में इसका वर्णन परमानंददास ने किया है[८४]। उनकी यशोदा इक्षुदंड और पुष्पों का मंडप बनाकर उसके चारों तरफ दिये जलाती, धूप-दीप करके भोग लगाती और रात्रि में जागरण करती हैं। साथ-साथ ताल, पखावज, भेरी, शंख आदि वाद्य भी मधुर ध्वनि से बजते हैं[८५]।

उ डोल—वसंत ऋतु का यह उत्सव फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में मनाया जाता है। वृन्दावन में 'कालिंदी-कूल' पर चंदन के 'डोल' में बैठकर कभी केवल कृष्ण झूला झूलते हैं, गोपियाँ उन पर अरगजा छिड़कती और आनंद मनाती हैं[८६] कभी राधा-कृष्ण को विविध वस्त्राभूषण पहनाकर 'डोल' में झुलाया

मूरति एक अनेक देखि अदभुत सोभा अस,
मंजु-मुकुर-मंडल महि बहु प्रतिबिम्ब बधू जस—नंद रास ५-५।

८२. नूपुर, कंकन किंकिनि करतल मंजुल मुरली
ताल मृदंग उपंग, चंग एकै सुर जुरली।
मृदुल मधुर टंकार ताल झंकार मिली धुनि
मधुर जन्त्र की तार भँवर गुंजार रली पुनि—नंद रास ५-७।

८३. तैसिय मृदुपद पटकनि चटकनि करतारनि की
लटकनि, मटकनि झलकनि कल कुंडल हारनि की।
साँवर पिय के संग नृत्यति यों ब्रज की बाला
जनु घन-मंडल-मंजुल खेलति दामिनि-माला—नंद रास ५-८।

८४ देव दिवारी 'सुभ एकादसी हरि प्रबोध कीजै' हो माई—परमा १ १।

८५. 'देव जगावति जसोदा रानी बहु उपहार पूजा कै करि कै'।
'इच्छु दंड' मंडप सोहपन क चौक चहूं दिसि दीया भरि कै'।
ताल पखावज भेरि संख पुनि गावति निसि मिलि जागरन करि कै'।
धूप दीप करि भोग लगावति दै पौढ़ाअनि भरि भरि कै—परमा १ ४।

८६. 'डोल चंदन को झूलत हलधर बीर।

जाता है । कुंभनदास ने 'डोल-वर्णन में केवल वृषभानुजा राधा के 'कंचन डोल' में बैठकर सखियों के साथ झूलने, गाने और अबीर-गुलाल छिड़ककर आनंद मनाने का उल्लेख किया है ।

ख *लीलावतारोत्सव*—इस वर्ग में जो उत्सव आते हैं उनमें नौ मुख्य हैं—रामनवमी, नृसिंह जयंती, वामन-जयंती, रथयात्रा, जन्माष्टमी, राधाष्टमी, गोपाष्टमी, पवित्रा और अक्षय तृतीया । इनमें से प्रथम तीन का संबंध विष्णु के अवतार राम, नृसिंह और वामन से है, चतुर्थ का जगन्नाथ जी से और शेष का संबंध श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया राधा के जन्म अथवा उनकी लीलाओं से है ।

अ *रामनवमी*—चैत्र के शुक्लपक्ष की 'रामनवमी' के दिन 'रामजन्मोत्सव' मनाया जाता है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास के अतिरिक्त परमानंददास और गोविंदस्वामी ने किया है । सूरदास ने 'रामकथा' को लेकर १८० पद लिखे हैं जिनमें से प्रारंभिक तीन पदों में राम-जन्म की बात कही गयी है, 'रामनवमी' का उल्लेख कहीं नहीं है [१] । गोविंदस्वामी के भी इस प्रसंग में

× × ×

गोपी रहीं अरगाय छिरकति उड़त गुलाल अबीर—परमा १२५ ।

८७ गोकुल नाम 'बिराजत डोल' ।
संग लिये वृषभानु-नंदिनी पहिरे नील निचोल ।
कंचन खचित लाल मनि मोती, हीरा जटित अमोल ।
झुलवहिं जूथ मिले ब्रज-सुंदरि हरषित करहिं कलोल—सा २८११ ।

८८ ललिता बिसाखा झुलवति ठाढ़ी कर गहि 'कंचन डोल' ।
निरखि निरखि प्रीतम पिय प्यारी बिहँसि बहसि हँसि बोल ।
उड़त गुलाल कुमकुमा चंदन परसत चारु कपोल—कुंभन ८ ।

८९.क आजु दसरथ कैं आँगन भीर ।
ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर ।
फूले फिरत अजोध्या-बासी गनत न त्यागत चीर—सा ९ १६ ।

ख अजोध्या बाजति आजु बधाई ।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता रामचंद्र निधि आई—सा ९ १७ ।

ग रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर ।
देस-देस तैं टीकौ आयौ रतन कनक मनि हीर—सा ९ १८ ।

तीन-चार पद मिलते हैं, परंतु 'रामनवमी' का उल्लेख उन्होंने भी नहीं किया है[१०]। परमानन्ददास के अवश्य इस विषय पर लिखे गये पाँच-सात पदों में से एक में 'नौमी' का उल्लेख मिलता है[११]। शेष पदों में राम जन्म की चर्चा सामान्य रूप से है[१२]।

आ नृसिंह-जयंती—'नृसिंह चतुर्दशी' का वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास और परमानन्ददास ने किया है। 'सूरसागर' में इस विषय का एक लंबा पद है जिसके प्रारंभ में 'नरहरि अवतार' का वर्णन करने का कवि ने उल्लेख किया है[१३]। सूरदास के एक और पद में श्रीनृसिंह की भक्तवत्सलता की ओर संकेत किया गया है[१४]। परमानन्ददास ने भी 'नृसिंहावतार' को लेकर पाँच-छह पद लिखे हैं जिनमें उनकी भक्त-रक्षा की बात कही गयी है[१५]।

१०. क. प्रगट्यो राम कमलदल लोचन।
निरखि निरखि जननी कौसल्या मिटि गयो उर को सोचन—गोवि १५१।
ख. कौसल्या की कूख कल्पतरु प्रगट भए श्रीराम।
देवलोक अरु भुवनलोक में पूरन मन के काम।
दसरथ भागि सराहिए हो कौसल्या बड़ भाग—गोवि १५२।
ग. बधायो श्री दसरथ राइ कें श्रीपति सिसु भए आय।
मरयादा पुरुषोत्तम प्रगट बपु सहित रघुबीर।
बसुधा भार दूरि करिब कों आए हैं रनधीर—गोवि १५१।
११. 'नौमी' के दिन नौबत बाज कौसल्या सुत जायौ।
सात घरी दिन अभिजित भयो है सब सखियनि मंगल गायौ—परमा ११७।
१२. क. आज सखी रघुनन्दन जाये।
सुन्दर रूप नयन भर देखौ गावत मंगलचार बधाये—परमा १४।
ख. आज अयोध्या प्रगट राम।
दसरथ बंस उदै कुल दीपक सिव बिरंचि मुनि मनौ बिसाम—परमा १४२।
ग. घर-घर उत्सव चारु अयोध्या राघव जनम निवास।
गावत सुनत लोक में पावन बलि परमानन्ददास—परमा १४३।
१३. नरहरि नरहरि सुमिरन करौ। नरहरि पद नित हिरदय धरौ।
'नरहरि-रूप धरयौ जिहिं भाइ। कहौं सो कथा सुनौ चित लाइ—सा ७-२।
१४. ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी।
करत प्रहलाद के 'कारि नरसिंह बपु, निकसि आए तुरत खंभ फारी—सा ७-५
१५. क. बहु सनमान दियो प्रह्लादैं सबही निर्भय कियो।

इ वामन-जयंती—अष्टछापी कवियों में 'वामन-जयंती' का वर्णन करने वाले सूरदास, परमानंददास और गोविंदस्वामी हैं। सूरदास ने 'बटु वामन' के दर्शन बलि के द्वार पर कराये हैं[१६]। परमानंददास ने दो पदों में सूरदास की तरह बलि-द्वार पर खड़े वामन का ही वर्णन किया है[१७] तीसरे पद में 'भादों' मास की सुभग सुदी द्वादसी का कश्यप और अदिति के घर देव काज के लिए 'वामनावतार' होने की बात कही है[१८]। गोविंदस्वामी ने अदिति के पुत्र के रूप में वामन के घनस्याम रूप का पीतांबरधारी पुनीत दर्शन कराने[१९] के साथ-साथ यह भी कहा है कि हरि ने ही यह अवतार लिया है[२०]।

ई रथ-यात्रा—आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को रथ-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। इसका वर्णन सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास और

निकसे खंभ फारि के नरहरि' आपुन राखि लियो—परमा १४७।
ख जय-जय श्री नरसिंह हरी।
जय जगदीस भगत भय मोचन खंभ फारि प्रकट करन करी—परमा १५।
१६ क 'द्वारें ठाड़े हैं द्विज बावन'।
चारो वेद पढ़त मुख आगर अति सुकंठ-सुर-गावन—सा ८११।
ख राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।
चारो वेद पढ़त मुख आगर है बावन-बपु-धारी—सा ८१४।
१७ क. वामन आयो बलि पै माँगन'।
आये अनूप रूप कहा कहिये ठाड़ो पौर के आँगन'—परमा २१।
ख अहो बलि! 'द्वारे ठाड़े बामन'।
चारों वेद पढ़त मुख पाठी अति सुंदर सुर गावन—परमा १२।
१८. 'कस्यप पिता अदिति माता प्रगटे बामन रूप।
'भादों मास सुभग सुदी द्वादसी लीनो रूप अनूप।
सुर तैंतीसौ दरसन लागे होहिं हमारे काम।
बटु सुरूप धरि' दरसन दीयो आये बलि के धाम—परमा २४।
१९ 'प्रगट श्री बामन अवतार।
निरखि 'अदिति करत प्रसंसा' जुग जीवन आधार।
तन घन स्याम पीत पट राजत सोभित हैं भुज चार।
कुंडल मकराकर कौस्तुभ मनि उर भृगु रेखा सार—गोवि ८।
२ आजु 'हरि बामन रूप लयौ'।
अनेक रिषीस्वर सिष्य संग लिये बलि को दरस दयौ गोवि ४६।

चार घोड़ोंवाला रथ खींचे जाने की बात कही है और उनकी प्रसन्नता देखकर दोनों भाइयों का भी हर्षित होना बताया है[४]।

रथ-यात्रा-प्रसंग में कुंभनदास के तीन पद विशेष प्रसिद्ध हैं। पहले दो में उन्होंने राधा के साथ रथ पर श्रीकृष्ण का दर्शन कराया है;[५] परंतु अंतिम में त्रिभुवननाथ की बहन सुभद्रा, भाई बलराम तथा अन्य ग्वाल-बालों के साथ उनका रथ पर विराजमान होना कहा है[६]। चतुर्भुजदास ने वाम भाग में वृषभानु-नंदिनी के दर्शन कराये हैं[७] तथा 'व्रजरानी' द्वारा आरती किये जाने का भी उल्लेख किया है[८]।

सुभ अनूपम हाटक कलसा मुक्ता लर झुमकारी ।
चपल चारु चलत ह्वै गति उपजत है छवि भारी ।
निरखि नीरि पँचरंग पाट की कर गहे कुंजबिहारी ।
बिहरत ब्रजवीथिनि वृन्दावन गोपीजन मनुहारी ।
कुसुमांजलि बरखत सुर-नर-मुनि परमानंद बलिहारी—परमा० ७४२ ।

४ तुम देखौ माई रथ बैठे गोपाल ।
हीरा मोती पोति बनी है बिच बिच राजत लाल ।
बैरख फरहरात चलसन पर चमकन हाटक बहुरंग ।
चलि हौ बिचित्र रच्यौ बिस्वकर्मा साजित चार तुरंग ।
चौपट ग्वाल-बाल सब संगे करत कुलाहल भारी ।
निरखत हँसत दाऊ री मैया 'बलि दास गिरिधारी—परमा० ७४१ ।

५-क रथ बैठे मदनगोपाल अंग-अंग सोभा बरनी न जाई ।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजति, पीतांबर अरु तिलक सुहाई ।
गज-मुक्ता की माल कंठ माह मानो नीलगिरि सुरसरि पैसि आई ।
श्री वृन्दावन भूमि वाम अंग मोद राधा नागरि मानौ घन-दामिनि की छबि पाई ।
—कुंभन० ८८ ।

ख रथ पर राजत सुंदर जोरी ।
श्रीनंदलाल लाड़िलौ सुंदर श्री राधा जू गोरी—कुंभन० ८८ ।

६ रथ बैठे त्रिभुवन-नाथ ।
बहन सुभद्रा अरु बल भइया और सखा सब सोहत साथ—कुंभन० ६० ।

७ बाँये हो या रथ की सुन्दरताई ।
× × ×
रथ में बैठे मदन मोहन की मदुमुस्कान गाई ।
बाम भाग वृषभानु नंदिनी चलि सोभा सुखदाई चतु० ११० ।

८ रथ [illegible] [illegible] [illegible] ।

गोविंदस्वामी के इस प्रसंग में पाँच पद मिलते हैं जिनमें से चार में तो अन्य कवियों के समान श्रीकृष्ण और उनके रथ की शोभा का वर्णन किया गया है[९] एक में अवश्य एक नयी बात कही गयी है। श्रीकृष्ण माता यशोदा से कहते हैं—तू मुझे गोद में लेकर रथ में बैठ जा, इधर राधा बैठें, उधर बल मैया। गोप सखा गीत गाते हुए साथ चलें और ब्रजजन (ब्रजबालाएँ) आरती उतारें[१०]।

उ *जन्माष्टमी*—भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े उल्लास से मनाया जाता है। अपने आराध्य का अवतार-दिवस होने के कारण इसकी चर्चा तो यद्यपि सभी अष्टछापी कवियों ने की है, तथापि उसी समय श्रीकृष्ण के गोकुल पहुँचा दिये जाने के कारण यह उत्सव अष्टछाप-काव्य में उस रूप में नहीं वर्णित है, जिस उत्साह से यह आज मनाया जाता है। सूरदास ने भादों की अँधेरी आधी रात में बंदीगृह में कृष्ण-जन्म होने और उसी समय उनके गोकुल पहुँचाये जाने की बात बड़े विस्तार से लिखी है[११]। एक दूसरे पद में उन्होंने कृष्ण

× × × ×

'ब्रजरानी मिलि करति आरती 'चतुर्भुजदास' बलिहारी'—चतु १११।

९. देखिए गोविन्दस्वामी प० १६८, १६६ १७ और १७२।

१ तू 'मोहि रथ ले बैठि री मैया।
'इतकी ओर बैठिहैं राधे उतकी ओर बल भैया'।
गोप सखा सब संग चलेंगे अरु गावेंगे गीत।
बढ़गी मेरे रथ की सोभा, सुख पावेंगे मीत।
ब्रजजन भवन भवन प्रति ठाढ़ी देखन कों मेरी आछो।
आरती ले उतारि कें मो पर ह्वै हैं मारग आछी।
सुनत बचन आनंद-सिंधु में मगन भई जसुदा माई।
रसिक मनोरथ पूरन गोविंद बैकुंठ तजि ब्रज आइ—गोविं १७१।

११ क 'भादों की अध-राति' अँध्यारी।
द्वार-कपाट कोटि भट रोके, दस दिसि कंत कंस मम भारी।
गरजत मेघ महा डर लागत बीच बही जमुना जल कारी।
ठाढ़ें भई सोच जिय मोरें क्यों दुरिहै ससि-बदन-उज्यारी—सा १ ११।

ख 'अँधियारी भादों की रात।
बालक हित बसुदेव देवकी, बैठि बहुत पछितात।
बीच नदी, घन गरजत बरषत दामिनि कौंधति जात।

पक्ष रोहणी नक्षत्र और बुधवार के दिन जन्म होना लिखा है[१२]। परमानंददास[१३] और कुंभनदास[१४] ने तिथि, नक्षत्र और वार का उल्लेख करके ही गोकुल के जन्मोत्सव का वर्णन प्रारंभ कर दिया है। चतुर्भुजदास ने तो इनके साथ-साथ 'द्वापर युग' का भी उल्लेख करना आवश्यक समझा है[१५]। गोविंदस्वामी ने अवश्य मथुरा के बंदीगृह में उनके जन्मोत्सव की बात कुछ विस्तार से लिखी है[१६]।

गोकुल में श्रीकृष्ण का 'जन्मोत्सव' बहुत उल्लास से मनाया जाना सभी अष्टछापी कवियों के काव्य में वर्णित है जिसकी चर्चा 'जन्म-संस्कार' के अंतर्गत पीछे की जा चुकी है।

५. *राधाष्टमी*—भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन 'राधाष्टमी' मनायी जाती है और यह उत्सव छह दिन अर्थात् छठी तक चलता रहता है। आराध्य-प्रिया के जन्म का शुभ दिवस होने के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने 'राधाष्टमी' का वर्णन बड़े उत्साह से किया है, परंतु श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के समान

बैठत उठत सेज सोवत मैं कंस करनि अकुलात।
गोकुल बाजत सुनी बधाई लोगनि हिये सुहात—सा १ १२।

१२. संवत सरस बिभावन 'भादों आठैं तिथि बुधवार'।
कृष्न पच्छ रोहिनी अर्द्ध निसि हर्षन जोग उदार—सा १ ८६।

१३ जनम लियो सुभ लगन बिचार।
कृष्न पच्छ भादों निसि आठैं नच्छत्र रोहिनि और बुधवार—परमा १६।

१४ भादों कृष्न पच्छ आठैं निसा रोहिनी नछत्र बुधवार'।
अबजन करत कुलाहल निरखत नंदकुमार—कुंभन १।

१५. बदि भादौं आयी 'जुग द्वापर अर्ध राति बुधवार।
'वासव करन अरु नछत्र रोहिनी जनमें जगदाधार—चतु ५।

१६.क. प्रगटे मथुरा माँझ हरी।
मात तात हित पुत्र रूप मिस अपनी प्रतिग्या करी।
स्याम बरन बपु उर पर भृगु पद जटित कंचन जैसे कीट खरी।
दोऊ भुजा बन माला संख चक्र गदा पदुम धरी।
परम पुरुष भगवंत जानि जिय बसुदेव मन लाल सीहि करी।
द्वार कपाट भिदि चले ब्रजपति तब सुर कुसुमनि वृष्टि करी—गोविं ८।

ख भादौं की राति अँधियारी।
संख चक्र गदा पदुम बिराजत मथुरा जनमु लियो बनवारी।

वह विस्तृत नहीं है। सूरदास,[१७] कुंभनदास[१८] और छीतस्वामी[१९] ने एक-एक, दो-दो पदों में राधा के जन्मोत्सव का वर्णन किया है। चतुर्भुजदास[२] और गोविंद स्वामी [२] ने चार चार, पाँच-पाँच पद इस प्रसंग में लिखे हैं। राधा के जन्मोत्सव की बात सुनकर चतुर्भुजदास के नंद, यशोदा और कुँवर कन्हाई फूले नहीं समाते[२२]। परमानंददास ने इस विषय का वर्णन अष्टछापी कवियों में सबसे विस्तार से किया है। उन्होंने राधा के जन्मोत्सव के साथ-साथ 'पलना के पद' भी लिखे हैं।

बोलि लिये वसुदेव देवकी बालक भयो परम हितकारी।
अब ले जाहु याहि तुम गोकुल अधम कंस की मोहि डर भारी।
सोवत स्वान पहरुवा चहुँ दिसि खुले कपाट गई भौ न्यारी।
पाछें सिंह दहारत बूकत आगे है कालिंदी भारी।
अब जिन सोच करत ठाड़े ह्वै अब विधि कहा बिधाता ठानी।
कमलनैन को आनि महातम जमुना भई चरन तर पानी—गोविं ११।

१७ आज वृषभान कें आनंद।
× × ×
'सूरदास प्रगटी भुव ऊपर भक्तनि के हित जोग।
—'सूर निर्णय' पृ २१ से उद्धृत।

१८. राधे जू सोभा प्रगट भई।
वृन्दावन गोकुल गलिननि में सुख की लता छई—कुंभन ७।

१९ सकल भुवन की सुंदरता वृषभानु गोप कें आई री—छीत २।

२ क आनँद भवन वृषभान कें।
आई सुता माई कीरति पर ऐसी कुँवरि नहिं आन कें—चतु १४।
ख रावलि राधा प्रगट भई।
श्री वृषभान गोप गढ़के कुल प्रगटी अति आनंदमई—चतु १७।

२१ क. आजु बरसाने बजत बधाई।
कुँवरि भई श्री स्याम कीरति कें कीरति सब जग छाई—गोविं १६।
ख सुनियत रावलि होत बधाई।
प्रगट भई त्रैलोक-नंदनी रसिक जननि सुखदाई—गोविं २।
ग. बधाई बाजत रावलि माँझ।
श्री वृषभानु गोप कें प्रगटी मानों फूली साँझ—गोविं ११।

२२. पंच सबद बाजे बाजत पुनि दिसनि दिसनि हरि छाई।
नंद जसोमति सब सुख सौंरो फूले कुंवर कन्हाई—चतु १५।

राधा की चरण-वंदना से उन्होंने विषय का आरंभ किया है[२३]। दूसरे-तीसरे पद में राधा का 'अवतार'[२४] शुक्ल पक्ष की अष्टमी को होने की बात उन्होंने कही है[२५]। उनकी यशोदा भी इस अवसर पर बधाई देती है[२६]।

अष्टछाप के सभी कवियों ने राधा के अपूर्व रूप का भी वर्णन किया है[२७]। तदनंतर 'कृष्ण-जन्मोत्सव' के समान ही 'राधाष्टमी' भी मनायी जाती है, तरह के बाघ बजते हैं और दानादि से याचकों को संतुष्ट किया जाता है।

ए *गोपाष्टमी*—कार्तिक सुदी अष्टमी को 'गोपाष्टमी' का उत्सव होता है जो श्रीकृष्ण के प्रथम गोचारण दिवस के उपलक्ष में मनाया जाता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास के श्रीकृष्ण पहली बार गोचारण के लिए माता की आज्ञा माँगते

२३ धन धन लाड़िली के चरन।
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन।
नख चन्द चारु अनूप राजत जोति जगमग करन।
नूपुर कुनित कुच बिहरत परम कौतिक करन।
नंद सुत मन मोद कारी बिरह-सागर तरन।
दास परमानंद छिन छिन स्याम ताकी सरन—परमा १६।

२४ आज रावल में जय जय कार।
प्रगट भयी वृषभान गोप के श्री राधा अवतार—परमा १६३।

२५. राधा जू कौ जन्म भयौ सुनि माई।
'सुक्ल पच्छ निसि आठैं घर घर होत बधाई।
अति सुकुमारी भरी सुभ लच्छन कीरति कन्या जाई—परमा १६४।

२६ परमानंद नंदनंदन के आँगन जसुमति देति बधाई—परमा १६४।

२७ क प्रकटी सुता वृषभान गोप के परम भावती जी की।
बिन देखत त्रिभुवन की सोभा लागत है अति फीकी—परमा १६७।
ख प्रगटी 'नागरि रूप निधान।
निरखि निरखि कुलति ब्रजबनिता नाहिन उपमा कौं थान'—कुंभन ८।
ग नहिं कमला नहिं सची नहीं रति सुंदर रूप समान के—चतु १४।
घ 'उपमा नाहि करी कोउ करता काकौं करौं समतार—चतु १६।
ङ रूपरासि रसरासि रसिकिनी नव अंकुर अनुराग नए—चतु १७।
च कोटि रमापति रूप माधुरी ना आवै छबि समताई।
धन्य भाग वृषभानु गोप कौ सुता अलौकिक पाई—गोवि १६।

ने भी प्रथम गोचारण के दिन विविध वाद्यों के बजने और गोप-वधुओं के द्वारा मनोहर 'बानी' में गीत गाये जाने की बात लिखी है[१३]। उस समय माता यशोदा उनकी आरती उतारती हैं, चारों ओर मंगल शब्द होते हैं, गीत गाये जाते हैं और विविध वस्त्राभूषण धारण किये, रोली-तिलक लगाये, गायों को आगे कर गोचारण के लिए जाते हुए पुत्र पर मैं जननी 'राइ-नोन' उतारती है[१४]।

ङ पवित्रा—'सूर-निर्णय' के अनुसार,[१५] यह नित्यलीला तथा वल्लभ-अवतार का उत्सव है। श्रा० शु० ११ की अर्द्धरात्रि को साक्षात् पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर श्रीगोकुल के ठकुरानी गोविंदघाट पर श्रीवल्लभाचार्य जी को ब्रह्म-संबंध का उपदेश दिया था[१६]। तब आचार्य जी ने नित्य लीला के संबंध में उन पुरुषोत्तम को 'पवित्रा' धराया था। तबसे यह उत्सव प्रतिवर्ष संप्रदाय में मनाया जाता है। 'पवित्रा' पहनने के दिन सूरदास के कृष्ण केसर कुंकुम के रंग का 'बागा' धारण करते हैं[१७]। यशुमतिनंदन ने उनको गुंजा के मनोहर हार पहनाये

१३ 'प्रथम गोचारन कौ दिन आज।
प्रातकाल उठि जसोदा मैया कीनौं है सब साज।
विविध भाँति बाजे बाजत हैं रहो घोष सब गाज।
'गावति गीति मनोहर बानी' तजि गुरुजन की लाज।—गोर्वि ८१।

१४ 'प्रथम गोचारन चले गोपाल'।
जननि जसोदा करति आरती मोतिनि भरि भरि थाल।
मंगल सब्द होत तिहिं औसर मिलि गावति ब्रजबाल।
विविध सिंगार पहरि पट भूषन रोरी तिलक दै भाल।
सब समाज ले चले वृन्दावन आगे कीनी गाइ।
राई-नौन उतारति जननी गोविंद बलि बलि जाइ—गोवि ८२।

१५ श्री द्वारकादास परीख तथा श्री प्रभुदयाल मीतल 'सूर निर्णय' पृ २१।

१६ श्रावणस्यामल पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरशः उच्यते—'सूर निर्णय' से उद्धृत, पृ २१।

१७ 'पवित्रा' पहिरन कौ दिन आयौ।
केसर कुमकुम रँग रस बागौ फुँदना हार बनायौ।
जै जै कार होत बसुधा पर सुर-मुनि मंगल गायौ।
पहिरि पवित्रा सिंधु नंद-सुत सूरदास बल गायौ॥
—'सूर निर्णय' से उद्धृत पृ २१।

गोविंदस्वामी ने इस अवसर पर ताल पखावज, वेनु आदि के बजने और श्रीकृष्ण की आरती उतारे जाने का भी वर्णन किया है[४७]।

ओ अक्षय *तृतीया*—वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'अक्षय तृतीया' का उत्सव मनाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में होने के कारण चंदन का शृंगार इस उत्सव की विशेषता है। चंदन के साथ 'अरगजा' आदि अन्य सुगंधित पदार्थों के उपभोग की बात भी सूरदास ने लिखी है[४८]। परमानंददास ने पाँच-चार पद इस प्रसंग में लिखे हैं जिनमें से एक में 'अक्षय सुहागवती' राधा को 'अक्षय तृतीया' के शुभ दिवस पर प्रियतम की चंदन से पूजा करने की प्रेरणा दी गयी है[४९]। दूसरे पद में गिरिधरलाल धोती पहने और अरगजा की सुगंध में बसा पीतांबर धारे' बताये गये हैं[५०]। कुंभनदास के दो पद 'अक्षयतृतीया' के संबंध में

व्रजवासिनि मिलि मंगल गायो स्याम निरखि सचु पायो।
मह मह सहित भोजन आयो है संतन के मन भायो।
'नंद जसोदा हँसि-हँसि भेंटति' गोपिनि चौक पुरायो—परमा ८८५।

४७ 'पछिया की चिदूलक पहिरावत'।
व्रज बनेस गिरिधरन नंद को निरखि निरखि सुख पावत।
कुंकुम तिलक लिलाट दिए व्रजजन मंगल जस गावत।
बाजत ताल पखावज बेनु सुर मुनि चहुँ दिसि तें सब धावत।
हरखि-हरखि अवलोकि बदन छवि 'नीराजना उतारत'।
'गोविंद' प्रभु गोवर्धनवासी चरन कमल चित लावत—गोविं २१८।

४८. आजु बने नँदनंदन री नव चंदन अंग अरगजा लाये।
मरकत हार सुढार अनूप मनि, गुंजत अलि मालन लपटाये।
पीत बसन तन बन्यो पिछौरा टेढ़ी पाग छोर लटकाये।
'अक्षय तृतीया' अक्षय लीला अक्षय सूरदास सुख पाये।
—'सूर निर्णय' से उद्धृत, पृ २१८।

४९ 'अक्षय भाग सुहाग राध को प्रीतम को दिन रतियाँ।
चंदन पूजि प्रीतम सुख दीजै रीझ-रीझ भरे कहो बतियाँ।
अक्षय सुरत कहाँ लौं भागो पार न पावत सेस सुख अतियाँ।
दूरयो मान मदन परमानंद 'सुभ दिन नीको अक्षय तृतियाँ'—परमा ७११।

५० आज धरे गिरिधर पिय धोती।
अति ही नीको 'अरगजा भीनो पीतांबर' घन दामिनी जोती।

प्राप्त हैं। पहले में उन्होंने गिरिधरलाल के दर्शन 'स्वेत वागा, पाग' और पीतांबरधारी रूप में 'चंदन' पहनाकर, वस्त्राभूषण साजे राधा के साथ कराये हैं[५१] तथा दूसरे पद में ठीक दोपहरी में 'खस-खाने' के बीच उनके दर्शन होते हैं जहाँ वे 'खासे का पिछौरा पहने, 'चंदन-भीजी कुलह' सँवारे विराजमान हैं। वृषभानदुलारी राधा उनके अंग-अंग में चंदन का लेप कर रही हैं एवं सुगंधी के फुहारे चारों ओर छूट रहे हैं[५२]।

नन्ददास ने 'अक्षयतृतीया के दिन चंदन का शृंगार किये दंपति के दर्पण देख-देखकर रीझने की विशेष बात कही है[५३]। चतुर्भुजदास के कृष्ण का चंदन-चर्चित तन देखकर सखियाँ अत्यंत पुलकित होती हैं[५४]। गोविंदस्वामी ने 'अक्षय

टेढ़ी पाग भ्रकुटी छबि राजत स्याम अंग अदभुत छबि छाइ।
मुकतामाल फुली बन आई परमानंद प्रभु सब सुखदाई—परमा ७१४।

५१ चंदनै पहिरत गिरिधरलाल।
कंचन बलि प्यारी राधा के मुख बाम भाग गोपाल।
प्रथम ही चित्रित 'अक्षित तृतीया चंदन भ्रकुटी भाल।
स्वेत तहाँ बागा पाग लपटी पीताम्बर लोचन बिसाल।
कुकुम कुच-जुग हेम-कलस में कंठ दोई लर बनी मनि माल।
कुंभनदास' प्रभु रसिक सिरोमनि बिलसत व्रज की बाल—कुंमन ८६।

५२. ठीक दुपहिरी में खस-खाने रच रा मधि बैठे लालबिहारी।
खासा को कटि बन्यो पिछौरा 'चंदन-भीजी कुलह सँवारी'।
चंदन स्याम-तन ठौर-ठौर लेपन करति वृषभान-दुलारी।
बिबिध सुगंध के छूटत फुहारे कुसुमनि के बिजना ढोरत पिय प्यारी।
सघन लता द्रुम भरति मालती सरस गुलाब-माल गूँथति है प्यारी।
कुंभनदास लाल छबि ऊपर रीझि, मैंकोरि देत तन मन वारी—कुंमन ८७।

५३ अक्षय तृतीया अक्षय सुख निधि पिय को पिया चढ़ावै चंदन।
तब ही प्रीय सिंगारी नारी अरगजा घोरि सुघर नँदनंदन।
लै दरपन निरखत जु परस्पर रीझि-रीझि रही जो बंदन।
नंददास प्रभु पिय रस भीजि दुरतिनि सुख बिरह दुख-कंदन।
—नंद भाग २ परि ५।

५४ क. आजु बने नँदनंदन री नव चंदन को तनु लेपु किये।
तामें चित्र भरे कर्पूर पुट सोभित हैं हरि सुभग हियें—चतु १७।

तृतीया' के अवसर पर शृंगार की सभी शीतल वस्तुओं की गणना एक ही पद में कर दी है[५५]।

ग अन्य पर्वोत्सव—इस वर्ग के अंतर्गत संवत्सर, गनगौर, दान, साँझी, नवरात्र, व्रतचर्या, मकर-संक्रांति, ज्येष्ठाभिषेक आदि उत्सव तथा पर्व आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। इनमें से प्रमुख हैं संवत्सर, गनगौर, सावनतीज और साँझी जिनका परिचय अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है।

क संवत्सर—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से हिंदुओं का नव-वर्षारंभ होता है जिसके उपलक्ष में 'संवत्सरोत्सव' मनाया जाता है। यों तो इस अवसर पर सूरदास के 'चक्र के धरनहार गरुड़ के असवार'[५६] वाले पद के गाये जाने की बात कुछ आलोचकों ने कही है[५७] तथापि अष्टछापी कवियों में केवल

ख देखि सखी गोविंद के 'चंदन सोभित साँवल अंग'।
नाना भाँति चित्र चित्र ता महिं केसरि विविध सुरंग—चतु १ १।
ग 'चंदन की खोर' किये मोतिनि की माल हिये।
'अरगजा अंग अंग सोहत नँदलाल के'—चतु १ १।

५५. सीतल 'उसीर' पट छिरकौ 'गुलाब नीर'
तहाँ बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
'अरगजा' अंग लगाइ 'कपूर रज' भँजाइ
'फूलन के हार' काढ़े हिए धरत हैं।
'सीतल अटारी बनाइ' 'सीतल सामिग्री धराइ'
'सीतल पान मुख बीरा' रचत हैं।
'सीतल सिज्या' बिछाइ खस के परदा लगाइ',
गोविंद प्रभु तहाँ छवि निरखत हैं—गोविं १६४।

५६. पूरा पद इस प्रकार है—
चक्र के धरनहार गरुड़ के असवार नंद के कुमार मेरी संकट निवारो।
मकरध्वज-भगु न वारयो गजराज तैं उबारयो नाग को नाथनहार मेरी प्रान प्यारो॥
गिरिधर कर धारयो इंद्र हू को गर्व गारयो ब्रज के रखनहार विरद बिचारो।
द्रुपद सुता की बेर नैकहू ना कीनी देर, अब क्यों अबेर 'सूर' सेवक तिहारो।
—'सूर निर्णय' पृ २१४-२१५।

५७ देखें श्री द्वारकादास परीख तथा प्रभुदयाल मीतल 'सूर निर्णय' पृ २१७।

परमानंददास के दो-तीन पदों में इस उत्सव का उल्लेख किया गया है और नव वर्ष की बात भी कही गयी है। इन पदों में 'प्रिय-प्रिया' का सामान्य शृंगार ही वर्णित है[५८]।

आ *गनगौर*—चैत्र मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को 'गनगौरोत्सव' होता है। व्रज में यह उत्सव मुख्यतः कन्याओं का माना जाता है जिसमें श्रीकृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियों का आदर्श लेकर[५९] 'गौर' या 'गौरों' देवी की पूजा की जाती है। अष्टछापी कवियों में परमानंददास और नंददास के एक-एक दो-दो पद इस विषय के मिलते हैं जिनमें राधा के 'गनगौर' पूजने का उल्लेख है[१]।

इ *सावन तीज*—सावन के शुक्ल पक्ष की तीज को मनाया जानेवाला यह उत्सव लड़कियों और स्त्रियों का होता है जिसमें वे गाती, नचाती और झूला झूलती हैं। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने नंदरानी के सावनतीज खेलने और गोपियों के

५८ क 'चैत मास संवत्सर परिवा बरस प्रवेस भयौ है आज।
कुंजमहल बैठे पिय प्यारी लाल तन पहरें नौतन साज॥
आपु ही कुसुमहार गुहि लीने क्रीड़ा करत लाल मनभावत।
बीरी देत दासपरमानँद हरखि निरखि जस गावत—परमा १२६।

ख बरस प्रवेस भयौ है आज'।
कुंजमहल में बैठे पिय प्यारी लालन पहरे नौतन साज—परमा ७११।

५९ शिव से विनय करती हुई गोपियों की कामना का वर्णन सूरदास ने इस पद में किया है—
सिव सौं बिनय करति कुमारि।
जोरि कर मुख करति अस्तुति बड़े प्रभु त्रिपुरारि॥
सीत भीत न करति सुंदरि, कृस भईं सुकुमारि।
छहौं रितु तप करति नीकैं, गेह नेह बिसारि॥
ध्यान धरि कर जोरि लोचन मूँदि इक-इक जाम।
बिनय अंचल छोरि रबि सौं करति हैं सब बाम॥
हमहिं होहु दयाल दिन-मनि तुम बिदित संसार।
काम अति तनु दहत दीजै, सूर हरि भरतार—सा ७६७।

१ क श्रीराधे कौन 'गौर' तैं पूजी—परमा, कीर्तन-संग्रह भाग १ पृ २७२।
ख छबीली राधे पूज लनी गनगौर—नंद परि ४७।

हिंडोला झूलने जाने का वर्णन किया है[६१]। परमानंददास के एक पद में भी सावनी तीज की चर्चा है जिसमें गोपियाँ नंद जी के 'दरबार' में 'हिंडोला' झूलने जाती और कोकिल कंठ से गीत गाती हैं[६२]।

६ साँझी—भादों मास में शुक्लपक्ष की पूर्णिमा से यह उत्सव प्रारंभ होता है। इसमें कहीं तो श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध तक की समस्त लीलाएँ विविध रंगों से भूमि पर चित्रित की जाती हैं और कहीं रंग-बिरंगे फूलों आदि से दीवार पर साँझी 'चीती' जाती है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने साँझी के उत्सव का वर्णन किया है जिसमें साँझी की पूजा के लिए सखियों के साथ राधिका सुमन बीनती और सखी-वेश में मोहन को साँझी पूजने के उद्देश्य से घर ले जाती है[६३]।

४ त्योहार—

यों तो हिंदू जाति वर्ष भर त्योहार मनाया करती है, परंतु उसके चार वर्णों के अनुसार चार त्योहार प्रधान हैं—ब्राह्मणों का रक्षा-बंधन, क्षत्रियों का दशहरा,

६१ गावी गोविंद कैं 'हिंडोरैं झूलन जान' ।
रंगमहल मैं जहँ नंदरानी जहाँ तीज सुहाइ'॥
श्रीनँद खंभ सवारि सहित सुभमर मरुव बनाइ।
तापर किरिच सु भमत भँवरा डाँडी जटित जराइ ॥
सुठि हेम पटुली मध्य हीरा पूरि लाचन लाइ।
सखी विविध विविध राग मलार मंगल गाइ—सा ९८४१।
६२. आली री सावन तीज सुहाग।
× × ×
चली है घर हिंडोर झूलनि नंद के दरबार ।
× × ×
गावनि सावन-गीत प्रमुदित कोकिल कंठ रसाल—परमा कीर्तन १२०७।
६३ सखियनि संग राधिका बीनत सुमननि बन माँह।
साँझी पूजन को आतुर री छाक कदंब की छाँह॥
सखी भेष दै मोहन को ले सखी आपुन गेह।
पूछी कीरति, यह को सुन्दरि? तब कह्यो यही नेह।
साँझी हेत बिन करि सबको दोउ पौर मन मँझार।
सगरी राति सूर के स्वामी करि सुख किया अपार।
—सूरदास कीर्तनसंग्रह भाग १ पृ १११।

वैश्यों की दीपमालिका और शूद्रों की होली। अष्टछाप-काव्य में इन चारों लोक-त्यौहारों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है।

क. *रक्षा-बंधन*—श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जानेवाला 'रक्षाबंधन' का त्यौहार मुख्यतः ब्राह्मणों का होता है। इस दिन ब्राह्मण-वर्ग अन्य वर्गों के व्यक्तियों, विशेषकर अपने जिजमानों, के राखी बाँधकर आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार कुछ परिवारों में 'रक्षाबंधन' के अवसर पर बहन अपने भाई की कलाई पर राखी बाँधती है। अष्टछापी कवियों में से किसी ने बहन के द्वारा राखी बाँधे जाने का उल्लेख नहीं किया है हाँ, किसी ने ब्राह्मण अथवा पुरोहित द्वारा राखी बाँधे जाने की बात कही है और किसी ने माता द्वारा पुत्र के राखी बँधवायी है।

अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास[१४] और चतुर्भुजदास ने[१५] 'रक्षा-बंधन' का त्यौहार श्रावण के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को मनाये जाने की बात कही है। 'रक्षा-बंधन' का त्यौहार जन-साधारण में 'सलूनों' नाम से प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख परमानंददास के एक पद में हुआ है[१६]। इसी प्रकार 'रक्षा-बंधन' के दिन बाँधी जानेवाली 'राखी' को कुंभनदास[१७] और गोविंदस्वामी ने[१८] 'रच्छा' कहा है। सूरदास राखी बाँधे हुए कृष्ण की प्रसन्नता देखकर ही इतना पुलकित हो जाते हैं कि राखी बाँधनेवाले का उल्लेख करने का जैसे उनको ध्यान ही नहीं रहता[१९]। परमानंददास ने भी पदों में सो नद जी द्वारा गगाद्विज को बुलवाकर लाल के तिलक लगवाने और राखी बँधवाने की बात कहा है*, परंतु तीन-चार पदों में माता यशोदा

१४ 'सावन सुदी पून्यो क सुन दिन राखी तिलक बनायो—परमा ७८८।

१५ 'सावन सुदि पून्यौ कौ' सुभ दिन तिलक करति चित भाल के—चतु ११४।

१६ राखी भाँति सलूनों सुमरौं गिरिधर नित नित भावे—परमा ७८८।

१७ 'रच्छा बाँधति' जसुदा मइया—कुम्भन १२७।

१८ रच्छा बाँधति' जसोदा मैया—गोविं २२।

१९ 'राखी बँधावत मगन भए।

बहिना बहुत द्विजनि कों दीनी गोप हँकार लए।

— सूर निर्णय' म उद्धृत पृ २४।

* क. राखी बंधन नंद कराए।

गगाद्विज सब रिसिनि बुलाय लालहि तिलक बनाई—परमा ७८९।

ग रच्छाबंधन करत गरग गुरु नंद महर के धाम।

द्वारा ही यह कार्य संपन्न कराया है[७१] और चौथे पद में तो माता यशोदा द्वारा पुत्र का तिलक करने तंदुल देने और उसके दोनों हाथों में राखी बाँधने की बात कही गयी है[७२]। इसी प्रकार गोविंदस्वामी भी एक पद में तो द्विजवर' द्वारा 'राखी' बाँधे जाने की बात कहते हैं,[७३] परंतु दूसरे पद में माता यशोदा से ही रच्छा' बँधवाते हैं[७४]। नंददास ने अवसर[७५] पुरोहित गर्ग द्वारा राखी बाँधे जाने की बात स्पष्ट शब्दों में कही है।

अष्टछाप के आराध्य श्रीकृष्ण को बाँधी जानेवाली 'राखी' भी साधारण नहीं है। परमानंददास ने उनके रतन खचित राखी' बँधवायी है[७६] तो कुंभनदास मोहन के मन को प्रिय लगनेवाली 'रत्नजटित' सुभग राखी ही बँधवाते हैं[७७]। नंददास की राखी' म हीरे, रत्नों और माणिक्यों के साथ-साथ मोती भी लगे हैं[७८]। गोविंदस्वामी की राखी 'पाट-डोरी की होने पर भी परम विचित्र है[७९]। 'राखी' बाँधने के पश्चात् विप्रगण और गुरुजन आशीर्वाद देते और कुशल मनाते हैं जिससे माता-पिता को भी बहुत प्रसन्नता होती है[८०] और माता यशोदा नारियल, मेवा,

× × ×

दोनों तिलक रच्छा कर बाँधी बहुत प्रसन्न होत है राई—परमा कांक १२६८।

७१ क. 'राखी बाँधति जसोदा मैया'—परमा ७९५ और ७९७।

ख सब ग्वालिनि मिलि मंगल गायो।
राखी बाँधति मात जसोदा मोतिनि चौक पुरायो—परमा ७९८।

७२ माता जसोदा तिलक प्रथम करि तंदुल दिये सुधारी।
अपने कर हरषि दोऊ हाथनि राखी बाँधि सँवारी—परमा कांक १२६७।

७३ विप्र पौरि ठाडे मनमोहन द्विजवर 'रच्छा बाँधत आनि—गोविं २२१।

७४ रच्छा बाँधति जसोदा मैया—गोविं २२ ।

७५ राखी बाँधन 'गर्ग' स्याम कर—नंद परि ८ ।

७६ 'रतन खचित राखी बाँधी कर पुनि पुनि लेत बलैया—परमा ७९५।

७७ रत्न जटित की सुभग बनी अति मोहन के मनभावनी—कुंभन १२६।

७८ हीरा रतन बिच बिच मानिक बिच बिच मुक्तनि भरन—नंद परि ८ ।

७९ 'परम बिचित्र पाट डोरी' पानि रहे करपानि—गोविं २२१।

८० क वा छबि देखि मगन नंदरानी निरखि निरखि सचु पैया—परमा ७९५।

ख सब गुरुजन मिलि देत असीसं' चिरजीवहु कन्हाई।
बढ़ो प्रताप बढ़ो दोऊ को प्रति दिन दिनहिं सवाई।

आभूषण और मुक्तामाल' के साथ-साथ 'ऐंदुरि पिंदुरी वारकर' उनकी आरती करती हैं[८२]। राखी बाँधनेवाले 'द्विजवर' के साथ-साथ अन्य ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दिये जाने की बात सूरदास[८३] परमानंददास,[८४] कुंभनदास[८५] नंददास,[८६] चतुर्भुजदास[८७] और गोविंदस्वामी[८८] ने कही है। एक अन्य पद में परमानंददास ने गर्ग जी को दक्षिणा में मुक्तमाल दिये जाने का उल्लेख किया है[८९]। 'रक्षा-बंधन' के त्योहार के अवसर पर विविध वस्त्राभूषणों से अपने आराध्य का शृंगार कराना भी परमानंददास[९०] और कुंभनदास[९१] नहीं भूले हैं। गोविंदस्वामी ने तो वस्त्राभूषणों

'आनंदे व्रजराज जसोदा' मानो अधन निधि पाई—परमा ७६१।
ग करत तिलक की कुशल मनावति 'विप्रनि देत बधैया'।
चिरजीवो मेरो कुँवर लाडिलो परमानंद बलि जैया—परमा ७६७।
घ. ''''' असीस देत गुरुजन सब द्विजवर—नंद परि ८।
ङ करत वेद मंगल पुनि हरखत दे आसीस सुभ जान।
'चिरजीयो नँन्दलाल कन्हैया ब्रज जन जीवन प्रान—गोवि २२१।
८१ नारिकल अंबर आभूषन वारति' मुक्ता-माल के—कीर्त ६७।
८२ 'ऐंदुरी पिंदुरी वारति मुख पर जननी लेति बलैया।
'आरती उतारत मुख पर गोविंद बलि बलि जैया—गोवि २२।
८३ 'दछिना बहुत द्विजनि को दीनी'—'सूर निर्णय' म उद्धृत, पृ २४।
८४ 'नंद देत दछिना गाइन सँग मंगलचार बधायो—परमा ७६८।
८५, 'विप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना—कुंभन १२६।
८६ 'दछिना देत नंद पाय लागत—नंद परि ८।
८७ क. विप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना—चतु ११४।
ख विप्रनि को दच्छिना बहु दीनी—चतु ११५।
८८ हरषि हरषि के 'देत विप्रनि को हीरा मानिक दान'—गोवि २२१।
८९ 'रच्छा बंधन करत गरग गुरु' मंद महर कें आए।
× × ×
मुक्ता माल अतिवर सुन्दर रच्छा बंधन दच्छिना पाई—परमा काँक १२६८।
९ बहु सिंगार सज आभूषन गिरिवर हलधर भैया—परमा ७६५।
९१ क. बसन विविध आभूषन साजें पीताम्बर बनमाल कें।
'मृगमद अगर, घनसार अरगजा लावति मदन गोपाल कें।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धनधर उर राजत मनिमाल कें—कुंभन १२५।
ख 'विविध सिंगार' किए पर भूषन—कुंभन १२७।

से अलंकृत करके उनको सोने के सिंहासन पर आसीन कराया है[१२]। इस अवसर पर ताल, किन्नरी, ढोल, दमामा भेरि, मृदंग, शंख आदि बजाने आन की बात परमानंददास[१३] और गोविंदस्वामी ने लिखी है[१४]।

माता का वात्सल्य त्योहार के शुभ अवसर पर पुत्र के लिए अनेक प्रकार के व्यंजन तैयार करने को प्रेरित करता है। परमानंददास और कुंभनदास की यशोदा भी भाँति-भाँति के व्यंजन मेवा, पकवान आदि प्रस्तुत करके पुत्र से उनका स्वाद लेने का आग्रह करती हैं[१५]। इस प्रकार बड़े आनंद से 'रक्षाबंधन' का त्योहार संपन्न होता है और सब नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देते हुए विदा होते हैं कि जब तक सूर्य चंद्र और आकाश हैं तब तक वे सुखपूर्वक जीवित रहें[१६]।

ल दशहरा—आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को मनाया जानेवाला यह त्योहार मुख्यतः क्षत्रियों का माना जाता है जिसका वर्णन सूरदास और छीत स्वामी को छोड़ कर सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। 'दसहरा'[१७] या 'दसेरा',[१८] 'दसमी',[१९] 'विजय-दसमी,'[२] 'विजय सुदिन'[१] आदि कहकर अष्टछापी कवियों

१२ सकल सिंगार विचित्र बिराजत संग सोभित बल भैया।
 कनक रचित सिंघासन बैठे' तहाँ मिले गोप के छैया—गोविं २१।
१३ 'ताल किन्नरी ढोल दमामा भेरि मृदंग बजायो—परमा ७९८।
१४ 'ताल मृदंग संख धुनि बाजत सुनत श्रवन मन मोहे छैया—गोविं २२।
१५.क 'सकल भोग आगे धरि' राख तनक सु लेहु कन्हैया—परमा ७९५।
 ख 'मधु मेवा पकवान मिठाई आरोगो' प्रभु मैया—परमा ७९७।
 ग नाना भाँति 'भोग आगे धरि' करति बैठ बल भइया—कुंभन १२०।
१६ नंददास प्रभु चिरजीवी तहाँ लौं ज्यौं लौं चंद सूरज आकाशपर—नंद परि, ८।
१७ क आज 'दसहरा' शुभ दिन नीको—कुंभन २४।
 ख आजु 'दसहरा' शुभ दिन आयो—चतु २८।
१८. आजु 'दसेरा' परम मंगल दिन—गोविं ५।
१९. शरद रितु शुभ आनि अनूपम 'दसमी को दिन' आयो री—परमा २०।
१ क धनि दिन आजु 'विजयदसमी' को—कुंभन २५।
 ख विजयादसमी' शुभ मंगल दिन—चतु २९।
 ग विजयदसमी चढ़ विजय महूरत—गोविं ५१।
२ 'विजय सुदिन' आनन्द अधिक छबि मोहन बसन बिराजत—परमा २५।

ने इस त्योहार का वर्णन किया है और परमानंददास के एक पद में तो इस त्योहार के 'सरद रितु' के आरंभ में मनाये जाने की बात कही गयी है[१] और दूसरे में तिथि, मास आदि का भी उल्लेख हुआ है[३]।

'दशहरे' या 'विजय-दशमी' के दिन नये वस्त्राभूषण पहनकर जौ के अंकुर या 'जवारे' धारण करने की बात अनेक कवियों ने कही है। परमानंददास की माता यशोदा केसर-सौंधी जल से पुत्र को अच्छी तरह स्नान कराती' और सुन्दर पाग, 'अरगजी' बागा आदि वस्त्र तथा अनेक आभूषण पहनाती हैं[४]। एक अन्य पद में परमानंददास ने श्रीकृष्ण के सर पर पाग, माथे पर तिलक और कानों में कुंडल, बायीं ओर लटकते हुए 'जवारे' और कमर में मणिमय क्षुद्रघंटिका का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रिय पुत्र का यह मनोहारी रूप देखकर माता यशोदा बड़े दुलार से बलैया लेती हैं[५]। तीसरे पद में श्यामसुन्दर के 'शृंगारे' जाने की[६] और चौथे में बाग-पाग के साथ ललित आभूषण पहनाये जाने की यथा ब्रजबालाओं और माता यशोदा की प्रसन्नता की बात भी परमानंददास कहते हैं[७]। कुम्भनदास ने लाल पाग-

२. सरद रितु सुभ आनि' अनूपम दसमी कौ दिन आयौ री—परमा० २०।
३ क. आसिन मास सुभग दसमी सुक्ल पच्छ भरी सुखकंद—परमा० २०८।
ख. 'आसौ मास सुभ मंगल दसमी'—परमा० कॉंक० ११०६।
४ क. 'केसर सौंधी घोरि' जननी प्रथम लाल अन्हवायौ री।
नाना बिधि के भूषन अभरन अंग सिंगार बनायौ री।
'पाग पिछौरा और उबटना 'बागौ' बिचित्र धरायौ री—परमा० २०।
ख 'केसर सौंधी घोरि' जसोदा प्रथम न्हवाए आनंद गोबिन्द।
नाना बिधि सिंगार 'पाग बनी अरगजी बागौ' पहिरन छंद—परमा० २८।
५. सीस 'पाग' रही बाम भाग पर लटकि 'जवारे' छाजत।
तिलक तरल है रेख भाल पर कुंडल स्रवन न है आनन्द।
मुख की सोभा कहाँ लौं बरनौं मगन होत मन मानन्द।
कटि पट 'क्षुद्र घंटिका' मनिमय सोहत मोहत मन मोहत।
परमानन्द निरखि नँदरानी लेत बलैया दोऊ हम—परमा० २५।
६. सबै सिंगारत स्याम सुंदर को तन-मन-धन सब वारे री—परमा० कॉंक० १००१।
७ सुदिन सुमंगल आनि जसोदा लाल को पहिरावन बागे।
अंग-अंग भूषन ललित मनोहर लटकनि 'बारे पागे'॥
ब्रज-सुंदरि निरखि मन हरखति मगन होति मन फूलत।

धारी श्रीकृष्ण के मृग-मद के टीके का वर्णन करते हुए अन्य ग्वाल-बालों के भी 'बनि-बनि' अर्थात् 'सज धजकर' आने की बात कही है[८]। चतुर्भुजदास अपने आराध्य को श्वेत जरी का वह पाग पहनाते हैं जिसमें लाल 'कलँगी' लगी है। तनसुख का बागा' पहने, कुंडल आदि धारण किये श्रीकृष्ण के रूप-वर्णन में वे अपने को असमर्थ पाते हैं[९]। गोविंदस्वामी ने गिरिधर का शृंगार 'लाल सूथन', सेत चोलना' 'जरकसी कुलह' आदि से कराया है। पश्चात्, कुंकुम का तिलक लगाकर उनके सिर पर 'जव-अंकुर' रखे जाने की बात कही है[१०]। एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने कुंकुम तिलक और जवारे'-धारी श्रीकृष्ण को 'उत्तुंग आसन' पर चढ़े बताया है[११]।

दशहरे के अवसर पर 'समी' वृक्ष की पूजा करने का भी माहात्म्य है। इसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल कुंभनदास ने किया है[१२]। अन्य त्योहारों के समान, दशहरे पर भी ब्रजबालाओं द्वारा गीत या मंगलगान गाये जाने की बात

रूप राशि रस रसिक लाडिलो देख तन मन लुभत ॥
'मैया देखति लेति बलैया' मुख चुंबति सचु पावति—परमा २१।

८. ग्वाल बाल सब बनि-बनि आए, नंद-नँदन तामें सोभित नीको।
लाल पाग भीनी, रँगभीनी ता-मधि लसत मृग-मद को टीको'—कुंभन २५।

९. स्वेतजरी सिर पाग लटकि रही 'कलँगी तामें लाल'।
तनसुख को बागो अति राजत कुंडल झलक रसाल।
अंग-अंग छबि कहाँ लौं बरनौं नाहिन बरन्यो जात—चतु १।

१० विजय दसमी अरु विजै महूरत' श्री विट्ठल गिरिधर पहिरावत।
करि सिंगार विविध भाँति को निरखि निरखि नैननि सुख पावत।
सूथन लाल अरु सेतु चोलना कुलहै जरकसी' अति मन भावत।
विविध भाँति भूषन अँग सोभित केकी गुंजा पहरावत।
साजि कनक नग थार हाथ लै कुंकुम तिलक लिलाट बनावत
अच्छत दै जव अंकुर सिर पर निरखि निरखि मन मोद बढ़ावत—गोविं ५१।

११ आजु दसरा परम मंगल दिन धरे जवारे गोवर्धनधारी।
कुंकुम तिलक सुभाल विराजे अच्छत सोभा लागत भारी।
आसन उतुंग चढ़े नँदनंदन पासे कुलावत महा सुखकारी—गोविं ५।

१२. कुंभनदास प्रभु विट्ठलेश 'पूजत वृक्ष समी को—कुंमन २५।

परमानंददास,[13] चतुर्भुजदास[14] तथा गोविंदस्वामी[15] ने कही है। वस्त्राभूषणों से अलंकृत पुत्र की सुंदर छवि की आरती माता यशोदा स्वयं या व्रजबालाओं के साथ करके तन-मन आरती और मोतियों का हार निछावर करती हैं[16]। त्योहार के इस शुभ अवसर पर लाड़ले पुत्र से जो 'मन भावे' सो खाने की बात बड़े दुलार से परमानंददास[17] माता यशोदा से कहलाते हैं। गोविंदस्वामी ने भी 'बहुत भोग और बीरा' उनके आगे धरे जाने की बात लिखी है[18]।

ग *दीपावली*—हिंदुओं का तीसरा बड़ा त्योहार 'दीपावली' है जिसका संबंध मुख्यतः 'वैश्य' अर्थात् व्यापारी-वर्ग से है। 'दीपावली' का मुख्य त्योहार तो कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होता है, परन्तु इसके विभिन्न उत्सवों का प्रारम्भ दो दिन पूर्व ही आता है और दो दिन पश्चात् तक वे चलते रहते हैं। इस प्रकार पाँच दिन मनाया जानेवाला यह त्योहार कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी का 'धनतेरस' से आरंभ होता है, दूसरे दिन को 'रूप चतुर्दशी', 'नरकचौदस' या 'छोटी-दीवाली' कहते हैं। अमावस्या को 'बड़ी दीपावली' होती है। उसके दूसरे दिन 'अन्नकूटोत्सव' होता है जिसका संबंध श्रीकृष्ण के गोवर्द्धन-धारण-प्रसंग से माना जाता है। पाँचवें दिन को 'भाई दूज' या 'यम-द्वितीया' कहते हैं। 'दीपावली' के इन पाँचों दिनों में से किसी का वर्णन छीतस्वामी ने नहीं किया है, अष्टछापी कवियों में से प्राय: सबने एक-एक दो-दो पदों में उनकी चर्चा की है।

क *धनतेरस*—वर्षा ऋतु के पश्चात् होने के कारण 'दीपावली' के पूर्व ही घर-द्वार की सफाई और लिपाई-पुताई कर ली जाती है तथा धनतेरस' के दिन से

१३ परमानंद-प्रभु विजयादसमी व्रजजन मंगल गायो री'—परमा २०७।
१४ क व्रजभामिनि मिलि 'मंगल गायो—चतु २८।
ख मंगल गावति सब व्रजनारी—चतु २६।
१५. व्रजभामिनि मिलि 'मंगल गावति'—गोविं ५१।
१६ क मात 'जसोदा करति आरती वारति हार देति मोतिनि को—कुंभन १४।
ख कनक थार कर लिए आरती व्रजभामिनि मिलि मंगल गायो—चतु २८।
ग. आरति करति देति न्योछावर' मंगल गावति सब व्रजनारी—चतु २६।
१७ कहति जसोदा सुनो मेरे लाल्न जोई जोई भावे तिहारे मन'।
'सोई सोई भोजन करो दोऊ भैया गावत गुन तहँ परमानंद—परमा० २०८।
१८. 'बहोत भोग बीरा धरि आगे —गोविं ५१।

घर की सजावट शुरू हो जाती है, नयी-नयी वस्तुयें खरीदी जाती हैं और बड़े उत्साह से 'दीपावली' के स्वागत का आयोजन किया जाता है। इस त्यौहार का वर्णन परमानंददास और कुंभनदास ने अत्यंत संक्षेप में किया है। परमानंददास 'धनतेरस' के दिन का उल्लेख नहीं करते, परन्तु कुंभनदास ने 'कार्तिक वदि तेरस' के दिन इस त्यौहार के होने की बात लिखी है[19]। नंदरानी द्वारा 'धन धोवने' की बात कहकर दोनों कवियों ने 'धनतेरस' का वर्णन प्रारंभ किया है[20]। कुंभनदास ने इसके अनंतर नंदरानी आदि के सोलहों शृंगार करने का उल्लेख किया है,[21] परन्तु परमानंददास के अनुसार 'धनतेरस के दिन गर्ग मुनि बुलाये जाते हैं, वेद-विधि से पूजा होती है और ठौर-ठौर पर 'घृत-दीप' सँजोये जाते हैं। पश्चात्, धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करके निष्ठापूर्वक त्यौहार मनाया जाता है[22]।

ख रूपचतुर्दशी– कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'रूपचतुर्दशी' या 'नरक चौदश' कहा जाता है। इसका वर्णन-अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। दीपावली या 'दिवाली' से एक दिन पूर्व पड़ने के कारण उन्होंने इसे 'छोटी दिवाली' कहा है[23]। यह दिन शारीरिक स्वच्छता से विशेष संबंध रखता है, इसीलिए 'रूपचतुर्दशी' को भली भाँति स्नान करके वस्त्राभूषण धारण किये जाते हैं। परमानंद दास ने भी अपने आराध्य को दूध से स्नान कराने के पश्चात् उनका शृंगार कराया है और वे 'लाल बागे' के साथ 'जरकसी कुल्लह' धारण करते हैं[24]। उनकी सुंदर छवि देखकर ब्रजवासी अत्यंत मुदित होते और हृदय से उनको आशीर्वाद देते हैं[25]।

१९ 'कातिक वदि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी—कुंभन ४८।
२० क 'धनतेरस रानी धन धोवति'—परमा २५१।
  ख आज माई 'धन धोवति नँदरानी'—कुंभन ४८।
२१ नख सत साजि सिंगार अनूपम आपु करति मनमानी—कुंभन ४८।
२२. गर्ग बुलाइ वेद विधि पूजति' ठौर ठौर 'घृत दीप सँजोवति'—परमा २५१।
२३ 'छोटी दिवारी काल्ह मनाये—परमा २५२।
२४ दूध सों स्नान करो मनमोहन' छोटी दिवारी काल्ह मनाये।
  करो सिंगार 'लाल तन बागो कुल्हे जरकसी' सीस बनाय—परमा २५२।
२५. यह छवि देखि देखि ब्रज जन ही देत असीस आपनी मन भाय—परमा २५२।

३ *दीपमालिका*—कार्तिकी अमावस्या को मनाये जानेवाले इस त्योहार को सूरदास[२६] ने एक पद में तथा परमानंददास[२७] ने दो पदों में 'दीपमालिका' कहा है और एक में इसका लोक-प्रचलित नाम 'दिवारी' या 'दिवाली' दिया है[२८]। 'दीपक-पंक्ति' के अर्थ में भी 'दीपमालिका' का उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है जो 'सरद' की कार्तिकी अमावस्या को मनायी जाती है[२९]। 'दीपक की पंक्ति' के अर्थ में 'दीपावलि' या 'दीपावली' की चर्चा यद्यपि छीतस्वामी के अतिरिक्त प्राय सभी कवियों ने की है, तथापि 'दीपमालिका' दिवस के लिए प्रचलित 'दीपावलि' या 'दीपावली' नाम कदाचित् किसी के काव्य में नहीं मिलता। चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी तो 'दीपक-पंक्ति' के वर्णन में भी मौन हैं, परन्तु 'हटरी' में बैठे अपने आराध्य के दर्शन सबने कराये हैं। वर्तमान काल में 'दीपावली' के त्योहार पर मुख्यत 'लक्ष्मी-गणेश' का पूजन होता है; परन्तु अष्टछाप-काव्य में इसकी ओर कहीं संकेत नहीं किया गया है। हाँ, सूरदास ने 'दीपमालिका' के त्योहार का वर्णन 'दीपों' की उस 'पंक्ति' के साथ किया है जिसकी 'दीप्ति' 'कोटि रवि-चंद्र' जैसी है जिसके कारण निशि की कालिमा बिल्कुल मिट गयी है। सारा गोकुल जैसे मणियों से मंडित है सभी भवनों पर मणियों-मुक्ताओं की झालरें लटक रही हैं और गजमोतियों तथा प्रवालों से 'चौक पुराये गये हैं'[३०]। परमानंददास अन्य त्योहारों के समान 'दीपमालिका' का वर्णन भी अधिक विस्तार से करते हैं। उनकी यशोदा पुत्र के चंदन चोवा का लेप शरीर में करके समस्त वस्त्राभूषण धारण करने को कहती हैं[३१]। फिर वे पुत्र को पिता की आज्ञा लेकर बहुत से दीपक बालकर घर में

२६ आजु दीपति दिव्य दीपमालिका—सा ८ ६।

२७ क आज कुहू की राति' मानी दीपमालिका' मंगलचार—परमा २६१।

ख आज 'अमावस दीपमालिका बड़ी परबिनी है गोपाल—परमा २६२।

२८. आज दिवारी' मंगलचार—परमा २५३।

२९. 'सरद-कुहू निसि जानि दीपमालिका बनाई—सा ८४१।

३ आजु दीपति दिव्य दीपमालिका।
मनहु 'कोटि रवि-चंद्र' कोटि छवि मिटि जो गई निसि कालिमा।
गोकुल' सकल विचित्र मनि मंडित' सोभित झलक झलक झालिका।
गजमोतिनि के चौक' पुराए बिच बिच लाल प्रवालिका'—सा ८ ६।

३१ कहत जसोदा सुनो मनमोहन चन्दन लेप सरीर करी।

उजाला करने को प्रवृत्त करती है[१२]। मनमोहन ने माता की आज्ञा का पालन किया कुछ ही देर में हीरे-मणियों के दीप चारों ओर जगमगाने लगे और रात्रि का घन अंधकार दूर हो गया[१३]। नंदकुमार के साथ ब्रज की युवतियों के मंगल गाने और चौक 'पुराने' का वर्णन भी परमानंददास ने किया है[१४]।

कुंभनदास का दीप-वर्णन भी विशेषतायुक्त है। उनको गोकुल के दीपक आकाश के नक्षत्रों-से प्रतीत होते हैं जिनमें नंदराज-रचित अगणित बत्तियाँ अद्भुत जुगति से जल रही हैं[१५]। कुंभनदास के अनुसार उन दीपकों का घृत भी सामान्य न होकर कपूर आदि की विविध सुगंधों से युक्त है[१६]। 'दीपमालिका' के अवसर पर सूरदास ने राधा के साथ-साथ समस्त ब्रज-बालिकाओं के भी शृंगार का वर्णन करते हुए बताया है कि वे कंचन के थालों में झलमलाती ज्योतिवाले दीप तथा अन्य सामग्री लेकर गाती-बजाती नंद जी के द्वार आती हैं और वहाँ अपूर्वानंद छा जाता है[१७]। कुंभनदास के अनुसार केवल नंद के द्वार पर ही नहीं, सारे घोष में इतना

पान फूल चोवा दिव्य अंबर 'मारमिला' लै कंठ धरो—परमा २६१।
'विशेष—'मारमिला' एक आभूषण होता है—लेखिका।

१२. कहत जसोदा सुनो मनमोहन अपने 'तात की आग्या लेहु'।
चारो दीपक' बहुत लाडिले करो उजियारो आपुन गेहु—परमा २६२।

१३ क. दीपावलि हीरा मनि राजत देखि 'हरख होत अति माई'—परमा २६१।
ख दीपदान दीपावलि देखो हीरा दीप खंभ नग राजत'।
'जगमग जोति रही चहुँ दिसि तें निविड़ तिमिर अति भाजत—परमा २६४।

१४ आजु दिपारी मंगलचार।
ब्रज जुवतिजन मंगल गावहिं 'चौक पुरावत नंदकुमार—परमा २६३।

१५. देखो इन दीपनि की सुंदरताई।
मानो उडुगन राजत नभ-मंडल तम निसि परम सुहाई।
नंदराय अगनित बाती रचि अद्भुत जुगति बनाई—कुंभन ५१।

१६ 'विविध सुगंध कपूर आदि मिलि घृत परिपूरनताई—कुंभन ५१।

१७ कर सिंगार बिराजि राधा सु सबै नवल ब्रज-बालिका।
झलमलत दीप समीप सौंज भरि लै कर कंचन थालिका।
करी प्रगट मनमोहन पिय बलित बिलोकि बिलासिका।
गावति हँसति गवावति हँसावति पटकि-पटकि करतालिका।
'नंद द्वार आनंद बढ्यो अति देखियत परम रसालिका—सा ८६।

आनंद है कि वह किसी के हृदय में नहीं समा पाता[३८]।

इसके अनंतर 'हटरी' का प्रसंग आता है जिसका वर्णन छीतस्वामी के अतिरिक्त सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। सूरदास ने बलराम के साथ श्रीकृष्ण को 'हटरी' में बैठाया है। 'पिस्ता, दाख, बादाम, छुहारा, खुरमा, खाजा, मठरी' आदि मेवा-मिठाई-पकवान उनके पास धरे हैं। घर घर से आकर स्त्री-पुरुष, गोपी-ग्वाल वहाँ एकत्र हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनका नाम ले लेकर बुलाते और मेवा, मिठाई, पकवान आदि देते हैं। ब्रज की स्त्रियाँ उनको आशीर्वाद देती हैं और माता यशोदा सबको 'पट' आदि देकर अत्यंत प्रसन्न होती हैं[३९]।

परमानंददास के गिरिधर 'हटरी' या 'हटरिया' में मधु, मेवा पकवान और मिठाई लेकर 'बेचने' बैठते हैं तथा ब्रज की सुंदरियाँ वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर 'सौदा' लेने आती हैं[४०]। प्रेम के आवेश में 'सौदा' खरीदनेवाली कोई सुंदरी उनसे मुस्कराती हुई कहती है—ज़रा सावधानी से 'सौदा' देना और पूरी 'तौल' तौलना[४१]। दूसरी भी हँसकर कहती है—मोहन, मेरी चीज़ कहीं कम न तौल देना[४२]। ब्रज की उन सुन्दरी बालाओं की बात माता यशोदा को कुछ समझ आती

३८. घर-घर घोष परम कौतूहल आनंद उर न समाइ—कुंभन ५१।

३९. सुरभी कान्ह अगार परिकरि बल-मोहन बैठे हैं हटरी।
पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाजा गूझा मठरी।
घर-घर तैं नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री।
हरि-हरि सब देति सबनि कौं' लै-लै नाम बुलाइ निकट री।
'देति असीस सकल ब्रज-भामिनि' जसुमति देति हरषि बहु पट री—सा ८१

४० क गिरिधर हटरी भली बनाई।
दीपावलि हीरा मनि राजत देखि हरष दीन अति माई।
भाँति अनेक पकवान बनाय अति नीतन व्यंजन सुभराई।
सुन्दर भूषन पहिरे सुन्दरि सौदा करन लाल सों आई—परमा २६३।
ख बैठे लाल हटरिया बनठन मधु मेवा पकवान मिठाई।
देखि-देखि शोभा ब्रज-सुन्दरि सौदा लेन लाल सों' आई—परमा २६४।

४१ सावधान ह्वै सौदा कीजै जो दीजै सो तौल पुराई'।
लागी चित चंचल मांहि कीजै ग्वालिनि हँसि मुसकाई—परमा २६३।

४२. मधु मुसकाय कहत मोहन सौं 'पिय जिन तोलौ लाल—परमा २६४।

है और वे उन्हें टोकती हैं—ये कैसी बातें कर रही हो तुम सब लेकिन दूसरे ही पल उनके हार्दिक भाव को समझकर प्रीति से पुलकित हो जाती हैं[४३]। परंतु अंतर्यामी श्रीकृष्ण को प्रेमभरी ग्वालिनों की बात जरा भी बुरी नहीं लगती और वे सबकी इच्छा पूरी करते रहते हैं[४४]।

चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी द्वारा वर्णित 'हटरी' प्रसंग भी कुछ-कुछ ऐसा ही है। उनके गिरिधर जब 'हटरी' में विराजमान हैं तभी व्रज-बालाएँ भाँति-भाँति की मेवा ले आती हैं। उधर रोहिणी और यशोदा 'थाल' भर-भरकर पकवान लाती हैं और भारी भीड़ में से नाम लेकर सबको बुलाकर श्याम अपने हाथ से मिठाई देते हैं[४५]। गोविंदस्वामी के 'गोपाल' 'रतन-जटित' हटरी में बैठे हैं जिसमें मोतियों की झालरें लटक रही हैं। पास ही भाँति-भाँति के पकवान धरे हैं जिनके साथ पान-फूल भी 'नंदलाल' बाँट रहे हैं। जहाँ गोपाल की यह 'पैठ' लगी है और वे 'बेच' रहे हैं, वहीं व्रज की अनेक बालाएँ चितचोर के निकट प्रेम की 'पाश' में बँधी चली आती हैं और उनका दर्शन करके संतुष्ट होती हैं[४६]।

नंददास के 'हटरी' प्रसंग में कुछ विशेषता है। उनके व्रजनाथ अकेले नहीं,

---

४३ कैसी बोली बोलति ग्वालिनि कहत जसोदा माई।
परमानंद हँसी नन्दघरनी सबै बात मैं पाई—परमा २६१।

४४ परमानंद प्रभु नंदनंदन किये ते और सब व्रज की बाल—परमा २६४।

४५ गिरिधर बैठे हटरी सोभत।
व्रज की बाल सबै ले आईं भाँति-भाँति कर 'मेवा तोलत'।
बहुत भाँति पकवान 'थाल भरि' ले-लै रोहिनी जसुमति डोलति।
भीर भई कहुँ ठौर न पावत ले-लै नाम सबन को बोलत।
देत मिठाई स्याम अपने कर पितर रीति कों जानि अमोलत'—परमा ४२।

४६ 'हटरी बैठे' श्री गोपाल।
रतन जटित की हटरी बनी है मोतिनि झालरि परम रसाल॥
दरपाहर कुली और कुल्हैया भरि-भरि धरे पकवान रसाल।
'पान फूल अरु सौंधे सहित' सब बाँटत हैं नंद के लाल॥
रमावलि प्रेमावलि ललिता चंद्रावलि व्रज मंगल बाल।
चलो सखी जहाँ पैठ लगी है बेचत हैं गोकुल के गोपाल॥
सब सुंदरि घर-घर तें आईं निरखति नैन बिसाल।
गोविंद प्रभु पिय चित चोरयो तब 'बँधी हैं प्रेम की पाल'—गोविं ६६।

सखाओं के संग मेवा, पकवान, मिठाई आदि बाँटते हैं जिसकी सूचना पाकर सखियाँ दर्शन करने चलने का परस्पर प्रस्ताव करती हैं। पश्चात्, वे इनकी आरती करके मन में अत्यन्त प्रफुल्लित होकर 'न्यौछावर' भी देती हैं[४७]। इसी प्रकार नंददास के एक दूसरे पद में विविध वस्त्राभूषण पहनकर, माथे पर चंदन लगाकर श्रीकृष्ण पिता नंद के साथ 'हटरी' में बैठते हैं और मेवा, मिठाई आदि मँगा-मँगाकर बाँटते हैं[४८]।

६. अन्नकूट : *गोवर्धन और गोधन-पूजा*—कार्तिकी अमावस्या को 'दीपमालिका' का त्योहार मनाने के 'पाँचक' दिन पहले सुरपति की पूजा का स्मरण होने पर[४९] 'अन्नकूट' का आयोजन किये जाने का वर्णन सूरदास ने किया है और उनकी यशोदा इंद्र से कृष्ण को अमर कर देने का वरदान माँगती हैं[५०]। श्रीकृष्ण के प्रयत्न से सुरपति के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा होती है और उस समय पर्वत के समान ही 'अन्नकूट' रचकर[५१] उसका भोग लगाया जाता है। व्रजवासियों की उपेक्षा से अप्रसन्न होकर सुरपति सात दिन तक व्रज पर प्रलय-जलदों के द्वारा वर्षा

४७ 'हटरी बैठ' श्री व्रजनाथ।
आपने संग-सखा सब लीने, बाँटत मेवा हाथ।
भाँति-भाँति पकवान मिठाई, विधि सौं धरे बनाइ।
चलौ सखी देखन कौं जैये सुख सोभा अधिकाइ—नंद, पदा, पृ ११४।
४८. 'दीपदान दे हटरी बैठे नंद बाबा के साथ'।
नाना विधि मेवा मँगाई, बाँटत अपने हाथ॥
विविध सिंगार पहिरि पट भूषन औ चंदन दिये माथ।
'नंददास' प्रभु सगरिनि आगे, गिरिगोवर्धननाथ—नंद, पदा, पृ ११४।
४९. यई हैं कुलदेव हमारे।
× × ×
दीपमालिका के दिन पाँचक गोपिनि कह्यौ बुलाई।
× × × ×
सूरदास सुरपति की पूजा तुम लरिकनि बिसराई—सा ८११।
५. 'अन्नकूट विधि करत लोग सब', नेम सहित करि-करि पकवान।
महरि 'विनै कर जोरि इंद्र सौं', हरि अमर करि दीजै कान्ह—सा ८१६।
५१ क. 'अन्नकूट ऐसौ रचि राखौ, गिरि की उपमा पाइ'—सा ८१२।
ख 'अन्नकूट जैसौ गोवर्धन' अरु पकवान धरे चहुँ कोदन—सा १ ८।

कराता है; परंतु माहात्म्य के गिरि गोवर्द्धन उठा लेने से उसकी एक नहीं चलती और अंत में वह अपनी धृष्टता के लिए उनसे सविनय क्षमा माँग लेता है[५२]। 'अन्नकूट' का उत्सव संभवतः उसी पौराणिक प्रसंग की स्मृति में आज भी मनाया जाता है।

परमानंददास ने इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन-पूजा के अवसर पर 'अन्नकूट' का वर्णन किया है[५३] जिसमें अनेक प्रकार के व्यंजन, पकवान आदि बनाये गये हैं[५४]। कुंभनदास ने इस अवसर पर विविध बाजे बजने, ग्वाल-मंडली के साथ 'ध्वजा', 'पताका', छत्र, चमर आदि होने की बात लिखी है[५५]। उनका गोप-वृन्द 'षटरस' व्यंजनों का भोग लगाकर विविध उपहार चढ़ाकर प्रदक्षिणा भी करता है[५६]।

चतुर्भुजदास ने गोवर्द्धन-पूजा का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। गिरिधर को गंगाजल से नहलाने, दूध चढ़ाने, अरगजा चरचने, धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित करने भोग लगाने, बीरा देने, आरती करने[५७] और प्रदक्षिणा के पश्चात् न्यौछावर देने[५८] की बात उन्होंने कही है। गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में परमानंददास, कुंभनदास,

५२ सुरपति चरन परयौ गहि बार—सा ९७०।

५३ क 'अन्नकूट बहु भाँति बनावत' रचि पकवानन की ढेरी—परमा २५५।
ख अन्नकूट धरयौ भौन सौं' काहे कौन बनाने।
बहु विधि के पकवान विविध करि सम्मुख धाम—परमा २७२।

५४ 'परमानंद-सागर' पद २७२।

५५ ध्वज, पताका छत्र चमर बरें करत कुलाहल ग्वाल—कुंभन ५२।

५६ गोवर्धन पूजत परम उदार।
गोप-वृन्द मोहन-मोहन के सोभा बढ़ी अपार।
षटरस विंजन भोग सकल ले धरत विविध उपहार।
'पूजा करि पाँइ लागि प्रदच्छिना देत दिवावत ग्वार'—कुंभन ५४।

५७ बड़न को आगें ले गिरिधर श्री गोवर्धन-पूजन आवत।
'मानसी गंगा न्हवाइ' नगसिख तें पाछें 'दूध धौरी को नावत'।
बहुरि पखारि अरगजा चर्चित धूप दीप बहु भोग धरावत'।
दै बीरा आरती करत हैं' व्रजभामिनि मिलि मंगल गावत—चतु ४१।

५८ परिकम्मा करि बार-बार सब मुख निरखत हैं सब ही समाजु।
आरती करत रत न्यौछावरि मुदित फिरत हैं गोप समाजु—चतु ४४।

चतुर्भुजदास और नंददास 'अन्नकूट' की चर्चा नहीं करते, परंतु सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने इस शब्द का प्रयोग अवश्य किया है[५९]। अपने दो-तीन पदों में 'गोवर्द्धन-पूजा' भी उन्होंने बड़े विधान से लिखी है। ताल, मृदंग, शंख, बीन आदि बजाते ग्वाल-बालों, और वस्त्राभूषणों से अलंकृत कोकिल कंठों से गीत गाती हुई ब्रजबालाओं के साथ श्रीकृष्ण गोवर्द्धन-पूजा को जाते हैं। तदनंतर गंगाजल और दूध से गिरिवर को नहलाने एवं रोली चंदन चढ़ाने के पश्चात् तुलसीमाल पहनाने, धूप दीप-विधि करके पीतांबर उढ़ाने तथा पकवान, मिठाई आदि का भोग लगाने का वर्णन गोविंदस्वामी के एक पद में हुआ है[६०]। दूसरे पद में उन्होंने विविध व्यंजनों के विवरण के साथ-साथ पूजा के 'नीराजन' आदि अन्य आयोजनों का भी उल्लेख किया है[६१]।

गोवर्द्धन-पूजा का जैसा वर्णन अष्टछापी कवियों ने ऊपर किया है, लगभग उसी रीति से 'अन्नकूटोत्सव' आज भी मनाया जाता है। अंतर यह है कि गोवर्द्धन के स्थान पर कहीं तो उसकी गोबर की प्रतिमा बनाकर पूजा की जाती है और कहीं श्रीकृष्ण या ठाकुर जी अथवा देवता की। जितने प्रकार के व्यंजन, पकवान मिठाई, फल, मेवा आदि इस 'अन्नकूट' के दिन जुटाए जाते हैं, संभवतः उतने किसी भी दूसरे त्योहार में नहीं होते। खरीफ की फसल कटने के दिन होने के कारण यत्र-तत्र एकत्र अन्न-राशि का प्रतीक भी 'अन्नकूटोत्सव' माना जा सकता है।

गोवर्द्धन-पूजा-प्रसंग में परमानंददास ने एक पद में 'गोधन' की महिमा

५९ पाक साक बिंजन बहु अनकूट कीनो —गोविं० ९८।
६० गोवर्धन पूजा कों आए सकल ग्वाल लिए संग।
बाजत ताल मृदंग संख धुनि बाजा बीन उपंग॥
नव सत साजि सिंगार चली ब्रज-तरुनी अपने रंग।
गावत गीत मनोहर बानी उठत हैं तान तरंग॥
प्रथम पवित्र गंगाजल लेके ढारत गोवर्धन।
ता ऊपर पुनि लै धौरी को पय ढारत आनंद॥
रोरी चंदन चरचन करि कै तुलसी-माल पहिरावत।
धूप-दीप विधि सों सबै करि पीतांबर लै उनहिं ओढ़ावत॥
भोजन करि पकवान मिठाई लै-लै गिरि को भोग धरावत—गोविं० ९९।
६१ गोविन्दस्वामी-पदसंग्रह' प० ७।

का वर्णन करते हुए उसको माता, पिता, गुरु एवं कामनापूरक कामधेनु आदि कहा है[९२]। इसी 'गोधन' का पूजन और क्रीड़न दीपमालिका के दूसरे दिन किये जाने की बात परमानंददास ने लिखी है[९३]। उनके एक दूसरे पद में ब्रजनाथ माता से धौरी आदि धेनुओं को सिंगारने की बात कहते हैं[९४]। मोहन ने धौरी धेनु और 'बरे' वृषभ का शृंगार किया है। [९५]। कभी वे उनके सींग सोने से और पीठ 'पत्र' से मढ़वाकर 'घंटा-कठुला' पहनाते हैं,[९६] कभी अन्य रीतियों से सींग मढ़वा कर उनके गले में हार पहनाकर, घंटा बँधवाकर चरणों में नूपुर पहनाते हैं और इस प्रकार सजी-सजायी गैयाँ बड़ी भली लगती हैं[९७]। 'खवन'-पूँछ उचकाकर गैयों का भागना, गोपाल का उनको पकड़ना, पुचकारना, 'गुर-भेली' खिलाना आदि बातों का भी परमानंददास ने स्वाभाविक वर्णन किया है[९८]।

९२. गोधन पूजैं गोधन गावैं।
गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही को माथौ नावैं॥
गोधन मात पिता गुरु गोधन गोधन देव आदि नित ध्यावैं।
गोधन कामधेनु कल्पतरु गोधन पै माँगि सोई पावैं॥
गोधन खिरक खोरि गिरि गह्वर रखवारो घर बन जहँ धावैं।
'परमानंद' भावतो गोधन गोधन को हमहूँ पुनि भावैं—परमा २८८।

९३ 'धाम कुञ्ज की राति' माधौ दीपमालिका मंगलचार।
× × ×
'गो क्रीड़न पुनि काल्हि होयगी' नंदादिक देखैंगे ग्वार।
परमानंददास संग लीने खिरक खिलावत धौरी गाय—परमा २९१।

९४ हँसि ब्रजनाथ कहत माता सौं 'धौरी धेनु सिंगारो जाय।
परमानंददास को ठाकुर जाहि भावत निशिदिनि गाय—परमा २९२।

९५. 'धौरी धेनु सिंगारी मोहन बरे वृषभ सिंगारे'।
परमानंद प्रभु राई दामोदर गोधन के रखवारे—परमा २९७।

९६ सोने सींग' घंटा अरु कठुला 'पीठ पत्र' लगुराई—परमा २९४।

९७ स्याम खरिक के द्वार 'करावत गायन की सिंगार'।
नाना भाँति सींग मंडित किय ग्रीवा मेले हार॥
घंटा कंठ मोतिनि की पतियाँ पीठिन की आपे ओपार।
किंकिनि नूपुर चरन बिराजत बाजत बजत सुढार'॥
यह बिधि सबै गाय सिंगारी सोभा बढ़ी अपार—परमा २९८।

९८ सब गायनि में घूमरि गामी।

कुंभनदास, चतुर्भुजदास, नंददास और गोविंदस्वामी ने 'गो-क्रीड़ा' का वर्णन परमानंददास की तरह विस्तार से नहीं किया है। कुंभनदास के नंदनंदन की वाणी सुनकर 'धौरी' खेलने को अकुलाने लगती है[६९]। श्रीकृष्ण ने पैंजनी, मेंहदी और 'पुरट' या सोने से गैयों का जो श्रृंगार किया है उसका वर्णन कौन कर सकता है[७०]? चतुर्भुजदास 'धौरी' की अकुलाहट का वर्णन तो कुंभनदास की तरह ही करते हैं;[७१] एक बात अवश्य उन्होंने नयी लिखी है। जब श्रीकृष्ण गाय 'खिलाने' जाना चाहते हैं तब गैयों की अपार भीड़ देखकर माता उन्हें जाने से रोक लेती है। श्रीकृष्ण के रुकते ही समाचार मिलता है कि बिना लाल के 'धूमरि' ने भी खेलना बंद कर दिया है और बार-बार 'हूँक' कर इधर उधर दौड़ती है; तभी श्याम प्रफुल्लित होकर मुरली बजाने लगते हैं[७२]।

'सघन पूँछ उचकाइ' सुधि ह्वै ग्वाल मचावत फिरत अकेली।
पकरि लई गोपाल आप ही कंठ बनाकत खेली।
चुम्बत मुख आटो भरि भेटी टेर कहत 'कारो गुर-भेली ॥
'आप गोपाल रवाव मिलावत' सब गायन को हेली।
परमानंद देखें बनि आवै जब धौरी की बछिया मेली—परमा १५१९।

६९. ललन को धौरी अकुलानी।
आइ भेंटि आतुर सनमुख ह्वै नँद-नंदन की सुनि मृदु बानी—कुंभन ४९।

७० किये हैं सिंगार धेनु सगरिनि कौ, करि सके कौन बखान।

× × ×

पाँइ पैंजनी मेंहदी राजति पीठि पुरट के पान—कुंभन ५।

७१ ललन कों धौरी अकुलानी।
आइ भेंटि आतुर सनमुख ह्वै स्याम सुंदर की सुनि मृदु बानी—चतु १७।
विशेष—यही पद कुंभनदास के नाम से भी मिलता है—देखिए 'कुंभनदास-पद संग्रह' पद संख्या ४९—लेखिका।

७२. जाइ खिलावौ चाहत गिरिधर बरजत हैं नँदराइ'।
धेनु बहुत ठाढ़ी हैं मोहन! देखि टूक क्यों पाई॥
रान्हे हैं रखवार चहूँ दिसि ब्रजराज न पत्याई।
जसोदा रानी और रोहिनी बह मिल मथन मिलाइ।
बिना लाल न्यारति नहीं धूमरि' जब ऐसी सुधि पाई।
हूँकि-हूँकि कै ऊपर धावति लै लकुटी और हराइ॥
हँसि मुसिकाइ स्याम घन सुंदर मुरली मधुर सुनाई—चतु १९।

उ *भाई दूज*—'दीपावली' के तीसरे दिन का त्योहार भाई-दूज है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। माता यशोदा इस दिन बहन सुभद्रा को न्योता देकर बुलाती हैं। सब मे दोनों भाइयों को उबटन लगाकर नहलाती और नये वस्त्राभूषण पहनाती हैं। सुभद्रा तिलक करके दोनों की आरती उतारती है। पश्चात्, 'खीचरी' दही, भात आदि के थाल सामने रक्खे जाते हैं। भोजन के अंत में 'बीरी' दी जाती है। दोनों सुभद्रा को प्रणाम करते हैं और वह उन्हें 'असीस' देती है[७३]।

पाँच दिन तक मनाये जानेवाले इस 'दीपमालिका महामहोत्सव'[७४] पर जुआ या 'द्यूत' खेलने का भी चलन रहा है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने संकर्षन सहित नंदकुमार को 'द्यूत' खेलने का प्रोत्साहन दिया है[७५]।

ध *होली*—फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाये जानेवाले हर्षोल्लास से पूर्ण 'होली' के त्योहार का वर्णन अष्टछाप काव्य में सबसे विस्तार से हुआ है। सूरदास ने इस विषय को लेकर छोटे-बड़े लगभग सत्तर, कुंभनदास ने पंद्रह, नंददास ने बीस, चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने तीस-तीस पद लिखे हैं। परमानंददास और छीतस्वामी के तद्विषयक पदों की संख्या अवश्य कम है, प्रथम के केवल पाँच पद अलीगढ़ के 'परमानंदसागर' में दिये गये हैं और द्वितीय के केवल दो पद काँकरौली से प्रकाशित संग्रह में। खोजने पर इन कवियों से और पदों के मिलने की

७३ भाई-दूज जानिकैं जसुमति बहनि सुभद्रा न्योति बुलावति।
उबटि न्हवाय दोऊ भैया 'बागो बदलत लाल बनावति'।
चीरा बाँधि धरो सिर ऊपर आभूषन बहु बिधि पहिरावति'।
'खीचरी दही भात थारनि भरि' रोहिनी पे सब साज मँगावति।
दोनों तिलक सुभद्रा तबही नीराजन करि हरख बढ़ावति।
बैठत हैं बलराम प्रीति सों माँगि लेत जो मन में भावति।
मुख पखारि बीरी हरि लेत बहिनि पानि दे 'पुनि सिर नावत'।
देत असीस नरा लिछमीपो गोविंद लिम्म लिम्म जनु गावत—गोविं ८।
७४ क दीपमालिका महामहोत्सव ग्वालनि बहु कुन्हाई—परमा २७९।
ख दीपमालिका 'महामहोत्सौ' ग्वालनि लेहु बुलाई—कुंभन ५५।
७५ आज दूज की रानि आयो दीपमालिका मंगलचार।
खेलौ द्यूत सहित संकर्षन मोहन मूरति नंदकुमार—परमा २९९।

भारत है। कृष्णदास का पूर्ण संग्रह प्रकाशित न होने के कारण होली-विषयक उनके पदों की निश्चित संख्या नहीं दी जा सकती।

होली का त्योहार पंद्रह दिन तक चलते रहने की बात सूरदास ने लिखी है और दो पदों में प्रत्येक तिथि को लेकर उसका विभिन्न वर्णन किया है[७६]। सूरदास की तरह गोविंदस्वामी ने भी होली की पंद्रहों तिथियों के खेल और विनोद के क्रम का वर्णन एक पद में बहुत विस्तार से किया है[७७]। 'सारावली' में भी होली का वर्णन दैनिक क्रम से मिलता है[७८]। इस त्योहार का प्रारंभ बसंतपंचमी से किया गया है और सूरदास ने इस ऋतु की शोभा का बहुत सुन्दर वर्णन कई पदों में किया है[७९]। परमानंददास बसंतपंचमी तिथि और उसके बुधवार का उल्लेख करते हैं[८०]। कुंभनदास ने 'श्रीपंचमी' के शुभ दिन, शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में वृन्दावन में गुलाल के उड़ने और ताल के गाने की बात कही है[८१]। गोविंदस्वामी ने एक पद में 'बसंतपंचमी' को 'मनोज-महोत्सव' कहा है,[८२] परंतु विधिवत् होली के मनाये जाने का वर्णन करने की आवश्यकता उन्होंने संभवतः नहीं समझी। होली खेलने के पश्चात् स्नानादि का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने बहुत सामान्य रूप से किया है। वस्त्राभूषणों और भोजन के व्यंजनों की चर्चा भी इस प्रसंग में नहीं की गयी है; हाँ, दान और न्यौछावर की बात वे अवश्य कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। कुंभनदास ने बसंत की सुन्दरता का वर्णन दो पदों में किया

७६ देखिए 'सूरसागर' दशम स्कंध पद २६१४ १५।
७७ देखिए 'गोविंदस्वामी-पद संग्रह', पद ११८।
७८. देखिए 'सूर सारावली छंद १ ५१ म छंद १ ८५।
७९. देखिए सूरसागर' दशम स्कंध पद २८४१ से २८५५ तक।
८० 'आज मदन-महोत्सव राधा'।
मदनगोपाल बसन्त खेलत हैं नागर रूप अगाधा।
तिथि बुधवार पंचमी मंगल रितु कुसुमाकर आई'—परमा १११।
८१ सुभ दिन सुभ घरी सुभ मुहूरत साधि राधिका
'श्री पंचमी हरा ही बधाई ब्रज-राज-लाल।
वृन्दावन कुंज-धाम बिहरत प्रिया-संग स्याम
उड़त गुलाल, ताल गावत बेनु रसाल—परमा ६५।
८२. 'पंचमी आजु मनोज-महोत्सव' मंगल चिन्ह बनावहीं—गोविं १ ४।

समर की ललकार सुनकर बैठ नहीं रह सकता[६६]। एक पद में नंददास ने कृष्ण के बनठन' कर, 'टिपारो' और मोरमुकुट धारण करके फाग खेलने जाने का वर्णन किया है[६७]। उनकी गोपियाँ भी किशोरी, गोरी, 'भोरी', 'प्रेम-रंग में बोरी' और 'एक बार की बोरी' सी हैं[६८]। चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी नाना वेशों में सुशोभित होती हैं[६९]। उन ब्रजबालाओं के शृंगार का बहुत विस्तार से वर्णन चतुर्भुजदास के दो पदों में मिलता है। पहले में उन्हें 'लाल अंगियाँ झूमक सारी, और नवहार' पहने बताया गया है। उनके बड़े-बड़े बालों की वेणी नितंबों पर डोलती है, मृगमद की आड़ी रेखा ललाट पर सोहती है और आँखें आँजी हुई हैं। उनके पदों में 'जेहरी', कटि में 'किंकनी' और पदों में बिछुवे हैं जिनकी झंकार गली-गली में सुनायी देती है। शीश पर रंग भरे और कंचन-कुंभ लिये वे नंदराय के दरबार जाती हैं[४]। दूसरे पद में गोपियों का शृंगार और भी विस्तार से वर्णित

६६ खेलति नहिं कोउ नन्द कुँवर सौं जाहति तेरी बाट।
'बिन राधा इत कौन काम कौ', उठि छाँड़िये ऐंड।
उमग्यौ निधि सौं नवल नंद कौ, रोकत डगरी गैंड।
उठि मिलैं सी वृषभान कुँवरि बर कर पिचकारी लेत।
रहि न सकत कोउ महासुभट बर सुनत समर संकेत—नंद पृ ११६।
६७ 'खात बनि-ठनि फाग खेलन निकस्यौ नंददुलारो।
फब्यो है ललित भाल लाल के खचित लाल टिपारो।
बगरे बैक बिसाल नवल छबि भरे इतराहीं।
फब्यो है मंजुल मोर मुकुट चलत बेगत परछाहीं—नंद पृ १४।
६८ उत बनी ब्रज नव किसोरी गोरी रूप भोरी'।
'बोरी प्रेम रंग मैं, मानौं 'एक ही बार की होरी'—नंद पृ १४।
६९ जुवतीजन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेष—चतु ७१।
४ गावत चलीं बरुठ बँधावन नंदराइ दरबार।
मानिक मनि पचीं चोल मोल सौं झमकन सब दरबार।
अँगिया लाल लसत तन सारी झूमक उर नव हार।
बेनी ग्रथित डुलति नितंबनि कहा कहुँ बड़े बार।
मृगमद आड़ी बढ़ेरी अँखियाँ आँजन अंजन पूरि।
प्रफुलित बदन हँसत दुलरावत मोहन जीवनमूरि।
पद जहरि जेहरि कटि किंकिनी रची बिबधि सुनि मार।
पौर पौर प्रति गलिनि गलिनि प्रति बिछुवन के झंकार।

है। उसमें सुकुमारी राधा 'कंकन', किंकिनी, गज-मोती-हार नकबेसरि, ताटंक, कंठसिरी, चौकी, खुटिला आदि आभूषण पहने, सेंदुर तिलक दिये, केसर-आड़ बनाये, काजर लगाये और पान चबाये बतायी गयी है[१]। अन्य कवियों ने तो नंद या वृषभानु की पौरि पर रंग खेले जाने की बात लिखी है, लेकिन चतुर्भुजदास ने 'मनि-खचित' चौक में अद्भुत खेल मचने का उल्लेख किया है जो वस्तुतः देखने के योग्य था[२]।

इधर राधा, उधर गिरिधर; इधर गोपी, उधर ग्वाल और 'फाग' का खेल आरंभ होता है[३]। 'फाग' खेलना वस्तुतः अंतर के अनुराग को ही प्रकट करना है[४]। 'कंचन' के कलश 'केसरि' से भरे गये हैं[५] और कंचन के 'माँटों' में सुगंध घोली गयी है[६]। तब नवलकिशोर, किशोरी राधिका और गोरी-गोरी गोपियों के साथ खेल

कंचन कुंभ सीस पर लीनें मदन सिंधु तें भरिकें।
ढाँपे हैं पीत बसननि जतन करि मौर मंजरी धरिकें—चतु ७८।

१ सबन सुनत चली दौरि घर-घर तें ब्रजनारि।
तिनमें परम सुदेस श्रीराधा अति सुकुमारि।
बने चीर आभरन सब तन विविध सिंगार।
कंकन कर किंकिनी उर गज-मोतिनि हार।
नकबेसरि ताटंक कंठसिरी अनुभाँति।
चौकी बनी जराइ दूरि करत रवि-काँति।
सेंदुर तिलक टॅबोल खुटिला बन बिसाल।
सोहति केसरि-आड़ कुमकुम काजर रेख—चतु ८।

२. 'खेल मच्यो मनि खचित चौक में' कहत कहा कहि आवै।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधर नागर को देखत ही बनि आवै—चतु ७८।

३ क. इत श्रीराधा उत श्रीगिरिधर इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रजवनिता सुंदर स्याम तमाल—सा २८८४।

ख 'एक ओर गोविंद ग्वाल सब एक ओर ब्रजनारि—सा २८८६।

ग. उतहिं संग 'सब ग्वाल लिये सुंदर नंदकुमार'।
'उत स्यामा नव जोवना अंबुज लोचन चारु—सा २८८७।

घ 'इत गोपिनि की झुंड' 'उतहिं हरि-हलधर-जोरी'—सा० २८८७।

४ हरि-संग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी उर अंतर को अनुराग—सा २८८८।

५. कनक कलस केसरि भरे—सा २८८४।

६ कंचन माँट भराइ कै घोरैं अरगौ अबीर—सा २८९६।

समर की ललकार सुनकर बैठा नहीं रह सकता[१६]। एक पद में नंददास ने कृष्ण के 'बनठन' कर, 'टिपारो' और मोरमुकुट धारण करके फाग खेलने जाने का बखान किया है[१७]। इनकी गोपियाँ भी किशोरी, गोरी, 'भोरी', प्रेम-रंग में बोरी' और 'एक बार की बोरी' भी हैं[१८]। चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी नाना वेशों में सुशोभित होती हैं[१९]। इन व्रजबालाओं के शृंगार का बहुत विस्तार से बखान चतुर्भुजदास के दो पदों में मिलता है। पहले में उन्हें 'लाल अँगियाँ, भूमक सारी, और नवहार' पहने बताया गया है। उनके बड़े-बड़े बालों की वेणी नितंबों पर डोलती है, मृगमद की आड़ी रेखा ललाट पर सोहती है और आँखें आँजी हुई हैं। उनके पदों में 'जेहरी', कटि में 'किंकनी' और पदों में बिछुये' हैं जिनकी झंकार गली-गली में सुनायी देती है। शीश पर रंग भरे और कंचन-कुंभ लिये वे नंदराज के दरबार जाती हैं[४]। दूसरे पद में गोपियों का शृंगार और भी विस्तार से वर्णित

१६ खेलति नहिं कोउ कान्ह कुँवर सों जोहति तेरी बाट।
'किन राखा रस कौन काज को, उठि झाँकिये ऐंड।
उमग्यो निधि लौं नवल नंद को, रोकत रावरी मैंड़।
उठि विहँसी वृषभान कुँवरि बर कर पिचकारी लेत।
रहि न सकत कोउ महासुभट वर सुनत समर संकेत—नंद पृ १३६।

१७ लाल बनि-ठनि फाग खेलन निकस्यो नंददुलारी।
फब्यो है ललित भाल लाल के जटित लाल टिपारो।
बहरे बंक बिसाल नयन छबि भरे रतनारे।
बन्यो है मंजुल मोर मुकुट बनात देखत परवारी—नंद पृ १४।

१८ उत बनी ब्रज नव किसोरी गोरी रूप भोरी।
'बोरी प्रेम रंग में मानौं एक ही बार की बोरी—नंद पृ १४।

१९ जुवतीजन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेष—चतु ७१।

४ गावत चली बसंत बँधावन नंदराइ दरबार।
मानिक बनि चली चोल मौगर सों ब्रजजन सब इकसार।
अँगिया लाल लसत तन सारी झूमक उर नव हार।
बेनी ग्रथित डुलति नितंबिनी बड़ा कहुँ बड़े बार।
मृगमद आड़ी मोहरी अँखियाँ आँजन आँजन रूरि
प्रफुलित बदन हँसत मुसकावत मोहन
... जेहरि, केहरि कटि किंकिनी रजै।
... और

खेलने की आज्ञा चाहते तथा 'पिचकारी' माँगते हैं। नंद जी प्रसन्न होकर कंचन रत्न की अनेक 'पिचकारियाँ' गढ़वा देते हैं। यही नहीं, लगभग सहस्र मन केसर, कस्तूरी, अरगजा आदि भी वे मँगा देते हैं[८]।

ब्रजबालाएँ 'बनठन' कर आती हैं[९]। उन्होंने सुंदर साड़ी पहनी है, कंचुकी कसी है, नयनों में काजल दिया है[११]। इस प्रकार उन्होंने नख-शिख तक सारा शृंगार किया है[१२]। सोलहों शृंगार किये अपने-अपने द्वार पर खड़ी ब्रजबालाएँ 'कुमुदिनी-कुमारी' सी जान पड़ती हैं[१३]। कुंभनदास ने भी गोपियों के 'बनठन और सजधज' कर होली खेलने आने का वर्णन किया है[१४]। नंददास की गोपियाँ भी 'ठाट' बनाकर होली खेलने आती हैं[१५]। उनकी राधा को सखियाँ यह कहकर प्रोत्साहित करती हैं कि तेरे बिना न कुँवर कान्ह खेल रहे हैं और न गोपियों का दल ही अपने 'राजा' अर्थात 'रानी' या 'नेत्री' के बिना खेलना चाहता है। तब राधा हँसकर पिचकारी लेकर उसी तरह तैयार होती है जैसे कोई राजा

८ खेलत मोहन फाग भरे रँग। डोलत सखा-समूह लिये सँग।
'नंदराइ सों बिनती कीनी। स्याम एक की आज्ञा लीन्ही।
'अगनित तब पिचकारि गढ़ाई। कंचन रतन जवा पै पाई।
'मन सहसक कर्पूर' लै दीन्हो। घसित सुगंध अरगजा लीन्हौ—सा २८६१।

६ सब बनि ठनि आई ब्रज की बाल—सा २८७६।

११ सारी पहिरि सुरंग कसि कंचुकि काजर दै दै नैन।
बनि-बनि' निकसि निकसि भई ठाढ़ी, सुनि माधो के बैन—सा २८६।

१२. सकल सिंगार किये ब्रज-बनिता नख सिख लौं मन ठानि—सा २८६१।

१३ सुनि सब नारि निकसि ठाढ़ी भईं अपनें अपनें द्वारि।
'नवसत सजे प्रफुल्लित आनन मनु कुमुदिनी कुमारि—सा २८६६।

१४ क 'आइ बनि-बनि सकल घोष की सुन्दरी पहिरें तन कनक नव चीर पट आभरन।
—कुंभन ७।

ख बनि बसंत सबै ब्रज-सुंदरि तजि अभिमान चली वृन्दावन।
सुरता की रासि किसोरी नवसत साजि सिंगार सुभग तन—कुंभन ७१।

ग. नव बसंत साजि आई ब्रज की बाल साजें भूषन बसन-अंग तिलक भाल।
—कुंभन ७१।

१५. उठतें सब सुंदरि जुरि आईं करि करि अपनौ ठाट—नंद पृ १३६।

समर की ललकार सुनकर बैठा नहीं रह सकता[१६]। एक पद में नंददास ने कृष्ण के 'बनठन' कर, 'रुपारो' और मोरमुकुट धारण करके फाग खेलने जाने का वर्णन किया है[१७]। उनकी गोपियाँ भी किशोरी, गोरी, 'भोरी', प्रेम-रंग में बोरी' और 'एक बार की ढोरी' भी हैं । चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी नाना वेशों में सुशोभित होती हैं । उन व्रजबालाओं के शृंगार का बहुत विस्तार से वर्णन चतुर्भुजदास के दो पदों में मिलता है। पहले में उन्हें 'लाल अंगियाँ, भूमक सारी, और नवहार' पहने बताया गया है। उनके बड़े-बड़े बालों की वेणी नितंबों पर डोलती है, मृगमद की आड़ी रेखा ललाट पर सोहती है और आँखें आँजी हुई हैं। उनके पगों में 'नेहरी', कटि में किंकनी' और पगों में बिछुवे' हैं जिनकी झंकार गली-गली में सुनायी देती है। शीश पर रंग भरे और कंचन-कुंभ लिये ये नंदराय के दरबार जाती हैं[४] । दूसरे पद में गोपियों का शृंगार और भी विस्तार से वर्णित

१६ खेलति नहिं कोउ कान्ह कुँवर सों जोहति नरी बाट ।
बिन राधा एक कौन काम को' उठि दीजिये पैंड ।
समग्यो निधि सों नवल नंद को, रोकत रावरी गैंड ।
उठि चिरैंठी वृषभान कुंवरि वर कर पिचकारी लेत ।
रहि न सकत कोउ महासुभट वर, सुनत समर संकेत—नंद पृ ३३९ ।
१७ आज बनि-ठनि फाग खेलन निकस्यो नंददुलारो ।
लस्यो है ललित भाल लाल क छटित लाल रुपारो ।
गहरे बंक बिसाल नयन छबि भरे रतनारी ।
बन्यो है मंजुल मोर मुकुट चलत देखत परछाहीं—नंद पृ १४ ।
१८ उत बनी व्रज नव किशोरी गोरी रूप भोरी ।
बोरी प्रेम रंग मैं मानों एक ही बार की ढोरी—नंद पृ १४ ।
१९ युवतीजन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेष—चतु ७१ ।
४ गावत चलीं वर्मग वैधावन नंदराय दरबार ।
बानिक बनि चली ओप ओप सों नवजन सब इकसार ।
अँगिया लाल लसत तन सारी भूमक उर नव हार ।
बनी ग्रथित कुमुद नितंबिनी बड़ा बहुँ बड़ वार ।
मृगमद आड़ी बंद्री अँगियाँ आँजन आँजन पूरि ।
मधुमित बदन हँसन मुसकावन मोहन जीवनमूरि ।
पग नेहरि केहरि कटि किंकिनी रची बिमाल तुमि मार ।
पोर पोर पनि गलिनि गलिनि प्रति बिछुवन के झंकार ।

है। उसमें सुकुमारी राधा 'कंकन', किंकिनी, गज-मोती-हार नकबेसरि, तार्टक, कंठसिरी, चौकी, लुटिका आदि आभूषण पहने, सेंदुर तिलक दिये, केसर-आड़ बनाये, काजर लगाये और पान चबाये बतायी गयी है[१]। अन्य कवियों ने तो नंद या वृषभानु की पौरि पर रंग खेले जाने की बात लिखी है, लेकिन चतुर्भुजदास ने 'मनि-खचित' चौक में अद्भुत खेल मचने का उल्लेख किया है जो वस्तुतः देखने के योग्य था[२]।

इधर राधा, उधर गिरिधर इधर गोपी, उधर ग्वाल और 'फाग' का खेल आरंभ होता है[३]। 'फाग' खेलना वस्तुतः अंतर के अनुराग को ही प्रकट करना है[४]। 'कंचन' के कलश 'केसरि' से भरे गये हैं[५] और कंचन के 'माँटों' में सुगंध घोली गयी है[६]। तब नवलकिशोर, किशोरी राधिका और गोरी-गोरी गोपियों के साथ खेल

कंचन कुंभ सीस पर लीनें मदन सिंधु तें भरिकें।
ढाँपे हैं पीत बसननि जतन करि मौर मँजरी धरिकें—चतु ७८।

१ सकल सुनत चली दौरि घर-घर तें ब्रजनारि।
तिनमें परम सुवेस श्रीराधा अति सुकुमारि।
बने और आभरन सब तन बिबिध सिंगार।
कंकन चारु किंकिनी उर गजमोतिनि हार।
नकबेसरि तार्टक कंठसिरी अनुभाँति।
चौकी बनी जराइ दूरि करत रवि-काँति।
सेंदुर तिलक तँबोल लुटिका बने बिसाल।
सोहति केसरि-आड़ कुमकुम काजर रेख—चतु ८।

२. 'खेल मच्यो मनि खचित चौक में' कहत कहा कहि आवै।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधर नागर को देखत ही बनि आवै—चतु ७८।

३ क. इत श्रीराधा उत श्रीगिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज-बनिता सुंदर स्याम तमाल—सा २८५४।

ख 'एक ओप गोबिंद ग्वाल सब एक ओप ब्रजनारि—सा २८६।

ग उतहिं संग 'सब ग्वाल लिये सुंदर नंदकुमार।
'उत स्यामा नव बालिका' अंबुज लोचन चारु—सा २८६७।

घ 'इत गोपिनि की भुंड' 'उतहिं हरि-हलधर-जोरी'—सा० २८७।

४ हरि-संग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी उर अंतर को अनुराग—सा २८८।

५. कनक कलस केसरि भरे—सा २८५४।

६ कंचन माँट भराइ कै घोंरै भरयौ अबीर—सा २८६६।

में मग्न हो जाते हैं[7]। किसी के हाथ में अबीर है, किसी के चंदन, कोई 'रोरी' लिये है और सब उमंग में भर-भरकर एक दूसरे पर रंग आदि छिड़कते हैं[8]। 'झूमक' गाती-गाती गोपियाँ नंद जी के द्वार पर इसलिए पहुँच जाती हैं जिससे हँसने-खेलने के इस पर्व पर श्रीकृष्ण के साथ मिलकर खूब आनंद मनाया जा सके[9]। नंद के द्वार पर श्रीकृष्ण के दर्शन न होने पर वे समझ जाती हैं कि 'रंग' के डर से वे घर में छिप गये हैं, तब वे उन्हें 'दरस दिखाने' के लिए नंद जी की शपथ देती हैं[10]। इसी समय छिपते हुए कृष्ण की एक झलक उनको मिल जाती है और राधा लपककर उन्हें 'अँकवारि' में भर लेती है। सब सखियाँ केसर के भरे हुए कनक-कलश लेकर दौड़ती और श्याम की 'पीत पिछौरी तथा पाग' रंग से सराबोर कर देती हैं[11] एवं उनकी प्रीति के वशीभूत होकर देह-गेह की सुधि भूल जाती हैं। पश्चात सब सखियाँ मिलकर महरि यशोदा के पास जाती हैं, होली के अवसर पर 'चार दिन' के लिए मोहन को माँगती' और कहती हैं कि उसके बाद अपने कृष्ण को ले लेना[12]। श्याम के 'प्रकट' न होने और 'फगुआ' न मिलने पर जब वे 'गाली' गाने को तैयार होती हैं तब यशोदा उन्हें रोकती और कहती हैं—'गाली' मत दो और श्याम के 'बदले' में जो चाहो सो लो[13]।

७ खेलत नवल किसोर किसोरी।
नंदनँदन वृषभानु-सुता चित लेत परस्पर चोरी।
गोरी सखी स्याम बनि सोभित सकल ललित तन गोरी—सा २८५८।

८क एक गुलाल अबीर लिए कर इक चंदन इक रोरी।
उपरा उपरि छिरकि रस रस भरि 'कुल की परिमित छोरी'—सा २८५८।

ख माधव नारि नारि माधव कौं छिरकत चोवा-चंदन—सा २८६१।

९ झुंडनि मिलि गावति चलीं, झूमक नंद-दुवार।
'आजु परब हँसि खेलिये', मिलि सँग नंदकुमार—सा २८६४।

१० 'मोहन, दरस दिखावहु, दुरहु सौं नंद की आन'—सा २८६४।

११ दुरत स्याम धरि पाइयो राधा भरि अँकवारि।
कनक कलस केसरि भरे लै धाईं ब्रज-नारि।
भरहु भरहु भनि स्यामहीं, पीत पिछौरी पाग।
देह गेह सुधि बीसरी नँद नंदन अनुराग—सा २८६४।

१२ सब 'सखियाँ मिलि गईं महरि पै मोहन माँगे देहु'।
दिना चारि होरी कै अवसर, बहुरि आपनो लेहु—सा २८६५।

१३ जब नहिं दुरे साँवरे ढोटा, फगुआ देहु हमारि।

नंददास ने राधा और उसकी सखियों के 'नंद-पौरि' पर होली खेलने की बात तो लिखी ही है,[१४] कृष्ण और उनके सखाओं का 'वृषभानु की पौरि' पर आना भी बताया है। श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना पाते ही किशोरियाँ दौड़ पड़ती हैं और राधा भी समाचार मिलते ही सखियों के साथ सोने की पिचकारियाँ लेकर भवन से निकल आती हैं।[१५] गोपगण दूध-दही से छके हुए, 'हो हो' बोलते, बगलों में पिचकारी दाबे, फेंटें कसे और पाग सँवारे केसर के माट ढुलकाते फिरते हैं। छज्जों से छूटती हुई पिचकारियाँ 'बाखरि-महल और अटारी' को रँगती हुई उन पर पड़ती हैं, तब नाना रंगों से रँग जाने पर बलदाऊ आदि को इधर उधर भागते ही बनता है[१६]।

राधा ने नीलांबर और लाल कंचुकि धारण कर समवयस्क तरुणियों को साथ लिया और 'घन मध्य दामिनी-सी दमकती' सोलहों श्रृंगार किये सखियों के साथ सुशोभित हुई। सबके मुख में पान है, भाल पर बेंदी है और सुगंधित रंग भरे कनक कलश उनके माथ हैं। इस प्रकार वे ब्रज की गलियों में घूमती हैं। घरों से निकल-निकलकर गोपियाँ उनके समूह में मिलती जाती हैं। उनके हाथों में तरह तरह के रंगों से भरी पिचकारियाँ हैं। इसी समय सखाओं सहित श्रीकृष्ण से उनकी मुठभेड़ हो जाती है। बस, पिचकारियाँ चलने लगती हैं। कोई रंग छिड़कती है तो

'हँसि हँसि कहति जसोमति रानी गारी मत कोउ देहु'।
सूरदास स्याम के बदलें जो चाहो सो लेहु—सा ३८८५।

१४ उत तें सबै सखी जुरि आईं, मकल मदन के जोर।
खेल मच्यौ है नंद जू की पौरी प्यारी राधा नंद किसोर—नंद पृ ३९८।

१५ खेलत खेलत अब रँगीलो लाल गये वृषभान की पौरि'।
जो दुती नवल किसोरी भोरी तें आईं आगे दौरि।
सुनि निकसी नव लाड़िली श्रीराधा राज किसोरी।
सोहिन पीड़ीप पराग भरे रूप अनूपम गोरी—नंद, पृ ३१।

१६ गारी होरी देत दिवावत। ब्रज में फिरत गोप-गन गावत।
दूध दही के माते डोलैं। काहे न हो हो हो हो बोलैं।
कांखनि में दाबे पिचकारी। बाँधत फेंटैं पाग सँवारी।
छकि गए बाटनि नारे पैंड़े। नव केसरि के माट उड़ेंड़े।
'छज्जनि तें छूटति पिचकारी। रँगि गईं बाखरि महल अटारी'।

कोई उसके लिए अवसर ताकती है। दौड़-धूप और धर-पकड़ होने लगती है। राधा और उसकी सखियाँ, कृष्ण और उनके सखाओं को देखकर 'घूँघट निकाल लेती हैं और मार मच जाती है'[१७]।

राधा अपनी सखियों के साथ कभी साधारण 'छड़ी' या बाँस लेकर 'कमल नयन' की ओर लपकती है[१८] और कभी सूरदास ने उनके सुकुमार हाथों के उपयुक्त 'कनक-लकुट' उन्हें दी है[१९]। गोपियों की मार' से हार कर गोप भागते

नाना रंग गए रँगि अंग। बलदाऊ न्द उन के भाग—सा २८ २।

१७ क उतहिं सुनत वृषभानु सुता सह तरुनि कोटि सब बिन थोरी की।
नीलांबर कंचुकि सरंग तनु, अति राजति राधा गोरी की।
मनु दामिनि घन मध्य रहति इक प्रगट हँसनि चितवनि भोरी की।
नख सिख सजि सिंगार ब्रज जुवती तनु चँदिया कुसुंभी बोरी की।
पान भरे मुख चमकत चौका भाल दिए बेंदी रोरी की।
कनक कलस कौटिक कर लीन्हे भरि कुमकुम रँग रँग घोरी की।
वृषभानु ब्रजनारि संग ल आइ गइनि ब्रज की खोरी की।
घर घर तें सुनि सुनि उठि धाईं ज गुरुजन पुरजन चोरी की।
हाथनि लै भरि भरि पिचकारी नाना रंग सुमन बोरी की।
कोउ मारति कोउ गाईं सिहारति, अरस परस दौरा दौरी की।
उतहिं 'सखा कर छरी लीन्हे' गारी देहिं सकुच थोरी की।
इतहिं 'सखी कर बाँस लिए बिच, 'मार मची भोरा भोरी की।
—सा २८७२।

ख हरषत सब ग्वाल बाल अरस परस करत ख्याल
इक मारत इक भाजत राजत बहु झोरी।
उततें निकसी कुमारि संग लिये बिपुल नारि,
कोउ कोउ नव जोबन भरी कोउ कोउ बिन थोरी।
इत उत मुख हरष भयौ पिय पूरन काम कयौ
मानो ससि उदै भयौ, मानौ बत चकोरी।
ब्रज घेरी घरे ग्वार आँखनि इत परी मार
देहिं दावि नहिं वारपार, सौर भौर भोरी—सा २८८८।

१८ क 'लै लै छरी कुमारि राधिका' कमल नैन पर धाई—सा २८५४।
ख सुनत नारि मुसुकाइ बाँस लीने कर धाई—सा २८८१।

१९ क कनक-लकुट करनि लिये धाईं तब हरषि हिये
ब्रजललना सूरप्रभु मन मन मिलि मोहन—सा २८८ ।

भी है[१९]। कृष्ण की होली-लीला से खीझ कर जब कोई गोपी उन्हें बाँस या लकुट से मारना चाहती है तब दूसरी उसे रोक कर कहती है—इन्हें मत मार, इनके सुकुमार शरीर पर चोट लग जायगी। इनकी माधुरी मूर्ति 'मारने' के लिए नहीं, 'अंचल' की ओट में रखने के योग्य है[२१]। ललिता और चंद्रावली पीछे से आकर हरि को पकड़ती और सब सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं। कोई पीतांबर झटकती है, कोई मुरली छीन लेती है, कोई मुख से मुख मिलाती है और कोई उन्हें अंक में भर लेती है। कोई कहती है कि तुमने हमारे 'चीर' हरे थे आज उसका बदला लेना है, इसीलिए राधा के पैर पड़ो, तभी तुम्हें छुटकारा मिलेगा[२२]।

इस प्रकार लाल-पीली अँगिया और साड़ी पहने, पान खाये, काजल लगाये ब्रज की गलियों में हरि के संग फाग खेलती और गाली गाती ब्रज-बालाएँ घूमती फिरती हैं[२३]। जब कभी वे श्याम को अपनी ओर आता देखती हैं, तब उन्हें पकड़ने की योजना बनाती हैं। ललिता एक 'खोरि' में छिप जाती है और श्याम के निकट आने पर दौड़कर पकड़ लेती है। तब वह उनसे कहती है—हमारे साथ अब तक तुमने जो ढिठाई की है, आज उसका फल जान लोगे। तब कोई गोपी मुरली छीनती है, कोई पीतांबर पकड़ती है, कोई उनके बाल गूँथकर बेनी बनाती है, कोई लोचन

१९. रत 'लिये कनक लकुटिया नागरि' उत जरी परे ग्वार—सा २८६५।
२०. 'मारति बाँस' लिए उमत कर आगत गोप तियनि सौं हारी—सा २८२१।
२१. खेलत में रिस ना करि नागरि स्यामहिं लागै चोट।
मोहन है अति माधुरि-मूरति राखिय अँचल-ओट—सा २८२५।
२२. पाछे तें ललिता चंद्रावलि हरि पकरे भुज भरि चोरी की।
ब्रज जुवती रसमातीं धाईं ज्यौं तहाँ तें चहुँ ओरी की।
इक पट पीतांबर गहि झटक्यौ इक मुरली लई कर मोरी की।
इक मुख सौं मुख जोरि रहति इक अंक भरति रति-पति चोरी की।
'तब तुम चीर हरे जमुना तट सुधि बिसरे माखन चोरी की।
'अब हम दाउँ आपनौ लैहैं, पाइ परौ राधा गोरी की'—सा २८७२।
२३. हरि सँग खेलन फागु चली।
चोवा चंदन अगर अरगजा छिरकति नगर-गली।
राती पीरी अँगिया पहिरे नव तन झूमक सारी।
मुख तमोर नैननि भरि काजर, देहिं भावती गारी—सा २८७१।

ओढ़ती है और इस प्रकार उनसे अपना 'बदला' लेती है[२४]। श्याम उसी समय 'चकमा' देकर भाग जाते हैं, तब गोपियाँ कहती हैं—आज भाग गये तो भाग जाओ लेकिन हम अपना बदला जरूर लेंगी तुमने हमें 'बेहाल' किया था, उसका 'फल' तुम्हें जरूर चखायेंगी। तुम भाग गये नहीं तो तुम्हारा पीतांबर तभी मिलता जब 'हा-हा खाते' और पैर पड़ते।

उधर कृष्ण की 'चोरी' खोलते हुए सखा भी हँसी करते हैं—अपना पीतांबर गोपियों से लाते क्यों नहीं ? सखाओं के 'तानने' पर कृष्ण कहते हैं—अगर मैंने उनसे पीतांबर ले लिया तो मुझे क्या दोगे ? इतना कहकर उन्होंने एक 'सखा' को सखी के वस्त्रादि पहनाकर गोपियों के बीच भेज दिया। उनकी भेजी हुई 'सखी' ने गोपियों से आकर कहा—देखो, पीतांबर मेरे पास सम्हालकर रखवा दो कृष्ण को तब तक मत लौटाना जब तक अपना 'दाँव' न ले लो। गोपियों ने उस 'सखी' की बात से सहमत होकर ज्योंही उसे पीतांबर देना चाहा, त्योंही 'सखी' रूपी सखा झटककर पीतांबर ले गया और अपने दल में आकर कृष्ण को उसने वह सौंप दिया। गोपियाँ इस चतुरता पर चकित-सी रह गयीं[२५]।

२४ दुरि रही इक खोरि ललिता उत तैं आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक धाइ आई बाम।
'बहुत ढीठो दै रहे हो जानती सब आजु।
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी निरखि पिय मुख लाजु।
लियौ काहू मुरलि कर तैं कोउ गह्यौ पट पीत।
सीस बेनी गूँथि, लोचन आँजि, करी अनीत—सा २८७५।

२५ 'मोहन, गए आजु तुम आजु दाँव हम लेहिंगी हो'।
'लालन हमहिं करे बेहाल याकौ फल देहिंगी हो'।
'आजुहि दाँव आपनो लेती भले गए हौ भागि'।
'हा-हा करते पाइनि परते लेहु पितंबर माँगि'।
बेनी छोरत हँसत सखा सँग कहत लेहु पट जाइ।
दाँव करत हौं नंद बबा की अपनी सपथि कराइ।
जो मैं लेहुँ पितांबर अबहीं कहा देहुगे मोहिं'।
इत उत जुवती चितवन लागीं रहीं परस्पर जोहिं।
एक सखा हरि तिय-रूप करि पठै दियौ तिन पास।
गयौ तहाँ मिलि संग तियनि कैं, हँसत देखि पट-बास।

परंतु राधा की सखियाँ भी कृष्ण के सखाओं से किसी प्रकार कम नहीं हैं। जिस प्रकार चालाकी दिखाकर कृष्ण ने उन्हें ठगा था, उसी प्रकार ठगने की योजना उन्होंने भी बनायी। एक गोपी ने नील पट ओढ़कर बलराम का वेश बनाया। अग्रज के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए जब कृष्ण 'साँकरी खोरी' में आये, तब बलराम-वेशधारिणी गोपी ने उन्हें पकड़ लिया और पलक झपकते ही सब सखियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। सबने अच्छी तरह कृष्ण को जकड़ लिया। इस प्रकार ठगे जाने पर श्याम के मुख का 'पानी' उतर गया; परंतु गोपियों ने इसकी ओर ध्यान न दिया और राधा रानी के पास उनको पकड़कर ले गयीं[२१]। पश्चात्, सब गोपियों ने मिलकर राधा के सामने ही कृष्ण को 'बधू' बनाया। आँखों में अंजन लगाया, भाल पर बेंदी लगायी, वेनी गूँथी, माँग पारी, बार-बार 'बधू' कहकर बुलाया और बार-बार पैर पड़ाया। राधा उनका यह रूप देखकर हँसने लगी। उसने 'कुसुंभी सारी' अपने हाथ से 'प्रियतम' को पहना दी। तब किसी ने उनका हाथ पकड़ा, किसी ने चिबुक पकड़कर मुख ऊपर उठाया, एक ने कोमल उँगलियों से अधर दिखाकर कहा—अब बोलते क्यों नहीं हो? सभी किसी सखी ने उनकी गाँठ राधा से जोड़ दी। दूसरी ने सरगजे का कनक कलश उनके सर पर उँडेल दिया और सब सखियाँ ताली बजाकर हँसने लगीं। श्रीकृष्ण के इस प्रकार पकड़े और 'बनाये' जाने की बात जब नन्द जी को ज्ञात हुई तब उन्होंने यशोदा को

मोहिं देहु राम्यौ दुराइ कै स्वामिहिं बनि ले देहु।
लियो दुराइ गोद में राख्यो आँव आपनो लेहु।
पीतांबर बनि देहु स्याम कौं यह कहि चमक्यो ग्वाल।
सूर स्याम पट फरत कर सौं चकित निरखि ब्रजबाल—सा १८७७।

२१ 'एक सखी हलधर-बपु काछौ। पली नील पट ओढ़े आछी।
स्याम मिलन ताकों तहँ आए। अग्रज-जानि चले अतुराए।
मिले साँकरी ब्रज की खोरी। इकि रहीं जहाँ तहँ गोरी।
गयौ धाइ भुज जोड़ लपटानी। दौरि परी सब सखी सयानी।
निरखि निरखि तरुनी मुसुकानी। एक निकाम, इक रही लजानी।
कहा रही करि तकुच दिवानी। अब इनको बनि राख्यो बानी।
गारि नारि सब देहिं सुहानी। नंद महर लौं जाति बखानी।
'उतर्यो सूर स्याम-मुख-पानी। गै मिलाइ जहँ राधा रानी—सा १८७८।

वहाँ भेजा। उन्होंने मेवा और वस्त्रादिक देकर राधा की सखियों से श्याम को छुड़ा लिया[२७]।

एक अन्य पद में सूरदास ने श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए गोपियों द्वारा बनायी गयी योजना का विस्तृत रूप दिया है कि किस प्रकार वे उनका 'घर' घेर लेती हैं, भीतर, बाहर, द्वारे, पिछवाड़े, सभी जगह वे एक-एक दो-दो छिपकर खड़ी होती हैं और तब अचानक धावा करके छिपे हुए कृष्ण को पकड़ लाती हैं। भाई को इस प्रकार बंदी बनते देखकर भी बलराम कुछ नहीं बोलते और स्वयं अपने को बचाने के लिए चुपचाप सरक जाते हैं[२८]। पश्चात, श्रीकृष्ण की खूब 'दशा' बनायी जाती है, केसर-गुलाल मुख पर मला जाता है। पीले-लाल रंग भरे

२७ (ब्रज युवती मिलि) नागरि, राधा पै मोहन लै आई।
'लोचन आँजि भाल बेंदी दै पुनि-पुनि पाग धराई'।
बेनी गूँथि माँग सिर पारी 'बधू-बधू' कहि गाई।
प्यारी हँसति देखि मोहन मुख जुवती बनी बनाई।
स्याम-अंग कुसुमी नई सारी अपनैं कर पहिराई।
कोउ भुज गहति, कहति चलु कोऊ कोउ गहि चिबुक उठाई।
एक अधर गहि सुभग अँगुरिअनि बोलत नहीं कन्हाई।
नीलांबर गहि लूटि-चूनरी हँसि-हँसि गाँठि जुराई।
जुवती हँसति देति कर तारी, भई स्याम मन भाई।
कनक कलस भरगन्ध घोरि कै हरि कैं सिर ढरकाई।
नंद सुनत हँसि महरि पठाई जसुमति धाई आई'।
पट मेवा दै स्याम छुड़ायौ सूरदास बलि जाई—सा २८७४।

२८ एक घोख गोपी जुरि आईं। 'घरही मै घरे हरि आईं'।
एक भीतर एक रही दुवारे। एक आइ लागी पिछवारैं।
एक रहीं चहुँ दिसि तैं घेरे। एक पैठि मंदिर मैं हेरे।
एक लिये कर कमल फिरावै। पसरै किरनि कोटि ससि भावै।
एक लिये सिर सौंधे गागरि। फेंट अबीर भरे बहु नागरि।
सारी सुभग फाग सब दिये। पाटंबर यादी सब लिये।
एकनि आइ हुए हरि पाए। बैन बेर राधिका बताए।
करत कुलाहल हरि गहि ल्याईं। फूली ज्यौं निधनी धन पाई।
एक गई कर दोऊ हरि के। 'हलधर देखि उठहि कौं सरके'—सा २८८१।

दूसरा उनके सिर से नाय जाती है और कोई तो उनके कान में ही पिचकारी छोड़ देती है[१]।

कभी-कभी सखियाँ मोहन को पकड़कर उनका स्वाँग बनाने के साथ यहाँ तक उनसे हँसी-खेल करती हैं कि कोई उनके कपोल छूती है तो कोई उनका मुख चूमती है। कोई व्यंग्य करती है—बहुत गाल बजाया करते थे अब कहो क्या कहते हो? दूसरी ताना मारती है कि हमारे वस्त्र-हरण करके तुमने कहा था, मेरा कोई क्या कर लेगा, आज उसी 'पाप' का फल इस प्रकार मिल रहा है। श्याम के सखा दूर पर खड़े अपने नायक की इस प्रकार बनायी जाती 'दशा' देख रहे हैं, परंतु उनसे कुछ करते-धरते नहीं बनता। इधर गोपियों ने उनका 'युवती-स्वाँग' बनाया, पीतांबर आदि छीनकर सारी कंचुकी पहनायी और नख-क्षत की छाप बनाकर उनसे कहा—यह चिह्न भी लेते जाओ जिसे देख-देखकर तुम्हें हमारी याद आती रहे[१]।

२६ केसरि अरु गुलाल मुख लायौ। पूरन चंद उदै करि आयौ।
पीत बसन रँग नाए सिर तैं। चली धातु मनु साँवर गिरि तैं।
एक भरे पिचकारी ताके। देत स्रवन मैं नंदलला के—सा २८८१।

१ घेरि लई सब खोरि साँकरी पकरे मदन गुपाल।
गही बाह चंद्रावलि हँसि कै 'कहाँ भले हो लाल'।
अनि खरा करौ नैंकु रहौ ठाढ़' कुरि आईं ब्रज-बाल।
'आईं हँसति कहति हरि अब, बहुत करत हे गाल'।
ज्यौं नृ नवारि कहौ सब कीन्ही करत परस्पर ख्याल।
'काहू तुरत धाइ मुख चूम्यौ, कर सौं छुयौ कपोल।
कोउ आंबर कोउ बंदन मीड़ति हरषि करति कलोल।
कोउ मुरली लै लगी बजावन मन भावन मुख हेरि।
किन्हूँ लियौ छोरि पट कटि तैं धारत तन पर फेरि।
'सवननि लागि कहति कोउ बातैं बसन हरे तेइ पाप'।
कासिंह कह्यौ, करिहौ कह मेरौ, प्रगट भयौ सोइ पाप।
कोउ नैननि सौं नैन जोरि कै कहति न भौ तन चाहौ।
अबही तुम अकुलात कहा हो आनदुग मन लाहौ।
घेरि रही सरवा की नाईं करति सबै मन-साइ।
इक चूमति इक चिबुक उठावति बल पाए हरि नाइ।

सखाओं ने श्याम का यह रूप देखा तो उन्हें भी विनोद सूझा वे सब कृष्ण को पकड़कर बलराम की सौंह दिलाकर, वैसे ही नंद जी के पास ले गये। पुत्र का 'युवती'-रूप देखकर नंद जी खूब हँसे। उन्होंने यशोदा को बुलाकर यह 'स्वाँग' दिखाया। यशोदा ने आकर पुत्र को गले लगाया और कुछ खीझ के साथ कहा—मेरा यह 'स्वाँग' किसने बनाया है? फिर सारी बात समझकर वे हँसती हुई बोलीं—ये ग्वालिनें ऐसी ही हैं[11]। जब गोपियाँ बलराम को पकड़कर बुरी तरह उनका स्वाँग बनाती हैं तब नँदरानी को उन्हें छुड़ाने के लिए मेवा आदि मँगाकर देना पड़ता है[12]।

एक अन्य पद में तो गोपियाँ और भी आगे बढ़ जाती हैं। एक सखी मुँह से निकलकर किसी तरह हरि को पकड़ लेती है कि दस-बीस आकर उन्हें घेर लेती हैं, पीतांबर-मुरली आदि छीन ली जाती है। तब कोई मुख पर कुमकुमा मलती है, कोई गाली गाती है तथा राधा हँसकर उनकी आँख आँजती है। सभी कोई

पीतांबर मुरली लई तब ही युवती स्वाँग बनाइ।
'बिलखत सखा दूरि भए ठाढ़े, निरखत स्याम लजाइ'।
नख-छत छाप बनाइ पठाए, मानि मानि गुन येहु।
सूर स्याम हमकौं जनि बिसरौ चिन्ह यहै तुम लेहु—सा २८२८।

११ 'ग्वाल हँसे मुख हेरि कै हलधर कौं लियौ टेरि।
हो-हो करि-करि कहत हैं रहे चहूँधाँ घेरि।
ऐसेहि चलिये नंद पै बल की सौंह दिवाइ।
भुजा गहे तहँ लै गए यह छबि बरनि न जाइ।
इत युवती मन हरति हैं उतहिं चले ह्वै भोर।
और सखी आईं तहाँ करि-करि नैन चकोर।
'महर हँसे छबि देखि कै सुनि जननी तहँ आइ'।
हँसि लीन्हो उर लाइ कै आनँद उर न समाइ।
कछुक खीझि कछु हँसि कह्यो किन यह कीन्हो हाल।
अति बलैया नारि कै ये ऐसिये ब्रजबाल—सा २८२९।

१२ दाऊ आजु भले बन आए आँखि अँजाइ।
बहुरि झिमिटि ब्रज सुंदरी (हो) पकरे गोकुलनाथ।
नव कुमकुम मुख माँडि कै (हो) बेनी गूँथी माथ।
तब नँदरानी बीच कियो (बहु) मेवा दिए मँगाइ—सा २९ ।

गोपियाँ कहती हैं—आज हम 'चीर-हरण' का बदला लेंगी; इसीलिए जिस प्रकार तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, वैसे ही तुम्हें भी 'नंगा' करके छोड़ेंगी। कृष्ण यह बात सुनकर हँस पड़ते हैं, तब गोपी कहती है—इसे हँसी मत समझो; जब तक तुम 'हा हा' करके 'कुँवरि' के 'पाँइ' नहीं पड़ोगे, तब तक तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा[33]। यही बात सूरदास ने पुनः एक पद में विस्तार से लिखी है[34]।

परमानंददास की गोपियाँ होली खेलने में सूरदास की गोपियों से पीछे नहीं हैं। कृष्ण के साथ होली खेलने का अवसर पाते ही उनको देह-दशा भूल जाती है। उनमें से कोई 'फगुवा' के लिए फेंटा गहती है, दूसरी ठठोली करती है, तीसरी आँख आँजकर भागती है और चौथी सखियों की लीलायें देखकर जरा मुँह मोड़कर हँसती है। पाँचवीं सखी मुरली छीन लेती है, छठी 'गारी' गाती है और सातवीं फुलेल, अरगजा चोवा, कुंकुम आदि की गगरी से उनको नहला देती है[35]। परमानंददास ने गोपियों के रूप और वेश का वर्णन भी बहुत विस्तार से करते हुए

३३ इक सखि निकसी कुंज तैं, तिनि पकरि लिय हरि हाथ।
बहुरि उठीं दस-बीस मिलि धरि लिये धाइ ब्रजनाथ।
इक पट पीतांबर गह्यौ इक मुरली लइ छँड़ाइ।
इक मुख मीड़हि कुमकुमा, इक गारी दै उठी गाइ।
प्यारी कर काजर लियौ हँसि आँजति पिय की आँखि।
इहिं विधि हरि कौं धरि रही ज्यौं धरि रहीं मधु-माखि।
'अब तौ बात भली बनी तब चीर हरे जल तीर।
सो परिहस हम सारिहैं सुनि लेहु लाल बलबीर'।
अब हम तुमहिं नँगाइहैं, मुसुकात कहा बहुराइ।
की हमसौं हा हा करौ की परहु कुँवरि कैं पाइ'—सा १६ १।

३४ आँखि दिखावत हौ जु कहा तुम करिहौ कहा रिसाइ।
'तब तुम अंबर हरे हमारे कीन्हें कौन उपाइ।
'अब सो दाउँ परयौ करि पाए, छाँडहि तुमहिं नँगाइ'—सा १९ ४।

३५ मदन गुपाल लाल संग विहरत देह दसा भूली भई बौरी।
एक गहत फेंटा फगुवा को एक करत ठाढ़ी जु ठठौरी।
एक जु आँखि आँजि कैं भाजी एक बिलोकि हँसी मुख मोरी।
एकन लई छिनाय मुरलिका एक देति गारी मोहन को गोरी।
एक फुलल अरगजा चोवा कुंकुम रंग गगरी सिर ढोरी—परमा १११।

बताया है कि इनमें कोई गोरी है, कोई साँवली। कोई कुंडल पहने है तो कोई तिलक दिये है। किसी की 'चोली' चपचपी है तो किसी की चोली के बंद ही टूट चुके हैं। किसी की अलकावली घनी है तो किसी की लटें[१६]। ये गोपियाँ मावती-गाती नंदजी के द्वार पर पहुँचती हैं[१७]।

चतुर्भुजदास ने भी गोकुल की नारियों के नंदराइ की पौरी पर 'जुरि आने' की बात कही है। उनके शृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। गोपियाँ 'कटाव की चोली' और 'भूमक सारी' पहने एवं कंठश्री, 'मक्तूल', मोती और गजमोती के हार, कंकन, किंकिणी, नूपुर, मुद्रिका, खुमी, नकबेसरि आदि अनेक आभूषण धारण किये हैं। उनके मुख में पान, नैन में काजल और माँग में सेंदुर है। अलकावली और मृगमद की आड़ी रेखा से सुशोभित उनके मुखमंडल की सुंदरता का वर्णन करने में कवि अपने को असमर्थ पाता है[१८]। कनकवर्णी गोपियों के साथ होली खेलते गिरिधर छीतस्वामी को 'करिनी' संग 'गजराज'-से जान पड़ते

१६ गावहिं ग्वालिनि ग्वारिया रसिक कान्ह सिरमौर।
'इक गोरी इक साँवरी एक चंदवदनी सोहे बाल'।
एकन कुंडल जगमगे एकन तिलक सुभाल।
'एकन चोली चपचपी एक टूटी बंद छूटि'।
एक अलकावलि उर परे एक टूटी लट छूटि—परमा ११४।

१७ झुंडनि मिलि गावत चलीं भूमत नंद के द्वार।
हास करें व्रजसुन्दरी मोहि लिये मन मार—परमा ११।

१८. स्रवन सुनत सब गोकुल नारी, परस्पर तैं उठि दौरी जू।
सब सम्पत्न सबै जुरि आईं नंदराइ की पौरी जू।
पहिरें दिव्य कटाव की चोली नौतन 'भूमक सारी जू।
गुनियन सम भूमक गावति परम भावती गारी जू।
बिबिध सिंगार बने सबहीं अँग भूखन नाहीं सीव जू।
भुराबित बाल' नैन भरि काजर सेंदुर माँग सुरेख जू।
कंठसिरी मगतूल मोति अरु उर गज मोतिनि हार जू।
कर कंकन कटि किंकिनी की छबि पग नूपुर झनकार जू।
अलकावली आड़ मृगमद की बरनि सकै मुख माँनि जू।
मुद्रिका खुभी रुचिर नकबेसरि दूरि करत रवि-काँति जू—चतु ६१।

है[३९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ तनसुख की सारी, लाल कंचुकी, पीत 'अँतरौटा' आदि के साथ विविध आभूषण पहने हैं[४०]।

ग्वाल-बालों को अपनी ओर करके भी गोपियाँ कभी-कभी बड़ा काम निकालती हैं। एक दिन बलराम को अपनी ओर मिलाकर राधा उनसे कृष्ण को पकड़वा मँगवाती है। तब चंद्रावली लपककर कृष्ण का हाथ पकड़ती है, संभ्रावली काजल ले आती है, ललिता लोचन आँजती है और चंद्रभागा मुरली ले मागती है। कोई कपोलों पर 'हरद' मलती है, कोई उसे पोंछती है, कोई 'चुंबन-दान' देती है और कोई उनका भुज अपने 'उर' पर रखती[४१] है।

गोपियों से छुटकारा पाकर मोहन भी भाई बलराम से अपना बदला लेते हैं और उन्हें गोपियों द्वारा पकड़ा कर कहते हैं—अब अपना मनभाया कर लो। गोपियाँ उनके नाक, नयन मुख आदि में काजल लगाती और 'हरद कलश' उनके सिर में 'ना' देती हैं जिससे धौलागिरि से धातु बह चलने का दृश्य उपस्थित हो जाता है[४२]।

सूरदास के एक अन्य पद में मोहन और बलराम, दोनों के पकड़े और बनाये जाने का वर्णन किया गया है। पहले गोपियाँ श्रीकृष्ण को पकड़ने की योजना

३९ अंग कनक बरनी सु 'करिनी बिराजैं गिरिधारन 'जुवराज गजराज राई'।
—छीत ५९।

४० तन 'तनसुख की सारी' पहिरैं लाल कंचुकी गात।
अप 'अँतरौटा पीत' बिराजत भूषन बिबिध सुहात—गोविं ११५।

४१ राधा मिलि 'इक मंत्र उपायो'। हलधर अपनी ओर बुलायो।
कान लागि स्यामा समुझायो। अंचल गहि स्यामहिं ल्यायो।
हरि के हाथ गहे चंद्रावलि। काजल ले आइ संभ्रावलि।
ललिता लोचन आँजनि लागी। चंद्रभगा मुरली लै मागी।
इक लै लावति हरद कपोलनि। इक लै पोंछति ललित पटोलनि।
इक अवलोकति इक अवलोकति। 'चुंबन दान देति इक दंपति'।
मगन भई अपबपु न सम्हारति। लालन भुज अपने उर धारति—सा २९०१।

४२ 'तब मोहन हलधर पकराए। करहु तरुनि अपन मन-भाए।
नाक नयन मुख काजर लायो। हरद कलश हलधर सिर नायो।
बहुत भरे बलराम तरुनि गहि। धौलागिरि मनु धातु चली बहि—सा २९ १।

बनाती हैं। एक सखी को बलराम का वेश बनाकर कृष्ण के समीप भेजा जाता है। भाई से मिलने के लिए ज्योंही कृष्ण आते हैं, त्योंही सखियाँ सिमटकर उन्हें घेर लेती हैं और उनको पकड़ कर कहती हैं—तुमने हमारे वस्त्र हरे थे, अब तुम्हारे वस्त्र हरकर हम अपना बदला लेंगी और 'हा हा' करने पर ही तुम्हें छोड़ेंगी। चारों ओर से घिरे कृष्ण को जब बचाव का कोई उपाय न सूझा तब सर झुकाकर खड़े रहने में ही उन्होंने अपनी कुशल समझी। इस पर एक सखी ने उनसे वदन उठाने को कहा, दूसरी ने आँख आँजने और माथे पर बेंदा लगाने का प्रस्ताव किया। तीसरी बोली—इन्हें नचाओ तो हम सब ताल दें। चौथी ने पीछे से आकर मोर मुकुट उतार लिया, पाँचवी पीताम्बर छीन ले गयी छठी ने आँख आँजकर, मुख मसलकर गाल पर 'गुलचा' दिया। सातवीं ने सलाह दी—बलदाऊ को बुला लो जो तुम्हें आकर छुड़ा दें या किसी सखा को भेजकर जसोदा को ही बुलवा लो अथवा राधा से ही विनती करो जो तुम्हें छुड़ा दे[४१]। इसी समय बलराम आते

४१ सखि एक बोलि लई अपनें ढिग 'भेष जु बल को कीन्हौ'।
ताकौं मिलन चले उठि मोहन काहूँ सखा न चीन्हौ।
नैंकुक बात लगाइ साँवरें पाछे तें गहि लीन्हौ।
आईं सिमिटि सकल ब्रज-सुंदरि मोहन पकरे अबहीं।
हम माँगति हीं यह बिधिना पै दाँव पाइहैं कबहीं।
'तब तुम चीर हरे जु हमारे हा हा खाईं तबहीं।
'अब हम बसन छीनि करि लैहैं, हा हा करिहौ अबहीं'।
एक सखी कहै बदन उठावहु, हमहूँ देखन पावैं।
श्रीमुख-कमल नैन मेरे मधुकर तन की तृषा बुझावैं।
एक सखी कहै, आँखि आँजि कै माथें बेंदा लावैं।
'एक सखी कहै इनहि नचावहु हम सब ताल बजावैं'।
एक सखी आई पाछे तें मोरपच्छ गहि लीन्यौ।
एक सखी त्यौं आइ अचानक पीतांबर हरि छीन्यौ।
'एकै आँखि आँजि, मुख माँड्यौ ऊपर गुलचा दीन्यौ'।
मानत कौन फाग मे प्रभुता मन भायौ सो कीन्यौ।
'एक कहै बोलौ बल भैया तुमकौं आइ छुड़ावैं'।
सखा एक पठवौ कोउ घर कौं जसुमति कौं लै आवै।
जानत हौ बल बल के छूटें सो नहिं छूटन पावैं।
'राधा जू सौं करौ बीनती वे बलि तुमहिं छुड़ावैं'—सा १२१६।

दिखायी देते हैं। छल-बल करके सब सखियाँ उनको भी वहीं पकड़ लाती हैं और कृष्ण के पास ही उनको खड़ा करती हैं। पश्चात्, उन्होंने आँख आँजकर, मुख पर गुलाल आदि मसलकर उनका स्वाँग बनाना शुरू किया ही था कि राधा ने संकेत से मना कर दिया[४४]।

नंददास की गोपियाँ भी अपनी सखियों से मोहन और बलराम को पकड़वाकर उनकी मुरली और पिचकारी छीन लेने की योजना बनाती हैं[४५]। वृषभानु की पौरि पर जब कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ पहुँचते हैं, तब छबीली कुँवरि मोहन को पकड़ लेती है और सखियाँ चारों ओर से आकर उन्हें घेरकर राधा के साथ उनकी गाँठ जोड़ देती हैं। पश्चात्, कोई सखी उन पर रंग डालती है, कोई पराग लेकर उनके कपोलों पर मलती है और कोई अंजन आँजती है। मोहन को इस प्रकार विवश देखकर वृषभानु की पत्नी वात्सल्य से प्रेरित होकर वहाँ आती हैं और ब्रज-बालाओं को बरज कर कन्हाई को छाती से लगा लेती हैं। तदनंतर, बड़े स्नेह से वे अपने अंचल से उनका मुख पोंछती बलैया लेती और गाँठ 'छोरती' हैं[४६]।

४४ दूरहीं तें देखत बल आवत सखी बहुत उठि धाई।
बल बल छल जैसें तैसें करि उनहूँ कौं गहि ल्याई।
किए आनि ठाढ़े इक ठौरहिं बल मोहन दोउ भाई।
उनहूँ की आँखि आँजि मुख माँड्यो राधा सैन बुझाई'—सा ए २९१९।
४५ तब वृषभान नंदिनी आई लीनो सखी बुलाई।
ऐसी मतो करो मरी सजनी मोहन पकरो जाई।
मुरली लहु स्याम क कर तें मृगमद बदन लगाई'—नंद पदा, पृ ११८।
४६ इतन माँक छिपी 'छबीली कुँवरि पकरे हैं मोहन आन'।
छबि सों परस्पर भकभोरत कापै परनि बखान।
गुप्त प्रीति प्रगटित भइ लाज तनक सी तोरी।
ज्यौं मदमात चोर भोर मरकत निकस्यौ मोरी।
सखियनि सुख देखन के काज गाँठ दुहुन की जोरी।
निरखि बलैयाँ ले सबै छबि न कही बहु थोरी।
कोउ दैन छबीले लागे छिरकत रंग अमान।
कोउ कोउ कमल कर ले पराग परसत रुचिर कपोल।
बन दै पिय के कमल-लोचन जब गहि आँजि अंजन।
मानों अरुणमत कमल-खंजन में खंजन दैक्यै युग गंजन।

चतुर्भुजदास की गोपियाँ माखन को पकड़वाकर 'तांडव' नाच करने को बाध्य करती हैं[४७]। उनके एक पद में पहले 'सुबल' को पकड़ा गया है और उसकी दशा बना कर कहा गया है कि हलधर को किसी प्रकार पकड़ा दो तो छुटकारा पा सकते हो[४८]। पश्चात्, हलधर और कृष्ण को पकड़कर उनकी 'दशा' भी बनायी जाती है[४९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ और भी चतुर हैं। वे 'सैना बैनी' करके बलराम और कृष्ण को पकड़ लेती हैं और बड़े की आँख आँजकर तथा छोटे की मुरली छीन कर मनमाना फगुआ लेने के बाद ही छुटकारा देती हैं[५०]।

एक दूसरे पद में गोविंदस्वामी ने सब सखियों से सलाह करके मोहन को

देखि बिबस 'वृषभान घरनि हँसति हँसति तहाँ आई।
बरजी श्यान नवल बधू मुख भरि लिय कन्हाई।
पोंछत मुख अरुन अंचल पुनि पुनि लेत बलाय।
मुसकि मुसकि जोरत सुगाँठ छबि बरनी नहीं जाय—नंद, परि, पृ ३९।

४७ 'दीनी सैन सखी ललिता कों माखन गहि पकराए'।
हँसी ओट सारी दै सब मिलि तांडव नाच नचाए—चतु ७४।

४८. जुवति-जुथ-दल देखि कें छेकि सुबल गहि लीनो।
कंठ उपरना मेलि कें लैंचि आपु बस कीनों।
'सुनहु सुबल साँची कहो तो भले पावौ'।
'छल-बल बानिक बानिके नैंकु हलधर कों पकरावौ'—चतु ८१।

४९ बहुरि सिमिटि सब सुंदरी संकरषन मिलि घेरे'।
फेंट गही चंद्रावली उलटि सबनि तन हेरे।
सौंहैं नायें सीस तें एक काजर लै कर आई।
मोहन मुरि हँसि यों कह्यो देखो दाऊ आँखि आँजाइ।
फिरि प्यारी नागरि राधिका तक स्याम ज्यों ठाड़े।
'और सखीनि की ओट ह्वै गहे औचकाँ गाढ़े।
देखि सखी चहुँ ओर तें दौरि आइ लपटानी।
अंग अंग बहु रंग सों करति आप मनमानी।
कसरि सों पट बोरि के भीमुख माँड्यो रोरी।
तारी दाय बजाय कें बोलत हो हो होरी—चतु ८१।

५. सैना बैनी करि सबै बलि राम कृष्ण पकराई हो।
बल जू की आँखि सु आँजियो पिय की मुरली छीनी हो।
मन मान्यो फगुवा लियो पाछे अब यह दीनो हो—गोविं १११।

पकड़ने की बात लिखी है। 'बंसी मोहन' की गाँठ 'प्यारी' से जोड़कर सखियाँ बलराम से कहती हैं कि जाकर ब्रजराज नंद से कह दो, आकर मोहन को छुड़ा लें[५१]। गोविंदस्वामी की ललिता तो सब गोपियों में आगे है जो 'गोकुल के राइ' से साफ-साफ कह देती है कि राधा प्यारी को सिर नवाने पर ही हम तुम्हें जाने देंगी[५२]।

श्रीकृष्ण की चतुरता भी गोपियों से कम नहीं है। वे उपवन में जाकर छिपते और कदंब की 'डार' पर बैठकर मुरली बजाते हैं। गोपियाँ उन्हें इधर उधर खोजती हैं, पर पाती नहीं। जब श्रीकृष्ण उन्हें समीप आया देखते तब फिर छिप जाते हैं[५३]। पश्चात्, उन्होंने गोपियों को छिपाने का दूसरा उपाय सोचा। उन्होंने अपना रूप एक 'गोपी' का बनाया; सारी-कंचुकी पहनी, फूलों से शृंगार किया और गोपियों के बीच आकर खड़े हो गये। एक नयी गोपी को सामने देखकर राधा की *सखियों ने परिचय पूछा तब नयी गोपी ने बताया—राधा मुझे पहचानती है।* इसकी माता ने मुझे राधा के साथ रहने को भेजा है। इसके अनंतर सारी बात जानकर कृष्ण को पकड़ने का उसने एक नया उपाय भी सुझाया—तुम लोग एक साथ उन्हें ढूँढती हो तो तुम्हारा कोलाहल सुनकर वे छिप जाते हैं। कहीं इस तरह उन्हें पकड़ा जा सकता है ? दो-दो सखियाँ साथ हो जाओ, चुपचाप अलग-अलग उन्हें ढूँढने निकलो और अचानक ही उन्हें पाकर पकड़ लो। गोपियों की समझ में नयी 'गोपी' की यह युक्ति आ गयी और दो-दो गोपियाँ साथ होकर कृष्ण को खोजने चलीं।

५१ तब सखियनि मिलि मतो मत्यो हो मोहन को पकराई हो ।
छल-बल सों नहिं पाइय हो किहि मिसि पकरे जाई हो ।
ललिता आगें से दौरी मोहन लीन्हे घेरि हो ।
पिय प्यारी गाँठि जोरि कहो हँसत बदन तन हेरी हो ।
जाइ कहो ब्रजराज सों मोहन लेहु छुड़ाई हो—गोविं० ११७ ।

५२ ललिता ललित बचन कहै । तुम सुनो हो गोकुल के राइ ।
तो हम तुमकों जान देहिं । प्यारी राधा कों सिर नाइ गोविं० १९५ ।

५३ तब हरि जाइ दुरे उपबन में । कबहूँ नाइबो कुंज-भवन में ।
करहिं कुलाहल ब्रज की नारी । देखत फिर कदंब बिहारी ।
कबहुँक मुरली मधुर बजावैं । सबन सुनत फिरी तिय धावैं ।
जब हरि अनी निकसहि धाई । हर में तब ये रह छुपाई—ना० १८२१ ।

इधर गोपी-रूपिणी कृष्ण ने राधा के साथ प्रणय-विहार के लिए 'कुंज' की राह ली[५४]।

चतुर्भुजदास के कृष्ण की उन्मत्तता या उद्दंडता का वर्णन एक गोपी ने किया है। वह कहती है कि होली खेलते-खेलते मोहन ने गुलाल, अबीर और कुमकुमा से मेरा बदन भर दिया। मेरे खीझने की कुछ चिंता न करके निकट आकर मेरा अंचल झटका और मुझे अंक में भरकर मेरे कपोल चूम लिये[५५]।

ग्वाल-बालों के परस्पर होली खेलने का वर्णन भी अष्टछापी कवियों ने किया

५४ 'तब हरि भेष धरयौ जुवती कौ। सुंदर परम भावतौ जी कौ।
सारी कंचुकि केसरि टीकौ। करि सिंगार सब फूलनि ही कौ।
कर राजति कंचुक नवला सी। छूटी दामिनि दैयत हाँसी।
सकल भूमि बन सोभा पाई। सुंदरता उमँगी न समाई।
ब्रजनारी ता सोभा सौं ही। रहीं ठगी सी रूप बिमोही।
एक कहति हरि के से नैना। एक कहति वैसेई बैना।
बूझति एक कौन की नारी। बिधि की सृष्टि नहीं यू न्यारी।
'तब हरि कहत सुनहु ब्रजबाला। बोलत हँसि हँसि बचन रसाला।
हम तुम मिलि खेलहि सब जानति। 'राधा आली मोहि पहिचानति'।
हौं हूं संग बिहारौं खेली। जानति हौ हूं जान सहेली।
'आवहि कीरति महरि पठाई। राधा इकली खेलन आई'।
अब इक बात कहौ हौं जी की। हौं जानति हौ कुल हरि पी की।
सघन बिपिन ऐसें कहँ पावहु। सब मिलि एक संग बनि धावहु।
सुनत सोर कत रावहिं नेरैं। कोऊ कहौ पावहु नहि हेरैं।
द्वै द्वै न्यारी न्यारी डोलहु। तनक मूँदि कर मुख जनि बोलहु।
आइ अचानक ही गहि ल्यावहु। सखी एक ज्यों त्यों करि पावहु।
राधा कौं भुज गहि कै लीन्ही। ऐसें सब को द्वै द्वै कीन्ही।
मौन किये प्रवेस कियौ बन मैं। हरि कौ रूप राखि निज मन मैं।
'और सखी खोजति सब कुंजनि। राधा हरि बिहरत सुख पुंजनि'—सा १८२१।

५५. मैया मोहन ख्याल परयौ।
सुरँग गुलाल अबीर कुमकुमा लै करि मानौं मेरौ बदन भरयौ।
ज्यौं ज्यौं सतराति त्यौं त्यौं निदरैं आवत 'झटकि अंचल, मोहन अंक भरयौ'।
चतुर्भुज-प्रभु गिरिधर की ढिग सौं, चूँमि कपोलनि लै जु उगार धरयौ।
—परमा ८०।

है। उनका परस्पर मारना, ताड़ना, भागना, गाजना, धाना, पकड़ना, हरषना, लड़खड़ाना, घात परखना, नेत्रों में गुलाल डालना, रंग ढरकाना, कभी एकत्र, कभी अलग-अलग फिरना, दाँव देने से बचना, गाना, नाचना, मृदंग आदि बजाना इत्यादि सभी कुछ उन कवियों ने लक्ष्य किया था[५६]।

युवतियों के साथ फाग खेलते हुए ग्वाल-बालों को 'होरि हो' 'होरि हो' कहते कुंभनदास ने भी सुना है[५७]। पिचकारियों से रंग छिड़कते और 'बीक' देते हुए वे सब ब्रज की गलियों में घूमते हैं[५८]। नंददास के ग्वाल-बाल भी नायक कृष्ण के साथ 'हो हो हो हा होरी' बोलते हुए ब्रज की गलियों में फिरते हैं[५९]। चतुर्भुजदास के ग्वाल-बाल नीले-पीले, सफेद और लाल वस्त्र पहने, अबीर-गुलाल फेंटों में भरे 'महा रस-माते' हो कृष्ण के साथ 'हो हो बोलते' गलियों का चक्कर लगाते हैं[६०]।

५६ खेलत हरि ग्वाल संग फागु-रंग भारी।
इक मारत इक तारत इक भाजत इक गाजत
इक धावत इक धावत इक आवत भारी।
इक हरखत इक लरखत इक परखत घातहिं को
लोचननि गुलाल डारि सौंधें ढरकावैं।
एक फिरत संग संग इक इक न्यारे बिहरत।
करत दाँव दीव कौं वे क्यौं नहिं पावैं।
इक गावत इक भावत इक नाचत इक रींचत।
इक कर मिरदंग ताल गति अति उपजावैं।
—सू० ३५८८।

५७ क युवति-यूथ-संग फाग खेलत नंदलाल कुँवर होरि हो होरि हो, होरि बोलना।
गावत नट नारायन राग मुदित रस चैन फाग चहुँ दिसा जुरि ग्वाल-बाल-वृन्द टोलना
—कुंभन ७४।
ख खेलत फाग गोवर्धन-धारी हो होरी बोलत ब्रज बालक संग—कुंभन ७६।

५८ कुमकुमा सुरंग छिरकत पिचकारी भरि भरि
परस्पर देत बीक ब्रज की खोरि-खोरि बोलना—कुंभन ७४।

५९ हो हो हो हो होरी बोलैं नंद कुँवर ब्रज बीथिन डोलैं।
नवल रँगीलो सखा संग लीन राजत चंग संग मद रँग भीन—नंद, पदा० पृ ३६७।

६० सुरंगी पाग पर चरे नँदनन्दन हो हो होरी बोलन जू।
लिये सखा संग देत धूम सब ब्रज की खोरिनि डोलन जू।

गोविंदस्वामी के मदनमोहन भी कोलाहल करने में किसी से पीछे नहीं हैं[९१]। उनके अहीर 'कूकें' देते हुए प्रमदागण पर भी अबीर-गुलाल बरसाते हैं[९२]।

होली का यह खेल केवल नंद या वृषभानु की 'पौरी' या उनके भवनों के 'चौक' में ही नहीं होता; प्रत्युत गोकुल के 'चौहटे' और 'यमुना-तट' पर भी खूब होता है। सारी तैयारी करके श्रीकृष्ण अपने सखाओं के और राधा अपनी सखियों के साथ, सब 'चौहटे' पर आकर एकत्र होते हैं[९३]। सारा गोकुल ही जैसे इस समय चौराहे पर एकत्र है यहाँ तक कि भवनों में कोई भी मनुष्य नहीं रह जाता[९४]।

चतुर्भुजदास ने भी फाग खेलने के लिए श्रीकृष्ण और उनके सखाओं के 'चौहटे' पर आने की बात लिखी है[९५]।

कभी-कभी होली का खेल यमुना के किनारे भी होता है जब केसरि, कुमकुम, अबीर, मृगमद, चंदन, गुलाल आदि एक दूसरे पर डाला, छिड़का या उड़ाया जाता है[९६]। प्रभु हँसकर राधा पर 'गेंदुक' चलाते हैं और वह फुर्ती से बचा जाती है[९७]। ललिता दौड़कर मोहन को पकड़ती और उनका पीतांबर तथा उनकी मुरली

पहिरे 'बसन अनेक छन नील पीत सेत राते जू।
सुरँग गुलाल अबीर फैंट भरि फिरत महा रस माते जू'—चतु ८२।

९१ खेलत मदनमोहन पिय होरी।
तारिका संग सकल गोकुल के 'करत कुलाहल' ब्रज की खोरी—गोविं ११२।

९२ एकनि कर कूकम लिये एक गुलाल अबीर।
'प्रमदागन पर बरसहीं कूकें देत अहीर—गोविं १२१।

९३ क रसिक गुपाल नवल ब्रज बनिता निकसि चौहटें आए'—सा २८५४।
ख 'या गोकुल के चौहटें हरि सँग खेलैं फाग—सा २८६६।

९४ उमह्यो मानुष-घोष सौं भवन रह्यौ नहिं कोइ'—सा २८६७।

९५ रसमस नंदकिसोर निकसे खेलन फागु।
मधुर बेनु कर में धरें गावत गौरी रागु'।
'आए ब्रज के चौहटें लिये सखा सब संग।
नव भूषन नव बसन सोहत साँवरे अंग—चतु ८।

९६ क. पिय प्यारी खेलैं जमुन-तीर। भरि केसरि कुमकुम अरु अबीर।
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँगभीने अरगज बरन माल—सा २८५६।
ख जमुना कैं तट खेलति' हरि-सँग राधा लिये सब गोपी—सा २८६१।

९७ प्रभु हँसि कै गेंदुक दई चलाइ। तुम पट दै राधा गई बचाइ—सा २८५६।

'छिड़ा लेती' है, तभी दूसरी सखी आकर उन्हें छुड़ाती है[६८]। इसी प्रकार कभी-कभी दस-पाँच सखियाँ आकर श्रीकृष्ण को अकेले पकड़ लेती हैं और अरगजा-अबीर भरे कनक-घट उनके सिर से उँडेलती, कुमकुमा छिड़कती और चंदन-धूरि 'भुरकती हैं' जिससे श्रीकृष्ण की शोभा साँझ समय के बादलों-जैसी हो जाती है[६९]।

परमानंददास ने भी यमुना के पुलिन पर घनश्याम और राधा के दलों में होली खेले जाने की बात लिखी है[७०]। नंददास यमुना तीर पर 'अहीरों' सहित बलबीर के साथ 'युवतियों की भीर' के होली खेलने की बात लिखते हैं[७१]। गोविंदस्वामी के राधा-कृष्ण कालिंदी के तट या 'यमुना के तीर' पर होली खेलते हैं[७२]। साथ ही उनके कृष्ण तो पनघट की 'घाट' पर भी रंग खेलने पहुँचते हैं जहाँ वे गोपियों की 'गागरि' ढरका देते हैं और 'अचकाँ-अचकाँ' आकर राधा प्यारी उनके अरगजा-कुंकुम आदि लगाकर बदला ले लेती हैं[७३]।

६८. ललिता पट-मोहन गह्यो धाइ। पीतांबर मुरली लइ छिड़ाइ।
    हौं सपथ करौं छाँड़ौं न तोहि। स्यामा जू आज्ञा दई मोहि।
    एक निज सहचरि आई बसीठि। सुनि री ललिता तू भई ढीठि।
    पट छाँड़ि दियो तब नव किसोर। छवि रीझि सूर तृन दियो तोर—सा २८७६।
६९ 'मिलि दस पाँच अली चली कृष्नहिं गहि लावति अचकाइ।
    भरि अरगजा अबीर कनक घट देति सीस तैं नाइ।
    छिरकति सखी कुमकुमा केसरि भुरकति बंदन धूरि।
    सोभित है तनु साँझ समै घन आए है मनु पूरि—सा २८९०।
७० नंदकुँवर 'खेलत राधा सँग जमुना पुलिन' सरस रँग होरी।
    नव घन स्याम मनोहर राजत स्याम सुभग तन दामिनी गोरी।
    कंचन के रँग कलस भरे बहु सँग सखा हलधर की जोरी।
    डारति लिए कनक पिचकाइ छिरकी ब्रज की सबन किसोरी—परमा १११।
७१ 'कुंज कुटीर मिली जमुना तीर खेलत होरी रस भरे अहीर।
    एक ओर बलबीर धीरि धरि एक ओर जुवतिनि की भीर—नंद, परि, पृ १८८
७२.क छिरकत केसरि नवलकिसोर कालिंदी के तीर—गोविं ११।
   ख हरति श्रीहरि सबल सखा सँग आए जमुना तीर।
    उतते श्रीराधा जू आईं नव जुवतिनि की भीर—गोविं ११५।
   ग. सुंदर सुभग 'तरनि तनया तट खेलत हैं हरि होरी हो—गोविं ११४।
७३ खेलत खेलत तहाँ गए जहाँ पनिहारी को बाट।

चोवा, चंदन, अबीर, कुमकुमा आदि पिचकारियों में भर भर कर छिड़का जाता है[७४] और कभी उक्त पदार्थों के साथ-साथ टेसू के फूलों का रंग, रत्न-जटित पिचकारियों से डाला जाता है। साथ में अरगजा 'चंदन-बूका, मृगमद, कुंकुम आदि भी छिड़का जाता है।[७५] चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ रहा है[७६]। झोली भर भर कर अबीर का बूका उड़ाया जाता है[७७] जिससे बादल तक लाल हो जाते हैं और सारे 'अटा-अटारी' रँग जाते हैं[७८]। अबीर गुलाल के उड़ने से 'साँझ' का दृश्य हो जाने अथवा 'साँझ फूलने की बात सूरदास[७९] और नंददास[८०] ने लिखी है। नंददास को उड़ता हुआ गुलाल 'उमड़ता हुआ अनुराग-सा जान पड़ता है[८१]।

अबीर-गुलाल की झोलियाँ आदि सब ग्वाल-बालों ने कमर से कस रखी हैं[८२]। केवल अबीर-गुलाल ही नहीं, चंदन और कपूर का चूर्ण भी ग्वाल-बाल

गागरि ढोरैं सीस तें भरन न पावैं घाट।
अरगजा कुंकुम घोरि कें प्यारी लीनो उर लपटाइ।
अचकाँ अचकाँ आइकें भाजी गिरिधरलाल लगाइ—गोवि १२६।

७४ क चोवा चंदन अबिर कुमकुमा छिरकत भरि पिचकारी—सा २८५४।

ख चोवा चंदन और कुंकुमा मुख माँडति लै लै रोरी—परमा ११२।

७५. टेसू कुसुम निचोइ कै भरे परस्पर आनि।
चोवा चंदन अरगजा बूका बंदन सानि।
रत्न जटित पिचकारियाँ कर लिये गोकुलनाथ।
छिरकहिं मृगमद कुमकुमा जो राधे के साथ—सा २८६७।

७६ क. उड़त गुलाल अबीर' जोति रवि छिपि दीपक उँजियारी—सा २८५४।

ख चोवा चंदन अरगजा उड़त अबीर गुलाल—सा २८६४।

७७ बूका सुरँग अबीर उड़ावत भरि भरि झोरी—सा २८७।

७८.क उड़त गुलाल 'लाल भए बादर रँगि गए सिगरे अटा-अटारी'—सा २८७१।

ख उड़त अबीरनि रँगी अटारी—सा २८२६।

ग. उड़त गुलाल अरुन भए अंबर—सा २९ १।

घ उड़त चंदन नव अबीर बहु कुमकुमा—कुंभन ७।

ङ उड़त गुलाल अबीर अरगजा—कुंभन ७२।

७९ उड़त गुलाल अबीर कुमकुमा 'छबि छाई मनु साँझ'—सा २९ ७।

८० घुमड्यो है अबीर गुलाल गगन में मानों फूली साँझ—नंद, पदा पृ ११६।

८१ उमड्यो है अबीर गुलाल 'मानो उमग्यो अनुराग री—नंद पदा पृ ११९।

८२. लाल गुलाल समूह उड़ावत फेंट कसे अबीर झोरी की—सा २८७१।

'फेंटों में भरे रहते हैं'[८३]। हाथ से उड़ाया गया अबीर सूरदास और नंददास को आकाश में उड़ती हुई 'पंकज-धूरि' या पराग-सा जान पड़ता है[८४]। परमानंददास ने भी ग्वाल-बालों की कमर में गुलाल की 'झोरी' बँधी रहने की बात कही है और वे बराबर अबीर भी उड़ाते घूमते हैं[८५]। कुंभनदास की ललितादिक गोपियाँ भी अबीर-गुलाल उड़ाने में ग्वाल-बालों से पीछे नहीं हैं[८६]। पिचकारियों के छूटे हुए रँग से अटा-अटारी के रँग जाने की बात नंददास ने भी लिखी है[८७]। चतुर्भुजदास भी चोवा, चंदन, बूका-बंदन अबीर, गुलाल आदि के उड़ाये जाने की बात लिखते हैं[८८]। उनके खिलाड़ियों द्वारा फेंका गया गुलाल गगन तक इस तरह छा गया है जैसे आँधी ने उसे सर्वत्र फैला दिया हो[८९]। छीतस्वामी के मोहन प्रात काल से ही चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, केसर, अबीर आदि झोली में भरकर होली खेलने निकलते हैं[९०]। गोविंदस्वामी ने भी झोली में भरे हुए चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा, गुलाल अबीर आदि के उड़ाये जाने की बात कई पदों में कही है[९१]।

८३ चंदन कपूर चूर फैंटनि भराए री—सा २८८७।
८४ क मरि कर-कमल अबीर उड़ावत गोविंद निकट आइ दुरि थोरी।
मनहुँ प्रचंड बात हत पंकज-धूरि गगन सोभित चहुँ ओरी—सा २१८८।
ख मूँठुरी अबीर छुटत छबि पावै, पंकज मनों पराग उड़ावै।
—नंद पदा पृ ११७।
८५. चाव अबीर उड़ावत नाचत कटि सों बाँधि गुलाल की झोरी—परमा १११।
८६. 'अबीर गुलाल उड़ाई ललिता सोभा बरनी न जाई'—कुंभन ७९।
८७ पिचकारिनि रँग उछरत भारी उड़ि गुलाल रँगे अटा अटारी।
—नंद, पदा पृ ११७।
८८. चोवा चंदन बूका बंदन अबीर गुलाल उड़ाए—चतु ७४।
८९. उड़त गुलाल परस्पर आँधी रह्यौ गगन लौं छाई—चतु ८१।
९. मोहन प्रात ही खेलत होरी।
चोवा चंदन अगर कुमकुमा केसरि अबीर लिए भरि झोरी—छीत ५८।
९१ क चोवा चंदन अगर कुमकुमा उड़त गुलाल अबीर—गोविं ११।
ख चोवा चंदन अगर अरगजा अबीर गुलाल भरि झोरी—गोविं ११।
ग. छिरकत कुमकुमा अरु अरगजा उड़त अबीर गुलाल—गोविं ११४।
घ उड़त गुलाल अबीर चहुँ दिसि—गोविं ११५।

इस प्रकार होली खेलने पर श्याम का पीतांबर तथा अन्य वस्त्र विविध रंगों से रँगकर उनके श्याम शरीर पर अत्यंत शोभित होते हैं जिसका वर्णन सूरदास,[९२] कुंभनदास[९३] और चतुर्भुजदास[९४] ने किया है। राधा के गोरे शरीर पर तरह-तरह के रंगों से सर साड़ी और सुरंग-रँगी कंचुकी बहुत भली लगती है[९५]। श्याम के पीले वस्त्र अनेक रंगों में और राधा की कंचुकी तथा तनसुख की सारी पीत रंग से रँग गयी है[९६]। सब लोग नीले, लाल, सफेद, पीले आदि रंगों में रँगे वस्त्र पहने घूम रहे हैं[९७]।

ब्रज की गलियों में इतना रंग ढोला गया है कि सर्वत्र उसकी 'कीच' मच गयी[९८] है। होली खेलने के लिए जो अबीर तैयार किया गया है, वह भी एक-दो रंगों का नहीं, पचासों रंगों का है और स्वयं ही उन गलियों में बिखर गया है जिनसे होकर मोहन होली खेलने निकलते हैं[९९]। कुंकुम-कस्तूरी आदि की मिलावट से ब्रज की गलियों की कीच बहुत सुगंधित हो गयी है जिसका वर्णन सूरदास[१००]

९२ सुरँग पीत पट रँगि रह्यौ सुभग साँवरैं अंग—सा २८६७।
९३ उड़त अबीर कुमकुमा बंदन विविध भाँति रँग मंडित अंगे।
कुंभनदास-प्रभु त्रिभुवन-मोहन नवल रूप छबि कोटि अनंग—कुंभन ७१।
९४ बरन-बरन भए बसन अंगनि रहे लपटाइ।
क्रीड़ा रस बस मगन आनँद उर न समाइ—चतु ८।
९५ नील बसन भामिनि बनी कंचुकि कुसुम सुरंग—सा २८६७।
९६ क उन पर पीत किये रँग रसे इन कंचुकी पीत रँग बोरी—सा २८६८।
ख मोहन को पटपीत रँगि के रँगी है सारी तनसुख की बोरी हो—गोविं १२४।
९७ पहिरे बसन अनेक बरन तन नील अरुन सित पीत—२८६६।
९८ क. सौंधे कीच मची भली खेलत ब्रज की खोरि—सा २८८।
ख सौंधे अरगजा कीच जहाँ तहाँ गलिनि बीच
एक एक ऐंच नीच करत रँग भोरी—सा २८२१।
ग. कुमकुम कीच मची अति भारी—सा २८२१।
घ कुमकुम कीच मची धरनी पर—सा २९ १।
ङ खेलि फाग अनुराग बढ्यो घर मची अरगजा कीच—सा २९ ७।
९९ बरन पचासक अबिर सँवारे बीथिनि छिरकि तहाँ बिस्तारे।
मोहन चरन धरत तहँ आवैं—सा २८२१।
१०० कनक-कलस कुमकुम भरि लीन्हो, कस्तूरी तामे घसि घोरी।
खेल परस्पर कीच मची बर, अधिक सुगंध भई ब्रज खोरी—सा २९ ८।

कुम्भनदास [१] नंददास [२] चतुर्भुजदास [३] और गोविंदस्वामी [४] ने किया है।

श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ घाट-बाट, गृह-वन, सबका मार्ग रोकते फिरते हैं और ब्रज की कोई भी नारि उनके रंग-गुलाल के खेल से बच नहीं पाती। ब्रज की जो बालाएँ श्याम के रंग में रँगी हैं, वे तो उनके साथ होली खेलने में पूरा आनंद लेती हैं; परंतु वहाँ अनेक वधुएं ऐसी भी हैं जो सासु-ननद के डर से होली नहीं खेल सकतीं और कृष्ण से प्रार्थना करती हैं कि हम पर पिचकारी से रंग मत डालो। जब कृष्ण इस पर भी नहीं मानते तब वे नंद जी की दुहाई देती हुई कहती हैं—रंग उससे खेलो जो तुम्हारे लायक हो। हम कहाँ तुम्हारे योग्य हैं? कृष्ण इस पर उत्तर देते हैं—तुम 'अनलायक' कैसे हो जब हमारी ही तरह तुम भी 'नवल' हो? इतना सुनते ही ग्वालिनें हँस पड़ती हैं और कहती हैं—तुम बड़े गुन-भरे हो [५]।

१ क गोकुल बिच कीच मची सौरभ चहुँ ओर मढ्यो सब तनु अनुराग उमग्यो रस
 अठोलना—कुंभन ७४।
 ख होरी खेलत कुँवर कन्हाई।
 चोवा चंदन, अगर कुमकुमा परती कीच मचाई—कुंभन ७९।
२.क. रँगीली भाँति रँगीलो निकस्यो जहाँ चोवा-चंदन कीच मचे तहाँ।
 —नंद पदा, पृ ३३७।
 ख चोवा की होदा कर राख्यो केसर कीच घनी—नंद, परि ८२।
३ क कीच सैंची ब्रज खोरि—चतु ८५।
 ख कीच परनि पर चाढ़ी भू—चतु १२।
४ कुमकुम अरगजा कीच मे पग बके चली चहुँ दिसि गौरी हो—गोवि १२४।
५. 'लालन अगट भए गुन आगु', त्रिभंगी लालन ऐसे हो।
 रोकत घाट-बाट पह कतहुँ निबहति नहिं कोउ नारि।
 भली नहीं यह करत साँवरे हम देहैं सब गारि।
 'फागुन में तो लगत न कोऊ, फबति अचगरी मारि'।
 दिन दस गए, बिना दस औरों लेहु बाप सब सारि।
 पिचकारी मोकों बनि छिरको, झरकि उठी मुसुकाइ'।
 सासु ननद मोकों घर बैरिनि तिनहिं कहौं कह जाइ'।
 हा हा करि कही नंद दुहाई कहा परी यह बानि।
 लालों मिलहु तुमहिं जो लायक हँसि हेरनि मुसुकानि।

होली के क्रियाविदों को दूसरों के मुख और नेत्रों में रंग और गुलाल डालने में विशेष आनंद आता है। श्रीकृष्ण और उनके सखाओं की 'बानि भी ऐसी ही है जिसके कारण अनेक बार गोपियों को निवेदन करना पड़ता है कि हमारी आँखों में गुलाल मत मरो[६] और परस्पर बात करती हुई गोपियाँ भी नैनों में 'अबीर मारने' की कृष्ण की बान का उल्लेख करती हैं[७]। कुंभनदास के ग्वाल-बाल युवतियों के मिल जाने पर किसी की 'चारु चिबुक' का स्पर्श करते हैं, किसी की बेसरि, झुमी आदि देखते हैं, किसी की कंचुकी के बंद खोलते हैं, किसी के हार छीनते हैं, किसी की भुजा मरोड़ते हैं और किसी को खाली झकझोरते डोलते हैं[८]। और उनके नायक कृष्ण गोपियों के हार तोड़ने चूड़ी फोड़ने झुमी से भागने नेत्र ताक कर पिचकारी चलाने, नकबेसरि पकड़ने चोली फाड़ने, बेनी गहने कंठश्री मटकने आदि में सभी ग्वालबालों से आगे हैं। गोविंदस्वामी की एक गोपी कृष्ण को उद्दंडता का उलाहना देने यशोदा के पास भी पहुँच जाती है और कहती है कि यमुना के तट पर मोहन ने मेरी बाँह मरोड़ दी, माला तोड़ दी कंचुकी फाड़ दी, गाल स्पर्श किये,

अनजानत हम है कौ तुम हौ कहौ न बात उघारि।
'तुमहूँ नवल नवल हमहूँ हैं' कही चातुर हौ ग्वारि।
यह कहि स्याम हँसि हँसी बाला भलहीं मन दीठ आनि।
'सूरदास-प्रभु गुननि मरे हो भरन देहु अब पानि'—सा २८८८१।

६ हम तुम सौं बिनती करैं अनि आँखिनि मरौ गुलाल'।
सखी परत हम पैं नहीं तेरो निपट अनोखी ख्याल—सा २८८८२।

७ नैननि अबीर मारै काहू सौं न डरै री—सा २८८८६।

८ काहू के चिबुक चारु परसि काहू की बेसरि काहू की झुमी
काहू के करत कंचुकी के बंद खोलना।
काहू के लेत हार तोरि काहू की गहत भुजा मरोरि
काहू कों पकरि झाँकि देत करि झँझोलना—कुंभन ७४।

९ काहू को हार तोरै काहू की चूरी फोरै होरी कौ है औसर जिनि कोऊ रिस मानै
काहू की झुँभी लै भाजै अरु अचानक काहू कौं पिचकाई मेचनि ताकि तानै।
काहू की नक बेसरि पकरि काहू की चोली काहू की बेनी गहै, अरु कंठश्री
मटकि भानै।
कुंभनदास प्रभु इहि बिधि खेलत गिरिधर पिय सब रंग जानै—कुंभन ७५।

मुख पर गुलाल डाला और फिर भी पानी न भरने दिया[१०]।

होली के अवसर पर 'ग्वालिनों' की तुलना सूरदास ने 'मदमाती हथिनियों' से की है जो गिरिधर रूपी गज के निकट जाने में कुल का अंकुश नहीं मानतीं और 'वेद की साँकल' भी तोड़ देती हैं। प्रियतम का पाकर वे वृन्दावन की वीथियों में 'नागवेलि' चबाती घूमती हैं। सुगंध उनके मस्तकों से चू रही है, घुँघरू घंटों से बज रहे हैं, अंचल बैरक-सा फहर रहा है और वे प्रियतम पर कुंकुम, चंदन आदि छिड़कती हुई उनके साथ क्रीड़ा में रत हैं[११]। राधा तो 'गारी' गाते समय 'मुकि मुकि' पड़ती है[१२]। उन्मत्तता की अति तो उन नारियों के व्यवहार में देखने को मिलती है जिनके संबंध में कभी कुछ देखा-सुना भी नहीं गया था। वे ही व्रज पुरुषों से जरा भी नहीं लजातीं और 'कटि-वस्त्र' तक फाड़ने में संकोच नहीं करतीं[१३]। उन उन्मत्त गोपियों को जहाँ कहीं भी 'तपी, संयमी धर्मी, आचारी'

१० 'बरजौ जसोमति अपनो लाल' जमुना तट अड़ो करत ग्वाल।
'मेरी बाँह मरोरी तोरी माल। अरु कंचुकी फारी परसि गाल।
भरन न देत जल श्रीगोपाल। मुख पर डारत ले जु गुलाल—गोविं २१६।

११ मानों ब्रज तैं 'करिनि चलि' गिरिधर गज पै जाइ
'कुल अंकुस मानैं नहीं साँकर-वेद तुराइ'।
अवगाहैं जमुना नदी, करति तरुनि जल-केलि
चहुँ दिसि तैं मिलि छिरकहीं सुड दंड भुज पेलि।
वृन्दावन बीथिनि फिरैं 'संग मदन गजपाल',
कबहुँ नैन कर ? मिलैं 'तेसिये गज गति चाल।
नाग बेलि चाबति फिरैं मोदक माँझ कपूर।
सुगंध चुवै स्रवननि चुवै मंडित माँग सिंदूर।
केसरि लाई सानि के घुँघुरू घंट घुमाइ
उर पर कुच जुग घंट से मुक्ता माल बराइ।
अंचल उड़त बतानिये मन बैरख फहराइ,
कुसल हार स्रमु सुरसरी कुसल प्रवाह बहाइ।
अंग अंग छिरकैं स्याम कौं कुंकुम चंदन गारि।
सूरदास-प्रभु क्रीड़हीं संग गोकुल की नारि—सा ३५८२।

१२ मुकि-मुकि परति है कुँवरि राधिका देति परस्पर गारि—सा २८६५।

१३ जे कबहूँ देखीं नहीं कबहूँ सुनीं न कान,

व्याप्ति होने का पता लगता है, वे वहीं पहुँच जाती और उनके आभास पर भाषा बोल देती हैं[१४]। 'होली' के अवसर पर उन्मत्तता को लक्ष्य करके ही सूरदास ने 'सठ और पंडित' तथा 'वेस्या और वधू' के 'इकसार' होने की बात कही है[१५]। 'साधु-असाधु' का ध्यान न करके 'विकार-वचन' बोलना भी वस्तुतः उन्मत्तता का ही परिणाम है[१६]। उन्मत्तता के कारण 'लाज छूट जाने' और अपना 'तन भी न सम्हारने' की बात परमानंददास ने लिखी है[१७]। कुंभनदास भी होली के अवसर पर 'लाज छोड़कर 'उघरि नाचने' की बात लिखते हैं[१८]। चतुर्भुजदास की सम्मति में तो लोक-मर्यादा छूटने में ऋतु का भी प्रभाव है जिसके फलस्वरूप मुनि और पंडितगण ही नहीं 'शिव-विरंचि' तक बौरा गये हैं[१९]। अतएव चतुर्भुजदास की मदमाती तरुणियाँ 'कुल का अंकुश' भी नहीं मानतीं[२०]।

'होली' के अवसर पर 'कुल की परिमिति' फोड़ने'[२१] 'लोक-वेद-कुल-धर्म की कानि न मानने'[२२] के साथ-साथ फाग खेलते समय मोहन के अनुराग के कारण

ते कुल नारि निडर भईं लागे लोग परान।
भस्म भरैं अंजन करैं छिरकैं चंदन वारि,
मरजादा टारैं नहीं कटि पट धरैं उघारि—सा २६१४।

१४ जहाँ मुनहिं तप-संजमी धर्मधीर-आचार'
छिरकहिं तहाँ निसंक ह्वै पकरहिं तोरि किवार'—स २६१४।

१५ सठ पंडित बस्या बधू सबै भए इकसार—सा २६१४।

१६ साधु-असाधु न समुझहीं बोलहिं बचन बिकार—सा २६१४।

१७ छूटी लाज तब तन न सँभारति अति विचित्र बौरी—परमा ११२।

१८ रस-गारी तारी दे गावैं अब तो उघरि नच्यो है—कुंभन ७८।

१९ सरस बसंत हँसत बृन्दावन रितु-प्रभाव जनाए।
छूटि गई लोक लाज मरजादा फिरत सबै ही भाए।
'ग्यान ध्यान जप तप सब बिसरे आसन मुनिगन छाँड़ि'।
आगम निगमनि के पंडित सब सिव बिरंचि बौराए—चतु ७४।

२ 'छूटीं तरुनी मदमाती कुल अंकुश नहिं मानें जू'—चतु ९२।

२१ उपरा उपरि छिरकि रस सर भरि 'कुल की परिमित फोरी—सा २८४८।

२२.क लोक-बेद-कुल धर्म केतकी नैंकु न मानति कान—सा २८४१।
ख 'छुटि गई लोक लाज-कुल संका' गनति न गुरु गोपिनि को को री—सा २८४८।

गोपियाँ गुरुजन की लाज का ज़रा भी डर नहीं करतीं[२३]। सूरदास की गोपियाँ तो गुरुजन के सामने ही, उनको 'तृन' सम मानकर, 'चुंबन-दान' देती और लालन की भुज अपने उर पर धरती हैं[२४]। जिन गोपियों को गुरुजन की थोड़ी-बहुत लाज है, वे भी कृष्ण के साथ होली खेलने का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती हैं। अपने 'बैरी गुरुजनों' से छुटकारा पाने के लिए कोई तो बछड़ों को खोलकर वन में भगा देती है क्योंकि वह जानती है कि उनको पकड़ लाने के लिए वे मुझको अवश्य भेजेंगे और कोई भरी हुई 'गागरि' लुढ़काकर यमुना-जल लाने के बहाने कृष्ण से जा मिलने की योजना बनाती है[२५]। परमानन्ददास की गोपियाँ भी होली के अवसर पर 'कुल-लज्जा और मरजादा' तोड़ने से संकोच नहीं करतीं[२६]। चतुर्भुजदास के अनुसार बरसाने की ग्वालिनें फाग खेलते समय माता पिता, सुत, कंत, किसी का भय नहीं मानतीं[२७]।

होली हिंदुओं का एक ऐसा पर्व है जिससे सहयोग और सामाजिकता की भावना के प्रचार में बड़ी सहायता मिलती है। इस त्यौहार के अवसर पर रंग खेलते समय धनी-निर्धन और बड़े-छोटे का भेद सर्वत्र भुला दिया जाता है। चतुर्भुजदास ने एक स्थान पर होली के खिलाड़ियों द्वारा किसी राजा-राय के बुझ न गिने जाने का उल्लेख किया है[२८]। होली खेलने का आवेश ऐसा होता है कि

२३. या गोकुल के चौहटैं हरि सँग खेलैं फाग
'डरति न गुरुजन लाज कौं' मोहन के अनुराग—सा २८६७।

२४ इक अवलंबति, इक अवलोकति, 'चुंबन दान देति इक दंपति'।
मगन भईं अप बपु न सम्हारति 'लालन भुज अपनैं उर धारति'।
'गुरुजन लखें सबै मिलि देखैं तिनकौं सबनी तृन सम लेखैं'—सा २९ १।

२५. 'बाछरु बछरा भजियै बन कौं देहिं बिडारि'।
वे देहैं हमकौं पठै देखैं रूप निहारि।
औंचत गागरि ढारियै जमुना जल कैं काज।
'हरि मिल बाहिर निकसि कैं' आए मिलैं ब्रजराज—सा २९ ४।

२६ अति अनुराग बढ्यो तिहि औसर कुल लज्जा मरजादा तोरी—परमा १३३।

२७ बरसान की ग्वालिनी गरभति फागु धमार है।
भैंड न मानैं काहु की मात पिता सुत कंता हो'—चतु ८४।

२८. मगन भए डोलत जित तित हो गिनत न राजा राए'—चतु ७४।

किसी को तन-बदन की सुधि नहीं रहती। अबीर, गुलाल और रंग के डर से सब लोग मुख मूँदे रहते हैं। स्त्रियों की 'बेनी' ढीली हो जाती है, 'चिकुर' छूट जाते हैं,[९] उनके केस बिखर जाते हैं, कंचुकी के बंद टूट जाते हैं और मोतियों की माला बिखर जाती है[१०]। स्वयं छबीलेलाल भी 'धनी की धोली' तोड़ने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। इस पर जब राधा खीझती है तो सखियाँ गले लगाकर उससे कहती हैं कि खेल में इस तरह कौन मान करता है[११]। होली खेलने में गोपी-ग्वाल इस तरह दत्त-चित्त हैं कि, कुंभनदास के अनुसार, वे सब-कुछ भूल गये हैं, यहाँ तक कि न किसी को आभूषणों के टूटने का ध्यान है और न वस्त्रों के फटने का ही। समय बीतने का भी उन्हें पता नहीं चलता[१२]।

होली के अवसर पर गीत गायन किये गये खेल-तमाशे 'चाँचरि' कहलाते हैं। अपने-अपने 'टोलें' में ब्रज के सब लोग 'चाँचरि' खेलते हैं[१३] और ग्वालिनें तो घर-घर फाग खेलती हैं[१४]। इस अवसर पर 'गधे' की सवारी में भी प्रायः संकोच नहीं होता। सूरदास के 'ग्वाल-बाल' भी 'गधों' पर सवार होकर और 'बरात' सजाकर चलते हैं[१५]। इस त्यौहार पर भाँग, मदिरा आदि के पान का चलन भी हो गया है। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए मिठाई-पान के साथ

९ बाल गोपाल लाल सँग खेलैं मुख मूँदे हिम कोलैं।
चिकने चिकुर छुटे बेनी तैं, भिजे बसन मैं डोलैं—सा २८५७।
१ छुटे केस बँद कंचुकी टूटी मोतिनि माल—सा २८६४।
११ नवल छबीले लाल, 'धनी धोली की तोरी'।
राधा चली रिसाइ, डीठ सौं खेलै को री।
खेलत मैं कत मान सुनहु वृषभानु किसोरी।
सूर सखी उर लाइ हँसति भुज गहि झकझोरी—सा २८७०।
१२. टूटत हार चीर फाटत गिरि जहाँ तहाँ धरनि परी।
काहू नाहिं सँभार क्रीड़ा-बस सब तन-सुधि बिसरी।
अति आनंद मगन नहिं जानत बीतत जाम घरी—कुंभन ९९।
११ सूरदास तब 'चाँचरि' खेलैं अपने अपने टोलैं—सा २८५७।
१४ गोकुल सकल गुवालिनी घर घर खेलत फाग—सा २८९४।
१५. रास कवच 'बरात बनि खरनि भए असवार'।
धूरि धातु रँग घट भरे धरे मंत्र हथियार—सा २९१४।

साथ 'कोटि कलस मर वारुनी' मँगाये जाने का उल्लेख हुआ है[३८]।

'चौहटे' पर एकत्र होकर आनंद से झूम-झूमकर मधुर बानी से 'गीत' और झूमके गाये जाते हैं[३९]। गोपों के 'धमार' गाने का वर्णन भी सूरदास ने किया है[४०]। कुंभनदास ने गोपियों के गाने और नृत्य करने का वर्णन किया है[४१]। उनके ग्वाल-बाल 'नटनारायन' राग गाते हैं[४२]। चतुर्भुजदास ने एक पद में भी यही बात कुंभनदास के ही शब्दों में लिखी है[४३] और दूसरे में 'झूमक' गाये जाने का वर्णन किया है[४४]। उन्होंने ब्रज में 'होरी' खेलते नवकिशोर को 'गौरी' राग अलापते बताया है[४५]। एक दूसरे पद में चतुर्भुजदास ने 'धमार' गाये जाने की ओर भी संकेत किया है[४४]।

'तरुनी-बाल-सयानी' सभी के परस्पर 'गारी' गाने का वर्णन भी सभी अष्टछापी कवियों ने किया है[४५]। 'गारी' गाने में इन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं

१६. कोटि कलस मरि वारुनी' दई बहुत मिठाई पान—सा २९ ६।
१७ क " " " " "गावत गीत सुहाए।
× × × ×
झूमि झूमि 'झूमक सब गावति' बोलति मधुरी बानी—सा २८५४।
ख अति आनंद मनोहर बानी गावत उठति तरंग—सा २८६।
१८. जमुना-कूल मूल बंसीवट 'गावत गोप धमारि'—सा २८२५।
१९ मधुर सुर गीत गावति सुन्दर नागरी नाच नृत्यत मुदित कुनित नूपुर चरन।
—कुंभन ७।
४ 'गावत नट नारायन राग मुदित देत चैन,
फाग चहुँ दिसा जुरि ग्वाल बाल-वृन्द टोलनीं—कुंभन ७४।
४१ 'गावत नट नारायन राग' जुवती जन खेलत फागु—चतु ७७।
४२. 'गावहिं झूमक' देत गीप सुहाई गारि—चतु ८।
४१ क ब्रज में अति रस बढ़यो हो हो होरी खेलत नंद किसोर।
'गौरी राग अलापत', गावत मधुर मधुर मुरली कल घोर—चतु ८५।
ख 'गौरी राग' मुरली धुनि घोरी—चतु ९१।
ग. 'गौरी राग' सरस सुर गावत—चतु ९७।
४३ 'गावत सरस धमारिनि' मों रँगु रसिक मँडली जोरैं जू—चतु ९१।
४५. देति परस्परि गारि' मुदित मन तरुनी बाल सयानी—सा २८५४।

होता[४६]। हरि और वृषभानु-किशोरी, दोनों में कोई 'गाली' गाने में कम नहीं है[४७]। ग्वाल-बाल तो किसी भी ब्रजबाला को देखते ही 'होरी' पढ़ने और 'गाली' गाने लगते हैं[४८]। गोपियाँ भी गाली गाने में ग्वाल-बालों से बढ़कर ही हैं। जब वे श्रीकृष्ण को पकड़ पाती हैं तब उनका स्वाँग बनाती हुई खूब 'गारी' गाती हैं[४९]। श्रीकृष्ण से तो उनका प्रेम-संबंध है अतः उनके प्रति 'गाली' गाने में तो कोई 'हर्ज' नहीं है; लेकिन गोपियाँ इससे भी आगे बढ़कर नंद महर तक का 'बखान' करने लगती हैं[५०]। सूरदास ने एक पद में 'गाली' के आशय की ओर भी संकेत किया है। ग्वाल जब 'होली' पढ़ते हैं तब गोपियाँ श्रीकृष्ण के लिए 'गाली' गाती हुई कहती हैं—'तुम्हारी माता', यशोदा बड़ी गुनभरी हैं। यों तो वे नंद जी की पत्नी हैं, परंतु तुम्हारे पिता नंद नहीं हैं। अपने 'कुलटापन' से तुम्हारी माता यशोदा ने नदादिक अनेक व्यक्तियों का मन मोह रखा है और राधा के पिता वृषभानु की भी वे 'प्यारी' हैं[५१]। इसी प्रकार गोप भी 'बरसाने' का नाम ले लेकर 'गालियाँ' देते दिखाते हैं[५२]। सामान्यतया होली की गालियाँ 'मीठी' और 'मन-भावनी' होती हैं[५३]। परमानंददास की गोपियाँ मर्यादा का इतना उल्लंघन नहीं करतीं। उन्होंने भी कृष्ण के लिए 'गाली' गायी है, परंतु उन्होंने कृष्ण को 'कारो', 'नटवा', 'लटुवा', 'मधुकर',

४६ 'औंचि सकुच' सब देति परस्पर अपनी भाई गारि—सा २८८६ ।
४७ 'गावत दै दै गारि' परस्पर उत हरि इत वृषभानु किशोरी—सा २८६८ ।
४८.क. 'पढ़त होरी' 'बोलि गारी निरखि कै ब्रजबाल—सा २८७१ ।
  ख ग्वालनि घेरी हाथ 'गारि दै' तियनि सुनाई—सा २८८१ ।
४९ लोचन आंजत आँखि भाँति सौं 'गारी गाई'—सा २८८१ ।
५० क 'गारि नारि सब देहिं सुभानी नंद महर कौं अति बखानी—सा २८७८ ।
  ख करति सबै रुचि की पहुनाई, 'नंद महर कौं गारी गाई'—सा २६१ ।
५१ उत होरी पढ़त ग्वार इत गारी गावत' ये
  'नंद नाहिं आये तुम महरि गुननि भारी' ।
  'कुलटी उनतें को है नंदादिक मन मोहे
  बाबा वृषभानु की वे सूर सुनहु प्यारी'—सा २८८२ ।
५२. जमुना कूल मूल बंसीवट मावत गोप धमारि ।
  लै-लै नाउँ गाउँ बरसानो 'देत दिखावति गारि'—सा २८२५ ।
५३ अति मीठी मनभावती 'देहिं परस्पर गारि'—सा २६ ।

'रंजन' आदि कहकर ही प्रसंग समाप्त कर दिया है[५४] और अंत में यह भी कह दिया है कि 'फगुवा' पा जाने पर हम गाली नहीं देंगी[५५]। कुंभनदास भी 'रस-गारी' की चर्चा करना नहीं भूले हैं[५६]। नंददास की गोपियाँ मोहन के मन को मोहनेवाली गालियाँ गाती हैं[५७]। राधा उन गालियों को सुनकर कृष्ण की ओर देखकर लजा जाती है[५८]। चतुर्भुजदास ने गोपियों के द्वारा 'गाली' गाये जाने का वर्णन दो-एक पदों में किया है[५९] और गोविंदस्वामी की गोपियाँ भी इस प्रसंग में किसी से पीछे नहीं हैं[६०]।

होली पर 'झाँझ, झिल्ली, निर्झर, निसान, डफ, भेरि, ताल, मृदंग, बीन, बाँसुरी, रबाब, उंग, महुअरि, उपंग, झालरी, आवझ' आदि बाजे बजाये जाने की बात सूरदास ने अनेक पदों में लिखी है[६१]। परमानंददास भी उक्त बाजे बजाये जाने की

५४ तुम आवौ री तुम आवौ, 'मोहन जू' कौं गारी सुनावौ।
'हरि कारो' री हरि कारो, यह 'है' बाभन बिचवारो।
'हरि नन्दा' री हरि नन्दा, राधा जी के आगे 'फदुवा'।
हरि मधुकर' री हरि मधुकर, रस चाखत डोलत घर-घर।
हरि रंजन' री हरि रंजन, राधा जू के मन को रंजन—परमा ११५।

५५. हम लैहैं री हम लैहैं, 'फगुवा लै गारी न दैहैं'—परमा ११५।

५६. 'रस-गारी सारी दै गावैं' अब तो उपरि नच्यौ है—कुंभन ७८।

५७ मोहन मन की मोहिनी देत रँगीली गारी—नंद, परि १ ८४।

५८. माखन लागी ग्वालिनि गारी' सुदर ललहि लगाय।
राधा जू गारिनि सुनि-सुनि हँसि-हँसि हरि तन हेरि लजाय—नंद परि, ९१।

५९.क गारी देति गोप कुँवरि करि कलगाना—चतु ७७।
ख 'गावहि' झूमकि चढ बीच सुहाई गारि—चतु ८।
ग. मुँहनि मांई झूमिके 'गावति मीठी गारि'—चतु ८१।
घ मंद-मंद मुसिकाइ कै देति परस्पर गारि'—चतु ९।
ङ 'गावति' परम भावती 'गारी जू—चतु ९२।

६० क हँसति-हँसति सब भावती 'गावत गारी' सुनाई हो—गोविं १११।
ख गावति गारी मगन भरि गोपी मीठी परम रसाल—गोविं ११४।
ग. गावति गीत सुहावने हँसि-हँसि 'देवत्व गारी' हो—गोविं ११७।
घ चलि रसभरी ब्रज सुंदरी देति परस्पर गारी—गोविं १२१।
ङ निज गुनगन भवांर चरणगा 'गावति मीठी गारी'—गोविं ११२।

६१ क 'झाँझ झिल्ली निर्झर निसान डफ भेरि भँवर गुंजार—सा १८५१।

बात कहते हैं[११]। कुम्भनदास ने बाजों की उक्त सूची में अघौटी वीना, शंख आदि और बढ़ा दिये हैं[१२]।

ख 'ताल मृदंग बीन बाँसुरी डफ' गावत गीत सुहाए—सा २८५४।
ग बाजे 'ताल मृदंग रबाब भीर—सा० २८५६।
घ 'डफ, बाँसुरी रुंज अरु महुअरि' बाजत 'ताल मृदंग'—सा २८९।
ङ 'झाँझ ताल सुर मंडले' बाजत मधुर 'मृदंग'।
तिनमें परम सुहावनी महुवरि बाँसुरि चंग —सा २८६६।
च 'डफ बाँसुरी' सुहावनी 'ताल मृदंग उपंग
'झाँझ झालरी किन्नरी आवझ अरु मुहचंग'—सा २८६७।
छ. 'बीन मुरज उपंग मुरली झाँझ झालरि ताल —सा २८७१।
ज इक बीना इक किन्नरि, इक मुरली इक उपंग।
इक तुंबुर इक रबाब भाँति सौं बजावैं।
एक 'पटह इक 'गोमुख इक 'आवझ इक 'झल्लरि'
एक 'अमृतकुंडली, इक डफ' कर धारै—सा २८८८।
झ. 'दुन्दुभि ढोल पखावज आवझ बाजत 'डफ मुरली रुचिकारी—सा २८९१।
ञ. 'डम्फ मुरज डफ झाँझ झालरी बीन पखावज तार'।
झनझेरि अरु राइ 'गिरिगिरी मुरचंग झनकार—सा २८९५।
ट. डिमडिम, पटह, ढोल, डफ बीना, मृदंग चंग' अरु 'तार'—सा २९०१।
ठ बाजत 'ताल मृदंग, झाँझ, डफ डम्फ मुरज, बाँसुरि'-धुनि घोरी—सा २९ ८।
ड बाजत बीन बाँसुरी महुवरि, किन्नरि औ मुहचंग'।
'अमृतकुंडली औ 'सुरमंडल, 'आवझ' सरस 'उपंग'।
'ताल मृदंग झाँझ डफ बाजे सुर की उठति तरंग—सा २९११।

१२.क बाजत 'चंग मृदंग अघौटी पटह झाँझ झालर' खिर घोरी।
'ताल रबाब सुरसिका बीना' मधुर सबद उपटत धुन मोरी—परमा १११।
ख 'ताल पखावज' बाजी 'बीना बेनु रसाल'।
'महुवरी चंग' औ बाँसुरी बजावत गिरिधरलाल—परमा १११।

१३ क बाजत 'डफ मृदंग बाँसुरी किन्नरि सुर कोमल री।
तिनहिं मिलत सुघर नँदनंदन 'मुरली' अधर धरी—कुंभन ६९।
ख बाजत 'ताल मृदंग अघौटी बीना, मुरली तान तरंग—कुंभन ७१।
ग. तहाँ बाजत बेनु, मृदंग ताल बिच बिच मुरली' अति रसाल—कुंभन ७१।
घ बाजत 'आवझ उपंग बाँसुरि', सुर, 'बेनु चंग'
'संख बंस', 'झाँझि, डफ, मृदंग, ढोलनी'।

नंददास के अधिकतर बाजे उक्त सूची के ही हैं;[१४] केवल मुरज, ढोल, टनक, सहनाई उन्होंने अधिक बजवाये हैं[१५]। चतुर्भुजदास ने सामान्य बाजों के[१६] साथ साथ 'शृंग' और 'वेत्र' भी बजाये जाने की बात लिखी है[१७]। एक दूसरे पद में उन्होंने उक्त बाजों के साथ 'गिरगिरी' के[१८] और तीसरे पद में 'डिमडिम' के बजाये

बाजत सुर आनक ताल मुखरित श्रीगोपाल।
'वेनु' मध्य गान करत डोरि डोलनौं—कुमन ७४।

क बाजत 'ताल, मृदंग अघोटी, बाजत 'डफ सुर बीन उपंगे।
अधर बिंब कूजै बेनु' मधुर धुनि मिलत सप्त सुर तान तरंगे—कुमन ७६।

ख 'झाँझ, बीन पखावज किन्नरी डफ, मृदंग' बजाइए—कुमन ७७।

१४ क बाजत 'ताल मृदंग मुरज डफ' कहि न परति कछु बात।
—नंद पदा पृ ११६।

ख ताल पखावज बेनु बाँसुरी' राग रागिनी तान—नंद परि ८१।

ग सुर मंडल डफ झाँझ ताल' बाजत मधुर 'मृदंग'।
तिनमें परम सुहावनी महुवरी बाँसुरी चंग'—नंद परि ८४।

१५.क ताल, मृदंग मुरज डफ बाजे ढोल टनक नव घन ज्यौं गाजे।
—नंद, पदा पृ ११७।

ख बाजत 'ताल मृदंग झाँझ डफ, सहनाई' अरु 'ढोल —नंद पदा, पृ ११८।

ग. धर 'आवज' 'सुरबीन अनाघात गति गाजही
'ताल मृदंग, उपंग सप्त मुरज, डफ' बाजही—नंद पदा पृ ११९।

१६ क बाजत 'ताल मृदंग झाँझि, डफ, आवज बीना किन्नरेस —चतु ७१।

ख बीना बेनु तान तरंग बाजत मधुर 'मृदंग'
भरी महुवरि डफ झाँझि ढोलना—चतु ७७।

ग. दुन्दुभि झाँझ मुरज डफ' बाजैं मृदंग उपंग अरु 'तार'—चतु ८५।

घ 'ताल पखावज, बेनु धुनि' बाजत बिच 'मुरली' धुनि सरस सुनाई।
'ढोल निसान दुन्दुभी बाजत 'मदन भेरि' आनक सहनाई।
कछु मुरज अरु झाँझ झालरी बाजत अरु कठताल उपंगा।
अरु पिनाक किन्नरी श्रीमंडल' मधुर बीन बाजत मुख 'चंगा'—चतु ८६।

१७ 'सुघर घर महुवरि धुनि नीक सब्द सुनाए—चतु ७८।

१८. बाजत ताल मृदंग आवज डफ मुख चंग।
'मदन भेरि सुर बीन गिरगिरी झाँझि उपंग—चतु ८।

बाजे का उल्लेख किया है[६९]। छीतस्वामी[७०] और गोविंदस्वामी के बाजे भी उक्त सूची के ही हैं[७१]। बेना, अमृतकुंडली, दमामा, बीसा[७२] आदि के नाम उन्होंने और लिखे हैं। इतने बाजे बजते हैं और इतना कोलाहल होता है कि कान पड़ी आवाज भी नहीं सुनायी देती[७४]।

'फगुआ' या 'फागुवा' का वर्णन भी प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। श्रीकृष्ण जब 'होली' खेलने निकलते हैं तब साथ में अनेक ग्वाल-बाल रहते हैं जिनमें कोई गाता है कोई नाचता है और कोई तरह-तरह के रंग या स्वाँग करता है[७५]। सब सखाओं के साथ श्रीकृष्ण वृषभानु की 'पौरि' पर पहुँचते हैं। ब्रज की समस्त किशोरियाँ भी दौड़कर आ जाती हैं और उन्हें घेरकर कहती हैं कि यदि तुम 'फगुआ' न दे सको तो राधा के पैर छुओ[७६]। मोहन जब भी सखियों द्वारा पकड़े

६९. विविध भाँति बाजे बजे 'ताल मृदंग उपंग'।
'दुन्दुभि डिमडिम झालरी आवज' कर मुख 'चंग'—चतु ८१।

७०. बाजत ताल मृदंग अधौटी बिच मुरली धुनि थोरी—छीत ५८।

७१ क. 'ताल मृदंग झाँझ डफ महुवरि' बाजत थार मुरली —गोविं १ १।
ख. 'ताल मृदंग उपंग झाँझ डफ ढोल भेरि सहनाई —गोविं० १ १।
ग. 'ताल मृदंग रबाब झाँझ डफ मृदंग मुरली' धुनि थोरी—गोविं ११।
घ. बाजत 'ताल मृदंग झाँझ डफ बिचबिच मोहन मुरली धुनि थोरी—गोविं ११२।
ङ. बाजत सरस 'मृदंग झाँझ डफ बीना बेनु उपंग ताल—गोविं ११४।
च. बहु विधि तैं बाजे बजैं 'दम्फ मुरज डफ ताल' हो।
'दुन्दुभी डिमडिम झालरी' बिच बिच 'बेनु' रसाला हो—गोविं ११७।
छ. 'डिमडिम पटह झाँझ डफ बीना मृदंग उपंग तार'—गोविं १२६।

७२. 'बीन बेना अमृतकुण्डली किंनरी झाँझ' बहु भाँति बाजत उपंग—गोविंद १०८।

७३. भेरि दमामा बीसा' कोऊ काहु न सँभार—गोविं ११८।

७४ क. 'कान परी सुनिये नहीं बहु बाजत ताल मृदंग—सा २७ ७।
ख. युवतिनि संग खेलत फाग हरी।
बालक वृन्द करत कोलाहल 'सुनत न कान परी —कुंभन ६६।

७५. खेलत स्याम ग्वालनि संग।
एक गावत एक नाचत एक करत बहु रंग—सा २८७१।

७६. निकसि कुँवर खेलन चले मोहन नंदकिशोर।

× × ×

जाते हैं, तब छुटकारा 'फगुवा' मँगा देने पर ही मिलता है [७७]। फगुआ ले लेने पर ही गोपियाँ कृष्ण को छुटकारा देने का निश्चय हर बार करती हैं[७८]। कभी मोहन स्वयं भी फगुवा मगा देते हैं[७९] जिसमें सामान्यतया 'पँचरँग सारियाँ' होती हैं जिनमें से युवतियाँ मनचाही छाँट लेती हैं[८०]। कभी माता यशोदा व्रज की युवतियों को बुलवाकर रंग-रंग की पहिरावनी' देती हैं [८१]। गोविंदस्वामी की यशोदा को जब 'काम नृपति की जेल' में बलराम के बंदी बनाये जाने अर्थात् गोपियों द्वारा बलराम के पकड़े और स्वाँग बनाये जाने की सूचना मिलती है, तब वे 'फगुवा' देकर ही उन्हें छुटकारा दिला पाती हैं[८२]। इसी प्रकार नन्द और यशोदा, दोनों कृष्ण को छुड़ाने के लिए बहुत मेवा मँगाकर गोपियों को देते हैं[८३]। कभी बलराम बीच-बचाव करते हैं और 'फगुआ देकर भाई को छुड़ाते हैं [८४]। इसी प्रकार बलराम के पकड़े जाने पर कृष्ण 'फगुआ' मँगा देने का प्रस्ताव करते हैं[८५]।

आवत रँगीले लाल ब्रज गए वृषभानु की पौरि।
ज ब्रज दुती किसोरिका ते सब आईं दौरि।
× × ×
फगुआ दियौ न जाइ लागौ राधा पाइँ—सा २८६६।

७७ सब सखियनि मिलि मारग रोक्यौ जब मोहन पकरे।
अंजन आँखि दियौ सखियनि मैं हा हा करि उबरे।
'फगुवा बहुत मँगाइ साँवरे कर जोरे बरज करे'—सा २८६७।

७८ 'एक कहैं फगुआ ले छाँड़ि'—२६ १।

७९ लखि फाग मिलि कै मनमोहन फगुवा दियौ मँगाइ'—सा २८८५।

८० 'फगुवा हमकौं देहु मँगाई। पँचरँग सारी' बहुत दिखाई।
तुरत सबै जुवतिनि पहिरायौ। लीन्ही जो जाकैं मन भाई—सा २९११।

८१ रँग रँग पहिरावनि दई जुवतिनि महरि बुलाइ—सा २८८२।

८२ इकले कर पकरे बलदाऊ जुरि आई सब ग्वालें।
बेंम बिचित्र बनाइ सबनि के नैननि काजर मेलें।
'छिड़ाइ लए फगुवा दै जसुमति काम नृपति की जेलें'—गोविं १२३।

८३ नंद जसोमति आनि हरखि मिल मँगाइ दई भरि भौरी हो।
मेवा बहुत मँगाइ भाँति के सखा सहित सब छोरी हो—गोविं० १२४।

८४ कछ किन्यौ बीच' ग्वाल समुझाए। मोहन मेवा मोल मँगाए।
'फगुवा लै बालन छिरकाए'। हँसत गुपाल ग्वाल तहँ आए—सा २६ १।

८५ बलभैया कौं छाँड़ौ फगुआ देहुँ मँगाइ'—सा २९१५।

एक पद में तो 'फगुआ' देने का विचित्र प्रस्ताव या सुझाव दिया गया है। गोपियाँ मोहन को पकड़ लेती हैं और नन्द जी से कहती हैं—कृष्ण को छुड़ाकर संसार में यश लो। उनका संकेत यह है कि 'फगुआ' पा जाने पर हम कृष्ण को छोड़ देंगी, इसलिए तुरंत उसका प्रबंध कर दो और यदि 'फगुआ' का प्रबंध तुम न कर सको तो यशोदा को वृषभानु के यहाँ 'धर' दो, तब उसका प्रबंध सुगमता से कर सकोगे[८६]। इस पर यशोदा हँसकर राधा और उसकी सखियों को बुलाती तथा 'फगुआ'-रूप में मेवा, मिश्री, रत्नादि देकर संतुष्ट कर देती हैं[८७]। परमानन्ददास की गोपियाँ तो यहाँ तक कह देती हैं कि 'फगुआ' मिल जाने पर हम गाली' नहीं देंगी[८८]। नन्ददास और चतुर्भुजदास की गोपियाँ भी 'फगुआ' माँगती और न दे सकने पर राधा के पाँव लगने की बात कहती हैं[८९]। गोविंदस्वामी की गोपियाँ कभी तो बलराम और मोहन को पकड़कर 'फगुआ' पाने पर छुटकारा देती हैं और कभी उसके लिए उनकी 'मणि-माल' छीन लेती हैं[९१]। कुछ गोपियाँ तो कृष्ण का पीताम्बर पकड़कर 'फगुआ' में 'गहने-मोती-हार' लेने का हठ करती हैं। 'भूषण, बसन और पिछौरी' फगुआ में दिये जाने की बात भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है[९३]।

८६ मोहन पकरे करि मतो मुरली लइ छँडाइ।
राधा सौं करि बीनती दीजै हमहिं मँगाइ।
'नंद छिड़ावहु स्याम को या जग में जस लहु।
'जसुमति धरि वृषभानु कें फगुवा हमरौ देहु'—सा २६१५।

८७ जसुमति हँसि सब सखिनि सौं, राधे लीन्ही बोल।
मेवा मिस्री बहु रतन दई सबनि भरि झोल—सा २६१५।

८८ हम लैहैं री हम लैहैं 'फगुआ ले गारी न दैहैं—परमा ११५।

८९ क पाइन न देही नन्द बहू माँगैं कुँवर पै फाग।
जो पैं फगुआ दियो न जाय प्यारी राधा के पाय लागें'—नंद परि, ८४।
ख राधहिं करहु जुहार हमारो फगुआ देहु—चतु ८।

९० 'मन मान्यो फगुआ लियो पाछे जाइ उन दीनो हो—गोवि १११।

९१ 'फगुआ मिलि गिरिधर गहि आन लीन्ही उर मनि माल—गोवि० ११४।

९२ एक पीत पट गहि रही 'फगुआ देहु कुमार।
एक हम न पतीजहीं गहने बहु मोतीहार—गोवि १२५।

९३ 'फगुआ दियो मँगाइ भूषन बसन पिछौरी—गोवि १११।

मेवा, मिठाई, पकवान वस्त्र आदि गोपियों को सब कुछ 'फगुवा' में मिल गया और वे उसे पाकर हर्षित भी हो गयी हैं, परंतु वास्तव में जो 'फगुवा' वे चाहती हैं, वह उससे सर्वथा भिन्न है। श्याम से उन्होंने कहा है—हम तुम्हारे रंग में रँगी हैं; कोई और रंग हमें नहीं सुहाता। अतएव तुम्हारे साथ नित्य होली खेलने का सौभाग्य हमें प्राप्त रह, यही 'फगुवा' हम चाहती हैं तुम हमारी यही मनोकामना पूरी कर दो[९४]।

होली खेलने के पश्चात् गोप-गोपी, सभी परस्पर 'अनुकूल' होकर यमुना में स्नान करने जाते हैं[९५]। सूरदास के एक पद में स्नान के समय जल-क्रीड़ा द्वारा गोपियों को सुख देने का भी वर्णन हुआ है[९६]। दूसरे पद में उन्होंने गोपियों के साथ जल-क्रीड़ा करते कृष्ण को 'गजिनी संग नहाते मदन-धुजिनी गज' जैसा कहा है[९७]। सूरदास के अतिरिक्त कृष्णदास, परमानंददास कुंभनदास और नंददास इस प्रसंग में मौन हैं; चतुर्भुजदास और गोविंदस्वामी ने अवश्य फाग के

९४ स्याम तुम्हारें रंग रँगी हैं और न रंग सुहाइ।
निबही होरी खेलिये हो, तुम सँग अदबदाइ।
'यह फगुआ हम चाहहीं' हो चितवनि मृदु मुसुकानि।
सूर स्याम देवें करी जू तुम हो जीवन-प्रान—सा २८८२।

९५ क. न्हान चले जमुना कैं कूल गोपी गोप भए अनुकूल—सा २९ १।
ख फाग खेलि अनुराग बढ़ायो, सबकैं मन आनंद।
चले जमुन अस्नान करन कौं सखा सखी नँदनंद—सा २९ ७।
ग ग्वाल-बाल सब संग मुदित मन आइ जमुन जल न्हाइ किसोरी—सा २९ ८।

९६ अति स्रम जानि गए जल तीरा। ग्वाल ग्वालि हलधर हरि बीरा।
परम पुनीत जमुन जल रासी। क्रीड़त जहाँ ब्रह्म अविनासी।
धन्य धन्य सब ब्रज के बासी। विहरत हैं हरि सँग करि हाँसी।
जल-क्रीड़ा तरुनिनि मिलि कीन्हो। ब्रज नर-नारिनि कौं सुख दीन्हो—सा २९१।

९७ करत जमुनाप जलधि-जल केलि।
अचलनि कर लिये अंबु अमृत किये, दिये नव नव सुख खेलि।
मौं राजत तिहि काल लाल ललना रसाल रस रंग।
मानहुँ न्हात मदन-धुजिनी गज, सजनी गजिनी संग'—सा २९११।

९८. सब सज्य जीति चली ब्रज जुवती गाई जमुना के कूलनि जू—चतु १२।

९९ क. 'परिवा सकल घोष जन भानु-सुता चले न्हान—गोविं १२१।

युद्ध में जीतकर गोपियों के जमुना के कूल पर आने का उल्लेख किया है। यह स्नान 'परिवा' को होता है[१]।

'परिवा' को नहा-धोकर नये वस्त्र पहनने की बात अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने लिखी है। स्नान करके कृष्ण जमुना से रथ पर लौटते हैं[२]। घर आने पर नये और कोरे वस्त्राभूषण पहने जाते हैं[३]। नंदरानी श्रीकृष्ण पर निछावर करके वस्त्रादि दान देती हैं[४]। विप्रसमाज उनका तिलक करता है और विप्रों के साथ बंदीजन को भी रत्न-कंचन की बोरी दान में देती हैं[५]। द्वितीया के दिन श्रीकृष्ण नव वस्त्राभूषण धारण करके सिंहासन पर बैठते हैं[६]। नंद जी भी ब्रज-सुंदरियों को नग-भूषण दान देते हैं[७]। कृष्णदास, परमानंददास कुंभनदास, चतुर्भुजदास और छीतस्वामी के पदों में यह प्रसंग वर्णित नहीं है। गोविंदस्वामी ने अवश्य एक पद में नंदरानी द्वारा कुँवर पर 'वार' कर विप्रों को बहुत दान दिये जाने की बात कही है[८]। द्वितीया के दिन पीतपटधारी स्याम के सिंहासन पर विराजमान होने का उल्लेख भी गोविंदस्वामी के एक पद में मिलता है जिसमें उन्होंने श्रीदामा को भी युवराज के निकट उपस्थित बताया है[९]।

ख 'परिवा सकल सिमिटि ब्रजवासी' चले जमुन जल न्हाइ—गोविं १२९।

१ 'परिवा सिमिटि सकल ब्रजवासी', चले जमुन जल न्हान—सा २६ ६।

२ 'परिवा बसन जु साजियो' न्हाय चोक आनंदा हो—गोविं ११६।

२. भवन गवन को नंद सुवन तब 'निकसि चले रथ कूल—सा २६११।

३ नए बसन आभूषन पहिरत, बसन सेत पाटंबर कोरी—सा २६ ८।

४ 'वारि कुँवर पर पट नंदरानी दिये विप्रनि बहु दान'—सा २६ ६।

५. दुरत समाज-समेत करत द्विज तिलक, दूब-दधि रोचन रोरी।
सूर स्याम विप्रनि, बंदीजन 'देत रतन कंचन की बोरी'—सा २६ ८।

६.क द्वितीया पाट सिंहासन बैठे चमर छत्र सिर ढार—सा २६ ६।

ख द्वितिया सकल समाज सों पट बैठे आनंद-कंद—सा २६ ६।

७ दान देत ब्रज सुंदरी नग भूषन नवनिधि नंद—सा २६ ६।

८. 'वारि कुवर पर नँदरानी हो देत विप्रनि बहु दान'—गोविं १२९।

९ दुतिया पाट सिंहासन बैठे छत्र चँवर सिरताज।
राजत सहित श्रीदामा बलि बलि बलि जुवराज।
स्याम सुभग तन अति राजत हैं बरगजा पीत सुबास—गोविं १२९।

समीक्षा—विविध पर्वोत्सवों और त्योहारों का जो विवरण अष्टछाप काव्य के आधार पर ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे चार निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहली बात यह है कि आठों अष्टछापी कवियों ने सभी पर्वोत्सवों और त्योहारों का वर्णन नहीं किया और जिन्होंने इन विषयों को लेकर पद-रचना की भी उन्होंने उनको समान विस्तार नहीं दिया। सूरदास नंददास, छीतस्वामी आदि कवि अनेक प्रसंगों में मौन रहे तो कुंभनदास कृष्णदास और चतुर्भुजदास वर्ण्य विषयों को उतना विस्तार नहीं दे सके जितना परमानंददास या गोविंदस्वामी ने दिया है।

दूसरी बात यह कि किसी भी प्रसंग में सभी अष्टछापी कवियों के विचार यदि सामूहिक रूप से लिये जाते हैं तो वर्ण्य विषय का प्रायः सांगोपांग विवरण सामने आ जाता है। उदाहरण के लिए 'दीपमालिका' का पाँच दिन का उत्सव 'धनतेरस' से प्रारंभ होकर 'भाईदूज' को समाप्त होता है परंतु 'धनतेरस' का वर्णन जहाँ केवल परमानंददास और कुंभनदास ने किया है, वहाँ 'भाई-दूज' का वर्णन अष्टछापी कवियों में केवल गोविंदस्वामी ने किया है। अतएव आठों कवियों के विचार इस प्रकार प्रत्येक विषय में 'पूरक' की उपयोगिता रखते हैं और सम्मिलित रूप से उनका अध्ययन करने पर ही वर्ण्य विषय का पूर्ण चित्र सामने आ सकता है।

तीसरी बात यह है कि अष्टछापी कवियों ने पर्वोत्सवों और त्योहारों की उन्हीं बातों की चर्चा मुख्य रूप से की है जिनका संबंध वे अपने आराध्य से स्थापित करने में सफल हो सके; अन्य विधानों या रीतियों को उन्होंने अधिक महत्व नहीं दिया। उदाहरण के लिए 'दीपावली के त्योहार में नारियल के खोपड़े' के कोयले को दूध में घिसकर दिवाली रखने का प्रचलन ब्रज में आज भी है और कहीं-कहीं वैसा कोयला न मिलने पर साधारण कोयले से भी दिवाली[1] रखी जाती है। परंतु ऐसी बातों का निकट संबंध संभवतः श्रीकृष्ण से न होने के कारण अष्टछापी कवियों ने इसको महत्वपूर्ण नहीं समझा। सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य के अध्येता को इन भक्त कवियों के इस आदर्श को बराबर ध्यान में रखना चाहिए।

१ ब्रज लोक-साहित्य पृ. २८६।

अष्टछापी कवियों के उक्त पर्वोत्सव और त्योहार-वर्णन की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने जितना ध्यान ऐसे अवसरों का हर्षोल्लास-वर्णन करने में लगाया है, उतना पूजा आदि विधियों का वर्णन करने में नहीं। उदाहरण के लिए पूर्णिमा की रात को 'होली' 'लगाने' या 'जलाये' जाने की चर्चा अष्टछापी कवियों द्वारा लिखे गये होली-विषयक लगभग दो सौ पदों में केवल गोविंदस्वामी के एक पद के साथ साथ 'सूर-सारावली में मिलती है'[११]। श्रीकृष्ण के रस अथवा आनंद-रूप के उपासक अष्टछापी कवियों के लिए यह स्वाभाविक भी था। फिर भी विभिन्न पर्वों और त्योहारों की पूजा आदि के संबंध में जो दो चार संकेत उनके काव्य में मिलते हैं उनके आधार पर ही सोलहवीं शताब्दी में इन उत्सवों की रूपरेखा का अच्छा ज्ञान हो सकता है और जब हम अष्टछापी कवियों द्वारा वर्णित अनेक बातें आज भी ब्रज और उसके निकटवर्ती प्रदेश में प्रचलित देखते हैं तब हमें उन कवियों की सूझ-बूझ पर हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

४. लोकाचार और लोकव्यवहार—

भारतीय समाज में पारस्परिक व्यवहार में आयु और पद के साथ-साथ कभी-कभी वर्ण का भी ध्यान रखना पड़ता है। यही कारण है कि यदि निम्न वर्ग का व्यक्ति आयु में बड़ा है, तब भी वह आयु में छोटे उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति शिष्टाचार दिखाना अपना कर्तव्य समझता है। इसी प्रकार बड़ी आयु वाले स्वामी के लिए पद में अपने से बड़े परंतु आयु में छोटे का सम्मान करना वांछनीय समझा जाता है। ब्रह्मचारी आचार्य अथवा ब्राह्मण-वर्ग के प्रति अन्य वर्गों की श्रद्धा के मूल में प्रथम, और स्वामी या प्रभु के प्रति दास के सम्मान के मूल में द्वितीय भावना काम करती है। अष्टछाप-काव्य में दोनों प्रकार के कुछ उदाहरण पौराणिक प्रसंगों में मिलते हैं। उदाहरणार्थ बटु-रूपधारी 'वामन' को देखते ही बलि का उनको 'जुहारी' करने[१२] और चरण धोकर 'चरनोदक' लेने[१३] आदि के मूल में छोटी आयु के उच्चवर्गीय व्यक्ति के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन का सामाजिक शिष्टाचार ही है। इसी प्रकार

११ क. पूरन ससि निसि फागुन की 'पून्यो होरी लगाई'—गोविं० १२१।
ख. 'पून्यो सुन पायौ ब्रजवासी होरी हरष लगाय'—सारा० १ ८५।
१२. देखि स्वरूप सकल कृपानिधि कीनी चरन जुहारी—सा० ८ १।
१३. चरन धोइ 'चरनोदक लीन्हो'—सा० ८-११।

द्वारकाधीश श्रीकृष्ण भी पूर्व सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा को 'विप्र' जानकर ही हाथ जोड़ते हैं;[१४] अस्तु। अष्टछाप काव्य में लोकाचार और लोक-व्यवहार का वर्णन बहुत कम स्थलों पर हुआ है; जो थोड़े-बहुत उदाहरण उनमें वर्णित हैं उनको मुख्यतः चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—क. सम्मान-प्रदर्शन, ख. विनम्र व्यवहार, ग. आदरातिथ्य तथा घ. अन्य लोकाचार।

क. *सम्मान-प्रदर्शन*—सम्मान प्रदर्शन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में किया गया है उनमें नमन-नमस्ते, नमस्कार, साष्टांग प्रणाम, पालागन, प्रनाम, जुहार आदि शब्द मुख्य हैं।

अ. *नमन-नमस्ते*—समाज में जिन पुरुषों के व्यक्तित्व में लोक-कल्याणकारिणी असाधारणता होती है, सामान्यतया हर समझदार व्यक्ति का मस्तक उनके सामने झुक जाता है। वीतराग महापुरुष इसी वर्ग में आते हैं जिनके प्रति बड़े-बड़े सम्राटों के मुकुट झुकने की बात हमारे साहित्यकारों ने कही है। अष्टछाप-काव्य में वर्णित कुछ पौराणिक प्रसंगों में इस प्रकार के 'नमन' के उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ युवावस्था में ही 'श्रीमद्भागवत' का अमूल्य उपदेश देकर अपने असाधारण व्यक्तित्व का परिचय देनेवाले श्रीशुकदेव जी के प्रति राजा परीक्षित 'नमो नमो' कहकर ही अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं[१५]। परब्रह्म-रूप में श्रीकृष्ण की स्तुति करनेवाले 'वेद' भी 'नमो नमस्ते' कहकर ही उनके प्रति अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हैं[१६]।

आ. *नमस्कार*—सामान्यतया नमस्कार' शब्द का प्रयोग पद, मान आदि में बराबर वाले एक दूसरे से करते हैं, परंतु अष्टछाप काव्य में एक स्थान पर श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये अक्रूर के मुख से पांडवों की अकारण दुःख न देने का उपदेश सुनकर उत्तर में अपनी विवशता प्रकट करते हुए वयोवृद्ध अंधसम्राट कुरुपति ने 'पैर पकड़कर नमस्कार' कहलाया है[१७]।

१४ कर जोरे हरि विप्र जानि कै हित करि 'चरन पखारे'—सा ४९१।

१५. 'नमो नमो है कृपानिधान।
चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारैं मिटि गयौ तम अज्ञान—सा २ ११।

१६. नमो नमस्ते' बारंबार। मधुसूदन गोबिंद मुरार—सा ४१ १।

१७ (कुरुपति कह्यौ) 'नमस्कार' मेरो जदुपति सौं कहियौ परि कै पायँ—सा ४२६।

इ *साष्टांग अथवा दंडवत् प्रणाम*—भारतीय शिष्टाचार के अनुसार 'साष्टांग प्रणाम' ही अभिवादन की सर्वोत्तम विधि है। इसमें सिर, हाथ, पैर, हृदय, आँख, जाँघ वचन और मन—इन आठ अंगों से भूमि पर लेटकर प्रणाम किया जाता है[१८]। इसे ही जनभाषा में 'दंडवत् प्रणाम' भी कहते हैं। इस विधि से प्रणाम सामान्यतया उन्हीं व्यक्तियों को किया जाता है जिनके प्रति व्यक्ति में पूज्य भाव रहता है। रावण की मृत्यु के पश्चात् अशोकवाटिका से बंदिनी सीता को ले जाने के लिए उनके देवर लक्ष्मण कुछ सहायकों के साथ आते हैं, तभी जामवंत, सुग्रीव और विभीषण उनको देखते ही 'दंडवत्' प्रणाम करते हैं[१९]।

ई *पालागन*—वनवास के पश्चात् अपने सहायकों और सेवकों के साथ राम अयोध्या पहुँचते हैं। गुरुवर वशिष्ठ आदि के साथ भरत उनका स्वागत करने आते हैं। गुरुवर के दर्शन करते ही उनका परिचय देकर राम अपने सहायकों से उनको 'पालागन' करने को कहते हैं[२०]। 'प्रनाम' भी पालागन का एक रूप है। परमानंददास ने इसी अर्थ में 'पाँय लगने' की बात कही है[२१]। नंद-यशोदा का संदेशा लेकर आयी हुई पंथी राजरानी देवकी के 'पाँइ लगती' है[२२]।

उ *जुहार*—सामान्यतया ग्रामीण वर्ग में ही 'जुहार' शब्द अधिक प्रचलित है, यद्यपि कहीं-कहीं नागरिकों के प्रति भी इस शब्द के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं। अष्टछाप काव्य में नंदजी द्वारा देवकी को 'जुहार' करने की बात पीछे लिखी जा चुकी है। राम-कथा प्रसंग में सीता की खोज करते हुए हनुमान जब अशोकवाटिका में बंदिनी सीता का दर्शन करके अपरिचित होने के कारण चिंतित हो जाते हैं, तब आकाशवाणी द्वारा उनको आदेश मिलता है कि वैदेही यही हैं, इन्हें 'जुहार' करो[२३]। राजा के प्रति भी 'जुहार' करने का प्रयोग अष्टछाप-काव्य में हुआ है

१८. श्री रामचंद्र वर्मा 'मानक हिन्दी कोश', पृ. ११२२।
१९. जामवंत सुग्रीव बिभीषन करी दंडवत आइ'—सा. ९.१६१।
२०. ए वशिष्ठ कुल-इष्ट हमारे, 'पालागन' कहि सबनि सिखावत—सा. ९.१६७।
२१. 'पैयाँ तेरे लागौं' पंथी मेरे बीर।
ग्वालिनि एक हैं देखी दीनों ठाढी भई जमुना के तीर—परमा. कीर्त. १.२१।
२२. हौं इहाँ गोकुल ही तें आई।
देवकि माइ 'पाइँ लागति हौं' जसुमति मोहि पठाई—सा. ११७८।
२३. सुर आकाशबानी भई तबै [illegible]—सा. [illegible]।

जिससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के साथ-साथ सभ्य समाज में भी सविनय अभिवादन-सूचक यह शब्द प्रचलित हो गया था। कंस को मारने के पश्चात् उग्रसेन को सिंहासन पर बैठाकर श्रीकृष्ण उनको सविनय 'जुहार' करते हैं[२४]।

ख *विनम्र व्यवहार*—सामान्यतया मनुष्य की वाणी और शारीरिक हाव-भाव द्वारा व्यक्त शालीनता में शब्दों की गंभीरता तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त शिष्टता के भाव सन्निहित रहते हैं। कृष्ण, पांडव के दूत बनकर कौरवपति की सभा में जाते हैं, 'क्षेम-कुशल' और 'दण्डवत् प्रणाम' के बाद ये बड़ी शिष्टता से पांडवों की माँग रखते हैं[२५]। इसी प्रकार अर्जुन ने भी कृष्ण को अपने पक्ष में लाने के लिए 'कृपा' करने की बात कही है[२६]। अपनी तुच्छता दिखलाना और दूसरे की उदारता एवं महानता का बखान करना शालीनता का एक अंग है। माता यशोदा के द्वारा देवकी को भेजे गये संदेश में दीनता और करुणा के साथ-साथ विनम्रता की स्पष्ट छाप है[२७]। संबोधन के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों द्वारा भी मौखिक शिष्टाचार प्रकट होता है। रुक्मिणी एक ब्राह्मण द्वारा कृष्ण को पत्र भिजवाती है। उस ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त 'देव' संबोधन इसी बात का परिचायक है[२८]। नंद और जसोदा के लिए क्रमशः प्रयुक्त होनेवाले शब्द, महर[२९] और 'महरि'[३] ब्रजवासियों की विनम्रता के द्योतक हैं।

२४ उग्रसेन बैठारि सिंहासन 'आपु जुहार कियो'—परमा ५१२।
२५. पाँच गाउँ पाँचो जननि किरपा करि' दीजै—सा १ २३८।
२६ अर्जुन कह्यौ, आनि सरनागत 'कृपा करौ' ज्यौं पूर्व करि'—सा १-२६८।
× × ×
२७ हौं देसौ देवकी सौं कहियौ
'हौं तो धाइ तिहारे सुत की' मया करत ही रहियौ—सा ११०५।
२८. 'आहो देव द्विजदेव' पिया पै तुरत आइ अब
× × ×
काहू नाहि पतीजो बनि बनि पठी पौमें—नंद रुक्मिनी, पृ १४४।
२९.क आजु घर नंद महर' कैं बधाए—सा १ ११।
ख 'नंद महर' के पुत्र भयो है आनँद मंगल गाई—परमा १।
ग. नंद महर' घर ढोटा आयो पूरन परमानंद—गोविं २।
३ क महरि जसोदा ढोटा जायो घर-घर होति बधाई—सा० १-३१६।

शारीरिक क्रिया द्वारा प्रदर्शित शिष्टता में हृदय की सम्मान-भावना और विनम्रता का व्यावहारिक रूप प्रस्फुटित होता है। पांडवों के दूत कृष्ण हाथ जोड़कर पांडवों का संदेश राजा दुर्योधन को सुनाते हैं[११]।

समान आयु के व्यक्तियों में एक बार मित्रता का जो संबंध स्थापित हो जाता है, पद या अधिकार में उनके बढ़ जाने पर भी वह थोड़ा-बहुत बना ही रहता है, यद्यपि जिन व्यक्तियों की स्थिति वैसी ही बनी रहती है या गिर जाती है उनके मन में उन्नति कर जानेवाले के प्रति मित्रता के भाव में कुछ संकोच भी आ जाता है। ऐसे पूर्व परिचित मित्र या सुहृद जब बहुत समय बाद मिलते हैं, तब परस्पर अँकमाल देते या एक दूसरे को छाती से लगाते हैं। श्रीकृष्ण का सहपाठी निर्धन ब्राह्मण सुदामा जब वर्षों बाद, उनके अपूर्व ऐश्वर्य-संपन्न हो जाने की सूचना पाकर, उनसे मिलने के लिए द्वारका जाता है, तब वे 'अंकमाल देकर' उससे मिलते हैं[१२]। अपरिचित व्यक्तियों के प्रति अत्यंत स्नेह और आत्मीयता व्यक्त करने के लिए भी 'अँकवार भर भेंटा' जाता है। सीता की खोज में गये हुए हनुमान के लंका पहुँचने पर रावण का भाई विभीषण उन्हें 'अँकवार भरकर' भेंटता है[१३]।

ग *अतिथि-सत्कार*—भारतीय संस्कृति में अतिथि-सत्कार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अपना घर छोड़ना मानव को कभी प्रिय नहीं लगता; परंतु शरीर, परिवार और समाज की कुछ ऐसी आवश्यकताएँ होती हैं जिनके लिए उसे इच्छा-अनिच्छा से प्रवास में जाना ही पड़ता है। किसी परिचित-अपरिचित परिवार में पहुँचने पर ऐसे लोग 'अतिथि' कहलाते हैं। इनमें सुख-संपन्न और दुख के मारे, दोनों प्रकार के व्यक्ति होते हैं। सामान्यतया सुख-संपन्न अतिथि का जितना स्वागत-सत्कार किसी परिवार में होता है दुखी-पीड़ित का उतना नहीं, यद्यपि भारतीय संस्कृति दोनों का ही स्वागत-सत्कार करने की प्रेरणा बराबर देती रही है[१४]।

ख भुलावै सुत को 'महरि' पालना कर लिये नवनीत—परमा ४८।
ग आजु बधाई नंद 'महर' घर—गोविं ५।
११ कर जोरे बिनती करी दुरबल-सुखदाई—सा १२१८।
१२. 'अंकमाल दै मिले' सुदामा अर्धासन बैठारे—सा ४२१।
१३ राम भक्त निज जान बिभीषन भेंटे हरि अँकवार'—सारा २७९।
१४ ऐसी प्रीति की बलि जाउँ।

अतिथि-सत्कार में अतिथि के प्रति हृदय के उल्लास को प्रकट करने के दो प्रमुख साधनों का उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है—अ. स्वागत-सत्कार और आ सेवा।

अ *स्वागत-सत्कार*—अनेक मांगलिक पदार्थों को लेकर अभ्यागत का स्वागत करने की परिपाटी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। सूरदास ने कृष्ण के ब्रज आने पर गोपी-ग्वाल द्वारा 'कंचन कलस', 'दूब', 'दधि', 'रोचन' आदि से उनका सत्कार कराया है। अतिथि के तिलक लगाना और उसकी 'प्रदच्छिना' करना भी उनके स्वागत का एक अंग है[३५]। सुफलक-सुत अक्रूर श्रीकृष्ण के शुभागमन की सूचना पाते ही दौड़कर मार्ग में ही उन्हें मिलते हैं और सादर घर लिवा लाते तथा उनके चरण धोते हैं। उस जल को बारबार वे माथे से लगाते एवं विविध सुगंधित पदार्थ वस्त्राभूषण आदि लाकर उनके सामने रखते हैं[३६]।

सिंहासन तजि चले मिलन कौं सुनत सुदामा नाउँ।
'कर जोरे हरि बिप्र जानि कै' हित करि चरन पखारे।
'अंकमाल दै मिले' सुदामा अर्धासन बैठारे—सा ४२१।

३५. ब्रज घर घर सब होत बधाई।
'कंचन कलस दूब दधि रोचन लै' वृन्दावन आई।
मिलि ब्रजनारि तिलक सिर कीनौ करि 'प्रदच्छिना' तासु—सा १४७६।

३६ क. सफलक-सुत वसुदेवकुमार।
चले एक दिन सुफलक-सुत कै पांडव-हेत बिचार।
मिल्यौ सु आइ पाइ सुधि मग मैं, बार-बार परि पाइ।
गयौ लिवाइ सुभग मंदिर मैं, प्रेम न बरन्यौ जाइ।
'चरन पखारि धारि जल सिर पर पुनि पुनि दृगनि लगाइ।
बिबिध सुगंध चीर आभूषन, आगैं धरे बनाइ।
धन्य जन्म मैं, धन्य गात मम धनि धनि भाग हमारे—सा ४१६।

ख 'श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण के राजोचित स्वागत का इस प्रकार वर्णन हुआ है—नगर के फाटकों, महलों के दरवाज़ों और सड़कों पर भगवान के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र विचित्र ध्वज पताकाएँ फहरा रही थीं जिनसे इन स्थानों पर घाम धूप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। उसके राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें बाजार और चौक झाड़-बुहार कर सुगंधित जल से सींच दिए गये थे और भगवान के स्वागत के लिए बरसाए हुए फल-फूल

आ *अतिथि-सेवा*—भारतीय संस्कृति में अतिथि को साक्षात् नारायण स्वरूप माना गया है। अतः उसके आने पर तन-मन-धन से उसकी सेवा करना प्रत्येक गृही का कर्त्तव्य हो जाता है। सुदामा के आने पर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण उनकी सेवा स्वयं करते हैं। उन्हें मलमल कर स्नान कराते हैं। चंदन, अगर, कुम कुम, केशर और परिमल का लेप उनके शरीर में करके[३] अपनी शालीनता का परिचय देते हैं।

घ *अन्य लोकाचार*—समाज में प्रचलित आचारों को ही 'लोकाचार' की संज्ञा प्रदान की जाती है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति लौकिक आचारों का प्रसन्नता पूर्वक अथवा लौकिक मर्यादा की रक्षा के लिए विवशता के साथ निर्वाह करता है। अष्टछापी कवियों ने जिन लोकाचारों का वर्णन किया है, उनमें दो मुख्य हैं—एक है उपहार भेजना और दूसरा, शुभकामना करना।

अ *उपहार भेजना*—अष्टछापी कवियों ने राजाओं के उपहार के साथ साथ सामान्य जन की भी भेंट की चर्चा की है। गोपों के 'कमल' पुष्प लेकर आने पर कंस ने नंद के लिए उपहार में सिरोपाँव' (पाँचों कपड़े) भेजे थे[३८]। जन-साधारण में जब किसी मित्र अथवा संबंधी के घर कोई मिलने जाता था तो वह उपहार में कोई न कोई वस्तु अवश्य ले जाता था। सुदामा जब कृष्ण से मिलने गये तो दरिद्र होने पर भी उन्होंने इस प्रथा का पालन माँगे हुए कच्चे चावल ही भेंट में देकर किया था[३९]। इसके अतिरिक्त आनन्ददायी अवसरों पर भी उपहार भेजने की प्रथा प्रचलित थी। राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-जन्म होने पर देश-देश से टीका आया जिसमें रत्न, मणि आदि बहुमूल्य पदार्थ थे[४०]। पुरवासी भी अपनी सामर्थ्य के

अक्षत-अंकुर चारों ओर बिखरे हुए थे। घरों के प्रत्येक द्वार पर दही अक्षत फल जल से भरे हुए कलश उपहार की वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजा दिये गए थे'—प्रथम स्कंध अध्याय ११, पृ ६६।

३७ आदर बहुत कियौ कमलापति 'मर्दन करि अन्हवायौ'। 'चंदन अगर कुमकुमा केसर, परिमल अंग चढायौ'—सा ४२१२।

३८ दियो सिरपाँव नृपराय ने महर कौं', आपु पहिरावने सब दिखाए—सा ५८७।

३९ 'तंदुल माँगि बाँधि के लाई सो दीन्हों उपहार'—सारा १ ६।

४० रघुकुल प्रगटे हैं रघुबीर। 'देस-देस तैं टीको आयौ रतन कनक मनि हीर'—सा ६ १८।

अनुसार पान-फूल लेकर वसन्त के यहाँ जाते हैं[४१]।

आ *शुभकामना*—घर से बाहर जाते समय व्यक्ति की कुशल-मंगल की कामना से प्रेरित होकर दही और रोली का टीका लगाने की प्रथा लोक में प्रचलित थी। कृष्ण जब कंस के निमंत्रण पर मथुरा जाने लगते हैं तो माता सुपारी और रुपये देकर दधि और रोचन का तिलक लगाकर[४२] उनके प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करती हैं।

६ *विश्वास और मान्यताएँ*—

प्रत्येक जाति की संस्कृति का घनिष्ठतम संबंध उसमें प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं से रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जातीय जीवन के संगठन और नियंत्रण में विश्वासों और मान्यताओं का बड़ा हाथ रहता है। जिस जाति की संस्कृति का इतिहास जितना दीर्घकालीन होता है उसमें प्रचलित विश्वास और मान्यताएं भी उतनी ही विविध और बहुसंख्यक होती हैं। भारतवर्ष की आर्य जाति का सांस्कृतिक इतिहास दीर्घकाल व्यापी है, अतः भारतीय समाज में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं की संख्या स्वभावतया बहुत अधिक है। किसी भी युग की कथा लेकर काव्य-रचना करनेवाला भारतीय कवि यहाँ के समाज के विश्वासों और लोकमान्यताओं की ओर संकेत करने पर ही जातीय जीवन के यथार्थ चित्रण में सफल होता है। अष्टछापी कवियों के काव्य में भी इसी कारण भारतीय जन-समुदाय में प्रचलित विश्वासों और मान्यताओं का उल्लेख अनेक बार हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए उनकी रचनाओं में उल्लिखित विश्वासों और मान्यताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क. पौराणिक विश्वास, ख लोक विश्वास और मान्यताएँ एवं ग. कवि-प्रसिद्धियाँ।

क. *पौराणिक विश्वास*—भारतीय संस्कृति में पौराणिक विश्वासों का बड़ा महत्व है, क्योंकि वास्तव में पुराणों में ही उसका यथार्थ स्वरूप लक्षित होता है। अष्टछापी कवियों की पौराणिक विश्वास के प्रति पूर्ण आस्था रही है। उनके काव्य

४१ पान-फूल चोवा-चन्दन बहु उपहार लोग लै आय'—परमा १४।
४२ दधि रोचन को तिलक कियो सिर रूपा सहित सुपारी पाँच।
परमानँद-स्वामी चिरजीवहु तुम बिन लागहु ताती आँच—परमा ४५८।

में वर्णित विविध पौराणिक विश्वासों को स्थूल रूप से नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ. चौबीस अवतार आ परब्रह्म के अवतार राम, इ परब्रह्म के अवतार कृष्ण, ई राम-कृष्ण की एकता, उ परम शक्ति की अवतार सीता और राधा, ऊ. राम-कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना, ए. अन्य देवताओं-संबंधी पौराणिक प्रसंग ऐ. अन्य पौराणिक प्रसंग और ओ पौराणिक वृक्ष, पशु-पक्षी वाहन आदि।

अ चौबीस अवतार—'श्रीमद्भागवत' के अनुसार अगाध सरोवर से निकलनेवाली सहस्रों नालियों के समान ही भगवान के अवतार भी असंख्य हैं[४३]। 'सूरसागर' और 'सूर-सारावली में पृथ्वी के रज-कण और आकाश के नक्षत्रों के समान अवतारों की संख्या अगम्य बतायी गयी है[४४]। परंतु भारतीय मनीषी उनकी गणना का प्रयत्न बहुत पहले से करते आ रहे हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण' के प्रथम अध्याय में भगवान के बाइस अवतारों का उल्लेख हुआ है—सनकादिक, सूकर, नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध और कल्कि[४५]। अष्टछापी कवियों में सूरदास के अतिरिक्त किसी ने 'अवतारों' की संख्या का उल्लेख नहीं किया है। सूरदास ने अपरस उक्त अवतारों में से दस अवतार प्रमुख माने हैं—मच्छ कच्छ, बराह या सूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम राम, वासुदेव या कृष्ण, बुद्ध और कल्कि[४६]। इसी पद में उन्होंने चौदह अन्य

४३ अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः
—श्रीमद्भागवत, प्रथम स्कंध तृतीय अध्याय श्लो २६।

४४ क भूमि रेनु कोउ गनै नक्षत्रनि गनि समुझावै।
ऐसे धरे अवतार, अंत सोऊ नहिं पावै—सा २ ३६।

ख तब हरि धर्यौ जन्म मरे बहु भेद न पावैं पार।
भू की रज नभ के सब तारे जितने हैं अवतार—सारा ६ ६।

४५. 'श्रीमद्भागवत' तृतीय अध्याय, श्लोक ६ से २५ तक।

४६ मच्छ, कच्छ, बराह बहुरि नरसिंह रूप धरि।
बामन, बहुरो परसुराम, पुनि राम रूप करि।

अवतारों का भी उल्लेख किया है—सनकादिक, व्यास, हंस, नारायण, ऋषभदेव, नारद, धन्वंतरि, दत्तात्रेय, पृथु, यज्ञपुरुष, कपिल, मनु, हयग्रीव और ध्रुव[४७]। इस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' में 'मोहिनी' और 'बलराम' की गणना भी अवतारों में की गयी है परंतु सूरदास ने उनको हटाकर हंस, मनु, हयग्रीव और ध्रुव की अधिक चर्चा करके चौबीस अवतार-संबंधी भारतीय समाज का प्रसिद्ध पौराणिक विश्वास व्यक्त किया है।

आ परब्रह्म के अवतार राम—भगवान के दस प्रमुख अवतारों में राम की गणना सभी पुराणों में की गयी है। अष्टछापी कवियों ने भी उनको परब्रह्म का अवतार माना है। सूरदास ने 'भू-भार उतारने' के लिए राम का अवतरित होना बताया है[४८]।

इ *परब्रह्म के अवतार कृष्ण*—परब्रह्म के अवतार श्रीकृष्ण तो अष्टछापी कवियों के आराध्य ही हैं, अतएव उनके दिव्य गुणों के परिचायक विविध नामों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है। सूरदास ने 'सूरसागर' में उन्हें 'पूरन ब्रह्म' का अवतार माना है[४९] और उनके लिए असरण-सरण, 'अविगत',

वासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ—सा २ ३६।

४७ म दस हरि-अवतार कहे पुनि और चतुरदस।
भक्तवछल भगवान धरे तन भक्तनि कैं बस।
अज, अविनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ।
नट-वत करत कला सकल बूझै बिरला कोइ।
सनकादिक, पुनि व्यास, बहुरि भए हंस-रूप हरि।
पुनि नारायन, रिषभदेव नारद धनवंतरि।
दत्तात्रेय पृथु बहुरि यज्ञपुरुष-वपु धार।
कपिल मनु हयग्रीव पुनि कीन्हौ ध्रुव अवतार—सा २ ३६।

४८ क आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
ये भूभार उतारन कारन प्रगटे स्याम सरीर—सा ६ १६।

ख रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि 'प्रगटे भूतल महियाँ'।
आए ओप देन रघुकुल कौं आनँद-निधि सब कहियाँ—सा ६ १९।

४९ आदि सनातन हरि अविनासी। सदा निरंतर घट-घट बासी।
'पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं'। चतुरानन सिव अंत न जानैं।
गुन-गुन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै—सा १ १।

'अविनासी', उदार-उदधि, करुणामय, करुणानिधान, कला निधान, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस, जगन्नाथ, जगपाल, 'ज्ञान-सिरोमनि', दीन-बंधु, दीनानाथ, पुरुषोत्तम, मधुसूदन, श्रीपति, सकल-गुन सागर, सुख-सागर आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो प्राय सभी पुराणों में परब्रह्म के लिए प्रयुक्त होते आये हैं[१]। 'सारावली' में भी इन्हें 'अविगत', आदि, अनंत, अनूपम, 'अलख' पुरुष, 'अविनासी', 'पूरनब्रह्म', पुरुषोत्तम आदि कहा गया है[२]। अष्टछाप के अन्य कवियों ने उनके लिए अंतर्यामी 'अविनासी' कमलाकांत, कमलापति, गोविंद, जगन्नाथ, त्रिभुवन पति 'दीनन-दुखहारी', परब्रह्म, पुरुषोत्तम, श्रीपति, सुखसागर आदि शब्दों का प्रयोग किया है[३]।

१. क 'अविगत' 'अविनासी', पुरुषोत्तम हरि [illegible] के ध्यान।
सचराचर कहा पार्थ जो देखे, तीनि लोक इक बान—सा १ २६६।
ख प्रभु को देखो एक सुभाइ।
अति गंभीर 'उदार-उदधि' हरि, 'ज्ञान सिरोमनि' राइ।
× × ×
भक्त-बिरह कातर 'करुनामय', डोलत पाछैं लागे—सा १-८।
ग. सूरदास करुनानिधान प्रभु, जुग-जुग भक्त बढ़ाए—सा १ ११।
घ 'कलानिधान' सकल गुन-सागर' गुरु धौं कहा पढ़ाए हो—सा १-७।
ङ बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
'जगतपिता जगदीस' 'जगतगुरु निज भक्तनि की सहत ढिठाई—सा १ १।
च जगन्नाथ धरनीधर' सूरज बलि जाई—सा १०-१६२।
छ. अब धौं कहौ, कौन दर जाऊँ।
तुम 'जगपाल चतुर चिंतामनि दीन-बंधु सुनि नाऊँ—सा १ १६५।
ज राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं कर-नख पर गोबर्धन धारी।
सूरदास प्रभु सब सुखसागर दीनानाथ मुकुंद मुरारी —सा १ २२।
झ. दीनबंधु' हरि भक्त-कृपानिधि बेद-पुराननि गाए (हो)—सा १-७।
ञ कंत सिधारो मधुसूदन' पै सुनियत हैं वे मीत तुम्हारे—सा ४२११।
ट सो 'श्रीपति जुग-जुग सुमिरन बस बद बिमल जस गावै।
'असरन-सरन' सूर जाँचत है को अब सुरति करावै—सा १ १७।
२. अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
'पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम' नित निज लोक बिलासी—सारा १।
३. क सूर प्रभु 'अंतर्यामी' व्यापक हिरदै बासि क्यों दीजै—परमा सौम चम्प ६।

कुंभनदास ने परब्रह्म के तीन रूपों, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तथा उनके कार्यों—उत्पत्ति, पालन और संहार—की बात कही है और यह तथ्य स्वयं कृष्ण अपने मुख से स्वीकार करते हैं[५३]। इसी पद में कुंभनदास के कृष्ण, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में अपनी ही ठकुराई होने की बात कहते हैं[५४]। 'सूरदास के नारद भी अपनी स्तुति में श्रीकृष्ण की सर्वश्रेष्ठता की स्पष्ट घोषणा करते हैं[५५]। वेदों ने भी उनके

क जद्यपि परब्रह्म 'अविनाशी महतारी बद माने—परमा सौम भाष्ट , ११।
ग आपर 'कमलाकांत हरे'—परमा , सौम भाष्ट १।
घ कही है 'कमलापति' की खोट—परमा , सौम भाष्ट , २।
ङ 'गोविंद करत मोहन मान—कृष्ण , सौम भाष्ट , १४।
च 'जगनाथ' मन मोह लियौ री—कृष्ण सौम भाष्ट ७।
छ. कमलापति 'त्रिभुवनपति नायक भुवन चतुर्दश नायक सोई।
—परमा सौम भाष्ट १४।
ज. परमानंद कल्पतरु 'दीनन दुखहारी'—परमा , सौम भाष्ट ६।
झ. बसुधा भार उतारन आयो 'परब्रह्म' बैकुंठ निवासी—परमा , सौम भाष्ट , १४।
ञ. कपट रूप छलिवे आयो 'पुरुषोत्तम' नहिं जान—छीत सौम भाष्ट १७।
ट परमानंद दास 'श्रीपति' जस अकम मले विचरावे—परमा सौम भाष्ट ६।
ठ. परमानंद स्वामी 'सुखसागर' बिन लई रति बौरि—परमा , सौम भाष्ट , २४।

५३ ब्रह्म-रूप उतपति करौं रुद्र-रूप संहार।
विष्णु-रूप रच्छा करौं सो मैं हौ नंदकुमार—कुंभन ९२।

५४ स्वर्ग मर्त्य पाताल सबै मेरी ठकुराई—कुंभन २१।

५५. प्रभु, तुव मर्म समुझि नहिं परे।
जग सिरजत पालत संहारत, पुनि क्यों बहुरि करे।
ज्यौं पानी मैं होत बुदबुदा पुनि ता माहिं समाइ।
त्यौंही सब जग प्रगटत तुम तैं, पुनि तुम माहिं विलाइ।
माया अगनि अगाध महाप्रभु, तरि न सकै तिहि कोइ।
नाम जहाज चढ़े जो कोऊ, तुव पद पहुँचे सोइ।
पापी नर तोरे तिमि प्रभु जू, नाहीं तासु निवाइ।
काठ उधारत पार होत ज्यौं नाम तुम्हारो ताइ।
पारस परसि होत ज्यौं कंचन लोहन्नौ मिटि जाइ।
त्यौं अज्ञानी ज्ञानहिं पावत नाम तुम्हारो गाइ।
अमर होत ज्यौं संतत नाम, रटत सदा गुन गाइ।
यातैं होत अधिक सुर मगलनि चरन कमल चित लाइ।

सर्वव्यापी और अंतर्यामी रूप की वंदना की है[५६]। सूरदास के एक पद में हरि के विराट रूप की आरती का वर्णन करके अनंत ब्रह्मांड में व्याप्त उनके 'विराटत्व' की ओर संकेत किया गया है[५७]।

ई *राम और कृष्ण की एकता*—अष्टछाप के कवि परब्रह्म श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानते हुए भी राम और कृष्ण की एकता में आस्था रखते हैं। सूरदास ने एक पद में इसकी चर्चा बड़े विस्तार से की है। इंद्रादि देवता पद के एक चरण में राम की और दूसरे में कृष्ण की स्तुति इस प्रकार करते हैं —

जै गोविंद माधव मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
प्रनत पाल केसव कमलापति। कृष्न कमल लोचन अगतिनि-गति।
रामचंद्र राजीव-नैन बर। सरन साधु श्री पति सारँगधर।
बनमाली बामन बीठल बल। बासुदेव बासी ब्रज भूतल।
खर-दूषन त्रिसिरासुर खंडन चरन-चिह्न-दंडक भुव मंडन।

थावर जंगम सब तुम सुमिरत, सनक सनंदन ताहीं।
ब्रह्मा सिव अस्तुति न सकें करि मैं बपुरा केहि माहीं—सा ४१०२।

५६ नाथ तुम्हारी जोति प्रभास। करति सकल जग में परकास।
थावर जंगम जहँ लगि भए। जोति तुम्हारी चतन किए।
तुम सब ठौर सबनि ते न्यारे। को लखि सकै चरित्र तुम्हारे।
स्वयं प्रकाश तुम साक्षी सदा। जीव कर्म करि बंधन बँधा।
सर्वव्यापी तुम सब ठाहर। तुमहिं दूरि जानत नर बाहर।
तुम प्रभु सबके अंतरजामी। बिसरि रह्यौ जिय तुमकौं स्वामी—सा ४१ ।

५७ हरि जू की आरती बनी।
अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति डाँड़ी सहस फनी।
मही सराव सप्त सागर घृत बाती सैल घनी।
रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन हरति तिमिर रजनी।
उड़त फूल उड़गन नभ अंतर अंजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति सुर नर असुर अनी।
काल कर्म गुन ओर अंत नहिं प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर लोक सकल भजनी।
सूरदास सब प्रगट ध्यान मैं अति विचित्र सजनी—सा २-२८।

बकी दवन बक-बदन बिदारन। बच्छ बिग्रह नंद निस्तारन।
रिषि मख त्रान ताड़का तारक। बन बसि तात-बचन प्रतिपालक।
काली दवन कसि-कर-पावन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुभावन।
रघुपति प्रबल पिनाक बिभंजन। जगहित जनक-सुता मन रंजन।
गोकुलपति गिरिधर गुन सागर। गोपी रवन रास-रति नागर।
करुनामय कपि कुल हितकारी। बालि बिरोधि कपट मृग-हारी।
गुप्त गोप कन्या ब्रत पूरन। द्विज नारी दरसन दुख चूरन।
रावन कुंभकरन सिर छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन।
संख चूड़ चानूर सँहारन। सक्र कहै मम रच्छा कारन।
उत्तर क्रिया गीध की करी। दरसन दै सबरी उधरी।
जे पद सदा संभु हितकारी। जे पद परसि सुरसरी तारी।
जे पद रमा हृदय नहिं टारैं। जे पद तिहुँ भुवन प्रतिपारैं।
जे पद अहि-फन-फन-प्रतिचारी। जे पद बृन्दा बिपिन बिहारी।
जे पद सकटासुर संहारी। जे पद पांडव-गृह पग धारी।
जे पद-रज गौतम-तिय तारी। जे पद भक्तनि के सुखकारी।
सूरदास सुर जाँचत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद।[५८]

उक्त पद इस बात का प्रबल प्रमाण है कि उदारमना अष्टछापी कवि राम और कृष्ण की एकता में पूर्ण विश्वास रखते और दोनों को परब्रह्म का अवतार मानते थे। हिंदी के समस्त भक्ति-साहित्य में इस प्रकार के पद अधिक नहीं मिलेंगे।

उ *परमशक्ति की अवतार सीता और राधा की एकता*—राम और कृष्ण की एकता के समान ही सीता और राधा को भी अष्टछापी कवियों ने एक ही परमशक्ति का अवतार माना है। यही कारण है कि जिस प्रकार वे सीता को 'जगत-जननी' कहते हैं[५९] उसी प्रकार राधा को भी सेस-महेस-गनेस सुकादिक

५८. 'सूरसागर' दशम स्कंध पद ६८१।
५९. इहिं बिधि बन बस रघुराइ।
    जाति कै तुन भूमि सोवत द्रुमनि के फल खाइ।
    'जगत जननी' करी बारी मृगा चरि चरि जाइ—ना ६ ६।

नारदादि की स्वामिनी, जगत-जननी' आदि मानते हैं[१०] ।

उ *राम कृष्ण की लीलाएँ देखने देवताओं का आना*—परब्रह्म का अवतार होने के कारण राम और कृष्ण सभी देवताओं के पूज्य हैं अतएव उनकी लीलाएँ देखने के लिए देवता सदैव उपस्थित रहते हैं। राम-लक्ष्मण के विवाह में वे दुंदुभी बजाते हैं[११] और आकाश में 'व्योम विमानों' की भीर' हो जाती है[१२]। श्रीराम के धनुष तोड़ते ही अमरगण 'जयजय' ध्वनि करते हैं[१३]। इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण कालियनाग के नाथने में सफल होते हैं तब भी 'अमर' जयजय ध्वनि करके 'धन्य धन्य' कहते हैं[१४]। गोवर्द्धन-पूजा का कौतुक देखने के लिए भी देवगण आते हैं[१५] और 'जय' ध्वनि करके फूल बरसाते हैं[१६]। रासलीला का अद्भुत दृश्य देखकर तो देवगण के हर्ष की सीमा ही नहीं रहती। वे बार-बार फूल बरसाते, गोपी-ग्वाल और ब्रजजन को ही नहीं, बंसीवट, जमुनातट, लता-तमाल वृन्दावन,

१० नीलांबर पहिरे तनु भामिनि जनु घन दमकति दामिनि।
सेस महेस, गनेस सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि।
× × ×
रूप-रासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी।
'जग-नायक जगदीस पियारी जगत-जननि जगरानी।
नित बिहार गोपाल लाल-सँग वृन्दावन रजधानी।
अगतिनि की गति भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी भव-भय-हरनी, बेद पुरान बखानी—सा १ ५५।

११ सुर भयौ आनंद नृपति-मन दिवि दुन्दुभी बजाए'—सा ९-२४।

१२ देखत मुदित चरित्र सबै सुर 'व्योम विमाननि भीर'—सा ९ २६।

१३ जय जय धुनि मुनि करत अमरगन' नर नारी लवलीन—सा ९ २६।

१४ जय जय धुनि अमरनि नभ कीन्हौ।
धन्य-धन्य जगदीस गुसाईं अपनौ करि गहि लीन्हौ।
× × × ×
'अस्तुति करत अमर-गन बहुरे' गए आपनैं लोक—सा ५७९।

१५ कौतुक देखन देवता आए लोक बिसारि—सा० ८४१।

१६ 'अमर बिमान चढ़े नभ देखत' जै धुनि करि 'सुमननि बरखाई'—सा ८३६।

सभी को 'धन्य' कहते हैं[६७]। इस अवसर पर ये 'नीसान' भी बजाते हैं[६८]। शिव, शारद, नारद आदि भी 'धन्य धन्य' कहने में उनका साथ देते हैं[६९]। चतुर्भुजदास ने भी रासलीला के अवसर पर 'व्योम विमानों का मुग्ध और थकित' हो जाना कहा है[७०]। परमानन्ददास के अनुसार 'चाँप' के कौतूहल देखने के लिए देवता विमानों पर एकत्र होते हैं[७१]। केशी आदि दैत्यों के वध के अवसर पर भी देवतागण के 'पुहुप' बरसाने की बात अष्टछाप-काव्य में मिलती है[७२]।

इसी प्रकार राधा का अद्भुत सौन्दर्य और उनकी परम भावती लीलाएँ देखने के लिए रमा, उमा शची और अरुंधती प्रति दिन आती हैं[७३]। रासलीला के अवसर पर वो 'देव-ललना पति-गति बिसराकर' निहारती रह जाती हैं और उनसे अपने लोक लौटते नहीं बनता[७४]। इस अवसर पर उन्हें 'देव-वधू' होने का बड़ा दुख है और 'अमरपुर' को छोड़कर वृन्दावन में द्रुमलता होने का वरदान वे 'करता' से

६७ क 'सुरगन चढ़ि बिमान नभ देखत।
ललना सहित सुमनगन बरषत धन्य धन्य ब्रज लेखत।
धनि ब्रज-लोग धन्य ब्रज-बाला बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीबट धनि जमुनातट धनि धनि लता तमाल।
सब तैं धन्य धन्य वृन्दावन, जहाँ कृष्ण को बास।
धनि धनि सूरदास के स्वामी अद्भुत राच्यौ रास—सा १ ४४।
ख निरखि कुसुमगन बरसत सुरगन प्रेम मुदित जस गावैं—सा १ ४५।
६८. नैन सफल अब भए हमारे।
'देवलोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे—सा १ ४५।
६९. सिव-सारद-नारद मह भारत धनि-धनि नंद दुलारे—सा १ ४५।
७० क. चतुर्भुज प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि।
मोहे खग मृग बन 'थकित व्योम बिमान'—चतु।
ख चतुर्भुज प्रभु बन विलास; 'मोहे सब सुर आकास।
निरखि थक्यो चंद-रथहिं पच्छिम नहिं नाँचि—चतु १६।
७१. 'चढ़ि बिमान देवता गोकुल अमरावती बिसेरी।
परमानंद मोद कुतूहल जहाँ तहाँ अद्भुत छबि फैली—परमा, सोम अष्ट १५।
७२. 'पुहुप वृष्टि देवनि मिलि कीन्हीं, धानँद मोद बढ़ाए—सा १११६।
७३ रमा उमा अरु सची अरुन्धती दिन प्रति देखन आवैं—सा १०७५।
७४ 'सुर-ललना पति-गति बिसराए' एहीं निहारि निहारि।
जात न बनै देखि सुख हरि को, धाई लोक बिसारि—सा १ ४५।

माँगना चाहती हैं। ब्रज में 'दासी' जीवन बिताना भी उन्हें स्वर्ग की 'देवी' होने से श्रेष्ठ प्रतीत होता है[७५]। मन में इस प्रकार विचार करती 'अमर ललनागण' स्व-लोक बिसारकर 'चित्रकी'-सी रह जाती हैं[७६]।

ए *अन्य देवताओं संबंधी पौराणिक प्रसंग*—ब्रह्मा विष्णु और महेश, ये तीन देवता परब्रह्म के रूप कहे जाते हैं। इनमें से ब्रह्मा और महेश के संबंध में दो पौराणिक प्रसंग बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रथम है 'बाल-वत्स-हरण' प्रसंग जिसमें ब्रह्मा ब्रज के बाल-वत्सों का हरण करके ब्रह्मलोक पहुँचा देता है और परब्रह्म के अवतार कृष्ण उनकी पुनः सृष्टि करके उसका गर्व हरते हैं[७७]। ब्रह्मा यह नयी सृष्टि देखकर चकित होता, सुबुद्धि का उदय होने पर 'पुरुष-पुरान' को पहचानता, अपनी धृष्टता के लिए पश्चात्ताप करता और अपराध क्षमा कराने के लिए उनकी प्रार्थना करता है[७८]। अंत में माधव से वृन्दावन की रेणु ही कर देने की प्रार्थना करने पर उसे शंभि

७५. 'हमकों बिधि ब्रज-बधू न कीन्हीं, कहा अमरपुर बास भऐं'।
बार-बार पछिताति यहै कहि, सुख होतो हरि संग रहैं।
कहा जनम जो नहीं हमारो फिरि फिरि ब्रज अवतार भलो।
वृन्दावन द्रुम लता हूजिये करता सों माँगिये चलो।
यह कामना होइ क्यों पूरन दासी ह्वै ब्रज रहिये'।
सूरदास प्रभु अंतरजामी तिनहिं किना काहौं कहिये—सा १ ४१।
७६. धनि ब्रज-बास आस यह पूरन कैसैं होति हमारी।
'सूर अमर-ललना-गन चौंधर चित्रकी लोक बिसारी—सा १ ४७।
७७ क. बिधि मनही मन सोच परयौ।
गोकुल की रचना सब देखत अति जिय माहिं डरयौ—सा ४११।
ख बालक-बच्छ ब्रह्म हरि ले गयौ ताको गर्व नसायौ—सा ४८१।
ग. ब्रह्मा बालक-बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी मनसा तैं जु करे।
सोइ रूप ह्वै बालक गोसुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरस निसि-बासर रहि सँग काहु न जानि परे—सा ४८१।
७८.क. मैं तो जे हरे हैं ते तो सोवत परे हैं, ये करे हैं कौनैं आन अँगुरीनि दंत दै रह्यौ।
पुरुष पुरान आन किधौं चतुरानन कै सोई प्रभु पूरन प्रगट इहाँ ह्वै रह्यौ।
उठे दृगनि चाहे इत आये अपराध पाये सूर सुरलोक ब्रह्मलोक एक ह्वै रह्यौ।
विवश ह्वै हार मानी आपु आपी नकवानी देखि गोप मंडली कमंडली चित्रै रह्यौ।
सा ४८४।

मिलती है[७]।

दूसरा प्रसंग शिव के मोह का है। कामारि शिव भगवान से उस मोहिनी-रूप का दर्शन कराने का निवेदन करते हैं जिसे देखकर सागर-मंथन के समय सुर और असुर मोहित हो गये थे। समझाने पर भी जब वे नहीं माने तब भगवान ने मोहिनी-रूप धरकर दर्शन देने का वचन दिया। उमा सहित शिव वन में जाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय सूर्य चंद्र और चपला से भी अधिक कांतिवती ज्योति-स्वरूपिणी मोहिनी के दर्शन उनको हुए। उसे देखकर उमा तो मुग्ध हो ही गयीं, शिव भी इतने मोहित हुए कि लपककर उन्होंने उसे पकड़ लिया। तभी मोहिनी अपने को छुड़ाकर जब बड़े हाव-भाव से उनकी ओर देखती हुई भागी तभी कि कामातुर शिव का वीर्य स्खलित हो गया। उमा की उपस्थिति में अपनी यह दशा देखकर शिव बहुत लज्जित हुए और मन में पश्चाताप करने लगे कि मैंने यह क्या किया। तभी भगवान ने दर्शन देकर उन्हें सांत्वना दी[८]।

ख तब हरि हरयौ बिधि कौ गर्ब।
बच्छ-बालक लै गयौ धरि, दुरत कीन्हे सर्ब।
ब्रह्मलोक दुराइ आयौ चरित देखन आप।
'बच्छ-बालक देखि कै मन करत पस्चाताप।
तब गयौ बिधि लोक अपनैं दृष्टि कै फिरि आइ।
जानि त्रिभुवन अवतार पूरन परयौ पाइनि धाइ।
'बहुत मैं अपराध कीन्हौ छमा कीजै नाथ।'
जानि मैं यह नहीं कीन्हौं, जोरि कर्यौ दोउ हाथ।
बच्छ-बालक आनि सन्मुख, सरन सरन पुकारि।
सूर प्रभु के चरन गहि-गहि कहत दलि मुरारि—सा ४८५।

ग 'किनवै चतुरानन कर जोरे'।
तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू 'करै अस्तुति लट छोरे—सा० ४८८।

७९. 'माधौ मोहिं करौ बृन्दावन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन दिन-प्रति बन-बन चारत धेनु।
कहा भयौ यह देव-देह धरि, अरु ऊँचै पद पाएँ देनु।
सब जीवनि तैं उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हो सैनु।
हमतैं धन्य सदा वे लुन द्रुम बालक-बच्छ-बिषानउड बेनु।
सूर स्याम जिनकैं सँग डोलत, हँसि बोलत, मधि पीवत फेनु—सा ४८६।

८ 'धाइ तुषि मोहिनी की सदासिव घाले' अइ भगवान सौं कहि सुनाई।

भगवान के इन दोनों रूपों के अतिरिक्त, पौराणिक विश्वास के अनुसार, गोवर्द्धन-पूजा के प्रसंग में देवराज इंद्र का अभिमान नष्ट होने की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मिलती है। ब्रह्मा और शिव से संबंधित उक्त पौराणिक प्रसंगों के प्रति तो सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने अधिक रुचि नहीं दिखायी है, परंतु इंद्र की पराजय की चर्चा प्राय सबने विस्तार से की है। मन ही मन श्रीकृष्ण की महिमा का गान करता हुआ इंद्र अपनी धृष्टता पर अत्यंत लज्जित होकर उनकी शरण आता है ।

असुर अमिरेंहि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई।
हरि कह्यौ 'ब्रह्म व्यापक निराकार सौं मगन तुम सगुन लै कहा करिहौ ?
पुनि कह्यौ 'विनय मम मानि लीजै प्रभो उमा देखन चहति कृपा करिहौ'।
हँसि कह्यौ 'तुम्हैं दिखराइहौं रूप वह करौ बिस्राम इस ठौर जाई'।
बैठि एकांत चिंतन लगे पंच सिव, मोहिनी रूप कब दे दिखाई।
ह्वै अंतरध्यान हरि 'मोहिनी रूप धरि आइ बन माहिं दीन्हैं दिखाई।
सूर-ससि कियौ चपला परम सुंदरी, अंग-भूषननि छवि कहि न जाई।
हास भव भाव करि चलत चितवत चलै, कौन ऐसौ जो मोहित न होवै।
'उमा कौं छाँड़ि भव धारि मृगचर्म कौं आइकै निकट रहे ख्याल जोवै'।
भव कौं देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अंचल ग्रहि तब अधिक मोह्यौ।
उमाहू देखि पुनि ताहि मोहित भई तासु सम रूप आपनौ न जोह्यौ।
भव तजि धीर तब जाइ ताकौं गह्यौ सो चली आपु कौं तब छुड़ाई'।
'भव भये बीर्ज खसि कै परयौ धरनि पर मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई'।
देखिकै उमा कौं भव लज्जित भए, कह्यौ मैं कौन यह काम कीनौ।
इंद्रजित हौं अजावत दुखी आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ लीनौ।
चतुर्भुज रूप धरि आइ दरसन दियौ कह्यौ, सिव सोच दीजै बिहाई।
सम तुम्हारे नहीं दूसरौ जगत मैं, कह्यौ तुम रूप तब दियौ दिखाई।
—सा ८-१ ।

८१ क. बरजन गए जो हरि सु हौर।
ये करता येई हैं हरता अब न रहौं मुख गोइ।
ब्रह्म अवतार कह्यौ है श्रीमुख तौ करत बिहार।
पूरन ब्रह्म सनातन येई, मैं भूल्यौ संसार।
उनके आगैं आयौ पूजा ज्यौं मनि दीप प्रकास।
रवि आगैं खद्योत उजारी चंदन संग कुबास।

ए अन्य पौराणिक प्रसंग—इस वर्ग में पृथ्वी का कच्छप और शेषनाग पर स्थित होना,[८२] प्रलय,[८३] उससे संबंधित अक्षय वट जिसका नाश 'प्रलय'-काल में

'कोटि इंद्र छिनहीं में रार्चें, छिन में करैं बिनास'।
'सूर रच्यौ उनहीं कौ सुरपति, मैं भूल्यौ तिहिं आस'—सा १७४।

ख प्रगट भए ब्रज त्रिभुवन राइ।
जुग-जुग रीति त्रिगुन बुधि व्यापी, 'सरन परयौ सुरपति अकुलाइ'—सा १७५।

ग. सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत।
अमरा-सिव-रवि-ससि-चतुरानन हय-गय बसह-हंस मृग जावत।
धर्मराज बनराज अनल दिव सारद नारद सिव-सुत भावत—सा १७६।

घ सुरपति चरनु परयौ गहि धाइ।
जुग जुग भोइ सेस-जुन मान्यौ आयौ सरन राखि सरनाइ—सा १७७।

ङ अब न छाँडौं चरन-कमल-महिमा मैं जानी।
सुरपति मेरो नाम धरयो लोक लोक अभिमानी—परमा २८३।

च. छाँड्यौ सब अभिमान अमरपति अपना बिगार जिय बिचारयौ।
कुंभनदास प्रभु सैल-धरन के आइ परयौ पाइनु हारयौ—कुंमन ५६।

छ. चतुर्भुज प्रभु गिरिधारी ब्रज राखि लियौ
इंद्र सिसाइ आइ परयो चरननि तर—चतु ४८।

ज. मेरी बड़ी घात ब्रज पर ते सचि-पति भयौ गिलानी।
कामधेनु आगे करि आयो ऐसो बड़ो अग्यानी।
पाँइ परयो कर जोरि कैं बिनती मैं महिमा नहिं जान्यो।
करौऽभिषेक गोबिंद ऐरावत कर गंगा जल आन्यौ—गोविं १७।

झ. स सुरपति मैंग कामधेनु को करि अभिषेक प्रभु पाँइ परयौ—गोविं ७८।

८२.क. हरि जू की आरती बनी।
× × ×
कच्छप अध आसन अनूप अति डाँडी सहसफनी—सा २२८।

ख गयो दुरि रनुमंत तब सिंधु पार।
सब के सीस लाग कमठ-पीठि सौं, धँसे गिरिवर सबै तासु भारा—सा ६-७६।

८३ चतुरमुख कह्यौ संग चतुर स्तुति लै यही मारकत कही 'परमे प्रियावो।
× × × ×
सातवैं निय प्रियासहौ 'अनत तौरि मन रिरि मार मैं बैठि आवैं।
—सा ८-१६।

भी नहीं होता।[८४] चंद्रमा का राहु द्वारा ग्रसा जाना,[८५] सागर-पुत्र होने के कारण पूर्ण चंद्र को देखकर सिंधु की लहरों का बढ़ना, चंद्रमा के रथ में मृगों का जुता होना,[८६] अमृत का देवेन्द्र के पास होना और उसकी वर्षा से लंका-युद्ध के मृतक भालु-कपियों तथा राम पक्ष के अन्य वीरों का जी उठना[८७] आदि ये पौराणिक प्रसंग आते हैं जिनका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विशेष रूप से किया है।

किन्नर, गंधर्व, विद्याधर आदि देवजातियों का राम-कृष्ण की लीलाओं से प्रसन्नता प्रकट करने और फूल बरसाने का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों के पौराणिक विश्वास से संबंध रखता है। लंका के युद्ध के पश्चात् अमृत-वर्षा से मृतकों के जी उठने पर 'गंधर्वगण' 'जय-जय' ध्वनि उचारते हैं । कृष्ण-जन्म के अवसर पर

---

८४ क कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।

×   ×   ×

सिव सोचत विधि बुधि बिचारत बट बाढ़यौ सागर जल मेलत।
बिडरि चले 'घन प्रलय जानि' कै, दिगपति दिग दंतीनि सकेलत।
मुनि मन भीत भए भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत—सा १०—६३।

ख चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।

×   ×   ×

उछरत सिंधु, धराधर काँपत कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ़यौ वृच्छ बट सुर अकुलाने गगन भयौ उतपात।
'महा प्रलय के मेघ' उठे करि जहाँ तहाँ आघात—सा १० ६४।

ग महा प्रलय' हमरे जल बरसैं गगन रहै भरि छाइ।
कहै वृच्छ बट बचत निरंतर जब ब्रज गोकुल गाइ—सा ८५४।

८५ बारंबार बिसूरि सूर प्रभु जपत नाम रघुनाहु।
ऐसी भाँति जानकी देखी 'चंद्र ग्रस्यौ ज्यौं राहु—सा ९-७५।

८६ पूरि करहि बीना कर धरिबौ।
'रथ थाक्यौ मानो मृग मोहे, नाहिंन होत चंद्र कौ ढरिबौ —सा ११५७।

८७ सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले।
'अमृत की वृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमिय भंडार खोले।
उठे कपि भालु ततकाल जै-जै करत असुर भए मुक्त, रघुबर निहारे।
—सा ९ १६१।

८८ सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परति सिद्ध गंधर्व जै जै उचारे—सा ९ १६१।

देवता जब आकाश में दुंदुभी बजाते हैं तब विद्याधर, किन्नर और गंधर्व अपनी प्रसन्नता नाच-गाकर प्रकट करते हैं[८]। श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन-लीला के अवसर पर भी गंधर्वादि मुग्ध हो 'धन्य-धन्य' कहते हैं[९]। रासलीला के अवसर पर भी किन्नरों की 'जय जय' ध्वनि अष्टछापी कवियों को सुनायी देती है[११]।

'आकाशवाणी' और 'अनाहतवाणी' का उल्लेख भी अष्टछाप-काव्य में हुआ है जो भारतीय समाज के तत्संबंधी पौराणिक विश्वास का ही परिचायक है। अशोक-वाटिका में सीता को न पहचानने पर हनुमान जब चिंतित बैठे हैं तब 'आकाशवाणी' से उन्हें सुनायी देता है कि सीता तुम्हारे सामने है, उन्हें 'जुहार' करो[१२]। इसी प्रकार कंस जब बड़े उत्साह से बहन देवकी का विवाह करके वसुदेव को बहुत दायज देकर विदा करने को प्रस्तुत होता है तभी 'अनाहतवानी' से उसे सूचना मिलती है कि इसकी 'कोखि' से उत्पन्न पुत्र तेरे प्राण हरेगा[१३]।

ओ *पौराणिक पशु पक्षी तथा वाहन सर्प आदि*—पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत वे पशु पक्षी, पशु-वाहन सर्प आदि आते हैं जिनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में स्फुट रूप से अथवा देव-वर्ग से संबंधित करके हुआ है। इनमें से उच्चैःश्रवा चतुर्दंत ऐरावत, कामधेनु अथवा सुरधेनु, गरुड़ तक्षक, वासुकि और कल्पद्रुम की

८ आनंदे आनंद बढ्यौ अति।
देवनि दिवि दुन्दुभी बजाई सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
'विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति'।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचति सब सुर नारि रसिक अति—सा १०-५।

९ देखि चकित 'गनगंधर्व सुर मुनि।
धन्य नंद की सहज पुरातन 'धन्य सही' कहि जै-जै जै धुनि'।
धन्य-धन्य गोवर्धन पर्वत करत प्रसंसा सुर-मुनि पुनि-पुनि—सा ८७९।

११ क जै जै धुनि किन्नर मुनि गावत निरखत भोग बिसारे—सा १ ७५।
ख मुनि किन्नर जय ध्वनि करैं—सा ११८।

१२. सीय लागी करन पद की जननी ये कोऊ और नाहिं नहि सिंगारा।
सूर आकासबानी भई तबै तहँ यहै देखि ई कर जुहार'—सा ९-७९।

१३ क समदत भई अनाहतबानी कंस-कान झनकारा।
'याकी कोखि औतरै जो सुत करै प्रान परिहारा—सा १०-४।
ख बानी भई गगन में गूढ़ 'रे रे कंस' महा मति मूढ़।
जाकौ तू भतौ मान है जेता अठौं गर्भ तु मरा ऐसा—नंद, दशम १ २ २।

चर्चा पीछे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त अष्टसिद्धि और नवनिधि[१४] तथा चिंतामणि[१५] की चर्चा भी पौराणिक विश्वासों के अंतर्गत ही मानी जानी चाहिए। देव-वाहनों के नाम गोवर्द्धन-प्रसंग में उद्धृत सूरदास के एक पद में पीछे दिये जा चुके हैं।

ख *लोक-मान्यताएँ और सामान्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातें मुख्यतः पाँच उपशीर्षकों में विभाजित की जा सकती हैं—अ परंपरागत मान्यताएँ, आ उपचार संबंधी विश्वास इ शकुन, ई अपशकुन और उ अन्य विश्वास।

अ *परंपरागत मान्यताएँ*—समाज-विशेष में प्रचलित वे बातें 'परंपरागत मान्यताएँ' मानी जाती हैं जिनकी सत्यता का अनुभव मानव-जाति परंपरा से करती आयी है। ऐसी मान्यताओं की पुष्टि पूर्व युगों के विविध ग्रंथों से तो होती ही है, परिवार या समाज के बड़े-बूढ़े भी अनेक आख्यानों-उपाख्यानों के द्वारा उनके प्रति विश्वास रखने की प्रेरणा दिया करते हैं। शताब्दियों तक प्रचलित रहने के कारण ऐसी मान्यताएं किसी देश या समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं। भारतीय संस्कृति से संबंधित जिन परंपरागत मान्यताओं का वर्णन अष्टछाप-काव्य में मिलता है, उनमें छह मुख्य हैं—१ भाग्यवाद २. कर्मवाद, ३ पुनर्जन्मवाद, ४ ज्योतिष के प्रति मान्यता ५. स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास और ६ भूत-प्रेतादि में विश्वास।

१ *भाग्यवाद*—अपनी शक्ति के सीमित होने का अनुभव मानव अपनी सृष्टि के आदि से ही करता आया है। अपनी अनेकानेक योजनाओं के क्षणमात्र में ही नष्ट हो जाने की निराशा भी जीवन में अनेक बार उसने अनुभव की है। इसी प्रकार असंभावित और अयाचित घटनाओं और कार्यों को प्रत्यक्षतः घटित और

१४.क द्वार दुआरनि फिरति 'अष्टसिधि' औरनि सखिया भीतनि 'नवनिधि'।
—सा १०-११।

ख मागध मंगन जन सेवत मन भाए के।
'अष्ट सिद्धि नवौ निद्धि' आगे ठाढ़ी आइकै—सा १ ६२।

१५.क कामधेनु 'चिंतामनि', दीन्हौ कल्पवृच्छ तर छाँडै—सा १ १६४।

ख अनुदिन सुर-तरु पंच सुधा रस 'चिंतामनि' सुर-धेनु—सा ४८७।

संपादित होते भी उसने देखा है। इन सब बातों से मनुष्य का विश्वास 'भाग्यवाद' के प्रति सनातनकाल से दृढ़ होता आया है और भारतीय संस्कृति का तो यह परंपरा से प्रमुख अंग रहा है। 'भाग्यवाद' के मूल में जहाँ अपनी शक्ति के सीमित होने का विश्वास निहित है, वहीं दैव की अपरिमित सामर्थ्य के प्रति आस्था भी है। अतएव भारतीयों का सदा से यह विश्वास रहा है कि सृष्टि का प्रत्येक कार्य पूर्व निर्दिष्ट भाग्य-विधान के अनुसार ही होता है उसमें परिवर्तन लाना मानव की क्षमता के बाहर की बात है।

अष्टछाप काव्य में 'भाग्यवाद' के समर्थन में अनेक उक्तियाँ मिलती हैं जो भारतीय समाज की तत्संबंधी परंपरागत मान्यता ही सूचित करती हैं। सूरदास के अनुसार संसार में वही होता है जो गोपाल करना चाहते हैं। दुख-सुख, हानि लाभ, सब कुछ उन्हीं की देन है; उनमें व्यक्ति का पुरुषार्थ मानना भूल है और ईश्वर की इच्छा के विपरीत कार्य करने में मनुष्य के साधन, जंत्र-मंत्र, उद्यम बल, सब व्यर्थ ही सिद्ध होते हैं[९६]। सामान्य मनुष्य ही नहीं; सिद्ध साधक, मुनि आदि भी 'रघुनाथ' के निश्चित कार्य को घटा-बढ़ा नहीं सकते[९७] और 'होनी' होकर ही रहती है[९८]।

'भाग्यवाद' के प्रति ऐसी आस्था रखने के मूल में दो उपयोगी भाव हैं। पहली बात तो यह है कि किसी कार्य या योजना में सफल होने पर व्यक्ति उस सफलता को भाग्य की देन समझता है, उसका श्रेय स्वयं न लेने से वह उस गर्व से बचा रहता है, जो उसके परमाराध्य को जरा भी नहीं भाता । दूसरी बात यह कि किसी योजना के पूरी न होने पर असफलता की स्थिति में हृदय पर जो

९६ 'करी गोपाल की सब होइ'।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत अति झूठौ है सोइ।
साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल ये सब डारौ धोइ।
'जो कछु लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोइ'।
दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम कतहिं मरत हौ रोइ—सा १-२६२।

९७ होत सो जो रघुनाथ ठटै'।
पचि-पचि रहैं सिद्ध साधक, मुनि तऊ न बढ़ै घटै—सा १-२६१।

९८ 'भावी काहू सौं न टरै'—सा १-२६४।

९९ गरब गोबिंदहिं भावत नाहीं—सा २-२१।

भयंकर आघात होता है, उसको किसी सीमा तक सहन करने की शक्ति भी 'भाग्यवाद' पर विश्वास से मिलती है जिसके फलस्वरूप मानवीय ही नहीं, दैवी आपत्तियाँ तक व्यक्ति सहज ही सहन कर लेता है। वालि की असंभावित मृत्यु पर जब उसका पुत्र अंगद बहुत दुखी होता है तब उसको धीरज बँधाते हुए सूरदास के राम कहते हैं कि 'होनी' बड़ी प्रबल होती है, उसको मिटाया नहीं जा सकता° । अशोकवाटिका में दुःखिनी सीता के प्रति 'निसिचरी' का भी कथन है कि 'बिधि-सँजोग टारे नहीं टरता' नहीं तो जनक-जैसे राजा की पुत्री होकर तुम वन के कष्ट क्यों भोगती[1] ?

गोविंदस्वामी के कृष्ण सुरपति की पूजा का प्रसंग चलाये जाने पर पिता नंद तथा अन्यान्य व्रजवासियों को समझाते हैं कि जो तुम्हारे कर्म में लिखा है, वही मिलेगा सुरपति तुम्हें आकर और क्या दे देगा ? सूरदास की गोपियाँ भी दुख-सुख कीर्ति आदि को 'भाग्य' की देन समझकर ही स्वीकार करने को कहती हैं[3]। कंस के बंदीगृह में अपने सात मृतक पुत्रों के साथ-साथ, चोरी-छिपे गोकुल पहुँचकर माता-पिता की छत्रछाया से बिछुड़कर जीवित रह सकनेवाले आठवें पुत्र कृष्ण को याद करके देवकी जब बहुत दुखी होने लगती है तब वसुदेव सुख-दुख को भाग्य की देन समझने की बात कह कर उसे धैर्य देते हैं[4]। गोस्वामी तुलसीदास के वसिष्ठ भी भरत को समझाते हुए 'हानि-लाभ जीवन-मरन जस-अपजस' का विधि के हाथ में ही होना कहकर धीरज देते हैं[5]। इसी प्रकार कंस के मारे जाने के पश्चात् देवकी जब बारह वर्ष के पुत्र श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर बिलखती है कि मैंने

° पुनि अंगद कौं सोचि बिग मा बिधि समुझायौ।
'होनहार सो होत है नहिं जात मिटायौ'—सा ९-७१।

१ मेरो पिता को जनक जनकी, कीरति कहीं बखानि।
बिधि-संजोग टरत नहिं टारें' बन दुख देखति आनि—सा ९-७७।

२. कर्म लिखी सो पुनि है दै सुरपति आइ कहा तुम देहै—गोवि ७।

३ सुख-दुख कीरति भाग आपनैं आइ परै सो गहिए—सा १-५२।

४ पहै कहत वसुदेव—प्रिया जनि रोवहु हो।
भाग्य लिखत सुख दुख सकल जनि खोवहु हो'—सा १०९।

५. सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि-लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ—मानस, अयो, १७१।

गोद में नहीं खिलाया, तब कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कि भाग्य का लिखा कोई मेट नहीं सकता[६]।

२ कर्मवाद—प्राणी के जीवन में दुख-सुख, हानि-लाभ आदि का जो क्रम चला करता है उसके कारण सामान्यतया प्रत्यक्ष नहीं होते। ऐसी स्थिति में 'भाग्यवाद' का आश्रय लेने पर व्यक्ति को उत्तर तो मिल जाता है, परंतु यह उसके लिए अधिक उपयोगी नहीं होता। इस कारण भारतीय मनीषियों ने दुख-सुख, हानि-लाभ आदि को प्राणी के पाप-पुण्य का परिणाम बताकर[७] दोहरे उद्देश्य की सिद्धि का प्रयत्न किया है। पहला उद्देश्य तो यह है कि जब दुख, हानि आदि से बचा नहीं जा सकता, तब प्राणी उनके प्रति तिरस्कार की भावना रखते हुए भी उन्हें अपने ही कुकृत्यों का कुफल मानकर, और दूसरों के प्रति उपालंभ या खिन्नता का भाव न रखकर, भोगने को प्रवृत्त हो। दूसरी बात यह कि दुख, हानि आदि का एक बार कष्टदायी अनुभव करने के पश्चात् भविष्य में अपने कृत्यों को सुधारने के लिए भी वह प्रयत्नशील रहे जिससे सामाजिक जीवन अधिक सुख और शांतिमय हो सके अस्तु। अष्टछापी कवियों की भी इस कर्मवाद के प्रति पूरी आस्था रही है और वे भी यह मानते हैं कि जैसा बोया जायगा, वैसा ही काटना होगा बबूल बोकर दाख फल की आशा करना अपनी मूर्खता का ही परिचय देना है।

यदि हानिकारिणी बातों को करने के लिए अपनी परवशता के कारण किसी को विवश होना पड़ता है, अथवा अनायास ही कोई ऐसी विपत्ति व्यक्ति पर पड़ जाती है जिसके कारण उसकी सर्वस्व-हानि होती है, तब भी वह अपने पुण्य कर्मों के क्षीण हो जाने अथवा पापों के उदय होने की ही बात कहता है।

६ बार बार देवै कहे गोद खिलाए नाहि।
द्वादस बरस कहाँ रह मातु पिता बसि आहि।
पुनि पुनि सोचत कृष्ण लिखो मटै नहिं कोई'—सा १ ६ ।

७ 'पाप पुण्य को फल सुख-दुख है'—सा १ १५१।

८ अब कैसैं पैयत सुख माँगि।
जैसोइ बोइये तैसोइ लुनिए, कर्मन भोग अभाग।
बोवत बबुर दाख फल चाहत जोवत है फल लाग—सा १-५१।

कंस के भेजे हुए अक्रूर जब बलराम और कृष्ण को मथुरा लिवा जाने को आते हैं तब विलाप करती हुई यशोदा अपने पूर्व कर्मों के 'तिरछे' हो जाने अर्थात् पापों के उदय होने की बात कहती है[१] ।

किसी असाधारण कष्ट के पड़ने पर भारतीय जन-समाज का ध्यान दैव या ईश्वर को दोष देने की ओर न जाकर सदैव अपने पापों की ओर जाता है। सूरदास के वसुदेव-देवकी जब-जब कंस द्वारा अपने सात पुत्रों के मारे जाने और आठवें अर्थात् कृष्ण को चोरी से भगाकर बचाने की बात सोचते हैं, तब-तब उनका ध्यान अपने 'पापों' की ओर ही जाता है[१] । किसी कष्ट या विपत्ति से मुक्ति पाने पर भी भारतीय जन-समाज उसे पूर्व पुण्यों का ही सुफल समझता है। सूरदास के नंद जब वरुणपाश से मुक्त होकर सकुशल घर लौटते हैं तब यशोदा स्पष्ट शब्दों में कहती है कि पूर्व पुण्यों से ही तुम इस प्रकार सकुशल लौट सके हो[११] । कृष्ण के ब्रजवास-काल में गोपियों को बहुत सुख मिला और उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं। वैसा असाधारण रूप से सुखी जीवन बिताने और श्रीकृष्ण द्वारा अपनाये जाने का कारण परमानंददास की गोपियाँ अपने पूर्व जन्मों के सुकर्मों को ही मानती हैं[१२] । 'कर्मवाद' से संबंधित व्यक्ति की यह धारणा निश्चित हो जाती है कि मुझको अपने भले-बुरे कर्मों का सुफल या कुफल स्वयं ही भोगना होगा मेरा कोई प्रियजन या आत्मीय इच्छा रखते हुए भी उसमें भाग नहीं बटा सकता[१३] । अतएव व्यक्ति को पिछले पापों का कुफल स्वयं भोगने के पश्चात् अपने भावी कर्म सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए[१४] ।

१ यह अक्रूर क्रूर कृत रचिकै, तुमहिं लेन है आयो।
तिरछे भए करम कृत पहिले', बिधि यह ठाट बनायौ—सा ३९७५।

१ दिए लाचन वारि नारि पति परस्पर 'कहा हम पाप करि जनम लीन्हौ'।
सात देखत बधे एक दुरि ब्रज बच्यो इते पर बाँधि हम पंगु कीन्हौं—सा ३०८८

११ 'अब तौ सुफल परी पुन्यनि हैं' सा ९२५।

१२ 'पूरब संचित सुकृत राशि फल श्रीपति बाँह गही'—परमा ११६।

१३ 'अपने करम भागी नहीं जो त्रिभुवन मानी।
परमानंद अंतर दसा क्या जीवन जानी—परमा ८७।

१४ 'पहिले कर्म समुद्रत नाहीं करत नहीं कछु लाग'—सा १-६१।

३ पुनर्जन्मवाद—भारतीय समाज की तीसरी मान्यता है पुनर्जन्म की। चौरासी लाख योनियाँ हमारे यहाँ मानी गयी हैं जिनमें से अनेक में अपने कर्मानुसार भटकने के पश्चात् जीव को सर्वश्रेष्ठ मानव योनि प्राप्त होती है। अष्टछापी कवियों ने भी कभी तो जल, थल आकाश की अनेक योनियों में भटकने की बात स्पष्ट रूप से लिखी है[१५] और कभी 'कोतिक जनम' जैसे पदों का प्रयोग करके[१६] 'पुनर्जन्मवाद' के प्रति अपनी आस्था का प्रमाण दिया है।

४ ज्योतिष के प्रति आस्था—ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक शुभ कार्य अथवा संस्कार आदि के लिए गुणी गणक या ज्योतिषी को बुलाकर शुभ मुहूर्त आदि जानने का प्रयत्न भारतीय समाज में सदा से होता आया है। सूरदास ने कृष्ण के 'अन्नप्राशन' के अवसर पर 'सुदिन' सोधे जाने और परमानंददास ने कनछेदन के अवसर पर 'दोष-रहित मुहूर्त' निकलवाये जाने का जो उल्लेख किया है, वह इसी विश्वास का परिचायक है[१७]। इस प्रकार के अन्य उदाहरण 'संस्कार'-वर्णन के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं।

१५.क जिहिं जिहिं जोनि जन्म धार्यौ बहु जोर्यौ अघ की भार—सा १-९८।
ख 'जिहिं जिहिं जोनि' फिरयौ संकट-बस तिहिं तिहिं यहै कमायौ—सा १ १११।
ग माधौ जू मोहिं काहे की लाज।
'जनम जनम' यौं ही भरमायौ, अभिमानी बेकाज।
'जल-थल जीव जिते जग जीवन निरखि दुखित भए देव—सा १ १५।
घ कोटिक कला काछि दिखराई 'जल-थल सुधि नहिं' काल—सा १ १५३।
१६.क. किते दिन हरि सुमिरन बिनु खोए।
परनिंदा रसना के रस करि 'केतिक जनम' बिगोए—सा १ ५२।
ख 'नहिं अस जनम बारंबार'।
पुरबलौ धौं पुन्य प्रगट्यौ लह्यौ नर अवतार—सा १-८८।
ग 'जौ तन दियौ ताहि बिसरायौ ऐसौ नौन हरामी—सा १ १४८।
घ ऐसैं करत 'अनेक जन्म गए' मन संतोष न पायौ— १५४।
१७ कान्ह-कुँवर की करहु पासनी कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।
'बिप्र बुलाइ' नाम लै बूझ्यौ 'रासि सोधि इक सुदिन धरयौ'।
'आछौ दिन' सुनि महरि जसोदा सखिनि बोलि सुभ गान करयौ—सा १०-८८।
१८. गोपाल के बेध करन की कीजै।

५. *स्वस्तिवाचन के प्रति विश्वास*—प्रायः प्रत्येक शुभ कार्य का आरंभ 'स्वस्ति-वाचन' आदि के पश्चात् करना भारतीय समाज में मान्य रहा है। 'सारावली' में शिशु कृष्ण के प्रथम बार करवट लेने पर माता रोहिणी विप्र बुलाकर 'स्वस्ति-वाचन' कराती हैं[१९] और नंददास के नंद जी 'नामकरण' संस्कार के पूर्व 'स्वस्ति-वाचन' कर लेने का अनुरोध करते हैं[२०]।

६. *भूत-प्रेतादि के प्रति विश्वास*—भूत-प्रेत के अस्तित्व पर भी भारतीय समाज के कुछ भाग का विश्वास है, यद्यपि शिक्षित वर्ग वैसा मानने को प्रस्तुत नहीं है। जो हो, मानव की मृत्यु के पश्चात् यदि उसका अंत्येष्टि संस्कार न हो तो, सामान्य जन-विश्वास के अनुसार वह 'भूत' बन जाता है। सूरदास ने एक पद में इस विश्वास की ओर संकेत भी किया है[२१]। दूध-जैसी सफेद चीज खाकर जाने पर भूतादि की छाया जल्दी पड़ जाने का विश्वास भी स्त्रियाँ करती हैं। इसी से शव-यात्रा से लौट कर आज भी दूध-दही-जैसी सफेद चीजें खाने से मना किया जाता है। नंददास की रूपमंजरी को मूर्छित देख कर सखियाँ उस पर 'किसी की छाया पड़ जाने की बात' कहती हैं, क्योंकि वह घर से 'दूध-भात' खाकर आयी थी[२२]। इसी प्रसंग में भूतों के 'भूतों' का भी विनाश करनेवाले श्रीकृष्ण की चर्चा से

'गुरुजन विधिवत नक्षत्र वार बलि सुभ घरी विचार लीजै'।
गनिक निपुन है-चारि बैठिकै भली बिचारयो नीकौ।
सूरदास यामें दोसरहित सुलसागर है जी कौ—परमा ५१।

१९. एक दिना हरि लई करौंटी सुनि हरषी नँदरानी।
'विप्र बुलाय स्वस्तिवाचन करि' रोहिनि नैन सिरानी—सारा ४२१।

२०. 'तनक स्वस्ति-वाचन करि लीजै तरिकन कछू नाउँ धरि दीजै।
—नंद, दशम पृ २२६।

२१. जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहै।
× × ×
घर के कहत, 'सवारे काढ़ौ भूत होय धरि खैहै'—सा १-८६।

२२. फिरि गये नैन मूरछा आई, सहचरि दौरि कै कंठ लगाई।
× × ×
'कहु जानौं कछु छाया पाई, दूध-भात घर खाइ ही आई'—नंद रूप पृ ११।

भी 'भूतों' के अस्तित्व में जन विश्वास का परिचय मिलता है[२३]। रूपमंजरी की मूर्छा काफी समय तक रहने पर सबको 'भूतावेश' का विश्वास हो जाता है[२४]।

आ *उपचार-संबंधी विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाली बातों की सत्यता की परख तो की या कराथी नहीं जा सकती, परंतु उनके प्रति समाज के बड़े भाग का विश्वास अवश्य रहता है। आधुनिक शिक्षित वर्ग इस वर्ग की अधिकांश बातों को 'अंध-विश्वास' ही मानता है, परंतु कवि-वर्ग आज भी समाज के यथार्थ रूप का परिचय देने के लिए उनकी चर्चा अपने काव्य में करना आवश्यक समझता है। ऐसी बातें मुख्यतः नौ वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं १ —नजर लगना, २. डिठौना, ३ राई नोन उतारना ४ तिनका तोड़ना ५. निछावर, ६ पानी उतार कर पीना, ७ सयानों से हाथ दिखाना, ८. टोना-टोटका और ९ तंत्र मंत्र पर विश्वास।

१ *नजर लगना*—यों तो भारतीय समाज के विश्वास के अनुसार किसी भी अवस्था के व्यक्ति को दूसरों की 'नजर' लग सकती है, तथापि बच्चों को 'नजर' लगने का डर बहुत जल्दी रहता है। पिता का ध्यान इस ओर कम जाता है परंतु माता सदैव इस विषय में सतर्क रहती है क्योंकि उसका यह दृढ़ विश्वास रहता है कि स्वस्थ और सुन्दर बालकों को यदि कोई आँख भर देख ही ले तो उसे 'नजर' लग जाती है। हँसता-खेलता बालक यदि सहसा अनमना या 'निढाल' हो जाय हँसना-खेलना और खाना-पीना छोड़ दे या बार-बार रोने लगे तब माता को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसको किसी की दीठि लग गयी है। अभारतीय समाज की दृष्टि में इस प्रकार के विश्वास भले ही हास्यास्पद हों, परंतु भारतीय स्त्री-वर्ग की आज भी इनके प्रति पूर्ण आस्था है। इस बीसवीं शताब्दी में लिखे गये

२३ गोकुलनाथ को पूत हमारे भूतन के भूतन धरि मारे —नंद रूप पृ २२।
२४ इक पहिले सों अकुच है रही पुनि निज मात बात यह कही।
जस कोउ मिरा-मद बड़ धारी, 'तामैं भूत लगौ पुनि ताही'।
बहुरि नारि निवारि सी लई जननी निरखि सशंकित भई।
भूतावेस अवसि है माई दौरी वद्यु इक करौ उपाई।
—नंद रूप पृ २२।

'यशोधरा' काव्य में भी मैथिलीशरण गुप्त ने 'नजर' लगने का लक्षण 'खाना-पीना छूटना' बताया है[२५]।

सूरदास का बालक कृष्ण जब शाम से ही 'बिरुझाने' लगता है और सोते-सोते बार-बार चौंक पड़ता है, तब उसके खेलते समय किसी के 'डीठि' लगा देने की आशंका माता यशोदा को तत्काल हो आती है[२६]। इसी प्रकार परमानंददास के बालक कृष्ण को 'निढाल' या 'अनमना' होते देखते ही माता यशोदा कहने लगती है कि किसी 'निराली' ने दृष्टि लगायी है[२७]। एक दूसरे पद में बालक को 'दृष्टि' लगानेवाली नारी को 'निसिचरि' कह कर माता यशोदा अपने मन की खीझ निकालती है[२८]। राधा की माता कीर्ति जब पुत्री को अनमनी देखती है तब उसे भी 'टटकी नजरि' लग जाने की आशंका होती है[२९]।

नंददास की रूपमंजरी को भी कभी 'नीकी' और कभी 'मुरझाई' देखकर उसकी सखी कहती है कि अपने अनुपम रूप के कारण 'छिन छिन में इसे दृष्टि' लग जाती है[१]। अच्छे खाते-पीते घराने के बालकों को हर आते-जाते के सामने आने

२५. यही डीठ लगने के लक्षण—छूटे खाना पीना।
कभी काँपना, कभी पसीना, वैसे-वैसे जीना।
—श्री मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा', पृ. १८।

२६ जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
'झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं', कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति।
'खेलत मैं कोउ दीठि लगाई' लै-लै राई-लोन उतारति।
'साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ' चंदहिं देखि करी अति आरति—सा १०-२।

२७ चरन कमल की रेनु जसोदा लै-लै सीस चढ़ावै री।
× × ×
कौन निराली दृष्टि लगाई' लै लै आँचल झारै री—परमा ७८।

२८. काहू निसिचरि दृष्टि लगाई लै लै अंचर झारै—परमा ९१।

२९ घबरी नारिक गई आइ रही है जिय बिसरि।
निसि के उनींदे नैन तैसे रहे ढरि ढरि।
काँपौं कहुँ प्यारी को, लागी टटकी नजरि—सा ७५१।

१ लगी कहन भाई दोष कछु नाहीं निपट अनूप रूप इन माहीं।
छिन छिन माहिं दिष्टि है आई छिन नीकी छिन ही मुरझाई।
—नंद रूप पृ. ११।

से इसी कारण रोका जाता है कि यदि दूसरा व्यक्ति उसकी ओर ललचायी दृष्टि से देख कर टोंक देगा या प्रसन्न होकर उसके रूप, गुण, क्रीड़ा आदि की सराहना ही कर देगा, तब भी उसको 'डीठि' लगने का भय बना रहता है। इसी आशंका से माता यशोदा कुँवर कन्हाई को माखन देते हुए कहती है कि मेरे आगे ही खा लो, बाहर जाकर कभी कुछ न खाना, नहीं तो किसी की 'डीठि' लग जायगो[११]। नंददास के अनुसार, अनुपम सुन्दरी किशोरी रूपमंजरी की सखी तो नजर लग जाने के भय से उसके न तो सुगंध या फुलेल लगाती है और न उसे दर्पण ही देखने देती है[१२] कि कहीं उसे उसकी ही 'नजर' न लग जाय।

२ *डिठौना*—बच्चों को 'नजर लगने' से बचाने के लिए उनके माथे पर काजल का 'डिठौना' या 'दिठौना' लगा दिया जाता है। इसी कारण सूरदास की यशोदा श्रीकृष्ण के नहलाने-धुलाने और वस्त्राभूषण पहनाने के बाद 'मसिबिंदा' या 'डिठौना' लगाना कभी नहीं भूलती[१३]। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'गीतावली' में नहाये-धोये और वस्त्राभूषण पहने राम के माथे पर लगे 'मसि-बिंदु' का वर्णन किया है[१४]। आधुनिक युग के गुप्त जी की यशोधरा भी राहुल के 'डिठौना'

११ तबहिं जसोदा माखन ल्याई।
मैं मथि कै अबहीं धरि राख्यौ तुम हित कुँवर कन्हाई।
माँगि लेहु जाही बिधि मोसौं, मो आगें तुम खाहु।
बाहरि जनि कबहूँ कछु लैये डीठि लगैगी काहु सा १८७।
१२ सोंधौ याके अंग न लगाऊँ, फूल-फुलेल न मुख बचाऊँ।
दरपन देखन देउँ न सौंही डरौं आपनी डीठि तें हौं ही।
—नंद रूप पृ २१।
१३ क लालन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लग्यौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि मोहन 'मसि-बिंदुका' तिलक भाल सुखकारी—सा १-९१।
ख लालन वारी या मुख ऊपर।
माई 'मोरिहिं डीठि न लागे तातैं मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर'—सा १-९२।
ग सिर चौतनी डिठौना दीन्हो, आँखि आँजि पहिराइ निचोल—सा १०-९४।
घ लटकन लटकत ललित भाल पर काजर-बिंदु भ्रुव ऊपर' री—सा १०-९८।
ङ लटकनि ललित लटूरियाँ 'मसि-बिंदु' गोरोचन—सा १०-११६।
१४ नुपुरि उबटि अन्हवाइ के नयन आँजि सिर बनि तिलक गोरोचन को कियो है।

पानी उतार' कर पीती है[४४]। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर भी पुत्र के ऊपर से 'पानी उतार कर' माता पी लेती है जिसके मूल में यही विश्वास है कि उसने बच्चे का सारा रोग-भोग अपने ऊपर ले लिया है और अब वह सुखी रहेगा। अद्भुत रूप-लावण्यवती रुक्मिणी से श्रीकृष्ण का विवाह होने पर, दोनों की मनोहर जोड़ी देखकर, माता देवकी उन पर से बार-बार पानी वारकर पीती है जिससे दोनों सदैव सुखी रहें[४५]।

७ *सयानों से हाथ दिखाना*—बच्चे को अनमना देखकर 'सयाने' या 'कुलगुरु आदि से 'हाथ दिखाने' पर रोग-भोग से उसकी मुक्ति के प्रति भी भारतीय स्त्रियों का विश्वास रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की कौशल्या बालक राम को 'भोर से ही अनरसे' देखकर कुलगुरु को बुलाकर 'हाथ दिखाती' है[४६]। सूरदास की यशोदा भी कृष्ण को 'अनमना' देखकर 'घर घर हाथ दिखावे' डोलती हैं[४७]। बालक जब कोई अनहोनी बात करता है तब माता को उस पर किसी अपदेवता की छाया पड़ जाने की आशंका होती है और वह सयानों का 'हाथ दिखाने' को प्रवृत्त होती है। यशोदा जब पुत्र के मुख में तीनों लोक देखती हैं तब वे भयभीत होकर पुन: घर-घर हाथ दिखाती' घूमती हैं[४८]।

८ *झाड़-फूँक और टोना-टोटका*—भारतीय स्त्रियों का 'झाड़-फूँक और टोने-

४४ ब्रज-युवतिनि उपवन मैं पाए, लयौ उठाय कंठ लपटानी।
× × ×
देति अभूषन वारि-वारि सब 'पीवति सूर वारि सब पानी'—सा १०-७८।

४५ देवकी पियौ वारि पानी—सा ४१८९।

४६ क भानु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
× × ×
बेगि बोलि कुलगुरु 'छुयौ माथे हाथ अमी के'—गीता बाल १२।
ख 'माथे हाथ रिषि जब दियो राम किलकन लागे—गीता, बाल, १३।

४७ देखौ री जसुमति बौरानी।
घर घर 'हाथ दिखावति डोलति गोद लिए गोपाल बिनानी—सा १०-२५८।

४८ हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद रनियाँ।
'घर-घर हाथ दिखावति डोलति' बाँधति गरैं बघनियाँ—सा १०-८३।

टोनके में भी विश्वास रहा है। तुलसीदास की कौशल्या जिस प्रकार राम को 'अनरसे' देखकर झाड़ फूँक कराती हैं,[४९] उसी प्रकार परमानंददास की यशोदा बालक को नजर लग जाने की आशंका से डरकर स्वयं अंचल से झाड़ती हैं[५०]। झाड़-फूँक द्वारा सर्प का विष उतारने की बात भी 'सूरसागर' में कही गयी है[५१]। सूरदास के एक अन्य पद में 'टोना-टामनि' करने की चर्चा है[५२]। अनिष्टाशंका से पुत्र के गले में 'बघनियाँ' आदि बाँधना भी एक प्रकार का 'टोना' ही है[५३]। इसी प्रकार बालक कृष्ण-जब शकटासुर का वध करता है, तब भयभीत ब्रजवासी, 'सारावली' के अनुसार, उसके हाथ पर 'चन्दन-पुष्प' रखकर 'टोने-टोटके' में अपने विश्वास का प्रमाण देते हैं[५४]।

६ यन्त्र-मंत्र—'टोने-टोटके' की तरह 'यंत्र-मंत्र' के प्रति भी ब्रजवासियों के विश्वास का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[५५]। तुलसीदास के वशिष्ठ 'अनरसे' राम का उपचार 'नरसिंह मंत्र' पढ़कर करते हैं[५६]। अष्टछापी कवि यद्यपि इस प्रकार के किसी मंत्र का नाम नहीं लेते, तथापि सामान्य रूप से मंत्रोपचार का उल्लेख उनके काव्यों में कई स्थलों पर हुआ है। बालक कृष्ण को सोते-सोते चौंक पड़ते

४९. आजु अनरस हैं भोर के, पय पियत न नीके।

× × ×

'ताहि झरावति कौशिला ....' —गीता बाल १२।

५०. क आजु निसिचारि दृष्टि लगाई 'लै लै अंचर झारै'—परमा ४१।

ख कौन निराली दृष्टि लगाई 'लै लै आंचल झारै'—परमा ७८।

५१. कहु राधिका कारैं खाई, आजु न जागी 'झारि'—सा ७५५।

५२. 'टोना-टामनि' जन्त्र-मंत्र करि ध्यायौ देव-दुवारौ री—सा १ १३५।

५३. घर-घर हाथ दिवावति डोलति बाँधति गरें बघनियाँ—सा १०-८३।

५४ जहँ तहँ ते दौरे ब्रज-वासी स्यामहिं लियो उठाय।

'चन्दन-पुष्प' लै दियो हाथ पर मंगल गीत गवाया—सारा ४२५,४२६।

५५. टोना टामनि 'जंत्र मंत्र' करि ध्यायौ देव-दुवारौ री—सा १ १३५।

५६ आजु अनरस हैं भोर के, पय पियत न नीके।

× × ×

सुनत आइ 'रिषि' कुस हरे 'नरसिंह मंत्र पढ़े' जो सुमिरत भय भीके।

गीता बाल, १२।

पानी 'उतार' कर पीती हैं[४४]। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर भी पुत्र के ऊपर से 'पानी उतार कर' माता पी लेती है जिसके मूल में यही विश्वास है कि उसने बच्चे का सारा रोग-भोग अपने ऊपर ले लिया है और अब वह सुखी रहेगा। अद्भुत रूप-लावण्यवती रुक्मिणी से श्रीकृष्ण का विवाह होने पर, दोनों की मनोहर जोड़ी देखकर, माता देवकी उन पर से बार-बार पानी वारकर पीती है जिससे दोनों सदैव सुखी रहें[४५]।

७ *सयानों से हाथ दिखाना*—बच्चे को अनमना देखकर 'सयानें' या 'कुलगुरु' आदि से 'हाथ दिखाने' पर रोग-भोग से उसकी मुक्ति के प्रति भी भारतीय स्त्रियों का विश्वास रहा है। गोस्वामी तुलसीदास की कौशल्या बालक राम को 'भोर से ही अनरसे' देखकर कुलगुरु को बुलाकर 'हाथ दिखाती' है[४६]। सूरदास की यशोदा भी कृष्ण को 'अनमना' देखकर 'घर घर हाथ दिखाते' डोलती हैं[४७]। बालक जब कोई अनहोनी बात करता है तब माता को उस पर किसी अपदेवता की छाया पड़ जाने की आशंका होती है और वह सयानों का 'हाथ दिखाने' को प्रवृत्त होती है। यशोदा जब पुत्र के मुख में तीनों लोक देखती हैं तब वे भयभीत होकर पुनः 'घर-घर हाथ दिखाती' घूमती हैं[४८]।

८ *झाड़-फूँक और टोना-टोटका*—भारतीय स्त्रियों का 'झाड़-फूँक और टोने-

४४ ब्रज-युवतिनि उपवन में पाए, सबौ उठाय कंठ लपटानी।
× × ×
देति असूपन वारि-वारि सब 'पीवति सूर वारि सब पानी'—सा १०-४८।

४५. देवकी पियै वारि पानी—सा ४१८४।

४६.क आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
× × ×
बेगि बोलि कुलगुरु 'छुयौ माथे हाथ अमी के'—गीता, बाल ११।
ख 'माथे हाथ रिषि जब दियौ' राम किलकन लागे—गीता बाल, ११।

४७ देखौ री जसुमति बौरानी।
घर घर हाथ दिखावति डोलति गोद लिए गोपाल बिनानी—सा १० २४८।

४८. हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख में तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद रनियाँ।
'घर-घर हाथ दिखावति डोलति' बाँधति गरैं बघनियाँ—सा १०-८१।

बात कही जाती है[१०]। इसी प्रकार नंददास की रूपमंजरी को मूर्छित देखकर जब उस पर सबको 'भूतावेश' का निश्चय हो जाता है, तब भी मंत्र पढ़नेवालों को बुलाने का प्रस्ताव किया जाता है[११] जिससे स्पष्ट है कि ऐसी बातें भी मंत्रों द्वारा दूर किये जाने पर भारतीय समाज का विश्वास रहा है।

३ शकुन—शरीर और प्रकृति के कुछ कार्यों और व्यापारों, यथा शरीर के विविध अंगों का फड़कना, स्वप्न देखना, विशेष पशु-पक्षियों का दिखायी देना या उनकी बोली सुनायी पड़ना आदि, से मनुष्य को आगामी सुख-दुख की पूर्व सूचना मिल जाती है[१२]। साहित्य में ऐसी बातों का वर्णन भावी घटनाओं की पूर्व सूचना देने के लिए होता है जिससे सामान्यतया पाठक उनके संबंध में उत्सुक हो जाता है। अष्टछाप-काव्य में भी भावी सुख-दुख सूचक व्यापारों का वर्णन इसी रूप से हुआ है। जो कार्य और व्यापार मंगल के सूचक होते हैं उनको 'शकुन' कहते हैं। भारतीय समाज की 'शकुन' के प्रति पूर्ण आस्था रही है और उनसे कार्य की सिद्धि अथवा किसी शुभ सूचना के मिलने की उसको पूर्ण आशा हो जाती है। इसी जन-विश्वास के आधार पर अष्टछापी कवियों ने शकुन के विविध रूपों का उल्लेख अपने काव्य में किया है। उनके द्वारा वर्णित शकुन-सूचक कार्यों और व्यापारों को स्थूल रूप से, चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—१ मनःस्थिति, २ प्राकृतिक व्यापार, ३ शारीरिक व्यापार और ४ जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ।

१० 'नाग दमी' । मैया मुनति गिरी धरनि मुरझाइ ।
बार-बार वो मानही 'कोउ करो उपाइ' ।
सखी कहै समुझाइ कहौ तौ गोकुल जाऊँ ।
मनमोहन घनस्याम तुरत गारुडि लै आऊँ—नंद स्याम पृ ११८।

११. अब कोउ मित्र-मन्त्र इक आही तामैं भूत लगै पुनि ताही।
बहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई।
भूतावेस अवसि है मांई टोरो कछु इक करो उपाई।
सखि कहै, काहु बोलि किन आनों 'एक मंत्र अब होंहूँ' जानौ।
—नंद रूप पृ ९२।

१२. निमित्तं लक्षणं स्वप्न शकुनिस्वरदर्शनम्।
अवश्यं सुखदुःखेषु नराणां परिदृश्यते—१-५२२।
—'रामायणकालीन संस्कृति' पृ १७।

१ *शकुन-सूचक मनःस्थिति*—कभी-कभी अकारण ही स्त्री या पुरुष का चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, उसे अतीव प्रसन्नता का अनुभव होता है और वह जैसे उल्लास और उत्साह से भर जाता है। यह अकारण हर्ष या उल्लास भावी शुभ कार्य अथवा आगामी सिद्धि का सूचक माना जाने से 'शकुन' के अंतर्गत आता है। श्रीकृष्ण के मथुरा प्रवास के पश्चात् गोपियाँ जब उनके लिए दुखी होकर उनके लौटने की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रही हैं तभी एक दिन सहसा उनके मन में दुख और सुख का साथ-साथ उदय होता है जो आगे चल कर कृष्ण के न आने के दुख और उनका संदेश मिलने के सुख का सूचक है[13]। इसी प्रकार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर जब श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र पहुँचकर नंद, यशोदा तथा अन्य ब्रज-वासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं तब भी गोपियों का मन अनायास 'गह-गहा' हो जाता है और उन्हें माधव से मिलने की पूर्व सूचना मिल जाती है[14]। अष्टछाप काव्य में इस प्रकार की शकुन-सूचक मनःस्थिति का उल्लेख बहुत कम स्थलों पर हुआ है।

२ *शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार*—'रामायणकालीन संस्कृति' के अनुसार 'दिशाओं का प्रसन्न हो जाना, सूर्य का निर्मल जान पड़ना, शीतल, मंद और सुगंधित पवन का चलना, जल का मधुर और स्वच्छ होना वनों का फलों और वृक्षों का पुष्पों से युक्त होना'[15] आदि बातें शकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापारों के अंतर्गत गिनायी गयी हैं। अष्टछाप-काव्य में उक्त प्राकृतिक व्यापारों में वन में वसंत छा जाने और वृक्षों में नये पात आ जाने की बात श्रीकृष्ण के कुरुक्षेत्र पहुँच कर ब्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजने के प्रसंग में लिखी गयी है[16]। इसी संबंध में बिना वायु के 'अंचल और ध्वज' डोलने लगना भी शकुन-सूचक प्राकृतिक

१३ 'कछु दुख कछु हिय हर्ष भई' – सा १०५३।

१४ माधौ आवनहार भए।
अंचल उड़ि मन होत गहगहो, फरकत नैन लए—सा ४२०७।

१५ 'रामायणकालीन संस्कृति' पृ ४१।

१६ माधौ आवनहार भए।
× × ×
रितु बसंत द्रुमी बन बनी अंकुर पात नए—सा ४२०७।

व्यापार ही है जिसका उल्लेख सूरदास के काव्य में हुआ है[६७]।

३ *शकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—पुरुषों के कुछ दाहिने अंगों और स्त्रियों के वामांगों का फड़कना शकुन-सूचक माना जाता है। इन अंगों में नयन और भुजा या बाहु मुख्य हैं। तुलसीदास ने भरत के 'दक्षिन नयन-भुज'[६८] और सीता के वाम 'विलोचन-बाहु' फड़कने को[६९] शकुन-सूचक माना है। अष्टछाप काव्य में भी इस प्रकार के शकुन-सूचक शारीरिक व्यापारों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। स्त्रियों के बायें नयन और भुज के साथ-साथ उनके 'उर और अधर' फड़कने को भी हमारे कवियों ने 'शकुन' ही माना है। 'श्रीमद्भागवत' में स्त्रियों की बायी जाँघ का फड़कना भी शुभ कहा गया है[७०]। अशोकवाटिका में बंदिनी सूरदास की सीता 'नैन और उर' फड़कने को सगुन' मानती है[७१]। इसी प्रकार उधर कुरुक्षेत्र में पहुँचकर श्रीकृष्ण ब्रजवासियों को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं और इधर गोपियों के 'कुच भुज, नैन और अधर' फड़कने लगते हैं[७२]। इन शकुनों का शुभ फल बताती हुई सखी स्पष्ट शब्दों में राधा से कहती है कि आज श्याम से मिलाप' अवश्य होगा, इसलिए चिंता छोड़ कर प्रसन्न हो जाओ विधाता ने हमारा सोया हुआ भाग्य जगा दिया है[७३]।

परमानंददास की गोपी भी भुजाओं के फड़कने और 'कंचुकि बंद के तड़कने' से प्रियतम अथवा उसके संदेशवाहक के आने के प्रति आश्वस्त हो जाती है[७४]।

६७ आजु मिलाप होइ स्याम को तू सुनि सखी राधिका भोरी।
कुच भुज नैन अधर फरकत हैं, बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली—सा ४२७६।

६८ 'भरत नयन-भुज दच्छिन फरकत' बारहिं बार—मानस उत्तर, दो ४।

६९. 'फरकत' मंगल अंग 'सिय बाम बिलोचन बाहु—रामाज्ञा ५ २-५।

७० श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध, अध्याय ५१ श्लोक २७।

७१ इतनौ कहत नैन-उर फरके, सगुन जनायौ अंग।
आजु लहौं रघुनाथ सँदेसो, मिटै बिरह दुख संग—सा ९-८३।

७२. कुच भुज नैन अधर फरकत हैं बिनहिं बात अंचल ध्वज डोली—सा ४२७६।

७३. आज मिलाप होइ स्याम को, तू सुनि सखी राधिका भोरी।

× × ×

सोच निवारि करौ मन आनँद मानौ भाग दसा बिधि खोली—सा ४२७६।

७४ आजु कोउ नीकी बात सुनावै।

कुंदनस्वामी की गोपी तो 'सगुन' के संबंध में और भी भाग्यशालिनी है। जिस दिन श्रीकृष्ण से उसका मिलन होता है, उस प्रातःकाल को उसकी नींद शुभांगों के फड़कने के साथ खुलती है और केसर घोलते समय तो उसकी भुजा फरक फरकती है[७४]। इसी प्रकार नंददास की रुक्मिणी के शुभ अंग भी उसी समय से फड़क कर उसके हृदय में मनोरथ-पूर्ति की आशा जगा देते हैं जिस समय श्रीकृष्ण द्वारका से उसका पत्र पाकर, प्रस्थान करते हैं[७६]। 'श्रीमद्भागवत' में रुक्मिणी को बायीं आँख, बायीं भुजा और बायें नेत्र के फड़कने से कृष्ण के शुभागमन की पूर्व सूचना मिल जाती है[७७]।

प्रातःकाल उठते ही अथवा किसी काम के लिए चलते समय किसी 'अच्छे' का मुख दिखायी दे जाना भी 'शकुन-सूचक' समझा जाता है यदि उस कार्य में सिद्धि मिल जाय अथवा विशेष लाभ हो जाय। इस सामान्य विश्वास के उदाहरण परमानंददास के काव्य में दो-तीन पदों में मिलते हैं। कोई ग्वालिनी किसी दिन कृष्ण का मुख देखकर दही बेचने जाती है, उसका सारा दही जाते ही बिक जाता है और दूना लाभ यह होता है कि घर में उसकी गाय काली बछिया ब्याती है। अतएव वह ग्वालिनी दूसरे दिन भी कृष्ण का मुख देखने आती है[७८]। एक दूसरे पद में कृष्ण का दर्शन सबेरे ही पा जानेवाली गोपी को बहुत लाभ होने की आशा होती है[७९]। तीसरी गोपी तो कृष्ण से ही स्पष्ट कह देती है कि प्रातःकाल ही

मुज फरकति कंचुकि बँद तरकत नँदनंदन घर आय।
के मधुबन तें नंदलाडिलो कोउ इक दूत पठावे—परमा कृत २०८।

७५. आज सबेरे हौं उठि बैठी फुरकि कंचुकी तरकी।
यों केसरि घोरत में मेरी फर-फर भुज दे फरकी—कुंभन ५९।

७६. बाम भुज लागी फरकनि कंचुकि बँध लाग तरकन—नंद रुक्मिणी, पृ ११।

७७. एवं वध्वा: प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिण:।
'श्रीमद्भागवत', दशम स्कंध अध्याय ५३, श्लोक २७।

७८. 'लाल को मुख देखन को हौं आई'।
'कालि मुख देखि गई दधि बेचन जातहि गयो बिकाई'।
'दिन तें दूनौ लाभ भयो घर काजरि बछिया ब्याई'—परमा ४९।

७९. लाल को दरसन भयो सवेरो।
बहुत लाभ पाउँगी माई, हमो बिकैहै मरो—परमा सोम भाग पृ १२१।

तुम्हारे शुभ दर्शन करने इसीलिए आयी हूँ कि मुझे सुख लाभ हो और मार्ग में भी सुख ही मिले[८] ।

४ *जीव-जंतुओं की शकुन-सूचक क्रियाएँ*—इस वर्ग में पशु, पक्षी तथा अन्य कीट-पतंगों की शकुन-सूचक क्रियाएँ आती हैं। शकुन-सूचक पशुओं में मुख्य हैं—गाय, मृग और 'लोवा' या लोमड़ी। 'रामचरित-मानस' में बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय के दर्शन के साथ-साथ 'लोवा' या लोमड़ी का दिखायी देना और मृगों की टोली का घूम कर दाहिनी ओर को आ जाना शुभ बताया गया है[८१]। अष्टछापी कवियों ने उक्त पशुओं में से केवल मृगमाला के दाहिनी ओर दिखायी देने की बात 'शकुन' के अंतर्गत लिखी है। कंस की आज्ञा से जब अक्रूर, बलराम और कृष्ण को लेने गोकुल आने लगते हैं, तब दोनों बालकों की रक्षा के लिए ये बहुत चिंतित हो जाते हैं। इसी समय उन्हें दाहिनी ओर मृगों का दर्शन होता है जिससे वे दोनों बालकों की ओर से निश्चिंत होकर इन शकुनों के फलस्वरूप शीघ्र ही गोपाल को भेंटने का सुअवसर पाने के सौभाग्य की बात सोचते-सोचते अत्यंत पुलकित हो जाते हैं[८२] ।

शकुन-सूचक पक्षियों में 'रामचरित-मानस' में बायीं ओर चारा लेते चापु या नीलकंठ, दाहिनी ओर खेत में कौआ, बायीं ओर वृक्ष पर श्यामा आदि के दर्शनों की चर्चा की गयी है[८३]। अष्टछाप-काव्य में उक्त पक्षियों में से 'काग' की चर्चा अनेक

८ हौं प्रभात समै उठि धाई 'कमलनयन देखन तुम्हरो मुख'।
गोरस बेचन चली मधुपुरी 'लाभ होइ मारग पाऊँ सुख'।
—परमा., कीर्त. अष्ट. ४७।

८१ लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। 'सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा'।
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई।
—मानस बाल, ३ ६।

८२.क 'दच्छिन दरस देखि मृगमाला। अति आनंद भयो तिहि काला।
अबहीं बन मिलिहौं गोपाला। स्याम अरुन तनु संग रसाला—सा ९६४५।
ख दाहिनें देखियत मृग-माल'।
मानौ रहि सगुन अबहि हरि बन धावु, इनहि मुननि भरि भेंटौंगी गोपाल।
—सा ९६४६।

८३ 'चारा चापु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई'।

स्थलों पर विस्तार से मिलती है। स्त्री-वर्ग के विश्वास के अनुसार घर की छत पर 'कउए' का आकर बैठना और बोलना किसी आत्मीय जन के आगमन का सूचक होता है। राम-लक्ष्मण के आगमन की बात सोचती हुई कौशल्या राजभवन पर बैठे कौए को देख 'सगुन' जानना चाहती है। दोनों 'मुझे कब मिलेंगे' की बात कौशल्या के मुख से सुनकर जब कौआ हरी डार पर उड़कर बैठ जाता है, तब वह शीघ्र ही पुत्र-मिलन के संबंध में आश्वस्त हो जाती है और पुत्रों का दर्शन होने पर कौए को दूध भात खिलाने तथा 'चोंच और पाँखि' सोने के पानी से मढ़ाने का वचन देती है [४]। इसी प्रकार 'बायस' या कौए के द्वारा गोपियों को भी अनेक अवसरों पर शकुनों की सूचना मिलती है जिनके सम्बन्ध में 'प्राकृतिक जीवन' के अंतर्गत विस्तार से लिखा जा चुका है।

कीट-पतंगों में 'भौंरे' का कान के पास आकर बोलना अष्टछाप-काव्य में 'शकुन' रूप में वर्णित है [५]।

ई *अपशकुन*—भावी अनिष्ट, विपत्ति अथवा असफलता आदि की सूचना देनेवाले कार्य और व्यापार 'अपशकुन' माने जाते हैं। जीवन के दैनिक व्यवहार में सभी व्यक्ति

'दाहिन काग सुखेत सुहावा' .... ।
'कुमकरी कह छेम विसेषी। 'स्यामा वाम सुतरु पर देखी'—मानस बाल १ १।

८४ बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलें अब मोकौं दोउ अमोलक मोती।
'रतनी कहत सुकाग जौं तें हरी डार उड़ि बैठौ'।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठ्यौ'।
जब लौं हौं जीवौं जीवन भर सदा नाम तव जपिहौं।
'दधि-ओदन दोना भरि दैहौं अरु भाइनि मैं थपिहौं।
अब कै जौ परिचौ करि पावौं अरु देखौं भरि आँखि।
सूरदास 'सोने कैं पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि'—सा ९.१६४।

८५.क अबहिं चल ऊधो मधुबन तैं गोपिनि मनहिं जनाइ गई।
'बार-बार अलि लागे स्रवननि कछु दुख कछु हिय हर्ष भई—सा १४५१।

ख 'आजु कोउ नीकी बात सुनावै'।
कै मधुबन तैं नंद लाडिलो कैऽब दूत कोउ आवै।
भौंर एक चहुँ दिसि तैं उड़ि उड़ि कानन लगि-लगि गावै।
उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुनावै—सा १४५५।

अनेक रूपों में अशकुनों की चर्चा किया करते हैं। आनेवाले कष्ट या अनिष्ट की हानि या पीड़ा यद्यपि अशकुनों के द्वारा उनकी पूर्व-सूचना से किसी प्रकार कम नहीं हो जाती, तथापि इतना निश्चित है कि बार-बार अशकुनों की चर्चा से दुख या कष्ट का सामना करने को प्राणी तैयार अवश्य हो जाता है और वैसी स्थिति में अनिष्ट की मात सर्वथा असंभावित नहीं जान पड़ती। काव्य में इनकी चर्चा से पाठक की सहज उत्सुकता बढ़ती है और पात्रों की गति-विधि को वह बहुत रुचि से लक्ष्य करता है, अस्तु। 'शकुन' के समान ही अशकुनों को भी चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१ मनःस्थिति, २ प्राकृतिक-व्यापार, ३ शारीरिक व्यापार और ४ जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ।

१ *अशकुन-सूचक मनःस्थिति*—प्रफुल्लित चित्त का सहसा उदास हो जाना, मन में उत्साह की कमी होना, व्यक्ति का अकस्मात खिन्न हो जाना, किसी कार्य में ध्यान न लगना आदि बातें 'अशकुन-सूचक मनःस्थिति' के अंतर्गत आती हैं। अष्टछाप-काव्य में स्वतंत्र रूप से अशकुन सूचक मनःस्थिति का वर्णन नहीं मिलता अन्य अशकुनों के उल्लेख के साथ ही उनकी भी चर्चा की गयी है।

२ *अशकुन-सूचक प्राकृतिक व्यापार*—प्रकृति के सामान्य व्यापारों का किसी प्रकार के उत्पातों में परिवर्तित हो जाना साधारणतया अशकुन-सूचक माना जाता है। उदाहरण के लिए जब अकारण ही भूमि काँपने लगे, पर्वत-शिखर धरनि लगें, वृक्ष उखड़कर गिर पड़ें तब मानव का स्वभावतया किसी अनिष्ट की आशंका होने लगती है। अष्टछाप-काव्य में अशकुन-सूचक ऐसे प्राकृतिक व्यापारों की चर्चा भी दो-एक स्थलों पर ही की गयी है। उदाहरण के लिए अर्जुन को द्वारका पहुँचकर यादवों के क्षय होने का जब समाचार मिलता है, तभी युधिष्ठिर के यहाँ प्राकृतिक उत्पातों यथा भुव का काँपना वर्षा का न होना आदि से इस शोक-समाचार' की पूर्व सूचना मिल जाती है[८९]। इसी प्रकार नंददास के कृष्ण जब कालीदह में कूद पड़ते हैं तब भी भूमि कंप आदि प्राकृतिक उत्पात[९०] व्रजवासियों को शंकित कर देते हैं।

८९ कंपै भुव बर्षा नहिं होइ' भयो सोच नृप-चित यह आइ—सा १-२८६।
९० व्रज में होन लगे उतपात अशुभ सूचक करक गात।
'भूमि कंप नभ ते उडि गिरे चपर अशकुन निर्तम भरहर।
—नंद दशम पृ २७६।

'श्रीमद्‌भागवत' में वर्णित आकाश में उल्कापात, पृथ्वी में भूकम्प आदि अपशकुन भी इसी वर्ग में आते हैं[८८] ।

२ *अपशकुन-सूचक शारीरिक व्यापार*—कार्य-विशेष को जाते हुए स्वयं को 'छींक' आ जाना या किसी का बायीं ओर से 'छींक' देना 'अपशकुन' का लक्षण माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में पूर्वोक्त दोनों व्यापारों से अधिक विस्तार से अपशकुन-सूचक इस क्रिया की चर्चा की गयी है। कंस अक्रीड़ाह के फूल मंगवाने की आज्ञा नंद को दूत के द्वारा भेजता है। नंद जी को इस विपत्ति की सूचना घर के भीतर जाते समय बायीं ओर 'छींक' हो जाने से मिल जाती है[८९] । कृष्ण के कालीदह में कूदने और इस प्रकार विपत्ति में फँस जाने की आशंका भी पिता नंद को घर में घुसते ही बायीं ओर होनेवाली छींक से ही जाती है[९०] ।

सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि अपशकुन-सूचक 'छींक' हो जाने पर यदि कुछ समय तक रुक लिया जाय या कुछ खाकर दो-एक घूँट पानी पी लिया जाय अथवा केवल पान ही खा लिया जाय तो 'अपशकुन' का दोष मिट जाता है। अष्टछाप-काव्य में ऐसे जन-विश्वास का भी उल्लेख हुआ है। यशोदा जब रसोई के भीतर जाने लगती है तभी एक ग्वालि 'छींक' देती है। 'छींक' सुनते ही यशोदा द्वार पर ही ठिठक जाती और मन में सोचती है कि यह तो अच्छी बात नहीं जान पड़ती फिर आँगन में एक बार आकर और इस प्रकार 'छींक' का दोष मिटाकर रसोई की ओर बढ़ती है[९१] । दान-लीला-प्रसंग में जब गोपियाँ कृष्ण के द्वारा घेर ली जाती हैं तब कहती हैं कि घर से हम 'छींकते तो चली नहीं थीं फिर यह 'विपत्ति' कहाँ से

८८. श्रीमद्‌भागवत प्रथम स्कंध अध्याय १४, श्लोक १ ।

८९. नृपति दूत पठाइ दीन्हों चल्यौ व्रज इहिं बार।
'महर पैठत सदन भीतर छींक बाईं धार'।
सुर नंद कहत महरि सौं आजु कहा विचार—सा ५२४।

९०. पैठत पौरि छींक भई बाएँ'—सा ५८१।

९१. जसुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी बात नहीं कछु नीकी।
आइ अजिर निकसी नँदरानी बहुरौ दोष मिटाइ—सा ५४ ।

आ गयी[१२]। उनका यह वाक्य भी भारतीय समाज में 'छींक' का अशकुन-सूचक माना जाना ही सूचित करता है।

अशकुन-सूचक अन्य शारीरिक व्यापारों में पुरुषों के बायें नयन या बाहु का[१३] और स्त्रियों के दाहिने नेत्र, बाहु, अधर, 'उर' का फड़कना आदि आता है। अष्टछाप काव्य में इन व्यापारों का स्वतंत्र वर्णन बहुत कम हुआ है। केवल नंददास ने दो-तीन स्थलों पर अशुभसूचक 'गात' के फड़कने का उल्लेख किया है[१४]।

असंभावित हानि होने या कष्ट मिलने पर प्रातःकाल किसी किसी का मुँह देखना भी अशकुन-सूचक ही माना जाता है। दान-लीला-प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा घेर लिये जाने की विपत्ति जब गोपियों के सामने आती है तब वे कहती हैं कि पता नहीं किसका मुँह आज सवेरे देखा था जो यह विपत्ति सामने आयी[१५]। उनके इस कथन से भारतीय समाज का यह विश्वास पुष्ट होता है कि प्रातःकाल किसी-किसी का मुँह देखना' भी कभी-कभी भावी कष्ट या विपत्ति का कारण हो जाता है।

४ *जीव-जंतुओं की अशकुन-सूचक क्रियाएँ*—पशुओं में बैल, घोड़े और हाथी का रोना, दिन में स्यार का बोलना दाहिनी ओर गदहे का रेंकना, कुत्ते का द्वार पर कान फटकना, बिल्ली का रास्ता काट देना आदि बातें अशकुन-सूचक मानी गयी हैं। अष्टछापी कवियों ने कृष्ण के स्वर्गवास की सूचना युधिष्ठिर को अशकुन-सूचक अन्य बातों के साथ-साथ बैल, घोड़े और हाथी के रोने तथा दिन में स्यार के बोलने से[१६] दिलायी है। कालीदह में कृष्ण के कूद पड़ने पर यशोदा को उसकी सूचना बायीं ओर 'खर' के बोलने से[१७] और नंद को द्वार पर कुत्ते के कान फटकने से मिलती है[१८]। इनके अतिरिक्त बिल्ली भी यशोदा का रास्ता बार-बार काटकर भावी अनिष्ट

१२. पर तें हम छींकत हैं न आई—सा १४८१।
१३. 'श्रीमद्भागवत प्रथम स्कंध अध्याय १४ श्लोक ११।
१४ क ये दिसि फरकत मरे गात' ब्रज में आदि कछू उतपात—नंद दशम पृ ९२।
ख 'ब्रज में होन लगे उतपात अशुभ सूचने फरके गात—नंद दशम पृ २७६।
१५. काकी बदन प्रात ही देख्यौ—सा १४८२।
१६ 'रोवैं वृषभ तुरग अरु नाग। स्यार द्यौस' निसि बोलैं काग—सा १२८६।
१७ बाएँ काग 'दाहिने खर-स्वर' व्याकुल घर फिरि आई—सा ५४।
१८. 'फटकत स्रवन स्वान द्वारैं' पर—सा ५४१।

की सूचना देती है[११]।

पक्षियों में कौए और गररी की कुछ क्रियाओं को अष्टछापी कवियों ने अपशकुन-सूचक माना है। श्रीकृष्ण का द्वारका में स्वर्गवास होने की सूचना अन्य अपशकुनों के साथ रात में कौए के बोलने[८] पर मिलती है[१]। 'श्रीमद्भागवत' में भी रात में कौए का बोलना अशुभ बताया गया है[२]। बायीं ओर कौए का बोलना[३] अथवा माथे पर से होकर उसका उड़ जाना[४] यशोदा को किसी अनिष्ट की सूचना दे देता है और पाठक जानता है कि वह अनिष्ट है कृष्ण का कालीदह में कूद पड़ना। नंद जी को इसकी सूचना पक्षियों में 'गररी' को लड़ते देखकर मिलती है[५]।

उ *अन्य विश्वास*—इस वर्ग के अंतर्गत मुख्य रूप से चार बातें आती हैं—१ स्वप्न २ शपथ, ३ शाप और ४ आशीर्वाद-संबंधी विश्वास।

१ *स्वप्न-संबंधी विश्वास*—मानव-वर्ग सोते समय प्रायः स्वप्न देखता है जिनमें से कुछ सत्य सिद्ध होते हैं और कुछ असत्य कुछ का संबंध वह विगत या आगामी घटनाओं से जोड़ लेता है और कुछ को निरर्थक समझता है। अष्टछाप-काव्य में भी अनेक स्थलों पर स्वप्नों की चर्चा की गयी है जिनको स्थूल रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अ आगामी सुख-सूचक स्वप्न, २ भावी दुख या अनिष्ट-सूचक स्वप्न, स भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न और द अन्य स्वप्न।

अ *आगामी सुख-सूचक स्वप्न*—कष्ट और संकट में पड़ा हुआ व्यक्ति कभी तो स्वयं ऐसे स्वप्न देखता है और कभी उसके शुभचिंतक को वे दिखायी देते हैं जिनसे संकट या विपत्ति से शीघ्र ही मुक्ति मिलने की आशा हो जाती है। ऐसे स्वप्न आगामी सुख-सूचक समझे जाते हैं। अशोकवाटिका में बंदिनी सीता जब राम

११. 'मंजारी आगे ह्वै आई', पुनि फिरि आँगन आई—सा ५४।

८ आधी रात को कौओं का बोलना भारतीय समाज में बहुत समय से अशुभ माना जाता है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष, सां अ पृ १३५।

१ स्यार दीस निसि बोलैं काग'—सा १२८६।

२ 'श्रीमद्भागवत' प्रथम स्कंध अध्याय १४ पृ १११।

३ 'बायें काग दाहिने खर-स्वर व्याकुल घर फिरि आई—सा ५४।

४ 'माथ पर ह्वै काग उड़ान्यो कुसगुन बहुतक पाई—सा ५४१।

५ कटकत भवन स्वान द्वारे पर गररी करत लराई'—सा ५४१।

के विरह में अत्यंत दुखित होती है और अपनी मुक्ति के संबंध में निराशा-सी हो जाती है, तभी उसका हित चाहनेवाली राक्षसी त्रिजटा रात में एक स्वप्न देखने की बात कहती है[६]। स्वप्न में उसने देखा कि सीता राघव के पास कुसुम-विमान पर बैठी है। राम के शीश पर श्वेत छत्र सूर्य की किरणों से चमक रहा है। दानव-कुल नायकों के भय से भाग चुका है। रावण का शीश पृथ्वी पर पड़ा है और मंदोदरी उसके निकट विलाप कर रही है। कुंभकरण कीचड़ से लथपथ पड़ा है और लंका विभीषण को मिल गयी है। राम का कपि-दल लंका में प्रवेश करता है और चारों ओर उनकी दुहाई फिर जाती है[७]।

भारतीय जन-समाज का सामान्य विश्वास यह है कि जो स्वप्न प्रातःकाल दिखायी देता है, वह अवश्य सत्य होता है। त्रिजटा भी उक्त सुस्वप्न प्रातःकाल ही देखती है[८]। इसी से बड़े विश्वास के साथ वह कहती है कि इस स्वप्न का भाव

६ क त्रिजटा के इस स्वप्न की चर्चा वाल्मीकि रामायण में भी है।

— रामायणकालीन संस्कृति पृ ४१।

ख मानस में भी त्रिजटा के ऐसे ही स्वप्न का उल्लेख है—

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहिं सइ करहु हित अपना।
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।
'यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी—'मानस, सुंदर, ११।

७ कुसुम बिमान बैठी बैदेही रानी राघव पास।
स्वेत छत्र रघुनाथ-सीस पर दिनकर किरन प्रकास।
भगे पलायमान दानवकुल व्याकुल नायक प्रान।
पकरत पुहुमि पछारत एक एक सनिमन चलत-मसान।
रावन-सीस पुहुमि पर लोटत मंदोदरि बिलखाइ।
कुंभकरन-तन पंक लगाई लंक बिभीषन पाइ।
प्रगटी चारि लंक दल कपि की फिरी रघुबीर दुहाई—गी ६-८१।

८ सुनि सीता सपने की बात।
'रानमे'—त्रिजटा मैं देख्यो देखी बिधि परभात —गी ६ ८१।

कभी 'विफल नहीं हो सकता'।

श्रीकृष्ण जब कंस को मारकर माता पिता को बंदीगृह से छुड़ाने के लिए पहुँचने को होते हैं, तभी वसुदेव, देवकी से रात के स्वप्न में भूपति कंस द्वारा अक्रूर को भेज कर बलराम तथा कृष्ण को बुलाया जाना और उनके आने पर कंस का मारा जाना देखना बताते हैं[१०] एवं, स्वप्न के अनुसार, आज-कल में उनके आने की बात कहते हैं[११]। उनका यह स्वप्न संकटों से मुक्ति मिलने की शुभ सूचना देता है। अष्टछाप-काव्य में इस प्रकार के आगामी सुखसूचक स्वप्न अधिक नहीं दिखाये गये हैं।

२ *भावी अनिष्ट-सूचक स्वप्न*—अष्टछापी कवियों ने भावी अनिष्ट या दुख-सूचक स्वप्नों की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक की है। कालीदह में कूदने की घटना के पूर्व की रात्रि को श्रीकृष्ण सहसा सोते से चौंक उठते हैं। माता दीपक जलाकर या उकसाकर उनके 'झझक' उठने का कारण जानना चाहती है तब कृष्ण अपना देखा हुआ स्वप्न बताते हैं—मैंने स्वप्न में देखा कि मुझे किसी ने जमुनादह में गिरा दिया है। पुत्र को इस प्रकार भयभीत देखकर माता उसे धीरज देती है[१२] और कहती है कि दिन में जमुना में नहाने की याद बनी रहने से ही मुझे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया है, इसलिए डरने की कोई बात नहीं है[१३]। इसके पश्चात् बालक

९ 'या सपने को भाव सिया सुनि, कबहूँ विफल नहिं जाइ'—सा ९-८१।

१० सुन्यौ वसुदेव दोउ नंदसुवन आए।
  प्रिया सौं कहत कछु सुनति है री नारि रातिहूँ सपन कछु ऐसे पाए'।
  गए अक्रूर तिनि नृपति मँगि पोसि, तुरत आए, आइ कंस मारे—सा १ ८८।

११ कबहुँ प्रगट ह्वै होहिंगे, इष्ट तुम्हारे तात।
  'आजु कालि हरि आइहैं यह सपन की बात।
  अब जनि होहिं अधीर कंस की आयु तुलानी।
  देखत आइ खिलाइ, अमर तिनका करि जानी।
  'ऐसौ सुपनौ मोहिं भयौ प्रिया सत्य करि मानि'।
  त्रिभुवन-पति तेरौ सुवन है, तोहिं मिलैगो आनि—सा १ ६ ।

१२. चौंकत झझकि उठे काहे तैं दीपक कियौ प्रकास।
  सपनें कूदि परचौ जमुना-दह काहूँ दियौ गिराइ'।
  सूर स्याम सौं कहति जसोदा जनि हौ लाल डराइ—सा ५१७।

१३ मैं बरजी जमुना-तट जात।

तो सो जाता है, परंतु नंद-यशोदा उस दुःस्वप्न की ही चर्चा करते रहते हैं[१४]। दूसरे दिन जब श्रीकृष्ण के कालीदह में कूद पड़ने की सूचना माता यशोदा को मिलती है तब वे रात्रि के दुःस्वप्न के सत्य होने की बात सोच सोचकर पछताती हैं[१५]।

अष्टछाप-काव्य में वर्णित अनिष्ट-सूचक स्वप्न का दूसरा उदाहरण कृष्ण के मथुरागमन प्रसंग में मिलता है। बलराम और कृष्ण को बुलाने के लिए इधर कंस अक्रूर को भेजता है और उधर नंद को स्वप्न दिखायी देता है कि बलराम तथा कृष्ण कहीं खो गए हैं या उन्हें कोई ले गया है। स्वप्न में उन्होंने ग्वाल-बालों को यह कहकर रोते भी सुना कि कृष्ण अभी तो हमारे साथ खेल रहे थे अब कहीं नहीं दिखायी देते। कोई दूत उन्हें अपने साथ लिवाने आया; उसने उन पर न जाने कौन सी 'ठगौरी' की कि हम खड़े देखते ही रहे और बलराम तथा कृष्ण हमारे प्रति निष्ठुरता दिखा कर दूत के ही साथ हो गये[१६]। नंद, यशोदा, व्रज के समस्त गोपों और गोपियों तथा कृष्ण के सखा ग्वाल-बालों को भी उन्होंने रोते सुना। स्वप्न में इतना देखते ही धकधकाते हृदय से, और नेत्रों से आँसू बहाते हुए नंद जाग पड़े एवं पास सोये कृष्ण के शरीर पर हाथ फेरने लगे। यशोदा व्याकुल होकर उनकी इस दशा का कारण पूछने लगी, लेकिन उन्होंने स्वप्न में देखी हुई बात उसे

सुधि रह गई न्हात की तरैं अति बरपौ मरे तात—सा ५१८।

१४ सपनौ सुनि जननी अकुलानी।
दंपति बात कहत आपुस मैं, सोवत सारँगपानी—सा ५१९।

१५ 'सुपनौ परगट कियौ कन्हाई'।
सोवत ही निसि आय कहाने हमसौं यह कहि बात सुनाई—सा ५४४।

१६ उत 'नंदहिं सपनौ भयौ हरि कहूँ हिरान।
बल मोहन कोउ लै गयौ सुनि कै बिलगान।
ग्वाल सखा रोवत कहैं हरि तौ कहूँ नाहीं।
संगहि सँग खेलत रहे, यह कहि पछिताहीं।
दूत एक सँग लै गयौ बलराम कन्हाई।
कछु ठगौरी सी करी मोहिनी लगाई।
बारी न दोउ है गए हम देखत ठाढ़।
सूर प्रभु पै निठुर ह्वै अनतै गए गाढ़—सा ३९१५।

बचाना उचित नहीं समझा;[१७] परंतु अगले दिन कंस के दूत के आने की बात सुनते ही रात्रि के 'दु:स्वप्न' का स्मरण करके वे अत्यंत त्रस्त हो जाते हैं[१८]।

उधर कंस को भी इसी अवसर पर दु:स्वप्नों से आगामी अनिष्ट की सूचना मिल जाती है। बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाने का निश्चय करके जब कंस सोता है तब उसको स्वप्न में भी ये दोनों बालक काल के समान सामने खड़े दिखायी देते हैं जिससे वह शंकित होकर जाग पड़ता है। उसके साथ ही सब रानियाँ भी जागती और व्याकुल होकर उसके अकुलाने का कारण पूछने लगती हैं। कंस उन रानियों से तो कुछ नहीं कहता लेकिन उसका जी बराबर धड़कता रहता है[१]। पति को निरुत्तर देख कर रानियाँ बार-बार उसकी चिंता का कारण जानना चाहती हैं, लेकिन वह कुछ नहीं कह पाता और प्रतिहार, पौरिया आदि को सावधान करके पुन: लेटता है, परंतु बलराम और कृष्ण के भय से उसकी पलक नहीं लगती[२]।

१७ व्याकुल नंद सुनत यह बानी।
धरनी मुरछि परी अति व्याकुल विवस जसोदा रानी।
व्याकुल गोप ग्वाल सब व्याकुल व्याकुल ब्रज की नारि।
व्याकुल सखा स्याम बल के जे व्याकुल तन न सँभारि।
धरनी परत उठत पुनि धावत, हरि अंतर नँद आगें।
'धकधकात उर, नैन स्रवत जल सुत-अंग परसन लागे'।
सिसकत सुनि जसुमति अतुराई कहा महर भ्रम पायौ।
सूर नंद धरनी के आगैं यह भ्रम नहीं सुनायौ—सा ३९११।

१८ निसि सुपने कौं त्रसत भए अति' सुन्यौ कंस कौ दूत—सा ३९५५।

१९ द्रुपद आइ पलिका परयौ, पलकनि झपकानौ।
'स्याम राम सुपने भरे तहँ देखि डरानौ।
अति कठोर दोउ काल से, मरम्यौ अति झझक्यौ।
जागि परयौ तहँ कोउ नहीं जियहीं जिय ससक्यौ।
चौंकि परयौ सँग नारि के, रानी सब जागीं।
उठीं सबै अकुलाइ कै, तब बूझन लागीं।
महाराज झझके कहा सपने कह ससके'।
सूर अतिहि व्याकुल भये पर बर उर धरके—सा ३९१४।

२ महाराज क्यौं आज ही सपने झझकाने'।
पौढ़े अबहीं आनि कै देखे बिलखाने।

इस कुस्वप्न का कंस पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि रात्रि का शेष भाग उसके लिए युग से भी 'भारी' हो जाता है। उसका सारा याम जागते ही बीतता है। उसे एक क्षण भर भी शांति नहीं मिलती कभी उठता है, कभी बैठता है, कभी लेटता है और कभी अजिर में आ खड़ा होता है। इस प्रकार रात्रि का शेष समय उससे काटे नहीं कटता और वह बार-बार 'कौशिक' से 'घरी पुछवाता है। 'कौशिक' के यहाँ गया हुआ एक आदमी लौट नहीं पाता कि उतावली में कंस दूसरा और भेज देता है[२१]।

परमानंददास ने इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण के भी एक स्वप्न की चर्चा की है। जिस दिन व्रज में अक्रूर आने को हैं उस दिन कृष्ण अपने सखाओं के साथ-साथ भाई बलराम को भी सुनाकर कहते हैं—मैंने स्वप्न में देखा है कि हम सब मथुरा गए हैं। वहाँ मैंने कंस को मारकर रंगभूमि में डाल दिया है। पश्चात्, मैं अपने कुल के लोगों से मिलता हूँ[२२]।

ल *भावी गति-विधि निर्देशक स्वप्न*—कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी दिखायी दे जाते हैं जिनमें भावी गति विधि-संबंधी निर्देश रहता है। सामान्य व्यक्ति चाहे

कहा सोच ऐसौ परयौ ऐसौ पुहुमी कौ।
काहौ सुधि मन मैं रही कहिये अप जी कौ।
रानी सब व्याकुल भईं कछु भेद न पावैं।
तब आपुन सखहिं कह्यौ वह नहीं जनावै।
सावधान करि पौरिया, प्रतिहार जनायौ।
सूर श्याम बल-स्याम कैं मांहि पलक लगायौ—सा २९१४।

२१ एक जाम नृप कौं निसि जुग तैं भइ भारी।
आपुन हूँ जाग्यौ संग जागी सब नारी।
'कबहुँ उठत बैठत पुनि कबहुँ सेज सोवै'।
कबहुँ अजिर ठाढ़ौ ह्वै ऐसैं निसि खोवै'।
बार-बार 'कौशिक' सौं, निसि-घरी बुझावै।
एक जात पहुँचै नहीं अरु एक पठावै—सा २९१७।

२२. अपने हाथ कंस मैं मारौ।
हँसि गोपाल कहत ग्वालन सौं रंगभूमि मैं डारयौ।
कहो बलराम कहो श्रीदामा आज रात कौ सपनौ।
हम तुम सबनि गए मधुपुरी मिलयौ जाति कुल अपनौ—परमा ८७८।

ऐसे स्वप्नों पर विश्वास न करे परंतु धर्म-भीरु हिन्दू-समाज उनकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता विशेषकर उस समय जब स्वप्न में कोई देवता कार्य-विशेष का सपादन करने का आदेश दे। धर्म प्राण जनता ऐसे आदेश का उल्लंघन करने का कभी साहस नहीं करती; क्योंकि वैसा करने पर उसे अनिष्ट होने की आशंका होती है। इंद्र की पूजा के अवसर पर सात वर्षीय कृष्ण जब स्वप्न में एक अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गिरि गोवर्द्धन की पूजा का उसके द्वारा आदेश मिलने की बात कहते हैं[२१] तब पहले तो कोई सुखी होकर उनकी बात मानने को कहता है और कोई इंद्र के भय से डरता है;[२४] अंत में सब गोवर्द्धन-पूजा के लिए सहमत हो जाते हैं।

य अन्य स्वप्न—अष्टछाप-काव्य में वर्णित उक्त स्वप्न सामान्यतया ऐसे अवसर पर दिखायी देते हैं जब पात्रों को तत्संबंधी घटनाओं की सूचना नहीं है। इनसे भिन्न वर्ग में उन गोपियों के स्वप्न आते हैं जो विरहिणी होने के कारण प्रतिपल प्रियतम के ध्यान में लीन रहती हैं। प्रथम तीनों वर्गों के स्वप्न अष्टछापी कवियों ने सत्य होते दिखाये हैं; क्योंकि वे अकस्मात् दिखायी दिये हैं; परंतु गोपियों के स्वप्न उस प्रियतम से संबंध रखते हैं जिसका ध्यान वे कभी छोड़ती ही नहीं। अतएव इनके स्वप्नों की सत्यता-असत्यता के संबंध में अष्टछापी कवि प्राय: मौन रहे हैं। विरह की व्यथा के कारण पहले तो गोपियों को नींद ही नहीं आती कि स्वप्न दिखायी दें, पर यदि कभी जरा देर को उनकी आँख लगती है और उन्हें स्वप्न दिखायी देता है तो बीच ही में उनकी नींद टूट जाती है[२५]। कभी-कभी वे स्वप्न में प्रियतम के संयोग सुख का अनुभव भी करती हैं, परंतु उसी समय आँख खुल

२१ भोर महर ढिग स्याम बैठि कै, कीन्हौ एक बिचार बनाइ।
सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं इक बड़ौ पुरुष अवतार बनाइ।
कहन लाग्यौ मोसों वै बातैं पूजत हौ तुम काहि मनाइ।
गिरि गोवर्धन देवनि कौ मनि सबदु तार्को भोग पठाई—सा ८१६।

२४ कोउ-कोउ कहत करौ अब एतहिं कोउ यह कहत करे को माँ।
सूरदास कोउ सुनि सुख पावत कोउ बरजत सुरपतिहिं डराै—सा० ८२।

२५ सोवत मैं सुपनैं सुनि सजनी, ज्यौं निपनी निधि पावै।
जनतहिं जागि अचानक कोकिल उपवन बोलि जगाई—सा १९५६।

जाने से उनकी 'हिलकी' रोके नहीं रुकती[२६]। पश्चात्, उनकी आँख फिर लगती नहीं और स्वप्न के संयोग-सुख से भी वे वंचित हो जाती हैं[२७]।

२ *शपथ पर विश्वास*—सभी देशों के निवासी यह विश्वास करते हैं कि जो बात 'शपथ' खाकर कही जायगी अथवा जिसके करने के लिए 'शपथ' दिला दी जायगी सामान्यतया व्यक्ति उसका निर्वाह अवश्य करेगा। 'शपथ' के प्रति विश्वास का यह भाव वातावरण अथवा संस्कार के प्रभाव से बाल्यावस्था से ही अंकुरित हो जाता है। इसका एक बहुत रोचक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलता है बालक कृष्ण माता से गाय चराने जाने की आज्ञा चाहता है; परंतु उसे भय है कि जमुना में मैं कहीं स्नान न करूँ, इस भय से माता मुझे जाने से रोक सकती है। अतएव वह पहले ही कह देता है कि तू मुझसे 'सौंह' या 'शपथ' ले ले, मैं जमुना में स्नान नहीं करूँगा[२८]।

'शपथ' या 'सौंह' का दूसरा उदाहरण 'दान-लीला प्रसंग' में मिलता है। श्रीकृष्ण जब गोपियों को उनसे 'दान' लेने के लिए रोकते हैं और मुँह फेरकर भौंह 'मोरते' हैं तब गोपियाँ उनको नंद की गोधन की, यशोदा की और बलदाऊ की 'सौंह' दिलाकर पूछती हैं कि 'भौंह सकोरने' का कारण सच-सच बता दो[२९]। उनके 'सौंह' दिलाने के मूल में भी यही विश्वास है कि अब कृष्ण झूठ नहीं बोलेंगे। कृष्ण ने हँसकर गोपियों की बात उड़ाते हुए श्रीदामा से कहा—जरा तुम्हीं इन्हें

२६ 'सुपनैं हरि आए हौं किलकी'।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं सहि न सकी रति तिल की।
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं रोके रुकति न हिलकी'—सा १९६१।
२७ बहुरौ भूमि न आँखि लगी।
'सुपनेहू के सुख न सहि सकी नींद जगाइ भगी'—सा १२६५।
२८. सूरदास है साखि जमुन-जल 'सौंह देहु जु नहैहौं'—सा ४१२।
२९ कहा हँसत मोरत हौ भौंह।
छोरि कहौ मनहिं जो धारे, तुमहिं 'नंद की सौंह'।
और 'सौंह तुमकौं गोधन की सौंह माइ जसुमति की।
'सौंह तुमहिं बलदाऊ की है कहौ बात या मति की।
बार-बार तुम भौंह सकोरतो कहा आपु हँसि रीझे।
सूर स्याम हम पर गुन पारो, की मनहीं मन खीझे—सा १५७१।

समझायीं कि क्या ऐसी बातों में 'सौंह दिलाना' चाहिए[१०]। तब श्रीदामा ने गोपियों से समझाया—हँसी की ऐसी बातों में 'सौंह' नहीं दिलायी जाती। तुम सब भी परस्पर हँसी कर रही हो, लेकिन हम तो तुम्हें 'सौंह' नहीं दिला रहे हैं[११]। वास्तव में 'शपथ' खाना या खिलाना बहुत अच्छी बात नहीं समझी जाती इसी से गुप्त जी ने उसे 'दुर्बलता का चिह्न' कहा है[१२]। श्रीदामा भी 'नान्हे' लोगों को ही 'सौंह' दिलाने के योग्य समझता है, श्रीकृष्ण-जैसे प्रभु को नहीं[१३]।

'शपथ' का तीसरा उदाहरण 'परमानंदसागर' में मिलता है। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि के उर का गजमोती' देखकर जब सखी उससे पूछती है कि यह तुम्हें कहाँ मिला तब उसका उत्तर है—मुझे यह 'दधि के पलटे' में श्रीकृष्ण से मिला है, यदि तुम्हें इस पर विश्वास न हो तो 'सपथ' देकर उनसे पूछ लें[१४]। चंद्रावली का यह कथन भी सूचित करता है कि शपथ खा लेने' या खिला दिये जाने' पर कोई झूठ नहीं बोल सकता।

२ *शाप या कोसने में विश्वास*—मानवीय स्वभाव के अनुसार, जिस व्यक्ति से हमें कष्ट मिलता है, उसके प्रति शालीनतावश अपशब्द का प्रयोग हम भले ही न करें, फिर भी उसके लिए हृदय में 'शाप' देने-जैसी भावना अवश्य जाग्रत होती है

१० हँसत सखनि सौं कहत कन्हाई।
मैया की बाबा की दाऊ जू की सौंह दिवाई।
× × × ×
'ऐसी बातनि सौंह दिवावति', अधिक हँसी मोहिं आवति।
सूर स्याम कहैं श्रीदामा सौं तुम काहैं न समुझावत—सा १५७२।

११ श्रीदामा गोपिनि समुझावत।
हँसत स्याम के तुम कह जान्यौ काहैं 'सौंह दिवावत'।
तुमहूँ हँसौ आपने सँग मिलि हम नहिं सौंह दिवावत'—सा १५७३।

१२. 'दुर्बलता का ही चिन्ह विशेष शपथ है—'साकेत', अष्टम-सर्ग, पृ १८८।

१३ 'नान्हे लोगनि सौंह दिवावहु ये सानी प्रभु सबके—सा १५७३।

१४ यह हरि के उर को गजमोती।
चंद्रावली कहाँ तैं पायौ दूरि करत दिनमनि की जोती।
··· ··· ··· ।
··· ··· मैं दधि के पलटे है पायौ।
जौ न पत्याहु तौ सपथ दै पूछहु' परमानंद दास तिन सँग आयौ—परमा ४११।

जिसको प्रचलित भाषा में 'कोसना' कहते हैं। यद्यपि सभी जानते हैं कि हमारे 'शाप' या 'कोसने' में अन्यायी, अत्याचारी या पीड़क का प्रत्यक्ष या तत्काल अनिष्ट करने की सामर्थ्य नहीं होती, फिर भी कष्ट देनेवाले को 'कोसकर' जनसाधारण को एक प्रकार का संतोष होता ही देखा गया है। शाप' देने या 'कोसने' की बात वस्तुतः तब अधिक सामने आती है जब पीड़ित जन असहाय या असमर्थ होता है। कारण यह है कि यदि उसमें अत्याचारी का सामना करने की सामर्थ्य हो तब तो ईंट का जवाब पत्थर से देकर वह अपना बदला सहज ही ले सकता है। अष्टछाप काव्य में इसके भी दो-एक उदाहरण मिलते हैं। सूरदास के वसुदेव-देवकी बंदीगृह में जब कंस द्वारा मरवाये गये सात पुत्रों का, और चोरी से भगाकर बचाये गये आठवें पुत्र कृष्ण का स्मरण करते हैं, तब उस नृशंस से बदला लेने में सर्वथा असमर्थ होने के कारण उसको कोसते हुए वे कहते हैं कि वह मर जाय, विधाता उसको 'निरबंस' करे और किसी भी तरह उसका जड़-मूल से नाश हो जाय[१५]।

कभी-कभी व्यक्ति को अनेक कारणों से ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जिनसे यद्यपि उसकी प्रत्यक्ष हानि नहीं होती परंतु हृदय से वह जिनको सर्वथा अनुचित समझता है। ऐसी स्थिति में भी अपनी परवशता के कारण वह आज्ञा देनेवाले को मन ही मन 'कोसने' लगता है। सूरदास के अक्रूर की स्थिति ऐसी ही है। कंस अक्रूर को बलराम और श्रीकृष्ण को वृन्दावन जाकर मथुरा लिवा लाने की जो आज्ञा देता है, उसे अनुचित समझ कर वे भी उस हत्यारे के 'निर्बंश' होने की बात कहकर मन ही कोसते हैं[१६]।

अत्याचारी और अन्यायीजन कभी-कभी ऐसे अनुचित कार्य करते हैं जिनसे हमारी तो प्रत्यक्ष हानि नहीं होती फिर भी जिन्हें हम बहुत बुरा समझते हैं। ऐसी स्थिति में हमारी सहानुभूति पीड़ित के साथ होती है और हम शक्ति भर उसकी रक्षा या सहायता करना चाहते हैं। परंतु यदि अपनी शक्ति या साधन हीनता और परवशता के कारण हम वैसा करने में असमर्थ होते हैं तब खीजकर अत्याचारी को कोसने लगते हैं। यही स्थिति मथुरा में बसनेवाली सूरदास की वात्सल्यमयी

१५. 'मरै वह कंस, निरबंस बिधना करै' सूर करौं दूर होइ वह निमूल्यो—सा १ ८२।
१६. सुफलक-सुत मन परयौ बिचार। 'कंस निर्बंस होइ हत्यार'—सा २९४१।

उन नारियों की है जो अत्याचारी कंस के द्वारा बुलाये गये बलराम और कृष्ण को उसकी राजसभा की ओर आते देखती हैं। नृपति कंस का विरोध करने की सामर्थ्य तो उनमें है नहीं, अतएव मोहन रूपधारी बालकों पर क्रोध करनेवाले कंस को 'निर्बंस' होने का शाप देकर और इस प्रकार उसे 'कोसकर' ही अपनी परवशता जनित खीझ व्यक्त करती हैं[१७]।

४ *आशीर्वाद में विश्वास*— शाप' या 'कोसने' में जिस प्रकार अत्याचारी या अन्यायी का अनिष्ट होने की कामना रहती है, उसी प्रकार किसी को 'आशीर्वाद' या 'असीस' देने के मूल में उसकी मंगल-कामना का भाव रहता है। मानव में मोह ममता की भावना इतनी प्रबल होती है कि आत्मीयजन के लिए उसके हृदय से सदैव 'आशीर्वाद' ही निकलता है, अतएव काव्य में उसकी चर्चा अधिक महत्व की नहीं होती। इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने हमारे प्रति किसी प्रकार का उपकार किया है उसके लिए भी जो आशीर्वचन कहे जाते हैं, वे भी कृतज्ञता-जनित होने के कारण सामान्य महत्व के ही होते हैं। सबसे अधिक महत्व के आशीर्वचन तो वे होते हैं जो किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति कहे गये हों जिससे हमारा कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, जिसकी हानि से हमारी हानि अथवा जिसके लाभ से हमारा लाभ नहीं है; परंतु जिसके प्रति हमारी सहानुभूति मानवता के नाते ही हो जाती है।

अष्टछाप-काव्य में इसका एक बहुत सुंदर उदाहरण मथुरा की उन नारियों के आशीर्वचनों में मिलता है जो उन्होंने रूप-गुण-निधान बलराम और श्रीकृष्ण को, अत्याचारी कंस के बुलाने पर उसके दरबार की ओर जाता देखकर वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर कहे हैं। कंस से दोनों बालकों को बचाना तो उन नारियों के हाथ की बात नहीं है अतएव दोनों भाइयों का नाम ले-लेकर कोई तो विधाता से उनकी कल्याण-कामना के लिए प्रार्थना करती और आशीर्वाद देती है कि दोनों सकुशल घर

१७ रथ पर देखि हरि-बलराम।
निरखि कोमल-चारु मूरति, हृदय मुक्ताराम।
× × ×
कंस को निरबंस ह्वै है करत इन पर ताम—सा १ १९।

पहुँचे,[३८] कोई उन्हें जीवित रहने की 'असीस' देती है[३९] और कोई उनकी जीत मनाती है[४०]।

ग कवि-प्रसिद्धियाँ—कवि-वर्ग में कुछ विश्वास परंपरा से प्रचलित रहते हैं जिनकी सत्यता की परख करने की आवश्यकता लोग नहीं समझते और जिनका प्रयोग निस्संकोच किया करते हैं, यहाँ तक कि कुछ असंगत बातों का वर्णन भी कवि वर्ग में असमीचीन नहीं माना जाता। इसका कारण बताते हुए डा० गुलाबराय ने लिखा है—'इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो, परंतु उनके संबंध में सारा सहृदय समाज एकमत रहता है और एक परंपरागत बिना लिखा-पढ़ी का समझौता-सा बन जाता है कि कम से कम कविता में इन बातों का इसी प्रकार से वर्णन किया जाय'[४१]। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भी 'कवि-समय' के अंतर्गत लोक और शास्त्र-विरोधी वे ही बातें आती हैं जिन्हें प्राचीन काल के पंडित सहस्र-शास्त्र वेदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशांतर और द्वीपांतर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गये हैं। देश-कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए[४२]। अस्तु। अष्टछाप-काव्य में जिन कवि-प्रसिद्धियों का वर्णन हुआ है वे, मुख्य रूप से पशु, पक्षी कीट-पतंग पुष्प और नक्षत्र से संबंधित हैं।

१ पशुओं से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ—हाथी के मस्तक से एक प्रकार का मोती या मणि निकलना कवियों में प्रसिद्ध रहा है। गो० तुलसीदास ने 'गजमनि' या 'गजमुक्ता' की चर्चा अपने काव्य में अनेक स्थलों पर की है[४३]। अष्टछाप-काव्य

३८. जननि बैठें परसी बौरस, कहति सब पुर-बाम।
बोलि पठयो बंस इनकौं करैं यौं कह काम।
गौरि कर विधि सौं मनावति आसिस दै दै नाम'—सा १ ११।
३९ सूर 'असीस देति सब सुंदरि जीवहिं अपनी माँ के प्यारे री'—सा १ ११।
४० 'होनै जीति बिधाता इनकी करहु सहाइ सबारे।
सूरदास 'चिर जिवहु दुष्ट हनि दोऊ नँद-दुलारे'—सा १ १२।
४१ श्री गुलाबराय का 'पोद्दार-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित 'कवि-समय' शीर्षक लेख पृ ५२१।
४२. हिन्दी साहित्य की भूमिका' पृ २२५।
४३.क गज मनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई— विनय-पत्रिका' ६२।

में भी कई स्थलों पर इसका उल्लेख हुआ है। सूरदास ने बालकृष्ण को 'गजमनिया' धारण किये बताया है[४४] तो परमानंददास ने 'हरि के उर का गजमोती, जिसकी कांति 'दिनमनि' की ज्योति से बढ़कर है, चंद्रावली के पास बताया है[४५]।

२ *पक्षियों से संबंधित कवि-प्रसिद्धियाँ*—चकई चकवे का दिन में मिलन और रात में वियोग होने[४६] चकोर और चकोरी का एकटक चंद्रमा की ओर निहारने[४७] तथा अंगार या उसकी चिनगी चुगने[४८] चातक या पपीहे का 'पिउ पिउ' की वर्ष भर रटने पर प्यास केवल स्वाती नक्षत्र की बूँदों से ही बुझाने,[४] हंस का

ख माल सुबिसाल चहुँ पास बनि 'गजमनी —गीता ७-५।
ग बसन कंज महँ जनु जुग पाँति बखिर 'गजमोति'—गीता ७-२१।
घ 'गजमुकुता' हीरा मनि चौक पुराइय हो—'रामलला नहछू' ४।
४४ पहुँची करनि पदिक उर हरि-नख कठुला कंठ, मंजु 'गजमनियाँ'—सा १०-१ १।
४५ यह हरि के उर को गजमोती'।
चन्द्रावली कहाँ तैं पायो दूरि करत दिनमनि की जोती—परमा ४११।
४६ क चकई री चलि चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग—सा १ ११७।
ख संपति चकई भरतु चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आस्रम पींजरा राखे भा भिनुसार—'मानस', अयोध्या, दो २१५।
ग पावस-निसि अँधियार में रह्यो भेद नहिं आन।
राति-द्यौस जान्यौ परत लखि चकई चकवान—बिहारी-बोधिनी', ५६८।
४७ क ज्यों चितवत ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान—सा १ १५८।
ख ज्यों चकोर चंदा तन चितवत, त्यों आली निरखत गिरिवरधर—परमा १७५।
ग. ज्यों चकोर चाहत उजराई चंदमवन द्वै पखी ओम—परमा ७२१।
घ सुमिरत 'लोचन चकोर मेरे तुम बदन इंदु', किरनि पान दै री—गीधि ४०।
ङ अधिक सनेहँ देह भै भोरी सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
—'मानस बाल, दो २११।
४८ क पर-नारि चंद चकोर विमुख मन लागत अँगारमयी—सा १-२११।
ख चिनगी चुगत चकोर ज्यों भसम होत सब अंग।
ताहि हमारे मित्र तहाँ मिलै पीउ लगि संग—पखाल।
४९ क मन चातक जल तज्यौ स्वाति हित एक रूप व्रत धारयौ—सा १-२१।
ख सुनि बरसिनि पिउ प्रेम की चातक चितवन चारि।
घन आसा सब दुख सहै अनत न जाँचै बारि—सा १ ११५।
ग लखि कहै बलि हम पंछी रहै भाखा हहै जु पिउ पिउ कहै।

मोती चुगने५० अर्थात्, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, निर्मल जल पीने५१ और नीर क्षीर-विवेकी होने५२ कोयल का अपने बच्चे स्वयं न से कर कौए के घोंसले में रख आने और उसके बच्चों का वसंत ऋतु में अपने कुल में आकर मिल जाने५३ आदि का जो वर्णन अपभ्रंशपी कवियों के साथ-साथ हिन्दी के अन्य कवियों ने किया है, वह 'कवि प्रसिद्धि' के ही अंतर्गत आता है। इस प्रसंग में विस्तार से उक्त पक्तियों की चर्चा करते समय पीछे लिखा जा चुका है।

२ *कीट-पतंग संबंधी कवि प्रसिद्धियाँ*—कीट-वर्ग में सर्प या फनिग के पास मणि होना और यह उसे अत्यंत प्रिय भी होना५४ तथा पतंग-वर्ग में भ्रमर

× × ×

जब कबहूँ घन स्वाति न बरसे, तौ वरि जाइ चंचु जल परसे—नंद, रूप पृ १७

घ चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिये न पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटें घटेगी आनि—तुलसी दोहा २७६।
सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहिं प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को—तुलसी दोहा १६।
जाँचै बारह मास पिये पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही मेह मन—तुलसी दोहा, ३०।

५० क. हंस उज्ज्वल पंख निर्मल अंग मलि मलि न्हाहिं।
मुक्ति मुक्ता अनगिनत फल तहाँ चुनि-चुनि खाहिं—सा १ ३३८।
ख सूरदास मुक्ताफल भोगी हंस ज्वार क्यों चुनिहैं—सा १ ५३।
ग. कै हंसा मोती चुगै कै भूखा रहि जाइ—लोकोक्ति।

५१ 'रसज्ञ-रंजन' पृ ६।

५२. जड़ चेतन गुन दोष मय विस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार—'मानस' बाल दो ६।

५३ ज्यौं कोइल-सुत काग जियावै भाव भगति भोजन जु खवाइ।
कुहुकि कुहुकि आएँ बसंत रितु अंत मिलै अपने कुल जाइ—सा ३५६१।

५४ क हम तो सब बातनि सचु पायौ।
गोद खिलाइ पिवाइ बेद पय पुनि पालनें झुलायौ।
देखति रहीं फनिग की मनि ज्यौं गुवाल क्यों न भुलायौ—सा ३५३५।
ख. तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्यार्धाह देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ—तुलसी, दोहा ३३५।

का चंपे के फूल के निकट न जाना[५४] आदि कवि-वर्ग में प्रसिद्ध रहा है।

४ *पुष्प-संबंधी कवि प्रसिद्धियाँ*—यों तो अशोक, कर्णिकार या कनेर, कुंद, कुमुद, कुरवक, मदन, चंपक, तिलक नीलोत्पल पद्म या कमल, प्रियंगु, भूर्जपत्र, मंदार, मालती आदि कई वृक्षों और पुष्पों के संबंध में कवि प्रसिद्धियाँ हैं,[५५] तथापि अष्टछाप-काव्य में इनमें से केवल 'कमल' के संबंध की कुछ 'प्रसिद्धियों' की ही विशेष रूप से चर्चा है यथा कमल का सूर्य के दर्शन से विकसित होना और चंद्रमा को देख कर मुँद जाना[५६] तथा भौंरे का उसमें बंदी हो जाना[५७]। कुंद के लालिमा लिये हुए फूल को अष्टछापी कवियों का श्वेत मान कर दाँत से उसकी उपमा देना भी कवि-प्रसिद्धि के अंतर्गत माना जा सकता है[५९]।

५. *नक्षत्र-सम्बन्धी कवि प्रसिद्धियाँ*—नक्षत्रों के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रसिद्धियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं। पहली में शनि का वर्ण नील, शुक्र का श्वेत बृहस्पति का पीला और भौम का लाल माना गया है[१]। दूसरे, स्वाति नक्षत्र में बरसे जल के सम्बन्ध में प्रसिद्धि यह है कि सर्प के मुख में पड़ने पर विष,

५५. कूरम कँमल, कमधुज है कदंम फूल गौरदे गुलाब रानों केतकी बिराज है।
पाँवरि पँवार जूही सोहत है चंद्रावत, सरस बुँदेला सो चमेली साज-बाज है।
'भूषन भनत मुचुकुंद बड़ गूजर है बघेले बसंत सब कुसुम समाज है।
लेइ रस एतेन को, बैठि न सकत अहै अलि नवरंगजेब चंपा सिवराज है।
—शिवा-बावनी २९।

५६ डा हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' पृ २११ से २१२।
५७ क जैसें कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान—सा १-२११।
ख प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुवास—सा १ ११७।
५८. भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै कमल बँधावै आप—सा १ १२५।
५९ चिबुक मध्य मेचक रुचि उपजति राजति बिंब कुंद रदनो—सा वै॰ पृ १११।
१ क 'नील सेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल रुनाई।
सनि गुरु-असुर देवगुरु' मिलि मनु 'भौम' सहित समुदाई—सा १०-१०८।
ख मुक्ता विद्रुम-नील पीत -मनि लटकत लटकन भाल री।
मानौं सुक्र-भौम-सनि-गुरु मिलि ससि कैं बीच रसाल री—सा १ १४।
ग बसरि के मुक्ता म भाई बरन बिराजत चारि।
मानो 'सुरगुरु सुक्र, भौम सनि, चमकत चंद मँझारि—सा २११८।

कदली पर पड़ने से कपूर और सीपी में पड़ने पर मोती बन जाता है[९१]। नंददास ने इन तीन बातों में से केवल प्रथम दो का ही वर्णन किया है[८९२]।

समीक्षा—भारतीय समाज में प्रचलित जिन विश्वासों और लोक-मान्यताओं की चर्चा ऊपर की गयी है, उनमें से प्राय सभी के प्रति आज भी उस वर्ग की आस्था बनी हुई है जो अभी तक विदेशी संस्कृतियों से किसी सीमा तक अप्रभावित रहकर अपनी ही संस्कृति का पुजारी बना हुआ है। ग्रामीण वर्ग के तो सभी स्त्री-पुरुषों में परंतु नगर में बसनेवाले पुरुषों में कम, पर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों में विशेष रूप से इन विश्वासों और मान्यताओं के प्रति श्रद्धा-भावना देखी जाती है। गीति काव्य में यद्यपि ऐसी बातों की चर्चा के लिए बहुत कम अवकाश रहता है, तथापि इनका वर्णन करनेवाले अष्टछापी कवियों की निस्संदेह यह उल्लेखनीय विशेषता है जो वे धर्मप्राण भारतीय जनता के हृदय को समझ सके और उसके मनोभावों को अपने काव्य में इस प्रकार चित्रित कर सके। काव्य-कला-संबंधी विशेषताओं को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी, केवल इस विशेषता के कारण ही, जन-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष के अध्येता के लिए अष्टछाप-काव्य का महत्व सदैव बना रहेगा और भारतीय समाज में उसकी लोकप्रियता भी दिन-दिन बढ़ती जायगी।

९१. कदली सीप भुजंग-मुख स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए तैसोइ फल दीन—रहीम-रत्नावली २२।

८९२ स्वाँति बूँद मनि-मुख विष होई कदली दल कपूर होइ सोई—नंद, रूप पृ १।

६ वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका के साधन रूप

वाणिज्य, व्यवसाय तथा जीविका-साधन की चर्चा ऐसा तथ्यात्मक विषय है जिसके लिए गीतिकाव्य में बहुत कम अवकाश रहता है। फिर भी गीतिकाव्य ग्रामीण जीवन को लेकर लिखा गया हो, उसमें तत्संबंधी वर्णन की संभावना और भी नहीं रह जाती, क्योंकि व्यापार आदि का संबंध मुख्यतः नागरिक जीवन से रहता है। स्वयं सूरदास ने एक पद में कहा है कि निर्गुण-जैसी बहुमूल्य वस्तुएँ मथुरा जैसी बड़ी नगरी में ही बिक सकती हैं, वृन्दावन-जैसे ग्राम में नहीं[1]। इन्हीं दो कारणों से अष्टछाप-काव्य में वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधनों का उल्लेख बहुत कम हुआ है। कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी ने तो इनकी चर्चा नहीं के बराबर की है, एवं परमानंददास के काव्य में तत्संबंधी कुछ स्फुट शब्द प्रयुक्त हुए हैं। केवल सूरदास के पदों में तद्विषयक उल्लेख अधिक मिलते हैं, यद्यपि वे भी क्रमबद्ध नहीं हैं, अस्तु। अष्टछाप-काव्य में वर्णित वाणिज्य व्यवसाय तथा जीविका के साधन-रूप-वर्णन को अध्ययन की सुविधा के लिए, पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१ स्थान रीति और वस्तुएँ, २. रूप और साधन, ३. विविध व्यवसाय और व्यवसायी ४ जीविका के विविध साधन-रूप तथा ५. अन्य वर्ग।

१ *व्यापारिक स्थान रीति और वस्तुएँ*—'वाणिज्य' के लिए अष्टछाप-काव्य में 'वनिज'[2] शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं यह शब्द व्यापार की वस्तु या सामान' के अर्थ में भी आया है[3]। 'वाणिज्य के लिए अष्टछाप-काव्य में 'ब्यौपार'

१ यह निर्गुन निरमोल गठरी अब किन करत धरी।
यह ब्यौपार यहाँ न समातो पुरी बड़ी नगरी—सा १६६१।

२.क और बनिज' में नाहीं लाहा होति मूल में हानि—सा १११।

ख या बन में तुम 'बनिज करति हो नहिं जानति मोकौं बटपारो।

× × ×

सूर बनिज तुम करति यहाँ लेनो करिहौं ब्याज तिहारी—सा १५२४।

ग. प्रीति करी मोसौं तुम काहे न बनिज' करति ब्रज-आई—सा १५६६।

३ क हैं लि परमानु-मता सब दीन्ही बड़ा बनिज' हम पास—सा १५७५।

ख हींग मिरिच पीपरि, अजवाइनि ए सब बनिज कहावैं—सा १५१८।

शब्द भी मिलता है[४]। व्यापार करनेवाले को[५] सूरदास ने 'व्यापारी'[६] या 'व्यौपारी'[७] कहा है और 'व्यापार की चीज' के लिए 'गथ',[८] 'माल',[९] 'वस्तु', 'सौंज'[११] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। सौदा' शब्द आज दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक 'खरीदी गयी चीज' के लिए और दूसरे, खरीदने के व्यवहार के लिए। परमानंददास के एक पद में सौदा' शब्द पहले अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[१२] और उनके तथा सूरदास के कुछ पदों में दूसरे अर्थ में[१३]। व्यापारी का माल खरीदनेवाले को सूरदास ने 'ग्राहक' कहा है[१४]। परमानंददास के कृष्ण को भी गोपियों द्वारा राधा के गोरस का 'अमोलो गाहक' कहा गया है[१५]। व्यापारी की विक्रय के योग्य वस्तु को 'ग्राहक' उचित मूल्य देकर 'मोल' ले सकता है[१६]। दान-लीला-प्रसंग में सूरदास ने गोपियों का 'वनिज' मोल लेने का प्रस्ताव किया है[१७]।

ग. कौन वनिज' करि मोहि सुनावति—सा १५२१।
४ क. यह व्यौपार' उहाँ जु समातो दुती बड़ी नगरी—सा ३६६१।
ख यह 'व्यौपार' तुम्हारो ऊधौ ऐसें ही धरयौ रैहै—सा ३६६४।
५. 'ऋग्वेद' में व्यापारी के लिए वणिक् शब्द आया है—१ १२२ ११।
६ बाइबिडंग, बहेरा, हरें, बक गोन 'व्यापारी'—सा १५२८।
७ क. यह मारग चौगुनो चलाऊँ तौ पूरौ 'व्यौपारी'—सा १ १४६।
ख आयौ घोष बड़ौ व्यौपारी —सा ३६६५।
८. कहौ कान्ह कह गथ' है हमसौं—सा १५२८।
९. तुम जानति मैं हूँ कछु आनत जो-जो माल' तुम्हारैं—सा १५२९।
१ ऊधौ तुम ब्रज में पैठ करी।
लै आए हो नफा जानि कै सबै 'वस्तु' अकरी—सा ३६६१।
११ करि बिचार या सौंज' लादिकै हरि कैं पुर लै जाहि—सा १ ११ ।
१२. देखि देखि सोभा नखसुंदरि 'सौदा' लेन लाल सौं आई—२६४।
१३ क सूर स्याम कौ सौदा' साँचो—सा १ ११ ।
ख सुंदर भूषन पहिरे सुंदरि 'सौदा करन' लाल सौं आई।
सावधान ह्वै 'सौदा कीजै — —परमा २६१।
१४ क. होउ मन राम नाम कौ गाहक'—सा १ ११ ।
ख सूरदास गाहक नहिं कोऊ देखियत गरे परी—सा ३६६१।
१५. गोरस राधिका लै निकरी
नंद को लाल अमोलो गाहक ब्रज से निकसत पकरी—परमा १८५।
१६ हमें नँदनंदन मोल लिये—सा १ १७१।
१७ सुनहु सूर कछु 'मोल' लेहिगे कछु इक दान अघाए—सा १५२९।

व्यापार आरंभ करने के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसे अष्टछाप काव्य में मूल[18] कहा गया है। इसी अर्थ में, अर्थात् व्यापारी की सारी 'जमा-जथा' के लिए सूरदास ने एक पद में 'पूँजी' शब्द का प्रयोग किया है[19]। किसी वस्तु को खरीद कर उसके बिकने के समय तक 'मूल' धन उसमें लगाये रहने और लाने, रखने, सजाने आदि के अपने श्रम और बौद्धिक कौशल के बदले में 'ग्राहक' से जो धन 'मूल' से अधिक मिलता है, वह उसका 'नफा'[20] अथवा 'लाहा' या 'लाभ'[21] कहलाता है और यही व्यापारी का चरम लक्ष्य होता है। जो व्यापारी ईमानदार नहीं होता, वह अधिक लाभ के लोभ से कभी-कभी कम भी 'तोल' देता है। इसी से परमानंददास की विनोदिनी गोपियाँ, 'दानी-प्रसंग' में कृष्ण से पूरी 'तोल' देने की बात कहती हैं[22]। किसी वस्तु को बेचने पर यदि व्यापारी को स्थान-विशेष में 'मूल' से कम मिलता है तब वह उसे वहाँ न बेचकर अन्यत्र ले जाता है जहाँ उसे बेचने में लाभ हो सके। व्यापारी की इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके गोपियों ने ऊधव को कभी तो मधुवन के बाजार में 'जोग' बेचने की सलाह दी है[23] और कभी 'कासी ले जाकर,[24] क्योंकि वहाँ अधिक 'लाहु' होने की संभावना है और व्यापारी बिना 'नफा खाये' कभी कुछ बेचने को तैयार नहीं होता। अधिक 'नफे' के लोभ से व्यापारी-

१८.क. होतो नफा साधु की संगति 'मूल' गाँठि नहिं टरतो—सा० १ २६७।
  ख और बनिज में नाहीं लाहा होति 'मूल' में हानि—सा १ ११।
१९ समुझि सगुन लै चले न ऊधौ यह तुम पै सब 'पूँजी' अकेली—सा १०९४।
२ हो आये हो 'नफा' जानिके—सा ३६२१।
२१ और बनिज मैं नाहीं लाहा'—सा १ ११।
२२. सावधान ह्वै सौदा कीजै जो दीजै तो 'तौल पुराई'—परमा २११।
२३ ऊधौ बेगि मधुबन जाहु।
  जोग लेहु सँभारि अपनो, बेचिये जहँ लाहु।
  × × ×
  तहाँ दीजै मूल पूरे नफौ तुम कछु लाहु'।
  जो नहीं ब्रज मैं बिकानौ नगर नारि बिसाहु—सा ३५१७।
२४ जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोर उतारी।
  इतनिक दूरि 'जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है प्यारी —सा ३६६१।
  विशेष—इस उदाहरण में प्रयुक्त 'प्यारी' शब्द पंजाबी भाषा का है जिसका अर्थ है महँगी —लेखिका।

वग कभी कभी 'मकरी' चीजें ले आते हैं जिससे ग्राहकों की खीझ होती है और साधारण लोग उसे खरीदने का साहस नहीं कर पाते जिससे वह 'मकरी' वस्तु बिना बिकी ही रह जाती है। व्यापारियों की इस चाल के संबंध में संकेत करते हुए गोपियों ने ऊधव की 'निर्गुन निरमोल गाठरी' के संबंध में कहा है कि ऐसी 'मकरी' वस्तु का यहाँ कोई 'गाहक' नहीं है इसे तो मथुरा-जैसी 'बड़ी नगरी' में ले जाकर बेचो[25]।

इसी प्रकार व्यापारी वर्ग कभी-कभी अधिक लाभ के लोभ से सामान्य वस्तु का भी अधिक मूल्य चाहते हैं। यदि वह वस्तु जीवन के लिए उपयोगी है तब तो ग्राहक अधिक मूल्य देकर भी उसे खरीदने को विवश होता है, परंतु यदि उसके बिना काम चल सकता है तो ग्राहक को वह चीज बहुत महँगी मालूम होती है और व्यापारी का 'माल' बिना बिके रह जाता है। सूरदास के एक पद में व्यापार की इस स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है। ऊधव 'जोग ठगौरी' बेचने के लिए ब्रज आये हैं जिसकी आवश्यकता गोपियों को है नहीं अत: वे कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' तो मूली के पत्तों-जैसी है जिसके लिए 'मुक्ताहल' देने की मूर्खता कौन दिखायेगा ? अतएव तुम्हारा 'व्यापार' इस गाँव में नहीं चलेगा यह तो जहाँ से लाये हो वहीं किसी के पेट में समा सकता है[26]। यदि व्यापारी को किसी वस्तु का मूल्य 'मूल' से कम मिले तो उसकी 'हानि' होती है जिसका अर्थ है कि व्यापार में 'लाभ' तो हुआ नहीं, उल्टे 'गाँठ' का धन ही उसमें गया[27] और 'हानि' उठाना अपने कार्य में व्यापारी के अयोग्य होने का प्रमाण है।

२५. ऊधो, तुम ब्रज में पैंठ करी।
 ले आए हो 'नफा जानि कै, सबै वस्तु अकरी।
 × × ×
 यह निर्गुन निरमोल गाठरी अब किन करत धरी।
 यह ब्योपार उहाँ जु समातो, हुती बड़ी नगरी।
 सूरदास 'गाहक नहिं कोऊ देखियत गरे परी'—सा ३६६२।
२६. जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
 'मूरी के पातनि के बदलैं को मुक्ताहल दैहै'।
 यह ब्योपार तुम्हारो ऊधो ऐसैं ही धरयो रैहै।
 जिनपै तैं लै आए ऊधो तिनहिं के पेट समैहै'—सा ३६६४।
२७ क. होती नफा साधु की संगति 'मूल गाँठि नहिं टरतौ'—सा १२९७।

नगर में बड़े ब्यापारी बाजार में दूकान सजाकर बैठते हैं। अयोध्या के ऐसे ब्यापारियों यथा 'बजाज, सराफ तथा बनिक', का वर्णन 'मानस' में मिलता है जिनको कुबेर के समान बताया गया है[२८]। बड़े बाजारों के ऐसे ब्यापारियों के 'दलाल' भी घूमा करते हैं जो ग्राहकों को पटाकर उन्हीं दूकानदारों के पास ले जाते हैं जिनसे बिक्री से प्राप्त लाभ का कुछ अंश मिलने की आशा उन्हें रहती है। 'दलाल' को मिला हुआ यह धन 'दलाली' कहलाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है[२९]। अष्टछाप काव्य में अयोध्या, मथुरा या द्वारका-जैसे बड़े नगरों के वर्णन की ओर कवियों का ध्यान न होने से ऐसे बाजार या ब्यापारियों की चर्चा नहीं है। उसमें तो उन ब्यापारियों की चर्चा है जो बैल,[३०] हाथी[३१] या अन्य किसी पशु पर माल लाद कर[३२] एक स्थान से दूसरे को आया करते थे[३३]। जिस ब्यापारी के पास जितने पशु हों, उन सबको एक बार माल से लादकर ले आने को आज भी 'खेप' कहते हैं जिसका प्रयोग अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने एक पद में किया है[३४]।

ऐसे ब्यापारियों के पास सामान्यतया सुदूर प्रदेशों से आनेवाली वस्तुएँ ही रहती थीं। ये लोग जब 'घाट'-विशेष पर नदी पार करते थे तो इनको 'दान' अर्थात 'कर' या 'चुंगी' देनी पड़ती थी जिसको लेकर अष्टछापी कवियों ने

ख और बनिज मैं नाहीं लाहा 'होति मूल मैं हानि'—सा० १ ११ ।

२८. बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की संपदा किमि गाइए।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते—'मानस' उत्तर, २८।

२९. काम-क्रोध-मद-लोभ मोह तू सकल 'दलाली' देहि—सा १ ११ ।

३०. 'बैल' गोन ब्यापारी—सा १५२८।

३१. तुम्हरो 'गथ लाद्यौ गर्यद पर'—सा १५२९।

३२. करि बिसाह यह ठौर लादि कै'—सा १ ११ ।

३३. ब्यापारी के १ पथों की चर्चा पाणिनि ने की है—वारिपथ स्थलपथ कांतारपथ अजपथ शंकुपथ राजपथ, सिंहपथ हंसपथ और देवपथ (पिछले दो का संबंध वायुमार्ग से है)—'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' पृ २१५।

३४. आपो भोग बड़ो ब्यौपारी।
'खेप' लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मे आन उतारी—सा १९६५।

'दान-लीला' का वर्णन किया है। दान' लेने का अधिकार शासन की ओर से मिलता था अर्थात् 'दानी' की नियुक्ति शासक की ओर से होती थी। सूरदास के कृष्ण ऐसे अधिकार को शासक की ओर से 'बीरा' दिया जाना कहते हैं और 'दान' आदि न लेने पर शासक की 'गारी' खाने की भी बात उन्होंने कही है[१५]। श्रीकृष्ण की इतनी बात से गोपियाँ समझती हैं कि उनका संकेत कंस नृपति की ओर ही हो सकता है[१६] जिससे 'दानी' की नियुक्ति शासक द्वारा ही होने की बात की पुष्टि होती है। गोविंदस्वामी की गोपी दान माँगने पर कृष्ण से पूछती है—तुम स्वयं ही 'दान' ले रहे हो या यह अधिकार किसी ने तुम्हें लिखकर दिया है[१७]? उनके एक अन्य पद से ज्ञात पड़ता है कि दूध आदि उन वस्तुओं पर 'दान' नहीं लिया जाता था, जो खिरक से दुहाकर लोग अपने-अपने 'भुवन' ले जाते थे, प्रत्युत लौंग-सुपारी-जैसी उन वस्तुओं पर 'दान' लेने का नियम था जो दूसरे स्थानों से व्यापार के लिए लायी जाती थीं[१८]। उनके कृष्ण जब खिरक से दुहाकर लाये गये

१५. तुम पर काहू दान को दैहै।
'किहिं बीरा दै मोहि पठायौ', सो मोसौं कह लैहै।
तुम भर आइ बैठि सुख करिहो, 'नृप गारी को लैहै'।
अबहीं बोलि पठावैगो री, तो सनमुख को जैहै—सा १५७५।

१६ कौन नृपति (पुनि) आक तुम हो।
ताकौ नाउँ सुनावहु हमकौं यह सुनिकै अति पावति भौ।
हाँहि संसार भुवन चौदह भरि 'कंसहि तैं नहिं दूजो को'।
सो नृप कहाँ रहत सुनि पावैं तब ताही कौं मानैं जो।
कहा नाउँ किहिं गाउँ बसत है ताही क है रहियै तौ—सा १५७८।

१७ 'आपुही लेत किधौं काहू लिखि दीनो' समुझायौ मौं तेसैं—गोविं २६।

१८.क. खिरक दुहाइ गोरस लिए जात अपने अपने भुवन जाकौं'
'दान माँगत जैसैं काहू लादी हैं लौंग सुपारी'—गोविं २५।
ख गोरस लिये जाति री अपने भवन तापर इन बैठनी आन की आन—गोविं २८।
ग. कहो जू दान लेहो कैसो।
'दूध दही गोरस को दान कबहूँ न सुन्यो कान'।
अब मानो लौंग लादी काहू जैसैं—गोविं २६।
घ. खरिक दुहाए गोरस लिए जात अपने अपने भुवन।
अबको दान माँगत कहाँ उन लेयौं—गोविं १४।

गोरस पर 'दान' माँगते हैं तब गोपियाँ खीझकर उन्हें 'अनोखे नए दानी' कहती हैं[३९]। एक अन्य पद में 'दूध-दही' पर 'दान' माँगने की बात को गोविंदस्वामी की गोपियाँ नयी चाल बताती हैं[४०] और संभवतः इसी कारण परमानंददास की गोपियाँ कृष्ण को 'अनोखे-दानी'[४१] और गोविंदस्वामी की 'अचगरी दानी'[४२] कहती हैं। सामान्यतया घाट पर ही 'दान' लेने का नियम था जिसकी पुष्टि गोविंद स्वामी के कृष्ण द्वारा चंद्रावली को घाट पर ही 'दान' वसूलने के लिए रोक लेने से होती है[४३]। यही नहीं इसी कारण सूरदास के कृष्ण अपने को 'पटवारी'[४४] और चतुर्भुजदास की गोपियाँ उनको 'गिरिपटिया' कहती हैं[४५]। दान' या 'चुंगी' आदि से वसूलने की मनोवृत्ति सदा से व्यापारी-वर्ग में रही है। कुंभनदास के 'गोवर्धनधारी' गुजरेटी की चोरी से गोरस बेचनेवाली कहते हैं[४६]। गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से 'दान मार लेने' का उलाहना देते[४७] हुए कहते हैं कि आज दिन-दिन का 'दान वसूल कर लूँगा'[४८]। दानी का कार्य 'कर', जगात' या 'जकात' वसूल करने का होता है। इसलिए सूरदास की गोपियों ने एक पद में उन्हें 'जगाती भी कहा है[४९]।

३९. गोविंद प्रभु आए 'अनोखे नए दानी'—गोवि २५।
४० दूध दही को दान कबहु न सुन्यो कान।
तुम 'यह नई चाल चलाई'—गोवि १६।
४१ क यह गोरस लै रे 'अनोखे दानी'—परमा १७५।
ख 'अनोखे दानी' भये हो मारग रोकत आन—परमा० १६।
४२. सखी हो, कान्ह 'अचगरी दानी —गोवि ४१।
४३ 'जमुना घाट रोकी' हो रसिक चंद्रावलि—गोवि १६।
४४ माखन दधि कह करौं तुम्हारो।
या बन मैं तुम बनिज करति हौ नहिं जानति मोकौं 'पटवारो'—सा १५२४।
४५. 'गिरिपटिया' ह्वै मोर ही मारग रोकत आइ—चतु २६।
४६ हमारी दान दै गुजरेटी।
नित तू चोरी बेचति गोरस आजु अचानक भेंटी—कुंभन ११।
४७ दिन दिन दान मारि गए जु हमारो तब कबहूँ पाले नहि परिया—गोवि २६।
४८. गुजरिया बावरी भई कहु बर गई दान मारि।
आजु गहन पाई नंद की सौं लैहौं दिन दिन को निरवारि —गोवि २७।
४९ सूर स्याम अब भए जगाती —सा १५८।

माल लादकर लानेवाले व्यापारी गोकुल, वृन्दावन-जैसे गाँवों में पैठ करते[५०] या दूकान लगाते थे और मथुरा, काशी-जैसे नगरों में भी माल बेचने ले जाते थे जैसा कि गोपियों द्वारा ऊधव को व्यापारिक 'सौंज' 'हरिपुर' अर्थात मथुरा[५१] और 'जोग मोट' काशी[५२] ले जाकर बेचने की सलाह से स्पष्ट होता है। ये व्यापारी एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्थान पर जाकर माल बेचा करते हैं, कभी-कभी इनको मार्ग में लुट जाने का डर भी बना रहता है जिसकी ओर सूरदास के एक पद में संकेत किया गया है[५३]।

जिस स्थान पर व्यापारी बैठते हैं और ग्राहक क्रय-विक्रय के लिए पहुँचते हैं, उसे 'हाट' या 'पैंठ' कहा जाता है। जायसी के 'पदमावत' में सिंघल के 'हाट' का[५४] और गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' में लंका के 'हट्ट' का[५५] उल्लेख हुआ है[५६]। अष्टछाप काव्य में भी 'हाट'-विशेष में बड़े व्यापारी के समान सिरता से बैठकर नग-विशेष बेचे जाने की बात कही गयी है[५७]। परमानंददास के एक पद में 'बाजार' शब्द भी मिलता है जहाँ राम-जन्म के अवसर पर आनंदमंगल गानेवाली 'सखियों' को पहनाने के लिए राजा दशरथ 'सारी' खरीदने पधारते हैं[५८]।

थोड़ी पूँजी वाले छोटे व्यापारी, जिनके पास दूकान लगाने के साधन नहीं

५०. ऊधो, तुम ब्रज मैं पैंठ करी—सा १४११।
५१. करि बिपाक सब सौंज लादि कै 'हरि के पुर लै जाहि'—सा १४११।
५२. जोग मोट सिर बोझ आनि तुम कत धौं घोष उतारी।
    इतनिक दूरि जाहु चलि कासी, जहाँ बिकत है प्यारी—सा १४२२।
५३. 'बाट घाट कहूँ अटक होइ नहिं', सब कोउ देहि निबाहि—सा १४११।
५४. पुनि देखिय 'सिंघल के हाटा'—पदमा, सिंघ. ख्या, १७-११।
५५. चउहट्ट 'हट्ट' सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना।
    —'मानस', सुंदर १, छंद १।
५६. 'पृथ्वीचंद्र-चरित्र' पृ. १२६ के अनुसार मध्यकालीन नगरों में चौरासी हाटों का वर्णन हुआ है—'इंडिया ऐज सीन इन पाणिनि', पृ. २१८।
५७. मानहुँ 'हाट बैठि निधि लै' हरि-नग निर्मोल लेहि—सा १४११।
५८. घर-घर तें सब सखी बुलाईं आनँद मंगल गावौ।
    दशरथ उठि 'बाजार पधारे' सारी सुरँग बनावौ।
    × × ×
    जो जाके जैसो मन भायो तैसो ताहि पहरायो—परमा ११७।

होते, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ लादकर 'फेरी' लगाते हैं। अष्टछाप-काव्य में यह शब्द इसी रूप में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है, परंतु फेरी लगाकर वस्तुएँ बेचने की बात अनेक पदों में कही गयी है। सूरदास की यशोदा किसी 'फेरी' करनेवाले से कृष्ण के लिए 'भौंरा-चक-डोरी' खरीद कर रखती हैं[५९]। इसी प्रकार परमानंद दास ने 'बेर' और 'आम' बेचनेवालियों के साथ[६०] कांछिन के भी 'फेरी' लगाकर माल बेचने का वर्णन किया है[६१]। सूरदास के एक पद में 'जोग-मोट' की 'बोझ' भी कहा गया है जिसे ऊधव सर पर लादकर ब्रज में आ उतारते हैं[६२]। ब्रज की ग्वालिनें तो दूध, दही, माखन और घृत के माट या मटुकी सर पर उठाकर बेचने के लिए नित्यप्रति ही मथुरा जाती हैं;[६३] क्योंकि वे जानती हैं कि 'गोरस' लोग

५९. दे मैया भौंरा चक डोरी।
जाइ लेहु आरे पर राख्यौ 'काल्हि मोल लै राख्' डोरी—सा ९९६।

६० क कोउ माइ, 'आँब बेचन आई'।
टेर सुनत मोहन उठि दौरे भीतर भवन बुलाइ।
मैया मोहि आम लै दे री संग सखा सब आई—परमा ६७१।
ख कोउ माई, 'बेर बेचन आई'।
सुनी टेर नँद लाल ने भीतर भवन बुलाई—परमा ६७४।

६१ ब्रज में 'कांछिनि बेचन आई'।
आन उतारी नंद के आँगन जसोदा कहन सुहाई—परमा ६७२।

६२ जोग मोट' सिर बोझ आनि तुम, कत धौं घोष उतारी—सा १९२१।

६३ क. ब्रज जुवती मिलि करति बिचार।
'चलौ जाउ मथुरहिं दधि बेंचन' नित तुम करति अबार—सा १४९७।
ख बेंचन चली दधि' ब्रजनारि।
सीस ब्रज के गई ग्वैंड़े, हरष भई सुकुमारि—सा १४९९।
ग. चाह सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छिनाए', जाइ हँकार बुलावहु—सा १५११।
घ 'गोरस बेचन जात मधुपुरी' आय अचानक बन में घेरी—परमा २७९।
ङ गोकुल की ब्रज-नारि 'दह्यौ नित बेचन आवैं'—कुंभन २१।
च सवारें आौ है अहीरौं।
× × ×
होति अबार चतुर्भुज प्रभु मोहि मधुरि बीन कब आहीरौं—चतु ११।

प्राय-कम ही खरीदते हैं[१४]। 'फेरी लगानेवाला अपना माल तब तक सर पर लिये घर घर डोलता है, जब तक वह उचित मूल्य पर बिक नहीं जाता[१५]।

व्यापारी अपनी वस्तु अधिक से अधिक मूल्य पर बेचना चाहता है और ग्राहक उसका मूल्य कम से कम देना चाहता है। ऐसी स्थिति में 'मोल-तोल' होता है। परमानंददास और गोविंदस्वामी के कृष्ण गोपियों से स्पष्ट शब्दों में पूछते हैं कि अपने दूध-दही के ठीक ठीक 'दाम' या 'मोल' कह दो[१६]। कभी कभी बेचनेवाले को प्रलोभन दिया जाता है कि यदि कुछ कम अथवा बिलकुल ठीक दाम बता दो तो सारी चीज खरीदी जा सकती है, और शीघ्र ही सारा माल बिक जाने के लोभ से प्राय व्यापारी इस बात से सहमत भी हो जाते हैं। परमानंददास के कृष्ण व्यापारियों की इस प्रकृति से परिचित जान पड़ते हैं तभी तो उन्होंने 'उचित मोल' बता देने पर सगरी 'मटुकिया' खरीद लेने की बात कही है[१७]। कुंभनदास के कृष्ण और भी चतुर हैं जो माल के साथ उसकी मालकिन को भी घर ले चलने की घात लगाते हैं। ये ग्वालिनी से दही का मोल सच-सच बता देने की बात तो कहते हैं, पर उनके पल्ले है कुछ नहीं। इसलिए कभी तो सखाओं की 'साखी' दिला कर दही लेने को कहते हैं, कभी विश्वास कराने के लिए अपनी 'कंठसिरी' उसके पास रखना चाहते हैं और कहते हैं कि मेरे साथ घर चलकर सब दाम ले लूँगा[१८]।

माल खरीदने में साधारणतया ग्राहक ही ठगा जाता है, परंतु परमानंददास

१४ क हमकौं जान देहु दधि बेचन, पुनि कोऊ नहि लैहै।
'गोरस लेत मावही सब कोउ', सूर परयो पुनि रैहै—सा १५ ६।
ख कुंभनदास प्रभु दधि-बेचन की बिरियाँ जाति टरी'—कुंभन २७।
१५ मुकि माजि भदै मैं मेली।
× × ×
'घरे सीस घर-घर डोलत हौ' एकै मति सब भई सहेली—सा १७२४।
१६ क. 'दूध दही क दाम कहि दै तें हुकत कहा कहरावति—परमा १०२।
ख कहि धौं मोल या दधि कौ' री ग्वालिनि—गोविं ४१।
१७ 'उचित मोल कहि या दधि को लेहुँ मटुकिया सगरी'—परमा १८५।
१८ भाजु दधि देखौ तेरौ चाखि।
कहे धौं मोल जिते बेचैगी, सत्य वचन मुख भाखि।
कोई न कहै सोई हौं देहौं संग-सखा सब साखि।

की एक गोपी ने गोरस बेचते समय अपने 'ठगी' जाने की विचित्र बात कही है[६१]। कभी कभी 'दाम' के नाम पर व्यापारी और ग्राहक में झगड़ा भी हो जाता है। इसीलिए परमानन्ददास ने अपने कृष्ण को 'दाम का झगरी' बताया है[७०]।

व्यापारी-वर्ग में दिन की पहली बिक्री बड़े महत्व की समझी जाती है। इसी को उनकी भाषा में 'बोहनी' कहते हैं। प्रत्येक व्यापारी चाहता है कि उसकी 'बोहनी' अच्छी हो क्योंकि उसका यह विश्वास होता है कि उस दशा में सारे दिन उसकी बिक्री अच्छी होगी। जब तक 'बोहनी' नहीं हो जाती, कोई व्यापारी न उधार देता है और न 'कर' या 'दान' आदि के रूप में कुछ बिना मूल्य के ही दे सकता है। इसी से श्रीकृष्ण के 'दान' माँगने पर सूरदास और परमानन्ददास की गोपियाँ साफ-साफ कह देती हैं कि बिना 'बोहनी' हुए हम दूध, दही आदि छूने भी नहीं देंगी,[७१] देना तो दूर की बात है।

कभी कभी 'बजार मंदा' हो जाता है; अर्थात् बिक्री के योग्य वस्तु की अधिकता या उसकी अनावश्यकता, ग्राहकों की कमी अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारण से 'माल' के दाम इतने कम हो जाते हैं कि व्यापारी का परिश्रम तो व्यर्थ जाता ही है, उसका 'मूल' भी संकट में पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में यदि व्यापारी सदैव की तरह अपने 'माल' का पूरा दाम चाहता है तो उसे कोई खरीदता नहीं और बिना बिका माल व्यापारी के पास पड़ा रह जाता है। सूरदास की गोपियाँ भी ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारी 'जोग ठगौरी' व्रज में न बिक सकेगी और तुम्हारा सारा व्यापार 'धरा' रह जायगा क्योंकि तुम 'मूली के पत्तों'-जैसी सस्ती चीज़ का 'मुक्ताहल' जैसा अत्यधिक मूल्य माँग रहे हो[७२]। 'मंदी' की ऐसी स्थिति में व्यापारी

जो न पत्यार ग्वालिनी हमकों कंठसरी ले राखि।
लै सँग चले पर दाम देन को सबहि मनायो काखि—कुंभन ११।

६१ गोरस बचत ही जु ठगी।
कहा करे आप बस नाही मनसा अनत लगी—परमा १७१।

७० नन्दराय को कुँवर लाड़िलो दधि को दाम कौ झगरौ—परमा १८५।

७१ क. बिनु बोहनी तनक नहिं देहौं ऐसैं छीनी लेहु सब सगरो—सा १४६४।
ख बिना 'बोहनी' छुवन नहिं देहा प्र सब छीन ग्वाउ फिन सगरो—परमा १८६।

७२. जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।

के सामने दो ही मार्ग रहते हैं—वह 'घाटा उठाकर माल बेच दे या अन्यत्र ले जाकर बेचने का यत्न करे। थोड़ी 'पूँजी' के व्यापारी के लिए दूसरा ही मार्ग कल्याणकारी है। इसी कारण सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि अपनी 'मुक्ति' को तुम ब्रज में बेचने तो आये हो, परंतु जान पड़ता है कि सगुन-सावत सोच-विचार कर नहीं चले थे। ब्रज में 'मुक्ति' का बाजार बहुत मंदा है। उधर तुम्हारी सारी 'पूँजी' 'मुक्ति' खरीदने में लग चुकी है, इसलिए 'घाटा' उठाकर बेचना भी तुम्हारे लिए संभव नहीं है। अतएव तुम्हारे लिए सर्वोत्तम मार्ग यही है कि इसे अन्यत्र ले जाकर बेचो[७३]।

स्थान-विशेष में किसी चीज का उचित मूल्य न मिल सकने का एक अन्य कारण भी अष्टछाप-काव्य में बताया गया है। यदि सब ग्राहक 'एकमत होकर वस्तु-विशेष को न खरीदने अथवा उसका अधिक मूल्य न देने का निश्चय कर लें, तब भी व्यापारी की वस्तु या तो बिकने से रह जायगी या उचित से कम मूल्य पर बिकेगी। सूरदास की गोपियाँ 'मुक्ति' को न खरीदने का निश्चय जब एकमत होकर कर लेती हैं तब 'घर-घर डोलने पर भी ऊधव को उसका कोई ग्राहक नहीं मिलता[७४]।

जो वस्तु एक स्थान पर उचित मूल्य में नहीं बिकती, क्योंकि उसकी वहाँ किसी को चाह नहीं है, वह दूसरे स्थान पर अधिक लाभ से भी कभी-कभी बेची जा सकती है, यदि वहाँ के निवासियों को उसकी आवश्यकता हो अथवा उसकी उपयोगिता वे समझते हों। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि तुम्हारा 'जोग' ब्रज में नहीं बिक सका, क्योंकि यहाँ उसकी किसी को आवश्यकता नहीं थी, अतएव इसे तुम सम्हाल कर 'मधुबन ले जाओ, वहाँ

मूरी के पातनि के बदलैं को मुक्ताहल दैहै।
यह ब्यौपार तुम्हारो ऊधो ऐसैं ही धरयौ रैहै—सा० ३६६४।

७३ मुक्ति आनि मंद मैं मेली।
समुझि सगुन लै चले न ऊधौ यह तुम पै सब पूँजी अकेली।
कै लै जाहु अनत ही बेचौ ....सा० ३७२४।

७४ घरे सीस घर-घर डोलत है एकै मति सब भई सहेली—सा० ३७२४।

की नारियाँ इसे सुनते ही 'बिसाह' लेंगी[७५]।

बड़े व्यापारी को अष्टछाप-काव्य में साहु कहा गया है जिसके प्रतिनिधि या 'एजेंट' 'साहु' की 'छाप' से इधर-उधर माल बेचते फिरते हैं। ऐसे प्रतिनिधियों में कुछ ऐसे होते हैं जो अधिक लाभ के लोभ से अथवा ग्राहक को 'भोला' और 'अनाड़ी' जान कर उसे 'ठग' भी लेते हैं। वे अपने बहुत साधारण माल को किसी प्रसिद्ध 'साहु' के यहाँ का बताते हैं और उसके लिए 'भोले' और 'अनाड़ी' लोगों से बहुत अधिक मूल्य माँगते हैं। सूरदास की गोपियों ने ऊधव से कह हुए एक पद में व्यापारियों की इस ठग-प्रवृत्ति' की आलोचना की है। ऊधव की 'ज्ञान-जोग' की खेप' उनके लिए 'कटुक' के समान है जिसको वे श्रीकृष्ण-जैसे प्रतिष्ठित 'साहु' के यहाँ का बताकर, उस खोटे माल के बदले में 'द्राक्ष' चाहते हैं। परंतु गोपियाँ स्पष्ट कह देती हैं कि हम इतनी 'अनाड़ी' नहीं हैं जो तुम्हारी यह चाल न समझें। यदि तुम्हारे कथन में सच्चाइ है तो यहाँ जरा भी देर मत लगाओ, शीघ्र जाकर अपने 'साहु' को ही यहाँ लिवा लाओ तब हम[७६] तुम्हें 'मुँहमाँगा' दाम देने को सहर्ष प्रस्तुत हो जायेंगी।

अब प्रश्न आता है व्यापार की वस्तुओं का। जैसा पीछे कहा जा चुका है,

७५. ऊधौ बगि मधुबन जाहु।
जोग लेहु सँभारि आपनो बचिये जहँ लाहु।
× × ×
जो नहीं ब्रज मैं बिकानो, नगर नारि बिसाहु।
सूर वे सब सुनत लैहैं, जिय कहा पछिताहु—सा १५१०।

७६. आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की ब्रज मैं आनि उतारी।
फाटक दे कै हाटक माँगत भोरौ निपट सुधारी।
धुर ही तैं खोटौ खायौ है लिए फिरत सिर भारी।
इनकै कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी।
× × ×
ऊधौ जाहु सवारैं ह्याँ तैं बगि गहरु जनि लावहु।
मुँहमाँगौ पैहौ सूरज प्रभु, साहहिं आनि दिखावहु—सा १९६५।

अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित व्यापार की वस्तुएँ दो वर्गों में आती हैं—एक, स्थानीय वस्तुएँ और दूसरे, सुदूर प्रदेशीय वस्तुएँ।

क. *व्यापार की स्थानीय वस्तुएँ*—इस वर्ग में मुख्यत वे वस्तुएँ आती हैं जो सामान्यतया दैनिक जीवन में आवश्यक होती हैं, यथा दूध, दही, माखन, घी, फल, तरकारी आदि। अहीरों के जीवन की चर्चा करने के कारण दूध, दही घी, माखन आदि बेचने की बात प्राय सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है। आम, बेल आदि फल तथा तरकारियाँ बेचने आनेवाली 'काछिन' का उल्लेख अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने किया है। इन सभी वस्तुओं के बेचे जाने का उल्लेख जिन पंक्तियों में हुआ है, वे भी इसी परिच्छेद में पीछे उद्धृत की जा चुकी है[७७]।

ख *सुदूर प्रदेश से आनेवाली वस्तुएँ*—ऐसी वस्तुओं में मुख्यत नारियल, दाख आदि मेवे तथा लौंग, हींग, मिरिच, पीपरि, अजवाइनि, छूट, जायफल, सोंठ, सुपारी, चिरायता, कटजीरा, मजीठ, लाख, सेंदुर वाइबिडंग, बहेड़ा, हर्रें आदि मसाले और अन्य उपयोगी वस्तुएँ आती हैं जिनका उल्लेख 'दान-लीला प्रसंग' के एक पद में सूरदास ने किया है[७८]।

२ *व्यापार के रूप और साधन*—व्यापारी की वस्तु को खरीदने के लिए उसका 'मूल्य' दिया जाना चाहिए। यह मूल्य 'दाम' के रूप में तो दिया ही जाता है, कभी कभी दूसरा उपयोगी वस्तु के रूप में भी दिया जा सकता है[७९]।

७७ देखिए इस प्रबंध का पृष्ठ ४२५।

७८. कहो कान्ह, कह गथ है हम पौ।
 जा कारन जुवती सब अटकीं सो बूझति हैं तुमसौं।
 'लौंग नारियर, दाख सुपारी कहूँ लादे हम आवैं।
 हींग, मिरिच पीपरि अजवाइन' य सब बनिज कहावैं।
 छूट जायफर सोंठ, चिरइता कटजीरा' कहूँ दुरावत।
 'आलमजीठ, लाख सेंदुर कहूँ ऐसहिं बिधि भरि लावत।
 वाइबिडंग बहेरा हर्रें बेल गौन ब्योपारी—सा १५२८।

७९ क डा राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार वस्तु विनिमय की प्रथा ऋग्वेद-काल से ही प्रचलित रही है। १ गाय देकर इंद्र की एक प्रतिमा लेने की बात उसके एक मंत्र में आती है—हिंदू सभ्यता पृ ७६।

ख डा प्रसन्नकुमार आचार्य ने भी ऋग्वेद-काल में व्यापारिक क्षेत्र में विनिमय प्रथा

नगरों में तो आज पहली ही रीति सर्वत्र प्रचलित है, परंतु गाँवों में अब भी 'मूल्य' चुकाने के दोनों ढंग अपनाय जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में ग्रामीण जीवन का ही प्रमुख रूप से चित्रण होने के कारण उक्त दोनों विधियों की चर्चा की गयी है। परमानंददास ने बेर बेचनेवाली को, बेरों के बदले में, आँगन में सूखते हुए धान 'अँजुली' भर दिये जाने की बात लिखी है[८]। परंतु सस्ती या साधारण चीज को मूल्यवान वस्तु के बदले में लेने की मूर्खता कोई 'अनाड़ी' भी नहीं दिखाना चाहता। इसीलिए गोपियाँ ऊधव से पूछती हैं कि क्या 'मूली के पत्तों' के बदले में कोई 'मुक्ताहल' दे सकता है [१]? ग्राहक को जिस चीज की आवश्यकता नहीं है वह कितनी भी उपयोगी क्यों न हो उसके लिए 'फाटक' के समान है और ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि ऐसी वस्तु का मूल्य 'हाटक' के रूप में कोई 'अनाड़ी' भी कभी नहीं चुका सकता[८२]। बहुमूल्य वस्तुओं का 'मोल' 'हीरा' बताये जाने की बात गोविंदस्वामी के एक पद में मिलती है जिसमें वृषभानु-नंदिनी के 'निरमोलिक' वदी का मोल 'स्याम हीरा' बताया गया है[८३]। परमानंददास ने भी 'दधि का मोल कंचन' बताते हुए एक पद में उसके बदले में गोपी-विशेष को 'दुसरी' दिखायी है[८४]। परमानंददास की चंद्रावली के पास 'हरि

के प्रचलित होने की बात कही है।

—'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पृ० ११५,११६।

ग. डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार पहले भारत में द्रव्य-विनिमय द्वारा व्यापार होता था— मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १३६।

८० कोउ माई बेर बेचन आई।
सुनी टेर नंद रानी म भीतर भवन बुलाई।
'सूखत धान परयो आँगन में कर अँजुली भराई'।
× × ×
परमानंद अनुमति ध्यान दिये फल लाये कुँवर कन्हाई — परमा० ६७४।

८१ जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
'मूरी के पातनि के बदलें को मुक्ताहल देहै'—सा० ३६६४।

८२. 'फाटक दै कै हाटक माँगत' भोरी निपट सुधारी।
× × ×
इनकें कहे कौन डहकावे ऐसी कौन अनारी—सा० ३६६१।

८३. वृषभानु नंन्दिनी को निरमोलक वदो वाको मोल स्याम हीरा—गोविं० ४१।

८४ आनु दधि कंचन मोल भई।

के उर का गजमोती' देखकर कोई सखी उससे पूछती है—'यह तूने कहाँ से पाया'? उत्तर में चंद्रावली उसको 'दधि के पलटे' में पाने की बात कहती है और विश्वास न होने पर शपथ धराकर पूछ लेने की सलाह देती है [८५]। उक्त सभी उदाहरण अष्टछापी कवियों के समय में 'वस्तु' के विनिमय में 'वस्तु' दिये जाने की रीति के प्रचलन की पुष्टि करते हैं।

व्यापारी की कोई वस्तु 'सेंतमेंत' अर्थात् बिना मूल्य चुकाये किसी को नहीं मिल सकती [८६]। उसके लिए तो वह मूल्य देना ही होगा जो व्यापारी लेने को सहमत हो जाय—वस्तु विशेष का वह मूल्य चाहे दूसरी वस्तु, यथा अनाज, सोना, चाँदी, हीरा आदि के रूप में चुकाया जाय, चाहे शासक द्वारा प्रचलित 'सिक्कों' के रूप में। व्यापार के प्रथम अर्थात् 'वस्तु-विनिमय'-रूप की चर्चा ऊपर हो चुकी है, जहाँ वह रूप नहीं चलता अथवा जहाँ व्यापारी वस्तु-विनिमय के लिए सहमत नहीं होता, वहाँ बिक्री की वस्तु का मूल्य सिक्कों के रूप में चुकाना पड़ता है। सभी देशों और कालों में व्यापार का यह रूप प्रचलित रहा है। अष्टछाप-काव्य में भी कुछ सिक्कों के नाम आये हैं, यद्यपि उनके संबंध में अधिक विस्तार से नहीं लिखा गया है। ऐसे सिक्कों में टका, दमड़ी, दाम, रुपा आदि उल्लेखनीय हैं।

अ. टका—उन्नीसवीं शताब्दी में 'टका' शब्द ताँबे के अधन्ने बराबर सिक्के के रूप में प्रचलित था [८७]। परंतु अष्टछापी कवियों के समय में यह चाँदी का एक

× × ×

दधि के पलटें दुलरी दीनी अनुमति लगर भई।

—परमा. कीर्तन, भाग १ पृ. २१७।

८५. यह हरि के उर को गजमोती।

चन्द्रावली कहाँ तें पायो दूरि करत दिनमनि की जोती।

× × × ×

कहूँ तो नृप कंस जीवत है, मैं दधि के पलटे है पायो।

जो न पत्याहु तो शपथ दे बूझहु परमानंद ता दिन संग आयो—परमा. ४११।

८६. क. कहुरी यार मन मलिन बहुत मैं 'सेंत-मेंत' न बिकाउँ—सा. ११२८।

ख. 'सेंत-मेंत' क्यों पाइए वह गोरस निरमोल—चतु. ९४।

८७. श्रीरामचंद्र वर्मा 'प्रामाणिक हिंदी कोश' पृ. ४९४।

सिक्का था[८८] । 'टका' का उपयोग अष्टछाप-काव्य में दो स्थलों पर विशेष रूप से हुआ है। राधा की माता ने पुत्री की खोई हुई 'मोतिसिरी' 'लाख टके' में लाने की बात एक पद में कही है। इस प्रकार वह 'मोतिसिरी' बहुमूल्य थी और कोई भी घर बैठे ही ऐसी 'निधि' पाकर अपना भाग्य सराहेगा[८९] । एक दूसरे पद में इस सिक्के का उल्लेख 'नेग'-रूप में दिये जाने के प्रसंग में हुआ है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर माता यशोदा दाइ को नेग 'लाख टके' देती हैं।

आ. दमड़ी—'आइने अकबरी' के अनुसार 'दाम' का आठवाँ भाग 'दमड़ी' होता था[९०] । अष्टछाप-काव्य में धन-लुब्ध के लोभी को 'दमरी को पूत' कहा गया है[९१] ।

इ. दाम—'आइने अकबरी' में 'दाम' को ताँबे का सिक्का बताया गया है जो रुपए के चालीसवें भाग के बराबर होता था[९२] । अष्टछापी कवियों में सूरदास ने इस सिक्के की चर्चा विशेष रूप से की है। राधा की माता ने पुत्री द्वारा खोई हुई 'मोतिसिरी' के एक-एक नग का मूल्य 'सत-सत दाम' बताया है[९३] । परमानन्ददास ने 'दाम' का प्रयोग 'सिक्के' के अर्थ में किया है[९४] ।

ई. रुपा—अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित चाँदी का सिक्का 'रूपा' है जिसका

८८. डा० प्रेमनारायण टंडन, ब्रजभाषा सूर कोश, पृ० ६७९ ।

८९ क. आछु तही मोतिसिरी गँवाइ।

× × ×

'इक इक नग सत सत दामिनि कौ लाख टका दै ल्याई।

काहे हाथ परयो सो भागी घर बैठे निधि पाई—सा० १६७२।

ख. लाख टका अरु झूमका सारी दाइ कौ नेग—सा० १० ४ ।

९०. आइने अकबरी पृ० ५३।

९१ क. लंपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी—सा० ११४ ।

ख. लंपट धूत पूत दमरी को कौड़ी कौड़ी जोरै—सा० ११८६।

९२. 'आइने अकबरी पृ० ५३।

९३. आछु तही मोतिसिरी गँवाई।

× × ×

'इक इक नग सत सत दामिनि को लाख टका दै ल्याई—सा० १६७२।

९४. मिलनि देहु गिरिधर मोसों मोल्यो दाम—परमा० १४।

इसमें 'चाँदी' होने से स्पष्ट है कि यह चाँदी का सिक्का था। इसकी पुष्टि 'आइने अकबरी' से भी होती है जिसमें 'गोल' और 'चौकोर', दो प्रकार के रुपए चलने की बात कही गयी है[९५]। सूरदास ने 'रूपे' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ में[९६] और परमानंददास ने 'रुपा' सिक्के के अर्थ में किया है[९७]।

ये तो हुए वे सिक्के जो 'टकसाल' में बनकर शासक की ओर से प्रचलित किए जाते थे। इनके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर 'कौड़ी' का भी उल्लेख हुआ है जो सिक्के की तरह ही कुछ समय पूर्व तक भारत के अनेक प्रदेशों में व्यवहार में आती थी। हिसाब-किताब में 'कौड़ी' का तात्पर्य 'नाममात्र के मूल्य' से होता है जिसके लिए परिश्रम करनेवाले, सूरदास की सम्मति में, नितांत मूर्ख हैं[९८]। सूरदास के एक अन्य वाक्य से भी 'कौड़ी' की अत्यंत तुच्छता का पता चलता है जिसमें गोपियों की दृष्टि में कृष्ण रहित गोकुल का मूल्य 'कौड़ी' के बराबर भी नहीं रह जाता[९९]। 'कौड़ी' का तात्पर्य 'अधीनस्थ राजाओं द्वारा सम्राट को दिये जाने वाले कर'[१] से भी होता है। 'दानी' बन कर श्रीकृष्ण जब गोपियों से 'कौड़ी-कौड़ी' वसूल लेने की बात कहते हैं, तब उसका सामान्य अर्थ तो स्पष्ट है ही, कर-संबंधी विशेष अर्थ की ओर भी उसका संकेत लिया जा सकता है[१]।

सूरदास के एक पद में 'खोटे दाम' का प्रयोग मिलता है जिससे सूचित होता है कि राजकीय 'टकसाल' के बाहर 'खोटे सिक्के' भी बना लिये जाते थे जिनको न पहचान कर लोग ठगे जाने के कारण दुःखी होते थे[२]। इसी प्रकार नंददास की 'स्याम-सगाई' नामक रचना में 'अरघ-द्रव्य' का प्रयोग हुआ है जिनका संकेत 'अर्ध'

९५. 'आइने अकबरी' पृ० ५७।
९६. निर्मल 'रूपे' लौन बाँधि के लोई बारिज राखे—सा० ११४२।
९७. विमनि देहु दाम भर सोनो आठन 'रूपो दाम'—परमा० १४।
९८. परम कुबुद्धि तुच्छ रस-लोभी 'कौड़ी लगि मग की रज छानत'—सा० १११४।
९९. सूरदास स्वामी बिनु गोकुल 'कौड़ी' है न लहै—सा० २७११।
१. श्रीरामचंद्र वर्मा 'प्रामाणिक हिंदी कोश' पृ० २८१।
 १. अब तुमकों मैं जान न देहौं।
 दान लेउँ कौड़ा कौड़ी करि बैर आपनो लेहौं—सा० १५४५।
२. 'हरि को नाम दाम खोटे लौं' झकि झकि डारि दयौ—सा० १५४।

के साथ-साथ 'टकसाली' सिक्कों की ओर भी है[३]।

३ *विविध व्यवसाय और व्यवसायी*—इस वर्ग में वे व्यवसायी आते हैं जो वस्तु-विशेष का स्वयं उत्पादन अथवा निर्माण करके समाज में उसकी बिक्री करते हैं। अष्टछाप-काव्य में वर्णित ऐसे व्यवसायियों को, स्थूल रूप से, सत्रह उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—अहीर, कृषक, बनजारे या व्यापारी पंसारी, महाजन, जौहरी, सर्राफ, बजाज, काछी, कुम्हार, मनिहार, गंधी, चोलिनि, तमोली, तेली, पारधी और कसाई[४]।

क. *अहीर*—अष्टछापी कवियों के परम आराध्य जिन व्यक्तियों के यहाँ पले थे, वे अहीर थे। मथुरा की नारियों ने कृष्ण का परिचय परस्पर 'नंद अहीर के सुत' कहकर ही दिया है[५]। अष्टछाप-काव्य में 'अहीर' के लिए 'गोप' और 'ग्वाल' या 'ग्वार' तथा उनकी स्त्रियों के लिए 'अहीरिन', 'गोपी', 'ग्वालि' या 'ग्वारि', 'गुजरेटी' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गाय पालना और उनका दूध दुहकर, उससे दही, माखन, घी आदि बना कर बेचना इस वर्ग का व्यवसाय रहा है। माट-मटुकी में दूध दही माखन आदि लिये मथुरा की ओर जाती हुई ग्वालिनों के रोक लिये जाने पर इस वर्ग के व्यवसाय का स्पष्ट उल्लेख 'दान-लीला'-प्रसंग में हुआ है[६]। सूरदास और कुंभनदास की ग्वालिनें तो 'अहीर' जाति का धंधा

३ 'अरथ द्रव्य इच्छा नहीं पान-पात नहिं लेउँ'—नंद स्याम, पृ १२।

४ डा प्रसन्नकुमार आचार्य ने 'यजुर्वेद', १-७ के अनुसार वैदिक काल में ही किसान, मछुवारे कसाई, कुम्हार सुनार धोबी नाई, जौहरी टोकरी बनानेवाले रस्सी रंग एवं बाग बनानेवाले आदि के व्यवसाय प्रचलित होने की बात कही है।
—'भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता' पृ १११।

५. एरी सुत नंद अहीर के—सा १ ६१।

६ क बेचन चली दधि ब्रजनारि।
सीस धरि-धरि माट मटुकी बढ़ी सोभा भारि—सा १८६९।
ख ग्वालिनि यह मती नहिं करति।
दूध दधि घृत नितहिं बेचति दान घरें डरति—सा १५ ४।
ग गोकुल की ब्रज-नारि दह्यो नित बेचन आवैं—कुंभन २१।
घ कहो किन कोनो दान दही को।
सदा सर्वदा बेचति हरि ब्रज है मारग नित ही को—चतु २।
ङ गुजरिया गरब गहीली ऊबट भारी देति—गोवि २६।

ही दही आदि बेचना बताती हैं[७]। गोप-बालकों के साथ कृष्ण के गाय चराने की बात का उल्लेख तो सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। घर में ग्वालिनों के दही मथने की बात भी उन्होंने लिखी है[८]। स्वयं यशोदा का भी यही कार्य रहा है, यहाँ तक कि 'पाहुनी' से भी दही मथने की बात कहने में वह संकोच नहीं करतीं[९]। अहीरों के व्यवसाय का यह क्रम आज भी चल रहा है, यद्यपि उनकी स्त्रियों का दूध, दही आदि बेचना अब प्रायः बंद हो गया है।

वस्तुतः 'गोपालन' इस देश में सदैव से महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है। जो लोग दूध, दही नहीं बेचते थे, वे भी 'गोपालन' में सदैव रुचि लेते थे। ब्राह्मण-वर्ग के लिए भी यह कार्य महत्व का था। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा में 'गायें' भी दी जाती थीं[११]। नंद जी भी ब्राह्मणों को दो-दो लाख गायें दान में देते हैं[१२]।

७ क हम 'अहीर माखन दधि बेचैं—सा १९९१।
ख हम हैं जाति अहीर सदा नित बेचन जावैं—कुंभन २१।
८.क. मथति ग्वालि हरि देखी जाइ'—सा १ २६८।
ख 'दधि लै मथति ग्वालि गरबीली'।
रुनुक झुनुक कर कंगन बाजै बाँह डुलावति ढीली—सा १०-२६९।
ग देखी हरि 'मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी'।
जोबन मदमाती धनि चुरति कटि लौं कुचि चाढ़ी।
× × ×
करषति है, दुहुँ करनि मथानी सोभा-रासि भुजा भुज काढ़ी—सा १ १ ।
९.क. जसोदा मनहु तैं दधि प्यारो।
'डारि देहि कर मथत मथानी तरसत नंददुलारो—सा १७८।
ख जसोदा करत बींधे स्याम।
× × ×
दही मथति' मुख तैं कछु बकरति गारी दे लै नाम—सा १७९।
ग कहो 'दधि मथन करे नँदरानी।
चारे कन्हैया चार न कीजै छाँड़ि अब देहो मथानी—परमा ११५।
१ 'पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ।
हौं लागी गृह-काज रसोई जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मन मोहन मेरो अंचल आनि गह्यौ।
व्याकुल मथति मथनियाँ रीती दधि भुव ढरकि रह्यौ—सा १ १८९।
११ जातक-कालीन भारतीय संस्कृति' पृ १८७।
१२. कामधेनु तैं नैकु न हीनी द्वै लख धेनु द्विजनि कौं दीनी—सा १ १२।

ख कृषक—'कृषि' भारत का सर्वप्रमुख व्यवसाय है। परंतु ब्रजभाषा-काव्य के विषय से उसका निकट संबंध न होने के कारण उसमें कृषक-जीवन का वैसा विस्तृत वर्णन नहीं मिलता जैसा अहीरों के जीवन का मिलता है। सूर के अतिरिक्त प्राय सभी अष्टछापी कवि तो इस संबंध में एक प्रकार से मौन हैं ही, स्वयं सूरदास ने भी कृषक और उसके व्यवसाय के संबंध में अधिक नहीं लिखा है। सूरसागर' के एक पद में, रूपक-रूप में, खेती की चर्चा अवश्य इस प्रकार की गयी है कि उससे कृषक की जीवन-चर्या पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। उसमें सूरदास कहते हैं—मैंने इस प्रकार खेती की कि 'बंजर' भूमि में, बिना उसको समतल किये ही, 'हल जोता'। काम और क्रोध मेरे 'बैल' थे, जिनको 'हाँकनेवाला' था मेरा मन और बैलों के कंधों पर रखा जानेवाला 'जुआ' था माया का। मेरी इंद्रियाँ 'किसान' बनी जिन्होंने विषय-वासनाओं के शीघ्र उगनेवाले 'तृणों' के 'बीज' बोये जिनसे 'नयी लताएँ' उत्पन्न हुई[१३]।

'खेती' के लिए 'वर्षा' ही जीवन है। अतएव उक्त पद के अंत में प्रभु से 'कृपा की वर्षा' करने की प्रार्थना भी कवि करता है[१४]। 'खेती' करनेवाले को 'खेतिहर' भी कहा जाता है जिसका उल्लेख सूरदास के एक अन्य पद में हुआ है। ग्रीष्म के बाद पहली वर्षा होते ही खेतों में उगती हुई घास आदि व्यर्थ के पौधे उखाड़कर ही नयी फसल के लिए 'खेतिहर' अपना खेत तैयार' करता है[१५]। खेत' के निचले या गड्ढेवाले भाग को 'खाल' कहते हैं जिसे पाटकर भूमि को समतल कर लेना भी वह आवश्यक समझता है जिससे वर्षा या बाढ़ का जल खेत में न भरा रहे[१६]।

१३ प्रभु जू, यौं 'कीन्ही हम खेती।
बंजर भूमि गाउँ हर जोते, अरु जेती की तेती।
काम-क्रोध 'दोउ बैल बली मिलि, रज-तामस सब कीन्हौ।
अति कुबुधि मन 'हाँकनहारे' माया 'जूआ' दीन्हौ।
इंद्रिय मूल किसान महातृन अग्रज बीज बई।
जन्म जन्म की विषय-बासना 'उपजत लता नई'—सा १।१८५।

१४ 'कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा' जन की जाति लुनाई—सा १।१८५।

१५. जन के उपजत दुख किन काटत?
जैसैं 'प्रथम असाढ़ आँजु तृन' 'खेतिहर निरखि उपाटत'—सा १।१०।

१६ पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है सूर 'खाल किन पाटत'—सा १।१०।

सूरदास ने किसी अनाज की खेती का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उनके केवल एक पद में बिना वर्षा के 'धान-अंकुर' के सूखने का उल्लेख अवश्य मिलता है[१८]। इसी प्रकार एक अन्य पद में उन्होंने 'धनिया, धान कुम्हाड़े या कुम्हड़ा' एक ही खेत में न उपज सकने की बात भी लिखी है[१९]। फसल काटने के बाद सारा अनाज खरिहान में जमा होता है जहाँ मँड़ाई होती है। सूरदास के एक पद में 'खरिहान' का उल्लेख भी हुआ है[२०]। भूमि तैयार करने के बाद हल से उसमें नालियाँ बनाकर 'बीज बोने' और 'पानी' देने की बात सूरदास ने एक अन्य पद में लिखी है[२१] जिससे उनके तत्संबंधी सामान्य ज्ञान का पता लगता है।

अष्टछापी कवियों के समय में खेतों की सिंचाई, वर्षा के अतिरिक्त 'कुओं' में रहट लगाकर भी की जाती थी। इसका उल्लेख परमानंददास के एक पद में हुआ है जिसमें गोपियाँ अपने नयनों की 'रहट-घरी' कहती हैं जो बार-बार भर आते और जल ढरका जाते हैं[२२]। सूरदास ने एक पद में 'ऊख पेरकर' गुड़ बनाये जाने की बात कही है[२३] और परमानंददास ने भी कोल्हू में 'ऊख पेरे जाने' की चर्चा उपमान-रूप में की है[२४] जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछापी कवि 'ऊख की खेती' से भली भाँति परिचित थे।

ग बनजारा—घूम-घूमकर 'व्यापार' करनेवाले को 'बनजारा' कहा जाता था

१७ श्री सत्यकुमार आचार्य के अनुसार भारतीय चावल, जौ, मसूर, मटर, तिल आदि की खेती वैदिक काल में ही करने लगे थे।
—भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पृ ११।

१८ सूखति सूर धान अंकुर सी बिनु बरषा ज्यौं मूल तुई —सा १८५५।

१९ सूरदास तीनों नहिं उपजत धनियाँ धान कुम्हाड़ —१९ ४।

२० मोहि मोहि खरिहान [illegible] पोता-अन्न [illegible] —सा १२४२।

२१ 'पर [illegible] नल करत [illegible] हल बारि बीज बिथरै' —सा १११७।

२२ नयना रहट की घरी रहाई।
भरि भरि ढुरि [illegible] [illegible] की भरि भार [illegible] जाई —परमा [illegible] ६९०।

२३ [illegible] घोटाइ करत गुर [illegible] देत [illegible]।
[illegible] घोटाए स्वाद [illegible] गुर ते [illegible] न होई —सा १८९१।

२४ परमानंद स्वामी के बिछुरे [illegible] कोल्हू गये तन भयो ऊख री।
—परमा [illegible] १ ११।

जिनकी स्त्रियाँ 'वनजारिनि' कहलाती थीं। जायसी के 'पद्मावत' में भी 'बनिजारा' का उल्लेख हुआ है[२५]। सूरदास के एक पद में गोपियों के लिए 'दानी'-वेशधारी कृष्ण ने 'वनजारिनि' शब्द का प्रयोग किया है[२६]।

प *पंसारी*—मेवा, मसाले तथा अन्य सब सूखी वनस्पतियाँ आदि के बेचने वाले को आज 'पंसारी' कहते हैं जिनके नाम 'दान-लीला प्रसंग' में व्यापारिक वस्तुओं के अंतर्गत पीछे गिनाये गये हैं[२७]। पंसारी' की स्त्री 'पंसारिनि' कहलाती है। इस शब्द का प्रयोग श्रीकृष्ण ने 'दानलीला' प्रसंग में गोपियों के लिए किया है[२८]।

क *महाजन*—व्यवसायी-वर्ग में महाजन' को इस कारण नहीं गिना जाना चाहिए कि वह कोई वस्तु बेचता नहीं फिर भी इसकी चर्चा यहाँ इसलिए की जा रही है कि जिस प्रकार दूसरे व्यवसायी 'वस्तु' देकर 'ग्राहकों' से लाभ कमाते हैं, वैसे ही महाजन' अपना 'धन' दूसरों को देकर 'ब्याज'-रूप में लाभ उठाता है। इस प्रकार महाजन का व्यवसाय है रुपए का लेन-देन करना और 'ऋण' शब्द की प्राचीनता इस बात का प्रमाण है कि यह व्यापार बहुत प्राचीन काल से इस देश में प्रचलित रहा है[२९]। 'महाजनी' का व्यवसाय करनेवाला स्वभावतया धनी होना चाहिए। उसकी 'पूँजी' को सूरदास ने 'थाती' कहा है[३०] जिससे दूसरों को 'ऋण' दिया जाता है[३१]। महाजन से ऋण चाहनेवाले को कुछ 'जमानत' भी देनी पड़ती है[३२] जिसका तात्पर्य धन लौटाने के उत्तरदायित्व से होता है और जो 'ऋणी' के 'मुकर जाने की स्थिति में काम आता है[३३]। यदि ऋण चाहनेवाले के घर में 'गाय' या 'पूँजी' नहीं होती, अर्थात् वह निर्धन होता है तो उसे 'जमानत' मिलने

२५. चितउर गढ़ के एक बनिजारा—पदमा संजी व्या ७४१।
२६. ही है फिरति रूप त्रिभुवन की री 'नोखी बनजारिनि'—सा १४७१।
२७. देखिए इस 'प्रबंध' का पृ ४१।
२८. सूरदास ऐसी गव आवें ताके बुद्धि 'पंसारिनि'—सा १४७१।
२९. डा वासुदेवशरण अग्रवाल —'इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि' पृ २१८।
३०. 'थाती' प्रान तुम्हारी मोपै जनमत ही जो दीन्ही—सा ११६६।
३१. सबै कूर मोसौं रिन' चाहत—सा ११६६।
३२. देह 'जमानति' लीन्ही—सा ११६६।
३३. मुकर जाइ' क दीन बचन मुनि जमपुर बाँधि पठावै—सा ११६६।

में बहुत कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में जिस महाजन का वह ऋणी है अथवा जिस ठाकुर का उसे 'कर' देना है वह उसे लूट तक लेता है[१४]।

महाजन किसी को जो धन 'ऋण' के रूप में देता है, वह 'मूल' कहलाता है। कुछ अवधि के पश्चात् धन दिये जाने के बदले में 'ऋणी' से जो धन उसे 'मूल' के अतिरिक्त मिलता है वह 'ब्याज' कहलाता है और यही प्राप्त करना महाजन का परम लक्ष्य होता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'ब्याज' पर रुपए देने का व्यवसाय वैदिक काल में ही आरंभ हो गया था और दस देकर ग्यारह रुपये उगाहने अर्थात् दस प्रतिशत ब्याज लिये जाने का भी उल्लेख उन्होंने किया है[१५]। अष्टछापी कवियों ने ब्याज की दर का कहीं उल्लेख नहीं किया है; हाँ, उनके काव्य से यह अवश्य ज्ञात होता है कि साधारण महाजन यह कार्य अपने प्रतिनिधियों से कराते हैं। इसी कारण सूरदास की गोपियों ने 'अक्रूर' को 'मूल' वसूल करने वाला और ऊधव को 'ब्याज उगाहनेवाला' कहा है[१६]। जब तक ऋण लेनेवाला ब्याज सहित महाजन का 'मूल' नहीं लौटा देता तब तक वह 'उऋण' नहीं होता और वैसी स्थिति में ऋणी को 'ऋण-दास'[१७] रहकर 'महाजन' की सेवा तक करनी पड़ती थी। यही बात सूरदास के कृष्ण ऊधव से कहते हैं कि गोपियों ने तन-मन-धन अर्पण करके मुझे अपना ऋणी बना लिया है। तुम उन्हें उपदेश से संतुष्ट करके मुझे उनके ऋण से 'उरिन' करो। परंतु यदि वे 'ब्याज'-रूप में दिये गये तुम्हारे उपदेश को अंगीकृत नहीं करेंगी तो मैं उनका 'रिनदास' होकर, ब्रज में बस कर उनकी गाय ही चराया करूँगा[१८]। गोस्वामी तुलसीदास के समक्ष ने

१४ घर में गथ नहिं भजन तिहारो जौन दियें मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यो न चाहै तातें ठाकुर लूटौ—सा १ १८५।

१५ हिन्दू सभ्यता' पृ १२४।

१६ सूर मूर अक्रूर गए ले ब्याज निबेरत ऊधौ—सा ३८२।

१७ म म गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने दास प्रथा' के अंतर्गत 'ऋणदास' की चर्चा 'कर्ज में रुके हुए दास' के अर्थ में की है—'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पृ० ४८।

१८ सुनु सखा हित प्रान मेरे नाहिने सम कोहिं।
'करैहू कर उरिन कीबे गोपिकनि सौं मोहिं'।
रैनि दिन मम भक्ति उनकैं कछू करत न आन।
और सरबस मोहिं अरप्यो तरुनि तन-मन-प्रान।

विविध अर्थों से 'उरिन' होने की बात कहकर परशुराम से जो व्यंग्य किया है, वह भी 'महाजनों' के व्यवसाय से ही संबंध रखता है[३] ।

च जौहरी और सर्राफ—हीरे, जवाहरात आदि बेचनेवाले को 'जौहरी' और सोने-चाँदी के आभूषण बेचनेवाले को 'सर्राफ' कहते हैं। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि ये शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं क्योंकि इन व्यवसायियों का संबंध मुख्यत नगर से रहता है, ग्रामों में इनकी दूकानें नहीं होती तथापि अनेकानेक जड़ाऊ आभूषणों की चर्चा होने से यह स्पष्ट है कि उक्त व्यवसाय भी समाज में अवश्य प्रचलित रहे होंगे। सूरदास के एक पद में राधा की माता कीर्ति पुत्री के लिए 'लाख टके' में एक 'मोतिसिरी' खरीद लाने की बात कहती है जिसमें सत-सत 'दामों' का एक-एक नग जड़ा था[४] । निस्संदेह वह जड़ाऊ गहने बेचनेवाले किसी 'जौहरी' या 'सराफ' के यहाँ से खरीदा गया होगा।

छ बजाज—कपड़ा बेचनेवाला 'बजाज' कहलाता है जिसकी स्त्री को सूरदास ने 'बजाजिनि' कहा है[४१] । अन्य अष्टछापी कवियों ने 'बजाज' या 'बजाजिनि' की चर्चा नहीं की है।

ज काछी—फल, तरकारी आदि बेचनेवाले को 'काछी' कहते हैं जिसकी स्त्री 'काछिनि' कहलाती है। अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास ने यशोदा के यहाँ एक 'काछिन' के आने की बात लिखी है[४२] ।

ब्याज मैं ये रतन दीन्हे कृषा गोप-कुमारि।
× × ×
सोइ तुम उपदेसियो जिहिं लहैं पद निर्बान।
'जो न चौगिहुव करें वे होइहों रिन दास'।
दूर गाइ चराइहौं मैं बहुरि बसि ब्रजबास—सा १४११।

३९. माता पितहिं उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोच बड़ जी कें।
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा।
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली।
—मानस, बाल दो २७६।

४ 'इक-इक नग सत-सत दामनि को लाख टका दै ल्याई'—सा १६७२।
४१ 'बजाजिनि' है बातें निरखि नैननि सुख देउँ—सा वें पृ १४९।
४२ ब्रज में 'काछिनि बेचन आइ।

८. *कुलाल*—मिट्टी के बरतन बनाने और बेचनेवाले को 'कुलाल'[५३] या प्रचलित भाषा में 'कुम्हार' कहा जाता है। उसके व्यवसाय से संबंधित दो प्रमुख शब्द अष्टछाप-काव्य में मिलते हैं—एक है 'चाक' और दूसरा, 'आँवाँ'। 'चाक' एक गोल पत्थर होता है जिसको घुमाकर वह हाथ के कुशल स्पर्श से मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन बना डालता है। सूरदास और परमानंददास की विरहिणी गोपियों ने अपने चित्त को 'चाक चढ़ा-सा' कहकर हर समय उसके डगे डगे फिरते रहने की बात कही है[५४]। घट आदि पात्र बनाने, उन पर तरह-तरह की चित्रकारी करने के उपरांत सुखाने, वर्षा से बचाने, 'आँवें' में ईंधन से आग जलाकर, उनको घुमा घुमाकर सब ओर अच्छी तरह पकाने आदि कुम्हार के सभी कार्यों का विवरण सूरदास ने एक पद में विस्तार से दिया है जिसमें विधाता को 'कुलाल' मान कर रूपक बाँधा गया है[५५]।

९. *मनिहार*—चूड़ी बेचनेवाला 'मनिहार' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में इस शब्द का प्रयोग नहीं है, परंतु ब्रजबालाओं के हाथ में 'चूड़ियाँ' सदैव पड़ी रहने की चर्चा हमारे कवियों ने की है[५६] और कृष्ण के उत्पातों से खीझ कर यशोदा

आन उतारी नंद गृह आँगन कपोती फलन मुरारि—परमा. ६७२।

५३ क. डा. राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार 'अष्टाध्यायी' ४.१.११८, में शिल्पकारों के अंतर्गत 'कुलाल' का भी उल्लेख है—'हिंदू सभ्यता' पृ. १२४।

ख. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'अष्टाध्यायी' में 'कुलाल' तथा 'कुंभकार' शब्द प्रयुक्त हुए हैं और उसके द्वारा बनाए गए मिट्टी के पात्र 'कौलालक' कहे गए हैं—'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि' पृ. २१।

५४ क. सदा रहत चित चाक चढ्यौ सौ, यह अँगना न सुहाई—सा. ३२।

ख. सदा रहत चित चाक चढ्यौ सौ और न कछू सुहाय—परमा. ४७६।

५५. ऊधौ भली भई ब्रज आए।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट' ते तुम आनि 'पकाए'।
'रँग दीन्हौ' हो कान्ह साँवरें 'अँग-अँग चित्र बनाए'।
पातें गरे न नैन नेह तें, 'अवधि अटा' पर छाए।
ब्रज करि 'अँवाँ' जोग 'ईंधन' करि सुरति 'आगि' सुलगाए।
फूँक उसाँस बिरह परजरनि सँग ध्यान दरस सियराए—सा. १३८१।

५६ क. किंकिनी कटि कुनित कंकन कर चुरी झनकार—सा. मैं. पृ. १४८।

ग. नगमय सबद स्याम नग पौहौंची चुरियन बाजे—परमा. ९१६।

के पास व्याहना से आनेवाली गोपियाँ 'गोद भर-भर फूटी चूड़ी' ले आती हैं[४७]। परमानंददास की एक गोपी कृष्ण द्वारा चूड़ियाँ तोड़ दिये जाने पर खीझकर कहती है कि मैं तो अभी नयी चूड़ियाँ पहन कर आयी थी[४८]। निस्संदेह ये चूड़ियाँ किसी 'मनिहार' या 'मनिहारिनि' से ही खरीदी गयी होंगी।

ट *गंधी*—तरह-तरह के इत्र-फुलेल आदि बनाने और बेचनेवाले को 'गंधी' और उसकी स्त्री को 'गंधिनि' कहते हैं। बिहारी ने जिस प्रकार स्पष्ट रूप से गंधी के इत्र बेचने की बात कही है[४९] वैसा कोई उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं मिलता। सूरदास के एक पद में चंदन, अरगजा, केसर आदि लेकर दूल्हे कृष्ण के दर्शन करने आने की 'गंधिनि' की कामना व्यक्त की गयी है[५०]। नंददास के अनुसार 'प्रेम' गंधी का वह सौदा नहीं जो जन जन के हाथ बिकता है[५१]।

ठ *तमोली और चोलिनी*—पान का 'बीड़ा' लगाकर बेचनेवाले को 'तमोली' और उसकी स्त्री को 'तमोलिनी' या 'चोलिनि' कहा जाता है। नंददास के एक पद में 'बीरी' खिलानेवाले 'तमोली' की चर्चा है,[५२] तो सूरदास ने कृष्ण विवाह-प्रसंग में चोलिनि के रूप में नंदनंदन को 'बीरा' देने आकर उनके दर्शन की कामना व्यक्त की है[५३]।

ड *तेली*—तिल, सरसों आदि को कोल्हू में पेरकर तेल निकालने और

४७ 'फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं काटे चीर दिखावैं गात—सा १०-११२।
४८. अबही नई पहिरि हौं आई चुरियाँ गईं सब फूट—परमा ११५।
४९.क. कर लै सूँघि सराहि कै रहे सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गँवई गाहक कौन—'बिहारी-बोधिनी ११२।
ख करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी, मतिअंध तू, अतर दिखावत काहि—'बिहारी-बोधिनी ६०९।
५० चंदन अरगजा सुर केसरि धरि लेउँ।
गंधिनि' ह्वै आऊँ निरखि नैननि सुख देऊँ—सा १ ७५।
५१ प्रेम एक इक चित्त सौं एकहि संग समाइ।
'गंधी को सौदो नहीं जन जन हाथ बिकाइ—नंद रूप पृ १७।
५२. 'बीरी करि-करि मोहि खवावै' लैयो संग तमोली —नंद परि , १ ।
५३ नँदनंदन प्यारे कौं, बीरा करि लेउँ।
चोलिनि ह्वै आऊँ निरखि नैननि सुख देऊँ—सा १ ७२।

बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'तेली' कहलाता है। इसका मुख्य सहायक है वह 'बैल' या 'वृष' जो कोल्हू के चारों ओर दिन-रात घूम-घूमकर तेल पैदा करता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास ने 'तेली' की ही नहीं, उसके वृष की चर्चा अवश्य की है[५४]।

ढ *पारधी*—पक्षी पकड़ने और उनको बेचने का व्यवसायी 'पारधी या व्याध' कहलाता है। सामान्यतया यह जाल लगा कर पक्षियों को पकड़ता है, लेकिन सूरदास के अनुसार, वृक्षों की ऊँची डाल पर बैठे पक्षी को कभी-कभी बाण से घायल करके यह शिकार भी करता है[५५]। जाल में पक्षियों को फँसाने के लिए व्याध एक स्थान पर उनके लिए 'चारा' या 'दाना' डालता है और स्वयं आड़ में छिपकर बैठ जाता है। उसके एक हाथ में 'लकुट' या लकड़ी रहती है जिसमें 'लासा' नामक एक चिपचिपा पदार्थ लगा रहता है[५६] और दूसरे में पतली तीलियों का बना 'काँपा' रहता है। दाने के लोभ से किसी पक्षी के वहाँ आने पर ज्योंही उसके पख लासे से चिपकते हैं, वह उड़ने में असमर्थ हो जाता है। तब व्याध काँपे से दबाकर उसे पकड़कर 'पिंजड़े' में बंद कर लेता है[५७]। 'पारधी' या व्याध के इस कार्य की चर्चा सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के रूप का लोभी अपने नेत्रों की स्थिति के वर्णन में करती हैं[५८]। व्याध के जाल में फँसे हुए

५४ माधौ जू मन सबही बिधि पोच।
×   ×   ×
तेली के वृष लौं नित भरमत भजत न सारँगपानि—सा १ १ २।

५५ अब कै राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान—सा १-९७।

५६ बाण में बेलों पर 'लासा' लगाकर गौरैया आदि पक्षियों के पकड़े जाने का वर्णन किया है—डा वासुदेवशरण अग्रवाल हर्ष सां अ, पृ १८२।

५७ जायसी ने भी व्याध के कार्य का वर्णन इससे मिलता जुलता ही किया है।
—पदा मनी ख्ड ६९ ७१ ७२ ७७ आदि।

५८ क लोचन भए पखेरू माइ।
लुब्ध स्याम रूप चारा कौं अलक फंद परे जाइ।
मोर मुकुट टाटी मानौ यह बैठनि ललित त्रिभंग।
चितवनि लकुट लासा लटकनि प्रिय, काँपा अलक तरंग।
[illegible] मुसुकानि [illegible] पारे।

पक्षियों को कभी-कभी सज्जन और पुण्यात्माजन छुड़ा भी देते हैं। उस समय पक्षियों को जैसी प्रसन्नता होती है, उसका अनुभव, सूरदास के अनुसार, जरासंध के मारे जाने पर उसके यहाँ बंदी राजा स्वतंत्र होने पर करते हैं[९]।

ए कसाई—पशुओं को मारकर उनका मांस बेचनेवाला 'कसाई' कहलाता है[१]। अष्टछाप-काव्य में इसके व्यवसाय के संबंध में तो नहीं लिखा गया है, परंतु शिशु कृष्ण को मारने के लिए कंस के सामने स्वयं प्रस्तुत होनेवाले 'धीवर धींमन' के कर्म को सूरदास ने 'कसाई' के कर्म-सा बताया है[११]।

४ जीविका के विविध साधन-रूप—

अपने सीमित अर्थ में 'वाणिज्य-व्यवसाय' का संबंध शुद्ध व्यापारी वर्ग से है जो मुख्यतः वस्तु-विशेष के उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय के द्वारा धनार्जन करता है, परंतु इसके व्यापक अर्थ का संबंध समाज के उन सभी व्यक्तियों से है जो जीविकोपार्जन में समर्थ हैं और किसी भी प्रकार का कार्य करके जीवन-यापन और परिवार का भरण पोषण करते हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति में आचार्य, वैद्य-जैसे वर्गों को व्यवसायी नहीं माना गया है और समाज का यथार्थ कल्याण भी इसी दृष्टिकोण को अपनाये रहने में है, परंतु इस आदर्शों का

सूरदास मन 'व्याध' हमारो, गृह-बन तें जु बिमारे—सा २२०२।
घ कपट 'बन हरत मृग' नैन मेरे।
'पुलनि निरखनि तुरत धाइहीं उड़ि मिले, परयो बारा पेट मंत्र फेरे।
× × ×
मनु हँसनि 'व्याध' पकनि मंत्र बोलनि मधुर मसन पुनि सुनत।
हत भी न भारे—सा ११०१।
५१ बिरम माल बप बाँधि 'व्याध लौं नृप 'भाग धपनि' बटोरी।
मनु सु घटेरी हरि जरासंध गुन 'पीजरी तोरी।
निकस बैठ घमीस एक मुग गारति बीरति मोरी।
मनु उड़ि चले बिहंगम के मन भर्ट चलिन पग छोरी—सा ४२११।
९ श्री टी डब्ल्यू राइस डेविड्स के अनुसार 'बौद्ध काल में भी कसाई की दूकानों की चर्चा अनेक स्थानों पर मिलती है— बौद्ध भारत' पृ ६५।
११ 'धीवर धींमन परम कसाई। कहो कंस सौं बचन सुनाई।
'प्रभु, मैं तुम्हरो आज्ञाकारी। नंद-सुवन को आजौं मारी—सा १०४३।

निर्वाह इस देश में भी गुरुकुलों की संख्या घट जाने पर, न हो सका और कालांतर में ये वर्ग भी राज्य के वेतनभोगी हो गये। आरंभ में धनी-मानी वर्ग से धनार्जन करके समाज के सामान्य वर्ग की निःशुल्क सेवा के क्रम का निर्वाह आचार्य और वैद्य किया करते थे। यह बात किसी अतीत की नहीं, पचास-साठ ही वर्ष पहले की है। परंतु आज इनके कार्य शुद्ध 'व्यवसाय' ('प्रोफेशन') बन गये हैं जिसकी पराकाष्ठा इस बात में देखी जा सकती है कि समाज के कल्याण में अधिक ध्यान न दे लोग अपनी आय के साधन जुटाने और उनको बढ़ाने की ओर देते हैं। इसी नवीन दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जीविकोपार्जन में समर्थ समाज के विभिन्न वर्गों के व्यवसाय और उनकी जिविका के साधन-रूपों की चर्चा, अष्टछाप-काव्य के आधार पर यहाँ की गयी है। यद्यपि यह ठीक है कि शुद्ध व्यापारिक दृष्टि से किया गया विविध वर्गों का वर्गीकरण भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण रखनेवाले आलोचकों को कुछ खटक सकता है, तथापि अष्टछाप-काल में प्रचलित जीविका के भिन्न भिन्न साधन-रूपों से एक साथ परिचय प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का विभाजन सुगम और सुबोध समझकर ही ऐसा करने के लिए इन पंक्तियों की लेखिका को बाध्य होना पड़ा है, अस्तु।

ऊपर जिन व्यवसायियों की चर्चा की गयी है, उनमें प्रायः सभी किसी न किसी वस्तु का व्यापार करते हैं। कोई दूसरों से कुछ खरीद कर अन्यत्र बेचता है, कोई स्वयं वस्तु का उत्पादन करके उसकी बिक्री का प्रबंध करता है। इनके अतिरिक्त समाज में अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो वस्तु-विशेष की खरीद या बिक्री तो नहीं करते, परंतु समाज की सेवा अपनी बुद्धि, योग्यता, कला-ज्ञान अथवा शारीरिक श्रम द्वारा करते हैं जिसके बदले में उन्हें 'धन' मिलता है। ऐसे जीविकोपार्जकों को स्थूल रूप से दो वर्गों में रखा जा सकता है—बुद्धिजीवी वर्ग और श्रमजीवी वर्ग।

क. *बुद्धिजीवी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में मुख्यतः वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्य में बुद्धि और अभ्यास का अत्यधिक महत्व होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस वर्ग के व्यक्तियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मान्य वर्ग और सामान्य वर्ग।

अ. *मान्य वर्ग*—इस वर्ग में वे जीविकोपार्जक आते हैं जिनके जीवन का

अधिकांश भाग शास्त्रीय और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते ही बीतता है। अष्टछाप काव्य में उल्लिखित इस वर्ग के जीविकापार्जकों में आचार्य और वैद्य प्रमुख हैं।

य आचार्य—अष्टछाप-काव्य में दो आचार्यों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है; एक, संडामर्क का और दूसरे, संदीपन का। प्रथम की 'चटसार' में राजनीति पढ़ने के लिए प्रह्लाद को भेजा गया था[१२] और द्वितीय के तपोवन में कृष्ण विद्या पढ़ने गए थे[१३]। जिस रूप में हिरण्यकशिपु द्वारा संडामर्क के बुलाये जाने की चर्चा है, उससे ज्ञात पड़ता है कि वे राज्य की ओर से वेतनभोगी आचार्य थे परंतु संदीपन गुरु से कृष्ण हाथ जोड़कर गुरु-दक्षिणा माँगने की प्रार्थना करते हैं[१४]।

र वैद्य—रोगों का उपचार करके जीविकार्जन करनेवाला 'वैद्य' कहलाता है। अष्टछाप-काव्य में वैद्य की चर्चा आचार्य-वर्ग से कहीं अधिक है। सूरदास ने दो पौराणिक वैद्यों की चर्चा की है—एक हैं अश्विनीकुमार और दूसरे हैं सुषेन। प्रथम ने च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार किया था[१५] और द्वितीय ने शक्ति लगने से लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर उन्हें जिलाया था[१६]। वैद्य सुषेन को लक्ष्मण के रोग का उपचार करने पर क्या मिला इसकी चर्चा अष्टछाप-काव्य में नहीं है, परंतु अश्विनीकुमारों को च्यवन ऋषि ने अपने कराये गये यज्ञों में सदैव भाग देने का वचन दिया था[१७]।

१२. पाँच बरस को भयौ जब आइ। 'संडामर्कहिं लियौ बुलाइ'।
तिनकैं सँग 'चटसार पठायौ'। राम नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हार। राजनीति कहि बारंबार—सा ७-२।

१३ अंतरजामी 'कुँवर कन्हाई'।
'गुरु पह पढ़त हुते जहँ विद्या', तहँ ब्रज-बासिनि की सुधि आई—सा १४११।

१४ गुरु सौं कह्यौ जोरि कर दोऊ 'दछिना कहौ सो देउँ मँगाई।
गुरु-पतिनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई।
आनि दिए गुरु सुत जमपुर तैं तब गुरुदेव असीस सुनाई—सा १४११।

१५. 'असिवनि-सुत' तहिं अवसर आए। करि प्रनाम यह वचन सुनाए।
जो कछु आज्ञा हमकौं होइ। सीघ्र लिख करैं अब सोइ।
'कह्यौ, दृगनि को करौ उपाव। तुरत नैन तिन दिए बनाइ'—सा ९ ३।

१६. कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई।
द्रोनागिरि पर आहि सँजीवनि बैद सुषेन बताई—सा ९ १४९।

१७ कह्यौ हम जज्ञ-भाग नहिं पावत। 'बैद' जानि हमकौं बरजावत।

वैद्यक विषयक अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अष्टछापी कवियों ने ऊधव-गोपी-संवाद में किया है। ऊधव को अपनी ही बकते देखकर गोपियाँ व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि तुमको वात, पित्त और कफ के व्यतिक्रम से 'त्रिदोष' हो गया है तभी तुम इस प्रकार की बकवाद लगाये हो। अपने इस 'बड़े रोग' का मथुरा जाकर उपचार कराओ क्योंकि इस गाँव में न तो 'मधु-रिपु जैसे बड़े वैद' हैं और न नाना भाँति के 'भेषज' ही हैं[९८]। 'सूरसागर' के हनुमान-रावण-संवाद में 'सन्निपात' रोग का उल्लेख हुआ है। इस रोग के होने पर रोगी बराबर बका करता है। रावण को भी बराबर बकते देखकर हनुमान कहते हैं कि तुम्हें 'सन्निपात' हो गया है[९९]। ऊधव-गोपी-संवाद में 'कफ' के व्यतिक्रम का 'राजरोग' होना एक पद में वर्णित है और गोपियाँ कहती हैं कि इस रोग में 'दही' खिलाना वैसी ही उल्टी बात है जैसी विरहिणियों को परमार्थ का उपदेश देना[०]।

सूरदास के एक पद में पथिक द्वारा 'कालिंदी' के ज्वर पीड़ित होने की सूचना हरि से कह देने का निवेदन किया गया है और इस प्रकार 'ज्वर' तथा उसके उपचार की चर्चा विस्तार से करने का अवसर कवि को मिल गया है। ज्वर की अधिकता से नायिका का 'काला' और दुर्बल हो जाना हर समय तड़पन और बेचैनी होना, कभी-कभी पसीना बहना, वस्त्रों का मलिन, शरीर का कांतिविहीन और बालों का रूखा-सूखा होना चित्त का हर समय उड़ा उड़ा फिरना कभी-कभी उसका बकने लगना आदि सभी बातें कवि ने कालिंदी पर घटित की हैं। 'ज्वर के उपचार' के लिए 'पूर्व

रिपि कमौ मैं करिहौं क्यूँ बाग। देहौं तुमहिं मधावि करि भाग—सा ९ १।

९८. समुझि न परति तिहारी ऊधौ।
 क्यौं त्रिदोष' उपजै जक लागत बोलत बचन न सूधौ।
 आपुन को उपचार करौ' अति तब औरनि सिख देहु।
 बड़ो रोग उपज्यो है तुमकौं मथन सवारैं लेहु।
 ह्याँ भेषज' नाना भाँतिनि के अरु मधुरिपु से बैद—सा १५९९।

९९ बोर सोर मुनहि बकत मरन निज ध्यान
 जैसैं नर सन्निपात भयैं बुध बखानैं—सा ९-९७।

० परमारथ उपचार कहत हो बिरह व्यथा है आहि।
 जाको राज रोग कफ व्यापत दह्यो खवावत ताहि—सा १७८५।

की बात कहना भी वह नहीं भूला है[७१]। इसी प्रसंग में श्री जगन्नाथदास रत्नाकर का वह प्रसिद्ध पद भी स्मरण हो आता है जिसमें गोपियाँ अपने 'विषम-वियोग-ज्वर' से पीड़ित होने की बात कहकर प्रियतम के 'सुदर्शन' द्वारा उपचार न करने का उलाहना ऊधव से देती हैं, अस्तु[७२]। हित की बात कही जाने पर भी अहित की ध्यान पड़ना—बुद्धि भ्रम जैसा भयंकर रोग बढ़ जाने पर रोगी की मृत्यु तक की आशंका होने लगती है। सूरदास की गोपियों को भी आशंका होती है कि ऊधव को यही भयंकर रोग हो गया है, अतएव वे उनको कोई 'सुवैद' शीघ्र ही खोज कर उपचार कराने की सलाह देती हैं[७३]। एक अन्य पद में सूरदास ने ज्ञान रूपी 'सुमेषज' के खाने से अज्ञान रूपी 'मूरछा' का मिटना बताया है[७४]।

७१ देखियति कालिंदी अति कारी।
अहो पथिक, कहियौ उन हरि सौं, भई 'बिरह जुर जारी'।
गिरि प्रजंक तैं गिरति धरनि धँसि तरँग तलफ तन भारी।
'तट बारु उपचार चूर', जल पूर प्रस्वेद पनारी।
बिगलित कच कुस काँस कूल पर, पंक जु काजल सारी।
भौंर भ्रमत अति 'फिरति भ्रमित मति', दिसि दिसि दीन दुखारी।
निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी—सा १११९।
७२ 'रस के प्रयोगनि' के सुखद सुजोगनि के,
जेते 'उपचार' चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत न 'सुदर्सन' हूँ यौं सुधि बिसराई हैं।
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यौं अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ 'विषम ज्वर वियोग' की चढ़ाई यह
'पाती कौन रोग की पठावत दवाई' हैं—'ऊद्धव-शतक' १४।
७३ ऊधौ तुम 'अपनौ जतन करौ'।
हित की कहत कुहित की लागति, कत बेकाज ररौ।
'जाय करौ उपचार आपनौ, हम जु कहति हैं जी की।
'कछू कै कहत कछुक कहि आवत' धुनि दिखियत नहिं नीकी।
× × ×
ब्याउ गयौ बेगि इन पाइनि 'उपज्यौ है तन रोग'॥
सूर सु बैद बेगि टोहौ किन भए मरन के जोग'—सा १९११।
७४ सूर मिटै अज्ञान मूरछा' ज्ञान सुभेषज खाएँ—सा २१२।

नेत्र के रोग-विशेष की चर्चा भी सूरदास ने की है जिसमें नेत्रों में 'चपारि' के भर जाने से वे हर समय खुले रहते हैं, कभी उनके पलक नहीं लगते। इस रोग में बड़ी पीड़ा होती है और किसी तरह कल नहीं पड़ती। इस रोग का उपचार 'सुर्मजन आँजना' कवि ने बताया है[७५]। च्यवन ऋषि के नेत्रों का उपचार अश्विनीकुमार ने किया था। अतएव विरह के कारण निमेष न लगने के अपने नेत्र-रोग' का उपचार कराने के लिए सूरदास की गोपियाँ ऊधव से अश्विनीकुमार रूपी कृष्ण से शीघ्र ही मिला देने का निवेदन करती हैं[७६]। परमानंददास ने 'रोग कुछ और उपचार' कुछ होना बहुत बुरा बताया है[७७]। वैद्य-विशेष या रसायनी द्वारा पारे की सहायता से सोने की भस्म बनाये जाने की चर्चा भी अष्टछाप-काव्य में हुई है[७८]।

आ सामान्य वर्ग—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों के कार्य में भी अभ्यास और अनुभव का स्थान यद्यपि कम आवश्यक नहीं होता तथापि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इनकी आवश्यकता पूर्व वर्ग की अपेक्षा कम ही होती है। हस्तकौशल की दृष्टि से इस वर्ग के व्यवसायियों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—एक, कलाकार वर्ग और दूसरा, अन्य वर्ग।

अ कलाकार वर्ग—अष्टछाप-काव्य में वर्णित जीविकोपार्जकों में से इस वर्ग

७५. और सकल अंगनि तैं ऊधौ अँखियाँ अधिक दुखारी।
'अतिहिं पिराति' सिराति न कबहूँ बहुत जतन करि हारी।
मग जोवत 'पलकौ नहिं लावति', बिरह बिकल भईं भारी।
'भरि गइ बिरह बयारि' दरस बिनु निसि दिन रहतिं उघारी।
ते अलि, अब ये ज्ञान सलाकैं', क्यों सहि सकतिं तिहारी।
सूर सुर्मंजन आँजि रूप रस आरति हरहु हमारी—सा ४५७।

७६ अनुदिन नयन निमेष न लागत भयौ बिरह अति रोग।
मिलवहु कान्ह कुमार अस्विनी मिटै सूर सब रोग—भ्रमर १६७।

७७ जो पै राम कृष्ण सौं नाहीं ज्ञान कहा लै कीजे।
औरइ आन रोग आनैं कुछ झूठो यह उपचार।
परमानंद स्वामी के बिछुरे ब्रज भाँग्यो दुख मार—परमा २४४ हस्त १६।

७८ रसायन वैद्य' की चर्चा 'दर्लं-चरित' में भी है—दर्प ना० प्र० पृ २६।

७६ जैसे पारद लै रसाइनी पारहिं आगि दई।
तब मन लाग्यो हरि सब ओवरी सौनी पूरि गई—सा १२६६।

में चित्रकार, मूर्तिकार, वास्तु-कलाकार और स्वर्णकार को रखा जा सकता है जिनके कार्य का मूल्य उनके हस्तकौशल पर निर्भर करता है।

१ *चित्रकार*—अष्टछाप-काव्य में यद्यपि 'चित्रकार' का स्पष्ट उल्लेख नहीं है तथापि 'भीति बिना चित्र' या 'चित्र की पूतरी'-जैसे उल्लेखों से[८] स्पष्ट है कि उनका ध्यान चित्रकार के व्यवसाय की ओर अवश्य था।

२ *मूर्तिकार*—'चित्रकार' के समान 'मूर्तिकार' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने स्पष्ट रूप से नहीं की है; परंतु 'पाहन की पूतरी' जैसे उनके उल्लेख[१] मूर्तिकार के व्यवसाय का स्मरण करा देते हैं।

३ *वास्तु-कलाकार*—सभी अष्टछापी कवियों ने अनेक भव्य भवनों का उल्लेख अपने काव्यों में किया है जिससे वास्तुकलाकारों के व्यवसाय का स्पष्ट परिचय मिलता है।

४ *स्वर्णकार*—स्वर्ण या सोने के आभूषण आदि बनानेवाले को 'स्वर्णकार' कहते हैं [२]। अष्टछाप-काव्य में इसके लिए 'सुनार' शब्द प्रयुक्त हुआ है[८३] और उसकी स्त्री को 'सुनारि' कहा गया है जो दूलह श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए भूषण गढ़कर ले जाने की कामना करती है[८४]। 'स्वर्णकार' या 'सुनार' के मुख्य दो कार्य हैं—गढ़ना और जड़ना। इसलिए 'गढ़ैया' [५] और 'जड़ैया' [६] का उल्लेख

८ क ऐसे करौं नर-नारि।
'बिना भीति चित्रकारि' कारे को देखैं मैं कान्ह कहा करौं सखिए—सा पं १२७१।
ख बज बिनु तरँग बिन बिनु भीतिहिं' बिनु चेतहिं चतुराई—सा १६११।
ग. हम तो भईं चित्र की पुतरी' मुख तरीरहिं दाहत—सा ११०९।
८१ करौं 'ऊपर कोरे की पुतरी को पूजै को माने—सा ४ ४४।
८२. पाणिनि काल का 'स्वर्णकार' स्वर्ण की परीक्षा करता था और उसे आग में तपा कर गहने गढ़ता था—'इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि' पृ ११४१।
८३.क धनगढ़ सोना डोलना (गढ़ि) ल्याए चतुर सुनार'—सा १ ४।
ख बिसकर्मा सूतहार रच्यौ काम है 'सुनार'—सा १ ४१।
८४ वृन्दावन चंद कौं मैं, भूषन गढ़ि लेउँ।
है 'सुनारि' आउँ निरखि नैननि सुख देउँ—सा १ ७५।
८५. धनि धरयो नंद द्वार अतिही सुंदर सुढार,
ब्रज-बधू कहैं बार-बार धन्य रे गढ़ैया'—सा १ ४१
८६. पँचरँग रेशम लगाउ हीरा मोतिनि मढ़ाउ,

सूरदास ने अलग-अलग किया है। इनके एक पद में 'कनक की कलाई' का भी उल्लेख हुआ है जो कुछ समय पश्चात् उतर जाती है [७]।

२ *अन्य व्यवसायी*—इस वर्ग में अष्टछाप काव्य में उल्लिखित दरजी, बढ़ई, रँगरेज, रजक आदि जीविकोपार्जक आते हैं जिनके कार्यों में एक कलाकार वर्ग की तुलना में कम हस्तकौशल अपेक्षित होता है।

१ दरजी—वस्त्र सीने का व्यवसाय करनेवाला 'दरजी' होता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कृष्ण के मथुरा पहुँचने पर, धनुष-भंग लीला के पूर्व, उनके शरीर की नाप के वस्त्र पहनाने में हुआ है [८]। 'दरजी' की स्त्री 'दरजिन' की कामना, सूरदास के एक पद में दूलह श्रीकृष्ण के उपयुक्त 'बागे' रचकर उनके दर्शन की बतायी गयी है [९]। वस्त्र सीने के पूर्व 'दरजी' कपड़े का 'ब्योंत' लगाता है। सूरदास के एक पद में विरहिणी गोपियों ने 'तन' को 'ब्योंत' और विरह को 'दरजी' बताया है [१०]।

२ बढ़ई—काष्ठ-शिल्पी को 'बढ़ई' कहते हैं। इसको कृष्ण-जन्म पर 'बढ़ैया' कहकर सूरदास ने चंदन की लकड़ी को भली भाँति 'खरादकर' पालना गढ़ लाने की आज्ञा दिलायी है [११]। उनके एक अन्य पद में इसे 'बाढ़ई' भी कहा गया है [१२]।

बहु बिधि जरि करि जराउ ल्याउ रे 'जरैया'—सा १०-४१।

८० ऐसी माधो की बिगार।
मानौ 'उपरि कनक कलाई' सी, दै निठु गए बगार—सा ३३८९।

८८. आइ दरजी' गयौ बौलि ताकौं लयौ सुभग अँग साजि उन बिनय कीन्हे—सा ३०४९।

८९. अपने गोपाल के मैं बागे रचि लेउँ।
दरजिनि' ह्वै जाउँ निरखि नैननि सुख देउँ—सा १०७५।

१० सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु 'तन भयौ ब्योंत बिरह भयौ दरजी'—सा ३४०१।

११ पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे 'बढ़ैया'।
सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रँग लाउ
बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बढ़ैया—सा १०-४१।

१२ गढ़ि गुढ़ि ल्यायो बाढ़ई धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे।
इक लगन मँगि बाढ़ई' दुर लाल नंद जु देहिं बलि हालरु रे—सा १०-४०।

३. रँगरेज—वस्त्र रँगने का कार्य करनेवाले को 'रँगरेज' और उसकी स्त्री को 'रँगरेजिनी' कहा जाता है। सूरदास की एक मानिनी गोपी कृष्ण की 'पाग' को 'जावक' से रँगी देखकर व्यंग्यपूर्वक पूछती है—क्या कोई 'रँगरेजिनी' मिल गयी थी जिसने जावक से पाग रँग दी है[१३]।

४ रजक—वस्त्र धोकर जीविकार्जन करनेवाला 'रजक' कहा जाता है। मथुरा पहुँचने पर कृष्ण की मुठभेड़ सबसे पहले कंस के वस्त्र धोते हुए 'रजक' से होती है[१४] जिससे वे वस्त्र माँगते हैं[१५] और उसके धृष्टतापूर्वक उत्तर देने पर[१६] उसको मारकर नृप के सब वस्त्र लुटा देते हैं[१७]। सूरदास और परमानंददास की गोपियाँ ऊधव से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि दिगंबरपुर में 'रजक' का क्या कार्य रह जायगा[१८] ? अर्थात् वहाँ तो उसकी आवश्यकता ही नहीं होगी।

ख *श्रमजीवी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग के जीविकोपार्जकों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—सामान्य श्रमजीवी और विशेष श्रमजीवी।

क *सामान्य श्रमजीवी वर्ग*—इस वर्ग में कहार, केवट नाई, बारी, माली, दाई, धाइ आदि वे पुरुष और स्त्री सेवक-सेविकाएँ आती हैं जो सामान्यतया स्वामी के यहाँ जाकर अपना कार्य करती हैं।

१३ ऐसी कहाँ रँगीलेलाल।
'जावक सौं कहँ पाग रँगाई, रँगरेजिनी मिली कोउ बाल —सा २५८५।
१४ नृपति 'रजक' अंबर-नृप धोवत।
देखे स्याम राम कोउ आवत गर्व सहित तिन जोवत—सा १ १७।
१५. नृपति पास हम जाहिंगे, अंबर कछु माँगि—सा १ १८।
१६. कंस पास है आइहे कामरी ओढ़ैया।
बहुरि बरस तैं आइकै तब अंबर लीजौ।
चोर बरी करि राखिहैं मारे सो कीजौ—सा १ १८।
१७ क. 'रजक' मारि हरि प्रथम ही नृप-बसन लुटाए।
रँग रँग बहु भाँति के, गोपनि पहिराए—सा १ ४२।
ख रँगभूमि में मल्ल पछारे कंस बहु बल मारयौ।
हत्यो 'रजक' लीने नाना पट पूरब बैर सम्हारयौ—परमा ५१२।
१८क. सूरदास दिगंबरपुर तैं 'रजक' कहा व्यौसाइ—सा ३६५७।
ख परमानंद दिगंबरपुर में 'रजक' कहा व्यौसाय—परमा हस्त २१ ।

म कहार—यों तो आज घरों में 'कहार' पानी भरने, बर्तन माँजने आदि के सेवा-कार्य के साथ-साथ 'डोली', 'बहँगी' या 'काँवरि' उठाने का काम भी करते हैं, परंतु अष्टछाप-काव्य में उनके दूसरे कार्य का ही उल्लेख है। सूरदास ने जड़भरत की कथा में रहूगण नामक नृपति के 'सुखासन' को उठाकर चलनेवाले 'कहारों' का वर्णन किया है जिनमें से एक के कुछ 'दुख' पा जाने पर उसकी जगह 'जड़भरत' को 'सुखासन' उठाना पड़ता है। एक तो अनभ्यास और दूसरे, पथ के जीवों को बचाकर चलने के कारण अन्य 'कहारों' का साथ वे ठीक से नहीं दे पाते[१]। गो० तुलसीदास ने भी 'कहारों' को 'काँवरि' ढोनेवाला कहा है[२]।

र केवट—नाव चलाकर जीविकार्जन करनेवाला, अष्टछापी कवियों के अनुसार, 'केवट',[१] 'खेवट',[२] 'धीवर',[३] 'कनधार'[४] 'मल्लाह'[५] आदि कहलाता है।

१६ चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ। तहाँ 'कहार' एक दुख पायौ।
भरत पंथ पर देख्यौ जातौ। वाकैं बदलैं ताकौं धरौ।
तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यौ। 'सुख-आसन' कंधि पर गह्यौ'।
भरत चलैं पथ जीव निहार। चलैं नहीं क्यौं बलैं 'कहार'।
नृपति कह्यौ मारग सम धाइ। चलत न क्यौं तुम नूपैं राइ।
कह्यौ 'कहारनि' हमैं न खोरि। नयौ 'कहार' चलत पग मोरि—सा ५।४।

२ भरि भरि काँवरि चले 'कहारा'—मानस बाल दो० ३ ४।

१ नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
× × ×
कृपासिंधु पै 'केवट' आयौ, कंपत करत सो बात—सा ९ ४१।

२. लेनहार न 'खेवट' मेरैं अब मो नाव अरी—सा १ १८४।

३ भरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवन पति राई।
× × ×
बार बार श्रीपति कहैं 'धीवर' नहिं मानै—सा ९ ४२।

४ कहौ कपि कैसैं उतरे पार?
दुस्तर अति गंभीर बारि निधि, सत जोजन बिस्तार।
× × ×
राम-प्रताप सत्य सीता कौ यहै नाव 'कनधार'—सा ९-८८।

५. जैसैं बिनु 'मलाह' सुदरी एक नाउ चढ़ाई।
बूड़त रह पार नहिं मिलहिं मिलहिं पनि न रई—सा ३३६६।

'करिया', 'खेवइया', 'नाविक', 'माँझी' आदि शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त होते हैं। अष्टछाप-काव्य में जिस प्रकार 'केवट' के पर्यायवाची शब्दों की अधिकता है, उसी प्रकार इस व्यापार की चर्चा भी आलोच्य कवियों ने अधिक विस्तार से की है। 'केवट' अथवा उसकी 'नाव' की चर्चा अष्टछाप-काव्य में मुख्यतः चार रूपों में है। प्रथम पौराणिक प्रसंग राम, लक्ष्मण और सीता के गंगा पार जाने से संबंध रखता है जिसमें केवट, श्रीराम के चरण-स्पर्श से अहल्योद्धार की बात जानकर, अपनी नाव के भी 'वधू'-रूप हो जाने के भय से, बिना उनके चरण धोये नाव पर बैठाने को तैयार नहीं होता[६]। इसी प्रसंग में अपने वर्ग की निर्धनता और नाव द्वारा जीविकार्जन की बात भी केवट कहता है[७]। सेमर-डाक का 'बेड़ा' बना देने का प्रस्ताव भी उसने किया है[८]।

'केवट' को दिया जानेवाला पारिश्रमिक 'उतराई' कहा गया है[९]। केवल नदी में ही नहीं, समुद्र में भी नाव चलाने का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में मिलता है। सीता जब हनुमान से पूछती हैं कि 'सत जोजन विस्तार' वाला समुद्र कैसे पार किया, तब हनुमान ने राम-प्रताप और 'सीता-सत्य' को नाव और कनधार' बताकर छण भर में ही पार हो जाने की बात कही है[१]।

६ क. नौका हौं नाहीं लै आऊँ।

× × ×

चरन परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात ?

जौ यह बधू होइ काहू की दारु-स्वरूप धरै।

छूटै देह जाइ सरिता तजि पग सौं परस करै।—सा ९ ४१।

ख मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई।

मो देखत पाहन तरे मेरी काठ की नाई—सा ९ ४२।

७ क मेरी सकल जीविका यामैं रघुपति मुक्त न कीजै—सा ९ ४१।

ख मैं निरधन कछु धन नाहीं जो और गढ़ाऊँ।

मो कुटुंब याही लागो ऐसी कहँ पाऊँ।

मैं निर्धन कछु धन नहीं परिवार घनेरो—सा ९ ४२।

८. सेमर ढाकहिं काटि कै बाँधौं तुम बेरी—सा ९ ४२।

९ लै भैया केवट 'उतराई'—सा ९ ४ ।

१ कहो कपि कैसें उतरे पार ?

दुस्तर अति गम्भीर बारि निधि सत जोजन विस्तार।

दूसरा प्रसंग यमुना में 'केवट' बनकर श्रीकृष्ण के नाव चलाने का है जो अष्टछापी कवियों में केवल परमानंददास की कल्पना है जिसमें 'उतराई' लेने की बात भी कही गयी है[११]। नाव खेते समय श्रीकृष्ण 'वृषभानुनंदिनी' की प्रतीक्षा भी करते हैं और दोनों की छवि देखकर 'सरिता-पानी भी 'विचलित' हो जाता है[१२]।

'केवट'-संबंधी तीसरा उल्लेख सूरदास के विनय-पदों में मिलता है जिनमें 'भवसागर' में बिना 'खेवट' के अपनी असहाय अवस्था का वर्णन कवि करता है[१३]। उनके एक दूसरे पद में हरि-नाम को 'नौका' बताया गया है भवसागर में डूबता हुआ व्यक्ति पारिवारिक मोह-ममता में फँसे रहने के कारण जिस पर चढ़ नहीं पाता[१४]।

चौथा प्रसंग गोपियों से संबंधित है। सूरदास के एक पद में गोपी-विशेष 'चढ़ी हुई नदी' में पलक रूपी 'पथिक' द्वारा धैर्य रूपी नाव पकड़ी न आ सकने की बात कहती है[१५]। उनके एक अन्य पद में अपने अश्रुओं से बाढ़ पर आयी हुई जमुना

राम-प्रताप सत्य सीता को यहै नाव-कनधार।
तिहिं अधार छिन मैं अवलंबी आवत भई न बार।—सा० ९-८२।

११ 'बैठे घनस्याम सुन्दर खेवत हैं नाव'।
आज सखी मोहन सँग खिबे को दाव।
जमुना गंभीर नीर अति तरंग लोलैं।
गोपिनि प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोलैं।
पथिक, 'हम खेवट तुम दीजिये उतराई'—परमा० ७४४।

१२. 'जमुना जल बिहरत हैं हरि नाव।
बेगि चलो वृषभान नन्दिनी अब खेलन को दाव।
नीर गंभीर देखि कालिन्दी पुनि-पुनि तुरत चलावै।
बार बार मुख पंथ निहारत नैननि में मुसुकावै।
सुनि के बचन राधिका दौरी धाइ कंठ लपटानी।
परमानँद प्रभु छबि अवलोकत बिचरो सरिता पानी'—परमा० ७४५।

१३ गरनहार न 'खेवट' मेरे अब मो नाव भरी—सा० १-१८४।

१४ अब कैं नाथ मोहिं उबारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि।
× × ×
नाहिं चितवत देत तुम निज नाम-नौका चौर—सा० १-९९।

१५. निरखनि ऐसैं है न रही।

को पार करके श्रीकृष्ण के ढिग जाने के लिए सेज की 'पर-नौंव' बनाने की बात विरहिणी को सूझती है[१६]।

ख नाई—बाल काटकर जीविकार्जन करनेवाला 'नाई' कहलाता है जिसका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। 'नाई' जाति की स्त्री 'नाइनि' कहलाती है जो धनी परिवारों की महिलाओं की सेवा करती है। सूरदास के एक पद में 'नाइनि' को 'महावर' लगाने के लिए बुलाये जाने की बात कही गयी है[१७]।

ग बारी—दौने-पत्तल आदि बनाने-बेचने का व्यवसाय करनेवाला 'बारी' कहलाता है जिसकी स्त्री 'बारिनि' कृष्ण-जन्म पर 'वंदनवार' बाँधती बतायी गयी है[१८]।

घ माली—वाटिका अथवा उद्यान के रख-रखाव का कार्य और फूलों का व्यवसाय करनेवाला 'माली' कहलाता है। सूरदास ने कंस के माली की चर्चा की है जो कृष्ण को देखते ही उनके चरणों पर गिरता और पुहुपमाला पहनाता है[१९]। 'सारावली' में इस माली का नाम 'सुदामा' बताया गया है[२०]। 'माली' की स्त्री 'मालिनि' कहलाती है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'बारिनि' की तरह सूरदास ने लक्ष्मी-सी सजी-धजी 'मालिनि' को भी 'वंदनमाला'[२१] और 'तोरना' बाँधते बताया है[२२]। कृष्ण-राधा-विवाह के प्रसंग में 'मालिनि', सूरदास के अनुसार, दूल्ह कृष्ण

स्याम सुंदर-सिंधु-सनमुख, सरित उमँगि बही।

× × ×

मके पन पथ नाव-धीरज, परति नहिन गही—सा १७६१।

१६. अब मैं पनघट जाउँ सखी री, वा जमुना कैं तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चलति है इन नैनन कैं नीर।
इन नैननि कैं नीर सखी री, सेज भई घर-नाउँ।
चाहति हौं ताही पै चढ़ि कै हरि जू कै ढिग जाउँ—सा ३२७५।

१७ 'नाइनि' बोलहु नवरँगी ल्याउ महावर बेग'—सा० १०-४० ।

१८. 'बारिनि बंदनवार बँधाई'—सा १०-२६१।

१९ बीच 'माली मिल्यौ दौरि चरननि परयौ—सा ३५११।

२० आगे मिल्यौ सुदामा माली फूल माल पहिराई—सा ५८१।

२१ 'लछिमी-सी जहँ मालिनि बोलै। बंदन-माला बाँधत डोलै—सा १०-३२।

२२. 'मालिनि बाँधै तोरना'—सा० १०-४० ।

के लिए माला गूँथकर ले आने की कामना रखती है[२३]।

च दाई—बच्चा जनाने का कार्य करनेवाली सेविका को 'दाई' कहा जाता है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'दाई' के कभी 'कल साँझ' में[२४] और कभी 'अर्धरात्रि' में ही आ जाने का वर्णन सूरदास ने किया है। प्रौढ़ावस्था में पुत्र-जन्म बड़ी प्रसन्नता का अवसर माना जाता है इसलिए दाई भी कभी 'कंचन-हार' के लिए[२५] और कभी 'मोतियों भरे थार' के लिए मचला करती है[२६]। दाई यदि 'नार' काटने का कार्य शीघ्र ही न करे तो उसमें 'बयारि' भर जाने का डर रहता है। इसी-लिए उसकी सभी माँगें शीघ्र ही पूरी कर दी जाती हैं और वह 'नार' काट कर माता-पिता आदि को बधाई देती है[२८]।

स धाय—जन्म के पश्चात् माता से किसी भी कारण बिछुड़ जानेवाले शिशु को जो स्त्री पालती है, सामान्यतया उसे 'धाय' कहते हैं। इसीलिए सूर दास की यशोदा देवकी के पास संदेश भेजते समय अपने को कृष्ण की 'धाइ'

२३. (सूरह देखोंगी भाइ) उतरे संकेत बर्हि किहिं मिसि लगि पाउँ।
फूल गूँथि माला लै 'मालिनि' ह्वै आऊँ—सा १ ७५।
२४ क गीदे बिदा, चलै घर अपनें 'काल्हि साँझ की धाई'—सा ०-१६।
ख पूत भयौ जसुमति रानी कैं, 'अर्ध राति' हौं धाई—सा १ १८।
२५ क जसुदा नार न छेदन दैहौं।
'मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ वहै आजु हौं लैहौं।
× × ×
बहुत दिननि की आसा लागी भगरिनि भगरी कीनौ।
मन मैं बिहँसि तबै 'नँदरानी हार हिये कौ दीनौ'—सा १०-१५।
ख भगरिनि, हैं हौं बहुत खिभाई।
कंचन-हार दिऐं नहिं मानति', तुहीं अनोखी दाई—सा १ १६।
२६ हरि कौ नार न छीनौं माई।
पूत भयौ जसुमति रानी कैं अर्धराति हौं धाई।
अपने मन कौ भायौ लैहौं, 'मोतिनि थार भराई।
बद भोवर कब ह्वै है फिरि कै पायौ देव मनाई।
'उठी रोहिनी परम अनंदित हार रतन लै धाई—सा १ १८।
२७ बेगिहिं नार छेदि बालक कौ 'जाति बयारि भराई—सा १ १६।
२८ नार छीनि तब सूर स्याम कौ, हँसि-हँसि देति बधाई—सा १ १८।

कहती है[३१]।

आ *विशेष श्रमजीवी वर्ग*—इस वर्ग में सारथी, महावत आदि वे सेवक आते हैं जिनकी सेवा का लाभ विशेष वर्ग ही उठा सकता है, सामान्य वर्ग नहीं। कृष्ण[३] के अतिरिक्त रथ के हाँकनेवाले किसी अन्य 'सारथी' का वर्णन अष्टछाप-काव्य में दो एक स्थलों पर ही है[३१]। हाथी के महावत का उल्लेख उसमें तीन रूपों में हुआ है। एक, कंस के यहाँ 'कुवलया' नामक हाथी के 'महावत' का[३२] जिसे 'गजपाल' भी कहा गया है[३३]। दूसरे, पावस-प्रसंग में गोपियों को चारों ओर उमड़ते हुए घन मदन के मत्त हाथी से जान पड़ते हैं जिनको पवन रूपी 'महावत' भी अपने 'अंकुस' से वश में नहीं कर पाता[३४]। तीसरे प्रसंग में विरहिणी गोपियों ने अपने मन को मत्त गज कहा है जिसका 'महावत', 'सतगुरु', 'अंकुस', ज्ञान; और 'साँकर', 'सत्संग' को बताया गया है[३५]।

२६. संदेसो देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ 'धाइ' तिहार सुत की, मया करत ही रहियौ—सा ११७५।
१ पारथ के सारथी हरि आप भए हैं।
× × ×
बाएँ कर बाजि-बाग दाहिनि हैं बैठे।
हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौं ऐंठे—सा १-२३।
३१ आपने बान सौं काटि ध्वज रथ को बहुरि इक 'सारथी' तुरत मारे—सा ४१८३।
३२.क सुनिहि 'महावत' बात हमारी।
बार बार संकर्षन भापत लेत नहि क्यौं तैं गज टारी—सा १ ५२।
ख बात सुनत रिस भरयौ 'महावत' तुमहिं कहा इतनौ रे गारौ—सा १०५१।
ग 'महावत' मत करही हाथी हाठौ—परमा ५ ५।
३३ क कोप 'गजपाल' कैं ठठकि हाथी रह्यौ देत अंकुस मसकि कह्र लकान्यौ।
—सा १ ५४।
ख आय गजराज गजपाल कीन्हौ—सा १ ५५।
३४ देखियत चहुँ दिसि तैं घन घोरे।
मानौ मत्त मदन के हथियनि बल करि बंधन तोरे।
× × ×
रुकत न पवन महावतहूं पै मुरत न अंकुस मोरे—सा ११ १।
३५. माधौ, मन मरजाद तज्यौ।

५. अन्य वर्ग—

इस वर्ग में आनेवाले व्यक्तियों को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—गुणी, मन-रंजनकारी, प्रशस्तिगायक, याचक और तिरस्कृत वर्ग।

क. *गुणी*—इस वर्ग में आनेवाले जीविकोपार्जकों में प्रमुख है—'गारुड़ी' जिसका उल्लेख अष्टछापी कवियों में सूरदास और नन्ददास ने विशेष रूप से किया है; क्योंकि उनके परमाराध्य ही 'गारुड़ी' का अभिनय कर रहे हैं। 'गारुड़ी का मुख्य कार्य है साँप का विष उतारना। 'मुझे कारे ने डस लिया',[३६] राधा के मुख से इतना सुनते ही सखियाँ उसे लेकर घर आती और तत्काल गुनी 'बुलाने' को कहती हैं[३७]। नगर से बड़े-बड़े 'गुनी' अर्थात् 'गारुड़ी बुलाये जाते हैं। वे सब अपना 'गुन' दिखा-दिखाकर थक गये, परंतु किसी के मंत्र से उसका विष नहीं उतरा[३८]। जब सब गारुड़ी हारकर चले जाते हैं[३९] तब स्याम को 'बेगि ही' बुलाने को कहा जाता है[४०]। राधा की माता, कृष्ण को लिवाने जाती है;[४१] क्योंकि उसको

ज्यौं गज मत्त जानि हरि तुमसौं बात बिचारि सजी।
मानौं 'नहीं महावत सतगुरु अंकुस जानहुँ टूट्यौ'।
धावत अब अपनी आतुर तजि, साँकर सत्संग तूट्यौ—सा ४ १७।

३६. यह बानी कही सखियनि आगैं मोकौं कारैं खाई—सा ७४२।
३७ स्याम भुजंग डस्यौ हम देखत ल्यावहु गुनी बुलाई—सा ७४१।
३८. औरै दसा भई छिन भीतर बोले गुनी नगर तैं।
सूर 'गारुड़ी गुन करि थाके' मंत्र न लागत थर तैं—सा ७४४।
३९ क चले सब 'गारुड़ी' पछिताइ।
नैंकहुँ नहिं मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ—सा ७४५।
ख फुरै न मंत्र जंत्र गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे'।
× × ×
निर्विष होत नहीं कैसे हूँ बहुत 'गुनी पचि हारे'—सा ७४७।
४० क रोवति जननि कंठ लपटानी सूर 'स्याम गुनराई'—सा ७४३।
ख सूर 'स्याम गारुड़ी बिना को जो सिर गाड़ उतारै—सा ७४७।
ग. 'ल्यावौ गुनी जाइ गोबिंद कौं' वाकी अवधिहिं टारि—सा ७५ ।
४१ वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ।
× × ×
गुनी यह बात मैं जाइ धनुराग जो गारुड़ी बड़ो है गुन तुम्हारौ—सा ७५१।

बताया गया है कि कृष्ण ने काले की डसी हुई एक 'बिटिनिया' को तुरंत जिला दिया था[४२]। यशोदा कृष्ण को बुलाकर राधा का विष झाड़ आने की बात कहकर पूछती हैं कि क्या तुम्हें कुछ मंत्र-तंत्र भी आता है[४३]? श्याम स्वीकारात्मक उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे तो ऐसा मंत्र आता है कि कैसे भी विषधर ने डसा हो, मैं जिला लूँगा[४४]। राधा के घर आकर उसका विष उतारने का अभिनय करते हुए कृष्ण कभी कुछ पढ़ते हैं, कभी उसके अंगों का स्पर्श करते हैं[४५] और तब राधा नेत्र उघारकर माता से पूछती है—यह सब क्या है[४६]? पश्चात्, राधा की माता कृष्ण को कंठ से लगाकर, मुख चूमकर घर भेज देती है[४७]।

नंददास ने इस प्रसंग का वर्णन कुछ विशेषता के साथ किया है। राधा की सखियाँ उसे सिखाती हैं कि तू माता से 'नाग के काटने' की बात कहना, तब हम श्याम को बुला लायेंगी[४८]। मूर्छित राधा को लेकर जब सखियाँ घर पहुँचती हैं तब वह दो घड़ी में आँख खोलकर वैसा ही कहती है जिससे माता तत्काल कोई

४२. महरि गारुड़ी कुँवर कन्हाई'।
'एक बिटिनियाँ कारैं खाई, ताकौं स्याम तुरतहीं ज्याई'—सा ७५४।

४३. कहूँ राधिका कारैं खायो जाहु न आवौ झारि।
मंत्र-तंत्र कछु जानत हौ तुम सूर स्याम बनवारि—सा ७५५।

४४. मैया एक मंत्र मोहिं आवै।
विषहर खाइ मरै जो कोऊ मोसौं मरन न पावै—सा ७५६।

४५. कछु पढ़ि-पढ़िकर, अंग परस करि विष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी सिर पर डारी गारि—सा ७५९।

४६. लोचन दए कुँवरि उघारि।
× × ×
बात बूझति जननि सौं री कहा है यह आज—सा ७६।

४७. बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगावै मुख चूम्यौ निजै घरहिं पठाई—सा ७६१।

४८. मागी कहै सुनि कुँवरि! तौहि इक जतन बतावैं।
चुप रहि कै सुनि लेहु उठो जब घर लै जावैं।
कहियौ कारौ नाग नैं मो पूँछै तब मात।
हम हैं तीन गुपाल की लैहैं तुरत बुलाय—नंद, स्याम, पृ ११८।

उपाय करने की बात कहते कहते स्वयं मूर्छित हो जाती है[४९]। तब एक-एक करके कई सखियाँ यशोदा के पास पहुँचती और सारी बात बताती हैं[५०]। यशोदा कृष्ण को बुलाकर तत्काल राधा के यहाँ जाकर उसका उपचार करने को कहती हैं[५१]। परंतु कृष्ण सहसा वहाँ जाने को सहमत नहीं होते और सखियों से इस प्रकार पूछते और बात करते हैं जैसे वृषभानु और उनकी 'कुँवरि' राधा को जानते ही न हों[५२]। जब सखियाँ राधा का परिचय देती हैं तब कृष्ण अपने पारिश्रमिक का प्रश्न उठाते हैं। सामान्य 'गारुड़ी' अपने कार्य के बदले में 'अर्घ्य-द्रव्य' या पान-पात' पाकर संतुष्ट हो जाता है, परंतु कृष्ण को यह सब नहीं चाहिए। वे स्पष्ट कहते हैं कि राधा को 'जिवाने' के बदले में मुझे 'अर्घ्य-द्रव्य या 'पान-पात' की अभिलाषा नहीं है। मैं तो यह चाहता हूँ कि राजा वृषभानु एक 'डोला' गढ़ाकर मुझे उस पर राधा के साथ बैठावें और सब सखियाँ हम दोनों को झुलावें। यदि मेरी यह बात मानी जाय तो मैं चल सकता हूँ[५३]। वृषभानु के यहाँ उनके पहुँचते ही राधा की माता ने पौरि तक आकर उनका स्वागत किया और सिंहासन पर बैठाकर पुत्री का हाथ दिखाया। तब कृष्ण ने 'परस और फूँक' का अभिनय करके सारा विष हर

४९ गई परी ह्वै बीथि अकेली नैन उघारे।
 तो लै बड़े उसास डसी मैया मोहिं कारे।
 'नाग डसी'! मैया सुनत गिरी धरनि मुरझाइ।
 बार-बार यौं भाखहीं, कोउ अबहीं करौ उपाइ—नंद श्याम पृ ११८।

५० एक चली द्वै-चार चलीं गोकुल मैं आई।
 जसुमति बैठी जहाँ बैठि तहँ बात चलाई—नंद श्याम पृ ११६।

५१ जित बरसानौ गाँउ ग्वालिनी तित तैं आईं।
 एक कुँवरि वृषभान की, कारैं डसी कुठौर।
 व्याकुल ह्वै धरनी परी नैन-पूतरी मौर
 लाल तहँ जाइए—नंद श्याम पृ ११६।

५२. को राजा वृषभानु है? कित बरसानौ गाम?
 कौन तुम्हारी कुँवरि है? हौं जानत नहिं नाम—नंद, श्याम पृ ९२।

५३. वह राजा वृषभान 'एक ही डोला गढ़ावै'।
 मोहिं राधे बैठारि सखिनि पै झोंटा द्यावै।
 'अरघ-द्रव्य इच्छा नहीं, पान-पात नहिं लेउँ।
 जो इतनौ कारज करौं कुँवरि भली करि देउँ—नंद श्याम, पृ ९२।

लिया[५४]। इसके अनंतर ही 'अहैता' ने नेत्र खोल दिये[५५]।

ख *मनोरंजनकारी जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में नट या बाजीगर, गणिका आदि नर-नारियों का वह समुदाय आता है जो अपनी कला आदि के प्रदर्शन से समाज अथवा व्यक्ति-विशेष का मनोरंजन करके, उनको सुख पहुँचाकर, जीविका का उपार्जन करता है।

अ *नट या बाजीगर*—तरह-तरह के खेल करके जन-समाज का मनोरंजन करनेवालों में 'नट' और 'बाजीगर' का प्रमुख स्थान है। अष्टछापी कवियों ने 'नट' के 'कला दिखाने' की बात लिखी है[५६] और 'नट' का सहयोगी 'बाजीगर' भी बताया है[५७]। 'नट' की स्त्री 'नटी' या 'नटिनी' स्वयं तो नाचती ही है, 'लकुट' लेकर 'कपि' को भी नचाती है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा को, 'नटिनी' के समान 'लकुटिया' लेकर 'कपि' को नचानेवाली ही कहती हैं[५८]। उनके एक पद में 'माया' को 'नटी' बताया गया है जो कपि की भाँति 'जीव' को 'कौतिक नाच' नचाती है[५९] और दूसरे में 'मृत्यु' को 'नटी' कहा गया है जो 'माया-रस-लंपट' जीव के 'मूँड़' पर चढ़कर नाचती है[६०]।

आ *गणिका*—पुरुषों का मनोरंजन करनेवाली वारविलासिनी का उल्लेख भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से होता आया है। नगरों में 'गणिका संघों' की स्थापना की चर्चा तो उसमें मिलती ही है,[६१] सेना के साथ भी 'वारविलासिनियों'

५४ तब रानी उठि बीरि पौरि तैं मोहन लाई।
सिंघासन बैठाइ हाथ गहि कुँवरि दिखाई।
'दरस-मूँड दै बिन हरयौ' निज सनमुख बैठाइ।
बहु धन वारति है सखी मुदित कुँवरि की माइ—नंद, श्याम, पृ १२१।

५५. सुनत बचन ततकाल लडैती नैन उघारे—नंद श्याम पृ १२१।

५६. ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै लोभ न छूटत 'नट' कैं—सा १२६२।

५७ कै कहुँ रंक, कहूँ ईसरता 'नट-बाजीगर' जैसैं—सा १२६१।

५८. 'नटिनी' लौं कर लिए लकुटिया कपि ज्यौं नाच नचावै—सा १६११।

५९. 'माया नटी लकुटि कर लीन्हें कौतिक नाच नचावै—सा १४२।

६ मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी।
ताकैं मूँड चढ़ी नाचति है 'मीचउति नीच नटी'—सा १९८।

६१ 'पाणिनि के सूत्र' ४.२.४ पर 'कात्यायन के वार्तिक और महाभाष्य' से पता

के होने की बात 'हर्षचरित' में कही गयी है[६२]। अष्टछापी कवियों ने 'गनिका' का वर्णन तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम प्रसंग में वह 'शरीर का व्यापार' करनेवाली बतायी गयी है जिसके पुत्र की शोभा समाज में इस कारण नहीं होती कि उसके पिता का पता नहीं होता[६३]। परमानंददास के अनुसार ऐसी 'गनिका' धनी का ही आदर करती है[६४]। दूसरे, 'गनिका' की चर्चा होली-प्रसंग में की गयी है और प्रफुल्लित लताओं के सुमनों का रस-पान करते हुए भ्रमर 'गनिका' के गात का स्पर्श करते हुए 'विट' अर्थात् कामुक-पुरुष-से बताये गये हैं[६५]। इसी प्रसंग में सूरदास ने उसके लिए 'वेस्या' शब्द का प्रयोग किया है और होली के हुल्लड़ में 'सठ पंडित वेस्या बधू' सभी का एक-सा निर्लज्ज हो जाना कहा है[६६]। तीसरे, 'गनिका' का उल्लेख उस पौराणिक प्रसंग को लेकर किया गया है जिसमें 'सुवा' पढ़ाते समय उसके तर जाने की बात आती है[६७]। इस प्रसंग को लेकर परमानंददास ने व्यंग्य किया है कि वह 'गनिका' किस राजा की पुत्री थी जो उस पर इतनी कृपा की गयी[६८]? जायसी ने 'गनिका' के लिए 'पतुरिया' शब्द का भी प्रयोग किया है[६९]।

इ. *प्रशस्तिगायक जीविकोपार्जक*—इस वर्ग में चारण, सूत, भाट, मागध आदि वे बंदीजन आते हैं जो राजा, स्वामी अथवा अन्य प्रतिष्ठित जन की प्रशस्ति गाकर अपनी जीविका का अर्जन करते हैं। इनका उल्लेख अष्टछाप-काव्य में 'राम'[७०]

चलता है कि उनके समय में नगरों में गणिका-संघों की स्थापना हो चुकी थी।
—'प्राचीन भारतीय मनोरंजन', पृ० ११।

६२. डा॰ वासुदेवशरण अग्रवाल : ह॰ सां॰ अ॰, पृ॰ १७८।
६३. 'गनिका-सुत सोभा नहिं पावत जाके कुल कोऊ न पिता री'—सा॰ १.३४।
६४. गनिका आदर करति पुरुष कौं देखति द्रव्य भरयौ—परमा॰ कीर्त॰ १.५१।
६५. प्रफुल्लित लता जहाँ-जहँ देखत तहाँ-तहाँ अलि जात।
मानहुँ विट सबनिनि अवलोकत, परसत गनिका गात—सा॰ २८५१।
६६. 'सठ पंडित बेस्या बधू सबै भए इकसारि'—सा॰ २९१४।
६७ क. कीर पढ़ावत गनिका तारी—सा॰ १.९७।
ख. सुवा पढ़ावत गनिका तारी—सा॰ १.९९।
६८. कौन नृपति की दुती कुल बधू गनिका को कहा परिच दियौ—परमा॰ ८९।
६९. 'पतुरिनि नाचे फिरै सौ पोठी—पदमा॰, सैंबी क्षा॰, ५२९.१।
७० क. 'मगध-बंदी-सूत सुगाए' गो-गर्दह-दुप चीर।

और कृष्ण-जन्मों[७१] के अवसरों पर यश-गान करने, दान पाने और आशीस देनेवालों के रूप में हुआ है। सूरदास के अनुसार 'रुक्मिणी-विवाह' के अवसर पर भी 'भाट' 'बिरद बोलते' हैं[७२]।

ई *याचक वर्ग*—इस वर्ग में 'ढाढ़ी', 'जगा' और भिखारी' आते हैं जो हर्ष के अवसरों पर परिवार को कुशल मनाकर अन्न, वस्त्र आदि की याचना करते हैं।

१ *ढाढ़ी*—अष्टछाप-काव्य में 'ढाढ़ी' और उसकी स्त्री 'ढाढ़िनि' का उल्लेख श्रीराम आदि के जन्म के शुभ अवसरों पर नहीं, केवल कृष्ण-जन्मोत्सव प्रसंग में हुआ है जो 'हुरके' या 'ढाढ़' बजाकर नाचते, बधावा गाते और नवजात शिशु की कल्याण-कामना करते हुए धन वस्त्र आदि की याचना करते हैं[७३]।

देत असीस सूर चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर—सा ९ १८।

ख आज सखी रघुनन्दन जाय।

× × ×

'गुनि गंधर्व चारन जस बोलैं' भुवन चतुर्दस आनन्द पाय—परमा १४।

७१ क 'मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल वार'।

आए पूरन आस कै सब मिलि देत असीस—सा १ १७।

ख 'मागध, सूत भाट' धन लेत जुराबन रे—सा १ २८।

ग 'आनंदित विप्र सूत, मागध याचकगन' उमँगि असीस देत हित हरि के।

—सा १ १।

घ 'बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि' दूरि-दूरि तें आए।

× × ×

ते पहिरे कंचन-मनि-भूसन नाना बसन अनूप—सा १ १५।

ट घर-बाहर मौंगै सबै (हो) 'ठाढ़ मागध-सूत —सा० १०-८।

च पर्वत दान तिलनि को कीन्हों रतननि कोष मिलायी।

'मागध सूत और बंदीजन ठौर-ठौर जस गायौ—सारा ३११।

छ. बंदी सूत' नंदराय घर-घर सबहिनि देत बधाई—परमा १।

ज गुनी मनक बंदीजन मागध' पायो अपनी लाग—परमा ५।

७२. भाट बोलैं बिरद—सा ४१८८।

७३ क 'ढाढ़ी औ ढाढ़िनि गावैं ठाढ़ हुरके बजावैं,

हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कै —सा १०-११।

सूरदास[७४] और नंददास ने[७५] अपने को नंदराय का 'ढाढ़ी' बताया है। चतुर्भुजदास ने दान में मिला सामान 'ढाढ़ी' को गयंद' पर लादकर ले जाते कहा है[७६]।

२ जगा—कृष्ण-जन्म के अवसर पर 'वृषभानु के 'जगा' का नंदराय के यहाँ आना और 'लाल का झगा' बधाई में पाने की याचना करना सूरदास ने लिखा है। 'बकसीस' में कंचन-तगावाली झगुली पाकर 'जगा', नंदराय के आँगन म नाचने लगता है[७७]।

३ *भिखारी*—अष्टछाप-काव्य में भिखारी का उल्लेख एक तो सामान्य रूप से हुआ है[७८] और दूसरे, राम[७९] और कृष्ण-जन्म के अवसरों पर सूत, मागध

ख 'ढाढ़िनि मेरी नाचै-गावै, हौं हूँ ढाढ़ बजाऊँ'।
हमरौ चीत्यौ भयौ तुम्हारैं, जो माँगौं सो पाऊँ।
× × ×
हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौं बोली अब तू बरनि बधाई—सा १ १७।

ग. 'हौं ढाढ़िनि' ब्रजराज की ब्रज तें आई—चतु ७।

७४ क. 'हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ'—सा १०-३५।

ख 'मैं तेरे घर कौ हौं ढाढ़ी', मो सरि कोउ न आन।
× × ×
'हौं तेरौ जनम-जनम कौ ढाढ़ी सूरजदास कहाऊँ'—सा १०-३६।

ग 'हौं तो तुम्हरे घर कौ ढाढ़ी', नाऊँ सुनें सचु पाऊँ।
गिरि-गोवर्धन बास हमारौ, घर तजि अनत न जाऊँ—सा १ ३७।

७५. जन्म-जन्म काहू नहीं जाँच्यौ फिरि नहिं माँगौं ओली।
'नंददास नँदधाम कौ ढाढ़ी भयौ अयाचिक डोली—नंद , परि , १ ।

७६. ढाढ़ी 'गयंद' लदाइ चल्यौ चित चाहिलो—चतु ७।

७७ नंद-सदौ सुनि आयौ हो 'वृषभानु कौ जगा'।
देवे कौं बड़ो महर, देत न लावै गहर, लाल की बधाई पाऊँ लाल कौ झगा।
मुकुलित ह्वै कै आनि, दीनी है जसोदा रानि झीनीयै झगुलि तामैं कंचन तगा।
'नाचै फूल्यौ अँगनाइ सूर बकसीस पाइ' माथे कै चढ़ाइ लीनो लाला कौ झगा।
—सा १०-३९।

७८. जो राजा-सुत होइ भिखारी लाज परे ते आइ बिकाने—सा १-२१७

७९ देत दान राख्यौ न भूप कछु महा बड़े नग हीर।
भए निहाल सूर सब जाचक जे जाँचे रघुबीर'—सा ९ १९।

आदि के साथ 'याचक' रूप में[८०]। स्पष्ट है कि प्रथम रूप में भीख माँगकर जीवन-यापन करनेवालों की चर्चा है और दूसरे में सामान्य याचक के रूप में भी हर्ष के अवसरों पर याचना करते हैं।

क तिरस्कृत वर्ग—उचक्का, गौंठिकटा, चोर, ठग, बटपारी, लठबाँसी आदि नामों से पुकारा जानेवाला वर्ग किसी प्रतिष्ठित व्यवसाय के द्वारा नहीं दूसरों का धन हड़पकर, चुराकर या छीनकर जीवन-यापन करता है। अतएव समाज में यह वर्ग सदैव हीन दृष्टि से देखा जाता है। अष्टछापी कवियों में केवल सूरदास और परमानंददास ने इनकी चर्चा विशेष रूप से की है। स्वयं कवि ने अपने अवगुणों की सूची गिनाते हुए अपने को बटपारी ठग, चोर, उचक्का, गौंठिकटा और लठबाँसी कहा है[८१]। इनमें से 'ठग' या 'बटपारी' का उल्लेख सूरदास ने तीन प्रसंगों में विशेष रूप से किया है। प्रथम में उन्होंने 'पाँचों' को 'ठग' बताकर उनकी 'ठगौरी' की चर्चा की है[८२]। द्वितीय में श्रीकृष्ण के रूप पर लुब्ध गोपियों ने अपने नेत्रों को 'बटपारी' बताया है, तथा कपट-नेह दिखाकर पथिक को गुरुजन से अलग कर लेना, पीछे लड्डू देना साथ-साथ लगे रहना, 'फाँस' गले में डालकर सारी संपदा लूट लेना आदि उनकी करतूतों का वर्णन रूपक-रूप में किया है[८३]। आगे भी एक पद में सूरदास की गोपियाँ श्रीकृष्ण द्वारा मुसकाकर

८० क. धार्नद्रित विप्र सूत मागध याचक-गन उमँगि असीस देत सब हित हरि क।
—सा १०-१।

ख. बंदीजन द्वार भिच्छुक मुनि-मुनि दूरि-दूरि तें धाए—सा १ ११।

८१ प्रभु ज हौं तो महा अधर्मी।
बटपारी ठग चोर उचक्का गौंठि-कटा, लठबाँसी —सा १ १८६।

८२. 'पाँचौ' देहिँ प्रगट ठाढ़े ठग ठनि ठगौरी लाइ—सा १ १८७।

८३ नैना हैं री ये बटपारी'।
'कपट-नेह' करि-करि इन हमसौं, गुरुजन तैं करी न्यारी।
स्याम हरत लाड़ू कर दीन्हौं प्रेम 'ठगौरी लाइ'।
मुरि परत ह्वै-मति-मधुरता 'डोलत संग लगाइ'।
मन इनकौं मिलि भए बटाऊ बिरह 'फाँस' गर डारी।
सुख लज्जा संपदा हमारी लूटि लई इन सारी—सा १ ६।

कहे गये वचनों का प्रभाव 'ठग-मोदक'-जैसा बताती हैं[८४]। तीसरा प्रसंग दान-लीला का है जिसमें कृष्ण ने गोपियों को 'ठगिनी', 'फँसिहारिनि', 'बटपारिनि' आदि कहा है[८५]। 'विषलाडू' खिलाकर और मूर्छित हो जाने पर गले में फंदा डालकर मारने की ठगों की क्रिया इसी प्रसंग में फिर दोहरायी गयी है[८६]।

चोर को सदा से दंड दिया जाता रहा है। माखन-चोरी करने पर कृष्ण को बाँधे जाने का दंड मिलना तो प्रसिद्ध ही है। सूरदास की एक गोपी मन-माखन की चोरी करनेवाले 'चोरों के राजा' को विशेष रूप से बाँधकर दंड देने की विचित्र योजना बनाती है [८७]।

८४ चकत चिते मुसकाइ कै, मृदु बचन सुनाए।
तेई 'ठग मोदक' भये, धीरज बिन्काए—सा ११६७।
८५.क ठगति फिरति 'ठगिनी' तुम नारि।
× × ×
'फँसिहारिनि, बटपारिनि' हम भईं आपुन भए सुधर्मा भारि—सा १५८१।
ख ब्रज-नारी 'बटपारिनि' हैं सब, चुगली आपुहिं आइ लगायौ।
× × ×
'फँसिहारिनि' कैसें तुम जानी, हम कहें नाहिंनि प्रगट दिखायौ।
× × ×
'फंदा-फाँसि' चतुर 'बिष-लाडू', सूर स्याम हमहीं न बतावौ—सा १५८१।
८६ 'फंदा-फाँसि' बतावौ जो।
× × ×
'बिष लाडू' दरसावति ले पुनि, देह-दसा सुधि बिसरत ज्यौं।
ता पाछें 'फंदा गर' डारति इनि भाँतिनि करि मारति हौ—सा १५८१।
८७ क. 'चोरी क फल' तुमहिं दिखाऊँ।
कंचन खंभ डोर कंचन की, देखौ तुमहिं बँधाऊँ।
चंदौ एक अंग बहु तुम्हरो चोरी नाउँ मिटाऊँ।
जो चाहौ सोइ सब लैहौं पट कहि 'छाँड़ मनाऊँ।
बीच करन जो आवै कोऊ ताकौं सौंह दिवाऊँ।
सूर स्याम चोरनि के राजा, बहुरि कहाँ मैं पाऊँ—सा ११६७।
ख रही री लाज नहिं काज आजु हरि पाए पकरम चोरी।
मूसि-मूसि ले गए मन-माखन, क्यों मरैं धन हो री।
बाँधौ कंचन खंभ कमरद, उभय भुजा दृढ़ डोरी।

परमानंददास ने चोरी करनेवाले के लिए 'तसकर'[८८] और 'बटपारी' वर्ग के लिए 'बटकुटन' शब्दों का प्रयोग किया है और विरहिणी गोपियों को आभूषण-रहित देखकर उन्होंने 'बटकुटन' द्वारा उनके लूटे जाने की कल्पना की है[८९]। प्रेम अपराधियों को, परमानंददास की सम्मति में, लोक में अपयश मिलता है और उनका परलोक नष्ट हो जाता है[९]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में प्राप्त वाणिज्य, व्यवसाय और जीविका-साधन संबंधी उक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन कवियों ने अहीर, कृषक, कुम्हार आदि ग्रामीण व्यवसायियों की चर्चा जितने विस्तार से की है जौहरी, सर्राफ, बजाज आदि के नागरिक व्यवसायियों की उतने विस्तार से नहीं, यहाँ तक कि नगर में प्रचलित अनेक व्यवसायों का तो नाम मात्र उनके काव्य में मिलता है, विवरण नहीं। इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि अनेक व्यवसायों या व्यवसायियों का स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी अष्टछाप-काल में उनका प्रचलित होना या विद्यमान रहना परोक्ष रूप से तो, सूचित होता ही है। उदाहरण के लिए 'हीरे', 'मोती', 'मणि माणिक्य', 'स्फटिक' आदि की चर्चा अष्टछाप-काव्य में सर्वत्र मिलती है, अतएव स्पष्ट है कि खान समुद्र आदि से इनके निकालने साफ करने काटने गढ़ने आदि के व्यवसाय भी निश्चय ही उस युग में प्रचलित रहे होंगे। इसी प्रकार नंद-यशोदा के भवनों के अतिरिक्त अयोध्या, मथुरा द्वारका तथा अन्यान्य स्थानों के राजभवनों का निर्माण करनेवाले शिल्पियों के साथ-साथ मूर्तिकारों, चित्रकारों आदि के

'पापी कठिन कुलिस-दुख-अंतर सबै कौन पा धारी।
अंखों अबर भूमि रज गोरस हरैं न काहू की री।
ऐसौ तासकर परधर को मारै न मेरे बगोरी—ना १६१८।

८८ चोरी पूँजी हरै क्यों 'तसकर'—परमा. दस. १६८।

८९. ब्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे।
× × ×
बिरह बिहाल सकल गोपीजन 'आभरन मनहुँ बटकुटन लूटे'—परमा. ५५८।

९ बार बार पर भूमि बिरानी पेट भरै अपराधी।
जहँ परलोक जात अपकीरति मोह अविद्या गाधी—परमा. १ १।

व्यवसाय तो मुगल काल में अत्यंत उन्नति पर थे ही जिसका प्रमाण उस युग की वास्तु, मूर्ति और चित्रकला के नमूनों से मिलता है।

इसी प्रकार अनेक व्यक्ति राजकर्मचारियों के रूप में भी जीविकार्जन करते रहे होंगे जैसा कि 'दानलीला-प्रसंग' में नृपति द्वारा श्रीकृष्ण के 'दानी' नियुक्त किये जाने के, गोपियों के प्रश्न से, ज्ञात पड़ता है। सूरदास ने 'लिखहार'[२९१] आदि कर्मचारियों की भी चर्चा की है। मल्ल भी राजा के वेतनभोगी सेवक ही होंगे। इन सबके संबंध में विस्तार से 'राजनीतिक जीवन-चित्रण' में लिखा जायगा। वस्तुतः गीति-काव्य में किसी प्रकार की विस्तृत व्यावसायिक चर्चा के लिए स्थान होता भी नहीं, अतएव, प्रसंगवश तत्संबंधी जो कुछ भी विवरण उनके काव्य में मिल जाता है, वही बहुत समझना चाहिए। उसको क्रमबद्ध-रूप में प्रस्तुत करके अष्टछाप कालीन व्यवसाय और वाणिज्य की रूपरेखा का ज्ञान तो हो ही जाता है जिसका श्रेय भी इन कवियों में सबसे अधिक सूरदास को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि उनके काव्य में तद्विषयक उल्लेख सबसे अधिक हैं।

२९१ साँचो सो लिखहार' कहावै—सा १ १४२।

७ राजनीतिक जीवन चित्रण

और कंस-जैसे बड़े राजाओं के लिए तो प्रयुक्त हुए ही हैं, नंद और वृषभानु जैसे व्यक्तियों के लिए भी आये हैं, राज-व्यवस्था की दृष्टि से जिनकी वास्तविक स्थिति साधारण ही थी। नंद को इन कवियों ने 'व्रजराइ', 'व्रजराज'[१] आदि भी लिखा और कृष्ण को यदुवंशी होने के कारण 'यादौकुलराई'[१] अथवा उसके किसी पर्याय से संबोधित किया है। 'राउ' 'राजा' आदि का प्रयोग सूरदास ने अपने लिए भी किया है[४]। एक पद में उन्होंने अन्य पतितों को 'राजा' और अपने को 'सुलतान'[५] कहा है जिससे कवि का संकेत उन मुगल सुल्तानों की ओर जान पड़ता है जिन्होंने अनेक हिंदू राजाओं को परास्त करके अपना राज्य स्थापित कर लिया था।

'दिग्विजय' करनेवाले पौराणिक राजाओं के कृत्यों[६] का स्मरण करके सूरदास ने अपने को 'दिग्विजयी' कहा है[७] और पांडवों के उस 'राजसूय' यज्ञ की भी चर्चा की है जिसमें चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के जिन राजाओं को जीता था, वे उपहार लेकर आये थे[८]।

अ सब में कौन बड़ौ 'भूपति' है—सारा ७२६।
ब काको भरोसो करत 'भूपति' बैर करत किहि माँगे—परमा ४७१।
प या 'भूपति' के भवन कोउ दीप न बारत साँझ—नव, रूप, पृ ४।
न कहौ न जाइ उदास, जहाँ भूपाल बिहारी—सा १९१८।
प. 'महाराज' तुम सरि को ऐसौ, जाकी जग यह चलति कहानी—सा २९११।
फ. फागुन मदन 'महीपती'—सा २९१४।
ब. व्रज मैं अति आनन्द बढ़्यौ हो नंद 'राइ' के द्वार—गोवि १२।
म. मोहि भरोसो कंस को नाहीं सोमवंस को 'राउ'—परमा ४८१।
म महाभाग्य 'राजा' दसरथ को जिहिं घर रघुपति जनमही आवै—परमा १४।
य सुनि रे 'राजा' कंस तेरी बहुत बढ़ि—परमा ४०६।
२.क अवधन देत असीस हैं जियो ढोटा 'व्रजराज'—कुंभन १।
ख महाभाग्य 'व्रजराज' तुम्हारे—गोवि ६।
३ जनम लियौ 'यादौकुल राइ'—गोवि ११।
४.क हरि हौ सब पतितनि को 'राजा'—सा १.१४४।
ग हरि हौ सब पतितनि को 'राउ'—सा १.१४५।
५. और हैं आजकल के 'राजा' मैं तिनमें 'सुलतान'—सा १.१४५।
६. करि दिग्विजय बिचार की जग मैं भगत पच्छ करतारी—सारा ८४१
७ सब बाढ़ियार पढ्यौ दिग्विजयी लोभ छत्र करि सीस—सा १.१४४।
८.क कियौ बिचार जग को राजा 'राजसूय' जिय जानि।

'राजा की पत्नी के लिए 'रानी' शब्द अष्टछाप काव्य में आया है[९] और एक राजा के यदि कई 'रानियाँ' हों तो प्रमुख को 'पटरानी' कहा गया है। सूरदास की गोपियाँ कुब्जा पर कृष्ण की कृपा का समाचार पाकर व्यंग्य से उसको 'पटरानी' कहती हैं[१०]। श्रीकृष्ण की आठ 'पटरानियाँ' कही गयी हैं जिनके लिए 'सारावली' में 'सकल पटरानी' शब्द प्रयुक्त हुआ है[११]।

राज्य के जिस नगर में राजा रहता है, उसे अष्टछापी कवियों ने 'रजधानी' या 'राजधानी' कहा है और 'मथुरा' नगर के लिए बराबर 'रजधानी' शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि वही शौरसेन-जनपद का शासन-केंद्र था और वहीं राजा कंस रहता भी था[१२]। परमेश्वर श्रीकृष्ण के नित्य लीला-केंद्र वृन्दावन को भी इन्होंने 'रजधानी' कहा है[१३]। राजा का निवास-स्थान 'महल' कहा गया है। कंस ने सुफलक-सुत का 'महल' में ही बुलाया है[१४]। रानियों और राजकुल की स्त्रियों के रहने का स्थान 'अंतःपुर'[१५] कहा गया है और उनके विलासगृह को 'सारावली' में 'रतनमहल'[१६]

कृष्णचंद्र को वेगि बुलायो संग सकल पटरानि—सारा ७१२।

ख चारों गात चारि दिसि बीस्यो मारत कही बखान।
ठौर-ठौर के नृप सब आये लै उपहार प्रमान—सारा ७१४।

९ क कोऊ दुती कंस की दासी कृपा करी भइ रानी'—सा १६१६।
ख कहति है तुम महकुलानी रानी —नंद, रूप पृ २२।
ग. तब 'रानी' उठि दौरि पौरि तें मोहन लाई—नंद स्याम पृ १२१।

१० कुबिजा को 'पटरानी' कीन्हों हमें देत बैराग—सा ३६५२।

११ कृष्णचंद्र को वेगि बुलायो संग सकल 'पटरानि'—सारा ७१२।

१२.क अब दिन चारि चलहु गोकुल में सेवहु आइ मधुरि रजधानी —सा ३६१७।
ख रंगभूमि रमनीक मधुपुरी रजधानी ब्रज की सुधि कीजो—सा ४२६५।
ग संग तिहारें अब लैहुँगी रजधानी—परमा ४६१।

१३ क छाँड़ी नहीं स्याम-स्यामा की वृन्दावन रजधानी —सा १-८७।
ख माया मोह लोभ के लीन्हें जानी न 'वृन्दावन रजधानी'—सा १ १४६।

१४ सुनत बुलाए 'महल' ही लीन्हो, सुफलक-सुत गए धाइ—सा २६२८।

१५.क नृप मुनि मन आनन्द बढ़ायो 'अन्तःपुर' में आइ सुनायो—सा ४-६।
ख चौदह सहस युवति 'अन्तःपुर' लेहिं राघव वारि—सा ९ ७५।
ग. 'अन्तःपुर महलनि रानी के—सा ९८४।

१६ कबहुँक 'रतनमहल' बिठवारी सरद निसा उजियारी।
बैठे कनक-सुता सँग बिलसत मधुर कलि मनुहारी—सारा ११२।

बताया गया है जिसे कुंभनदास ने 'रंगमहल'[१७] कहा है।

राजा जिस स्थान पर उपगासकों, मंत्रियों और अन्य कर्मचारियों के साथ बैठकर शासन-प्रबंध संबंधी विविध समस्याओं पर विचार करता है, उसके लिए 'सभा'[१८] 'राजसभा'[१९] और 'दरबार' शब्द अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से अंतिम शब्द विदेशियों के संपर्क की देन है और मुख्य रूप से परब्रह्म, श्रीराम, नंदराय आदि की 'आश्रयदायिनी सभा' के रूप में प्रयुक्त हुआ है[२०]। दरबार में बैठे सभासदों को 'दरबारी' कहा गया है[२१]। विदेशी शासन के फलस्वरूप तत्संबंधी जो विभागीय शब्द उस युग में प्रचलित हो गये थे उनका एक बहुत रोचक उदाहरण, 'सभा' या 'दरबार' के अर्थ में सूरदास के एक पद में मिलता है। 'दानलीला'-प्रसंग में गोपियों से दूध दही, माखन आदि का 'दान' उगाहनेवाले कृष्ण को सशक्त शासन का भय दिखाती हुई गोपियाँ जब कहती हैं कि हमारा इस प्रकार मार्ग रोक रहे हो, क्या तुम नहीं जानते कि राज्य कंस का है[२२]? उत्तर में कृष्ण कहते हैं— जाकर कंस से फरियाद करो कि वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् 'सभा' या 'दरबार' में बुलाकर उचित दंड दे[२३]। यहाँ 'सभा' या 'दरबार' के लिए

१७ 'रंगमहल' मे रतन सिंघासन राधारमन पिआरो—कुंभन १७७।

१८.क उठत सभा दिन मधि सैनापति-भीर देखि, फिरि आऊँ—सा १ १०२।

ख नरपति 'सभा' मध्य मनों अदे जुगल दंत मति धीर—सा १-२९।

ग सकल सभा' में बैठि दुसासन अंबर आनि गह्यो—सा १-२४७।

घ आगे चले सभा में पहुँचे जहँ नृप सकल समाज—सारा ५११।

ङ बैठी सभा सकल भूपनि की भीषम, द्रोन करन व्रतधारी—सा १ २४८।

१९ क अब गहि राजसभा' मैं आनी—सा १-२५।

ख न कहा मानैं राजसभा' कौं—सा २६६८।

२० क राग रंग रँगि मँगि रह्यो नंदराइ दरबार—सा ९९ ४।

ख जहाँ राखौ तहाँ रहूँ चरन तर परचौ रहूँ दरबार—परमा ८७५।

ग. घर-घर तें गोपनि सबै आए राइ दरबार'—कुंभन १।

घ जाति पाँति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति कैं दरबार'—सा १ २११।

२१ दास ध्रुव कौ अटल पद दियौ राम दरबारी—सा १ १०६।

२२. नाहिन राज कंस को जानत मारग रोकत फिरत पराए—सा १५१२।

२३ जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।

दधि माखन घृत लेत छिनाए, आजु 'हजूर' बुलावहु—सा १५११।

प्रयुक्त 'हजूर' शब्द-जैसे प्रयोग हिंदी साहित्य में अधिक नहीं मिलेंगे। सभा में राजा 'सिंहासन'[२४] या 'राजसिंहासन'[२५] पर बैठता है जिसे 'कनकसिंहासन'[२६] या 'रतनसिंहासन'[२७] भी कहा गया है।

सिंहासन पर सामान्यतया 'छत्र' भी लगा बताया गया है[२८] जिसके भीतरी भाग लिए 'आतपत्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है[२९]। परमानन्ददास ने एक पद में परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन करते हुए पृथ्वी को 'सिंहासन' और आकाश को उसका 'छत्र' बताया है[३०]। सिंहासनासीन राजा पर 'चमर'[३१] या 'चँवर'[३२] डुलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। राजसभा या राजमहल के ऊपर या राजा की यात्रा के समय, 'ध्वजा-पताका' साथ रहना भी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र लिखा है[३३]। राजा का यश-गान करनेवाले 'बंदी', मागध' या 'सूत' कहे गये हैं[३४]। राजा के द्वार पर, सामान्य रीति से और हर्षावसरों पर विशेष रीति से,

२४ क उमसन बैठारि 'सिंहासन' आपु जुहार कियो—परमा ५१२।
ख एक बिस्वास कियो 'सिंहासन', तापर बैठे भूप—सा १ ४।
२५ बैठे राम 'राजसिंहासन' जग में फिरी दुहाई—सारा १ २।
२६ 'कनक सिंहासन' बैठिहैं—सा २१४।
२७ रंगमहल में 'रतन-सिंघासन' राधा-रवन बिहारी—कुंभन १७७।
२८ क स्वेत 'छत्र' फहरात सीस पर मनो लच्छि को बंध—सा ९-७५।
ख तिहुँ लोक परताप 'छत्र' सिंघासन सीहै—सा ९ १६।
२९ क 'आतपत्र' मयूर चंद्रिका लसत है रवि ऐन—सा १२२०।
ख सीतल 'आतपत्र' की छाया कर अंबुज सुखकारी गू—परमा ८७२।
३० आक 'छत्र' आकास सिंहासन वसुधा अनुचर सहस अठासी—परमा ८८।
३१ चार चारु मनि खचित मनोहर पंकज 'चमर' पताका—सा २५११।
३२ क बैठति कर पीठि डीठि चमर 'छत्र' छाँहि।
राजति अति चँवर चिकुर सरद सभा माँहि—सा १५१।
ख उग्रसेन को राज देउँ कर चँवर' दुराऊँ—कुंभन २१।
३३ क. गरजत रहत मत्त गज चहुँ दिसि छत्र 'धुजा' चहुँ दीस—सा ९ ७५।
ख ढूरत धुजा पताक छत्र रथ—सा ९ १६।
३४ क नित्य का उपहास करत मग बंदीजन' जस गावत—सा १ १४१।
ग हरि हौं सब पतितनि को राजा।
× × ×
मोह-अपा बंदी गुन गावत मागध दोष अपार—सा १ १४४।

निसान', 'नौबत', 'दुंदुभी' आदि बजना भी कहा गया है[३५]। राजा की घोषणा के साथ, या विशेषाधिकार दिये जाने पर 'डौंडी' बजायी जाने की बात अष्टछापी कवियों में सूरदास ने लिखी है[३६]।

राजसभा और राजमहल के सेवकों में प्रमुख 'छरीदार', 'दरबान', 'द्वारपाल', 'पौरिया' और 'प्रतिहारी' कहे गये हैं[३७]। राजा का निजी सेवक 'खवास' कहा गया है[३८]। श्रीकृष्ण को बुलाने का कार्य अक्रूर को सौंपता हुआ कंस 'खवास' से ही उनके लिए 'सिर-पाँव' मँगाता है[३९]। परमेश्वर के 'खवास' का कार्य अर्थात् उनकी 'खवासी' करनेवाले, 'शंकर' कहे गये हैं[४०]। राजा की सेविकाओं को 'चेरी', 'दासी' और 'लौंडी' कहा गया है।[४१] दहेज-रूप में भी 'दासियों' के दिये जाने

३५.क हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित 'नौबत' द्वार बजावत—सा १ १४१।
ख हरि, हौं सब पतितनि कौ राजा।
निंदा पर-मुख पूरि रह्यौ जग, यह 'निसान' नित बाजा—सा १ १४४।
ग नौमी के दिन 'नौबत' बाजै कौसल्या सुत जायौ—परमा ११७।
घ जाके जनमत अमर-नगर में दुंदुभि बाजी नगर-नगर में।
—नंद दशम पृ २१।
ङ गज्ज गरजी गोकुल में बैठे गरज 'निसान' बजाइ—परमा ८६७।
३६ लौंडी के घर 'डौंडी' बाजी अब बढ्यो स्याम अनुराग—सा १ ६५।
३७ क 'छरीदार' वैराग विनोदी झिरकि बाहिरै कीन्है—सा १४।
ख पौरि पाट टूटि परे भागे 'दरबाना'—सा ६ ११६।
ग. मोही लोभ लबार मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा १ १४१।
घ बुद्धि विवेक विचित्र 'पौरिया'—सा १ १४।
ङ मैत्री काम कुमति दीवे कौं क्रोध रहत 'प्रतिहारी'—सा १ १४४।
च सावधान करि पौरिया 'प्रतिहार' जगावौ—सा १०१४।
३८. हरि हौं सब पतितनि पतिनेस।
× × ×
मोही लाभ 'खवास' मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा १४१।
३९ कहि 'खवास' कौं सैन दै सिर-पाँव मँगायौ—सा २४७६।
४० इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत 'खवासी'—सा १ ८२।
४१ क दासी' दूना भमत व्रजन हित लहत न छिन विस्राम—सा १ १४१।
ख जाके कमला 'दासी' पाय पलोटै—परमा ८८।
ग. इक नौ सहचरि हुती नृपति पुनि 'चेरी' करि प्रेरी कंस।
—नंद, दशम, पृ १११।

की बात नंददास ने लिखी है[४१]।

राजा का संदेश-वाहक सेवक 'दूत' कहलाता है। 'दूत' ही दशरथ के मरण का संदेश लेकर भरत को लिवाने आता है[४३]। कंस ने दूत के द्वारा ही कालीदह के फूल भेजने की आज्ञा नंदराय के पास भिजवायी है[४४]। कुंभनदास ने दूत को 'बसीठ' और उसके कार्य को 'बसीठी' कहा है[४५]।

राजा के राज्य में बसनेवाला जनसमुदाय 'प्रजा' कहा जाता है। भारत में राजतंत्र का प्रचलन बहुत समय तक रहने के कारण भारतीय प्रजा-वर्ग की रुचि सामान्यतया राजनीति की विशेष बातों या शासन-संबंधी जटिल समस्याओं की ओर नहीं रही जिसका परिचय गो० तुलसीदास की प्रसिद्ध उक्ति 'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी'[४६] से भी मिलता है। प्रजा तो केवल सुख-शांति से जीवन-यापन करना चाहती है। सूरदास ने जन-साधारण की इस मनोवृत्ति को लक्ष्य किया था और बड़े सरल ढंग से उन्होंने इसका परिचय भी दिया है। उनकी गोपियाँ ऊधव से कहती हैं—राजा का धर्म हमारी सम्मति में केवल इतना ही है कि प्रजा किसी प्रकार सतायी न जाय[४७]। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी प्रजा-वर्ग का प्रतिपालन[४८]

४. गरबस रोकत मोको करिहो कहा रिसाय को है बाबा की 'रौंदी'।
—नंद कीर्तन-सं०, भाग १, पृ २१४।

४२. बर बरनी, तरुनी रँग भीनी, 'दासी' बीनि दोइ सब दीनी।
—नंद दशम, पृ २२।

४३ पठयौ 'दूत' भरत को ल्यावन—सा ९४७।

४४ क कंस बुलाइ दूत इक लीन्हो।
कालीदह के फूल मँगाए पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हो—सा ५८१।

ख यह सुनि 'दूत' तुरत ही धायौ तब पहुँच्यो ब्रज आइ।
सूर नंद-कर पाती दीन्ही 'दूत' कह्यौ समुझाइ—सा ५८५।

४५. अब ए नैनौं करत बसीठी'—कुंभन २४९।

४६ मानस अयोध्या दो १६।

४७ हरि हैं राजनीति पढ़ि आए।
× × ×
राजधर्म सुनि इहै सूर जिहि 'प्रजा' न जाहिं सताए—सा ३६६१।

४८. 'शुक्र-नीति' में बताये गये राजा के आठ 'मूल कर्मों' में 'प्रजा-परिपालन' भी है—डा राजबली पांडेय, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', भाग १ पृ ७।

निसान', 'नौबत', 'दुंदुभी' आदि बजना भी कहा गया है[३५]। राजा की घोषणा के साथ, या विशेषाधिकार दिये जाने पर, 'डौंड़ी' बजायी जाने की बात अष्टछापी कवियों में सूरदास ने लिखी है[३६]।

राजसभा और राजमहल के सेवकों में प्रमुख 'छरीदार', 'दरवान', 'द्वारपाल' 'पौरिया' और प्रतिहारी कहे गये हैं[३७]। राजा का निजी सेवक 'खवास' कहा गया है[३८]। श्रीकृष्ण को बुलाने का कार्य अक्रूर को सौंपता हुआ कंस 'खवास से ही उनके लिए 'सिर-पाँव' मँगाता है[३९]। परमेश्वर के 'खवास' का कार्य अर्थात् उनकी 'खवासी' करनेवाले, 'शंकर' कहे गये हैं[४०]। राजा की सेविकाओं को 'चेरी', 'दासी' और 'लौंडी' कहा गया है।[४१] दहेज-रूप में भी 'दासियों' के दिये जाने

३५.क हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित 'नौबत' द्वार बजावत—सा १ १४१।
ख हरि हौं सब पतितनि कौ राजा।
निंदा पर-मुख पूरि रह्यौ जग यह 'निसान' नित बाजा—सा १ १४४।
ग नौमी के दिन 'नौबत' बाजे कौसल्या सुत जायौ—परमा ११७।
घ जाके अनमत अमर-नगर में 'दुंदुभि' बाजी नगर-नगर में।
—नंद दशम पृ ९२।
ङ गरत गरजी गोकुल में बैठि गरज 'निसान' बजाइ—परमा ८६७।
३६ लौंडी के घर 'डौंडी' बाजी अब बढ़यौ स्याम अनुराग—सा १ ६५।
३७ क 'छरीदार' बैराग बिनोदी झिरकि बाहिरै कीन्हें—सा १४।
ख पौरि पाट टूटि परे भागे दरवाना'—सा ६ ११६।
ग. मोह्यौ लोभ खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा १ १४१।
घ बुधि बिवेक बिचित्र 'पौरिया'—सा १ १४।
ङ मैत्री क्षमा कुमति दीबे कौं क्रोध रहत 'प्रतिहारी'—सा १ १४४।
च सावधान करि पौरिया 'प्रतिहार' जगायौ—सा २६१४।
३८. हरि हौं सब पतितनि पतितेस।
× × ×
मोह्यौ लोभ 'खवास' मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा १४१।
३९ कहि 'खवास' कौं सैन दै सिर-पाँव मँगायौ—सा ३७०६।
४ इंद्रादिक की कौन चलावै संकर करत 'खवासी'—सा १०७८।
४१ क 'दासी' तृष्णा भ्रमत टहल हित लहत न छिन बिश्राम—सा १ १४१।
ख जाके कमला 'दासी' पाव पलोटै—परमा ८८।
ग. इक तौ सहजहिं कुटी नृपति पुनि 'चेरी' करि प्रेरी कंस।
—नंद दशम पृ २२१।

किसी के वकील नहीं हैं, तुम जिससे चाहो जाकर हमारी शिकायत कर दो। सूरदास के कृष्ण भी गोपियों का दूध, दही, माखन, घी आदि छीनकर उनसे कहते हैं कि 'जाकर कंस से 'फरियाद' करो जिससे वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् दरबार में बुलाकर दंड दे'[५३]। इस प्रकार के उदाहरण, परोक्ष रूप से, राज-वर्ग के संगठन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

शक्ति और साधन-हीनता के कारण प्रजा को अन्याय और अत्याचार कितना भी सहना पड़े, किसी न किसी रूप में वह उसकी व्यंजना अवश्य कर देती है। उदाहरण के लिए ऊधव से कही हुई गोपियों की एक उक्ति है जिसमें 'कुब्जा' पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग उन्होंने लगाया है[५४]। इतिहास में 'चाम के दाम चलाने का प्रयत्न निज़ाम भिश्ती ने किया था'[५५]। तभी से 'अन्याय और अनीति' करने के अर्थ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी जान पड़ती है जिसके माध्यम से प्रजा-वर्ग अपने युग के अन्यायी और अनीतिकारी शासकों के व्यवहार की ओर संकेत करता आया है।

राजा के कर्त्तव्यों का इस प्रकार वर्णन करना उस युग में विशेष आवश्यक भी था, कारण कि उस समय के शासकों में अधिकता उनकी थी जिनका मुख देखने में भी सूरदास, परमानंददास कुंभनदास आदि को 'दुख लगता' था; परंतु विवशता यह थी कि उनको 'राजा-राय' कहकर 'प्रणाम' करना पड़ता था'[५६]।

२ *शासन-व्यवस्था—*

राजा को निरंकुश होने से रोकने[५७] और शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से

५३ जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आपु 'हजूर' बुलावहु—सा १५७३।

५४ सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावै—सा ३९३१।

५५ 'चाम के दाम' से संबद्ध निज़ाम भिश्ती के अल्पस्थायी हुए शासन की ओर ध्यान पड़ता है। इस भिश्ती को, हुमायूँ की डूबने से बचाने के बदले में आधे दिन की बादशाहत मिली थी। 'चाम के दाम' का लक्ष्यार्थ 'अत्याचार की कमाई' है।
—'बृहत् हिंदी कोश' पृ ४१२।

५६ क जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनकौं राजा राय कहै—सा ११५३।
ख जिनको मुख देखत दुख लागत तिनकौं राजा-राय कहै—परमा ८८५।
ग. जाको मुख देखत दुख उपजै ताको करनी परी प्रनाम—कुंभन ३६७।

५७ म म गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार, मंत्रि परिषद के कारण ही सत्य

राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया है जिसकी शिक्षा चित्रकूटवासी राम अनुज भरत को देते हैं[४९]। सूरदास के एक अन्य पद में राम ने भरत को 'गाइ-विप्र प्रतिपालन' के साथ-साथ 'प्रजा के हेतु या 'कल्यान के कार्य' करने का भी उपदेश दिया है[५०]। नंददास ने 'धर्म-धरन के काज' धर्मधीर नामक राजा के प्रकटने की बात कही है[५१] जिससे स्पष्ट है कि अपनी श्रद्धानुसार प्रजा को धर्म-कर्म करते रहने देने की सुविधा का प्रबंध करना भी राजा का कर्तव्य समझा गया है।

इसी प्रकार प्रजा अपने राजा से न्याय और सुरक्षा की सर्वदा कामना करती है। शासक कैसा भी अन्यायी या अत्याचारी हो, प्रजा को विश्वास रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा; कम से कम दूसरों को हम पर अत्याचार तो नहीं ही करने देगा। प्रजा के ऐसे विश्वास का उदाहरण परमानंददास की उस ग्वालिनि के कथन में मिलता है जो कंस को अन्यायी और अत्याचारी जानते हुए भी, कृष्ण से कहती है कि यदि तुमने बरबस 'दान' माँगने की आदत न छोड़ी तो 'राव खू' के आगे जाकर कहूँगी अर्थात् कंस के दरबार में फरियाद करूँगी[५२]। इसी प्रकार प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार किये जाने पर अभियोग लगाकर उसको राजा के दरबार या न्यायालय में बुलवाने का अधिकार भी पीड़ितजन शासकीय संरक्षा-संबंधी उक्त विश्वास के फलस्वरूप ही समझता है। परंतु दूसरी ओर यदि अत्याचारी विशेष अधिकार रखता है अथवा स्वयं इतना सबल है कि शासक से किसी तरह नहीं दबता तब वह स्वयं कहता है कि हम

४९ राम यौं भरत बहुत समुझायौ।
× × ×
कीजै यहै बिचार परसपर राजनीति समुझायौ।
सबा मातु 'प्रजा-प्रतिपालन यह जुग जुग चलि आयौ'—सा ६-५५।

५० बंधु करियौ राज सँभारे।
राजनीति अरु गुरु की सेवा 'गाइ बिप्र प्रतिपारे'।
× × ×
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, 'परजा हेतु बिचारे'—सा ६-५४।

५१ 'धर्मधीर तहँ करत बड़ राज्य प्रगटयो धर्म-धरन के काज'—नंद, रूप पृ १।

५२ बरबस दान लही कौ माँगत वृन्दावन की खौर।
कहिहौं जाय 'रावखू' के आगे करिहैं और की और—परमा ११८।

किसी के वकील नहीं हैं, तुम जिससे चाहो जाकर हमारी शिकायत कर दो। सूरदास के कृष्ण भी गोपियों का दूध, दही, माखन, घी आदि छीनकर उनसे कहते हैं कि जाकर कंस से 'फरियाद' करो जिससे वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् दरबार में बुलाकर दंड दे[५३]। इस प्रकार के उदाहरण, परोक्ष रूप से, राज-वर्ग के संगठन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

शक्ति और साधन-हीनता के कारण प्रजा को अन्याय और अत्याचार कितना भी सहना पड़े किसी न किसी रूप में वह उसको व्यक्त अवश्य कर देती है। उदाहरण के लिए ऊधव से कही हुई गोपियों की एक उक्ति है जिसमें 'कुब्जा' पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग उन्होंने लगाया है[५४]। इतिहास में 'चाम के दाम' चलाने का प्रयत्न निजाम भिश्ती ने किया था[५५]। तभी से 'अन्याय और अनीति' करने के अर्थ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी जान पड़ती है जिसके माध्यम से प्रजा-वर्ग अपने युग के अन्यायी और अनीतिकारी शासकों के व्यवहार की ओर संकेत करता आया है।

राजा के कर्तव्यों का इस प्रकार वर्णन करना उस युग में विशेष आवश्यक भी था, कारण कि उस समय के शासकों में अधिकता उनकी थी जिनका मुख देखने में भी सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि को 'दुख लगता' था परंतु विवशता यह थी कि उनको 'राजा-राय' कहकर 'प्रणाम' करना पड़ता था[५६]।

२ *शासन-व्यवस्था—*

राजा को निरंकुश होने से रोकने[५७] और शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से

---

५३ जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए आजु 'हजूर' बुलावहु—सा १५११।

५४ सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावै—सा १६१६।

५५ 'चाम के दाम' से संकेत निजाम भिश्ती के चलाए हुए सिक्के की ओर जान पड़ता है। इस भिश्ती को हुमायूँ को डूबने से बचाने के बदले में आधे दिन की बादशाहत मिली थी। 'चाम के दाम' का लक्ष्यार्थ 'व्यभिचार की कमाई' है।
—बृहत् हिंदी कोश पृ ४२१।

५६ क. जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनकों राजा-राय कहे—सा १५१।
ख जिनको मुख देखत दुख लागे तिनसों राजा-राय कहे—परमा ८४५।
ग. जाको मुख देखत दुख उपजै ताको करनी परी प्रनाम—कुंभन १६७।

५७ म म गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार मंत्रि-परिषद के कारण ही मध्य

राजा का प्रमुख कर्त्तव्य बताया है जिसकी शिक्षा चित्रकूटगामी राम अनुज भरत को देते हैं[४९]। सूरदास के एक अन्य पद में राम ने भरत को 'गाइ-विप्र प्रतिपालन' के साथ-साथ 'प्रजा के हेतु या 'कल्यान' के कार्य करने का भी उपदेश दिया है[५०]। नंददास ने धर्म-धरन के काम धर्मधीर नामक राजा के प्रकटने की बात कही है[५१] जिससे स्पष्ट है कि अपनी श्रद्धानुसार प्रजा को धर्म-कर्म करते रहने देने की सुविधा का प्रबंध करना भी राजा का कर्त्तव्य समझा गया है।

इसी प्रकार प्रजा अपने राजा से न्याय और सुरक्षा की सर्वदा कामना करती है। शासक कैसा भी अन्यायी या अत्याचारी हो, प्रजा को विश्वास रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा; कम से कम दूसरों को हम पर अत्याचार तो नहीं ही करने देगा। प्रजा के ऐसे विश्वास का उदाहरण परमानंददास की उस ग्वालिनि के कथन में मिलता है जो कंस को अन्यायी और अत्याचारी जानते हुए भी कृष्ण से कहती है कि यदि तुमने बरबस 'दान' माँगने की आदत न छोड़ी तो 'राय जू' के आगे जाकर कहूँगी अर्थात् कंस के दरबार में फरियाद करूँगी[५२]। इसी प्रकार प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार किये जाने पर अभियोग लगाकर उसको राजा के दरबार या न्यायालय में बुलवाने का अधिकार भी पीड़ितजन शासकीय संरक्षा-संबंधी उक्त विश्वास के फलस्वरूप ही समझता है। परंतु दूसरी ओर यदि अत्याचारी विशेष अधिकार रखता है अथवा स्वयं इतना सबल है कि शासक से किसी तरह नहीं दबता तब वह स्वयं कहता है कि हम

४९ राम भौं भरत बहुत समुझायौ।

× × ×

कीन्हे बहौ बिचार परसपर, राजनीति समुझायौ।

ऐसी भाँति 'प्रजा-प्रतिपालन' यह जुग जुग चलि आयौ—सा ६-४५।

५० बंधु करियौ राज सँभारे।

राजनीति अरु गुरु की सेवा गाइ बिप्र प्रतिपारे'।

× × ×

गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं 'परजा-हेतु बिचार'—सा ६ ५४।

५१ 'धर्मधीर तहँ कर बड़ राजा, प्रगट्यौ धर्म-धरन के काम—नंद, रूप पृ १।

५२ बरबस दान दही को माँगत बृन्दावन की ठौर।

कहिहौं जाय 'रायजू' के आगे करिहै और सौं और—परमा ११८।

किसी के दबैल नहीं हैं, तुम जिससे चाहो जाकर हमारी शिकायत कर दो। सूरदास के कृष्ण भी गोपियों का दूध, दही, माखन, घी आदि छीनकर उनसे कहते हैं कि जाकर कंस से 'फरियाद' करो जिससे वह हमें 'हजूर' में बुला ले, अर्थात् दरबार में बुलाकर दंड दे[५३]। इस प्रकार के उदाहरण, परोक्ष रूप से, राज-वर्ग के संगठन के उद्देश्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

शक्ति और साधन-हीनता के कारण प्रजा को अन्याय और अत्याचार कितना भी सहना पड़े, किसी न किसी रूप में वह उसको व्यक्त अवश्य कर देती है। उदाहरण के लिए ऊधव से कही हुई गोपियों की एक उक्ति है जिसमें 'कुब्जा' पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग उन्होंने लगाया है[५४]। इतिहास में 'चाम के दाम' चलाने का प्रयत्न निज़ाम भिश्ती ने किया था[५५]। तभी से 'अन्याय और अनीति' करने के अर्थ में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी जान पड़ती है जिसके माध्यम से प्रजा-वर्ग अपने युग के अन्यायी और अनीतिकारी शासकों के व्यवहार की ओर संकेत करता आया है।

राजा के कर्तव्यों का इस प्रकार वर्णन करना उस युग में विशेष आवश्यक भी था कारण कि उस समय के शासकों में अधिकता उनकी भी जिनका मुख देखने में भी सूरदास, परमानंददास, कुंभनदास आदि को 'दुख लगता' था; परंतु विवशता यह थी कि उनको 'राजा-राय' कहकर 'प्रणाम' करना पड़ता था[५६]।

२ *शासन-व्यवस्था—*

राजा को निरंकुश होने से रोकने[५७] और शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से

५३ जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हजूर' बुलावहु—सा १५११।

५४ सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावै—सा १५१६।

५५ 'चाम के दाम' से संकेत निज़ाम भिश्ती के चलाए हुए सिक्के की ओर जान पड़ता है। इस भिश्ती को हुमायूँ को डूबने से बचाने के बदले में आधे दिन की बादशाहत मिली थी। 'चाम के दाम' का लक्ष्यार्थ 'व्यभिचार की कमाई' है।
—मानक हिंदी कोश पृ ४२२।

५६ क जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनकौं राजा-राय कहै—सा १५१।
ख जिनको मुख देखत दुख लागे तिनको राजा-राय कहै—परमा ८८५।
ग जाको मुख देखत दुख उपजै ताकौं करनी परी प्रनाम—कुंभन १६७।

५७ म म गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार, मंत्रि परिषद के कारण ही मध्य

करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति सदा से होती आयी है जिनकी मंत्रणा से ही सामान्यतया राज-कार्य होता है। ऐसे राजकीय कर्मचारियों में मंत्री प्रधान होता है। इनकी संख्या कहीं सैंतीस बतायी गयी है[५८] और कहीं दस[५९]। सूरदास ने रावण के मंत्रियों के लिए बहुवचन-सूचक 'मंत्रिनि' शब्द का प्रयोग किया है[६०] जिससे स्पष्ट है कि उसके कई मंत्री थे। अन्यत्र सूरदास ने कहीं एक मंत्री का उल्लेख किया है[६१] और कहीं दो का[६२]। मंत्री के लिए विदेशी संपर्क के कारण 'वजीर' या 'बजीर' शब्द का भी प्रयोग अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर मिलता है जिसमें 'पाप' को शरीर-रूपी राज्य का 'उजीर' बताया गया है[६३]। 'मंत्री' का ही समकक्ष अधिकारी होता है 'दीवान' जिसके अधीन 'कर और मालगुजारी' अर्थात् 'राजस्व' विभाग रहता था[६४]। 'वजीर' यदि 'दीवान' भी होता तो 'राजस्व' विभाग का भी अधिकारी हो जाता है[६५]। अस्तु। 'दीवान' शब्द का प्रयोग सूरदास ने ध्रुव के लिए किया है[६६] तो परमानंददास ने 'अक्षुरानंदन' को ही 'ठाकुर' और 'दीवान' दोनों कह डाला है[६७]। 'मंत्री' आदि की नियुक्ति का वास्तविक उद्देश्य, जैसा कि राम ने भरत को समझाया है, 'प्रजा के हेतु' पर विचार करना बताया गया है,[६८] यद्यपि सूरदास के अनुसार कभी-कभी ज्ञान-स्वरूप मंत्री ऐसे भी होते हैं जो निरंकुश शासक को उचित परामर्श देने का या तो अवसर ही

कालीन भारतीय राजा सर्वेसर्वा नहीं थे—'मध्य कालीन भारतीय संस्कृति', पृ १११।

५८. 'हिंदू सभ्यता', पृ १४४।
५९ 'हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास', प्रथम भाग, पृ ७४।
६० 'मंत्रिनि' नीकौ मंत्र विचार्यौ—सा ९-९८।
६१ 'मंत्री काम कुमति दीबे कौं क्रोध रहत प्रतिहारी—सा १ १४४।
६२. 'मंत्री' काम-क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति—सा १ १४१।
६३ पाप 'उजीर' कह्यौ सोइ मान्यौ धर्म सुधन लुटयौ—सा १-६४।
६४ 'मनूची' भाग २ पृ ११८।
६५ श्री सेठी और महाजन 'मुगल कालीन भारत का इतिहास', पृ २११।
६६ भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी राम के दीवान —सा १ २३५।
६७ साँचो दिवान है री कमलनयन।
तू मेरो ठाकुर अक्षुरानंद के तू दे भक्त जीवन—परमा ८८।
६८. 'गुरु बसिष्ठ' अरु मिलि सुमंत सौं परजा हेतु बिचारै—सा ९ ५४।

नहीं पाते या सभी बात कहते सकुचाते हैं[१६]।

सुशासित राज्य में मंत्री के बाद राजपुरोहित का स्थान होता था,* यद्यपि उसकी गणना राजकीय कर्मचारी में नहीं की जानी चाहिए। कंसादि अत्याचारी शासकों के राजपुरोहितों की चर्चा अष्टछाप काव्य में नहीं है। केवल सूरदास के श्रीराम ने चित्रकूट में भरत को मंत्रियों के साथ-साथ राजपुरोहित वशिष्ठ के सत्परामर्श से ही प्रजा-हेतु विचारने की शिक्षा दी है[१७]।

अन्य राजकीय कर्मचारियों में 'अमीन', 'मुस्तौफ़ी', 'काज़ी' 'कोतवाल', 'महरी', 'मुजमिल', मोहरिल, 'सिकदार' 'जासूस' आदि का उल्लेख अष्टछाप काव्य में मिलता है। 'अमीन' का मुख्य कार्य प्रजा से 'अमल' अर्थात् राजकर आदि जमाकर राज-कोष की वृद्धि करना था[१८] जिसकी ओर सूरदास ने भी संकेत किया है[१९]। मुस्तौफ़ी' संभवतः आय-व्यय-परीक्षक कर्मचारी था जो 'वज़ीर' की सलाह से काम करता था[२०]। सूरदास ने 'चित्रगुप्त' का 'मुस्तौफ़ी' का कार्य सौंपा है[२१]। 'काज़ी' का काम न्याय करने का था[२२] परंतु जब अभियोग लगानेवाला और अभियुक्त, दोनों एक हों तो 'काज़ी' कुछ नहीं कर सकता इसी कारण सूरदास ने कहा है कि जो 'मन मिलानेवाले' जब एक हैं तो काज़ी उनका क्या कर सकता है[२३]? काज़ी कौन-कौन दंड दे सकता था इस बात की चर्चा तो अष्टछाप-काव्य में नहीं है परंतु कुछ दंडों का उल्लेख उसमें अवश्य हुआ है जैसे चोरी करने

१६ मंत्री मन न करतर पावै कहत बात सकुचातो—सा ९.८।
* चौहिन्द न राजमंत्री के बाद राजपुरोहित फिर सेनापति और तब युवराज का स्थान बताया है—हिस्ट्री [illegible] पृ [illegible]।
१७ क गुरु वशिष्ठ अरु मिलि सुमंत सों परजा हेतु बिचारे—सा ९.५८।
ख गुरु वशिष्ठ अरु मिलि सुमंत सों [illegible]—सा ९.५५।
१८ क पी एन चार शर्मा मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन [illegible] पृ ११।
ख आइने अकबरी पृ ६।
१९ नैन अमीन [illegible]—सा १.१८।
२० आइने अकबरी पृ ८।
२१ चित्रगुप्त [illegible]—सा १.१८।
२२ आइने अकबरी पृ ६।
२३ [illegible]—सा [illegible] २९४८।

करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति सदा से होती आयी है जिनकी मंत्रणा से ही सामान्यतया राज-कार्य होता है। ऐसे राजकीय कर्मचारियों में 'मंत्री' प्रधान होता है। इनकी संख्या कहीं तैंतीस बतायी गयी है[५८] और कहीं दस[५९]। सूरदास ने रावण के मंत्रियों के लिए बहुवचन-सूचक 'मंत्रिनि' शब्द का प्रयोग किया है[६०] जिससे स्पष्ट है कि उनके कई मंत्री थे। अन्यत्र सूरदास ने कहीं एक मंत्री का उल्लेख किया है[६१] और कहीं दो का[६२]। मंत्री के लिए विदेशी संपर्क के कारण 'उजीर' या 'वजीर' शब्द का भी प्रयोग अष्टछाप-काव्य में दो-एक स्थलों पर मिलता है जिसमें 'पाप' को शरीर-रूपी राज्य का 'उजीर' बताया गया है[६३]। 'मंत्री' का ही समकक्ष अधिकारी होता है 'दीवान' जिसके अधीन 'कर और मालगुजारी' अर्थात् 'राजस्व' विभाग रहता था[६४]। 'वजीर' यदि 'दीवान' भी होता तो 'राजस्व' विभाग का भी अधिकारी हो जाता है;[६५] अस्तु। 'दीवान' शब्द का प्रयोग सूरदास ने ध्रुव के लिए किया है[६६] तो परमानंददास ने 'वसुदेवनंदन' को ही 'ठाकुर' और 'दीवान' दोनों कह डाला है[६७]। 'मंत्री' आदि की नियुक्ति का वास्तविक उद्देश्य, जैसा कि राम ने भरत को समझाया है 'प्रजा के हेतु' पर विचार करना बताया गया है,[६८] यद्यपि सूरदास के अनुसार कभी-कभी ज्ञान-स्वरूप मंत्री ऐसे भी होते हैं जो निरंकुश शासक को उचित परामर्श देने का या तो अवसर ही

कालीन भारतीय राजा सर्वेसर्वा नहीं थे—'मध्य कालीन भारतीय संस्कृति', पृ ११६।

५८. 'हिंदू सभ्यता' पृ १४४।
५९. 'हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास', प्रथम भाग, पृ ७४।
६०. 'मंत्रिनि' नीको मंत्र विचार्यो—सा ६-९८।
६१. 'मंत्री काम कुमति दीबे कौं क्रोध रहत प्रतिहारी—सा १ १४४।
६२. 'मंत्री काम-क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति—सा १ १४१।
६३. पाप 'उजीर' कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म सुधन लूट्यौ—सा १ ६४।
६४. मनूची भाग २ पृ २१८।
६५. श्री मठी और महाजन 'मुगल कालीन भारत का इतिहास' पृ २११।
६६. भक्त ध्रुव कौं अटल पदवी राम के दीवान'—सा १ २१५।
६७. सांचो दिवान' है री कमलनयन।
तू मरी ठाकुर वसुदेवनंद कै तू है जगत जीवन—परमा ८८।
६८. गुरु बसिष्ठ' घर मिलि सुमंत सौं परजा हेतु विचारै—सा ९-५४।

राजकीय कर्मचारी थे। सूरदास के एक पद में यशोदा ने नंद को 'ब्रज परगन सिकदार' कहा है[८] जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल में 'जिला कई 'परगनों' में बँटा होता था और इनका प्रधान अधिकारी 'शिकदार' कहलाता था[९]। 'लिखने-पढ़ने अथवा 'आय-व्यय का लेखा आदि रखनेवाला 'लिखदार' कहा गया है[१०] और उसके कार्यालय को परमानंददास ने 'दफ्तर' कहा है[११]।

३ सेना और युद्ध—

देश की सुरक्षा के लिए 'सेना' की आवश्यकता होती है जिसका प्रमुख कार्य आक्रमणकारी शत्रुओं से उसकी रक्षा करना होता है। राज्य-विस्तार के उद्देश्य से दूसरे देशों को जीतने के लिए भी सेना चाहिए। दूसरों पर आक्रमण किया जाय, अथवा दूसरों के आक्रमण से रक्षा की जाय, दोनों स्थितियों में सेना 'युद्ध' करती है। अष्टछाप काव्य में यद्यपि पौराणिक प्रसंगों में 'दिग्विजय' की चर्चा है, परंतु धन उदार और शांतिप्रिय कवियों ने उक्त उद्देश्य से किये गये किसी युद्ध की चर्चा नहीं की है। उन्होंने तो मुख्यतः ऐसे युद्धों की चर्चा की है जो आक्रमणकारियों या अन्यायियों के अत्याचार और अन्यायपूर्ण प्रयत्नों को असफल करके अपनी शक्ति से उनके दाँत खट्टे करने के लिए उनके आरम्भ की करने पड़े थे।

'सेना' के लिए अष्टछाप काव्य में 'कटक', 'चमू' 'दल' 'फौज' 'लश्कर', 'सैना' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[१२]। पौराणिक प्रसंगों में 'अक्षौहिणी

८. ब्रज परगन सिकदार महर तू ताकी करत नन्हाई—सा ९ १२६।

९ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने 'परगने' या 'माहाल' को मुगल कालीन शासन की निम्नतम प्रशासकीय एवं वित्तीय इकाई और उसके चार अधिकारियों में 'शिकदार' को प्रमुख बताया है—'मुगल कालीन भारत' पृ २२५।

१० ढाँचौ सो 'लिखदार' कहावै।
काया ग्राम मसाहत करि के जमा बाँधि ठहरावै—सा० १ १४२।

११ 'दफ्तर' लिखैं सारदा गनपति रवि ससि न्याउ बिचारैं—परमा ८८।

१२.क कर कपि कटक चले लंका को छिन में बाँध्यौ सेतु—सारा ९८८।
ख कन मोहन छिन माँझ सँवारे करि बिन 'चमू' पठायौ—सारा ५६७।
ग कौरौ दल' नाखि नाखि कीन्हौं जन भायौ—सा १-२१।

पर 'बाँधा जाना', 'अंग' का 'खंडन' करना, 'डाँड़' वसूलना[७८] आदि। 'फाँसी' और 'सूली' की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[७९]।

'कोतवाल' नामक पदाधिकारी अष्टछाप-कालीन शासन-व्यवस्था में बहुत महत्व का था[८०] परंतु सूरदास ने 'दगाबाज कुतवाल' की चर्चा की है जिससे यह संकेत होता है कि जब यह कर्मचारी अपने दायित्व का ध्यान नहीं रखता, तब प्रजा का सर्वस्व तक लूट लेता था[८१]। अष्टछाप काव्य में उल्लिखित 'अहदी'[८२] 'मुहासिब',[८३] 'मौरी',[८४] 'मीहरिल',[८५] 'पटवारी',[८६] 'जासूस'[८७] आदि अन्य

७८.क चोरी के फल तुमहिं दिखाऊँ।
कंचन-खंभ, डोर कंचन की, देखौ तुमहिं बँधाऊँ।
खंडौं एक अंग कछु तुम्हरौ, चोरी नाउँ मिटाऊँ।
जो चाहौं सोई सब लेहौं यह कहि डाँड़ मनाऊँ—सा १९१७।
ख रही री लाज नहिं काज काहु, हरि पाए पकरन चोरी।
मूसि-मूसि ले गए मन-माखन जो मेरैं मन ही री।
बाँधौं कंचन-खंभ कलेवर उभय भुजा दृढ़ डोरी।
चाँपौं कठिन कुलिस-कुच-अंतर सकै कौन बौं छोरी।
लैहौं अधर मूलि रस गोरस हरैं न काहू को री।
दैहौं काम-दंड पर-घर को नाउँ न लेँ अहीरी—सा १९१८।
७९.क. अधिक न छोरत 'फाँसी'—सा १४४६।
ख कौन पाप मैं देखी कियौ मार्तें मोकौं 'सूली' दियौ।
× × ×
ताहि सूल पर 'सूली दियौ—सा ११८६।
८० मुगल ऐंपायर इन इंडिया' पृ १०।
८१.क दगाबाज 'कुतवाल' काम रिपु सरबस लूटि लयौ—सा १९४।
ख पवन बुहारत द्वार सदा संकर करत कुतवारी—सा ९, पृ १५८।
८२. बरषो भाइ कुटुम-लसकर मैं, जम अहदी पठयौ—सा १५४।
८३ सूर आप गुजरान मुहासिब लै जवाब पहुँचावै—सा ११४२।
८४ 'मौरी' लोभ लबार मोह के, द्वारपाल अहंकार—सा ११४१।
८५. 'मीहरिल पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी बिपरीति—सा १४१।
८६ अहंकार 'पटवारी' कपटी झूठो लिखत बही—सा ११८५।
८७ क ऊधौ मधुप अनूप देखि गह्यौ टूटयौ धीरज पानि—सा ४२१७।
ख आए मुनिपत बाग मैं पनान भयो।
तब लगि मदन गोपाल बगन को 'जासूस गयो—परमा ४११।

राजकीय कर्मचारी थे। सूरदास के एक पद में यशोदा ने नंद को 'ब्रज परगन सिकदार' कहा है[८८] जिससे स्पष्ट होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल में 'ज़िला' कई 'परगनों' में बँटा होता था और इनका प्रधान अधिकारी 'शिकदार' कहलाता था[८९]। 'लिखने-पढ़ने' अथवा 'आय-व्यय' का लेखा आदि रखनेवाला 'लिखदार' कहा गया है[९०] और उसके कार्यालय को परमानंददास ने 'दफ्तर' कहा है[९१]।

३ सेना और युद्ध—

देश की सुरक्षा के लिए 'सेना' की आवश्यकता होती है जिसका प्रमुख कार्य आक्रमणकारी शत्रुओं से उसकी रक्षा करना होता है। राज्य-विस्तार के उद्देश्य से दूसरे देशों को जीतने के लिए भी 'सेना' चाहिए। दूसरों पर आक्रमण किया जाय, अथवा दूसरों के आक्रमण से रक्षा की जाय, दोनों स्थितियों में सेना 'युद्ध' करती है। अष्टछाप-काव्य में यद्यपि पौराणिक प्रसंगों में 'दिग्विजय' की चर्चा है, परंतु इन उदार और शांतिप्रिय कवियों ने इस उद्देश्य से किये गये किसी युद्ध की चर्चा नहीं की है। उन्होंने तो मुख्यतः ऐसे युद्धों की चर्चा की है जो आक्रमणकारियों या अन्यायियों के अत्याचार और अन्यायपूर्ण प्रयत्नों को असफल करके अपनी शक्ति से उनके दाँत खट्टे करने के लिए उनके आराध्य को करने पड़े थे।

'सेना' के लिए अष्टछाप काव्य में 'कटक', 'चमू', 'दल', 'फौज' 'लस्कर', 'सैना' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[९२]। पौराणिक प्रसंगों में 'अक्षौहिणी

८८. ब्रज परगन सिकदार महर तू ताकी करत नन्हाई—सा १ १०१।

८९ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने 'परगने' या 'महाल' को मुगल कालीन शासन की निम्नतम प्रशासकीय एवं वित्तीय इकाई और उसके चार अधिकारियों में 'शिकदार' को प्रमुख बताया है—'मुगल कालीन भारत' पृ २२५।

९० लाँबो सो लिखदार कहावै।
काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै—सा १ १४२।

९१ 'दफतर' लिखै सारदा गनपति रचि रचि न्याउ बिचारै—परमा ८८।

९२.क. कर कपि 'कटक' चले लंका को छिन में बाँध्यौ सेत—सारा ९८८।
ख. कल मोहन छिन माँझ सँवारे करि किन 'चमू' पठायौ—सारा ५६७।
ग. कौरो 'दल' नाशि नासि कीन्हौं जन भायौ—सा १ २१।

पर चौथा जाना, 'चंग' का 'खंडन' करना, 'डाँड' वसूलना' आदि। 'फाँसी' और 'सूली' की चर्चा भी अष्टछापी कवियों ने की है[७९]।

'कोतवाल' नामक पदाधिकारी अष्टछाप कालीन शासन-व्यवस्था में बहुत महत्व का था[८०] परंतु सूरदास ने 'दगाबाज कुतवाल' की चर्चा की है जिससे यह संकेत होता है कि जब यह कर्मचारी अपने दायित्व का ध्यान नहीं रखता, तब प्रजा का सर्वस्व तक लूट लेता था[८१]। अष्टछाप काव्य में उल्लिखित 'आहदी'[८२] 'मुहासिब',[८३] 'मोदी',[८४] 'मोहरिल',[८५] 'पटवारी',[८६] 'जासूस'[८७] आदि अन्य

७८.क चोरी के फल तुमहिं दिखाऊँ।
कंचन-खंभ और कंचन की, देखी तुमहिं बँधाऊँ।
सांटी एक अंग कछु तुमरो, चोरी मारि मिटाऊँ।
जो चाहौं छोरे सब लोगों यह कहि डाँड मनाऊँ—सा १९१७।
ख एही री लाज नहिं आज आजु, हरि पाए पकरत चोरी।
मूसि-मूसि ले गए मन-माखन जो मेरे बन हो री।
बाँधौं कंचन-खंभ कलेवर उभय भुजा दृढ़ डोरी।
चाँपौं कठिन कुलिस-कुच-अंतर सके कौन धौं छोरी।
मांडौं अधर मूसि रस गोरस हरैं न काहू को री।
दंडौं काम-दंड पर-घर को नाउँ न लेहैं बहोरी—सा १९१८।
७९.क बधिक न छोरत 'फाँसी'—सा १४७६।
ख कौन पाप मैं ऐसो कियो जातैं मोकौं 'सूली दियौ।
× × ×
वाहि धूल पर 'सूली दियौ—सा १ १८६।
८० 'मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया', पृ १ ०।
८१.क दगाबाज 'कुतवाल' काम रिपु सरबस लूटि लयौ—सा १-६४।
ख पवन मुगारत द्वार तथा संकर करत कुतवारी—सा में पृ १५८।
८२. भरयौ आइ कुम्भ-लसकर मैं काम 'आहदी' पठयौ—सा १-६४।
८३ सूर आप गुजरान मुहासिब ले जवाब पहुँचावे—सा १ १४२।
८४ 'मोदी' लोभ खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार—सा १ १४१।
८५. 'मोहरिल' पाँच साथ करि दीने तिनकी बड़ी विपरीति—सा १४१।
८६. अहंकार 'पटवारी' कपटी झूठी लिखत बही—सा १-१८५।
८७.क ऊधौ मधुप अनूप देखि गयो हृदयो धीरज धनि—सा १११७।
ख आए गुनिरस बाग में पमान भयो।
तब लगि मदन गोपाल देखन को आतुर गयो—परमा ४९१।

सेना'[१२] का उल्लेख हुआ है। महाभारत के युद्ध में तो केवल अठारह अक्षौहिणी सेना होने की बात प्रसिद्ध है,[१४] परन्तु 'सारावली' में जरासंध का साठ 'अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण से लड़ने आना और अन्ततः के परमाराध्य का क्षण मात्र में समस्त संहार कर देना लिखा गया है'[१५]। 'सारावली' में जरासंध के सहायक 'कालयवन' की सेना में तीन 'कोटि भट' बताये गये हैं[१६]। राम की सेना में 'पदुम-कोटि' योद्धा होने की बात सूरदास ने लिखी है[१७]। 'सेना' में गज, अश्व, रथ और पदाति या पैदल अथवा 'पायक' होने से उसे 'चतुरंगिणी' कहा गया है[१८]। सेना के वीरों को अष्टछापी कवियों ने 'योद्धा', 'भट', 'सुभट', 'सूरमा' आदि कहा है[१] ।

'सेना' के नायक को अष्टछापी कवियों ने 'सेनापति' और 'फौजपति'

ख मागध देस देस तें आयो, साजे 'फौज' अपार—सारा ६ २।
ग मारि 'फौज' सबही मागध की जरासंध डर भारे—सारा ६ ४।
घ घेरयो आइ कुटुम 'लसकर' मैं—सा १०-६४।
ङ. वाके हित 'सेना सजि आए राम लछन दोउ भाई—सा ६ ११७।
१३ अक्षौहिणी सेना में १ ६ ११५ पैदल, ६५६१ घोड़े, २११८० रथ और २११८० हाथी होते थे—चतुरसेन शास्त्री 'भारतीय संस्कृति का इतिहास', पृ १४५।
१४ जुरे नृपति 'अच्छौहिनि अठारह' भयो युद्ध अति भारी—सारा ७७९।
१५ 'तीन बीस अच्छौहिनि' लै दल जरासंध तहँ आयो।
बल मोहन छिन माँझ सँहारे करि बिनु चमू पठायो—सा ४६७।
१६ यह सुनि जमन तुरत ही धायो जिय म अति अकुलाय।
'तीन कोटि भट जवन' संग लै मथुरा पहुँच्यो आय—सारा ६ १।
१७ 'पदुमकोटि' मिलि सेना सुग्रिव संग सु पंक पठायो—सा ६ १२५।
१८.क. 'पायक मत्त गयंद अमीरन सदा दुष्टमति दूत—सा १ २४१।
ख तुरगा धूरि उड़ति रथ 'पायक घोरनि की खुरतार—सा ११११।
१९ मनो चलत 'चतुरंग चमू' नभ बाकी सुर साह—सा ११ ५।
१ क तीनि कोटि 'भट' जवन संग लै मथुरा पहुँच्यो आय—सारा ६ १।
ख तृष्णा देसउर 'सुभट' मनोरथ इंद्री खड्ग हमारी—सा १ १४४।
ग रही अहंकार सुभट सूरमा डकति रही उर सालि—सा ११११।
१ क 'सेनापतिनि' सुनाइ बात यह नृप मन भयो उदास—सा १०-६।
ख सुहाँसुही 'सेनापति' कीन्ही सबै गर्व बढ़ायो—सा १०-६१।
ग. ब्रज पर सजि पावस दल आयो।
× × ×

अस्त्रों में की जानी चाहिए; प्रथम से मेघनाद ने हनुमान को[१३] और दूसरे से राम-लक्ष्मण को बाँधा था[१४]।

उक्त अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त 'पलीता' लगाकर छोड़े जानेवाले 'गोलों' की भी चर्चा अष्टछापी कवियों ने की है। यद्यपि ऐसे अस्त्रों का उल्लेख 'शुक्रनीति' में भी पाने की बात कुछ विद्वानों ने लिखी है,[१५] तथापि इतिहासकारों ने अकबर के 'तोपखाने' का वर्णन किया है[१६]। जो हो, अष्टछापी कवि इनसे परिचित अवश्य थे और उन्होंने 'कमान' में 'दारू' भरकर 'पलीता' लगाये जाने की बात स्पष्ट शब्दों में लिखी है जिससे भयंकर 'गर्जन' करता हुआ 'गोला' छूटता है, और पल भर में 'गढ़' जीत लिया जाता है[१७]।

बाह्य आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा के लिए 'दुर्ग' या 'गढ़' बनाये जाते थे जिनकी रक्षा सेना करती थी और 'दुर्ग' का पतन होने पर राज्य 'विजित' समझ लिया जाता था। 'दुर्ग' या 'गढ़' को अधिक से अधिक सुरक्षित और दृढ़ बनाने का प्रयत्न अष्टछाप-काल में किया जाता था और अनेक दुर्ग उस समय ऐसे थे जो 'अजेय' समझे जाते थे। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने दो दुर्गों का वर्णन विशेष रूप से किया है। पहला है लंका का दुर्ग जो नगर के चारों ओर बना था अर्थात् दुर्ग के मध्य में नगर इस तरह बसा था कि वह सब तरह से सुरक्षित था । लंका का दुर्ग 'अभेद्य' समझा जाता था और उसमें 'वज्र के किवाड़' लगे थे ।

१३ क. देख्यो जब 'रिपुमथन' निसिचर कर तान्यो।
छाँड्यो तब सूर हनू 'ब्रह्मास्त्र' मान्यो—सा ९-९१।
ख 'ब्रह्म फाँस' उन गई हाथ करि मैं चितयो कर जोरि—सा ९ १ ४।
१४ हँसि-हँसि 'नाग-फाँस' सर साँधत बंधु-समेत बँधायो।
नारद स्वामी कह्यो निकट ह्वै, गरुड़ासन क्यौं बिसरायो?
× × ×
सुमिरत ध्यान आनि कै अपनो 'नाग फाँस' तैं सैन छुड़ायो—सा ९ १४१।
१५. 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' पृ ९२।
१६. डा ईश्वरी प्रसाद भारतवर्ष का इतिहास, पृ १७५।
१७ द्वार 'कमान' धरि दारू भरि, तड़ित 'पलीता' देत।
गरजन अरु 'तड़पन' मनु 'गोला' परत मैं 'गढ़ लेत'—सा ४२६७।
१८. 'चहुँ दिसि लंक दुर्ग' दानव दल कैसे पाऊँ जान—सा ९-७२।
१९ 'लंक गढ़ माँहि' आकाश मारग गयो चहुँ दिसि लगे 'बज्र किवार'—सा ९-७६।

कवियों ने 'आगर' 'गदा', 'मुग्दर', 'मूसल' आदि का उल्लेख किया है[७]। श्रीकृष्ण का 'सुदर्शन चक्र' भी इसी वर्ग में समझना चाहिए[८]।

'धनुष' नामक 'अस्त्र' का अष्टछाप-काव्य में सबसे अधिक उल्लेख हुआ है और उसके लिए 'कमान' 'कोदंड' 'चाप', 'धनु,' धनुहियाँ, 'पिनाक' आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं[९]। 'धनुष' चलानेवाला 'धनुषधर' कहा गया है[१०]। 'धनुष' से छोड़े जानेवाले 'तीर' के लिए 'बान', 'सर' 'सायक' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं[११]।

अष्टछाप-काव्य में अनेक ऐसे अस्त्रों की भी चर्चा है जो मंत्र की शक्ति से चलाये जाते थे। इस वर्ग के अस्त्रों में उन्होंने 'दिव्य बान' 'ब्रह्मास्त्र' या 'ब्रह्मबान' आदि की चर्चा की है[१२]। 'ब्रह्मफाँस' और 'नागफाँस' की भी गणना मंत्राभिषिक्त

७.क 'आगर' एक लौह जटित लीन्हौ करिबंड—सा ९-९६।
ख 'गदा' युद्ध सस्त्र कीन्हौं बहुत बैर लौं—सा ४२२१।
ग आपुन ही 'मुगदर' लै धायौ करि लोचन बिकराल—सा ९.१०४।
घ राम हल 'मूसल' सँभारि धार्यौ—सा ४१८१।
८.क 'चक्र' सुदरसन धार्यौ—सा १.२७२।
ख सीतल भई 'चक्र' की ज्वाला अब सिर तिलक निहारो—सारा ८८१।
ग. गोविंद कोपि 'चक्र' कर लीन्हौ—सा १.२.१।
९.क कुधि 'कमान' चढ़ाइ कोप करि—सा १.६४।
ख मनु मदन धनु सर सँधाने, देखि घन 'कोदंड'—सा १.१.७।
ग. करुनामय अब 'चाप' लियौ कर—सा ९.२६।
घ कटि तट पट पीताम्बर काछे, धारे 'धनु' तूनीर—सा ९.४४।
ङ राम 'धनुष' अरु सायक साँधे—सा ९-५८।
च करतल सोभित बान 'धनुहियाँ'—सा ९.१६।
छ. जिनि रघुनाथ 'पिनाक' पिताप्रिय तोरयौ निमिष महीं—सा ९-९१।
१० ऐसो कोउ 'धनुधर' नाहिं—सा ४१.९।
११ क स्याम बलराम सुधि आइ सन्मुख भए, 'बान' बरषा लगे करन सारे—सा ११८१।
ख जिन रघुनाथ हाथ सार दूषन हरे सर ही—सा ९-९१।
ग पर घोंघर दिसि बिदिसि बढ़े, प्रीत 'सायक' किरन समान—सा ९.१५८।
१२.क देवनी अब दिव्यबान निसिचर कर तान्यौ—सा ९-६६।
ख 'ब्रह्मबान' कानि करी बल करि नहिं बाँध्यौ—सा ९-९७।
ग. अस्वत्थामा चरन बनायौ बहुरन हैं ब्रह्मास्त्र पठायौ—सा १.२८९।
घ इंद्रजीत कलनिधि अब मारी 'ब्रह्मास्त्र' हन मारे—सारा २८४।

क्षेत्र में अंधकार करने के लिए तिमिर बान छोड़ता है तो दूसरा उसको नष्ट करने के लिए 'दीप्तिबान'[२५] कभी विपक्ष के सैनिकों को भयभीत करने के लिए युद्ध क्षेत्र में अकस्मात् बाण-वर्षा के साथ अग्नि-वर्षा होने लगती है,[२६] एवं कभी रक्त और मांस की[२७]। इसी प्रकार सैनिकों को भ्रम में डालने के लिए मायावी युद्ध करनेवाले कभी कभी 'थल' का 'जल' और 'जल' को थलवत् दिखाकर विपक्षी-दल को विचलित करने की योजना बनाते हैं[२८]।

सामान्यतया आक्रमणकारी, सेना के नष्ट हो जाने पर लौट जाया करते थे जैसे साठ अक्षौहिणी सेना नष्ट हो जाने पर जरासंध लौट जाता है[२९]। परंतु जब आक्रमणकारी जीत जाता था तब विपक्षी के राज्य पर उसका अधिकार हो जाता था। रावण की मृत्यु पर विभीषण उसके राज्य लेने की बात स्पष्ट रूप से कहता है[३०]। ऐसी स्थिति में पराजित के राज्य में जेता की दुहाई फेरी जाती थी। रावण को समझाता हुआ विभीषण कहता है कि यदि तू सावधान नहीं होगा, तो राम-लक्ष्मण सेना सजा कर आ गये हैं लंका पर शीघ्र ही उनका अधिकार हो जायगा और नगर में उनकी दुहाई फिर जायगी[३१]।

रणक्षेत्र के लिए 'खेत' शब्द का प्रयोग 'जरासंध-युद्ध' प्रसंग में हुआ है[३२]।

धुम ह्वै कबहुँ कबहुँ पराग देखियै कबहुँ धर कबहुँ नभ धर्म होइ—सा ४ २१।

२५. 'तिमिर को बान' तब साल्व मारयौ फटकि, प्रद्युम्न 'बान दीपति' चलायौ। मिट्यौ अंधकार तब बान बरषा करी तुरँग सारथी सौं गिरायो—सा ४२११।

२६. 'अगिनि' कबहुँ, कबहुँ 'वारि' बरषा करै—सा ४२२१।

२७. 'रुधिर और मांस की लाग्यौ बरषा करन—सा ४२२१।

२८. 'जल में थल थल में जल देख्यौ स्याम बुद्धि करि दीन्हौ—सारा ८८२।

२९. तीन बीस अक्षौहिनि लै दल जरासंध तहँ आयौ। मन मोहन छिन माँझ सँहारे बार बिन प्रभु पठयौ—सारा ५१०।

३०. लीन्हे गोद विभीषन रोवत कुल-कलंक ऐसौ मति ठानी। चोरी करी राज्य लोपा अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी। कुंभकरन समुझाइ रहे पचि दै सीता मिलि सारँगपानी। सूर सबनि की कह्यौ न मान्यौ त्यौं खोई अपनी रजधानी—सा ९ १६१।

३१. आयै हित सैना सजि आए राम लखन दोउ भाई। सूरदास प्रभु लंका तोरैं फेरैं राम-दुहाई—सा ९ ११७।

३२. भजत गोपाल मुकुंद मंदरपत आनु मारिहौं रन—बरमा कौन ११४४।

दुर्ग के चारों ओर समुद्र जैसी गहरी और चौड़ी खाई थी जिसके कारण रावण सदा निश्चिन्त रहता था। उसकी इस निश्चिन्तता को लक्ष्य करके ही विभीषण कहता है कि अपने दुर्ग की दुर्गमता और समुद्र जैसी खाई देखकर गर्व मत करो, चार पाँच दिन में ही 'लंका' दूसरे की हो जायगी[२०]।

सूरदास द्वारा वर्णित दूसरा दुर्ग द्वारका' का है जिसका निर्माण श्रीकृष्ण ने कराया था। सागर के तीर पर बसे हुए कंचन के इस 'कोट' के चारों ओर 'गोमती-जैसी' खाई थी[२१]।

शत्रु के आक्रमण करने पर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सेना दुर्ग आदि की रक्षा के लिए युद्ध करती है। अष्टछापी कवियों ने 'युद्ध' के लिए 'जुद्ध', 'रन', 'लराई', 'समर', 'संग्राम' आदि शब्दों का प्रयोग किया है[२२]। कभी-कभी तो युद्ध का निर्णय एक ही दिन में हो जाता था और कभी कई-कई दिन तक युद्ध चला करते थे। महाभारत का युद्ध अठारह दिन तक चलना तो प्रसिद्ध ही है जिसमें सूरदास के अनुसार, भीष्म ने दस दिन तक युद्ध किया था[२३]।

सामान्य मानवीय रीति के युद्ध के अतिरिक्त अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'मायावी' युद्धों का भी वर्णन किया है। साल्व और दंतवक के युद्ध में इसके उदाहरण मिलते हैं जिसमें कभी तो युद्धकर्ता विराट रूप धारण करता है और कभी अत्यंत लघु रूप कभी प्रकट हो जाता है, कभी अन्तर्हित,[२४] कभी कोई योद्धा रण

२० 'लंक सौ कोट' देखि जनि गरबहि, अरु समुद्र-सी खाई।
आजु-कालि, दिन चारि-पाँच मैं, लंका होति पराई—सा ९-११७।

२१ सुनियत कहूँ द्वारिका बसाई।
दच्छिन दिसा तीर सागर कै, 'कंचन कोट' गोमती खाई—सा ४२६१।

२२.क आये रुद्र पच्छ करि ताको 'जुद्ध' करन हरि साथ—सारा ७ २।
ख गहि सारँग रन रावन जीत्यो लंक बिभीषन दयो बुलाई—सा १-२४।
ग. उन दोउन सों भई लराई' अर्जुन तब दौड लिये बुलाई—सा १-२८६।
घ करि रिपु हानि 'समर' सब जीत्यो राम कृष्ण घर आये—सारा ६२१।
ङ अमरादिक आरूढ़ बिमाननि देखत हैं संग्राम'—सा ९ १५५।

२३ 'दस दिन लरे बली गंगासुत' स्याम प्रतिज्ञा ठानी।
सत्य वचन हरि कियो भक्त को निगम झूठ करि मानी—सारा ७८२।

२४ असुर किया समर बहुरि लाग्यौ करन कबहुँ लघु कबहुँ दीरघ सु होई।

क्षेत्र में अंधकार करने के लिए 'तिमिर बान' छोड़ता है तो दूसरा उसको नष्ट करने के लिए 'दीप्तिबान'[२५] कभी विपक्ष के सैनिकों को भयभीत करने के लिए युद्ध क्षेत्र में अकस्मात् बाण-वर्षा के साथ अग्नि-वर्षा होने लगती है[२६] एवं कभी रक्त और मांस की[२७]। इसी प्रकार सैनिकों को भ्रम में डालने के लिए मायावी युद्ध करनेवाले कभी-कभी 'थल' को 'जल' और 'जल' को थलवत् दिखाकर विपक्षी-दल को विचलित करने की योजना बनाते हैं[२८]।

सामान्यतया आक्रमणकारी सेना के नष्ट हो जाने पर लौट आया करते थे; जैसे साठ अक्षौहिणी सेना नष्ट हो जाने पर जरासंध लौट आता है[२९]। परंतु जब आक्रमणकारी जीत जाता था तब विपक्षी के राज्य पर उसका अधिकार हो जाता था। रावण की मृत्यु पर विभीषण उसके राज्य लेने की बात स्पष्ट रूप से कहता है[३०]। ऐसी स्थिति में पराजित के राज्य में जेता की 'दुहाई' फेरी जाती थी। रावण को समझाता हुआ विभीषण कहता है कि यदि तू सावधान नहीं होगा, तो राम-लक्ष्मण सेना सजा कर आ गये हैं; लंका पर शीघ्र ही उनका अधिकार हो जायगा और नगर में उनकी दुहाई फिर जायगी[१]।

रणक्षेत्र के लिए 'खेत' शब्द का प्रयोग 'जरासंध-युद्ध' प्रसंग में हुआ है[१२]।

धूम है कबहुँ कबहूँ परगट देखियै कबहुँ धार कबहूँ नभ बसै सोई—सा ४ ९१।

२५. 'तिमिर को बान' तब साल्व मारयो फटकि प्रद्युम्न बान दीपति चलायो।
मिट्यो अंधकार तब बान बरषा करी सुरँग वारधी स्यौं मिटायो—सा ४२२१।

२६ 'अगिनि कबहुँ, कबहुँ बारि बरषा करै—सा ४२२१।

२७ 'रुधिर और मांस की लगी बरषा करन—सा ४२२१।

२८ जल में थल थल म जल रच्यो स्याम दूरि करि दीन्हों—सारा ७८२।

२९ तीन बीस अच्छौहिनि लै दल जरासंध लौं आयो।
बल मोहन छिन माँझ सँहारे करि बिन मनू पठायो—सारा ५६७।

१ लीन्ह गोद विभीषन रोवत कुल-कलंक धर्म मानि ठानी।
चोरी करी 'राजहूँ खोयौ' अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी।
कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै सीता मिलि सारँगपानी।
सूर सबनि कौ कह्यौ न मान्यौ त्यों गोइ अपनी रजधानी'—सा ६ १६।

११ आवैं दिन सैना सजि आए राम लखन दोउ भाइ।
सूरदास प्रभु लंका तोरैं फेरैं राम-दुहाई—सा ६ ११७।

१२. कहत गोपाल सुनहु संकरषन आजु मारिहौं रन—परमा खेल ११४४।

युद्धक्षेत्र के भयंकर विनाश की ओर भी अष्टछापी कवियों ने कहीं-कहीं संकेत किया है। ध्वजा, पताका, रथ चक्र आदि के टूटने; योद्धाओं के हाथ, पैर, सिर आदि के कटने; कबंधों के गिरने आदि के दृश्यों में रुचि न रहने पर भी दो-एक स्थलों पर वे ऐसी बातों उल्लेख करते हैं[१३]। युद्ध-क्षेत्र में रक्त की भयंकर कीच के बीच घायल पड़े वीरों के अर्द्धमृतक एवं मृतक शरीरों का स्यार, गिद्ध आदि के द्वारा खाया जाना भी अष्टछाप-काव्य में वर्णित है[१४]।

४ राजस्व—

राजपरिवार, राजकीय कर्मचारी, सेना के पदाधिकारी आदि के वेतन तथा प्रशासकीय व्यवस्था आदि के लिए जो धन चाहिए, वह विविध 'करों' के रूप में प्रजा से लिया जाता है। कालिदास के अनुसार प्रजा के उपकार के लिए ही राजा उससे 'कर' लेता है जैसे सूर्य सहस्र गुणा दान के लिए ही पृथ्वी से जल लेता है[१५]। 'कर'-रूप में राजा को प्राप्त होनेवाला धन राज्य का 'अंश' कहलाता था। कृष्ण और बलराम को लिवाने आये हुए अक्रूर से इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई माता यशोदा कहती है कि राजा को दिया जानेवाला अंश 'दूना' ले लो परंतु सुतों को देकर मैं क्या करूँगी[१६] ?

१३ क टूटत धुजा पताक-छत्र रथ चाप चक्र सिरत्रान।
झूमत सुभट चरत ज्यौं द्रुम बिनु साखा बिनु पान।
सोनित छिछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि सिर लागि।
मानौ निर्झर सरनि रंध्रनि तैं उपजी है अति आगि।
धरि कबंध महराइ रथनि तैं, उठत मनौ झरि आगि—सा ९।१५८।

ग रघुपति अपनौ मन प्रतिपारयौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़ रावन टूक-टूक करि डारयौ।
कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत मानौ मद मतवारे।
भभकत तरफत सोनित मैं तन नाहीं परत निहारी—सा ९।१५९।

१४ क फिरत सृगाल सगौ सब काटत चलत सो सिर लै भागि—सा ९।१५८।
ग सो रावन रघुनाथ छिनक मैं कियो गीध कौ भारौ।
सिर सँभारि लै गयौ उमापति रह्यौ रुधिर कौ गारौ—सा ९।१५९।

१५ रघुवंश १।१८।

१६ राज कौ अंस लिखि लहु दूनौ देहुँ मैं कहा करौं सुत दुहुँनि देहै—सा १६६०।

यों तो राज्य की आय कई विभागों से होती है[३७] तथापि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देशों में 'भूमिकर' या 'लगान' ही राज्य की 'आय' का प्रमुख साधन है[३८]। अष्टछाप-काव्य में भी अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा 'कर' दिए जाने का स्पष्ट उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। चतुर्भुजदास और कुंभनदास की गोपियाँ 'दान' माँगनेवाले कृष्ण से व्यंग्यपूर्वक कहती हैं कि आप तो राजा कंस को 'कर' देकर उसके अधीन हैं और बेटा स्वयं 'जगाती' अर्थात् कर उगाहनेवाला बना घूमता है[३९]। नंददास के अनुसार 'कर' देने का दिन निश्चित रहता था और करदाता को 'कर' जमा करने स्वयं जाना पड़ता था। कृष्ण के जन्म के कुछ ही दिन बाद 'कर' जमा करने का दिन आ जाने पर नंद जी विवश होकर उसके लिए मथुरा जाते हैं[४०]। परमानंददास के अनुसार निश्चित दिन के भीतर 'कर' न पहुँचने पर राजा या उसका अधिकारी दूत भेजकर 'कर' मँगवा लेता था[४१]।

उक्त 'कर' के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में 'दान-लीला' प्रसंग में 'चुंगी' जैसे 'कर' का वर्णन है जो प्रायः ऐसे मसालों आदि पर लिया जाता था जो दूर के स्थानों से लाये जाते थे। गोविंदस्वामी के कुछ पदों में 'लौंग-सुपारी' पर इस प्रकार के कर लिये जाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है[४२]। 'कर' उगाहनेवाले को 'जगाती',[४३]

३७ 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पृ० १५५ में उद्धृत बार्न्स थान मुहम्मडन इंडिया जिल्द १ पृ० १७६-७७।

३८. 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' पृ० ८१।

३९ क आप देत कर कंस राजा को पूत जगाती डोलत मेरे।
—चतु० कीर्तन, भा० १ पृ० ९१।

ख 'आप देत कर कंस राजा को'—कुंभन० १६।

४० ऐसे भाँति महा सुख पायो कंस को कर देनो दिन आयो।
एक दिन रजनि घोष में आये मथुरा नगर नंद जू चले।
तुरत जाइ नृप कौं कर दियौ ब्रजपति ब्रज चलिबे कौ भयौ।
—नंद० ग्रंथा० पृ० २१६।

४१ चालिह दूत आवन चाहत हैं राम कृष्ण को लैन।
नन्दादिक सब ग्वाल बुलाये अपनो चालिक दैन—परमा० ४७५।

४२ क. दान माँगत ऐसे चाहू लादी है लौंग सुपारी—गोविं० ९५।

ख दूध-दही गोरस को दान कबहूँ न सुन्यो कान अब मानो लौंग लादी चाहू जैसे।
—गोविं० ९६।

४३ आप देत कर कंस राजा को पूत जगाती डोलत मेरे।
—चतु० कीर्तन भाग १, पृ० ९१।

'दानी' आदि कहा गया है। ऐसे अधिकारियों को शासक की ओर से लिखित आज्ञा पत्र या प्रमाणपत्र मिलता था। इसी से गोविंदस्वामी की गोपियाँ 'दान' माँगने वाले कृष्ण से पूछती हैं कि तुम स्वयं ही 'दानी' बन गये हो या तुम्हें किसी ने नियुक्त किया है[४४]। पौता', बट्टा, 'दस्तक', 'मवारजा', 'फरद', 'तगीरी' आदि शब्द भी 'राजस्व' से संबंधित हैं जिनका प्रयोग केवल सूरदास ने किया है[४५]।

४ *राजनीति-संबंधी अन्य बातें—*

अष्टछाप-काव्य में यत्र-तत्र ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे उसके रचयिताओं के राजनीति-संबंधी विचारों पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, राजनीति के नियमानुसार 'दूत' अवध्य समझा जाता था। रावण जब हनुमान के कार्यों से क्षुब्ध होकर उनको मार डालने की आज्ञा अपने सेवकों को देता है तब मंत्रीगण उसको यह कहकर ही रोकते हैं कि भला किसी राजा ने दूसरे के 'दूत' को मारा है[४६]?

सूरदास के एक पद में ऊधव से गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण ने 'राजपदवी' पायी है और तुम उनके सहायक, सखा, सभी कुछ हो। तुम्हें तो ऐसे अवसर का लाभ उठा कर कुछ 'कमा' लेना चाहिए था, इधर उधर उपदेश देते फिरकर क्यों व्यर्थ अवसर खो रहे हो[४७]? स्पष्ट है कि अष्टछाप काल में भी अवसर से लाभ उठानेवाले लोगों की कमी नहीं थी।

कंस की कपटपूर्ण नीति के संबंध में भी सूरदास ने एक रोचक संकेत किया

४४ आपु ही लेठ किधौं काहू लिखि दीनो—गोवि २६।
४५.क. मौहि मौहि नारिहान कोप की 'पौता' भजन भरावै—सा १ १४१।
ख बट्टा' काढ़ि कसूर भरम को—सा १ १४२।
ग. सूरदास की यह बीनती 'दस्तक कीजै माफ—सा १ १४१।
घ करि अवारजा प्रेम प्रीति की असल तहाँ खतियावै—सा १ १४९।
ङ बट्टा काढ़ि कसूर भरम को 'फरद' तले ले डारै—सा १ १४२।
च सुनी 'तगीरी' बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे—सा १ १४१।
४६ मंत्रिनि नीको मंत्र बिचारयो।
राजन कहो दूत काहू को कौन नृपति है मारयो—सा ९-९८।
४७ ऊधो क्यों भाये ब्रज पावन।
सहायक सखा राजपदवी मिलि इन बन कछुक कमावन—सा पं, पृ ४७२१।

है। उसकी योजना अक्रूर के द्वारा बलराम और कृष्ण को बुलवाने की है अतएव प्रातःकाल जब अक्रूर कंस के भवन में जाते हैं तब नृपति 'खवास' को सैन करके 'सिरोपाँव' मँगाता है और अपने हाथ से लेकर अक्रूर को देता है[४८]। इसी प्रकार अपनी आज्ञा का पालन कर दिये जाने पर उसने 'बकसीस' देने की बात भी कही है। कंस ने अक्रूर से कहा है कि कृष्ण उरग-पीठ पर कमल लाद कर ले आये थे, सो अब मैं उन्हें 'बक्सीस' दूँगा[४९]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य में चित्रित राजनीतिक जीवन का जो परिचय ऊपर दिया गया है, उसके संबंध में दो बातें ध्यान में रखने की हैं। एक तो यह कि अष्टछापी कवि स्वभाव और परिस्थिति, दोनों कारणों से राजनीतिक संपर्क से सदैव दूर रहे। 'भक्त को कहा सीकरी काम'[५०] जैसी उनकी उक्तियों से इस कथन की पुष्टि भी होती है। अतएव तद्विषयक जीवन के संबंध में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह सामान्य रूप से उनकी बहुज्ञता की ही देन है, घनिष्ठ संपर्क द्वारा अर्जित ज्ञान के प्रकाशन की प्रवृत्ति का फल नहीं है। राजनीतिक जीवन-विषयक उनकी जानकारी जागरूक नागरिक जैसी है जिसके लिए उस क्षेत्र से सर्वथा दूर रहनेवाले अष्टछापी कवियों की प्रतिभा पर पाठक को हर्ष-मिश्रित आश्चर्य होता है।

दूसरी बात यह है कि अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त 'राजनीति-संबंधी शब्दावली में, जैसा पीछे कहा जा चुका है, अनेक शब्द अरबी-फारसी के हैं जिनका प्रचलन भारत में अष्टछाप काल तक लगभग तीन सौ वर्षों तक विदेशी शासन रहने के कारण, हो चुका था। ऐसे अनेक शब्द 'आइने अकबरी'-जैसे तत्कालीन ग्रंथों में और उस युग को लेकर लिखे गये आधुनिक इतिहासों में भी मिलते हैं। अतएव इतिहास के अध्येता को अष्टछाप-काव्य में प्रयुक्त ऐसे शब्दों में अध्ययन की पर्याप्त रोचक सामग्री मिल सकती है।

४८. करि खवास कौं सैन नृप सिरोपाँव मगायौ।
'अपनें कर लै करि दियौ सुफलक-सुत लीन्हौं—सा ३६१६।
४९. कमल अब तैं उरग-पीठि ल्याये मुने बड़े 'बक्सीस' अब उनहिं देहौं—सा ३९१।
५० 'अष्टछाप' काँकरोली पृ २११।

८ भक्ति और धर्म संबंधी विचार

अष्टछापी कवि वल्लभ-संप्रदायी भक्त थे। अतएव उनके काव्य में भक्ति और धर्म-संबंधी जो विचार मिलते हैं वे प्रमुख रूप से महाप्रभु वल्लभाचार्य के तत्संबंधी सिद्धांतों से प्रभावित हैं। साथ-साथ व्रजप्रदेश के जन-समाज के तद्विषयक परंपरागत विचारों का भी उन्होंने परिचय दिया है। अतएव अष्टछाप-काव्य में वर्णित भक्ति और धर्म-संबंधी विचारों का अध्ययन तीन शीर्षकों के अंतर्गत करना उचित जान पड़ता है—१ सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप, २. सामान्य धार्मिक विचार और ३ धार्मिक कृत्य।

१ सांप्रदायिक विचार और भक्ति के विविध रूप—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान के प्रति माहात्म्य-ज्ञानपूर्वक परम सुदृढ़ स्नेह को[1] 'भक्ति' कहा है[2] और उसको केवल प्रभु के अनुग्रह द्वारा ही साध्य बताया है[3]। यही 'पुष्टिमार्गीय' भक्ति है जिसमें प्रीति और करुणा का महत्व सर्वोपरि है। इसी से इसको 'रागानुगा' भक्ति[4] भी कहा गया है और यही संक्षेप में 'पुष्टि संप्रदाय' में मान्य भक्ति का स्वरूप है[5]। प्रभु अनुग्रह' की पात्रता आने पर भक्त सदैव के लिए निश्चिंत हो जाता है, क्योंकि इसके अनंतर परमाराध्य ही भक्त के समस्त कार्यों का नियामक रहता है[6]। प्रभु का प्रेम और अनुग्रह पाने तथा अविद्या इत्यादि नाना प्रकार के दोषों का नाश करने के लिए महाप्रभु ने दृढ़ विश्वास-पूर्वक श्रवण कीर्तन स्मरण, पाद-सेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य और आत्मनिवेदन

१ श्री आचार्य जी के मारग को स्वरूप यह है। जो माहात्म्य ज्ञानपूर्वक दृढ़ स्नेह सो सर्वोपरि है सो ठाकुरजी को बहुत प्रिय है परंतु जीव माहात्म्य जाने। सो चाहे त। जो माहात्म्य बिना अपराध को भय मिटे जाय तासों प्रथम दशा में माहात्म्य-युक्त स्नेह आवश्यक चाहिए'—श्री हरिराय अष्टछाप-वार्ता, पृ० १८।
२. 'तत्त्वदीप निबंध' शास्त्रार्थ-प्रकरण श्लोक ४९।
३ 'अणुभाष्य' चतुर्थ अध्याय चतुर्थपाद सूत्र ९।
४ भक्ति-रसामृत-सिंधु पूर्व विभाग, लहरी २ श्लो० ५।
५. 'अणुभाष्य' पृ० ११४।
६ 'सिद्धांत मुक्तावली' षोडश ग्रन्थ भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो० १८, पृ० ३१।

अंगोंवाली नवधा-भक्ति[७] करने का उपदेश दिया है। ऐसा करने से प्रेम की वह पूर्णता आती है जिससे भगवद्धर्म प्रादुर्भूत होते हैं[८]। कारण यह है कि सूरदासादि ने भगवान को प्रेममय ही माना है जो राव-रंक, नर-नारी, सभी के प्रेम का स्वीकार करता है और केवल प्रेम के कारण ही जन्म लेता तथा अनेक लीलाएँ करता है[१०]। उनकी सम्मति में, प्रेम केवल प्रेम से ही उपजता है। सच्चे प्रेम से ही संसार बँधा है, उसी से परमार्थ, और यहाँ तक कि, गोपाल भी मिल जाते हैं[११]। नंददास ने भी प्रेम की अनन्यता पर बल देते हुए कहा है कि वह एक के प्रति ही होता है, गंधी के सौंदे की तरह जन-जन के हाथ नहीं बिकता[१२]।

७ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥
—'श्रीमद्भागवत' सप्तम स्कंध अ ५, श्लो २३, २४।

८.क 'तत्त्वदीप निबंध', शास्त्रार्थ प्रकरण श्लो ५३।
ख 'चतुःश्लोकी' 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो ४।
ग 'बाल-बोध' 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो १६।

९. 'जलभेद', 'षोडश ग्रन्थ', भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लो १।

१० क प्रीति-बस स्याम है राव रंक कोउ, पुरुष के नारि नहिं भेदकारी।
प्रीति-बस देवकी-गर्भ लीन्हौ बास, प्रीति कैं हेत ब्रज बेष कीन्हौं।
प्रीति कैं हेतु जसुमति-पय पान कियौ प्रीति कैं हेतु अवतार लीन्हौ।
प्रीति कैं हेतु बन धेनु चारत कान्ह प्रीति कैं हेतु नँद-सुवन नामा।
प्रीति कैं हेतु सुरज-प्रभुहिं पाइयै प्रीति कैं हेतु दोउ स्याम स्यामा—सा २ १७।

ख प्रीति के बस्य हैं मुरारी।
प्रीति के बस्य नटवर सुभेषहिं धरयौ प्रीति बस कारज गिरिराजधारी।
प्रीति के बस्य ब्रज भए माखन चोर, प्रीति के बस्य दाँवरि बँधारे।
प्रीति के बस्य गोपी-रमन नाम प्रिय, प्रीति के बस्य जन-धाम स्वामी—सा २ १८।

११ प्रेम प्रेम तैं होइ प्रेम तैं पारहिं जइयै।
प्रेम बँध्यौ संसार प्रेम परमारथ लहियै।
साँचौ निहचै प्रेम कौ जीवन मुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ जाते मिलैं गोपाल—सा ४ ६५।

१२. प्रेम एक इक चित्त सों एकहिं संग समाइ।
गंधी को सौदो नहीं जन जन हाथ बिकाइ—नंद रूप पृ १७।

भक्ति के उक्त नौ प्रकारों में से प्रथम छह 'कृत्य' हैं और अंतिम तीन हैं 'भाव'। 'कृत्यों' में प्रथम तीन का संबंध ईश्वर के नाम और लीला-रूपों से, और अंतिम तीन अर्थात पाद-सेवन, अर्चन और वंदन का संबंध उनके विग्रह-स्वरूपों से है। दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन भावों के साथ-साथ वात्सल्य और मधुर भावों से भी भगवान की उपासना का वल्लभ-संप्रदाय में महत्व है जिसको सम्मिलित रूप से 'प्रेमरूपा' या 'प्रेमलक्षणा' भक्ति कहा गया है। सारावली में भक्ति के इन दसों प्रकारों का उल्लेख है[१३] और 'परमानंदसागर' में श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रह्लाद, पाद-सेवन में कमला अर्चन में पृथु, वंदन में सुफलक-सुत, दास्य में हनुमत, सख्य में अर्जुन, आत्म-समर्पण में बलि और प्रेमासक्ति में गोपियों को आदर्श-स्वरूप बताकर 'दसधा' भक्ति का उल्लेख किया गया है[१४]। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति के प्रथम नौ प्रकारों से अधिक महत्व 'प्रेम-लक्षणा' का मान कर उसकी आदर्शस्वरूपा गोपियों को प्रेम की ध्वजा'[१५] कहा है। सूरदास की सम्मति में बिना हरि-कृपा के 'प्रेमाभक्ति' नहीं होती[१६] और नंददास का मत है कि भगवान अतुलित प्रेमभाव से ही वश में होते हैं[१७]। नवधा

१३. स्रवन, कीरतन स्मरन पादरत अरचन बंदन दास।
सख्य और आत्मा निवेदन प्रेम लच्छना जास—सारा ११६।

१४ तातें 'दसधा' भक्ति भली।
भिन्न भिन्न कीनी तिनके मन तें नेकु न अनत चली।
'स्रवन परीक्षित तरे राजरिषि 'कीर्तन करि सुकदेव।
'सुमिरन' करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी 'पद सेव।
पृथु 'अरचन सुफलक सुत बंदन, 'दास भाव हनुमंत।
सखा भाव' अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवंत।
बलि 'आत्म समर्पन' करि हरि राखे अपने पास।
'अबिरल प्रेम' भयो गोपिनि को बलि परमानंददास—परमा दस ३१४।

१५. गोपी प्रेम की ध्वजा।
जिन गोपाल किये बस अपने उर धरि स्याम भुजा—परमा ८२५।

१६ प्रेम भक्ति बिनु कृपा न होई, सर्व सास्त्र हम हेरयो जोई—सा ४२६८।

१७ क सबै बस्तु जग में तुलित, अतुलित एकै प्रेम।
ऐसें प्रभु बस होत जिहिं सुमहु प्रेम की बात—नंद ग्रंथा पृ १९।

भक्ति के विविध रूप इस प्रेमलक्षणा भक्ति की प्राप्ति के ही साधन हैं जिनके संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार नीचे दिये जाते हैं।

क. श्रवण—'श्रवण' भक्ति से तात्पर्य है परमाराध्य के गुण, नाम, चरित्र आदि का सुनना-सुनाना । सूरदास ने 'श्रवण' भक्ति की महिमा बताते हुए कहा है कि प्राणी के श्रवणों की सार्थकता ईश्वर की सरस कथा का सुधा-रस सदा-सर्वदा पान करने में है । इसी प्रकार हरि-लीला सुनने-सुनाने का फल 'हरि-भक्ति की प्राप्ति' और भवसागर से मुक्ति आदि बताया गया है । अपने परमाराध्य के गुण सुनना सूरदास को सदैव ही अत्यंत प्रिय लगता है[२१]। एक पद में सूरदास ने हरि-लीला सुनने-सुनाने की तुलना में अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति को भी तुच्छ बताया है[२२]। परमानंददास भी 'नाऊँ उचार' को मंगलकारी[२३] कहकर कथा-श्रवण के रस का वरदान चाहते हैं[२४]। नंददास ने श्रवण-रस' में 'मस्त' लोगों को अमृतपान-सा आनंद मिलने की बात कही है[२५] और 'रास-लीला' के सुनने-सुनाने से प्रेमभक्ति पाने का स्पष्ट उल्लेख किया है[२६]। छीतस्वामी भी लाल की लीला गाने-सुनने में

ख नित्य आत्मानंद, अखंड सरूप उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा नंद सिद्धांत, पृ १६१।
१८. श्रीहरि भक्ति-रसामृत-सिंधु' पूर्व विभाग लहरी २, श्लो १२।
१६ स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा रस पावै—सा २-७।
२ क जो यह लीला सुनै-सुनावै सो हरि भक्ति पाय सुख पावै—सा में, पृ ६६।
ख जो यह स्तुति सुनै-सुनावै, सूर सो ज्ञान-भक्ति को पावै—सा में, पृ ५६५।
ग. सूर कह्यौ भी मुख उच्चार करै-सुनै सो तरै भव पार—सा में पृ ५६५।
२१ अंग-अंग-प्रति-छबि तरंग-गति सूरदास क्यों कहि आवै—सा १-६१।
२२ रास-रस-लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै सुनै मुख स्रवननि तिहि चरननि सिर नाऊँ।
कहा कहौं वक्ता स्रोता फल इक रसना क्यौं गाऊँ।
'अष्टसिद्धि नवनिधि सुख-संपति लघुता करि दरसाऊँ'—सा ११७८।
२३. मंगल माधौ नाऊँ उच्चार—परमा ५८७।
२४ यह माँगौं संकरषन बीर।
स्रवन देउ तौ हरि-कथा-रस ध्यान देहु श्री स्याम सरीर—परमा १ ।
२५. अभी कहाँ कान्हर कथा मत्त रहत सब लोग—नंद मान पृ ६५।
२६ जो यह लीला गावै चित दै सुनै-सुनावै।

परम सुख मिलने की बात कहते हैं[२७]।

ख कीर्तन—'कीर्तन' से तात्पर्य है इष्टदेव के नाम, गुण, उसकी लीला आदि का उच्च स्वर से गान करना[२८]। 'श्रीमद्भागवत' में इस प्रकार की भक्ति का बड़ा माहात्म्य बताया गया है[२९]। अष्टछापी कवि भी अपने आराध्य की लीला का गान करने की ही बात कहते हैं जिसमें उन्हें परम सुख मिलता है[३०]।

ग स्मरण—'स्मरण' से आशय है भगवान के रूप गुण, लीला आदि के ध्यान और चिंतन से[३१]। इससे भक्त का मन हर समय प्रभु में ही लीन रहता है। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'स्मरण भक्ति की आवश्यकता बताते हुए उसकी महिमा का बखान किया है[३२]। परमानंददास यशोदानंदन का भाँति-भाँति चिंतन

प्रेम भक्ति सो पावै, यह सब के जिय भावै—नंद दास, पृ० १८२।

२७ लीला लाल गोवर्धन धर की।
गावत सुनत अधिक सुख उपजै रसिक कुँवरि पिय राधावर की—कृष्ण दास ११।

२८. 'श्रीहरि भक्ति-रसामृत सिंधु', पूर्व विभाग, लहरी २, श्लो २६।

२९ क अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते।
—'श्रीमद्भागवत' तृतीय स्कंध, अ ३३ श्लो ७।

ख कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
—'श्रीमद्भागवत' द्वादश स्कंध अध्याय ३ श्लो ५१।

३० क. जो सुख होत गुपालहिं गाये।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हें, कोटिक तीरथ न्हाएँ—सा २-६।

ख माई! गिरिधर के गुन गाऊँ।
मेरे तो व्रत यहै निसिदिन और न रुचि उपजाऊँ—कुंभन २२६।

ग. हरि जू की लीला कहि न गावत।
राम कृष्ण गोविंद छाँड़ि मन और बकै बहा पावत—परमा ८६६।

घ आनि बिसंभर हाथिनी लो बाद न गावै—परमा ८७।

ङ मेरे तो गिरिधर ही गुन गान—कृष्ण दास १५२।

च गाऊँ गुन गोपाल लाल के अष्ट याम ही ढरिए—गोविं ५५८

३१ 'श्रीहरि-भक्ति-रसामृत सिंधु' पूर्व विभाग, लहरी २ श्लो ३३।

३२.क. हरि हरि हरि हरि, सुमिरन करौ। आपे पलकहुँ जनि बिसरौ—सा १ १।

ख नरहरि नरहरि, सुमिरन करौ। नरहरि-पद नित हिरदय धरौ—सा ७-२।

करते[३३] और सदैव उनकी मनमोहिनी मूर्ति तथा परम सुखदायिनी लीलाओं की सुधि आने की बात कहते हैं[३४]। कुम्भनदास[३५] और गोविंदस्वामी के नयनों से प्रियतम की मूर्ति कभी नहीं टलती[३६]। छीतस्वामी भी गोपाललाल का स्मरण करने का आदेश देते हैं[३७]।

नवधा भक्ति के प्रथम तीन रूपों अर्थात श्रवण कीर्तन तथा स्मरण के लिए भगवान के 'नाम' की आवश्यकता होती है जिसे सूरदास ने संसार-सागर से पार जाने की 'नौका' बताया है[३८] और परमानंददास 'नाम' को कल्पद्रुम-सा वरदायक कहते हैं[३९]।

४ पाद-सेवन—'पाद-सेवन' का तात्पर्य आराध्य की चरण-सेवा से है। अतः स्वामी के लिए श्रद्धाभाव से समर्पित किये गये सेवक के व्यवहार 'पाद-सेवन' के अंतर्गत आते हैं[४०]। इसी से सूरदास ने नंदनंदन के चरणों का आश्रय लेने का उपदेश दिया है[४१] और परमानंददास माधव के महल में उनकी टहल करते रहने में ही जीवन की सफलता समझते हैं,[४२] क्योंकि उनकी दृष्टि में मदनगोपाल की

३३ हरि हरि हरि, सुमिरौ सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई—सा मैं, पृ ३६।
३३ जहि जहि चरन-कमल माधौ के तहीं तहीं मन मोर।
चितन करों जसोदा-नंदन मुदित साँझ अरु भोर—परमा ८४६।
३४ हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमलनैन मनमोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै—परमा ५६४।
३५. कहा करौं वह मूरति मेरे जिय तें न टरई।
सुंदर नंद-कुँवर के बिछुरें निसि दिन नींद न परई—कुम्भन २१४।
३६. मोहन नैनन तें नहीं टरत।
बिनु देखें तलावेली सी लागत देखत मन जु हरत—गोविं १४६।
३७ सुमिरि मन गोपाललाल सुंदर अति रूप-जाल—छीत ११२।
३८ भव-अंबोधि, नाम-निज नौका, सुरहिं लेहु चढ़ाइ—सा १२५५।
३९ भगत-बछल ऐसो 'नाम-कल्पद्रुम बरदायक' परमानन्ददास—परमा १७४।
४० 'सिद्धांत रहस्य' 'पौष्य मन्त्र' भट्ट रमानाथ शर्मा शास्त्री ७ ८।
४१ इहिं बिधि कहा घटैगी तेरौ ?
नँदनंदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ—सा १२६६।
४२ क बने माधौ के महल।

सेवा मुक्ति से भी मीठी है[४३]। नंददास, छीतस्वामी आदि अष्टछापी कवियों ने भी गुरु की चरण-सेवा की कामना व्यक्त की है[४४]।

क अर्चन—'अर्चन' से आशय श्रद्धापूर्वक आराध्य की परिचर्या, सेवा, पूजा आदि से माना जाता है[४५]। देव-विग्रह को स्नानादि कराने के पश्चात्, चंदन, पुष्प, धूप दीप और नैवेद्य समर्पित करके, परिक्रमा करना आदि 'अर्चन' भक्ति के अंग हैं[४६]। इसका संपादन करने पर लौकिक संपत्तियों के साथ-साथ स्वर्ग तथा मोक्ष की भी प्राप्ति संभव है[४७]। अष्टछापी कवियों में सूरदास का भगवान के विराट रूप की आरती,[४८] परमानंददास का मंगला आरती[४९] और छीतस्वामी का यशोदा द्वारा की गयी 'लाल की आरती'[५०] का वर्णन 'अर्चन' भक्ति से ही संबंध रखता

परमानन्ददास तहाँ करत फिरत टहल—परमा ७८९।

ख 'करत महल में टहल' निरंतर श्रम भाय सब बीति—परमा ८९८।

४३ 'सेवा मदन गोपाल की' मुक्तिहू तें मीठी—परमा ८५१।

४४ क प्रात समय श्रीवल्लभ-सुत को पुन्य पवित्र विमल जस गाऊँ।
 यहीं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद उच्छिष्ट पाऊँ।
 नंददास यह माँगत हो श्रीवल्लभ-कुल को दास कहाऊँ—नंद परि १६७।

ख हम तो श्रीविट्ठलनाथ उपासी।
 सदा सेवौं श्रीवल्लभ-नंदन कहा करौं जाइ कासी—छीत ४१।

४५ क श्रीहरि भक्ति-रसामृत सिन्धु पूर्व विभाग लहरी २ श्लो २०।

ख भक्ति-वर्द्धिनी, षोडश ग्रन्थ मदु रमानाथ शर्मा पृ ७२।

४६ पूजा के 'षोडशोपचार' ये हैं—आवाहन आसन अर्घ्य, पाद्य, आचमन मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभूषण यज्ञोपवीत गंध पुष्प नैवेद्य, तांबूल परिक्रमा और वंदना।

४७ स्वगापवर्गयो: पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम्।
 सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।
 श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध उत्तरार्द्ध अध्याय ८१ श्लो १९।

४८ हरि जू की आरती बनी।
 अति विचित्र रचना रचि राखी परति न गिरा गनी—सा २ ८।

४९ मंगल आरती कर मन मोर अरम मिटा बीती भयो भोर।
 मंगल बाजत झालर ताल मंगल रूप उठ नँदलाल।
 मंगल धूप दीप कर जोर मंगल सब गावत घोर।
 मंगल उदयो मंगल रास मंगल पण परमानँददास—परमा ५९।

५० क आरती करति जसुमति नृदित लाल की।

है। गोवर्द्धन-पूजा-जैसे प्रसंगों में प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने 'अर्चन' या पूजन के 'षोडस उपचारों' का विस्तार से वर्णन किया है[५२]।

च वंदन—'वंदन' से तात्पर्य आराध्य की सविनय स्तुति करके उनको प्रणाम करने से है जो 'षोडसोपचारों' की ही एक क्रिया है। सूरदास,[५३] परमानंद दास,[५३] कृष्णदास,[५४] छीतस्वामी[५५] आदि प्राय: सभी अष्टछापी कवियों ने अपने इष्टदेव की वंदना की है। नंददास की वंदना का उल्लेख उनके कई ग्रंथों में हुआ

दीप अद्‌भुत जोति, प्रगट जगमग होति,
बारि बारति फेरि अपनें गोपाल कौं—छीत ११३।

ख आरती करति जसुमति निरखि ललन मुख अति ही आनंद भरि प्रेम भारी।
कनक थारी, जटित रत्न मुक्ता खचित, दीप धरि हुलसि मन वारि वारी।
—छीत ११४।

५१ सबै गोप आये सबै वृषभान गोप सँग लाय।
बिप्र बुलाय नन्द जू पूजन कौं गिरिराय।
पूजन को आरम्भ कियो 'षोडस उपचारें'।
धौरी दूध अन्हाय बहुरि सो गंगाजल ढारें।
केसर चंदन अरगजी उबटन कियो बनाय।
मानसी गंगा नीर सों स्नान कराव नँदराय।
कुंकुम अच्छत तिलक कियो माला पहिराय।
पीताम्बर उर हार गोवर्धन सबही उढ़ाय।
फुलवारी आगे भरयौ धूप दीप तहि बार।
सुखसागर सर्वांगनि भयो उमँग करि बलिहार।
करवाय आचमन सुगंध बीरा जु धराये।
बार बार करि आरती गीत मंगल जु गवाये—परमा २७१।

५२ चरन कमल बंदौं हरि राई—सा ११।

५३ क चरन-कमल बंदौं जगदीस के—परमा १।

ख माधौ हम उरगाने लोग।
प्रात समै उठि नाऊँ चरन मैं पाऊँ उचित उपभोग।
× × ×
अपने चरन-कमल की सेवा इतनी कृपा मौहि कीजै—परमा ८७५।

५४ बंद जग तरन घनस्याम बर—कृष्ण हस्त ७२।

५५ नवाऊँ सीस रिझाऊँ लालै—छीत हस्त ५२।

है[५६] और कुंभनदास तो कृष्ण के साथ-साथ उनके पीतांबर, वृन्दावन-विहरण आदि की भी स्तुति करते नहीं अघाते[५७]।

ङ दास्य—दीनतापूर्वक स्व-दोषों को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करके परमप्रभु से शरण और संरक्षण में ले लेने की सविनय याचना करना आदि 'दास्य भक्ति' है[५८]। सूरदास को जब कृष्ण का 'दास' कहा जाता है तब उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है[५९]। प्रभु को सर्वव्यापी सभी मानते हैं, परंतु उनका संबोधित करके, अपने दोषों का उद्घाटन करते हुए, अपने को 'पाप का जहाज,[६०] पतितनि सिरताज'[६१]

---

५६ क नमो-नमो आनन्दघन सुन्दर नंदकुमार।
रसमय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार—नंद, रास, पृ १६।
ख तममामि पद परम गुरु कृष्ण कमल-दल नैन।
जगकारन करुनार्णव, गोकुल जिन को ऐन—नंद, मान, पृ ६१।
ग. जु प्रभु जोति-मय, जगतमय कारन, करन, अभेव।
विघन-हरन सब सुभ-करन नमो नमो तिहिं देव—नंद अनेका पृ ९८।
घ प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूप-उपावन रूपनिधि नित्य कहत कवि ताहि—नंद, रूप पृ १।
ङ जै जै जै श्रीकृष्ण रूप, गुन कर्म अपारा।
परमधाम जग-धाम, परम अभिराम उदारा—नंद दशम पृ १८१।
च बंदन करौं कृपानिधान, श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी—नंद रास, पृ १५५।
५७ जयति-जयति श्री हरिदास वर्य-धरन
वारि-वृष्टि निवारि पौर-धारति टारि देव-पति-अभिमान भंग करन।
जयति पट पीत दामिनि रुचिर घर मृदुल अंग साँवल सजल जलद बरने।
कर अधर वेनु धरि गान कलरव सुरम्य सहज ब्रज-जुवतिजन चित हरने।
जयति वृन्दाविपिन-भूमि डोलनि, अखिल लोक-वंदिनि अंबुज चरने।
तरनि-तनया-विहार नंद गोप-कुमार दासकुंभन सरन सरनि वरन।
—कुंभन १।
५८. 'कृष्णाश्रय' शोधग्रंथ भट्ट रमानाथ शर्मा, पृ ८८-९१।
५९ सब कोउ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिय—सा १।१७१।
६० विनती करत मरत हा लाज।
नख-सिख लौं मरी यह देही ह 'पाप को जहाज'—सा १-९६।
६१ पारौं भयौ न आगैं ह्वै है सब 'पतितनि सिरताज'—सा १९६।

आदि कहने का साहस सूर को ही है। इसी प्रकार उन्होंने अपने को 'पतितनि कौ टीकौ',[६२] 'पतित सिरोमनि',[६३] 'महापापी',[६४] 'पतितनि-पतितेस',[६५] 'पतितनि कौ राजा'[६६] 'पतितनि कौ राउ',[६७] 'महापतित'[६८] आदि भी कहा है। परमानंददास ने भी प्रभु का 'पतित-पावन' विरद सुनकर उनकी शरण जाना बताया है[६९] और उनके द्वार पर 'दाद' न मिलने पर दुख व्यक्त किया है[७०]। अन्य अष्टछापी कवियों के दास्यभक्ति-संबंधी पद अभी प्रकाश में नहीं आए हैं।

ज. सख्य—आराध्य के प्रति अंतरंग सखा-जैसा परम प्रेममय परंतु निस्वार्थ भाव रखना 'सख्य-भक्ति' है। श्रीकृष्ण के प्रति यही सखा या मित्रभाव, नंद, गोपादिकों में था जिसके लिए 'श्रीमद्भागवत' में उनको 'धन्य' कहा गया है[७१]। स्वयं अष्टछापी कवि भी 'कृष्ण-सखा' माने जाते रहे हैं। सूरदास को कृष्ण सखा,[७२] परमानंददास को 'तोक'[७३] कुंभनदास को अर्जुन,[७४] कृष्णदास को

६२. प्रभु, हौं सब 'पतितनि कौ टीकौ'।
और पतित सब दिवस चारि के हौं तौ जनमत ही कौ—सा १ ११८।
६३ हौं तौ 'पतित सिरोमनि' माधौ—सा १ ११९।
६४ माधौ जू, मोतैं और न पापी।
घातक कुटिल चबाई, कपटी, महाक्रूर संतापी—सा १ १४।
६५. हरि हौं 'पतितनि-पतितेस'—सा १ १४१।
६६ हरि हौं सब 'पतितनि कौ राजा'—सा १ १४४।
६७ हरि हौं सब 'पतितनि कौ राउ'—सा १ १४५।
६८. हरि हौं 'महापतित' अभिमानी—सा १ १४९।
६९ तातैं प्रभु तेरो मोहिं भरोसो आवै।
'दीनदयाल पतित पावन' जस बेद उपनिषद गावै—परमा ८१२।
७० अभय दीवान प्रगट प्रभु साँचो बिरद कहावै।
कारन कौन दास परमानँद द्वारैं 'दाद न पावै'—परमा ८११।
७१ अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्
—'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध अध्याय १४ श्लो ३२।
७२. 'अष्टछाप' काँकरौली पृ १।
७३ 'अष्टछाप' काँकरौली, पृ ११।
७४ 'अष्टछाप' काँकरौली पृ १९९।

'ऋषभ',[75] चतुर्भुजदास को 'विशाल',[76] नंददास को 'भोज',[77] छीतस्वामी को 'सुबल'[78] और गोविंदस्वामी को 'श्रीदामा'[79] कहा गया है। 'वार्ताओं' में इन अष्ट सखाओं का, अपने आराध्य के साथ विविध क्रीड़ाओं में भाग लेने का उल्लेख भी विस्तार से मिलता है।

अष्टछाप-काव्य में कृष्ण की सख्य भक्ति का रूप चार प्रसंगों में विशेष रूप से वर्णित है। प्रथम प्रसंग है कृष्ण का सखाओं के साथ तरह-तरह के खेल और विनोद का उल्लेख करना जिसका प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने विस्तार से वर्णन किया है। बालसखाओं में जिस प्रकार परस्पर होड़ का भाव रहता है, उसका चित्रण इन कवियों ने विशेष रूप से किया है। सखाओं के साथ खेलते हुए सूरदास के कृष्ण 'श्रीदामा' को अपना प्रतिद्वंद्वी समझते हैं और बलराम के मना करने पर भी दौड़ में उसको हराना चाहते हैं[80]। श्रीदामा भी उनसे दबनेवाला नहीं है और चुनौती देकर उनसे दौड़ने को तैयार है। तब दोनों की दौड़ होती है और श्रीदामा उन्हें जाकर छू लेता है। इस पर कृष्ण सखा से झगड़ा करने लगते हैं[81]। इसी प्रकार आँखमिचौनी खेलते हुए श्रीकृष्ण माता द्वारा भाई बलराम के छिपने का पता बता दिये जाने पर भी उन्हें 'चोर' नहीं बनाते और श्रीदामा को 'छूने' दौड़ते हैं, क्योंकि उसीसे उनकी प्रतिद्वंद्विता है[82]। श्रीदामा यद्यपि यह जानता है कि 'नंद के पूत' होने के कारण वे 'गुसैयाँ' हैं, परंतु खेल में कौन किसका 'गुसैयाँ'—उसमें तो सभी बराबर हैं। कृष्ण के झगड़ा करने पर वह साफ-साफ कह भी देता है कि जाति-पाँति में तुम हमसे बड़े नहीं हो, न हम तुम्हारी 'छाँह' में ही बसते हैं; कुछ गैयाँ अवश्य तुम्हारे यहाँ ज्यादा हैं, शायद इसी से 'अधिकार जता रहे हो' सो यहाँ हम तुमसे दबनेवाले नहीं हैं। 'रुठि' करनेवाले

७५. 'अष्टछाप', काँकरौली, पृ ११।
७६. 'अष्टछाप, काँकरौली पृ ४५७।
७७ 'अष्टछाप' काँकरौली पृ ५२५।
७८. अष्टछाप काँकरौली पृ ५६१।
७९. 'अष्टछाप, काँकरौली पृ ६२१।
८० सूरसागर' दशम स्कंध पद २११।
८१. सूरसागर', दशम स्कंध पद २११।
८२ 'सूरसागर दशम स्कंध पद २४८।

के साथ कौन खेलना चाहेगा ? इतना कहकर सब सखा जहाँ-तहाँ बैठ गये और अंत में हारकर कृष्ण को दाँव देना पड़ा[८३]।

इसी प्रकार गेंद खेलते हुए कृष्ण से जब श्रीदामा की गेंद कालीदह में जा गिरती है तब भी वह लपककर श्याम की 'फेंट' पकड़ता और कहता है कि मेरी गेंद लाकर दो मुझको कोई दूसरा सखा न समझना जो तुमसे दब जाऊँगा [८४]। सब सखाओं के बीच में इस तरह 'फेंट' पकड़ी जाने पर कृष्ण को बहुत बुरा लगता है और वे श्रीदामा से कहते हैं कि 'तनक' सी बात के लिए 'रार' क्यों बढ़ा रहे हो ? तुम्हारी गेंद गयी तो बदले में मेरी ले लो। मेरी बाँह क्यों पकड़ते हो ? जरा छोटे-बड़े का तो ध्यान करो। कहाँ तुम कहाँ मैं [८५]! पर श्रीदामा 'फेंट' नहीं छोड़ता। वह कहता है कि तुम 'बड़े नंद के पूत हो, तुम्हारी बराबरी मैं क्या करूँगा ? परंतु तुम बड़े 'धूत' हो गये हो; सो छुटकारा तुम्हें गेंद देने पर ही मिलेगा[८६]। कृष्ण को सब सखाओं के सामने इस प्रकार 'धूत' कहा जाना और भी बुरा लगता है। तब रिस से काँपते हुए वे कहते हैं कि तू मुँह सम्हाल कर बात नहीं करता, मेरी बराबरी करना चाहता है ! अभी तुझे इस धृष्टता का फल मिलेगा[८७]। इतना सुनते ही श्रीदामा जरा सकपकाया कि कृष्ण ने फेंट छुड़ा ली और दौड़कर कदम पर चढ़ गये[८८]।

बाल-लीला प्रसंग का ही दूसरा चित्र वह है जिसमें कृष्ण अपने सखाओं के साथ वन में दोपहर को 'छाक' खाने बैठते हैं जिसका वर्णन अष्टछाप काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है[८९]। ऐसे अवसर पर कृष्ण को अपने सामने रखे हुए

८३ 'सूरसागर', दशम स्कंध, पद ३४५।
८४ सूरसागर दशम स्कंध पद ५३५।
८५ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद ५३५।
८६ 'सूरसागर दशम स्कंध, पद ५३६।
८७ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद ५३७।
८८ सूरसागर दशम स्कंध पद ५३९।
८९ क सूरसागर दशम स्कंध पद ४६४।
ख औरि मंडली जेमन लागे बैठि कदम की छाँह—परमा ११६।
ग बरसा रितु बन छाँहन लीजे भोजन संग बिरादर—परमा ११७।

'षटरस के पकवान' नहीं भाते और सखाओं के प्रति अपनी प्रीति दिखाने के लिए वे उनके हाथ से और छीन-छीनकर उनका जूठा खाने में बड़ा सुख मानते हैं[१०]। कृष्ण के सखा भी परस्पर दूध, फल और 'चबैने' के लिए झगड़ते हैं[११]। परमानंद दास के सखा इसी प्रसंग में कृष्ण से कहते हैं कि तुम्हारा 'जूठा' दही मुझे बहुत अच्छा लगता है। कृष्ण सब सखाओं की दोनों में दही और देते हैं और कहते हैं कि जिन्हें न मिला हो मेरी हथेली चाट लें। अपने प्यारे सखा के व्यवहार में

क स्याम सुनि हरी भूमि सुखकारी।
  भोजन बाँटि सबनि कों दीजै बिनती लाल हमारी—परमा ६१८।
ख स्याम छाक हर मंडल जोरि जोरि बैठे सब छाक भात दधि ओदन।
  —परमा ६४५।
ग. कर पर पात भात ता ऊपर भिन्न भिन्न बिंजन घर राख।
  बालकेलि सुंदर ब्रजनायक ग्वालनि देत आपही चाख—परमा ६५।
घ. बाँटत छाक गोवर्धन ऊपर बैठत नाना बहु बिधि और।
  हँसि हँसि भोजन करत परस्पर चाखि ले माँगत कौर—चतु १६५।
ङ. गोपीग्वाल सबै मिलि जेंवत मुरलिहि सराहत जाहीं।
  बाँटत बन मोहन दोउ भय्या कर दोना अति सोहैं—कुंभन १७५।
च. भोजन करत नंदलाल, संग लिए ग्वाल-बाल करत बिबिध ख्याल, बंसीबट-छैयाँ।
  पातनि पै धरत भात दधि सिखरन लिए हाथ नोंचत मुखिचात खात, साँवरा
  कन्हैया—छीत ७७।
छ. गोवर्धन गिरि सिंग सिलन पर बैठिकै छाक खात दधि ओदन।
  आसपास ब्रज-बालक मंडली मधिकै हो बल मोहन बैठिकै खात खवात
  प्रेम प्रमोदन—गोविं ५८८।

१० क ग्वालनि कर तें कौर छुड़ावत मुख ले मेलि सराहत जात—सा ४९९।
  ख बैठतउ गावत हैं सारँग की तान कान्ह सखनि के मध्य छाक लेत कर छीन।
  —सा ४९७।
  ग ग्वालनि कर तें कौर छुड़ावत।
  जूठो लेत सबनि के मुख कौ अपने मुख लै नावत।
  षटरस के पकवान धरे सब तिनमें रुचि नहिं लावत।
  हा-हा करि करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत—सा ४९८।
  घ यह सुख स्याम तिहारे सँग बिन और कतहुँ नाप।
  धन्य धन्य ग्वाल-बाल हरि जिनके कौरें ले ले खाप—परमा ६११।
११ एक दूध फल एक झगरि चबेना लेत—सा ४९७।

परम संतुष्ट हो सखा कहते हैं कि ऐसा स्वाद हमें कभी नहीं मिला[१२]। कुंभनदास ने अघाकर भोजन करने के पश्चात् सब सखाओं में साथ-साथ बीरा बाँटे जाने की भी बात कही है[१३]।

सख्य-भक्ति-संबंधी दूसरा प्रसिद्ध प्रसंग विप्रवर सुदामा का है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों में सूरदास ने विस्तार से किया है। सुदामा की पत्नी अपने पति के कृष्ण-जैसे सखा और 'मीत' होने की बात जानकर उन्हें द्वारका जाने की प्रेरणा देती है[१४]। और कृष्ण अपने 'बालमीत' और 'बालसखा' को पहचानकर आतुरता से मिलते हैं[१५]। घर लौटने पर पत्नी उनसे पूछती है कि तुम्हारे 'बाल-सँघाती', तुम्हारे 'कुचील' वसनधारी 'छीन गात' को देखकर तुमसे कैसे मिले[१६]? उत्तर में सुदामा कृष्ण की 'मित्राई' के आदर्श व्यवहार की प्रशंसा करते नहीं थकता[१७] और तभी कवि सूर भी भावविभोर हो अपने आराध्य की सखा के प्रति

१२. आज दधि मीठो मदन गोपाल।
'भावत मोहिं तिहारो झूँठो' चंचल नयन विसाल।
आने पात बनाय दोना दिये सबनि को बाँट।
'किन नहिं पायो सुनो रे भैया भरी हमेरी बाट।
बहुत दिननि हम बसे कुमुदबन कृष्ण, तिहारे साथ।
ऐसो स्वाद हम कबहुँ न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ'—परमा ६४३।

१३. सुबल, तोष मधुमंगल-परिवृत अर्जुन भोज, वृषु सहित
हरि समीप श्रीदामा कोरि भरि।
'बाँटत हैं बीरा' ग्वाल गोवर्धन बरन बाल
कुमनदास बरखा रितु बरसत भरि—कुंभन १७९।

१४ क. 'जाके सखा स्यामसुंदर-से, श्रीपति सकल सुखनि के दात—सा ४२२६।
ख कंत सिधारो मधुसूदन पै सुनियत हैं 'वे मीत तुम्हारे'।
'बाल-सखा' अरु विपति-विभंजन संकट-हरन मुकुंद मुरारे—सा ४२२७।

१५.क मन मैं अति आनंद कियौ हरि 'बाल-मीत पहिचान'।
धाए मिलन नगन पग आतुर सूरज प्रभु भगवान—सा ४२२७।
ख दूरहिं तैं देख्यो बलबीर।
अपने बाल सखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर—सा ४२२८।

१६ कैसैं मिले पिय स्याम सँघाती।
कहिये कंत कौन विधि परसे, बसन कुचील छीन अति गाती—सा ४२४।

१७क ऐसैं और कौन पहिचाने।

प्रीति देखकर गा उठता है कि ऐसी प्रीति पर मैं 'बलि जाता हूँ'[९८]। नंददास ने भी सुदामा और उनकी पत्नी की तरह, कृष्ण का भजन करने पर सुखी होने की बात लिखी है[९९]।

सख्य-भक्ति का तीसरा उदाहरण अर्जुन की भक्ति में मिलता है। स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि तेरी भक्ति से संतुष्ट होकर, तेरा हित करने के लिए ही, मैं तेरा रथ हाँकता हूँ[१]। सूरदास के दो-एक विनय पदों में भी, सख्य-भक्ति की झलक मिलती है जिनमें 'सात पीढ़ियों का पतित' अपने आराध्य को चुनौती

सुनु सुंदरि, या दीनबंधु बिन 'कौन मिताई मानै'।
कहँ हम कृपन कुचील कुदरसन कहँ जदुनाथ गुसाईं।
भेंटे हृदय लगाइ प्रेम भरि, उठि अग्रज की नाईं।
निज आसन बैठारि परम रुचि, निज कर चरन पखारे।
पूछी कुसल स्याम-घन-सुंदर सब संकोच निवारे—सा ४२४१।

ख हरि बिनु कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुनि सुंदरि हरि-मिलन न मन बिसरै'—सा ४२४२।

ग और को जानै रस की रीति।
कहँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति'—सा ४२४३।

घ. बिनु गुपाल और मोहि ऐसो को सँभारे।
आपु हँसत दौरि मिले उर तैं नहिं टारे।
छीन अंग कीनें बसन दीन मुख निहारे।
मम तन रज परसिहि लगी, पीतपट सु झारे।
सुन्दर मन आसन दै स्व-हस्त पग पखारे—सा ४२४४।

९८. 'ऐसी प्रीति की बलि जाउँ'।
सिंहासन तजि चले मिलन कौं, सुनत सुदामा नाउँ।
अंकमाल दै मिले सुदामा अर्धासन बैठारे—सा ४२३०।

९९ बहु बिभूति हरि द्विज को दीनी दया भक्ति पतिनी सुभ कीनी।
ऐसैं जो कोऊ हरि कों भजै हरि उदारता तैं सुख सजै।
—नंद, सुदामा चरि, पृ ८८४।

१ हम भक्तनि के भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मरी यह ब्रत टरत न टारे।
रंगि बिचारि भक्त-हित-कारन हाँकत हो रथ तरे—सा १-२७२।

देकर उसका उद्धार करता है और उनको 'बिरद बिनु करने का भ्रम भरता है'[1]। ऐसे पदों में सख्य-भक्ति का चौथा रूप देखा जा सकता है।

न आत्मनिवेदम—अनन्य भाव से परमाराध्य की प्रार्थना करना और उसकी शरण में जाना 'आत्मनिवेदन' है जिसके लिए 'प्रपत्ति' शब्द भी प्रयुक्त होता है। 'प्रपत्ति' के कहीं छह अंग, यथा अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्ववरण अर्थात् प्रभु की अनंत गुप्त और समर्थ शक्तियों से अपने को अंगीकार कर लेने की प्रार्थना करना, रक्षा में विश्वास, आत्मसमर्पण और कार्पण्य[2] तथा कहीं सात, यथा दीनता, गर्व-त्याग, भय-दर्शन अर्थात् विभिन्न कारणों से भयभीत होकर प्रभु की शरण जाना मन की भर्त्सना, मनोराज्य में विचरण का सुख आश्वासन और विचारणा अर्थात् स्व-पापों का स्मरण और पश्चाताप[3] बताये गये हैं। अष्टछापी कवियों के काव्य से उक्त सभी भावों के उदाहरण निकाले जा सकते हैं; विशेषकर सूरदास के काव्य में उनके अनेक उदाहरण मिलते हैं[4]। परमानंददास ने उक्त

१ आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
के तुमहीं के हमहीं माधौ, अपने भरोसे लरिहौं।
हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं तुम्हें बिरद बिन करिहौं—सा १।१३४।

२. आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।
—'पांचरात्र लक्ष्मीतन्त्र संहिता' से 'कल्याण' के 'साधनांक' में उद्धृत पृ १।

३ डा मुंशीराम शर्मा, भारतीय साधना और सूर-साहित्य पृ १ १।

४ क अब-अब दीननि कठिन परी।
जानत हौं करुनामय जन कौं तब-तब सुगम करी—सा १ १६।
ख काकौं दीनानाथ निवाजैं।
भवसागर मैं कबहुँ न झूकै अभय निसाने बाजैं—सा १ ३३।
ग कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन सुख निधान जाकी मौज घनी।
अर्थ धर्म अरु काम मोच्छ फल चारि पदारथ देत गनी—सा १ ३९।
घ प्रभु कौं देखौ एक सुभाइ।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान—सा १-९७।

भावों में से कुछ का ही वर्णन किया है[७] और अष्टछाप के अन्य कवियों ने उक्त भावों में से एक-दो का ही वर्णन करके 'आत्मनिवेदन'-भक्ति का निर्वाह कर लिया है[८]।

म वात्सल्य-भक्ति—प्रभु को वत्स-भाव से देखना 'वात्सल्य-भक्ति' है जिसके प्रति महाप्रभु वल्लभाचार्य का विशेष आकर्षण था। शिशु को यों तो सभी वयस्क संबंधी वत्स-भाव से देखते हैं, परंतु उसका जैसा शुद्धतम और आवेशपूर्ण अनुभव माता का हृदय करता है, वैसा अन्यों का नहीं। अष्टछापी कवि भी इस तथ्य से भली-भाँति अवगत जान पड़ते हैं। इसी से उनके काव्य में यशोदा के मातृहृदय में उमड़नेवाले वात्सल्य-भाव का जितना विशद चित्रण मिलता है, उतना अन्य संबंधियों, यहाँ तक कि पितृहृदय के भाव का भी नहीं मिलता। 'वात्सल्य

७ अबे पै तुमहीं बिरद बिसारो।
तौ क्यों कहीं जाइ करुनामय, कृपिन करम को मारो—सा १ १५७।

८. रे मन मूरख जनम गँवायो।
करि अभिमान विषयरस गीध्यो स्याम-सरन नहिं आयो—सा १ ३१५।

६. दीन को दयाल सुन्यो अभयदान-दाता।
साँची बिरदावलि, तुम जग के पितु-माता—सा १ १२१।

५.क तुम्हारी भक्त सब ही को सिंगार।
जो कोऊ प्रीति करै पद-अंबुज उर मंडत निर्मोलक हार—परमा ८४४।

ख तुम तजि कौनि सनेही कीजै।
सदा एकरस को निबहत है ताको चरन-रज लीजै—परमा ८५६।

ग जाको माघी करै सहाइ।
हस्त-कमल की छाया राखै बार न बाँको जाइ—परमा ८६७।

घ जब गोबिंद कृपा करैं तब सब बनि आवै।
सुख संपति आनन्द घनो घर बैठे पावै—परमा ८६६।

ङ बड़ी है कमलापति की ओट।
सरन गए तें पकरि न आप किये कृपा की कोट—परमा ८७४।

६.क तुम-बिनु को ऐसी कृपा करै!
सेव सरन ततछिन करुनानिधि त्रिबिध संताप हरै—कुंभन ८ १।

ख समुझि न परति मोहिं या मन की।
एतै मान बिरस-रस राँच्यो निसि दिन चित रहनि पर-धन की—चतु १५४।

ग. श्रीनाथ सुमिरि मन! अरे।
मण निहाल भक्त प्रभु पाए जा पर कृपा-दृष्टि करि हरे—छीत २ १।

भक्ति' के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने दो दोनों का चित्रण बड़े विशद रूप में किया है, पर अन्य कवियों ने प्रथम की ओर ही ध्यान दिया है और वह भी सूरदास की तरह अत्यंत भावावेश में नहीं; अस्तु।

क *वात्सल्य-भक्ति का संयोग-पक्ष*—सूरदास के काव्य में वात्सल्य-भक्ति के अनेक मनोहर उदाहरण मिलते हैं। शिशु के जन्म पर ही माता की उमंग का अंग में न समाना [७] उसका 'सिसु-बदन' देखकर अपने 'पुन्यों' का स्मरण करना,[८] उसकी छवि पर बड़ी प्रसन्नता से 'बलि' जाना, उसके घुटनों चलने, दूध के दाँत देखने, कमल-मुख के बोल सुनने आदि की कामना करना, उसके कल्याण के लिए कुल-देवता को मनाना, पुत्र के सब रोग-भोग अपने ऊपर लेने को सदा प्रस्तुत रहना[११]

७ आनँद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति—सा १०-१।

८. जसुमति अपनौ पुन्य बिचारै। बार-बार सिसु बदन निहारै—सा १०-५६।

९ जननी देखि छबि बलि जाति—सा १०-७१।

१० क नँद-घरनि आनँद भरी सुत स्याम खिलावै।
 कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै।
 कबहिं दँतुलि है दूध की देखौं इन नैननि।
 कबहिं कमल-मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि—सा १०-७४।

 ख नान्हरिया गोपाल लाल तू बेगि बड़ौ किन होहि।
 इहिं मुख मधुर बचन हँसि कैधौं, जननि कहै कब मोहिं।
 यह लालसा अधिक मेरैं जिय जो जगदीस कराहिं।
 मो देखत कान्हर इहिं आँगन पग है धरनि धराहिं।
 खेलहिं हलधर संग रंग रुचि नैन निरखि सुख पाऊँ।
 छिन छिन छुधित जानि पय कारन हँसि-हँसि निकट बुलाऊँ—सा १०-७५।

 ग. जसुमति मन अभिलाष करै।
 कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै।
 कब द्वै दाँत दूध के देखौं कब तोतरैं मुख बचन झरै।
 कब नंदहिं बाबा कहि बोलै कब जननी कहि मोहिं ररै।
 कब मेरौ अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसौं झगरै।
 कब धौं तनक-तनक कछु खैहै अपने कर सौं मुखहिं भरै।
 कब हँसि बात कहैगौ मौसौं जा छबि तैं दुख दूरि हरै—सा १०-७६।

११ ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
 बाल गोपाल लगौ इन नैननि रोग-बलाइ तुम्हारी—सा १०-८१।

आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनसे मातृहृदय के वात्सल्य-भाव का स्पष्ट परिचय मिलता है।

इसी प्रकार परमानंददास की यशोदा भी पुत्र पर 'बलि जाती',[१२] उसका मुख-कमल देखकर अपना 'पुन्य विचारती',[१३] पुत्र के मुख से 'मैया' पुकारे जाने, ब्रज की गलियों में उसके घूमने, गाय दुहने के लिए बछड़ा खोलने और ग्वाल-बालों के साथ खेलने की कामना करती है[१४]। परमानंददास के एक दूसरे पद में यशोदा ने सखियों से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा है कि कब मैं अपने लालन को भूमि पर पैर रखते देखूँगी, 'मैया' पुकारते सुनूँगी, कब वे गोरज-लिपटे तन से दूध-दही के लिए मुझसे दौड़कर मिलेंगे। कब वे स्वयं गाय दुहेंगे और कब नंदराय उन्हें गैयाँ चराने का काम सौंपेंगे[१५]। इस प्रकार अभिलाषा करनेवाली माता यशोदा पुत्र की 'बलाय' स्वयं लेने को तत्पर रहती है[१६]।

चतुर्भुजदास की यशोदा भी सखियों से कहती हैं कि पुत्र की जो इच्छा हो, से लेने दो, बदले में मुझसे चौगुना दही-माखन ले लो। कुलदेव की बड़ी आराधना

१२. हलरो दुलरावै माता। बलि-बलि जाउँ घोष सुखदाता—परमा ४२।
१३ जसुमति अपनो पुन्य बिचारे बार-बार मुख कमल निहारे—परमा ४२।
१४ वा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलैगो।
ता दिन अति आनंद भिनोंरी माई, छनक मुनक ब्रज गलिनि में डोलैगो।
प्रात ही खिरक गाय दुहिब को चार बंधन बछरुवा के खोलैगो।
परमानंद प्रभु नवल कुँवर मेरो ग्वालनि के संग बन में किलोलैगो
—परमा ६८।
१५. एक समय जसुमति सखियनि सों बात कहत मुसकाय।
मो देखत कब धौं मेरे लालन भूमि परैगो पाँय।
पुनि मैया मोसों कब कहिहै कुँवर तनक हँसि धाय।
भरि है दूध दही के कारन तन गोरज लपटाय।
खरिक दुहावन मोय साथ ही आय मिलेंगे धाय।
कबधौं, चीस होइगो कबहू लालन दुहिंगे गाय।
सौंपिहैं सुत चरावन गैयाँ पुनि सजनी नंदराय।
यह अभिलाष करति जसुमति जिय परमानंद बलि जाय—परमा ६०।
१६ तेरी लाल की मोहि लागो बलाय।
बाल गोपाल जमुनवा मेरे खेलो आँगन आय—परमा० ७१।

से पालने में झूलता बालक देखने का सौभाग्य मुझे मिला है; उन्हीं की कृपा से घुटनों भी चलेगा। जो मेरे लाल को चलना सिखा देगा, उसको मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ। और मेरी बड़ी अभिलाषा मोहन को धेनु चराता देखने की है[१७]। अन्य अष्टछापी कवियों ने बाल-लीला का सामान्य रूप से वर्णन किया है, मातृहृदय-चित्रण का उपर्युक्त-जैसा प्रयास नहीं किया है।

आ वात्सल्य-भक्ति का वियोग-पक्ष—ऊपर जो कुछ कहा गया है वह वात्सल्य के संयोग-पक्ष से संबंध रखता है जब पुत्र माता के सामने होता है। वात्सल्य का दूसरा पक्ष है वियोग का जिसमें दुख की परमावस्था होने पर आंतरिक जगत में प्रति पल प्रियजन का ही ध्यान बना रहता है। यही कारण है कि यशोदा, नंद, गोपी आदि की वियोगावस्था के दुख की कामना वल्लभ-संप्रदायी भक्तजन किया करते हैं[१८]। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने वियोग-वात्सल्य का जितना मार्मिक चित्रण किया है उतना अन्य कवियों ने नहीं। उनकी यशोदा अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् विलाप करती हुई कहती है कि लोग लाल समझाते हैं, परंतु मोहन के मुख के योग्य माखन देखते ही मुझे उनका स्मरण हो आता है। मेरी इतनी ही कामना है कि दिन-रात उन्हें छाती से लगाये खिलाती रहूँ[१९]।

ट मधुर भक्ति—परमाराध्य को 'प्रियतम' मानकर उपासना करना 'मधुर भाव' की भक्ति है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़े विस्तार से किया है।

१७ माई, लैन देहु भो मरे लालहिं मावै।
दधि-माखन चौगुना देऊँगी या सुत के लेखें जाको जितो भावै।
पलना झूलत हुलावेउ घराधों अतन-जतन करि घुटुरुनु धावै।
सर्बसु ताहि देऊँगी जो मेरे नान्हरे गोविंद पाँ पाँ चलन सिखावै।
इहै अभिलाष होत दिन दिन प्रति कब मेरौ मोहन धेनु चरावै।
चतुर्भुजदास गिरिधर पिय इहि रस निरखि निरखि उर नैन सिरावै—चतु १४५।
१८. 'निरोधलक्षण' 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो १।
१९. जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।
निसि-बासर छतिया ले लाऊँ, बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वै हैं, मोहन गोद खिलाऊँ—सा ३३६६।

बल्लभ-संप्रदाय में जिस प्रकार व आठों कवि 'सखा'-रूप में प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार 'सखी' के रूप में भी यथा सूरदास की 'चंपकलता';[२०] परमानंददास को 'चंद्र भागा',[२१] कुंभनदास को 'विशाखा',[२२] कृष्णदास को 'ललिता',[२३] चतुर्भुजदास का 'विमला',[२४] नंददास को 'चन्द्रावली',[२५] छीतस्वामी को 'पद्मा'[२६] और गोविंद स्वामी को 'भामा'[२७] माना गया है। फलस्वरूप ये सभी कवि मधुर-भाव के प्रमुख क्षेत्र की निकुंज की समस्त मधुर लीला का सहज ही अनुभव कर सके अस्तु। मधुर भक्ति के भी दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग। अष्टछापी कवियों ने दोनों का वर्णन विस्तार से किया है।

अ *मधुर-भक्ति का संयोग-पक्ष*—व्रज की गोपियाँ कृष्ण के अनुपम रूप गुण पर अत्यंत मुग्ध होकर उनके प्रति आकृष्ट होती हैं और जहाँ-तहाँ उनका दर्शन करके तो उनकी आसक्ति बहुत बढ़ जाती है। कृष्ण के प्रेम में विभोर राधा को घर-बार नहीं सुहाता और वह कभी हँसती है, कभी बिलखने लगती है[२८]। यही दशा कृष्ण का दर्शन करनेवाली प्रत्येक गोपी की है। नयनों में कृष्ण की मूर्ति समा जाने पर किसी को तन-मदन की सुधि नहीं रह जाती[२९]। हरि-चितवन

२० 'अष्टछाप', कांकरौली पृ १।
२१ 'अष्टछाप' कांकरौली पृ ११।
२२ 'अष्टछाप' कांकरौली पृ १६६।
२३ 'अष्टछाप कांकरौली पृ ११।
२४ 'अष्टछाप' कांकरौली, पृ ५०।
२५ 'अष्टछाप' कांकरौली पृ १२५।
२६ 'अष्टछाप कांकरौली पृ ५६२।
२७ 'अष्टछाप', कांकरौली, पृ १२१।
२८ नागरि मन गई अरुझाइ।
  अति बिरह तनु भई ब्याकुल घर न नैंकु सुहाइ।
  स्याम संदर मदन मोहन मोहिनी-सी लाइ।
  चित चंचल कुँवरि राधा खान-पान भुलाइ।
  कबहुँ बिहँसति कबहुँ बिलपति सकुचि रहत लजाइ—सा १७८।
२९ नैंकु तन की सुधि न ताकौं, भयी मन-समुदाइ।
  स्याम सुंदर नैन भीतर रहे आनि समाइ।
  जहाँ जहँ भरि दृष्टि देखै तहाँ-तहाँ कन्हाइ—सा १४७।

से पालने में मुस्कराता बालक देखने का सौभाग्य मुझे मिला है, उन्हीं की कृपा से घुटनों भी चलेगा। जो मेरे लाल को चलना सिखा देगा, उसको मैं सर्वस्व देने को तैयार हूँ। और मेरी बड़ी अभिलाषा मोहन को धेनु चराता देखने की है[17]। अन्य अष्टछापी कवियों ने बाल-लीला का सामान्य रूप से वर्णन किया है, मातृहृदय-चित्रण का उपर्युक्त-जैसा प्रयास नहीं किया है।

ग्रा *वात्सल्य-भक्ति का वियोग-पक्ष*—ऊपर जो कुछ कहा गया है वह वात्सल्य के संयोग-पक्ष से संबंध रखता है जब पुत्र माता के सामने होता है। वात्सल्य का दूसरा पक्ष है वियोग का जिसमें दुख की चरमावस्था होने पर आंतरिक जगत में प्रति पल प्रियजन का ही ध्यान बना रहता है। यही कारण है कि यशोदा, नंद, गोपी आदि की वियोगावस्था के दुख की कामना वल्लभ-संप्रदायी भक्तजन किया करते हैं[18]। अष्टछापी कवियों में सूरदास ने वियोग-वात्सल्य का जितना मार्मिक चित्रण किया है उतना अन्य कवियों ने नहीं। उनकी यशोदा कृष्ण के साथ कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् विलाप करती हुई कहती है कि लोग ज्ञान समझते हैं, परंतु मोहन के मुख के योग्य माखन देखते ही मुझे उनका स्मरण हो आता है। मेरी इतनी ही कामना है कि दिन-रात उन्हें छाती से लगाये खिलाती रहूँ[19]।

ट मधुर भक्ति—परमाराध्य को 'प्रियतम' मानकर उपासना करना 'मधुर भाव' की भक्ति है जिसका वर्णन अष्टछापी कवियों ने बड़े विस्तार से किया है।

१७ माइ, लैन देहु को मरे लालहिं भावे।
दधि-माखन चौगुनो देउँगी या सुत के खेलें जाकी जिहो खावे।
पलना भूलत कुलदेव मनाय्यो जतन-जतन करि घुटुरुनु धावे।
सर्वसु ताहि दउँगी जो मेरे नान्हरे गोविंद पाँ-पाँ चलन सिखावे।
इहै अभिलाष होत दिन दिन प्रति कब मेरी मोहन धेनु चरावे।
चतुर्भुजदास गिरिधर पिय इहि रस निरखि निरखि उर नैन सिरावै—चतु १४५।

१८, निरोधलक्षण' 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो १।

१९, जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।
निसि-बासर छतिया ले लाऊँ बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वै हैं, मोहन मोद खिलाऊँ—सा ३९९५।

मर्म पर 'भाली' सी लगने पर 'स्याम-मोहिनी' की 'घाली' हुए अपना मन हर लिये जाने का अनुभव करती है[१०] और तब उसका सारा कार्य 'ठग-मूरी' खानेवाली-जैसी नारी का होता है[११]। हरि के 'हाथ बिकी' ग्वालिनी 'धकधकाते उर' से उन्हीं की ओर टकटकी लगाये रहती है उसके मुख से बात नहीं निकलती[१२]। कृष्ण की सुन्दर बानी सुनते और रूप देखते ही श्रवणेंद्रिय और नेत्रेंद्रिय में इतनी सजगता आ जाती है जैसे सारा शरीर श्रवण या नेत्रमय ही हो गया हो। ऐसी स्थिति में वह चित्र-लिखी-सी रह जाती है और उसको पल भर भी चैन नहीं पड़ती[१३]।

परमानंददास की गोपी भी 'साँवरो बदन' देख कर उन्हीं के संग 'लग' जाती है[१४] और उसको 'तन की सँभार' नहीं रह जाती[१५]। यही दशा नंददास की गोपी की भी है जो 'कृष्ण' नाम सुनते ही 'बावरी' हो जाती है, उसे 'भवन' की सुधि नहीं रह जाती उसके नेत्र बार-बार भर आते हैं, चित्त को चैन नहीं पड़ती

१० री 'हौं स्याम मोहिनी घाली'।
अबहिं गई अब मरन अकेली हरि चितवनि उर साली'।
कहा कहौं कछु कहत न आवे, लगी मरम की भाली।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, बिबस भई हौं आली—सा १४०८।

११ काहू तोहिं ठगौरी लाई।
बूझति सखी सुनति नहिं नैंकुहुँ, तुही किधौं ठग-मूरी खाई—सा १४११।

१२. मैं तन तन तन भी तन चितयौ तबही तैं उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी, टकटकी लागी, तन ब्याकुल मुख फुरति न बानी—सा १४१२।

१३. सुंदर बोलत आवत बैन।
ना जानौं तिहिं समय सखी री सब तन स्रवन कि नैन।
रोम रोम मैं सब्द सुरति की नख सिख लौं चख ऐन।
इते मान बानी चंचलता सुनी न समुझी सैन।
तब तकि चकि ह्वै रही चित्र सी पल न लगत चित चैन।
सुनहु सूर यह साँच कि संभ्रम सुपन किधौं दिन रैन—सा १८०४।

१४ साँवरो बदन देखि लुभानी।
चले जात फिरि चितयौ मो तन तब तें संग लगानी—परमा ११२।

१५. जब नंदलाल नयन भरि देखे।
एकटक रही सँभार न तन की मोहन मूरति पेखे—परमा १४१।

किया है[४४]।

आ मधुर-भक्ति का वियोग-पक्ष—संयोग की स्थिति में व्यक्ति को अपने प्रियजन की ओर से जितनी निश्चिन्तता होती है, विरह की अवस्था में वह उसके लिए उतना ही अधिक विकल रहता है। अतएव विरह की स्थिति ऐसी कसौटी मानी जाती है जिससे सच्ची भक्ति की सहज ही परख हो सकती है। इसी कारण

४४ क परसपर मिलि हँसत रहसत हरषि करत बिलास।
उमँगि आनँद सिंधु उछल्यो, स्याम के अभिलाष।
मिलति इक-इक भुजनि भरि भरि, रास रुचि जिय आनि।
विहि समय सुख स्याम-स्यामा, सूर क्यों कहै गानि—सा १ १६।

ख गति सुधंग नृत्यति ब्रजनारि।
हाव भाव नैननि-सैननि दै रिझवति गिरिवर धारि।
पुरि निरखत अंग रूप परस्पर दोउ मनही मन रीझत।
हँसि हँसि बदन बचन रस बरषत, अंग स्वेद जल भीजत।
गान करति नागरि रीझे पिय लीन्ही अंकम लाइ।
रस-बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ सूर सखी बलि जाइ—सा १ ५७।

ग रस-बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर रस अँचवत परस्पर, संग सब ब्रजनारि।
काम आतुर भजी बाला सबनि पुरई आस—सा १ ९२।

घ स्यामा स्याम करत बिहार।
फूल पट रचि कुसुम सज्या छबि बरनि को पार।
सुरति-सुख करि अंग आलस सकुचि बसन सम्हारि—सा १६७६।

ङ गोपाल लाल सों नीकैं खेलि।
विकल भई सँभार न तन की सुन्दरि छूटे बार सकेलि।
× × ×
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोत्सव रास बिलास—परमा २११।

च आनँद मगन रहत प्रीतम संग द्यौस न जानी राती।
परमानँद सुधाकर हरि मुख पीवत हू न अघाती—परमा ९ ७।

छ. फूलनि माल बनाइ, लाल पहिरत-पहिरावत।
सुमन सरोज सुँघावत ओष मनोज बढ़ावत।
उज्ज्वल मृदु बालुका पुलिन अति सरस सुहाई।
जमुना जू निज कर तरंग करि आप बनाई।
बिलसत विविध बिलास हास नीवी कुच परसत।

प्रेम की परमावस्था में प्रेमी को पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक विधि-नियम और लोक-लाज का ध्यान नहीं रह जाता। सभी अष्टछापी कवियों की ब्रज-बालाएँ कुल-कानि, माता-पिता का डर, लोक-लाज आदि की सर्वथा उपेक्षा कर श्याम की प्रीति में पड़कर 'श्याममय' ही हो जाती और उनसे नाता जोड़कर दूसरे सारे नाते तोड़ देती हैं[४१]। इन सब व्यवधानों को पार करने ही गोपियों का अपने प्रियतम से मिलन होता है और वे संयोग के उस परम सुख का अनुभव करती हैं कि उनको मोक्ष-प्राप्ति की भी कामना नहीं रह जाती। अष्टछापी कवियों ने रास-लीला और कुंज-लीला, दोनों अवसरों पर प्रियतम और प्रियाओं के परस्पर मिलने, हँसने-बोलने तथा अनेक प्रकार की विलास-क्रीड़ाएँ करने का वर्णन बड़े विस्तार से

ख लालन सिर नाखी हो ठगौरी।
सुंदर मुख जो लौं नहीं देखियत भई रहत ही लौं गोरी—गोविं १५।

४१ क 'लोक सकुच कुल-कानि तजी'।
जैसें नदी सिंधु कौं धावै वैसैंहि स्याम भजी।
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ, 'नैकुँ न डरी लजी'।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि कैं रँग मजी'।
सूर स्याम कौं मिलि चूनौ-हरदी ज्यौं रँग रजी—सा १६११।

ख मैं अपनी मन हरि सौं जोर्यौ हरि सौं जोरि सबनि सौं तोर्यौ'।
नाच नच्यौ तब घूँघट कैसो 'लोक लाज डर फटकि पछोर्यौ।
आगे पाछैं सोच मिट्यौ जिय घाट गाँझि मटुका लै फोर्यौ।
कहनौ होय सो कह्यौ अली री कहा भयौ काहू मुख मोर्यौ।
नवल लाल गिरिधरन पिया सँग प्रेम रँग मह भो तन बोर्यौ।
परमानंद प्रभु 'लोग हँसन दे लोक वेद तिनुका सौ तोर्यौ'—परमा ४६१।

ग. बिलगनि कठिन है या मन की।
जाके लिएँ देखि मेरी सजनी! 'लाज गयत सब तन की।
'धर्म जाउ अरु हँसौ लोक सब अरु आवौ कुल-गारी—कुंभन २११।

घ कृष्णदास धन्य धन्य राधिका 'लोक-लाज सब पटकी—कृष्ण हस्त १४४।

ङ बिसरी लोक-लाज' गृह-कारज बंधु पिता अरु मात—चतु ९८१।

च हमहिं ब्रज लाड़िले सौं काज।
जस अपजस को हमें डर नाहीं अपनी टेर हौ कहि लेउ आज—गोविं ५७१।

किया है[४४]।

आ मधुर-भक्ति का *वियोग-पक्ष*—संयोग की स्थिति में व्यक्ति को अपने प्रियजन की ओर से जितनी निश्चिंतता होती है, विरह की अवस्था में वह उसके लिए उतना ही अधिक विकल रहता है। अतएव विरह की स्थिति ऐसी कसौटी मानी जाती है जिससे सच्ची प्रति की सहज ही परख हो सकती है। इसी कारण

४४ क. परस्पर मिलि हँसत रहसत हरषि करत बिलास।
उमँगि आनँद सिंधु उछल्यो, स्याम कै अभिलाष।
मिलति इक-इक भुजनि भरि भरि, रास रुचि प्रिय प्रानि।
निरखि सखि मुख स्याम-स्यामा सूर क्यों करि गानि—सा १ ११।

ख. गति सुर्घग नृत्यति ब्रजनारि।
हाव भाव नैननि-सैननि दै रिझवति गिरिवर धारि।
पुरि निरखत अँग रूप परस्पर दोउ मनहीं मन रीझत।
हँसि हँसि बदन बचन रस बरषत, अंग स्वेद जल भीजत।
गान करति नागरि रीझे पिय लीन्हीं अंकम लाइ।
रस-बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ सूर सखी बलि जाइ—सा १ ५७।

ग. रस-बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर रस अँचवत परस्पर, संग सब ब्रजनारि।
काम आतुर भजी बाला सबनि पुरई आस—सा १ ६२।

घ. स्यामा स्याम करत बिहार।
कुच धाइ रचि कुसुम सज्या छबि बरनि को पार।
सुरति-सुख करि अंग आलस, सकुचि बसन सम्हारि—सा १६७१।

ङ गोपाल लाल सों नीकें खेलि।
बिकल भई सँभार न तन की सुन्दरि कुच भार सकेलि।
× × ×
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोत्सव रास बिलास—परमा २११।

च. आनँद मगन रहत प्रीतम सँग द्यौस न जानी राती।
परमानंद सुधाकर हरि मुख पीवत हू न अघाती—परमा १ ७।

छ. फूलनि माल बनाइ लाल पहिरत-पहिरावत।
सुमन सरोज सुँघावत औज मनोज बढ़ावत।
उज्जल मृदु बालुका पुलिन अति परम सुहाई।
जमुना जु निज कर तरंग करि आप बनाई।
बिलसत बिबिध बिलास हास नीबी कुच परसत।

प्रेम की चरमावस्था में प्रेमी को पारिवारिक मर्यादा, सामाजिक विधि-नियम और लोक-लाज का ध्यान नहीं रह जाता। सभी अष्टछापी कवियों की ब्रज-बालाएँ कुल-कानि, माता-पिता का डर, लोक-लाज आदि की सर्वथा उपेक्षा कर श्याम की प्रीति में पड़कर 'श्याममय' ही हो जाती और उनसे नाता जोड़कर दूसरे सारे नाते तोड़ देती हैं[४४]। इन सब व्यवधानों को पार करते ही गोपियों का अपने प्रियतम से मिलन होता है और वे संयोग के उस परम सुख का अनुभव करती हैं कि उनको मोक्ष-प्राप्ति की भी कामना नहीं रह जाती। अष्टछापी कवियों ने रास-लीला और कुंज-लीला, दोनों अवसरों पर प्रियतम और प्रियाओं के परस्पर मिलने, हँसने-बोलने तथा अनेक प्रकार की विलास-क्रीड़ाएँ करने का वर्णन बड़े विस्तार से

ग लालन स्थिर चाली हो ठगौरी।
सुंदर मुख जै लौं नहीं देखियत भई रहत ही लौं बौरी—गोवि १५।

४१ क 'लोक सकुच कुल-कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै वैसैंहि स्याम भजी।
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ नैकुँ न डरी लजी'।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नहीं लोक-मरजादा हरि कैं रंग मजी'।
सूर स्याम कौं मिलि चूनौ-हरदी ज्यौं रंग रजी—सा १६११।

ख मै अपनो मन हरि सों जोरयो 'हरि सों जोरि सबनि सौ तोरयौ'।
नाच नच्यो तब घूँघट कैसो 'लोक लाज डर फटकि पछोरयो।
आगे पाछे सोच मिट्यो जिय बाट मौंझ मटुका लै फोरयौ।
कहनी होय सौ कहो सखी री कहा भयो काहू मुख मोरयो।
नवल लाल गिरिधरन पिया सँग प्रेम रंग मइ मौ तनि बोरयो।
परमानंद प्रभु 'लोग हँसन दे लोक बेद तिनुका सौ तोरयो'—परमा ४६१।

ग. हिलगनि कठिन है या मन की।
जाके लयें देखि मेरी सजनी! 'लाज जात सब तन की।
'धर्म जाउ अब हँसो लोक सब अरु आवौ कुल-गारी—कुंभन २११।

घ कृष्णदास धन्य धन्य राधिका लोक-लाज सब पटकी'—कृष्ण हस्त १७४।

ट बिसरी लोक-लाज' गृह-कारज बंधु पिता अरु मातु—चतु ९८१।

च हमहिं ब्रज त्यागिबे सौं काज।
जन अपजस कौ हमें डर नाहीं कहबो दोउ सौ कहि लेउ आज—गोविं २७१।

शब्दों में किया है५ । इस वर्णन की विशेषता यह है कि ब्रजबालाएँ या तो प्रियतम से मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा करती हैं या, सूरदास के शब्दों में, 'विरहिणी' ही रहकर प्रियतम के रूप पर 'परवाने'-जैसा जीवन बिताने की तीव्रतम कामना रखती हैं५१ । विरह की इस चरमावस्था में प्रियतम के ध्यान में लीन

५ क. अति मलीन वृषभानु-कुमारी ।
हरि स्रम जल भीज्यौ उर अंचल तिहिं लालच न धुवावति सारी ।
अधमुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी ।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी—सा ४ ७१ ।
ख देखौ मैं लोचन चुवत अचेत ।
मनहुँ कमल ससि त्रास ईस कौ, मुक्ता गनि गनि देत ।
कहुँ कंगन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ टाड़ कहुँ नेत ।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाइ सौ चेत ।
हार धरी इकटक मग जोवति, ऊर्ध उसाँसनि लेत ।
सूरदास प्रभु सुधि नहिं तिनकी बेंधी तिहारैं हेत—सा ४११५ ।
ग. कहौ री जो कहिबे की होइ ।
प्राननाथ बिछुरे की बेदन और न जानै कोइ ।
× × ×
बिरह बिथा अंतर की बेदन सो जानै जिहिं होइ—सा ३१८ ।
घ ऊधौ नाहिंन परति कही ।
जबतैं हरि मधुपुरी सिधारे बोलति बिथा सही ।
सुमिरि सुरति वा स्याम की विरहा अनल दही ।
निकसत प्रान घटकि मैं राखे आस पौ अन रही—परमा ५११ ।
ङ व्याकुल बार न बाँधति छूटे ।
जब तैं हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे—परमा ५५८ ।
च कहा करौं वह मूरति मेरे जिय तें न टरई ।
सुंदर नंद कुँवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई—कुंभन २१४ ।
छ. ऊधौ जू ! कहत न कछू बनै ।
हरि बिछुरैं दुःख कठिन बिरह के लागति बान घिनैं—चतु १४८ ।
ज. नैननि निर्भर झरत सुमिरि माधौ ! वे पहिली बतियाँ ।
नहिं बिसरात निरंतर सींचत बिरहानल प्रबल भयौ पतियाँ—चतु १४६ ।
५१ मधुकर कौन मनायौ मानै ।
× × ×

सूरदास कभी तो कहते हैं कि विरह-दुख का अनुभव न होने तक प्रेम उपजता ही नहीं[५५] और कभी विरह को ही प्रीति का उद्दीपक, उसका बढ़ाने या रँग गहरा करने वाला मानते हैं[५६]। परमानंददास भी विरह के बिना प्रीति की 'बोम' नहीं मानते[५७]। नंददास की सम्मति में, विरह, समाधि की वह स्थिति है जिसमें ध्यानावस्था में प्रियतम मिल जाता है[५८]। रूपमंजरी' में वे विरह-सुख को मिलन-सुख से भी अधिक बताते हुए कहते हैं कि संयोग की स्थिति में प्रियतम से मिलन केवल एक स्थान पर होता है, परंतु विरह की स्थिति में सर्वत्र उसी के दर्शन होते हैं[५९]।

यों तो सभी अष्टछापी कवियों ने 'मधुर-भक्ति' के वियोग-पक्ष की महत्ता सिद्ध करते हुए अनेक पद लिखे हैं, तथापि सूरदास और उनके पश्चात् परमानंददास तथा कुंभनदास के तद्विषयक पदों में विरह की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना है। वियोग की दसों दशाओं यथा अभिलाषा, चिंता स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग प्रलाप उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण; के साथ-साथ प्रवास-विरह की दसों स्थितियों, यथा मलिनता, संताप, पांडुता, कृशता, अरुचि, अधृति, विवशता, तन्मयता, उन्माद और मूर्च्छा का मार्मिक वर्णन और चित्रण अष्टछापी कवियों ने अपने

सरसत प्रेम अनंग रँग नव घन ज्यों बरसत—नंद , रास , पृ १६६।

ख. लालन मेरे ही आये आजु सुहावनी रात।
तन मन फूली अंग न समावत फूलन करत बधाये—कृष्ण हस्त ११७।

ग. स्याम धाम कमनीय बरन तन ससि मानौं सघन घन तरु तमाल को।
जुवती लता गात अरुझानी पानु करत मधुप मधु माल को।
—कृष्ण हस्त १।

५५. बिरह दुख जहँ नाहिं नैकहूँ, तहँ न उपजै प्रेम—सा १४११।

५६ ऊधौ बिरहौ प्रेम करै।
× × ×
सूर गुपाल प्रेम-पथ चलि करि, क्यौं दुख सुखनि डरै—सा ३६८८।

५७ बिरह बिनु नाहिन प्रीति की बोम—परमा हस्त १९१।

५८. प्रेम बुद्धि जो कीनी चाहौ, तौ तुम मोतें न्यारी रहौ।
बिरह में चित्त समाधि लगइहौ तुरतहि तब मोकहुँ पाइहौ—नंद , दशम०, पृ १०४।

५९ हौं जानौं पिय मिलन तें बिरह अधिक सुख होय।
मिलते मिलिये एक सौं बिछुरे सब ठाँ सोय—नंद , रूप पृ २१।

काम्यों में किया है[^] । इस वर्णन की विशेषता यह है कि व्रजबालाएँ या तो प्रियतम से मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा करती हैं या, सूरदास के शब्दों में, विरहिणी' ही रहकर प्रियतम के रूप पर 'परवाने' जैसा जीवन बिताने की तीव्रतम कामना रखती हैं[^१] । विरह की इस चरमावस्था में प्रियतम के ध्यान में लीन

५० क. अति मलीन वृषभानु-कुमारी ।
हरि स्रम जल भीज्यौ उर-अंचल तिहिं लालच न धुवावति सारी ।
अधमुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी ।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी—सा ४ ७१ ।
ख बेली में लोचन चुवत अचेत ।
मनहुँ कमल ससि त्रास ईस कौ, मुक्ता गनि गनि देत ।
कहुँ कंगन कहुँ गिरी मुद्रिका कहुँ टाड कहुँ नेत ।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी समुझाए सौ चेत ।
हार धरी हृदय मग जोवति, ऊर्ध उसाँसनि लेत ।
सूरदास कछु सुधि नहिं तिनकी बँधी तिहारैं हेत—सा ४११५ ।
ग. कहौ री जो कहिबे की होइ ।
प्राननाथ बिछुरे की वेदन और न जानै कोइ ।
× × ×
विरह बिथा अंतर की वेदन सो जानै जिहिं होइ—सा ११८ ।
घ ऊधो नारिन परनि कही ।
जबतें हरि मधुपुरी सिधारे बहोतहि बिथा सही ।
सुमिरि सुरति वा स्याम की बिरहा अनल दही ।
निकसत प्रान घटहि में राखे आस धौं मन रही—परमा ५१६ ।
ङ ब्याकुल बार न बाँधति छूटे ।
जब तें हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे—परमा ५५८ ।
च कहा करौं उह मूरति मेरे जिय तें न टरई ।
सुंदर नंद कुँवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई—कुंभन २१४ ।
छ. ऊधो तू ! कहत न कछू बने ।
हरि बिछुरैं दुः कठिन बिरह के सालति बान घिसने—चतु १४८ ।
ज. नैननि निर्झर झरत सुमिरि माधो ! वे पहिली बतियाँ ।
नहिं बिरात निरंतर सींचत विरहानल प्रबल भयो धमियाँ—चतु १४९ ।
५१ मधुकर कौन मनायो मानै ।
× × ×

विरहिणी व्रजबालाएँ उन्हीं में तन्मय होकर उस परमानंद का अनुभव करती हैं जो समस्त भक्तों का परम काम्य है।

भक्ति के विविध रूप—भक्ति-संबंधी उक्त विचारों के अतिरिक्त तद्विषयक अन्य अनेक बातें अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं और भक्ति के बिना वे भगवान को पाना दुर्लभ बताते हैं[५२]। संस्कारवश भक्तों का स्वभाव भिन्न रहता है जिससे उनकी भक्ति का स्वरूप और उसका लक्ष्यादर्श भी भिन्न रहता है। 'श्रीमद्भागवत' में इसी कारण भक्त की स्वाभाविक वृत्तियों के अनुसार भक्ति के चार विभेद—तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण या निष्काम भक्ति—कहे गये हैं[५३]। इसी का आधार लेकर सूरदास ने तमोगुणी भक्त को शत्रु-नाश, रजोगुणी को धन-कुटुम्ब-अनुरक्ति और सात्विकी को मुक्ति की कामना रखनेवाला कहा है। चौथी अर्थात् निर्गुण या निष्काम भक्ति को सूरदास ने 'सुधाकर भक्ति' कहा है और ऐसी भक्ति रखनेवाला उक्त तीनों बातों में से किसी की कामना न रखकर, भगवद्दर्शन में ही परम सुख मानकर, मन, वचन और कर्म से केवल ईश्वर की सेवा करता है[५४]।

सिवबहु बाद समाधि जोग रस ए सब लोग समाने।
'हम अपनें व्रज ऐसेहिं रहिहैं, बिरह बाइ बौरान'।
'जागत सोवत सपन रैन दिन उहै रूप परवाने'।
बालमुकुंद किसोरी लीला सोभा सिंधु समाने।
जिनके तन-मन-मान सूर प्रभु मृदु मुसुकानि बिकाने।
परी जु पयोनिधि अल्प बूँद ज्यों, सु पुनि कौन पहिचानै—सा १८४।

५२. भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ—सा ११६।

५३ 'श्रीमद्भागवत', तृतीय स्कंध, अध्याय २६, श्लो ७ से १४ तक।

५४ क भाता भक्ति चारि परकार। सत रज तम गुन सुद्धा सार'।
भक्ति एक, पुनि बहु बिधि होइ। ज्यों जल रँग मिलि रँग सु होइ।
'भक्त सात्विकी चाहत मुक्ति। 'रजोगुनी', धन-कुटुँबऽनुरक्ति।
'तमोगुनी चाहै या भाइ। मम बैरी क्योंहूँ मरि जाइ।
सुद्धा भक्त' मोहि कौं चाहै। मुक्ति हुँ कौं सो नाहिं अवगाहै—सा १-२११।

ख तमोगुनी रिपु मरिबौ चाहै। 'रजोगुनी धन कुटुबऽचाहै।
'भक्त सात्विकी' सेवै संत। तातें तिन्हें मूरति भगवंत।
'भक्त-मनोरथ मन मैं ल्यावै। मम प्रसाद तैं सो वह पावै।
निर्गुन' मुक्तिहुँ को नहिं चाहै। मम दरसन ही तैं सुख लहै—सा ११२।

आदर्श भक्त—भगवान से प्रेम करने पर, अष्टछापी कवियों के अनुसार, वही अपने भक्त की सदैव चिंता करता है। अतएव ईश्वर के ऐसे अनुग्रह के प्रति श्रद्धापूर्ण विश्वास रखनेवाला ही आदर्श भक्त है। सूरदास के अनुसार भक्ति-पंथ पर चलनेवाले को न तो पुत्र-कलत्र का ध्यान रहता है, न वह अपने असन-बसन की ही चिंता करता है; क्योंकि जग का पालनकर्ता विश्वम्भर उसकी उसी प्रकार हित-कामना करता है जिस प्रकार सहृदय व्यक्ति द्वार पर बँधे अपने पालतू पशु की[५५]। एक दूसरे पद में हरि को भक्त के भोजन, वस्त्र आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उसके साथ इस प्रकार लगे रहनेवाला कहा गया है जैसे बछड़े के साथ गाय लगी रहती है[५६]।

सेवा—'भक्ति'-प्रसंग का अंतिम उपशीर्षक है परमाराध्य की 'सेवा'। महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार सेवा तन, वित्त और मन से करनी चाहिए[५७]। इनमें तृतीय प्रकार की सेवा को सर्वोत्तम मानकर कृष्ण की 'मानसी' सेवा करने को कहा गया है[५८]। अष्टछापी कवियों ने भी 'सेवा'-भाव पर बल दिया है। कविवर सूरदास ने रसना की हरि-गुण गाने में, नयन की उनके दर्शन में चित्त की उन्हीं में अनुरक्त होने में, श्रवण की कथा सुनने में हाथ की सेवा-पूजा में लगे रहने में, चरण की वृन्दावन-जैसे परम धाम जाने में; अर्थात् शरीर के समस्त अवयवों की, किसी न किसी रूप में परमाराध्य की सेवा में ही सार्थकता मानी है[५९]।

५५. भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै। सुत-कलत्र सौं हित परिहरै।
असन-बसन की चिंत न करै। बिस्वंभर सब जग कौं भरै।
पसु ज्यों बाँधे द्वारे पर होइ। ताकौं पोषन अह-निसि सोइ—सा ३५ ।

५६. हरि सौ ठाकुर और न जन कौं।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै तिहिं बिधि राखत मन कौं।
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत सँग औचट गुनि गृह बन कौं—सा १-८ ।

५७. सिद्धांत मुक्तावली 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो २ पृ २१।

५८. सिद्धांत मुक्तावली' 'षोडश ग्रन्थ' भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो ३ पृ २१।

५९. सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै।
नैननि की छवि यहै चतुरता ज्यौं मुकुंद मकरंदहिं ध्यावै।
निर्मल चित्त तौ सोइ साँचौ कृष्न बिना जिहिं और न भावै।

परमानंददास ने सेवा को मुक्ति से भी मीठा मानकर[१०] अपने प्रभु से चरण-सेवा का अवसर देने की याचना की है[११]।

२ *सामान्य धार्मिक विचार—*

भक्ति-विषयक उक्त विशिष्ट विचारों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में ऐसी अनेक बातों की चर्चा की गयी है जिनका संबंध सामान्य धर्म से माना जा सकता है। ऐसे सामान्य विचारों में से अधिकांश का उल्लेख केवल अष्टछाप-काव्य में नहीं, उस युग के समस्त धार्मिक साहित्य में हुआ है। इनमें से परब्रह्म के विभिन्न अवतारों के प्रति अष्टछापी कवियों के विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे दिये जा चुके हैं,[१२] शेष विचारों में से प्रमुख को अध्ययन की सुविधा के लिए, चार उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—क ज्ञान और योग, ख वैराग्य या अनासक्ति, ग गुरुमहिमा और घ सत्संग-संबंधी विचार।

क. *ज्ञान और योग*—ब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दो रूप भारतीय परंपरा में मान्य रहे हैं। वल्लभ-संप्रदायी अष्टछापी कवियों ने भी सगुण के साथ-साथ ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का अस्तित्व स्वीकार किया है। निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान और योग-मार्ग माना जाता है और सगुण के लिए भक्ति-मार्ग। परंतु प्रथम मार्ग क्लेशप्रद[१३] और द्वितीय सुगम बताया गया है। अष्टछापी कवियों ने भी ज्ञान और योग की साधना को भक्ति-मार्ग की तुलना में कठिन बताया है; उसका खंडन नहीं किया है। सूरदास 'अविगत गति को' मन-बानी' के लिए 'अगम अगोचर' बताकर ही सगुण-लीला का गान करने में प्रवृत्त होते हैं[१४]। उनकी

सखनि की सु बद जनियाइ सुनि हरि-कथा सुधा रस पावै।
कर गह ब रसामहि मवे चरननि चमि वृन्दावन आवै।
सूरदास प्रेरे बलि जानी, जो हरि जू लौं प्रीति बढ़ावै—सा १०७।

१० सेवा मदन गुपाल की मुकतिहुँ तें मीठी—परमा ८५१।

११ चरन-कमल की सेवा दीजै—परमा ६ ।

१२ देखिए इसी प्रबंध के पृष्ठ ४६-५१।

१३ क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते—श्रीमद्भगवद्गीता १२.५।

१४ अविगत-गति कछु कहत न आवै।
× × ×

गोपियाँ ऊधव से यही कहती हैं कि रूप-रेख-बरन-बपु-रहित निर्गुण ब्रह्म से भेंट किस प्रकार मिल सकता है[१५] ? स्वयं उनके कृष्ण भी स्पष्ट शब्दों में कर्म-धर्म योग-ध्यान आदि की ओर ध्यान न देकर, भक्त के भाव के अधीन रहने की बात कहते हैं[१६]। परमानंददास भी ज्ञान-योग-साधना में शरीर को कष्ट देने में भजन के सरल मार्ग को अपनाना ही उपयुक्त समझते हैं[१७]। इसी प्रकार नंददास, भक्ति के[१८] और गोविंदस्वामी, प्रीति के द्वारा ही 'प्रीतम' को पाने की बात कहते हैं[१९]।

परंतु अष्टछाप-काव्य में कहीं-कहीं यौगिक क्रियाओं की भी चर्चा मिलती है। उदाहरण के लिए सूरदास के एक पद में 'अष्टांग योग' की चर्चा करके उसके आठों अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि—

मन-बानी कौं अगम अगोचर सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन जाति-जुगुति बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातैं सूर सगुन-पद गावै—सा १२।

१५. कह लौं कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन तिहि बचन अगोचर मनसा तहाँ न जाइ।
जाकैं रूप न रेख बरन बपु संग न सखा सहाई।
ता निरगुन सौं भेंट निरंतर क्यों निबहै री माई—सा ३६११।

१६ भक्त हेतु अवतार धरौं।
कर्म-धर्म कैं बस मैं नाहीं, जोग जग मन मैं न करौं।
× × ×
भाव अधीन रहौं सबही कैं और न काहू नैंकु डरौं।
× × ×
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैं न टरौं—सा १६२२।

१७ हरि के भजन में सब बात।
ग्यान करम कौं कठिन करि करि देत हौ दुख गात—परमा ८६५।

१८. यदि बिधि करत ग्यान है जोई भक्ति बिना कोउ सिद्ध न होई।
तुम्हरी भगति अमीरस-सरवर मोच्छादिक जाके बस निर्भर।
तिहिं तजि जे बपुरा बोध की करत जतन निज मोच्छ कौं।
छिन कहैं छिन ही छिन रसा बरैं और कछू न तनक पर पढ़ैं।
—नं दशम १ ११।

१९ प्रीतम प्रीति ही तैं पैए—गोविं १८३।

भी गिनाए गये हैं* । हाँ, पद के अंतिमांश में उन्होंने 'उपाधि' का मिटना भजन करने पर ही संभव बताया है। इसी प्रकार सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि हमारा प्रेम-योग तुम्हारे योग से किस प्रकार कम है जब हम माता-पिता का प्रेम और निगम-पथ छोड़कर सुख-दुख, मान-अपमान आदि सहन कर रही हैं। हमारा मन दृढ़तापूर्वक श्रीकृष्ण में लगा है और अगतवंध मानकर हम उनकी वंदना करती रही हैं। संकोच हमारा आसन है, गुरुजन की कानि रूपी अग्नि में हम तपी हैं, उपहास-धूम का हमने पान किया है, शरीर की सुधि भुलाना हमारी समाधि है, अपलक दृष्टि से कृष्ण की रूप-माधुरी का अंतर्दर्शन करना त्रिकुटी का जागरण है, हमारे नेत्रों का कृष्ण के नेत्रों से लगना ही त्रिकुटी तथा त्राटक-दर्शन की साधना है, मुरली-ध्वनि सुनना अनाहदनाद सुनना है, उनके वचन सुनने की रुचि जैसे रस बरसना है और उनकी संगति की कामना आनंद-लीनता के समान है। मनजात अर्थात् कामदेव से हमें प्रेम-मंत्र मिला है तथा हमारा ध्यान सदैव हरि में ही लगा रहता है*१।

* भक्ति पंथ को जो अनुसरै। सो 'अष्टांग जोग' कौं करै।
जम नियमासन प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार धारना ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन।
क्रम-क्रम सौं पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि—सा २२१।

*१. हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।
मन क्रम बच हरि सौं धरि पतिव्रत, प्रेम जोग तप साध्यौ।
मातु पिता हित प्रीति, निगम पथ तजि, दुख सुख भ्रम नाख्यौ।
मानऽपमान परम परितोषी सुस्थल थिति मन राख्यौ।
सकुचासन कुल सील करषि करि जगतबंध करि बंदन।
मौनऽपवाद पवन आरोधन हित क्रम काम निकंदन।
गुरुजन-कानि अगिनि चहुँ दिसि नभ तरनि ताप बिनु देखे।
पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ, अपजस स्रवन अलेखे।
सहज समाधि बिसारि बपु बपुरो निरखि निमेष न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग माधुरी धरति यहै निसि जागत।
त्रिकुटी संग भ्रू भंग, तराटक, नैन-नैन लगि लागैं।
हँसनि प्रकास सुमुख कुंडल मिलि चंद सूर अनुरागैं।
मुरली अधर स्रवन धुनि सो सुनि अनहद अनाहद बाजै।

इसी प्रकार सूरदास के एक अन्य पद में योग की कष्ट-साधना की भी चर्चा की गयी है। गोपियाँ ऊधव से कहती हैं कि जिस योग का तुम उपदेश दे रहे हो उसकी साधना तो हम कर ही रही हैं। हमारे केश, सेली हैं, कर्णफूल, 'मुद्रा' हैं, विरह के कारण शरीर की मलिनता, भस्म है, चीर, कंथा है, हृदय, शृंगी बाजा है, मुरली का स्वर, नाद है और नेत्र, 'कृष्ण-दरस-भिक्षा' माँगने के खप्पर हैं[७३]। परंतु जो ज्ञान भक्ति के लिए भूमि तैयार करता है, जीव को भ्रम से छुड़ाता और उसके मोहांधकार को दूर करता है, उसकी अष्टछापी कवियों ने सर्वत्र प्रशंसा की है[७३]।

ग वैराग्य या अनासक्ति—अष्टछाप-काव्य में अनेक अवतरण ऐसे मिलते हैं जिनमें इन कवियों ने पुत्र-कलत्र, स्वजन-परिजन आदि को परम स्वार्थी, उनसे मिलनेवाले सुख को क्षणभंगुर और गृहस्थ-जीवन को कष्टदायी बताया है[७४]। परंतु सामान्यतया घर-बार से मुक्ति पा जाना सबके लिए सुलभ भी नहीं होता।

बरपत रस रुचि वचन संग सुख पद आनँद समानैं।
मैन कियो मन जात मज्जन लगि ज्ञान ध्यान हरि ही को—सा १५१।

७२. ऊधौ करि रही हम जोग।
कहा एतौ बाद ठान्यौ देखि गोपी भोग।
सीस सेली केस मुद्रा कनक बीरी बीर।
विरह भस्म चढ़ाइ बैठी सहज कंथा चीर।
हृदय सिंगी टेर मुरली नैन खप्पर हाथ।
चाहतीं हरि-दरस-भिच्छा देहि दीनानाथ—३६६४।

७३.क सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान अगिनि-झर फूटै—सा २११।
ख सूर मिटै अज्ञान मूरछा ज्ञान सुमेरज लावै—सा २१२।

७४ क सुत-सनेहि तिय सकल कुटुँब मिलि निसि दिन होत खई—सा १२६६।
ख सुख संपति दारा-सुत हय-गय, झूठ सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु अंत नाहिं सँग जाइ—सा १३१७।
ग. जब लगि डोलत, बोलत चितवत धन-दारा है तेरे।
निकसत हंस प्रेत कहि तजिहैं कोउ न आवैं नेरे—सा १३१६।
घ. सुत वित-वनिता प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ—सा ३२१।
ङ दार, गार, सुत पति इन करि कहौ कौन आहि सुख।
कहै रौता रम दिन दिन छिन-छिन देहिं महा दुख।
—नंद सिद्धांत, पृ १८८।

इसीलिए महाप्रभु ने लौकिक विषयों से मुक्ति पाना कठिन बताकर उनमें रमने वाले मन को परमाराध्य में लगाने का उपदेश दिया है [७५]। परमानंददास ने एक पद में आहार-विहार और देह-सुख छोड़कर घर में 'बटाऊ' की भाँति बसने की बात कही है [७६]। वैराग्य अथवा अनासक्ति के संबंध में अन्य अष्टछापी कवियों का भी यही आदर्श समझना चाहिए।

ग *गुरु-महिमा*—भगवान की भक्ति-साधना या सेवा-संबंधी निर्देश भक्त को जिससे प्राप्त होते हैं और जो भक्ति तथा सेवा के क्षेत्र में उसका पथ प्रदर्शक होता है, उसे 'गुरु' कहते हैं। उसकी आज्ञा का पालन, महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार, एक प्रकार से ईश्वर-सेवा ही है [७७]। कबीर ने जिस प्रकार 'सतगुरु' की महिमा का बखान किया है [७८] और नाभादास ने भगवंत और गुरु को एक बताया है, [७९] उसी प्रकार अष्टछापी कवि भी गुरु को ईश्वर-रूप ही मानते रहे हैं। सूरदास ने परमाराध्य के लीला-गान को 'आचार्य-यश-वर्णन' के समकक्ष बताया है [८०] और दोनों को एकरूप मानते हुए गुरु की प्रसन्नता से हरि की प्रसन्नता और गुरु के दुख से, हरि को खिन्नता होने की बात कही है [८१]। यही भाव उनके

७५. तत्त्वदीप निबंध', सर्वनिर्णय-प्रकरण श्लो २४६ ५५।

७६ छाँड़ि आहार बिहार सुख देह और न चाहत काऊ।
परमानंद बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ—परमा ४६८।

७७ 'नवरत्न' चौथा ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा श्लो ७।

७८.क गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय—'कबीर-वचनावली' १ ।
ख कबिरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर—'कबीर वचनावली' १ ८।
ग गुरु पारस गुरु परस है चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हों मुक्ति निवास—'कबीर वचनावली' ११ ।

७९. भक्त भक्ति, भगवन्त, गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किये नासहिं बिघ्न अनेक—'भक्तमाल' दो १।

८० 'अष्टछाप', काँकरौली पृ १ ९।

८१ हरि-गुरु एक रूप नृप, जानि। यामैं कछु संदेह न आनि।
गुरु प्रसन्न हरि परसन होइ। गुरु कैं दुखित, दुखित हरि सोइ—सा ९-५।

साथ-साथ अन्य अष्टछापी कवियों का भी रहा है । गुरु की कृपा होने पर ही हरि गुन की प्रेरणा मिलना भी उन्होंने स्वीकार किया है[८३] और गुरु की सेवा न कर पाने पर वे जीवन को व्यर्थ समझते हैं[८४] । संत-समागम न होने पर वे जीवन को भार-स्वरूप[८५] और व्यर्थ ही बीत जानेवाला मानते हैं[८६] । कारण यह है कि वे गुरु को ज्ञान-दीपक हाथ में लेकर अविद्या-माया का नाश करके जीव का उद्धार करने में समर्थ समझते हैं[८७] और, उनकी सम्मति में, 'सतगुरु' का उपदेश हृदय में धारण

८२.क. बहुरि भये तनु धरि यहाँ, वल्लभ-वर मुरारि री ।
परमानँद स्वामी के ऊपर सर्वस दैहौं वारि री—परमा हस्त ६५ ।
ख नमामि पद परम गुरु कृष्न कमल-दल-नैन ।
जगकारन करुनार्नव, गोकुल जिन को ऐन—नंद मान , पृ ६१ ।
ग. व्रजपति वल्लभ एक ही जानो भेद नहीं है नमो-नमो ।
—कृष्ण कीर्तन०-स , भाग २ पृ २१६ ।
घ सदा ब्रज ही में करत बिहार ।
तबके गोप-भेष अबके प्रगट द्विजवर-अवतार ।
तब गोकुल में नँद-सुवन अब वल्लभ-राजकुमार—चतु ५७ ।
ङ हम तो श्री विट्ठलनाथ-उपासी ।
× × ×
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल-बानी निगम-प्रकासी—छीत ४३ ।
च. जो पै श्रीविट्ठल रूप न धरते ।
तो कैसेक घोर कलियुग के महापतित निस्तरते—गोवि ६१ ।
८३ धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यौ—सा ११७१ ।
८४ जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ ।
हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ—सा १ १५५ ।
८५. मोरे जीवन भयो तन भारो ।
कियौ न संत-समागम कबहूँ लियो न नाम तुम्हारो—सा १ ५२ ।
८६. ना हरि भक्ति, न साधु-समागम, रह्यौ बीचहीं लटकै—सा १ ६६२ ।
८७ गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।
माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै ।
भव सागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै ।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ छिन में लै उधरै—सा ४१७ ।

करनेवाला सहज ही सभी भ्रमों से मुक्ति पा जाता है[८८]।

ग. *सत्संग-महिमा*—जीवन के दैनिक व्यवहार में जिस प्रकार सच्चरित्र व्यक्तियों के संपर्क से मन में सद्विचारों का उदय होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में सत्संग से भक्ति-साधना की प्रेरणा आदि अनायास ही प्राप्त हो जाती है। परंतु 'सत्संग' मिलता उसी को है जिस पर ईश्वर की कृपा होती है[८९]। सूरदास ने भी साधु-संगति की बड़े भाग्य से पाने की बात लिखी है[९०]। एक अन्य पद में उन्होंने साधु-दर्शन को कोटि तीर्थ-स्नान के फल जैसा बताया है[९१]। कारण यह है कि उनकी संगति में रहने से जन्म-मरण के क्रम से सहज ही मुक्ति मिल जाती है[९२]। इसी से नंददास उसको 'पारस' के समान उत्तम मानते हैं जो लोहे को भी सोना बना देता है[९३] और परमानंददास उसकी कामना करते हैं[९४]। सूरदास का जिस प्रकार एक साधु-संगति का ही आधार है,[९५] उसी प्रकार छीतस्वामी को भी हरि-भक्तों के बल का विश्वास है[९६]। सूरदास ऐसे साधुओं की सेवा में ही जीवन

८८. सतगुरु को उपदेस हृदय धरि जिन भ्रम सकल निवारयौ।
हरि भजि बिलँब छाँड़ि सूरज सठ ऊँचैं टेरि पुकारयौ—सा० १।३३६।

८९.क 'नारद भक्ति सूत्र' ३६।
ख 'नारद भक्ति-सूत्र' ४।

९० सूरदास साधुनि की संगति बड़ैं भाग्य जो पाऊँ—सा० १।३४८।

९१ जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसो दरसन पावत—सा० २।३०।

९२ संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत।
सूरदास संगति करि तिनकी जे हरि-सुरति करावत—सा० २।३७।

९३ पुनि कहौं सब तैं साधु-सँगति उत्तम है भाई।
पारस परसैं लोह-मात्र कंचन ह्वै जाई—नंद० भँवर पृ० १३९।

९४ क सब सुख सोई लहै जाहि है कान्ह पियारौ।
करि सतसंग बिमल जस गावै रहै जगत तें न्यारौ—परमा० ८९।
ख संग देहौ तौ हरि भगतनि को बास देहु श्री जमुना तीर—परमा० ९।

९५. एक अधार साधु संगति को रचि पचि मति सँचरी—सा० १।३३।

९६ मोकों बल है दोऊ ओर को।
इक बल मोको हरि-भक्तनि को दूजे नंदकिसोर को—छीत० १८८।

की सार्थकता समझते हैं[१७]।

३ *धार्मिक कृत्य*—अष्टछापी कवियों ने अपनी रचनाओं में उन अनेक कृत्यों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है जिनको हिंदू समाज सदा से 'धर्म' का अंग मानता आया है। स्थूल रूप से, ऐसे कृत्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—पूजा, व्रत, तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान, दान, तप, यज्ञ, श्राद्ध और कथा-श्रवण।

क. *पूजा*—यद्यपि भारतवर्ष में सदैव से वासुदेवोपासना प्रचलित रही है तथापि उनमें से ईश्वर के पाँच स्वरूपों, यथा विष्णु, सूर्य, शिव, देवी और गणपति की उपासना का महत्व बहुत प्राचीन काल से रहा है। अष्टछाप-काव्य में इन पंच देवों के अतिरिक्त इष्टदेवता, कुलदेवता, इंद्र और गोवर्द्धन की पूजा का भी उल्लेख हुआ है। इन सबकी पूजा का विवरण अष्टछाप-काव्य के आधार पर नीचे दिया जाता है—

अ *इष्टदेवता की पूजा*—प्रत्येक आस्तिक हिंदू का कोई न कोई इष्टदेवता होता है जिसको अर्पण करके ही सांसारिक भोग भोगने का सामान्य विधान है यहाँ तक कि नित्यप्रति का भोजन भी उसको भोग लगाकर ही ग्रहण किया जाता है। 'सूरसागर' में महराने से आया हुआ पाँड़े खीर तैयार होने पर पहले इष्टदेव का ध्यान करके भोग लगाता है[१८]। अशोकवाटिका में फल खाने के पूर्व हनुमान भी पहले मानसिक रूप से प्रभु को अर्पण कर देते हैं[१९]।

नंद जी का इष्टदेव, सूरदास ने, शालग्राम को बताया है और उनकी पूजा

१७ जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।
×   ×   ×
भक्ति करि, हरि भक्तनि के कबहूँ न धोए पाइ—सा १ ५५।

१८.क घृत मिष्टान्न और मिश्रित करि परसि कृष्न हित ध्यान लगायौ।
नैन उघारि विप्र जौ देखै, खात कन्हैया देखन पायौ—सा १० २४८।
ख पाँड़े नहिं भोग लगावन पावै।
×   ×   ×
वह अपने ठाकुरहिं जिंवावै, तू ऐसैं उठि धावै—सा १ २४२।

१९. अगनित तरु-फल सुगंध मृदुल मिष्ट-खाटे।
मनसा करि प्रभुहिं अर्पि, भोजन करि डाटे—सा ९-९६।

का उल्लेख केवल 'सूरसागर' में मिलता है। सूरदास के नंद जी यमुना में स्नान करके झारी भर यमुनाजल और बहुत से कंज-सुमन लाते हैं। घर आने पर हाथ-पैर धोकर वे मंदिर में पधारते, स्थल लीपते, पात्र माँजते धोते तथा शालग्राम-पूजन के अन्य कृत्य विधिवत् करते हैं[२]। तभी बालक कृष्ण वहाँ आकर, नन्द जी का घंटा बजाकर शालग्राम को स्नान कराना, चंदन चढ़ाना, 'पट का अंतर' देकर भोग लगाना, आरती करना आदि देखता है[१]। भोग लगाने पर भी थाल की सामग्री ज्यों की त्यों देखकर बालक कृष्ण कहता है कि बाबा, तुमने भोग लगाया, पर तुम्हारे ठाकुर ने तो कुछ खाया ही नहीं[२]। भोले बालक की इस जिज्ञासा में भी पिता ने देव-अवज्ञा समझी और उससे 'देवता' को हाथ जोड़ने को कहा[३]। सूरदास ने 'शालग्राम' को ही नंद जी का इष्टदेवता कहा है, क्योंकि पिता को ध्यान-समाधि में लीन देखकर पुत्र ने जब शालग्राम की बटिया को मुख में रख लिया[४] तब वे 'मेरे इष्टदेव कहाँ गये', कहकर ही उनकी खोज करते हैं[५] और बालक के मुख से 'देवता' को पाकर वे बहुत खीझते हैं[६]। पश्चात्, देव-स्नानादि के अनंतर, वे

२ करि अस्नान नंद घर आए।
ले जल जमुना को झारी भरि कंज-सुमन बहु ल्याये।
पाइँ धोइ मंदिर पग धारे प्रभु-पूजा हित कीन्ह।
अस्थल लीपि पात्र सब धोए, अन्न देव के कीन्ह।
बैठि नंद करत हरि पूजा, विधिवत औ बहु भाँति—सा १ २६।
१ नंद करत पूजा हरि देखत।
घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेंटत।
पट अंतर दै भोग लगायौ आरति करी बनाइ—सा १ २६१।
२. कहत कान्ह बाबा तुम अरप्यौ देव नहीं कछु खाइ—सा १ २६१।
३ चिते रहे तब नंद महरि-मुख सुनहु कान्ह की बात।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिं गात—सा १ २६१।
४ क. पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यौ देखौ देव-बड़ाई—सा १ -२६२।
ख एक समय पूजा के अवसर, नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर, बैठि रहे अरगाई—सा १०-२६३।
५. खोलत नंद चकित चहुँ दिसि तैं अचरज सौ कछु भाव।
कहाँ गए मेरे इष्टदेवता को लै गयौ उठाइ—सा १०-२६२।
६ मुख कर मेलि देवता राख्यौ भाखे सबै नहाइ—सा १ -२६२।

पुनः इष्ट-देव का पूजन करती हैं।

आ कुलदेवता इन्द्र की पूजा—प्रत्येक हिंदू के लिए 'इष्टदेवता' के साथ साथ 'कुलदेवता', 'ग्राम देवता' आदि की पूजा का शास्त्रीय विधान माना जाता है[७]। इस प्रकार भारतीय समाज में वर्ग-विशेष के प्रत्येक कुल का एक 'कुलदेवता' होता है जिसकी पूजा प्रत्येक मंगलकार्य के आदि में तथा वर्ष के अन्य प्रमुख अवसरों पर की जाती है और उसी को समस्त लौकिक श्री-समृद्धि तथा मंगल का दाता माना जाता है। अष्टछाप-काव्य में जिन व्रज-वासियों की चर्चा है उनका 'कुल देवता' इंद्र बताया गया है जिसकी कृपा से ही यशोदा व्रज में कुशलपूर्वक रहने, समस्त सुख, दूध-दही, धन-धाम के साथ-साथ धन-सम्पत्ति और 'नवौनिधि' पाने की बात कहती हैं[८]। 'कुलदेवता' की पूजा भूल जाने पर भावी अनिष्ट की शंका से नंदरानी का हृदय काँप जाता है और तुरंत ही वे क्षमा-याचनापूर्वक[९] विनय करती हैं कि तुम्हारे समान दूसरा देव नहीं है; तुम्ही कृष्ण पर दया करो[१०]। पुत्र के पूछने पर कि तुम किसकी पूजा करती हो माता उत्तर देती है कि इंद्र हमारे कुलदेव हैं, उनसे ही सांसारिक 'बड़ाई' हमें मिली है और तुम्हारे कल्याण के लिए हम उनकी पूजा करती हैं[११]। नंददास के कृष्ण भी पिता नंद से पूछते हैं कि यह

७ 'कल्याण' के 'हिन्दू-संस्कृति' अंक में प्रकाशित 'हिंदुओं के मुख्य देवता' शीर्षक लेख, पृ ७८।

८-क नंद महर सौं कहति जसोदा, सुरपति की पूजा बिसराई।
जाकी कृपा बसत व्रज-भीतर जाकी दीन्ही भई बड़ाई।
जाकी कृपा दूध-दधि-पूरन सहस मथानी मथति सदाई।
जाकी कृपा धाम धन मेरें जाकी कृपा नवौं निधि आई।
जाकी कृपा पुत्र भए मेरें कुसल रहौ बलराम कन्हाई—सा ८११।

ख येई हैं कुलदेव हमारे।
काहूँ नहीं और मैं जानति व्रज-गोधन रखवारे—सा ८१२।

९ छमा कीजौ मोहिं हो प्रभु तुमहिं गयौ भुलाइ—सा ८१४।

१० और नाहीं कुलदेव हमारैं कै गोधन कै ये सुरपति वर।
करति बिनय कर जोरि जसोदा, कान्हहिं कृपा करौ करुनाकर।
और देव तुम सम कोउ नाहीं दुर करौं सेवा चरननि-तर—सा ८१७।

११ बार-बार हरि बूझत नंदहिं कौन देव कौ करत पुजाई।
इंद्र बड़े कुल-देव हमारे उनतैं सब यह होति बड़ाई।

पूजा 'शास्त्र' से तुमने पायी है या परंपरा से अथवा यह 'लोक-रूढ़' है[१२]। उत्तर में नंद जी इन्द्र-पूजा के 'परंपरा' से चले आने की बात कहते हैं[१३]।

व्रज में कुलदेवता इंद्र की पूजा का यह चलन 'गोवर्धन-पूजा' के पूर्व तक प्रचलित बताया गया है। उसकी पूजा का सारा आयोजन बड़ी धूम-धाम से किया जाता है। स्त्रियाँ मंगल-गान करती, भाँति-भाँति के पकवान आदि बनातीं और श्याम के छूने के डर से सम्हाल कर रखती जाती हैं[१४]। नटखट कृष्ण की ओर से इतनी सतर्कता बरतने पर भी वे निश्चिंत नहीं हो पातीं और उन्हें सारी सामग्री से दूर रखने के लिए डराती हुई कहती हैं कि यहाँ मत आना, यह देवता लड़कों को डराता है। इतना सुन कर पुत्र को आँगन में ही ठिठक कर रह जाते देख माता मन ही मन हँसती है[१५]। एक देवता के लिए बहुत-सा 'भोग' बनता देख सहज जिज्ञासा-भाव से जब कृष्ण पूछता है कि क्या तुम्हारा देवता प्रत्यक्ष होकर इतना सब भोजन खा लेगा[१६] तब माता यशोदा पुत्र की अविनय पर खीझती और कुलदेवता के हाथ जोड़कर पुत्र का अपराध क्षमा कराती हैं[१७] और पुनः स्वीकार

सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई—सा ८१८।

१२ यह करनी तुम शास्त्र तैं पाई, पै किधौं परंपरा चलि आई।
कैधौं लोकरूढ़ि है तात, मोसौं कहौ कथा यह बात।
—नंद दास, पृ १६।

१३. परंपरा चलि आयो धर्म, छाड़ो तात नहिं यह कौ कर्म—नंद, दास, पृ १६।

१४ क गावति मंगलाचार महर घर।
जसुमति भोजन करति चँडाई, नेवज करि-करि धरति स्याम डर।
देखे रहौ न छुवै कन्हैया, कह जाने यह देव काज पर—सा ८१७।

ख बहु-बहु भाँति करति पकवानें। मेवा करि धरि साँझ बिहानें।
छुवत नहीं देवकाज सकानें। देव-भोग कौं रहत डरानें—सा ८२१।

१५. महरि कहे मेवा लै ऐंचति। स्याम छुवै कहुँ ताकौं डरपति।
कान्हहिं कहति इहाँ जनि आवै। लरिकनि कौं यह देव डरावै।
स्याम रहे आँगनहिं डराई। मन-मन हँसति मातु सुखदाई—सा ८२१।

१६ मैया री मोहिं देव दिखैहै। इतनौ भोजन सब यह खैहै—सा ८२१।

१७ यह सुनि खीझति है नँदरानी। बार-बार सुत सौं रिसिआनी।
ऐसी बात न कहौ कन्हाई। तू कत करत स्याम लँगराई।
कर जोरति अपराध छमावति। बालक की यह बीच मिटावति—सा ८२१।

करता हूं कि मेरा सारा गोधन, धन-धाम, पुत्रादिक कुलदेव की कृपा से ही है[१८]।

इ गोवर्द्धन पूजा—कुलदेवता इंद्र के स्थान पर गोवर्द्धन की पूजा कृष्ण द्वारा चलाये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। माता-पिता जब सुरपति की पूजा का सोत्साह आयोजन करते हैं तब कृष्ण स्वप्न में एक 'अवतारी पुरुष' के दर्शन होने और गोवर्द्धन-पूजा की आज्ञा दिये जाने की बात कहते हैं[१९]। साथ ही वे यह प्रलोभन भी देते हैं कि गोवर्द्धन-पूजा में गोसुत बढ़ेंगे, खूब दूध-दही होगा और जब तुम्हें मुहमाँगी बातें मिल जायें तभी तुम मुझे मानना[२०]। पश्चात्, कृष्ण की बात मानकर बड़े उत्साह से गोवर्द्धन-पूजा का आयोजन किया जाता है जिसका विस्तृत वर्णन 'दीपावली' त्योहार के प्रसंग में पीछे किया जा चुका है[२१]।

ई विष्णु की पूजा—अष्टछाप-काव्य में विष्णु की विधिवत् पूजा का उल्लेख नहीं है; अष्टछापी कवियों के परमाराध्य होने के कारण कुछ स्फुट पदों में उनको 'देवाधिदेव' कहकर उनकी सेवा-उपासना करने की बात अवश्य कही गयी है जो श्रीकृष्ण से भी संबंधित है[२२]।

१८. उनकी कृपा गऊ गन घरे। उनकी कृपा धाम धन भरे।
उनकी कृपा पुत्र फल पायौ। कहहु स्वामिहिं नीकिं पठायौ—सा ८६४।

१९ सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं इक बड़ौ पुरुष अवतार जनाई।
कहन लग्यौ मोसौं ये बातैं पूजत हौ तुम काहि मनाई।
गिरि गोवर्धन देवनि कौ मनि, सबहु मानौ भोग चढ़ाइ—सा ८१६।

२ मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ व्रज की कुसलाइ तौ गोवर्धन मानौ।
दूध-दही तुम कितनौ लैहौ गोसुत बढ़ैं अनेक।
× × ×
मुँहमाँगि फल जौ तुम पावहु तौ तुम मानहु मोहिं—सा ८२१।

२१ देखिए इसी प्रबंध का पृ १ १ स १ ४।

२२ मोहिं भावै देवाधिदेवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एक ही सेवा।
× × ×
संख चक्र सारंग गदाधर रूप चतुर्भुज आनन्द कन्दा।
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत परमानंदा—परमा ८७६।

उ. *सूर्य की पूजा*—अष्टछापी कवियों ने यशोदा और ब्रज-बालाओं के द्वारा सूर्य की उपासना किये जाने की चर्चा की है। सूरदास की यशोदा राधा और श्याम की सुन्दर 'जोटी' देखकर, दोनों के कुशल से रहने और परस्पर संबंध-सूत्र में बँधने की कामना से 'सविता' से विनती करती है[२३] जिसका उल्लेख राधा ने अपनी माता से भी किया है[२४]।

श्रीकृष्ण को पति या भरतार-रूप में पाने की कामना रखनेवाली गोपियाँ भी सूर्य की पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण होने का वरदान चाहती हैं[२५] और जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है तब भी अत्यंत कृतज्ञ-भाव से वे 'सविता' को 'पय-अंजलि' समर्पित करती हैं[२६]। अशोकवाटिका में बैठी सीता हनुमान के मुख से लक्ष्मण के पांवागन की बात सुनकर 'तरनि सम्मुख' हो असीस देती हैं[२७]। 'सारावली' में कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा सूर्य को अर्घ्य दिलाया है[२८]। अन्य अष्टछापी कवि इस संबंध में मौन हैं।

ऊ. *शिव-पार्वती की पूजा*—'सूर्य' की भाँति शिव-पार्वती[२९] की पूजा भी

२३ देखि, महरि मनहीं जु सिहानी।
  ×   ×   ×
  सूर महरि सविता सौं बिनवति भली स्याम की जोरी—सा ७०२।

२४ मो तन चितै चितै तेरो तन, कछु सविता सौं गोद पसारी—सा ७०८।

२५.क ध्यान धरि, कर जोरि, लोचन मूँदि इक-इक जाम।
  बिनय अंचल छोरि रवि सौं करति हैं सब बाम।
  हमहिं होहु दयाल दिन-मनि तुम बिदित संसार।
  काम अति तनु दहत दीजै सूर हरि भरतार—सा ७९७।
 ख रवि सौं बिनय करति कर जोरे—सा ७९८।

२६ बिनय करति सविता तुम हरि कौ, पय अंजलि कर जोरी।
  सूर स्याम पति तुम तैं पायौ, यह कहि करहिं निहोरी—सा ७९८।

२७ लछिमन पांवागन कहि पठयौ देत चतुर करि माता।
  दई असीस तरनि-सम्मुख ह्वै चिरजीवौ दोउ भ्राता—सा ९०८७।

२८. कर्यौ अर्घ्य देत सूरज कौ—सारा ४७८।

२९. पद्म ने भी शिव की विधिवत् पूजा किये जाने का वर्णन विस्तार से किया है।
  —हर्ष, डॉ॰ बाण पृ॰ ५१-५७।

पति और पुत्र पाने की कामना से किये जाने की बात अष्टछापी कवियों ने लिखी है। सूरदास की यशोदा स्पष्ट शब्दों में कृष्ण को गोद में खिलाने का सौभाग्य शिव-गौरि की कृपा का फल बताती है[१०]। उनकी गोपियाँ मनवांछित वर और सौभाग्य की कामना से गौरीपति शिव की पूजा का नेम-धर्म-सहित विधान करती हैं और उनसे नंदकुमार को पति-रूप में प्राप्त करने का वरदान चाहती हैं[११]। गोपियों को पूर्ण विश्वास है कि महादेव की कृपा से उनकी मनोकामना अवश्य पूर्ण हो जायगी, अतः वे निरंतर उनकी पूजा 'कमल-पुहुप, मालूर-पत्र-फल' और अन्य सुगंधित सुमनों से करती हैं[१२]। अन्त में जब उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है और श्रीकृष्ण को वे पति-रूप में प्राप्त कर लेती हैं, तब महादेव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हुई वे सविनय निवेदन करती हैं कि तुम धन्य हो तुम्हारी कृपा से ही हमारी मनोकामना पूर्ण हुई है[१३]। 'सारावली' में त्रिपुरारि की पूजा स्वयं श्रीकृष्ण के करने की बात कही गयी है[१४]।

मनवांछित वर-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार गो० तुलसीदास की जानकी 'भवानी' की पूजा और प्रार्थना करती हैं,[१५] वैसे ही सूरदास की रुक्मिणी 'गौरी' की

१०. पाऊँ कहाँ खिलावन को सुख मैं दुखिया दुख कोखि जरी।
जब तुम कौं सिव-गौरि मनाइ सिव-व्रत नेम धनक करी।
सूर स्याम पाए पय मैं ज्यों पावै निधि रंक परी—सा १०८।

११ क. गौरी-पति पूजति ब्रजनारि।
नेमधर्म सौं रहति क्रिया युत बहुत करति मनुहारि।
यहै कहति पति देहु उमापति गिरिधर नंदकुमार—सा ७९९।

ख. सिव सौं बिनय करति कुमारि।
गौरि कर मुख करति अस्तुति बड़ प्रभु त्रिपुरारि—सा ७९७।

१२. कमल पुहुप मालूर पत्र-फल नाना सुमन सुवास।
महादेव पूजति मन बच करि सूर स्याम की आस—सा ७९९।

१३. सिवसंकर हमकौ फल दीन्हौ।
पुहुप पान नाना फल मेवा षटरस अर्पन कीन्हौ।
पाइ परीं जुवती सब यह कहि धन्य धन्य त्रिपुरारि।
तुरतहि फल पूरन हम पायौ नंदसुवन गिरिधारि—सा ७९८।

१४. कहुँ पूजत त्रिपुरार—सारा ९०८।

१५. रामचरित-मानस बालकांड दोहा २१५.१५।

विधिवत् पूजा करती और प्रसाद पाकर ही 'अंबिका-मंदिर' से बाहर आती हैं[३६]। नंददास की रुक्मिणी भी, विवाह के पूर्व, कुलरीति का पालन करने के लिए 'अंबिका' की पूजा करने जाती और विधिवत् अर्चना के पश्चात् प्रार्थना करती हैं कि देवि ! तुम सब प्रकार से समर्थ हो और अंतर्यामिनी होने के कारण मेरे हृदय की बात भी जानती हो। अतएव श्रीकृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने की मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो[३७]। और देवि अंबिका उन पर प्रसन्न होकर श्रीमुख से गोविंदचंद्र को ही पति-रूप में पाने का आशीर्वाद देती हैं[३८]।

ए देवी की पूजा—अष्टछापी कवियों में नंददास ने 'कात्यायनी' अर्थात् दुर्गा देवी की पूजा का वर्णन किया है। कृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली ब्रजबालाएँ हिम ऋतु के प्रथम मास में ही अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए 'कात्यायनी' की पूजा का संकल्प करती हैं। पहले वे मौन धारण कर यमुना में स्नान करती, फिर तट पर बालू की मूर्ति बनाकर उसे दिव्य वस्त्राभूषण पहनातीं और चंदन तंदुल फूल आदि समर्पित करके उनके 'पाइनि' पड़ती हैं। तदनंतर, विनय करती हैं कि हे गौरि, ईश्वरी, महामाया, दया करके नंद-सुवन को ही हमारा पति बनाओ[३९]। ब्रजबालाओं की पूजा से संतुष्ट होकर महामाया उनको मनोरथ

३६ रुकमिनि देवी-मंदिर आई।
धूप दीप पूजा सामग्री, आली संग सब ल्याई
× × ×
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी बर देउ जादवराई।
मैं पूजा कीनी इहि कारन, गौरी सुनि मुसुकाई।
पाइ प्रसाद अंबिका मंदिर रुकमिनि बाहर आई—सा ४१८१।

३७ विधिवत् देवी अरचि-अरचि बहु बंदन करिकै।
बिनती कीनी कुवरि गवरि-पद-पंकज धरिकै।
अहो देवि अंबिका ईस्वरी ! तुम सब लाइक।
महामाइ, बरदाइ सु संकर तुमरे नाइक।
तुम सब जिय की जानति तुम सौं कहा दुराऊँ।
गोकुलचंद गोविंद नंदनंदन पति पाऊँ—नंद रुक्मि पृ १५१।

३८ है प्रसन्न अंबिका कहति सुनि रुकमिनि सुंदरि।
पैहै अब गोविंदचंद तिन जिनि चिंता करि—नंद, रुक्मि, पृ १५१।

३९ नंददास 'दशम स्कंध' पृ २९७-९८।

पूर्ण होने का आशीर्वाद देती है, और गोपियाँ देवी से वर पाकर अत्यंत प्रफुल्लित होकर जल-विहार में मग्न हो जाती हैं,[४०] क्योंकि उन्हें कात्यायनी के आशीर्वाद में पूरी आस्था है। 'सारावली' में कृष्ण द्वारा भी दुर्गा देवी की पूजा किये जाने का उल्लेख मिलता है[४१]।

गोविंदस्वामी के एक पद में कदंब-वनदेवी-पूजन का उल्लेख हुआ है जो सबकी भाव-भक्ति स्वीकार करती हैं, किसी की 'बलि' नहीं चाहतीं और सबकी मनोकामना पूर्ण कर देती हैं[४२]।

ग. *गणपति और शारदा की पूजा*—गणपति और शारदा की विधिवत् पूजा का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। सूरदास के केवल एक पद में श्रीकृष्ण की छठी के अवसर पर 'सोहिलो' के आदि में 'गौरि के साथ-साथ 'गनेस्वर' और 'देवि सारदा' की विनती का उल्लेख भर हुआ है[४३]। 'सारावली' में श्रीकृष्ण प्रथम पुत्र के विवाह के अवसर पर गणेश की पूजा करते हैं[४४]।

घ. *व्रत*—'व्रत' का उद्देश्य चाहे स्वास्थ्य की रक्षा हो, चाहे स्वर्ग की प्राप्ति, भारतीय समाज में इनका 'पालन' या 'निर्वाह' भी धार्मिक कृत्य के रूप में ही किया जाता है। यों तो 'व्रतों' की भी संख्या आज बहुत बढ़ गयी है, परंतु अष्टछाप-काव्य में केवल दो मुख्य व्रतों की चर्चा है—एक है 'चांद्रायण' और दूसरा है 'एकादशी' का व्रत। प्रथम अर्थात् 'चांद्रायण व्रत'[४५] के संबंध में किसी अष्टछापी

---

४० बोली वचन देवि रस भारे। पूर्न मनोरथ होंहु तुम्हारे।
कात्यायनि तैं यौं वर पाइ। बहुरि देवी जमुना जल आइ।
—नंद० दशम० पृ० ९८।

४१ कहुँ इक दुर्गा देवि आनि कै गौरि दियो निज धाम।
करत होम बहु भाँति वेद-धुनि सब विधि पूरन काम।—सारा० १०४।

४२ पूजन चलो हो कदंब बन देवी आवो हमारे जीऊ संग।
भाव भगति मानति सबहिनि की बलि न चाहे री बहु तेरी।
पुरवति सकल मोर की कामना गोविंद प्रभु मदन मुरारी—गोविं० ५५७।

४३ गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो) देवी सारद तोहि।
गावौं हरि को सोहिलो (हो) मन-आनन्द दै मोहि।—सू० १०।४।

४४ प्रथम पुत्र को ब्याह आनि कै पूजत बहु गनेस—सारा० ९८।

४५ बाण ने जैन साधुओं द्वारा चांद्रायण व्रत किए जाने का उल्लेख किया है।
—हर्ष० सां० अध्य० पृ० १०।

विधिवत् पूजा करती और प्रसाद पाकर ही 'अंबिका-मंदिर' से बाहर आती है[१६]। नंददास की रुक्मिणी भी, विवाह के पूर्व, कुलरीति का पालन करने के लिए 'अंबिका की पूजा करने आती और विधिवत् अर्चना के पश्चात् प्रार्थना करती है कि देवि ! तुम सब प्रकार से समर्थ हो और अंतर्यामिनी होने के कारण मेरे हृदय की बात भी जानती हो। अतएव श्रीकृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने की मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो[१७]। और देवि अंबिका उन पर प्रसन्न होकर श्रीमुख से गोविंदचंद्र को ही पति-रूप में पाने का आशीर्वाद देती हैं[१८]।

ए देवी की पूजा—अष्टछापी कवियों में नंददास ने 'कात्यायनी' अर्थात् दुर्गा देवी की पूजा का वर्णन किया है। कृष्ण को पति-रूप में पाने की कामना रखनेवाली व्रजबालाएँ हिम ऋतु के प्रथम मास में ही अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए 'कात्यायनी' की पूजा का संकल्प करती हैं। पहले वे मौन धारण कर यमुना में स्नान करती, फिर तट पर बालू की मूर्ति बनाकर उसे दिव्य वस्त्राभूषण पहनाती और चंदन, तंदुल, फूल आदि समर्पित करके उनके 'पाइनि' पड़ती हैं। तदनंतर विनय करती हैं कि हे गौरि, ईश्वरी, महामाया, दया करके नंद-सुवन को ही हमारा पति बनाओ[१९]। व्रजबालाओं की पूजा से संतुष्ट होकर महामाया उनकी मनोरथ

१६ रुकमिनि देवी-मंदिर आई।
भूप दीप पूजा सामग्री, अली संग सब ल्याई
× × ×
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करी बर देउ अदवराई।
मैं पूजा कीन्हीं इहि कारन, गौरी सुनि मुसुकाई।
पाइ प्रसाद अंबिका मंदिर रुकमिनि बाहर आई—सा ४१८२।

१७ विधिवत् देवी अरचि-अरचि बहु बंदन करिकै।
बिनती कीनी कुवरि गवरि-पद-पंकज धरिकै।
आदी देवि अंबिका ईस्वरी ! तुम सब लाइक।
महामाइ बरदाइ सु संकर तुमरे नाइक।
तुम सब जिय की जानति तुम सौं कहा दुराऊँ।
गोकुलचंद गोविंद नंदनंदन पति पाऊँ—नंद रुक्मि पृ १५१।

१८. ह्वै प्रसन्न अंबिका कहति सुनि रुकमिनि सुदरि।
पैहै बर गोविंदचंद, जिन जिनि चिंता करि—नंद, रुक्मि, पृ १५१।

१९ नंददास, 'दशम स्कंध पृ २९७-९८।

पूर्ण होने का आशीर्वाद देती हैं; और गोपियाँ देवी से वर पाकर अत्यंत प्रफुल्लित होकर जल-विहार में मग्न हो जाती हैं;[४०] क्योंकि उन्हें कात्यायनी के आशीर्वाद में पूरी आस्था है। 'सारावली' में कृष्ण द्वारा भी दुर्गा देवी की पूजा किये जाने का उल्लेख मिलता है[४१]।

गोविंदस्वामी के एक पद में कर्दम-वनदेवी-पूजन का उल्लेख हुआ है जो सबकी भाव-भक्ति स्वीकार करती हैं, किसी की 'बलि' नहीं चाहतीं और सबकी मनोकामना पूर्ण कर देती हैं[४२]।

ऐ गणपति और शारदा की पूजा—गणपति और शारदा की विधिवत् पूजा का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में नहीं है। सूरदास के केवल एक पद में श्रीकृष्ण की छठी के अवसर पर 'सोहिलो' के आदि में 'गौरि के साथ-साथ 'गनेसर' और 'देवि सारदा' की विनती का उल्लेख भर हुआ है[४३]। 'सारावली' में श्रीकृष्ण प्रथम पुत्र के विवाह के अवसर पर गणेश की पूजा करते हैं[४४]।

स व्रत—'व्रत' का उद्देश्य चाहे स्वास्थ्य की रक्षा हो, चाहे स्वर्ग की प्राप्ति, भारतीय समाज में इनका 'पालन' या 'निबाह' सब धार्मिक कृत्य के रूप में ही किया जाता है। यों तो 'व्रतों' की भी संख्या आज बहुत बढ़ गयी है परंतु अष्टछाप काव्य में केवल दो मुख्य व्रतों की चर्चा है—एक है 'चांद्रायण' और दूसरा है 'एकादशी' का व्रत। प्रथम अर्थात् 'चांद्रायण' व्रत[४५] के संबंध में किसी अष्टछापी

४० बोली वचन देवि रस भारे पूर्न मनोरथ होहुँ तुम्हारे।
कात्यायनि तें यौं वर पाइ बहुरि पैंठी जमुना जल आइ।
—नंद दसम पृ २१८।

४१ कहुँ इक दुर्गा देवि आनिकै धारि चित्र निज धाम।
करत होम बहु भाँति वेद धुनि सब विधि पूरन काम—सारा १०६।

४२ पूजन चली हो कर्दम बन देवी आयो हमार कोऊ संग।
भाव भगति मानति सबहिन की बलि न काहु की कछु लेती।
पुजवति सकल चीत की कामना, मीनल मुगट सरन सुरनारी—गोवि ५५७।

४३ गौरि गनेसर बीनऊँ (हो) देवी सारद तोहि।
गावौं हरि को सोहिलो (हो) मन-आगर दै मोहि—सा १ ८।

४४ प्रथम पुत्र को ब्याह आनि कै पूजत कहुँ गनेस—सारा ६८।

४५ बाद में जैन साधुओं द्वारा 'चांद्रायण' व्रत किये जाने का उल्लेख किया है।
—हर्षे मो आद पृ १ ७।

कवि ने विस्तार से नहीं लिखा है[४६]। केवल सूरदास ने एक पद में सौ बार 'चांद्रायन' करने पर भी बिना भगवंत-भजन के यमदूतों से मुक्ति न मिलने की बात कही है[४७]।

'एकादशी' के व्रत का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में दो प्रसंगों में किया गया है। प्रथम प्रसंग है अंबरीष का जो एकादशी को निराहार व्रत करके द्वादशी को आहार लेता है[४८]। द्वितीय प्रसंग में नंद जी द्वारा किये गये 'एकादशी' के व्रत का अपेक्षाकृत विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। 'एकादशी' को वे विधिवत् निराहार और निर्जल व्रत रखते हैं, सारे दिन केवल नारायण में ध्यान लगाते और रात्रि में जागरण करने का निश्चय करते हैं। 'हरि' मंदिर में पाटंबर डालकर पुहुप-मालाओं से 'मंडली' बनायी जाती है, चंदन से देव-सदन लिपाया जाता है, चौका देकर 'बैठकी' बनायी जाती है जिस पर शालग्राम को बैठाकर धूप-दीप-नैवेद्य चढ़ाया जाता है। पश्चात्, आरती करके नंद जी नाच नचाते हैं। इस प्रकार रात्रि के तीन पहर व्यतीत करके द्वादशी को 'पारन' करने के विचार से, नंद जी धोती झारी आदि लेकर स्नान के लिए जमुना-तट जाते हैं[४९]। नंददास ने नंद जी के एकादशी व्रत की चर्चा आधी पंक्ति में ही समाप्त कर दी है[५०]।

ग. *तीर्थ*—प्रमुख धार्मिक कृत्यों में 'तीर्थयात्रा' भी है जिससे सत्संग-लाभ के साथ-साथ विभिन्न महापुरुषों की लीलाभूमि के दर्शन से उनके असाधारण कृत्यों की ओर भी धर्मप्राण व्यक्ति का ध्यान जाता है। अष्टछाप-काव्य में जिन तीर्थों के नाम आये हैं, अकारादिक्रम से वे ये हैं—अयोध्या, कुरुक्षेत्र या कुरुमंडल, केदार, गया गोकुल, द्वारका नीमसार, प्रयाग, बानारस या 'बारानसी', मथुरा, वृन्दावन,

४६ 'चांद्रायण' व्रत महीने भर का होता है जिसमें चंद्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार भोजन और कौर घटाये-बढ़ाये जाते हैं—लेखिका।

४७ सहस बार जौ बेनी परसौ 'चांद्रायन कीजै सौ बार'।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु जम के दूत खरे हैं द्वार—सा २१।

४८ एकादसी करै निराहार। द्वादसि पीछै लै आहार—सा ९-५।

४९ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद ९८४।

५० परमानंद मूरति जो नंद, अरु घर मैं सुत सब सुख कंद।
'सो एकादसि व्रत आचरै हरि इच्छा बिन कछौ अनुसरै।
—नंद०, दशम, पृ ११८।

ब्रज और 'हिवार'। इनमें 'अयोध्या' की महिमा का बखान करते हुए स्वयं श्रीराम ने श्रीमुख से कहा है कि इसकी तुलना में मैं सुरपुर में भी नहीं रहना चाहता और यदि विधाता के विधान में अंतर न पड़े तो मैं अयोध्या छोड़कर वैकुंठ भी न जाना चाहूँगा[५१]।

'कुरुक्षेत्र' में श्रीकृष्ण ने, सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान का बड़ा महत्त्व बताया है[५२]। परमानंददास ने भी कुरुमंडल में 'सूर्यग्रहण' के अवसर पर पाडुनों के मिलने की बात लिखी है[५३]। गया बनारस और केदार तीर्थों के संबंध में सूरदास का मत है कि वहाँ किये गये अश्वमेध आदि यज्ञों का विशेष फल मिलता है[५४]। 'बनारस' या 'बारानसि' तीर्थ को उनके एक पद में 'मुक्ति-क्षेत्र' कहा गया है[५५]। 'नीमसार' या 'नैमिषारण्य' अनेक ऋषियों का वास-स्थान होने के कारण प्रसिद्ध तीर्थ रहा है[५६]। 'बेनी' या त्रिवेणी, प्रयाग का प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ स्नान बहुत फलदायक माना जाता है[५७] और 'हिवार' हिमालय का कोई तीर्थ जान पड़ता है जहाँ तन 'गारने' का विशेष माहात्म्य बताया गया है[५८]।

शेष रहे गोकुल, द्वारका, मथुरा, वृन्दावन और ब्रज नामक तीर्थ जिनका संबंध अष्टछापी कवियों के आराध्य की लीलाओं से है। जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है, मथुरा और द्वारका से संबंधित कृष्ण के ऐश्वर्य-रूप के प्रति अष्टछापी कवियों का वह आस्था-भाव नहीं था जो गोकुल-वृन्दावन के रस-रूप के प्रति था।

५१ सूरसागर नवम स्कंध पद १६५।
५२. बड़ो परब रवि-ग्रहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
५३ क. जब रवि-ग्रहन भयो 'कुरुमंडल' तब सब कोउ आयो—परमा कीर्त. ११६६।
ख सूरज पर्व भयो 'कुरुमंडल' सब कोउ आयो न्हात—परमा कीर्त. ११६५।
ग. चलो सकल 'कुरुखेत' तहाँ मिलि न्हैये जाई—सा ४२६५।
५४ अश्वमेध जग्यु जो कीजै 'गया बनारस अरु केदार'—सा २१।
५५. बन बारानसि मुक्ति-क्षेत्र है चलि तोकौं दिखराऊँ—सा १ १४।
५६.क सो पुनि 'नीमसार' में आयो। तहाँ रिषिनि को दरसन पायो—सा १ २९८।
ख 'निमिषारन' आय बस्यू जब सकल बिप्र सिर मायो—सा ८२९।
५७ क. सहस बार जो बेनी परसौ 'चंद्रायन' कीजै सौ बार—सा २१।
ख 'तीरथराज प्रयाग' प्रकट भई जमुना बेनी संगि—परमा ५८६।
५८. राम नाम-बिनु क्यों छूटौगे तऊ न पूजै जौ तनु गारौ जाइ हिवार—सा २१।

अतएव इन कवियों ने 'गोकुल', 'वृन्दावन' और 'व्रज' की ही महिमा का उपर्युक्त सभी तीर्थों से बढ़कर गान किया है। सूरदास ने 'वृन्दावन' को मनोरथ पूर्ण करने में 'कल्पवृक्ष' और 'कामधेनु' से बढ़कर बताया है[५९]। इसी से भक्त सूर सांसारिक 'घर' से 'वृन्दावन' नहीं छोड़ना चाहता[६०]। सारावली में 'वृन्दावन' की महिमा का कारण कृष्ण का नित्य विहार-स्थल होना बताया गया है[६१]। सूरदास की परम कामना 'वृन्दावन' की रेणु होकर सदैव वहीं वास करने की रही है[६२]। अष्टछाप के परमाराध्य श्रीकृष्ण को 'वृन्दावन' के प्रथम दर्शन से ही परम सुख होना कहा गया है[६३] और वे स्वयं भी इस बात को सखाओं से स्वीकारते हुए कहते हैं कि इसके सामने मैं बैकुंठ के सुख भी भूल जाता हूँ[६४]। वृन्दावन में बजायी गयी श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर बैकुंठवासी नारायण अपनी शक्ति कमला से 'वृन्दावन' को 'धन्य' बताते हुए कहते हैं कि वहाँ का-सा सुख त्रैलोक्य में नहीं है[६५]।

परमानंददास ने 'वृन्दावन' को घनश्याम का नित्य विहार-स्थल बताया है[६६]। नंददास की सम्मति में जिस 'वृन्दावन'-सी रेणु बैकुंठ में भी नहीं है[६७] उसका वर्णन

५९ धनि यह वृन्दावन की रेनु।

× × ×

सूरदास यहाँ की सरवरि नहिं कल्पवृक्ष सुरधेनु—सा ४९१।

६ क ह्याँ न करत हूर सब मन-कर वृन्दावन' सों ठाम—सा १-७६।

ख बंसीवट वृन्दावन' जमुना तजि बैकुंठ न जावै—सा २-६।

६१ जहँ 'वृन्दावन आदि अजिर जहँ कुंजलता विस्तार।

तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृङ्ग गुंजार—सारा १।

६२ करहु मोहि ब्रज-रेनु देहु वृन्दावन वासा'।

माँगों यहै प्रसाद और नहिं मेरे आसा—सा नें, पृ १५८।

६३ 'वृन्दावन देख्यो नँद-नंदन अतिहिं परम सुख पायो—सा ४१५।

६४ सूरसागर दशम स्कंध, पद ४४६।

६५ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद १६४।

६६ श्री घनस्याम मनोरथ मूरति करत बिहार नित्य वृन्दावन।

—'परमा कीर्तन-संग्रह भाग २ पृ १७१।

६७ 'जो रज ब्रज वृन्दावन माहीं बैकुंठादि लोक में नाहीं।

—नंद पंचमंजरी रूप पृ २४।

अनंत मुखों में अनंत रसना होने पर भी नहीं किया जा सकता[६८]। 'रासपंचाध्यायी' में नंददास ने 'वृन्दावन' को 'सकल सिद्धिदायक कहा है'[६९] जिसकी छवि का वर्णन हो ही नहीं सकता[७०]। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में नंददास ने 'वृन्दावन' के 'छिन छिन घन छवि पाने' के साथ-साथ उसको नंदसुवन का नित्य-सदन बताया है[७१] जिसका दर्शन केवल अधिकारी जनों को ही हो सकता है[७२]।

'वृन्दावन' के संबंध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सब 'व्रज' की महिमा का ही वर्णन समझना चाहिए, अष्टछापी कवियों ने दोनों के माहात्म्य का बखान साथ-साथ किया भी है[७३]। 'बाल-वत्स-हरण' प्रसंग में सूरदास के ब्रह्मा कभी तो 'वृन्दावन-रेनु' करने का वरदान माँगते हैं[७४] और कभी व्रज-'बीथिनि' में बसने का[७५]। इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। वास्तव में वृन्दावन उस 'व्रज मंडल' के अंतर्गत ही है जिसकी परिक्रमा द्वारा पाप नष्ट करने की बात स्वयं

६८ जो मुख होयँ अनंत मखि रसना ताहि अनंत।
'वृन्दावन गुन-कथन को तऊ न पहुँचे अंत—नंद पंच रूप पृ १६८।
६९ अब सुंदर 'श्री वृन्दावन' को गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धि-दाइक नाइक पै सब बिधि पाऊँ—नंद दास पृ १५७।
७० 'श्री वृन्दावन' चिद्घन कछु छवि बरनि न जाई—नंद दास, पृ १५७।
७१ 'श्री वृन्दावन' चिद्घन छिन छिन घन छवि पावै।
नंद-सुवन को नित्य-सदन, स्रुति-स्मृति जिहिं गावै—नंद सिद्धांत पृ १८४।
७२ 'बिनु अधिकारी भये नहिंन वृन्दावन सूझै'।
रेनु कहाँ तैं सूझै, जब लगि वस्तु न बूझै—नंद दास, पृ १८२।
७३ क 'वृन्दावन ब्रज को महत कापै बरन्यौ जाइ'—सा ४९२।
ख करहु मोहिं ब्रज-रेनु देहु वृन्दावन बासा—सा ४९२।
७४ क माधौ, मोहिं करौ वृन्दावन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँदनंदन दिन प्रति बन बन चारत धेनु—सा ४८९।
ख 'धनि यह वृन्दावन की रेनु'।
नंदकिसोर चरावत गैयाँ मुखहिं बजावत बेनु—सा ४९०।
७५ 'ऐसैं बसिये ब्रज की बीथिनि'।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि उदर भरीजै सीथिनि।
पैंडे के सब वृच्छ बिराजत छाया परम पुनीतनि।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि-लोटि 'ब्रज-रज लागे रँग रीतिनि'—सा ४९।

अतएव इन कवियों ने 'गोकुल', 'वृन्दावन' और 'व्रज' की ही महिमा का उपर्युक्त सभी तीर्थों से बढ़कर गान किया है। सूरदास ने 'वृन्दावन' को मनोरथ पूर्ण करने में 'कल्पवृक्ष' और 'कामधेनु' से बढ़कर बताया है[९]। इसी से भक्त सूर सांसारिक 'घर' से 'वृन्दावन' नहीं छोड़ना चाहता[१०]। सारावली में 'वृन्दावन' की महिमा का कारण कृष्ण का नित्य विहार-स्थल होना बताया गया है[११]। सूरदास की परम कामना 'वृन्दावन' की रेणु होकर सदैव वहीं वास करने की रही है[१२]। व्रजवास के परमाराध्य श्रीकृष्ण को 'वृन्दावन' के प्रथम दर्शन से ही परम सुख होना कहा गया है[१३] और वे स्वयं भी इस बात को सखाओं से स्वीकारते हुए कहते हैं कि इसके सामने मैं बैकुंठ के सुख भी भूल जाता हूँ[१४]। 'वृन्दावन' में बजायी गयी श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर बैकुंठवासी नारायण अपनी शक्ति कमला से 'वृन्दावन' को 'धन्य' बताते हुए कहते हैं कि यहाँ का-सा सुख त्रैलोक्य में नहीं है[१५]।

परमानंददास ने 'वृन्दावन' को घनश्याम का नित्य विहार-स्थल बताया है[१६]। नंददास की सम्मति में, जिस 'वृन्दावन'-सी रेणु बैकुंठ में भी नहीं है[१७] उसका वर्णन

५६ धनि यह वृन्दावन की रेनु।
× × ×
सूरदास यहाँ की सरवरि नहिं कल्पवृक्ष सुरधेनु—सा ४९१।
१० क छाँड़ि न करत सूर सब भव डर वृन्दावन सौं प्रेम—सा १०७१।
ख बंसीबट वृन्दावन जमुना तजि बैकुंठ न आवै—सा १०४।
११ जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहँ कुंजलता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार—सारा ९।
१२. करहु मोहि ब्रज-रेनु 'देहु वृन्दावन बासा'।
माँगौं यहै प्रसाद और नहिं मेरे आसा—सा ४९, पृ १५८।
१३ वृन्दावन देख्यो नँद-नंदन अतिहिं परम सुख पायौ—सा ४१५।
१४ 'सूरसागर' दशम स्कंध पद ४०६।
१५. 'सूरसागर' दशम स्कंध पद १६४।
१६ श्री घनस्याम मनोरथ मूरति करत विहार नित्य वृन्दावन।
—'परमा कीर्तन-संग्रह' भाग २, पृ १०८।
१७ जो रज अज वृन्दावन माहीं बैकुंठादि लोक में नाहीं।
—नंद पंचमंजरी रूप पृ १४।

है[८३]। गंगा-जल के स्पर्श से यम-सेना को जीतने की क्षमता जीव में आ जाती है और उसका नाम लेने मात्र से सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं[८४]। एक अन्य पद में सूरदास ने गंगा को 'मुक्ति की दाता',[८५] त्रिभुवन-हार[८६] आदि बताया है। परमानंददास ने भी गंगा की महिमा का इसी प्रकार बखान किया है[८७]।

परंतु 'अष्टछाप' के आराध्य श्रीकृष्ण का संबंध जिस वृन्दावन से है वह यमुना के किनारे बसा है। इसलिए अष्टछापी कवियों ने गंगा से भी अधिक विस्तार से 'यमुना' की महिमा का गान किया है। सूरदास ने 'यमुना' में स्नान करनेवाले के पाप नष्ट होने और उसके सामने यमराज के भी हाथ जोड़े खड़े रहने की बात कही है[८८]। कृष्णदास यमुना को 'परम पुनीत' और 'जग-पावनी' कहकर[८९] उसको पाना 'सकल निधि' पाने के समान मानते हैं[९०] और 'यमुना' का नाम लेने से

८३. अमृत हूँ तैं अमल अति गुन स्रवत निधि आनंद।
परम सीतल जानि संकर सिर धरयौ हित चंद।
नाग-नर-पसु सबनि चाख्यौ सुरसरी कौ बुंद—सा ९ १।

८४ सोभित अंग तरंग त्रिसंगम धरी धार अति पैनी।
जा परसैं 'जीतैं जमसैनी' जमन कपालिक जैनी।
एकै नाम लेत सब भाजैं पीर सौ भव-भय सैनी—सा ९ ११।

८५. 'पतितहिं पुनीत' विष्णु पादोदक महिमा निगम पढ़त गुनि चैन।
'परम पवित्र मुक्ति की दाता भागीरथहिं भक्ति बर दैन—सा ९ १२।

८६ त्रिभुवन हार सिंगार भगवती' सलिल चराचर जाके ऐन—सा ९ १२।

८७ क 'गंगा तीन लोक उद्धारक।
मन कर्म बचन तैं तुम परसीं सकल बिस्व की तारक।
दरसन परसन पान किए तैं तुम कीन जीव कृतारथ—परमा ५८४।

ख गंगा पतितनि की सुख देनी।
सेवा करि भागीरथ लाये पाप काटन कौ पैनी—परमा ५८५।

ग 'परमेस्वरी • देवी मुनि बंदे पवित्रे देवि गंगे।
बामन चरन-कमल-नख रंजित सीतल बारि तरंगे।
मज्जन पान करत जे प्रानी त्रिविध ताप दुख भंगे—परमा ५८६।

८८. मह जमुने' सुगम अगम औरें।
मात जौ न्हात अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहत हाथ जोरैं—सा १-२२२।

८९. नमो 'तरनि-तनया परम पुनीत जग पावनी'—कृष्ण कीर्तन, पृ ८।

९० तुम जु पाये ते सकल निधि पावहीं—कृष्ण कीर्तन पृ ८१।

श्रीकृष्ण ने श्रद्धा से कही है[७६]। सूरदास को 'ब्रज-जैसा सुख संसार में नहीं दिखायी देता'[७७] तो परमानंददास भी इसीलिए वैकुंठ नहीं जाना चाहते कि नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय, यमुना कदंब-कुंज आदि जो कुछ ब्रज में है, वह वहाँ कुछ भी नहीं है[७८]। इसी प्रकार 'गोकुल' के लोगों को बड़भागी बताकर परमानंददास ने उसे भी ब्रज के समकक्ष स्थान प्रदान किया है[७९]।

घ *तीर्थस्नान*—यों तो स्नान का महत्व स्वास्थ्य के लिए सर्वविदित है, परंतु विशेष अवसरों पर विशेष नदी या तीर्थ में स्नान को भारतीय समाज धार्मिक कृत्य मानता है। यद्यपि रामायण-काल में ही गंगा यमुना, तमसा, गोदावरी, सरयू, मालयवती आदि सभी नदियों को भारतीय संस्कृति में दिव्य पद प्रदान किया गया था[८०] तथापि गंगा का महत्व, जन-विश्वास के अनुसार सर्वोपरि है, यहाँ तक कि उसे भगवान का ही स्वरूप बताया गया है[८१]। सूरदास ने गंगा में स्नान करनेवाले का हरिपुर जाना बताकर[८२] उक्त जन-विश्वास ही की पुष्टि की है। उन्होंने गंगा के जल को अमृत के समान बताया है जिसकी कामना नाग, नर पशु सभी करते

७६ श्री मुख मानी कही विलँब यब नैंकु न लावहु।
ब्रज परिकर्मा करहु देह को पाप नसावहु'—सा ४९२।

७७ 'कहाँ सुख ब्रज को सो संसार'।
कहाँ सुखद बंसीबट जमुना यह मन सदा विचार।
कहँ बन धाम, कहाँ राधा सँग कहाँ संग ब्रज बाम।
कहँ रस-रास बीच अंतर सुख कहाँ नारि तन ताम।
कहाँ लता तरु-तरु प्रति झूमनि कुंज-कुंज नव धाम।
कहाँ विरह-सुख बिन गोपिनि सँग सूर स्याम मन काम—सा १४१६।

७८ 'कहा करूँ वैकुंठहि जाय।
जहाँ नहि नँद जहाँ जसोदा नहिं गोपी ग्वाल नहिं गाय।
जहँ न जल जमुना को निरमल और नहीं कदमनि की छाय।
परमानँद प्रभु चतुर ग्वालिनी 'ब्रज-रज तजि मेरी जाय बलाय'—परमा ८२१।

७९ श्री 'गोकुल के लोग बड़भागी'।
नित उठि कमलनयन-मुख निरखत चरन-कमल अनुरागी—परमा ८७०।

८० 'रामायण कालीन संस्कृति', पृ २५५।

८१ 'संप्रदाय प्रदीपालोक' अनु श्री कंठमणि शास्त्री पृ ९२।

८२ 'गंग-प्रवाह' माहिं जो न्हाय। सो पवित्र ह्वै हरिपुर जाइ—सा ९-९।

है[८३]। गंगा-जल के स्पर्श से यम-सेना को जीतने की क्षमता जीव में आ जाती है और उसका नाम लेने मात्र से सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं[८४]। एक अन्य पद में सूरदास ने गंगा को 'मुक्ति की दाता', [८५] 'त्रिभुवन-हार'[८६] आदि बताया है। परमानंददास ने भी गंगा की महिमा का इसी प्रकार बखान किया है[८७]।

परंतु 'अष्टछाप' के आराध्य श्रीकृष्ण का संबंध जिस वृन्दावन से है वह यमुना के किनारे बसा है। इसलिए अष्टछापी कवियों ने गंगा से भी अधिक विस्तार से 'यमुना' की महिमा का गान किया है। सूरदास ने 'यमुना' में स्नान करनेवाले के पाप नष्ट होने और उसके सामने यमराज के भी हाथ जोड़े खड़े रहने की बात कही है[८८]। कृष्णदास यमुना को 'परम पुनीत' और 'जग-पावनी कहकर'[८९] उसको पाना 'सकल निधि' पाने के समान मानते हैं[९०] और यमुना' का नाम लेने से

८३ अमृत हूँ तैं अमल अति गुन स्रवत निधि आनंद।
परम सीतल जानि संकर सिर धरयौ तिग चंद।
नाग-नर पसु सबनि चाख्यौ 'सुरसरी को बुंद—सा ९ ११।

८४ सोभित अंग तरंग त्रिसंगम' धरी धार अति पैनी।
जब परसैं जीतैं जमसैनी जमन कपासिक, जैनी।
एकै नाम लेत सब भाजै पीर सो भव-भय सैनी—सा ९ ११।

८५ 'अतिहिं पुनीत बिष्नु पादोदक महिमा निगम पढ़त गुनि चैन।
'परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथहिं भक्त बर दैन—सा ९ १२।

८६ त्रिभुवन हार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाके ऐन—सा ९ १२।

८७ क. 'गंगा तीन लोक उद्धारक।
ब्रह्म कमंडल तें तुम प्रगटी सकल विस्व की तारक।
दरसन परसन पान किये तें तुम कीन जीव कृतारथ—परमा ५८४।

ख गंगा पतितनि की सुख देनी।
सेवा करि मागीरथ ताके पाप काटन का पैनी—परमा ५८५।

ग 'परमेस्वरी'- देवी मुनि बंदे पवित्रे देवि गंगे।
बामन चरन-कमल-नख रंजित सीतल बारि तरंग।
मज्जन पान करत जे प्रानी त्रिविध ताप दुख भंग—परमा ५८६।

८८. मक्त जमुने' सुगम अगम कोरैं।
प्रात जो न्हात अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहत हाथ जोरैं—सा १-२२२।

८९ नमो 'तरनि-तनया परम पुनीत जग पावनी —कृष्ण, सौम, पृ ८।

९ तुम जु पाये ते सकल निधि पावहीं—कृष्ण सौम पृ ८१।

सभी पापों के दूर होने की बात कहते हैं[९१]। परमानंददास भी जमुना की महिमा गाते नहीं अघाते[९२]।

गंगा और जमुना के अतिरिक्त 'सारावली' में कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला के साथ-साथ प्रयाग में त्रिवेणी-स्नान का भी महत्व बताया गया है तथा इन तीर्थों के अतिरिक्त 'सतद्रु', चंद्रभागा और गंगा में भी स्नान करने की बात कही गयी है[९३]। कपिल मुनि के प्रसंग में उतका 'गंगासागर' में भी नहाना 'सारावली में बताया गया है[९४]। 'सूरसागर' में सूर्य-ग्रहण[९५] के अवसर पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान करने की महिमा का बखान स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से किया है[९६]।

९१ जमुना के नाम अघ दूर भाजे—कृष्ण, सीम, पृ ८१।
९२ क स्याम कला हरत न्हात अति रस भर जल क्रीडा सुखकारी—परमा ५७६।
ख अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरनिनंदिनी।
स्याम बरन भलकत रूप लोल लहर बर अनूप सेवित संतत मनोग बायु मंदिनी।
—परमा ५७७।
ग श्री जमुना यह प्रसाद हौं पाऊँ।
तुम्हरे निकट रहौं निसिबासर रामकृष्न गुन गाऊँ।
मज्जन करूँ बिमल जल पावन चिंता कलह बहाऊँ।
तिहारी कृपा तें भानु की तनया हरि-पद प्रीति बढ़ाऊँ—परमा ५७८।
घ तू जमुना गोपालहि भावै।
'जमुना जमुना' नाम उच्चारत धर्मराज तरजी न चलावै।
जो जमुना को दरसन पावै अरु जमुना जल पान करै।
सो प्रानी जमलोक न देखै चिभगुन लेखौ न परै।
त जमुना को आन महातम बार बार परनाम करै।
ते जमुना अवगाहन मज्जन चिंता ताप तन के जु हरे—परमा ५७९।
९३ सुभ कुरुक्षेत्र अयोध्या मिथिला प्राग त्रिबेनी न्हाय।
पुनि 'सतद्रु और चंद्रभागा गंग व्यास न्हवाय—सारा ८२८।
९४ जल को रूप तुरत है गो यह हरि के रूप समान।
चले मगन ह्वै ध्यान ध्यान कर गंगासागर न्हान—सारा ५९।
९५ सूर्यग्रहण के अवसर पर बनिपर न भी गंगा सिंधु जमुना आदि नदियों के साथ-साथ थानेस्वर के तालाब पर भी हिंदुओं के नहाने की बात लिखी है—'हूँ मिस्त दर दि मुगल इंपायर' पृ १२।
९६ कही परब रवि-ग्रहन कहा कहौं तासु बड़ाइ।
चलौ सकल कुरुखेत तहँ मिलि न्हैये जाई—सा ४२७५।

क दान—शुभ कार्यों अथवा पर्वोत्सवों में याचकों को प्रसन्नता से दिया जानेवाला 'दान' वस्तुतः धार्मिक कृत्य नहीं है जिसका वर्णन अष्टछाप-काव्य में हर्ष के सभी अवसरों पर, बड़े विस्तार से किया गया है। इसी प्रकार किसी विपत्ति आदि से मुक्ति पाने पर दिया जानेवाला दान भी सामान्य कोटि का ही है, यथा उदाहरणार्थ वरुणपाश से मुक्ति पाने पर यशोदा का नंद से दान देने को कहना[१७] उदारता-सूचक ही माना जायगा। अतएव धार्मिक कृत्य तो केवल वह 'दान' है जो पुण्यार्जन के उद्देश्य से दिया जाता है। ऐसे 'दान' का महत्व तीर्थ, व्रत आदि के समकक्ष बताया गया है जिसके न करने पर सुख की आशा करना व्यर्थ ही है[१८]। अष्टछापी कवियों ने धार्मिक कृत्य के अंतर्गत आनेवाले 'दान' की चर्चा अधिक नहीं की है।

ख तप—सामान्यतया साधकों में 'तप' के दो रूप प्रचलित रहे हैं। प्रथम का संबंध, पंचाग्नि में तपने-जैसी घोर कष्टदायी बातों से है और द्वितीय का अहिंसादि महाव्रतों का पालन करते हुए, भोग-सामग्रियों का परित्याग करके, संयम नियम से जीवन बिताने से। अष्टछापी कवियों ने 'अरत-ज्वाला' कहकर प्रथम प्रकार के तप की ओर संकेत किया है[१९] और द्वितीय के बिना जीवन को व्यर्थ बताया है[१]। उनकी गोपियाँ कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार का तप करती हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि प्रेम तप व्रत आदि की साधना से 'पाषाण' तक द्रवित हो जाते हैं[१]। अतएव जिस प्रकार शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती ने तप किया था,[२] वैसा ही घोर तप, शीत-घाम आदि के शारीरिक कष्टों की चिंता छोड़कर,

१७ अब तौ कुसल परी पुन्यनि तैं द्विजनि करौ कछु 'दान'—सा ९८५।

१८ अब कैसे पैयत सुख माँगे।

× × ×

तीरथ-ब्रत कबहूँ नहिं कीन्हौ 'दान' दियौ नहिं आगे—सा १-६१।

१९. अरत ज्वाला गिरत गिरि तैं स्व-कर काटत सीस—सा ११६।

१ बिरथा जन्म लियौ संसार।

जप तप, तप नाहिं कीन्हौ, अल्प मति विस्तार—सा १२१४।

१ जप तप व्रत संयम, साधन तैं, द्रवित होत पाषान—सा ७६५।

२. कालिदास 'कुमारसंभव' पंचम सर्ग, श्लो २८ से ६६।

सभी पापों के दूर होने की बात कहते हैं[११]। परमानन्ददास भी यमुना की महिमा गाते नहीं अघाते[१२]।

गंगा और यमुना के अतिरिक्त 'सारावली' में कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मिथिला के साथ-साथ प्रयाग में त्रिवेणी-स्नान का भी महत्व बताया गया है तथा इन तीर्थों के अतिरिक्त सतद्रु, चंद्रभागा और गंगा में भी स्नान करने की बात कही गयी है[१३]। कपिल मुनि के प्रसंग में वनचर 'गंगासागर' में भी नहाना 'सारावली' में बताया गया है[१४]। 'सूरसागर' में सूर्य-ग्रहण[१५] के अवसर पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में स्नान करने की महिमा का बखान स्वयं श्रीकृष्ण ने श्रीमुख से किया है[१६]।

९१ यमुना के नाम अघ दूर भाजे—कृष्ण सीम, पृ ८१।

९२ क. स्याम अंग हरत न्हात अति रस भर जल क्रीड़ा सुखकारी—परमा ५७६।

ख अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरनितनिनी। स्याम बरन अंतरकत रूप लोल लहर बर अनूप सेवित संतत मनोज बापु मंदिनी। —परमा ५७७।

ग श्री यमुना यह प्रसाद हों पाऊँ।
तुम्हरे निकट रहौं निसिबासर रामकृष्न गुन गाऊँ।
मज्जन करूँ विमल जल पावन चिंता कलह बहाऊँ।
तिहारी कृपा तें भानु की तनया हरि पद प्रीति बढ़ाऊँ—परमा ५७८।

घ द् यमुना गोपालहिं भावें।
'यमुना यमुना' नाम उच्चारत धर्मराज तरको न पठावे।
जो यमुना को दरसन पावै अव यमुना जल पान करै।
सो प्रानी यमलोक न देखै बिजगुन लेखौ न धरै।
ज यमुन की आन महातम बार बार परनाम करै।
ते यमुना अवगाहन मज्जन चिंता ताप तन क यु हरे—परमा ५७९।

९३ सुभ कुरुक्षेत्र अयोध्या मिथिला प्राग त्रिवेनी न्हावे।
पुनि 'सतद्रु और चंद्रभागा गंगा स्नान न्हावै—सारा ८८८।

९४ जल को रूप तुरत ह्वै गई यह हरि के रूप समाय।
पाछे मगन ह्वै असनान कर गंगासागर न्हाय—सारा ५६।

९५ सूर्यग्रहण के अवसर पर 'बर्नियर' ने भी गंगा सिंधु यमुना आदि नदियों के साथ-साथ थानेश्वर के तालाब पर भी हिंदुओं के नहाने की बात लिखी है—ट्रैवेल्स इन दि मुगल ऍपायर पृ १२।

९६ बड़ो परब रवि-ग्रहन कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलो सकल कुरुखेत तहाँ मिलि न्हैयै जाई—सा ४२७५।

है[११]। 'साराबली' में स्वयं श्रीकृष्ण यज्ञ, होम आदि धार्मिक कृत्य करते बताये गये हैं[१२]।

ग. *श्राद्ध*—दो प्रकार के श्राद्धों की चर्चा अष्टछाप-काव्य में है। प्रथम प्रकार के 'नांदीमुख' आदि वे श्राद्ध हैं जो पुत्र-जन्मादि अवसरों पर किए जाते हैं, जैसा कि सूरदास ने *नंद जी द्वारा किया जाना बताया है*[१३]। दूसरे प्रकार का *'श्राद्ध'* धार्मिक कृत्य है जिसका न किया जाना समाज की अधार्मिक स्थिति का परिचायक है[१४]। ऐसे श्राद्ध को 'साराबली' में धार्मिक कृत्य' कहा गया है जिसका संपादन *करते और ब्राह्मणों को दक्षिणा देते स्वयं श्रीकृष्ण नारद को दिखायी देते हैं*[१५]।

घ. *कथा-श्रवण*—अंतिम धार्मिक कृत्य है 'कथा-श्रवण'। 'सूरदास' ने 'भागवत' की कथा न सुनने पर जीवन को व्यर्थ ही बताया है[१६]। अपनी लिखी कुछ कथाओं के अंत में उन्होंने उनके सुनने से होनेवाला पुण्य भी बताया है। उदाहरणार्थ यमलार्जुन-उद्धार की लीला सुनने से, उनकी सम्मति में समस्त पाप दूर हो जाते हैं;[१७] 'यज्ञपत्नी' प्रसंग से हरि-भक्ति की प्राप्ति होती है;[१८] 'ज्योनार' प्रसंग से भक्ति के साथ अभय पद मिलता है[१९]। इसी प्रकार नंददास ने कथा-श्रवण द्वारा कृष्ण का भी वश में हो जाना कहा है[२०]। अपने दशम स्कंध के प्राय सभी

---

११ जप, तप न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन में धरै—सा १ २६ ।

१२. करत होम बहु भाँति वेद-धुनि सब बिधि पूरन काम—सारा ६७६।

१३ तब न्हाइ नंद भए ठाढ़े, अरु कुस हाथ धरे।
   नांदी मुख पितर पुजाइ अंतर सोच हरे—सा १ ५४।

१४ जप तप न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन में धरै—सा १ २६ ।

१५. कहुँ श्राद्ध करत पितरनि को तर्पन करि बहु भाँति।
   कहुँ बिप्रनि को देत दच्छिना कहुँ भोजन की पाँति—सा ६७१।

१६ नर तैं जनम पाइ कह कीनों ?
   श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि गुरु गोबिंद नहिं चीनो—सा १-६५।

१७ सूरदास यह लीला गावै। कहत सुनत सबकें मन भावै।
   जो हरि चरित ध्यान उर राखै। आनंद सदा दुरित-दुख नासै—सा ३९१।

१८. यह लीला सुनि गावै जोई। हरि की भक्ति सूर तिहिं होइ—सा ८ ।

१९. यह ज्योनार सुनै जो गावै। सो निज भक्ति अभै पद पावै—सा १२११।

२ हो भागवत-कथा रसिक ! सरस मन दै यह सुनियै।

वे कहीं ऋतुओं में करती हैं[३]। इस प्रकार के तप के प्रति अष्टछापी कवियों की आस्था का प्रमाण यह है कि उन्होंने गोपियों की तप-साधना से उनकी मनोकामना का पूर्ण होना बड़े उल्लास से लिखा है। स्वयं उनके आराध्य गोपियों के तप से संतुष्ट होकर उनकी मनोकामना पूर्ण करने की योजना बनाते हैं[४]। केवल श्रीकृष्ण ही नहीं, देवी भी व्रजबालाओं के वर्ष भर के तप से संतुष्ट होकर 'वर' देती हैं[५]।

घ यज्ञ—अष्टछाप-काव्य में चार प्रकार के 'यज्ञों' का उल्लेख हुआ हुआ है। प्रथम अश्वमेध[६] और राजसूय[७] जैसे यज्ञ राजा-महाराजाओं के कृत्य हैं। द्वितीय वे यज्ञ हैं जिनमें पशुओं की बलि दी जाती है[८]। तीसरे प्रकार का यज्ञ उन ब्राह्मणों का धार्मिक कृत्य समझना चाहिए जिनके पास श्रीकृष्ण ने गोप बालकों को भोजन लेने भेजा था[९] और जिन्होंने 'यज्ञ की रसोई' पहले गोप बालकों को देना अस्वीकार कर दिया था[१]। चौथे प्रकार के यज्ञ संस्कारादि अवसरों पर किये जाते हैं जिनकी चर्चा इसी प्रसंग में पीछे की जा चुकी है। सूरदास के एक पद में यज्ञादि कृत्य न करना धर्महीनता कही गयी

३ क सीत भीत न करति कुवरि कृस भई सुकुमारि।
  जहाँ रितु तप करति नीकैं गेह नेह बिसारि—सा ७६७।
 ख अति तप करति घोषकुमारि।
  × × ×
  सरद ग्रीषम डरति नाहीं, करति तप तनु गारि—सा ७८१।
 ग सीत-भीत नहिं करति छहौं रितु त्रिविधकाल जल खोरैं।
  गौरीपति पूजति तप साधति, करत रहति नित नेम।
  भोग-रहित निसि जागि चतुर्दसि जसुमति-सुत कैं प्रेम—सा ७८२।
४ 'सूरसागर', दशम स्कंध पद ७८१।
५. यह व्रत हित करि देवी पूजी। दे कछु मन अभिलाष न दूजी।
  दीजै नंद सुवन पति मेरैं। जौ पै होइ अनुग्रह तेरैं।
  तब करि अनुग्रह वर दियौ, अब भएउ सुफलिनि तप कियौ—सा १ ७२।
६ अस्वमेध जज्ञ जो कीजै गया बनारस अरु केदार—सा २ १।
७ राजसूय मैं चरन पखारे स्याम लिये कर पानी—सा १ ११।
८ हम तौ भईं जग के पसु ज्यौं केतिक दुख सहियै—सा १२९१।
९. हरि कह्यौ जग करत तहँ बाम्हन। जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन—सा ८ ।
१ जग देत हम करी रसोई। ग्वालनि पहिलैं देहिं न सोई—सा ८ ।

को जितना महत्व देते हैं, उतना तीर्थयात्रा, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, श्राद्ध आदि को नहीं देते। भक्ति की सैद्धांतिक बातों में भी वे ही उनको विशेष रुचिकर रही हैं जिनका सम्बन्ध भाव से अधिक है। सच तो यह है कि सरल और भावुक अष्टछापी कवि भाव की ही संपन्नता को भक्ति का सबसे बड़ा साधन मानते हैं जिस पर उनका आराध्य रीझ सकता है और इस दृष्टि से निस्संदेह उनका सन्देश अत्यंत उदार है।

प्रमुख अध्यायों के श्रवण से होनेवाले लाभ उन्होंने बताये हैं[११]। सूरदास ने एक पद में कहा है कि जहाँ हरि की कथा होती है वहाँ गंगा, जमुना, सिंधु, सरस्वती, गोदावरी, सभी नदियाँ आ जाती हैं और सभी तीर्थों का वहाँ 'वासा' हो जाता है। तात्पर्य यह कि सभी पुण्यसलिला नदियों में स्नान और सभी तीर्थों की यात्रा से जो धर्म-लाभ होता है, वह केवल हरि कथा सुनने से सहज ही प्राप्त हो जाता है[१२]।

समीक्षा—उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अष्टछाप काव्य में, तत्कालीन जन-समाज में प्रचलित धर्म के सैद्धांतिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षों के सम्बन्ध में विचार मिलते हैं। परंतु पुष्टिमार्गीय भक्त होने के कारण वे कवि ईश्वर के अनुग्रह-लाभ

सुनि-सुनि पुनि आनँद हरे ह्वै नीके गुनिये ।
सकल शास्त्र सिद्धांत, परम एकांत, महारस ।
जाके रंचक सुनत-सुनत, श्रीकृष्ण होत बस—नंद, दश पृ० १९५।

११ क नंद जथामति कै तथा, बरन्यौ प्रथम अध्याइ ।
जाके रंचक सुनत सब कर्म कषाय नसाइ—नंद दशम पृ २५।

ख गर्भ स्तुति हरि धर्म की, सुने जु द्वितीय अध्याइ ।
सो न परै फिरि गर्भ-मल, नर निर्मल ह्वै जाइ—नंद दशम, पृ २६।

ग. इहि प्रकार पंचम अध्याइ जो कोउ सुने तनक मन लाइ ।
दीप्यमान सो मुक्ति न गहै और तुच्छ सुख की को कहै—नंद दशम ९९।

घ यह जु पूतना-चरित्र विचित्र, छठे अध्याइ सु परम पवित्र ।
जो हरि हित सौं सुनै सुनावै सो गोविंद चिरम-रति पावै—नंद, दशम १२४।

ङ 'नंद' जथामति कथित यह दशम-दशम अध्याइ ।
सुनै जु ए चित-रंजन कोऊ, बंधन सब मिटि जाइ—नंद०, दशम, पृ १४२।

च सुनै जु कोउ हरि-चरित उनविंशत अध्याइ ।
पाप न परसै नंद तिहि पदमिनि-दल-जल-न्याइ—नंद दशम पृ २८९।

छ. सुनै जो कोउ मन-क्रम-बचन, उनतीसौं अध्याइ ।
पंचतनि कलि-मल-बंध कहुँ नंद न जबर उपाइ—नंद दशम, पृ १९०।

१२. हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगाहू चलि आवै तहाँ।
जमुना सिंधु सरस्वति आवै। गोदावरी बिलंब न लावै।
सब तीर्थनि कौ बासा तहाँ। सूर हरि कथा होवै जहाँ—सा १-२२४।

को जितना महत्व देते हैं, उतना तीर्थयात्रा, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, श्राद्ध आदि को नहीं देते। भक्ति की सैद्धांतिक बातों में भी वे ही उनको विशेष रुचिकर रही हैं जिनका सम्बन्ध भाव से अधिक है। सच तो यह है कि सरल और भावुक ब्रजभाषी कवि भाव की ही संपन्नता को भक्ति का सबसे बड़ा साधन मानते हैं जिस पर उनका आराध्य रीझ सकता है और इस दृष्टि से निस्संदेह उनका सन्देश अत्यंत उदार है।

---

९ दार्शनिक विचार

आत्मा परमात्मा और प्रकृति के स्वरूप तथा संबंध का विवेचन, स्थूल रूप से, 'दर्शन' का प्रमुख प्रतिपाद्य है। सामान्यतया ऐसे विवेचन में सफलता मिलती है चिंतनशील व्यक्ति को और गद्य का माध्यम अपनाने पर उसका कार्य और भी सुगम हो जाता है। इसके विपरीत, अष्टछापी कवि भावुक भक्त थे और उनकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम था गीतिकाव्य जिसमें किसी भी जटिल, दुर्बोध या नीरस प्रसंग के लिए अवकाश नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यदि अष्टछाप-काव्य में 'दर्शन' के अंतर्गत आनेवाले प्रमुख विषयों यथा—ब्रह्म, जीव, जगत और संसार, माया, मोक्ष, गोपी तथा रास—के संबंध में क्रमबद्ध विवेचन मिल जाता है तो उसके लिए हमें उनकी प्रतिभा की सराहना करते हुए उनका कृतज्ञ ही होना चाहिए।

१ ब्रह्म—

अष्टछापी कवियों ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है जो आदि, अनादि, अनुपम, अलखित और रस-रूप है; अच्युत, अव्यक्त, अविनाशी और अनंत है[१]। यह रस-रूप परब्रह्म अपनी इच्छा से ही सृष्टि के विविध तत्वों को और उनसे चौदहों लोकों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार परब्रह्म ही इस सृष्टि का निमित्त और उपादान-कारण है एवं अपने विराट रूप में चौदहों लोकों में व्याप्त है[२]। 'सूरसागर' में

१ क अविगत अविनासी पुरुषोत्तम—सा १ ३६।

ख आदि सनातन हरि अविनासी। सदा निरंतर घट-घट बासी।
पूरन ब्रह्म पुरान बखाने। चतुरानन सिव अंत न जानैं—सा १ १।

ग अविगत आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनासी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक बिलासी—सारा १।

घ सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप—सारा १ ११।

ङ सब घट अंतरजामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानंद, अखंड सरूप उदार—नंद सिद्धांत पृ १६१।

२ क तिन प्रथमहिं महतत्व उपायो। तातें अहंकार प्रगटायो।
अहंकार कियो तीनि प्रकार। सत तें मन सुर सातऽब्यार।
रजगुन तें इंद्रिय बिस्तारी। तमगुन तें तन्मात्रा सारी।

'अलख' रूप के वर्णन की असमर्थता का प्रसंग उठाकर स्वयं हरि के मन में सबको अपना स्वरूप दिखाने का विचार आना कहा गया है। पश्चात्, उन्होंने तीनों लोकों का विस्तार करके जिस ज्योति का प्रकाश फैलाया, वही आज घर-घर में दिखायी देती है[३]। अष्टछापी कवि परब्रह्म के निर्गुण और सगुण, दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म मनसा, वाचा और कर्म से अगोचर,[४] गुण बिना गुणी और रूप रहित होकर भी स्वरूपवाला है[५]। परब्रह्म के विराट

× × ×

चौदह लोक भए ता माँहि। जानी ताहि विराट कहाँहि—सा १ ११।

ख कारन करन दयालु दयानिधि—सा १ ११७।

ग खेलत खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार—सारा ५।

घ आनंद की निधि नंदकुमार।
प्रगट ब्रह्म नर भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार—परमा २६।

ङ नमामि पद परम गुरु कृष्ण कमल दल नैन।
जग-कारन करुनार्नव, गोकुल जिनको ऐन—नंद, मान पृ ११।

च जु प्रभु जोति-मय जगत-मय कारन, करन अभेव।
विघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहि देव—नंद, अनेकार्थ, पृ १८।

छ. अखिल, अंड-व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी—नंद रास, पृ १५८।

ज परम पुरुष सब ही के कारन, प्रतिपालन तारन संघारन।
व्यक्त-अव्यक्त जु विश्व अनूप यह जगत प्रभु तुम्हरौ रूप।
तुम सब भूतन को विस्तार देह, प्रान इंद्री, अहंकार।
काल तुम्हारी लीला भीतर, तुम व्यापी तुम अव्यय ईस्वर।
तुम्हीं प्रकृति पुरुष महतत्व पर अंबर आडंबर सत्व।
—नंद स्याम, पृ॰ २४१।

३ अलख रूप कछु कह्यौ न जाई। वेदनि कछु बेदोक्त बताई।
हरि जू कैं हिरदै यह आई। देउँ सबनि यह रूप दिखाई।
तीन लोक हरि करि विस्तार। अपनी जोति कियौ उजियार।
जैसें कोऊ गृह सँवारि। दीपक बारि करै उजियार।
त्यौं हरि जोति अपनी प्रगटाई। घर घर में सोई दरसाई।
तीनिहु लोक सगुन तन जानो। जोति सरूप आतमा मानो—सा ४१०।

४ ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैं अगम अनंत प्रभाव—सा २ ३४।

५. मनसा-बाचा-कर्म अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी।
गुन बिन गुनी सुरूप रूप बिन नाम बिना श्री स्याम हरी—सा १ ११५।

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व स्वीकार करते हुए उनसे ही नारद ने, 'सूरसागर' में, कहा है कि तुम ब्रह्म हो अनंत हो और, तुम्हारे समान तुम्हीं होने के कारण, अनुपम भी हो[१०]। जरासंध के बंदीगृह मे छूटे हुए राजा, कृष्ण को 'माता', 'पिता', सहोदर' 'बंधु' यहाँ तक कि, 'जगद्गुरु' भी कहते हैं[११]। सूरदास के कृष्ण 'दानलीला प्रसंग' में 'भक्त-हेत' विचारकर और 'दीन गुहारि सुनकर' अवतार धरने की बात कहते और 'ब्रह्म से कीट' तक अपनी व्यापकता बताते हैं[१२]। 'सूरसागर' के एक पद में अपना परब्रह्मत्व घोषित करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि मैं सर्वव्यापक हूँ, वेद मेरा ही यश गाते हैं, मैं ही कर्ता हूँ और मैं ही भोक्ता[१३]। ब्रह्मा, विष्णु और शिव मुझ परब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं। दक्ष-प्रजापति के प्रसंग में यज्ञ पुरुष-रूपधारी परब्रह्म[१४] और 'दान-लीला प्रसंग में कुंभनदास के कृष्ण भी यही स्वीकार करते हैं[१५]।

परब्रह्म के दो अवतार प्रमुख हैं—एक, 'राम' का और दूसरा, कृष्ण का। डा० गुप्त के अनुसार, 'राम का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम का है और कृष्ण का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि-पुरुषोत्तम रसेश, दोनों का है। ब्रह्म का विष्णु-रूप वेद-मर्यादा की रक्षा तथा सात्विक धर्म के संस्थापन के लिए समय-समय

१०. तब नारद कर जोरि कह्यौ, तुम ब्रह्म अनंत हरि।
तुमसे तुम्हीं और नहीं द्वितीया कोउ तुम सरि—सा ४२१।

११. तुम माता तुम पिता जगत गुरु तुमहिं सहोदर बंधु हरे—सा ४२१८।

१२. भक्त-हेत अवतार धरौं।
कर्म धर्म कैं बस मैं नाहीं जोग जग्य मन मैं न करौं।
दीन गुहारि सुनौं स्रवननि भरि गर्व बचन सुनि हृदय जरौं।
भाव अधीन रहौं सबही कैं और न काहूँ नैकु डरौं।
ब्रह्म कीट आदि लौं व्यापक सबको सुख दै दुखहिं हरौं—सा १५२२।

१३. मैं व्यापक सब जगत बेद चारो मोहिं गायौ।
मैं करता मैं भोगता मो बिनु और न कोइ।
× × ×
मैं करता मैं भोगता, नहिं मामैं कछु संदेह—सा ४२१।

१४ क. बिष्नु, रुद्र बिधि एकहि रूप। इन्हें जानि मति भिन्न स्वरूप—सा ४५।
ख. जग्य प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
बिष्नु-बिधि-रुद्र मम रूप ये तीनहूँ, दच्छ सौं बचन यह कहि सुनायौ—सा ४-५।

१५. सिव बिरंचि सनकादि निगम मेरौ अंत न पावैं—कुंभन २१।

पर अवतार लेता है। धर्म-संस्थापन के लिए भगवान का जो अवतार होता है वह चतुर्व्यूहात्मक है। संसार को केवल आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उनका रस-रूप है। कृष्णावतार में श्रीकृष्ण ने अपने दोनों रूपों में चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, अवतार लिया था। विष्णु-अवतार देवकीनंदन-रूप में उन्होंने लोक-रक्षा और धर्म की संस्थापना की। वासुदेव-रूप मोक्षदाता है, संकर्षण-रूप दुष्टों का संहारकारी है, प्रद्युम्न-रूप सृष्टि का रक्षक, काम और गृहस्थ रूप है तथा अनिरुद्ध-रूप धर्म-रक्षक और धर्मोपदेशक है। अपने रसात्मक रूप में कृष्ण ने अनेक रसात्मक तथा लोक-रंजनकारी लीलाएँ कीं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के अवतार रूप में दो रूप वल्लभ-सम्प्रदाय में मान्य हैं—एक, लोक-वेद प्रथित पुरुषोत्तम और दूसरा, लोक-वेदातीत पुरुषोत्तम। मथुरा, द्वारका तथा कुरुक्षेत्र में लीला करनेवाले तथा ब्रज में दुष्टों का संहार करनेवाले कृष्ण का रूप लोक-वेद प्रथित धर्म-संस्थापक वेद-रक्षक-रूप है तथा बाल-रूप में यशोदा और नन्द को मोहनेवाले, वृन्दावन में ग्वाल-बालों के साथ गाएँ चरानेवाले तथा वृन्दा विपिन में गोपियों के साथ रास करनेवाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्म-रक्षक रूप हैं और यशोदा और नन्द-नन्दन रस-रूप हैं'[१६]।

अष्टछापी कवि कृष्ण के रस या आनंद-रूप के उपासक थे। सूरदास की गोपियाँ ऊधव से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि हम सब गोपाल की उपासिका हैं वे हमें तज गए हैं, फिर भी उनके चरणों में ही हमारी प्रीति है। समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध से वे योग का संदेश देकर हमको 'प्रेम-भक्ति' की ओर से उदासीन करना चाहते हैं परंतु हममें से कोई भी उनकी विरहिणी प्रेमिका ऐसी नहीं है जो उनको छोड़ कर कभी मुक्ति की कामना करेगी'[१७]। परमानंददास ने

१६ डा॰ दीनदयालु गुप्त 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' भाग २ पृ॰ ८८।
१७ गोकुल सब गोपाल उपासी।
× × ×
जद्यपि हरि हम तजी अनाथ करि तऊ रहति चरननि रस रासी।
× × ×
किहि अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम-भक्ति तें करत उदासी।
सूर स्याम सो कौन विरहिनी माँगि मुक्ति छाँड़ै गुनरासी—सा॰ से॰ पृ॰ ५८०।

केवल कृष्ण को ही नहीं, नंद, यशोदा, गोपी, ग्वाल, गाय के साथ-साथ 'गोकुल' को भी आनंद-स्वरूप कहा है और उनका ध्यान, उनकी भक्ति या उपासना करनेवाले सुर, मुनि, संत आदि भी सदैव आनंदित रहते हैं[१८]। इसी प्रकार, एक दूसरे पद में, उन्होंने नंदनंदन को 'रसिक-शिरोमणि' कहकर उनके नैन, चितवनि, बात, गान, मिलन, वेणु, सभी में 'रस' बताया है[१९]। नंददास ने अपने आराध्य को 'रसमय' 'रसकारण' और 'रसिक' बताकर कहा है कि संसार के समस्त रस के आधार तुम्हीं हो। जगत का सारा रूप, प्रेम और रस तुम्हारा ही है[२०]। कृष्णदास ने रस-रूप श्रीकृष्ण की प्रिया राधिका को परम 'रसिकिनी' कहकर दोनों के अंगों को 'रसमय' बताया है[२१]।

१८. आनन्द की निधि नंदकुमार।
× × ×
स्रवननि आनँद, लोचन आनँद, मन में आनँद आनँद-मूरति।
गोकुल आनँद गाइनि आनँद नंद जसोदा आनँद पूरति।
सब दिन आनँद, बेनु चरावत बेनु बजावत आनँदकंद।
खेलत हँसत कुतूहल आनँद राधापति बृन्दावन चंद।
सुक मुनि आनँद भक्तनि आनँद, निसि दिन आनँद बिलास—परमा २६।

१९. रसिक-सिरोमनि नँदनंदन।
रसमय रूप अनूप बिराजत गोप बधू उर सीतल चंदन।
नैननि में रस चितवनि में रस बातनि में रस उगत मधुर पद।
गावनि में रस, मिलवनि में रस बेनु मधुर रस प्रगट पावन बस—परमा ४५६।

२ नमो नमो आनंदघन सुंदर नंदकुमार।
रसमय, रस-कारन रसिक जग जाके आधार।
है जु कछुक रस इहि संसार, ताकौ प्रभु तुमहीं आधार।
ज्यौं अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर मैं रहै।
जग मैं कोउ कवि बरनौ काही सो सब रस तुमहरी आही।
ज्यौं जलनिधि तैं जलभर जल लै, बरसैं हरसैं अपने कर लै।
अगनि तैं अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामैं रहैं।
ऐसैं ही रूप प्रेम रस जो है, तुमतैं है तुमहीं करि सोहै।
रूप-प्रेम-आनंद रस जो कछु जग मै आहि।
सो सब गिरिवर देव की निधरक बरनौं ताहि—नंद, रस, पृ १९।

२१ रसिकिनी राधा रस-भीनी।
मोहन रसिक लाल गिरिवर पिय, अपनि कंठमनि कीनी।

कुंभनदास[२२] जहाँ कृष्ण को 'रसिक' कहते हैं, वहाँ गोविंदस्वामी उनके साथ[२३] राधा की जोड़ी को भी 'सरस' बताते हैं[२४]। चतुर्भुजदास ने रसिक-प्रवर गोपाल की प्रकृति बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वे 'रस' से ही रीझते हैं, राधा ने भी उन्हें 'रस' से ही वश में किया है[२५]।

मथुरा और द्वारका के ऐश्वर्य-रूप कृष्ण के प्रति अष्टछापी कवियों की गोपियों में प्रीति की वह भावना नहीं है जो रस-रूप के प्रति है। यही कारण है कि 'सूरदास' की विरहिणी गोपियाँ पथिक के साथ द्वारका नहीं जाना चाहती, क्योंकि वे जानती हैं कि वहाँ उन्हें न तो निकुंज-क्रीड़ाकारी रसिकप्रवर के दर्शन होंगे और न मुरलीधारी किशोर कृष्ण के ही[२६]। अन्य अष्टछापी कवियों ने भी व्रज के लीला

रसमय अंग अंग रस रसमय रसिक रसिकता भीनी।
उभय स्वरूप कीरति न्यौछावरि, कुम्भनदास को दीनी—कुम्भ हस्त ५१।

२२.क. रसिक रास सुख-विलास, तरनि-तनया तीर रच्यौ नंदलाल संग कोटि कामिनी।
—कुम्भन ४५।

ख. गाऊँ साँवल-मुख्यमु-रस नैकु सुस्वार रस, परम हरषित नित भँवर कर टारौं
—कुम्भन १६१।

२३.क कहि न परे हो रसिक कुंवर की कुंवराई—गोविं ४९८।

ख रसिक-सिरोमनि राग कल्यान गावै—गोविं ४२४।

२४ जहाँ रसिक गिरिवर मन्द उघटत य य थुग थुग गति भारी।
गोविंद प्रभु बनी नवल नागरी राधा स्याम सरस जोरी—गोविं ६१।

२५. रस ही म बस कीन्हे कुंवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रसिक रस रिझवति रसहीं में तासों रिस तजि री माई।
प्रिय की प्रेम रिस सों न होइ रसीली राधे! रस ही में बचन रचन सुखदाई।
चतुर्भुज प्रभु गिरिवर रस बस भए तासों कुरस कत मिलि रहे हिरदै लपटाई।
—चतु २६६।

२६. हौं कैसें के दरसन पाऊँ।
सुनहु पथिक वहि देस द्वारिका जौ तुम्हरैं सँग आऊँ।
× × ×
अब बन बसि निसि कुंज रसिक बिनु कानैं दसा सुनाऊँ।
स्रम कै सूर जाउँ प्रभु पासहिं मन मैं मनैं मनाऊँ।
नव किसोर मुख मुरलि बिना इन नननि कहा दिखाऊँ—सा ४२५५।

धारी आनंद-रूप श्रीकृष्ण को ही अपना परमाराध्य या इष्टदेव घोषित किया है[२७]। मुरली, मोरपखौवा, घुँघुंचिनि-हार आदि धारण करके धेनु के पीछे-पीछे चलनेवाले, रेणु-मंडित शरीरवाले और रात-दिन सखाओं के साथ खेलते रहनेवाले श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उनको कहीं सुख नहीं मिलता[२८]।

अष्टछापी कवियों के ब्रह्म-संबंधी कुछ विचार 'पौराणिक विश्वास' के अंतर्गत पीछे भी दिये जा चुके हैं[२९]।

२ जीव—

अष्टछापी कवियों ने 'जीव' की उत्पत्ति ईश्वर के अंश से और उसी की इच्छा से मानी है। सूरदास के परब्रह्म स्वयं ही कहते हैं कि सर्वप्रथम अकेला मैं ही अमल, अकल, अज, भेद-विवर्जित रूप में था। पश्चात्, मैं ही अनेक भाँति के जीवों की उत्पत्ति करके नाना रूपों में सुशोभित हुआ[१]। नंददास ने समस्त व्यक्त-अव्यक्त

२७ क जहि जहि भरन कमल माधौ क तहीं तही मन मोर।

× × ×

इष्टदेवता सब विधि मेरे ये माखन के चोर—परमा ८४६।

ख जयति वृन्दा विपिन-भूमि कोलनि अखिल लोक-बंदिनि अंबुरुह चरने।

तरनि-तनया-विहार नंद-गोप-कुमार, दास कुंभन नवत तवसि सरने।

—कुंभन १।

ग. मोहनलाल गोवर्धन-धारी कृष्णदास प्रभु आनँद कंदहि—कृष्ण हस्त १४।

घ एकहि आँक लये गोपाल।

× × ×

गयौ नेमु छिनु तोरि बचे हँसि चितए नैन बिसाल।

चतुर्भुजदास अटक भए उर मन परम गिरिधरलाल—चतु २१५।

ङ मेरी अँखियनि देखौ गिरिधर भावै—छीत ११।

२८. हरि जू ते सुख बहुरि कहाँ।

जदपि नैन निरखत वह मूरति, फिरि मन जात तहाँ।

मुख मुरली सिर मोर पखौवा गर घुँघुचिनि कौ हार।

आगैं धेनु रेनु तन मंडित तिरछी चितवनि चारु।

राति दिवस सब सखा लिए सँग हँसि मिलि खेलत खात—सा ४२८८।

२९ देखिए इस 'प्रबंध' के पृष्ठ १५१ से १७४।

१ क पहिले हौं ही हौ तब एक।

परमात्मा का चेतन अंश होने पर भी जीव 'सत्स्वरूप' को भूल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे मृग अपनी ही नाभि की कस्तूरी को नहीं जान पाता[३७]। अष्टछापी कवियों ने इसका कारण जीव का ही भ्रम या अज्ञान बताया है जिसके फलस्वरूप वह देहधर्म को प्रधान समझने लगता है। यही तथ्य राजा रहूगण को समझाते हुए सूरदास के जड़भरत कहते हैं कि सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति का नाम देह के साथ ही है, ब्रह्म के अंश जीव के साथ नहीं। जन्म और नाश भी देह के ही धर्म हैं, 'चेतन' तो नित्य और अनश्वर है[३८]। अज्ञानी व्यक्ति यह रहस्य न समझ कर विविध कर्म करके अनेक दुख भोगता[३९] और विविध तन पाकर उन्हीं के सुख-दुख में भूला रहता है[४०]। इन्द्रिय-सुख की कामना से विषय-वासनाओं में फँसे ऐसे व्यक्ति की तुलना सूरदास ने मरु-जल के पीछे विकल होकर भागते प्यासे मृग से और सुस्वाद फल की आशा लगाये, सेमर के फूल के निकट बैठे, शुक से की है। ऐन्द्रिक और सांसारिक सुख-लोभ से ही जीव को कपि की तरह, बंधन में पड़कर द्वार-द्वार नाचना पड़ता है[४१]। ज्ञानी इस रहस्य को समझता है और तन के भेद को महत्व न देकर

३७ क रे मन आपु कौं पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ अजहुँ तौ कछु जानि।
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत ही वह दौरि ढूँढ़ै जबहिं पावै बास—सा १-७।
ख जौ लौं सत-सरूप नहिं सूझत।
तौलौं मृग मद नाभि बिसारे फिरत सकल बन बूझत—सा २-२५।

३८ क संपति बिपति बिपति तैं संपति, देह को यहै सुभाइ।
तरुवर फूलै, फरै पतझरै, अपने कालहिं पाइ—सा १२६५।
ख तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहिं दोइ।
तनु मिथ्या, छनभंगुर जानौ। चेतन जीव सदा थिर मानौ।
जिम कौं सुख-दुख तन सँग होइ। जो बिचरै तन कैं सँग सोइ।
देहऽभिमानी सो वहि जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै—सा ५.४।

३९. यह सब मेरीयै आइ कुमति।
अपनैं ही अभिमान-दोष दुख पावत हौं मैं अति —सा १ १।

४० झूठे ही लगि जनम गँवायौ।
भूल्यौ कहा स्वप्न के सुख मैं हरि सौं चित न लगायौ—सा १११।

४१ जौनैं ही पौनैं बहकायौ।

उसमें स्थित अजन्मा और अविनाशी प्रकाश आत्मा को ही जानना चाहता है[४२]। मध्ययुगीन कवियों के अनुसार, जीव का यह भ्रम भगवंत को 'चीन्हने' पर ही जाता है[४३]।

जीव के अज्ञान का दूसरा कारण है उसका 'अहम्' जो उसे समस्त कार्यों का कर्ता-धर्ता मानने को प्रेरित करता है। यद्यपि उसके जीवन में संकट के अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब केवल उसकी ही नहीं उसके समस्त शुभचिंतकों और हितैषियों की सम्मिलित शक्ति और बुद्धि भी उसका उद्धार नहीं कर पाती, तथापि उसका 'अहम्' अधिक समय तक अपनी तुच्छता का ध्यान नहीं रखता और पुनः अनेक रूपों में अपनी क्षमता, योग्यता, चतुरता, रूप-गुण-अधिकार-संपन्नता[४४] आदि का विज्ञापन करने के अपने स्वभाव को ग्रहण कर लेता है[४५]।

परब्रह्म का अंश होते हुए भी 'जीव' एक बात में उससे भिन्न है। वह यह कि यहाँ जीव काल, कर्म और माया के अधीन होने के साथ विधि-निषेध और पाप-पुण्य

समुझि न परी विषय-रस गीध्यौ हरि हीरा घर माँझ गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ प्यास न गई चहुँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि निसि-बासर हठि चित लगायौ।
रीतौ परयौ जबै फल चाख्यौ उड़ि गयौ तूल ताँबरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर कन-कन कौं चौहटै नचायौ—सा १ १२६।

४२. जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन कैं भेद भेद नहिं मानै।
आतम अजन्म सदा अविनाशी। ताकौं देह-मोह बड़ फाँसी—सा ५ ४।

४३ भरम ही बलवंत सब में ईसहू कैं भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्हैं भरम मन तैं जाइ—सा १ ७।

४४ क धन जोबन अभिमान अल्प जल काहे कूर आपनी बोरी—सा १ १ १।
ग धन जोबन मद ऐंठौ-ऐंठौ, ताकत नारि पराई।
लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं सोऊ हाथ न आई—सा १ १२८।

४५. मैं तौ अपनी कही बड़ाई।
× × ×
जीव न तजै सुभाव जीव कौ लोक विदित बड़नाई—सा १ १ ०।

मानने को बाध्य हो जाता है वहाँ परब्रह्म इन सबसे परे रहता है[४६]। ऐसे जीवों को सचेत करते हुए कभी तो अष्टछापी कवि परब्रह्म की 'सर्वशक्तिमानता' की घोषणा करते[४७] और कभी स्वयं उनका परब्रह्म सृष्टि और उसके समस्त व्यापारों का कर्ता धर्ता अपने को बताकर जीव को 'अहम्' भाव का परित्याग करने का अवसर प्रदान करता है। जीव की यह अज्ञानता, अष्टछापी कवियों के अनुसार, दो उपायों से छूट सकती है। पहला उपाय है सद्गुरु की शरण जाना और उसका कृपा-भाजन बनने की पात्रता अपने में लाना क्योंकि उसकी कृपा से अज्ञानता दूर होने पर जीव सहज ही अपने चेतन स्वरूप को जान सकता है[४८]। दूसरा उपाय है सच्चे और अनन्य भाव से परब्रह्म या परमाराध्य की शरण जाना जिनकी कृपा से भ्रम या अज्ञान से मुक्ति पाकर वह अपने 'सत्स्वरूप' को सुगमता से जानकर अभय-पद पा सकता है[४९]।

४६ क. काल, करम, माया अधीन ते जीव बखाने।
बिधि निषेध, अरु पाप-पुन्य, तिन करि सब साने।
परम धरम अनन्य, ग्यान बिग्यान प्रकासी।
तं क्यों कहिये जीव सरस, गुनि सिन्धर निवासी—नंद. सिद्धांत पृ. १८४।
ख. निपट निकट घट घट में अंतरजामी आही।
बिषय-बिदूषित इंद्री पकरि सकै नहिं ताही—नंद., रास. पृ. १८२।

४७ क. धर्म-पुत्र तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार।
नर के किये कछू नहिं होइ। करता-हरता आपुहि सोइ—सा. १.२६१।
ख. करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठौ है सोइ—सा. १.२६२।
ग. होत सो जो रघुनाथ ठानै।
पचि पचि रहे सिद्ध साधक मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै—सा. १.२६३।
घ. भावी काहू सौं न टरै—सा. १.२६४।

४८. अनुभव आवत ही भ्रम भागा।
सपदि सरद भयो उजियारो सतगुरु भेद बतायो।
ज्यों कुरंग-नाभी कस्तूरी ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिरि चितयो जब चेतन ह्वै करि अपनै ही तन छायौ—सा. ४.१३।

४९ क. जिन जिन । सरन उर धारी।
जिन जिन तुम पै गोविंद गुसाईं सबनि सभै पद पायो—सा. १.११३।

२ जगत और संसार—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने 'जगत' की उत्पत्ति भगवान के द्वारा और 'संसार' की जीव के द्वारा होना बताया है[५०]। अष्टछापी कवि जैसा पीछे 'ब्रह्म'-संबंधी विचारों के परिचय में कहा जा चुका है, 'जगत' को परब्रह्म द्वारा उसी से उत्पन्न होकर पुन उसी में वैसे ही समा जाना मानते हैं जैसे पानी से बना हुआ बुलबुला, फिर उसी में विलीन हो जाता है[५१]। उनकी सम्मति में, 'जगत' के भिन्न नाम-रूपवाले अंगों में ब्रह्म उसी प्रकार व्याप्त है जैसे कंकण, किंकणी, कुंडल आदि भिन्न आभूषणों में स्वर्ण तत्व समान है[५२]। इससे जान पड़ता है कि जीव की तरह 'जगत' को भी वे ब्रह्मांश-स्वरूप, अतएव 'सत्य', मानते हैं; यद्यपि उनके अनेक पदों में 'जग' का प्रयोग सामान्य अर्थ में भी हुआ है[५३]।

अष्टछापी कवियों ने 'संसार' को अनेक स्थलों पर, 'सेमर-सा' निस्सार, मिथ्या स्वप्न-स्वरूप अंधकारमय, विष-सागर[५४] आदि तो कहा है परंतु उसकी

ग मन-वच-कर्म मन गोविंद सुधि करि।
सुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीन-बंधु करुनामय उर धरि।
मिथ्यावाद विवाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध मद-लोभहिं परिहरि।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तरहरि।
—सा १ ११९।

५०. 'तत्त्वदीप-निबंध' शास्त्रार्थ प्रकरण श्लो २६।

५१ ज्यौं पानी मैं होत बुदबुदा, पुनि ता माहिं समाइ।
त्यौंही सब जग प्रगटत तुमतैं पुनि तुम माहिं बिलाइ।—सा ८१ २।

५२. एकै वस्तु अनेक ह्वै, जगमगात जगधाम।
जिमि कंचन तैं किंकिनी कंकन, कुंडल नाम—नंद, अनेकार्थ पृ ६८।

५३.क जाकौ मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ 'जग' बैर परै—सा १ १०।
ख कलिमल दूरि करन के काजैं तुम लीन्हौं 'जग' मैं अवतार—सा ४१।
ग. अपनें सुख कौं सब 'जग' बाँध्यौ कोउ काहू कौ नाहीं—सा १-७६।
घ. देखि नीर जु छिलछिलौ जग समुझि कछु मन माहिं—सा १ ११८।
ङ जौ मरिहौं तौ सुरपुर जैहौं। जीव 'जगत' माहिं जस लैहौं—सा १-५।
च यहाँ कोउ काहू कौ नाहीं। दिन-संबंध मिलन 'जग' माहीं—सा ७-२।

५४ क. यह 'संसार' सुवा-सेमर ज्यौं सुंदर देखि लुभायौ—सा १ ३१५।

उत्पत्ति जीव द्वारा होने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख उनके काव्य में नहीं मिलता और परमानंददास के एक पद में तो अपने 'अंश की मुक्ति' मांगकर 'संसार' माँगने की बात भी लिखी गयी है[५५] जिससे स्पष्ट है कि इस काव्य में संसार शब्द से उनका तात्पर्य जीव के अज्ञान-जन्य 'संसार' से नहीं है; अस्तु। इससे ज्ञात यही पड़ता है कि अष्टछापी कवियों ने 'जगत' और 'संसार' के दार्शनिक विवेचन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

४. माया—

अष्टछापी कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया है—एक है विद्या-माया और दूसरी अविद्या-माया। माया के द्वितीय रूप का कार्य जीव को संसार और सांसारिकता से जकड़े रहने का रहता है तथा प्रथम अर्थात् विद्या-माया परब्रह्म की इच्छानुसार, सृष्टि की रचना अथवा उसका नाश करने के साथ-साथ ईश-प्रेरणा से जीव को अविद्या-माया के बंधन से मुक्त भी करती है। अष्टछाप-काव्य में माया के इन दोनों रूपों का वर्णन है—प्रथम का संक्षेप में और द्वितीय का विस्तार से।

विद्या-माया का जितना स्पष्ट वर्णन नंददास ने किया है, उतना किसी अन्य अष्टछापी कवि ने नहीं। उनकी सम्मति में पंच महाभूत, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, महत्व, त्रिगुण आदि विद्या-माया के ही विकास हैं अर्थात् विद्या-माया परब्रह्म की इच्छानुसार इस सृष्टि की रचना, इसका प्रतिपालन तथा संहार करती है और सुगी-सदृश सदैव उनके ही अधीन रहती है[५६]। अन्यत्र नंददास ने योग-माया के समान

क " " " स्वप्न-स्वरूप सकल संसार।
सोयो होइ सो हरि सत माने। जो जागै सो मिथ्या जानै—सा ६-५।
ख मिथ्या यह 'संसार' और मिथ्या माया—सा वे पृ १५८।
ग. यहै जगत संसार'-धार बिन फंदे फंदन—नंद सिद्धांत पृ १८४।
घ ये 'संसार' अँधियार गार में मगन भए परि—नंद रास पृ १५६।
ङ यह 'संसार' असार अपार सहजहि भयो जु ताके पार—नंद, दशम, पृ ११८।
च. भव-सागर 'संसार' विषम अति विमुख संग तैं डरिए—गोविं ५५४।
५५. अपने अंस की मुकुति रावी है माँगि लियो संसार'।
परमानँद गोकुल मथुरा में जन्यौ न करै विचार—परमा ६ ५।
५६ महाभूत पुनि आगि पवन पानी, अंबर धर।
दस इंद्रिय अरु अहंकार महतत्व त्रिगुन मन।

'मुरली' को अघटित घटनाओं के घटित करने में चतुर बताते हुए अगम, निगम, नाद-ब्रह्म की जननी विद्या-माया के ही कार्य की ओर संकेत किया है[५७]।

अष्टछापी कवियों में अविद्या-माया का सबसे विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया है। प्राणी को ईश्वर की ओर से विमुख करके सांसारिकता में फँसाये रखना अविद्या माया का मुख्य कार्य है जिसके लिए वह काम, क्रोध, मद, लोभ, अज्ञान आदि अनेक मानसिक दुर्बलताओं के सहयोग से प्राणी को सत्पथ से दूर भटकाये रहती है। इस अविद्या-माया के हाथ में पड़े प्राणी की स्थिति वैसी ही पराधीनता की रहती है जैसी नटी के बंधन में पड़े कपि की जिसे लकुट के भय से 'कौतिक नाच' नाचने पड़ते हैं। अविद्या-माया-जनित लोभ के कारण प्राणी नाना स्वाँग बनाने की निर्लज्जता दिखाता है। अनेक मिथ्या अभिलाषाओं में फँसाकर, यह माया उसकी सुधि हर लेती है और स्वप्न में धन-ऐश्वर्य का प्रलोभन देकर उसको भौरा देती है। यह महामोहिनी है जो प्राणी को मुग्ध करके उसको पाप में लगाती है जैसे दूती कुल-वधू को प्रलोभन देकर उसको पर-पुरुष की ओर आकृष्ट करती है[५८]।

एक अन्य पद में सूरदास ने 'माया' की वेश-भूषा का वर्णन करके उसकी 'अकथ कथा' कही है। उनके अनुसार राती चूनरी, सेत उपरना, 'नीला लहँगा'

यह सब माया कर विस्तार करैं परमहंस गन।
सो माया जिनके आधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व-प्रभव, प्रतिपाल प्रलैकारक, आयस बस—नंद सिद्धांत पृ १८।

५७ तब लीनी कर-कमल जोगमाया-सी मुरली।
अघटित घटना चतुर, बहुरि अधरा सब जुरली।
जाकी धुनि तें निगम अगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद-ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख-सागर—नंद, रास, पृ ११।

५८ माया नटी लकुटि कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि-करि मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा अपमारगहि लगावै।
ज्यौं दूती पर-वधू भोरि कै लै पर-पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति तुमहीं गति तुम समान को पावै—सा १४२।

और 'चोली-अँगरौटा' पहने हुए 'माया', चतुरानन, अमरगन, असुर-समाज, शिव, आदि को मुग्ध और मद-मत्त करती फिरती है और इसके डर से शुक-सनकादिक भागते फिरते हैं[५९]। जिस 'माया' ने देव, दनुज, ऋषि-मुनि, ब्रह्मा महादेव आदि को वश कर रखा है, उससे सामान्य पुरुष-वर्ग कैसे उबर सकता है ? उनके साथ तो यह और भी कौतुक करती है—किसी को सुख-नींद से जगाती, किसी को दर्शन से ठगती और किसी के साथ हास-विलास करती है। माया ने जल-थल-नभ के सारे जीवों को भुलावे में डाल रखा है। संसार में जिसकी ओर भी यह जरा सा मुस्कराकर देख लेती है, उसी का मन हर लेती है। इस प्रकार माया ने जल-थल-नभ के जीवों को भुलावे में डालकर[१] सारे जग को अपने वश में कर रखा है,[२] अर्थात् कौन ऐसा है जो इसके भ्रम में नहीं फँसा[११] ? मन जब अविद्या-माया के वश में हो,[१३] तब भजन भी नहीं हो पाता[१४] फिर जो माया के हाथ बिक ही गया

५९. पहिरे राती चूनरी सेत उपरना सोहै (हो)।
कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो)।
चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)।
अँगरौटा अवलोकि कै, असुर महा मदमाते (हो)।
नैंकु दृष्टि जहँ परि गई सिव सिर टोना लागे (हो)।
जोग-जुगुति बिसरी सबै काम-क्रोध-मद जागे (हो)।
लाक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)।
सुनि माके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)—सा १४४।

१ बहुत कहाँ लौं बरनिये, पुरुष न उबरन पावै।
भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै।
एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै।
अकथ कथा याकी कछू कहत नहीं कहि आवै।
सैननि कै सँग यौं फिरै जैसें तनु सँग छाईं।
इहिं बिधि इहि सहके सबै जल-थल-नभ जिय जेत—सा १४४।

११ (गोपाल) तुम्हरी माया महाप्रबल जिहिं सब जग बस कीन्हौ।
नैंकु चितै मुसक्याइ कै सब कौ मन हरि लीन्हौ—सा १४४।

१२. हरि तुव माया को को न बिगोयौ ?—सा १४१।

१३ माधो जू मन माया बस कीन्हौ—सा १८६।

१४ हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कहा करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ—सा १-४५।

हो, उसकी दशा सी बंधन में पड़े पशु-सी ही हो जाती है[१५] और उससे न 'हरि-हित' हो पाता है, न 'तू-हित' हो[१६] तथा माया के झूठे प्रपंचों के कारण प्राणी का रत्न-सा जन्म व्यर्थ हो जाता है[१७]।

सूरदास ने इस माया को विषम-भुजंगिनि भी कहा है जिसका विष 'गुरु-गारुड़ी' के उतारने से उतर सकता है या उन साधुओं की संगति से कुछ लाभ हो सकता है जिन्होंने 'कृष्ण रूपी संजीवनी' को पा लिया है[१८]।

५. मुक्ति—

संसार में प्राणी का जो कष्ट मिलता है, उसका कारण ऊपर अविद्या-माया को बताया गया है। उस अविद्या-माया के प्रभाव से जीव को मुक्ति मिल जाय तो वह सुखी हो सकता है। इसी कारण सूरदास अपनी अविद्या-रूपी गाय माधव को सौंपते हुए कहते हैं कि यदि आप इसे अपने 'गोधन' में मिला लेंगे तो मैं सुख से सोऊँगा और जन्म-मरण की ओर से निश्चिंत हो जाऊँगा[१९]। सांसारिक कष्टों से इस प्रकार मुक्ति पाना मोक्ष का एक रूप है। मुक्ति का दूसरा रूप है ईश्वर के दर्शन, भजन वन्दना, विनती और मानसी सेवा तथा गुण-लीला-गान में उस परम सुख

१५. अब हौं माया-हाथ बिकानौ।
परबस भयौ पसु ज्यौं रजु-बस भज्यौ न श्रीपति रानौ—सा १४७।

१६. माया देखत ही जु गई।
ना हरि हित ना तू हित इनमें एकौ तौ न भई—सा १-५।

१७. इहिं माया झूठी प्रपंच लगि रतन सौ जनम गँवायौ—सा २१।

१८. अजहूँ सावधान किन होहि।
'माया विषम भुजंगिनि कौ विष उतर्यौ नाहिंन तोहि।
कृष्ण सुमंत्र जियावन मूरी जिन जन मरत जिवायौ।
बारंबार निकट स्रवननि ह्वै, गुरु गारुड़ी सुनायौ।
बहुतक जीव देह-अभिमानी देखत ही इन खायौ।
कोउ कोउ उबर्यौ साधु-संग जिन स्याम-सँजीवनि पायौ—सा २११।

१९. हित करि मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माहँ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह।
निबरक रहौं सूर के स्वामी, जनम न जनौं फेरि—सा १-५१।

का अनुभव करना जो 'परम स्वाद' है, निरंतर है और अमित तोषदायी है[७१]। अष्टछापी कवियों ने इस सुख को वैकुंठ के सुख से भी श्रेष्ठ बताया है और जिसको इस सुख का अनुभव हो जाता है वह चारों पदार्थों को तो ग्रहण करता ही नहीं, तीनों लोकों को भी तृणवत् समझता है[७२]।

मुक्ति की उक्त दोनों स्थितियों में प्रथम को 'जीवन्मुक्त' और दूसरी को 'स्वरूपानंद' मुक्ति कहते हैं जिनमें प्राणी का शरीर तब तक नष्ट नहीं होता जब तक वह कर्मों का फल भोग नहीं लेता अथवा परब्रह्म अपनी कृपा से उनका 'शमन' नहीं कर देता। शरीर छूटने पर परमात्मा के कृपा-पात्र के लिए मुक्ति के चार रूप रहते हैं—'सालोक्य' अथवा भगवान के लोक की प्राप्ति, 'सामीप्य' अथवा भगवान के समीप रहने का भाव, 'सारूप्य' अथवा भगवान का रूप प्राप्त करना और 'सायुज्य' अथवा भगवान में मिल जाना। इनमें से प्रथम प्रकार की मुक्ति के सुख की ओर संकेत करते हुए सूरदास ने कहा है कि परमाराध्य के लोक-रूपी सरोवर पर पहुँचने पर[७३] फिर अन्यत्र नहीं रहना पड़ता[७४]। 'सामीप्य' मुक्ति के सुख का वर्णन करते हुए सूरदास ने एक पद में मन-रूपिणी चकई को संबोधित करके कहा है कि प्रभु के चरण-सरोवर वाले उस सुख-लोक को चल जहाँ न भ्रम-रूपी रात्रि होती है और न प्रियतम से कभी वियोग ही होता है[७५]। परमाराध्य के अवतार से दुर्लभ

७० भक्तानंद हमै अति प्यारो ब्रह्मानंद सुख कौन बिचारो—सा ४ १४।

७१ परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै—सा १ २।

७२ जो सुख होत गुपालहिं गायें।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हें कोटिक तीरथ न्हायें।
दियें लेत नहिं चार पदारथ चरन-कमल चित लायें।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत नँदनंदन उर आयें—सा २-६।

७३ 'गीता' में भी कहा गया है कि मेरे धाम में पहुँचने पर फिर लौटना नहीं होता—
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम—अध्याय १५ श्लो ६।

७४ चलि सखि तिहिं सरोवर जाहिं।
× × ×
सूर क्यों नहिं चलै उड़ि तहँ बहुरि उड़िबौ नाहिं—सा १ ११८।

७५ चकई री चलि चरन-सरोवर जहाँ न प्रेम-बियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग—सा १ ११७।

मुक्ति के सुलभ हो जाने और उनके चरणों के सान्निध्य अथवा सामीप्य से मोक्ष या मुक्ति के अधिकारी हो जाने की बात नंददास भी कहते हैं[७६]।

तीसरी अर्थात् 'सारूप्य' मुक्ति के सुख का आभास सूरदास के उन पदों में मिलता है जहाँ ऊधव श्रीकृष्ण से कहते हैं कि व्रज में आज भी सखा आदि अपने को तुम्हारा ही रूप मानकर तुम्हारी ग्वालपन की गयी लीलाएँ करने में ही मग्न रहते हैं[७७]। ऊधव की व्रजवासियों की इस रस-रीति के सामने सब कुछ फीका लगता है[७८]।

'सायुज्य' मुक्ति का उदाहरण परब्रह्म श्रीकृष्ण के नित्य-रास में गोपी-भाव से प्रवेश होने में मिलता है जिसका वर्णन सूरदास[७९] ने कई पदों में किया है। नंददास की रूपमंजरी भी शरीर त्यागकर कृष्ण में उसी प्रकार जा मिलती है जैसे

७६. ये अद्भुत अवतार जु लेत, तिनहिं प्रतिपालन के हेत।
अरु अपने भक्तनि के हेतु, दुर्लभ मुकुति सुलभ कर देत।
तब पद-पंकज-नौका करि कै पार परे भवसागर तरि कै।
× × ×
पद-पंकज के सन्निधि भाव, तबही भये मुक्ति के पात्र—नंद० दशम पृ० २८।

७७. माधौ जू सुनिये व्रज-व्यवहार।
× × ×
एक ग्वाल गोसुत ह्वै रेंगत, एक लकुट कर लेत।
एक मंडली करि बैठारत छाक बाँटि इक देत।
एक ग्वाल नटवर बपु लीला, एक कर्म गुन गावत।
निसिबासर ये ही रँग सब ब्रज, दिन दिन नव तन प्रीति—सा० ४१४५।

७८. सूर सकल फीकौ लागत है देखत वह रस-रीति—सा० ४१४५।

७९.क. जो रस-रास-रंग हरि कीन्हौ, वेद नहीं ठहरान्यौ।
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबहीं, सिवहु समाधि भुलान्यौ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहूँ पत्यान्यौ—सा० ११७३।

ख. मैं कैसैं रस रासहिं गाऊँ।
× × ×
नव निकुंज घन-स्याम-निकट इक, आनँद-कुंजी ध्याऊँ।
सूर कहा बिनती करि बिनवै जनम जनम यह ध्याऊँ—सारा० ११७४।

सूर्य की गरमी, किरणों में होकर, पुनः उसी में समा जाती है[८०]। रासलीला के इस सुख को अष्टछापी कवियों ने अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति के सुख से भी बहुत ऊँचा बताया है[८१]।

मुक्ति के दो लयात्मक रूप और माने जाते हैं—प्रथम में भक्त, परमाराध्य के अवयवों का, वस्त्राभूषणादि अथवा परमधाम गोकुल, वृन्दावन या ब्रज का, अंग-विशेष बनने की कामना करता है। सूरदास वृन्दावन की धूल, लता, गाय अथवा वहाँ का सलिल, द्रुम, गेह, ग्वाल, भृत्य आदि कुछ भी बन जाने की कामना[८२] करते हैं। परमानन्ददास भी वृन्दावन के मोर, गुंजा, वन-बेली, कृष्ण की वंशी, मकराकृत कुंडल आदि न होने पर पछताते हैं[८३]।

लयात्मक मुक्ति का दूसरा रूप है, विरहासक्ति की अवस्था में भक्त का

८० तकत भई तिय तन मन खोइ ज्यों जीरन पट त्यागत कोई।
ज्यों रवि की रवि की गरमाइ किरन माँझ ह्वै रवि में आइ।
सखी सब वृन्दावन ढिंग गई, विपिन बिलोकि चकित अति भई।
× × ×
सुधि न रही एती छबि मोहन राग भई किधौं प्रेम मई मन।
—नंद रूपमंजरी पंचमंजरी पृ २१५, ११।

८१ रास-रस-लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि तिहिं चरननि सिर नाऊँ।
कहा कहौं वक्ता श्रोता फल इक रसना क्यों गाऊँ।
अष्टसिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता करि दरसाऊँ—सा ११७८।

८२.क. माधौ मोहिं करौ वृन्दावन-रेनु—सा ४७८।
ख करहु मोहिं ब्रज रेनु देहु वृन्दावन बासा।
माँगौं यहै प्रसाद और मेरैं नहिं आसा।
जोइ भावै सोइ करहु तुम लता सिला द्रुम गेह।
ग्वाल गाइ कौ भृत करौ, मानि सत्य ब्रत एहु—सा ४९२।

८३. वृन्दावन क्यों न भए हम मोर।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंदकिसोर।
क्यों न भए बंसी कुल सजनी अधर पीवत घनघोर।
क्यों न भए गुंजा बन-बेली रहत स्याम जू की ओर।
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर—परमा' ३११।

परमाराध्य में तल्लीनता का अनुभव करना। अष्टछापी कवियों ने इस तल्लीनता का एकांगी वर्णन न करके भगवान का भी भक्त में व्याप्त हो जाना कहा है। भक्त और भगवान की यह तल्लीनता ठीक वैसी ही है जैसे जल में उत्पन्न लहरों में जल का व्याप्त रहना और लहरों का पुन उसी में विलीन हो जाना[८४]।

मुक्ति के उक्त सभी रूपों का वर्णन अष्टछाप-काव्य में होने पर भी आलोच्य कवि सगुण ब्रह्म की सेवा को ही सबसे बढ़कर मानते हैं, क्योंकि जैसा सूरदास की गोपियाँ ऊधव से कहती हैं, उस स्थिति में सालोक्य, सायुज्य सामीप्य आदि सभी मुक्तियों के सुखों का अस्पष्ट अनुभव होता रहता है[८५]। परमानंददास को भी मदनगोपाल की सेवा मुक्ति से मीठी जान पड़ती है[८६]। परमाराध्य के चरण-कमल में तन अर्पण करने के प्रसंग को सर्वोपरि मानते हुए[८७] वे पुन कहते हैं कि मेरे मन को मुरली का नाद रुचा है। मेरा मन उनके चरण-कमलों के पास रहता है और मैं श्याम के रंग में रँग गया हूँ। अतएव मुझे योग के विविध अंग, मुक्ति, धर्म-मार्ग आदि कुछ भी नहीं चाहिए[८८]।

८४ आँखिनि म बसे, जिय म बसे हिय म बसत निसि-दिवस प्यारो।
तन मैं बसे, मन म बसे रसना हु में बसे नँदवारो!
सुधि मैं बसे, बुधिहू मैं बसे अँग अंग बसे मुकुट वारो।
सूर बन बसे घरहू मैं बसे संग ज्यौं तरंग जल तें न न्यारो—सा १६२६।

८५. ऊधो इहै नैकु निहारौ।
× × ×
निरगुन कहा कहा कहियत है, तुम निरगुन अति भारी।
सेवत सुलभ स्याम सुंदर कौं, मुक्ति लही हम चारी।
हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यो रहति समीप सदाई।
सो तजि कहत और की औरे, तुम अलि बड़े अदाई।
× × ×
तुम अज्ञान कहति उपदेसत ज्ञान रूप है हमहीं।
निसि दिन ध्यान सूर प्रभु कौ अलि, देखत जित तितहीं—सा ३६।

८६. सेवा मदन गोपाल की मुकतिहूँ तें मीठी—परमा ८५१।

८७ यह तन अरपन हरि कौं कीनो यह गुन कहाँ लहै।
परमानंद मदनमोहन के चरन सरीन गहै—परमा ७०२।

८८. मेरो मन गह्यौ माई मुरली कौ नाद।

६ *रास—*

'रास' से तात्पर्य रस-रूप कृष्ण और उन्हीं में लीन गोपियों के उस नृत्य से है जिसमें विशेष मानसिक रस का अनुभव हो[८]। रास के मुख्य दो रूप हैं—पहला, 'अवतरित या नैमित्तिक रास' वह है जो रस-रूप श्रीकृष्ण ने द्वापर में गोपियों के साथ किया था। दूसरा है 'नित्य रास' जो वृन्दावन में परब्रह्म श्रीकृष्ण रस-स्वरूपा गोपियों के साथ 'नित्य' करते हैं। वल्लभाचार्य जी के सिद्धांतानुसार, "लीला के लिए जब भगवान इस भू-तल पर लीला-परिवार के साथ अवतीर्ण होते हैं, तब 'व्यापी वैकुंठ' गोकुल के रूप में तथा द्वादश शक्तियाँ श्रीस्वामिनी, चंद्रावली, राधा, यमुना आदि आधिदैविक रूप में प्रकट होती हैं। भगवान के साथ रस कल्लोल का सद्य आस्वादन करने के निमित्त ही वैदिक ऋचाएँ गोपिकाओं के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। वृन्दावन-विहार नित्य विहार है। आचार्य की मान्यता है कि श्रीकृष्ण व्रज को छोड़कर एक डग भी बाहर नहीं जाते और आचार्य के प्रमुख शिष्य सूरदास जी ने भी 'गोपिनि मंडल मध्य विराजत निसि दिन करत विहार' के द्वारा श्रीकृष्ण के व्रज विहार को नित्य लीला का ही अंग माना है'।[९] अस्तु। अष्टछापी कवियों ने यद्यपि वर्णन तो 'अवतरित या नैमित्तिक रास' का किया है परंतु वैसा करते समय उनकी दृष्टि बराबर 'नित्य रास' पर रही है[११]। सूरदास ने इस 'रास-रस' को सुर-नर-मुनि यहाँ तक कि शिव को भी, समाधि में मिलनेवाले सभी 'रसों' से बढ़कर बताया है[१२]। उनकी सम्मति में सामान्य लौकिक बुद्धि से न इस 'रास-रस-रीति' का वर्णन हो सकता है और न अनुभव ही। आगम-निगम से मिला हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर

आसन पौन ध्यान नहिं जानों कौन करे अब वाद विवाद।
मुकुति हेतु संन्यासिनि कों हरि, कामिनि हेतु काम कौ दाव।
करमिनि हेतु धरम कौ मारग भा मन रहे पद अंबुज भाव।
जो कोऊ करे कोटि सब याके सपनेहुँ दियो न छिहारो भोग।
परमानन्द स्याम रँग राचौ सबै सरौ मिलि इक अँग लोग—परमा २११।

८२ सुबोधिनी फल प्रकरण अध्याय ४, श्लो २ की टीका।
९ डा० दीनदयाल गुप्त हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग १, पृ ५४८।
११ नित विहार गोपाल लाल सँग वृन्दावन रजधानी—सा १ ५५।
१२. जो रस-रास रंग हरि कीन्हो वेद नहीं ठहरान्यौ।
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबही सिवहु समाधि भुलान्यौ—सा ११०१।

बार पहुंचती हैं ¹⁶ अस्तु। नंददास ने श्रीकृष्ण तथा गोपियों को 'नित्य' बताकर उनके रास-रस को भी नित्य तथा अद्भुत कहा है जिसका वर्णन शेष सहस्र मुखों से करने पर भी पार नहीं पाता ¹⁷। 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' में इन्होंने रास-रस' को सकल शास्त्र-सिद्धांतों का सार-स्वरूप 'महारस' कहा है ¹⁸।

सूरदास और नंददास ने इस लीला के वर्णन को बहुत विस्तार दिया है, अन्य कवियों ने उसकी संक्षिप्त चर्चा से ही संतोष किया है। कुम्भनदास चतुर्भुज दास और गोविंदस्वामी ने अद्भुत रास-लीला देखकर सुर, नर, मुनि के साथ-साथ पशु पक्षी-पवन आदि के भी मुग्ध होने की बात कही है ¹⁹ यहाँ तक कि उनके अनुसार, चंद्रमा भी अपनी चाल भूल जाता है¹ ।

१६ क सुर ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि निहारि।
  जात न बने देखि सुख हरि को, धार्यौ लोक बिसारि—सा० १ ४५।
 ख हमकों बिधि ब्रज-बधू न कीन्ही कहा अमरपुर बास भएँ।
  बार-बार पछितांति यहै कहि सुख होतौ हरि संग रहैं—सा १ ४६।
१७ नित्य रास रसनीय, नित्य गोपीजन बल्लभ।
  नित्य निगम यौं कहत नित्य नव तन अति दुर्लभ।
  यह अद्भुत रस-रास कहत कछु कहि नहिं आवै।
  सेस सहस मुख गावै अजहूं अंत न पावै नंद, रास, पृ १८१।
१८. सकल सास्त्र-सिद्धांत, परम एकांत महा रस—नंद, सिद्धांत पृ १६५।
१९ क थकित सुर मुनि पवन पसु खग सुधि न रही तिहिं काल—कुंभन १।
 ख किलोही ब्रज-नारि, पसु पंछि सुनैं दै धरि कान।
  चर स्थिर हो फिरत चल सब की भई गति आन।
  तजि समाधि जु मुनि रहे, थके ब्योम बिमान।
  कुंभनदास सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान—कुंभन ११।
 ग. वृन्दावन सोभा बढ़यौ ता पर ब्योम बिमाननि सौं मढ्यौ।
  दुंदुभि देव बजावैं फूलनि अंजुलि बहु बरसावैं।
  बरसैं जु फूलनि अंजुली बहु अंबर धन कौतुक पगे—कुंभन ४१।
 घ. चतुर्भुज प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि, मोहे खग मृग बन थकित ब्योम बिमान'
   —चतु ११।

१ क देखि कौतुक चंद भूल्यौ, तजी पच्छिम चाल—कुंभन १।
 ख रास रस गति निरखि उडपति तजी पच्छिम चाल—चतु ११।
 ग चतुर्भुज प्रभु बन बिहार मोहे सब सुर अकास,

७ *गोपी—*

वल्लभ-संप्रदाय में 'राधा' और गोपियों के मान्य स्वरूप का परिचय देते हुए डा० दीनदयालु गुप्त ने लिखा है—"एक से अनेक होनेवाले भगवान की इच्छा-शक्ति द्वारा उनके अक्षर-ब्रह्म रूप से सत्-रूप जगत और चित्रूप जीव देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनंद-स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम-रूप से गो, गोप-गोपी आदि गोलोक की आनंद-रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का रस-रूप बिना उनकी रसात्मक शक्तियों के अपूर्ण है। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकायें उनका धर्म हैं। दोनों अभिन्न हैं। सिद्ध-शक्ति राधा और कृष्ण का संबंध चन्द्र और चाँदनी का है। गोपियाँ उस चाँदनी का प्रसार करनेवाली किरणें हैं। राधा भगवान की आदि रस-शक्ति है और गोपिकायें इस रस-शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसीलिए भगवान की रस-शक्तियों के बीच रस की सिद्ध-शक्ति राधा स्वामिनी-स्वरूपा है। भगवान रस-शक्तियों के बीच पूर्ण रस-शक्ति-स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं"[१]।

अष्टछापी कवियों ने भी 'गोपियों' का वर्णन परब्रह्म की 'आनंदमयी शक्ति' के रूप में ही किया है। सूरदास भी राधा' को 'पुरुष' कृष्ण की 'प्रकृति' कहकर दोनों की एकता या अभिन्नता बताते हैं,[२] 'शेष, महेश, गणेश, शुकादिक, नारदादि की स्वामिनी' कहकर व्रजधनी श्रीकृष्ण को 'सुबस करने की बात कहते हैं'[३] और

निरखि चकोर चंद्र-रथहि पश्चिम नहिं भाँवै—चतु १६।

घ बस्यौ चंद मौहे खग मृगगन मति छिति अमित चाल गति लावै।

चतुर्भुज प्रभु गिरिधर नट नागर सुर नर मुनि गनि मति बिसरावै—चतु १४।

ङ सिव बिरंचि मोहे सुर मुनि मुनि सुर-नर-मुनि गति भंग—गोवि ५७।

१. डा दीनदयालु गुप्त 'अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय' भाग २ पृ ५ ६।

२ ब्रजहि बसें आपुहि बिसरायौ।

'प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु' बातनि भेद करायौ।

जल-थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं बद उपनिषद गायौ।

द्वै तन जीव एक हम दोऊ' सुख कारन उपजायौ।

ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ तब मन तिया जनायौ—सा १६८७।

३ नीलांबर पहिरे तनु भामिनि जनु घन दमकति दामिनि।

सेस, महेस गनेस सुकादिक नारदादि की स्वामिनि।

'जगत-जननि', 'जगरानी', 'जगतिनि की गति', 'भक्तनि की पति' आदि कहकर उनकी वंदना करते हैं[४]। आगे उन्होंने 'राधा' से कृष्ण-भक्ति देने की प्रार्थना भी की है[५]। परमानंददास कई पदों में 'राधा' के श्रीचरणों की वंदना करते हैं[६]। अतएव यह स्पष्ट है कि अष्टछापी कवि 'राधा' को परब्रह्म की परमानंद-स्वरूपा शक्ति के ही रूप में मानते हैं। कृष्ण का उनसे गंधर्व-विवाह भी अष्टछापी कवियों ने कराया है[७]।

श्रीकृष्ण के प्रति अन्य गोपियों के भी अनन्य भाव का वर्णन अष्टछापी कवियों ने किया है। गोपियों में कुछ विवाहिता हैं जो कुल-कानि लोक-लाज और

× × ×
सहज माधुरी अंग अंग-प्रति, सुबस किए धनी।
अखिल लोक लोकेस विलोकत, सब लोकनि के गनी—सा १ ५५।

४ जग नायक, 'जगदीस-पियारी' 'जगतजननि जगरानी।
नित विहार गोपाललाल सँग, वृन्दावन रजधानी।
'अगतिनि की गति भक्तनि की पति राधा मंगल-दानी।
'असरन-सरनी भव भय हरनी' वेद पुरान बखानी—सा १०५५।

५. कृष्णभक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार—सा १ ५५।

६ क धनि-धनि लाडिली के चरन।
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल क से बरन।
× × ×
नंद-सुत-मन मोदकारी विरह सागर तरन।
दास परमानंद छिन-छिन स्याम ताकी सरन—परमा १६।

ख धनि यह राधिका के चरन।
हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन—परमा ८२७।

७ क. जाकौं 'व्यास बरनत रास'।
है गंधर्व विवाह चित दै सुनौ विविध विलास।
× × ×
बरी लग्न सु बरद निसि की, सोधि करि गुरु रास।
मौर मुकुट सुसीर मानौ कटक कंगन मास।
× × ×
फिरत भाँवरि करत मूपन बजनि मनौ उजास—सा १ ७१।

ख श्रीलाल गिरिधर नवल दूलह दुलहिनि श्री राधिका—सा १ ७२।

पति-पुत्र आदि का संबंध त्याग कर, 'जार-भाव से श्रीकृष्ण को भजती हैं'[८]। शेष गोपिकाएँ कुमारीपन से ही श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट होतीं, उनको पति-रूप में पाने के लिए जप-तप करतीं, नेम-धर्म से रहतीं और शिव तथा सूर्य से यह मनोकामना पूर्ण कर देने की प्रार्थना करती हैं। इस कथन की पुष्टि 'पूजा' शीर्षक के अंतर्गत पीछे दिये गये उदाहरणों से होती है।

गोपियों के उक्त दोनों वर्गों की मधुर भाव-प्रधान भक्ति की प्रशंसा सभी अष्टछापी कवियों ने की है। परमानंददास ने उन्हें 'प्रेम की ध्वजा' कहा है जिनकी प्रशंसा शुक, व्यास और ऊधव, सभी करते हैं[९]। एक दूसरे पद में, नंददास के स्वर में स्वर मिलाकर वे उन्हें निर्मत्सर संतों की 'चूड़ामणि' कहते हैं[१०]। नंददास ने 'रास-पंचाध्यायी' में पंचभूतों से निर्मित प्राणी से भिन्न, शुद्ध प्रेममय और जग की 'उजियारी' कहकर उनकी प्रशंसा की है[१११]।

समीक्षा—अष्टछाप-काव्य के रचयिता प्रमुख रूप से परम 'रसिक' और 'रसकिनी' के गायक भावुक भक्त थे और गौण रूप से कवि। सामान्यतया इन दोनों वर्गों की रुचि दर्शन और दार्शनिक विषयों की ओर नहीं होती। इसी कारण

८.क हम अहीरि एह नारि लोक-लज्जा न जरा।
ता बिन हम भईं बावरी, दियो कठ में हार।
तब तें घर पैरो बह्यो 'स्याम तुम्हारो जार'—सा में पृ २५१।
ख परम करम लोक-लाज सब पति नहिं धाई—चतु १८४।

९ गोपी प्रेम की ध्वजा।
जिन गोपाल कियो बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सुक मुनि व्यास प्रसंसा कीनी ऊधौ संत सराही।
भूरि भाग्य गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माँही—परमा ८२५।

१०क मैं हरि रस ओपी सब गोप तियनि तें न्यारी।
कमल-नैन गोविंदचंद की प्रानहु तें प्यारी।
'निरमत्सर' जे संतत ताहि चूड़ामनि गोपी।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी—परमा ८२६।
ख 'निरमत्सर जे संत तिनकी चूड़ामनि गोपी'—नंद राम पृ १७।

१११. सुद्ध प्रेममय रूप, पंचभौतिक तें न्यारी।
तिनहिं कहा कोउ गहै, 'जोति सी जग उजियारी'—नंद राम, पृ १६।

अष्टछाप-काव्य में दार्शनिक प्रसंगों की चर्चा अथवा उनका विवेचन अधिक नहीं है। तत्संबंधी जो थोड़े-बहुत उल्लेख उसमें मिलते हैं, वे एक तो इस कारण कि इन कवियों में से कुछ ने 'श्रीमद्भागवत' के विशेष स्थलों को लेकर पद अथवा स्वतंत्र ग्रंथ रचे और कुछ इस कारण की महाप्रभु वल्लभाचार्य के विचारों की छाया उनकी रचनाओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ी। प्रथम प्रभाव के उदाहरण सूरदास और नंददास के क्रमशः पौराणिक प्रसंगों और 'दशम स्कंध' के कुछ स्थलों पर मिलते हैं और द्वितीय के प्रायः सभी कवियों के स्फुट पदों में। ऐसी स्थिति में सभी अष्टछापी भक्त कवियों की रचनाओं के आधार पर दार्शनिक विषयों के कुछ ही पक्षों का सामान्य परिचय मिलता है, क्रमबद्ध और सांगोपांग विवेचन नहीं यद्यपि, जैसा कि ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है, कहीं-कहीं उनके कथन बहुत महत्व के हैं जिनसे वल्लभ-संप्रदायी विचारों पर भी प्रकाश पड़ता है। सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अष्टछापी कवियों के ऐसे ही कथन महत्वपूर्ण हैं और मुख्यतः इन्हीं की चर्चा ऊपर की गयी है।

---

१० साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचार

अष्टछापी कवियों के साहित्य, कला और विज्ञान-संबंधी विचारों का अध्ययन करने के लिए उनको इन्हीं तीन उपशीर्षकों में विभाजित कर लेना उचित जान पड़ता है।

१ साहित्य-संबंधी विचार—

वल्लभ-संप्रदाय में चार प्रमाण माने गये हैं—१ वेद, २. गीता, ३. श्रीमद् भागवत और ४ वेदांत-सूत्र[१]। अष्टछापी कवियों ने इनमें से प्रथम तीन प्रमाणों का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया है। इनके अतिरिक्त संहिता, श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, आदि वेदांगों के साथ-साथ पुराण, महाभारत, शास्त्र, तंत्र, वाल्मीकि रामायण, अमरकोश आदि का भी उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है।

क वेद और वेदांग—वेद चार हैं—१ ऋग २. यजु., ३. साम और ४ अथर्व। इस संख्या की ओर सूरदास ने संकेत किया है[२]। वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा मानी गयी है और 'सारावली' में यह भी कहा गया है कि शंखासुर ने जब चारों वेदों का हरण किया तब हरि ने 'हयग्रीव' रूप धरकर, उसका दमन करके, वेदों का उद्धार किया[३]। वेदों का विषय 'ब्रह्म' बताया गया है जिसके संबंध में बहुत-कुछ लिखने के पश्चात् 'नेति' लिखे जाने की बात नंददास की गोपियाँ कहती हैं[४]। सूरदास ने वेदों में प्रभु का 'पतित-पावन' बिरद होना कहा

१ क गो. व्रजभूषण जी महाराज कांकरोली का इतिहास पृ २७।
ख श्री कंठमणि शास्त्री का 'पोद्दार-अभिनंदन-ग्रंथ' में प्रकाशित 'पुष्टिमार्गीय सिद्धांत की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि', शीर्षक लेख पृ २१८।
२.क. 'चारों' वेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत है ताको—सा १ १११।
ख अती सती तापस आराधैं 'चारों' वेद ररैं—सा १ २६१।
३ ब्रह्म सभा म ब्रह्म कियो जब करन 'वेद' उचार।
प्रगट भये 'हयग्रीव' महानिधि परम अवतार।
चार वेद ले गयो 'संखासुर' जल में रह्यो दुराय।
धरि हयग्रीव रूप हरि मार्यो 'लीन्हें वेद छुड़ाय'—सा० ८२-६।
४ जो उनके गुन होहिं 'वेद क्यों नेति बखानें'—नंद, भँवर, पृ १२०।

है[5] और अनेक कथनों की पुष्टि में 'वेद' को साक्षी-रूप बताया है[6]। 'सारावली में 'ब्रजमोहन' का चरित्र ऋग्, साम और यजुर्वेदों में वर्णित होना कहा गया है[7]। शुभ कार्यों के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा 'सामवेद' आदि का पाठ किये जाने की बात प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[8]। गो० विट्ठलनाथ के जन्म के अवसर पर गोविंदस्वामी ने उन्हें वेद-धर्म प्रकटाकर धार्मिक पाखंड आदि दूर करने वाला कहा है[9]।

'वेदों' के पर्याय-रूप में अष्टछाप-काव्य में 'निगम' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिनके लिए, सूरदास के अक्रूर की सम्मति में, पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण 'गम्य' नहीं है[10]। निगम-छंद का पाठ कृष्ण-जन्म पर किये जाने की बात गोविंदस्वामी ने कही है[11]।

वेद के चार भाग किये जाते हैं—संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद और सूत्र। इनका

५. पतित-उधारन बिरद बुलावैं, 'चारो वेद-पुकारैं'—सा १ १८१।

६ क सूरदास प्रभु की महिमा अति, साखी वेद पुराननि'—सा १ ११।
 ख मनवांछित सबहिनि फल पायो, 'वेद-पुराननि साखी'—सा १६ ७।

७ चौरासी ब्रज कोस निरंतर खेलत है ब्रजमोहन।
 'सामवेद रिगवेद जजुर में कहेउ चरित ब्रजमोहन—सारा १ ६।

८.क. भीर भई दसरथ के आँगन 'सामवेद धुनि छाई'—सा ९ १७।
 ख आँगन लीपो चौक पुरावौ 'विप्र पढ़न लागे वेद'—परमा ११।
 ग अन्नप्राशन मुनि गरग परासर 'तिनपे वेद पढ़ावैं'—परमा १२।
 घ 'चहूँ वेद-धुनि' करत महामुनि पंच सबद ढपढोल—परमा १५।
 ङ सबद करत मानहुँ 'चहुँ वेद-धुनि' बंदीजन बिबिध गाइ—गोविं २२।

९ क पाखंड-धर्म दूरि करिहैं प्रभु 'वेद-धर्म प्रगटाई'—गोविं ८२।
 ख प्रनमामि श्रीमद् विट्ठलम्।
 'वेद-धर्म' प्रमान करन बीच मारग सुखकरम्—गोविं ९१।

१० क सूर पूरन ब्रह्म निगम नाही गम्य तिनहिं अक्रूर मन यही बिचारे—सा २५५१।
 ख बारिधि बोध अपार अगम कौ निगम न पावत थाही।
 बुधि-बिवेक-बोहित चढ़ि स्रम करि, तौ सिव भेद परी—सा २११।

११ बिबिध भाँति बाजे बाजत हैं निगम पढ़त द्विज छंद।
 —गोविं, कीर्तन-सं, भाग १, पृ ५।

उल्लेख अष्टछाप-काव्य में कम हुआ है[१२]। इन कवियों ने 'स्रु ति' या 'श्रुति' का प्रयोग कभी तो 'वेद' के पर्याय-रूप में किया है[१३] और कभी 'वेद' के साथ भी किया है[१४]। 'स्मृति' का उल्लेख भी कहीं 'श्रुति' के साथ हुआ है[१५] और कहीं 'वेद' के साथ[१६]। इसी प्रकार गोपियों को कहीं 'वेद की रिचा' कहा गया है[१७] और कहीं 'स्रु ति रिचा'[१८]। 'उपनिषद्' का उल्लेख भी अष्टछापी कवियों ने कहीं तो स्वतंत्र रूप से किया है[१९] और कहीं 'वेद' के साथ[२०]। परंतु महाप्रभु वल्लभाचार्य अथवा अष्टछापी कवियों ने 'वेद' की महिमा जिस रूप में भी गायी हो, उनका भक्ति-सिद्धांत 'वेद-मार्ग' या 'मर्यादा' का उल्लंघन करनेवाला ही है। प्रायः सभी अष्टछापी कवियों ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है[२१]।

१२. तातैं हरि करि व्यासऽवतार करी संहिता बेद बिचार—सा १-२१।

१३.क जाकैं स्वाँस उसाँस तैं प्रगट भए स्रु ति चार'—सा २०२१।

ख स्वाँसा तासु 'भए स्रु ति चार। करे सो अस्तुति या परकार—सा ४१।

ग. छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल मुख्य बखान 'सकल स्रु ति महिमा-छीत ४१।

घ सकल 'स्रु ति-दधि' मथत पायौ इतोई घृत-सार—सा २४।

१४ अद्भुत कोउ स्याम स्यामाबर बिहरत वृन्दावन चारी।
रूप काँति कल बैभव महिमा, रटत 'बेद-स्रु ति' मति धारी।
—कृष्ण १५, मीतल पृ २२१।

१५.क. 'स्रु ति, सुम्रति' मुनिजन सब भाषत, मैं हूँ कहत पुकारि—सा २११।

ख हरि समान हितिवा नहिं कोइ, स्रु ति सुम्रिति' देख्यौ सब जोइ—सा २-५।

१६.क 'सुम्रति बेद' मारग हरिपुर कौं, तातैं सिम्रौ भुलाई—सा ११८७।

ख 'बेद पुरान सुम्रति कौं' सब आधार मीन कौं ज्यौं जल—सा ११४।

१७ क. 'बेद-रिचा' ह्वै गोपिका हरि सँग कियौ बिहार—सा ११७५।

ख ये बे गोप-बधू ही ब्रज में तेइ सब 'बेद रिचा भई बेद—छीत १५।

१८.क नारि पुरुष कोउ होइ, स्रु ति-ऋचा' गति सौ पावै—सा ११७५।

ख ब्रज-सुंदरि नहिं नारि, 'रिचा स्रु ति की सब आहीं—सा ११७५।

१९.क सिव-बिरंचि नारद पद-बंदित 'उपनिषद' कीरति गावै—परमा ६५।

ख निर्गुन सगुन आत्मा, रचि सु 'उपनिषद' गावै—नंद, भँवर, पृ १२७।

२० क. जा 'बेद-उपनिषद' गावैं—सा ११२२।

ख सूर स्याम तुम अन्तरजामी 'बेद-उपनिषद' भाखैं'—सा ११११।

२१ क. इहिं बिधि 'बेद-मारग' सुनौ कपट तजि पति पूजा करौ—सा ११६।

ख 'मर्यादा उलँघन सबही की लोक बेद उपहास' सही री—परमा ७१४।

ख *गीता*—'श्रीमद्भगवद्गीता' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में 'साखी' रूप में, कहीं अकेले हुआ है[21] और कहीं 'वेद' के साथ[22]।

ग *श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण*—अष्टछाप काव्य में सबसे अधिक उल्लेख श्रीमद्भागवत' का हुआ है जिसके कर्त्ता के रूप में व्यास का उल्लेख सूरदास ने किया है[23]। संपूर्ण ग्रंथ में बारह स्कंध होने की बात भी उन्होंने लिखी है[24]। इसकी रचना के आधार की चर्चा भी सूरदास ने की है[25]। 'श्रीमद्भागवत' के वक्ता श्रोता के रूप में परमब्रह्म, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव, परीक्षित, सूत-शौनक, विदुर आदि का उल्लेख भी 'सूरसागर' में मिलता है[26]। नंददास ने 'श्रीमद्भागवत' को 'निगम-सार' कहा है[27] और सूरदास ने उसे वेद तथा गीता के समकक्ष माना है[28]। सभी अष्टछापी कवियों ने 'भागवत' के माहात्म्य का बखान बड़ी श्रद्धा से

ग परमानंद 'बद मारग की मरजादा गाइ दृढ़'—परमा ७२२।
२२.क सब बारक संहित सुनावै। कह्यौ हरि जू जो 'गीता' गावै—सा १-२८६।
ख सांख्य तत्त्व 'गीता' हरि कीन्ही गुन क भर करायो—सारा ८७५।
२३ 'गीता-बद-भागवत में प्रभु, यौं बोले हैं व्यास—सा १ १६६।
२४ संवतसार तु किल्यौ व्यास को इक चित ह्वै 'भागवत' किएँ—सा १-८२।
२५ व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध' बनाइ—सा १ २२५।
२६ मैं ब्रह्मा बानी तिहिं बार। तू ले चारि स्लोक विचार।
ह्रदै विचारत ह्वै है ज्ञान। ऐसी भाँति कह्यौ भगवान।
'ब्रह्मा' सो 'नारद' सौं कहे। 'व्यास' सोइ 'नारद' सौं लहे।
व्यास कह्यौ सोतौं विस्तार। भयौ भागवत' पा परचार।
सोई मन में तोसौं भाखौं। तेरे ह्रदै न संसय राखौं।
'मूल भागवत के पद चारि। सूर भली बिधि ह्रदै बिचारि—सा २ १७।
२७ क श्रीगुरु 'चारि स्लोक' दए ब्रह्मा को समुझाइ।
'ब्रह्मा' 'नारद' सौं कहे, 'नारद' व्यास सुनाइ।
'व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ—सा० १ २२५।
ख व्यास कह्यौ सो सुक सौं गाइ। कहौं सो सुनौ संत चित लाइ।
व्यास पुत्र हित बहु तप कियौ। तब नारायन यह बर दियौ।
ह्वै है पुत्र भक्त अति ज्ञानी। जाकी जग में चलै कहानी—सा १-२२७।
२८. 'श्री भागवत सुभ नाम परम अभिराम, परम गति।
निगम-सार सुकुमार बिना गुरु-कृपा अगम अति—नंद राम, पृ १८१।
२९ गीता बद भागवत में प्रभु यौं बोले हैं व्यास—सा १ १६६।

किया है[३०]। परमानंददास की सम्मति में यदि 'भागवत' पुराण और गोपियों का प्रेम न होता तो सब 'औघड़-पंथी' हो जाते[३१] और छीतस्वामी का मत है कि जब तक 'श्रीमद्भागवत' के कथा-रस में जन-समाज की रुचि है तब तक 'कलियुग' हो ही नहीं सकता[३२]। इसीलिए सूरदास कहते हैं कि यदि नर-जन्म पाकर 'भागवत' नहीं सुनी तो जीवन में किया ही क्या, अर्थात् सारा जीवन व्यर्थ ही हो गया[३३]।

अष्टछापी कवियों में सूरदास ने 'श्रीमद्भागवत' का आधार लेकर काव्य-रचना करने की बात कई पदों में लिखी है[३४]। परंतु इतना होने पर भी 'सूरसागर' किसी भी दृष्टि से 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद नहीं है। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ से केवल कुछ कथा-सूत्र ही सूरदास ने लिये हैं। हाँ, नंददास ने अवश्य 'भागवत' का अनुवाद किया था जिसका सक्षरण श्लोक उन्होंने 'दशम-स्कंध' के आरंभ में कर दिया है[३५]। अन्य कवियों में गोविंदस्वामी के कुछ पदों पर 'भागवत' का प्रभाव इतना

१० क 'श्री भागवत' सुनै जो कोइ। ताकौं हरि-पद प्रापति होइ।

× × ×

ख सुनै 'भागवत' जो चित लाइ। सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ—सा १ २१।

ग 'श्रीभागवत' सुनै जो हित करि तरै सो भव जल पार—सा १-२११।

घ 'श्रीभागवत' सकल मुनि नित इन तजि चित कहुँ अनत न लाऊँ-परमा ६ १।

११ जो गोपिनि को प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान'।

तौ सब औघड़ पंथहि होतो कथत गमैया ज्ञान—परमा ८२४।

१२. जब लगि 'श्रीभागवत' कथा रस तब लगि कलियुग नाहिं—छीत ४२।

१३. नर तैं जनम पाइ कह कीनो!

श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि' गुरु गोबिंद नहिं चीन्हौ—सा १-६५।

१४ क कहौं सु कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ 'भागवत'ऽनुसारि—सा १ २८५।

ख सूर कह्यो क्यौं कहि सकै, जन्म-कर्म अवतार।

कहे कछुक गुरु-कृपा तैं 'श्रीभागवत'ऽनुसार'—सा २ ३६।

ग तिन हित को जो किय अवतार। कह्यौ सूर 'भागवत'ऽनुसार'—सा ३-६।

घ. कर्दम कैं भयौ कपिलऽवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार—सा ३ १२।

ङ ताकैं भयो दत्त अवतार। सूर कहत भागवतऽनुसार—सा ४-२।

च. बरन्यौ रिषभदेव-अवतार। सूरदास 'भागवत'ऽनुसार—सा ५-२।

छ. शुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ—सा १-८।

१५ परम विचित्र मित्र इक रहे कृष्न चरित्र-सुन्यो भी चहै।

अधिक है कि वह इसके तद्विषयक वाक्यों का अनुवाद ही जान पड़ता है[१८]।

'भागवत्भागवत' के अतिरिक्त सत्रह पुराण और माने गये हैं[१७] जिनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने कभी तो केवल 'पुरान'-रूप में अपने काव्य में किया है[१८] और कभी 'अठारह पुरान' कहकर 'वेदव्यास' को उनका रचयिता बताया है[१९]। 'वेदों' के साथ भी 'पुराननि' का उल्लेख अष्टछाप-काव्य में हुआ है[२०]।

तिन कही दसम स्कंध जु याहि, भाषा करि कछु बरनौ ताहि।
—नंद, दशम, पृ. २६१।

१६ क यहो पिय, कैसे मृदुल चरन धरनि।
गिरि की काँकरी अति कठिन तृन अंकुर रसनाधर सिर्याहि,
सुधि-सुधि करि-करि छतियाँ जरनि।
सरसि सुकोमल गरम की लिय मुसत हमारे कठिन उर
सहसा ही न धरि सके उरनि—गोविं १५७।

ख शरदुदाशय साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
× × ×
यदे सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु
—'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध, अ. ३१, श्लो. २ और १९।

ग. वेनु बजावत री मोहन लाल।
वाम कपोल भुज पर धरि कलगित भुव रस चपल दृगंचल।
सिंदूरास्य अधर सुधारस पूरत रंध्र मृदुल अँगुलीदल—गोविं ४२।

घ मोहत ब्योम बिमान बनिता खसित नीवी सुध्यो न अंचल—गोविं ४२।

ड वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रु रधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः।
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः।
—'श्रीमद्भागवत' दशम अध्याय ३५ श्लो. २-३।

१७ अठारह पुराण ये हैं—ब्रह्म पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद मार्कंडेय अग्नि, भविष्य ब्रह्मवैवर्त लिंग वराह स्कंद, वामन, कूर्म मत्स्य गरुड़ और ब्रह्मांड—लेखिका।

१८. तैं नर का 'पुरान' सुनि कीना। अनपायनी भगति नहिं उपजी भूखे दान न दीना।
—परमा ६ ६।

१९ बहुरि 'पुरान अठारह किए'। पै तउ सांति न आई हिये—सा १ २१।

२० क 'वेद पुरान श्री भागवत' भाखे करत भगत मन भायौ—परमा ८२१।

अठारह पुराणों में से 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त केवल 'पद्म पुराण' का उल्लेख परमानंददास के एक पद में मिलता है[४१]।

घ अन्य ग्रन्थ—इस वर्ग के ग्रंथों में प्रथम है 'महाभारत' जिसका उल्लेख सूरदास ने किया है[४२]। दूसरा उल्लेख है 'शास्त्रों' का जिनकी संख्या 'छह' होने की बात 'सूरसागर' में कही गयी है[४३]। हरिपद में चित्त लगाना ही सूरदास ने सभी 'शास्त्रों' का सार बताया है[४४]। 'तंत्र' और 'सतकोटि रामायन' का उल्लेख 'सारावली' में मिलता है[४५]। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित अंतिम ग्रंथ है 'अमरकोश' जिसके आधार पर नंददास ने 'मान-मंजरी' नामक 'शब्दकोश' का निर्माण किया था[४६]।

ख बरै 'बेद-पुरान' छिनु छिनु साँझ अरु परभात—परमा ८६५।
ग. है बाप सबै कोऊ अनै माहि 'बेद पुरान-बखानै'—परमा ६२६।
घ 'बेद पुराननि' खौजि कै, नहिं पायौ गुन एक—नंद मँवर, पृ १२७।
४१ 'पदम पुरान' कथा यह पावन भरनी प्रति बाराह कही।
तीर्थ महातम जानि जगतगुरु सौं परमानंददास लही—परमा ५७६।
४२.क महाकवि भी आदराइ।
भीष्म की परतिज्ञा राखी अपनो बचन फिराइ।
'भारत' माहि कथा यह बिस्तृत कहत होइ बिस्तार—सा १२६७।
ख फिरि द्रौपदी भवन में आइ श्रीहरि लाजा राखी।
'बेद पुरान तंत्र भारत' में कही बहुत बिधि भाखी—सारा ७७।
४३ सार बेद चारों को जोइ। 'छेऊ सास्त्र' सार पुनि सोइ।
सर्व पुरान माहिं जो सार। राम-नाम मैं पढ़यौ बिचार—सा ७-२।
४४ तब स्नु आदिक रिषि सकल रहे हरि-पद चित लाइ।
'सर्व सास्त्र को सार' सार इतिहास सबै जो—सा ११७५।
४५.क बेद-पुरान-'तंत्र'-भारत में कही बहुत बिधि भाखी—सारा ७७।
ख ब्यास पुरान प्रगट यह भाख्यौ 'तंत्र' ज्योतिनिनि जान्यौ—सारा १९१।
ग रामचरित बरनन के कारन बाल्मीकि अवतार।
तीनों लोक भये परिपूरन रामचरित सुभसार—सारा १५४।
घ. सतकोटी रामायन कीनों तऊ न लीन्हों पार।
कह्यो बशिष्ठ मुनि रामचन्द्र सौं 'रामायन' उच्चार—सारा १५५।
४६. समुझि सकत नहिं संस्कृत जान्यौ चाहत नाम।
तिन लगि नंद सुमति जथा रची नाम की दाम।

समीक्षा—उपरोक्त सभी ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं और जिस रूप में उनका उल्लेख अष्टछापी कवियों ने किया है उससे यह नहीं जान पड़ता कि उन्होंने सभी का विधिवत् अध्ययन किया होगा। इस दृष्टि से नंददास का कार्य अवश्य उल्लेखनीय है जिन्होंने 'श्रीमद्भागवत' और 'अमरकोश' का बहुत अधिक आधार लेकर 'दशम स्कंध' और 'नाममाला' की रचना की। सूरदास ने 'भागवतानुसार' काव्य-रचना का उल्लेख करते हुए भी केवल कुछ कथा-सूत्र ही उसते लिये। हाँ, वेद, पुराण, गीता आदि से संबंधित, इन कवियों के उल्लेखों से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि ये जिस वातावरण में रहकर काव्य-रचना करते थे, उसमें इनकी चर्चा बराबर हुआ करती थी और यही उक्त ग्रंथों के प्रति इन कवियों की श्रद्धा का कारण है।

२ *कला-संबंधी विचार*—

'कला' से तात्पर्य यहाँ 'ललित कला' से है जिसके मुख्य पाँच भेद हैं—वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य-कला। इन्हीं के संबंध में अष्टछापी कवियों के विचार यहाँ दिये जा रहे हैं।

क वास्तुकला—अष्टछाप-काव्य में मुख्यतः राम और कृष्ण के उन भवनों की चर्चा है जो 'वास्तुकला' के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। कंस की राजधानी मथुरा में कंचन के आवास होने का उल्लेख परमानंददास ने किया है[४७]। वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, सभी स्थलों के भवनों के साथ 'अटा'[४८] और झरोखे या 'गवाक्ष' और खिड़कियाँ होने की बात भी अष्टछापी कवियों ने लिखी है[४९]।

गुथनि नाना नाम की 'अमरकोस' के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ—नंद मान पृ ११।

४७ मथुरा देखिये नैंदनंदन।
'भले अवास रचे कंचन के' कैसो कंस-निकंदन—परमा ४१४।

४८.क 'अटनि तें लूटति पिचकारी, रँगि गई बाखरि महल अटारी—सा २९ १।
ख लाल गुलाल के खंभ मनोहर 'झरोखन' की छबि भारी—गोवि १४५।

४९.क जहँ तहँ उमकि 'झरोखा' झाँकति जनक नगर की नारि—सारा ९ ७।
ख खिरु-खिरु झाँकि 'झरोखनि' देखो—गोविं ११२।
ग देखो स्याम 'गवाक्ष' पंथ ह्वै मगति एक दधि मौरी—सा ८८१।

भवनों के 'कँगूरों' का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है[५०] और उनमें 'मणिखंभ' तथा 'मणिचौक' होने की बात भी कही गयी है[५१]। ऐसे भवनों की वास्तुकला का कदाचित् सर्वोत्तम उदाहरण सूरदास के निम्नलिखित वर्णन में मिलता है—

> दिन द्वारावति देखत आवत।
> विद्रुम स्फटिक पची कंचन लगि, मनिमय मंन्दिर बने बनावत।
> जित तित नर-नारि मीन खग, सबहिनि के प्रतिबिंब दिखावत।
> बहु घन रँग विविध बहुत विधि अवलोकत आनंद बढ़ावत[५२]।

वास्तुकला के आदर्श-रूप में उपस्थित ऐसे भवनों को देखकर सुर-मुनि का मोहित होना भी सूरदास ने कहा है।

ख *मूर्तिकला*—अष्टछापी कवियों के समय में मथुरा की मूर्तिकला कितनी उत्कृष्ट थी, इसका परिचय तत्कालीन मंदिरों में निर्मित देवी-देवताओं के साथ-साथ अन्यान्य सुन्दर मूर्तियों से लगता है[५३]। श्रीकृष्ण राधा आदि की विविध क्रीड़ाओं तथा भाव-भंगिमाओं का भावपूर्ण और सजीव-जैसा अंकन उस युग की मूर्तिकला की ऐसी विशेषता है जो आज भी दर्शक के चित्त को मुग्ध कर लेती है। अष्टछाप काव्य में तत्संबंधी वर्णन बहुत कम हैं, केवल 'पाहन की पूतरी'-जैसे उल्लेख कहीं कहीं मिल जाते हैं[५४]।

ग बार-बार 'चित्रकीन' है अँकति अति आतुर पुलकित मन—गोविं ११।

५० क लखननि सुनत रहत जाको नित सो दरसन भये नैन।
 कंचन कोट कँगूरनि की छवि मानहु बैठि मैन—सा २५५६।

ख कौंप्यो सिंधु कँगूरा डारयौ लंका आगम जनायौ—परमा ११७।

५१.क आजु सखी 'मनि खंभ' निकट हरि जहँ गोरस को गो री—सा २८८५।

ख खेलत सखी 'मनि खचित चौक में'—चतु कीतन, भाग २ पृष्ठ ४।

५२. 'सूरसागर' दशम स्कंध, पद ४१६५।

५३ *Besides the images of gods goddesses, incarnations of Visnu in ten forms, the Mathura Sculptors were successful in incarving images of persons*—P K Acharya *Indian Culture and civilisation* page 207

५४ 'पाहन पूतरी' भई, बैन न बदति और जरति कहाँ तैं—सा २८८८।

ग *चित्रकला*—अष्टछापी कवियों ने चित्रकला के संबंध में चलताऊ ढंग से ही कुछ संकेत किये हैं। सूरदास की एक गोपी मन बहलाने के लिए जब वीणा बजाती है जिसे सुनकर चंद्र-रथ के मृग मुग्ध होकर स्थिर रह जाते हैं, तब सिंह का 'चित्र' बनाने का प्रस्ताव सामने आता है जिसे देखकर मृग शीघ्रता से भाग चलें और दुखदायिनी रात्रि का अंत हो जाय[५५]। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं को नाना वर्णों के बेल-बूटों आदि से अंकित करना[५६] भी चित्रकला का ही एक सामान्य रूप कहा जा सकता है जिसकी ओर सूरदास ने एक पद में संकेत किया है[५७]। इसी प्रकार चित्र की पुतरी का उल्लेख चतुर्भुजदास ने किया है[५८]। सूरदास ने 'भीति' के बिना 'चित्र' न खींचे जा सकने की बात कही है[५९क]।

घ *संगीत कला*—अष्टछापी कवियों ने 'संगीत' का स्थान चौंसठ कलाओं में माना है[१]। इस कला का संबंध प्रमुख रूप से गायन, वादन और नर्तन तीन कलाओं से रहता है; अतएव इन तीनों के संबंध में स्वतंत्र रूप से विचार करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

क *गायन*—'नाद' संगीत का मूल है जिसमें चर, अचर, सभी को मोहने की शक्ति होती है और मृग तो 'नाद-प्रेम' पर अपने प्राणों की बलि तक दे देता

५५. मन राखन को बेनु लियो मृग ताके उडपति न चले।
अति आतुर ह्वै 'सिंह लिख्यो' कर जेहि भामिनि को कर न टरै—सा १५४०।
५६ डा विजयेन्द्र स्नातक, 'राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धांत और साहित्य' पृ ५८८।
५७ राधा प्यारी कह्यो सखिनि सौं साँझी' धरौ री माई।
चित्रियाँ बहुत अहीरनि की मिलि गईं जहाँ फूल अथाऊ।
× × × ×
कर सौं कर राधा सँग सोभित साँझी चीती जाय।
—सूर, कीर्तन, भाग १, पृ २९१।
५८. 'पुतरी सी लिखी चित्र नयौ भेष नयौ मित्र—चतु १ ९।
५९.क ऐसे कहँ नर-नारि।
'बिना भीति चित्रकारि' काहे को देखैं मैं कान्ह कहा कहीं सखिए।
—सा पं १२०१।
ख जल बिनु तरँग चित्र बिनु भीतिहिं', बिनु चेतहिं चतुराई—सा १६११।
१ कला चौसट्ठि संगीत' सिंगार रस, कोक-विधि-भेद प्रगटि भेद लै-लै री।
—सा २७५१।

है[९१]। श्रीकृष्ण की मुरली के मोहक 'स्वर' को सुनकर गोपियों का घर-द्वार की सुधि भूल जाना नाद-शक्ति के प्रभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है[९२]। संगीतकला के नाद-पक्ष को दृष्टि में रखते हुए अष्टछापी कवियों ने अपने काव्य में 'ग्राम', 'मूर्च्छना,' 'तान', 'राग'[९३] आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है[९४]। 'मूर्च्छना' आदि के मूल 'सप्तस्वरों' या 'सरगम' को साधकर ताल-लय की गति अपनाने का क्रम सूरदास ने बताया है[९५]। गति-भेद से सप्त स्वरों के मिलने से स्वर संधान की बात कृष्णदास कहते हैं[९६]। कुंभनदास और चतुर्भुजदास[९७] तथा

९१ क. जैसे मगन 'नाद-रस सारँग बधत बधिक बिन बान—सा १ ६६।

ख कचन रसाल मुरलि और मृगी मुनि बन 'मुरलीनाद' कुरंगी—परमा २४६।

९२. मदन रवन की सुधि न रही तनु 'सुनत सब्द' वह कान—सा २४ ६।

९३ क. 'ग्राम संगीत के मूल स्वरों के समूह या सप्तक—स, रे ग म, प, ध, नी—को कहते हैं। एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक पहुँचने में स्वरों का आरोह-अवरोह ही 'मूर्च्छना' और उन स्वरों का कलापूर्ण विस्तार संगीत में 'तान' कहलाता है। 'तान' का उपयोग गायन-वैचित्र्य की वृद्धि के लिए किया जाता है—लेखिका।

ख 'स्कंद पुराण' के काशी खंड में सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना उनचास तान एक सौ एक ताल छः राग और प्रत्येक राग की पाँच पाँच पत्नी रागिनियों का उल्लेख हुआ है। फिर यह भी कहा गया है कि कहीं कहीं राग रागिनियों की कुल संख्या पैंसठ है'—मन्मथराय 'प्राचीन-भारतीय मनोरंजन' पृ ६।

९४ क तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना, कोटि उन्चास तान।

सबै कला प्रगुत्पन्न सुघर अति यह समसरि को आन—सा १२५२।

ख सप्त सुर तीनि ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना बाइस सित मति राग मध्य रँग रँग राखो सरगम प ध नि सा स स स स न न न न ध ध ध ध प प प प म म म म ग ग ग ग री री सा सा—गोविं ४२१।

९५. सरगम सुनी कै साधि सप्त सुरनि' गाइ।

अतीत अनागत संगीत बिच तान मिलाई।

सुर तालउच नृत्य धाइ पुनि मृदंग बजा—सा १५११।

९६. सप्त सुर गति भेद मिलवत बनु सुरत संधान—कृष्ण दल १।

९७ क उरप तिरप लेत तान नागर नागरी।

तरियम'-धम-धनि-गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि—कुंभन १५।

ख मुरार मधुकर निकर मिल मृदु सप्त सुर आभर पल्लव धुनित मुरनि ग्रामिरामिनी।

—चतु १२।

गोविंदस्वामी[६८] ने भी 'सप्त स्वरों' का उल्लेख किया है।

संगीत के मूल राग छह माने जाते हैं—भैरव कौशिक, हिंडोल, दीपक, मेघ और श्री। कहीं-कहीं 'कौशिक' के स्थान पर 'मालकोष' का नाम मिलता है। रागिनियों की संख्या छत्तीस बतायी गयी है जिनका सूरदास ने भी उल्लेख किया है[६९]। चतुर्भुजदास के 'पटमहतु वार्ता' नामक ग्रंथ में ३६ रागिनियों के नाम ये बताये गये हैं—मल्हार, ललित, पंचम आसावरी भैरव, मालव, टोड़ी, कल्याण, गुर्जरी, मालश्री गौड़ी, बिलावल, धनाश्री रंगीली खंभाच, देशाख, कान्हरो गौड़ मल्हार, केदारो पटमंजरी, रामकली, गंधार, बराड़ी कुंकुम, कामोद मत्र, गुनकली, माधवी, देस, विभास, हास, काफी, सोरठ, ईमन, जैजैवंती और सारंग[७०]। 'साराबली' में ३६ राग-रागिनियों के ये नाम गिनाये गये हैं—ललित पंचम, नट, मालकोष हिंडोल, मेघ, मालव, सारंग, नट, सावंत, भूपाली, ईमन, कान्हरो, अड़ाना नायकी, केदारौ, सोरठ, गौड़मल्हार, भैरव, विभास बिलावल, देवगिरि, देशाख गौरी, श्री, जैतश्री पूर्वी टोड़ी, आसावरी, रामकली गुनकली सुघराई, जैजैवंती, सूहा, सिन्धूरा और प्रभाती[७१]। इन दोनों सूचियों में दिये गये रागिनियों के नामों में जैसा अंतर है, वैसा संगीत-शास्त्रियों में सदा से रहा है।

६८. षड्ज रिषभ गंधार 'सप्त सुरनि मधिम तार लेत ग्र म्र त त स त होरी।
—गोविं ६१।

६९. 'छहो राग छत्तीस रागिनी' इक इक नीके गावें री—सा १२१८।

७०. श्री प्रभुदयाल मीतल के 'अष्टछाप परिचय' पृ १६४ में उद्धृत 'पटमहतु की वार्ता' पृ १२।

७१. ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीने।
जानि प्रभात राग पंचम षट मालकोस रस भीने।
सुर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारँग सुर नट जान।
सुर सावँत भूपाली ईमन करत कान्हरौ गान।
ऊँच अड़ाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
करत विहाग मधुर केदारो सकल सुरनि सुख दीन।
सोरठ गौड़ मलार सोहिनी भैरव ललित बजायो।
मधुर विभास सुनत बेलावल दंपति अति सुख पायो।
देवगिरी देसाख देव पुनि गौरी श्री सुघराई।
जैजैवंती मग पूर्वी टोड़ी आसावरि सुखदाई।

उक्त दो विशिष्ट रसों के अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य के अनेक पदों में विभिन्न राग-रागिनियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें से प्रमुख के नाम अक्षरक्रम से ये हैं—अहीरी, असावरि या आसावरी, ईमन, कान्हरो काफी, केदारो, गुंडमलार, गूजरि, गौड़ी, गौरी टोड़ी, नटनारायण, मलार, मल्हार मारू, मालव या मालवा, विभास, बिलावल, श्री, सोरठ या सोरठी आदि[१]।

रामकली गुनकली कदुकी सुर सुघराई गावे।
जैजैवंती जगत मोहिनी सुर सों बीन बजावे।
सुधा सरस मिलत प्रीतम सुख सिंधु और रस मान्यो।
जानि प्रभात प्रभाती गायो भोर भयो दोऊ जान्यो।

—सारा १ १२ से १ १८ तक।

१२.क. कान अँगुरिया घालि निकट पुर, राग 'अहीरी' गाई—सा १२१७।
ख नीके बन्यो राग 'आसावरी'—परमा २५।
ग. सुर सावंत भूपाली ईमन' करत कान्हरो गान—सा १ ११।
घ राग 'कान्हरो' सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल—गोविं २११।
ङ 'काफी' राग मुख गावें मुरली बजाइ री—सा २५८७।
च गावत 'केदारो राग सप्त सुरनि साजें—कुंभन १४।
छ. त त त त त त थेइ-थेइ कहि गावत 'केदारो' राग—गोविं १४।
ज. राग रागिनी संचि मिलाई गावें गुंड मलार —सा २२७१।
झ. 'राग गूजरि' समुद्र साँवल सास्त्र कला निधान—कृष्ण हस्त १।
ञ. बेनु पानि गहि मोको सिखावत मोहन गावत 'गौरी'—सा २८७१।
ट धन तें आवत गावत 'गौरी'—नंद पद ११२।
ठ 'गौरी' राग अलापत गावत मधुर-मधुर मुरली बलबीर—चतु ८५।
ड 'गौरी' राग अलापत गावत बजत भावते बोल—परमा १२१।
ढ सुही सारंग राग 'टोड़ी'—सा २८११।
ण बहुत प्रसन्न भए पिय प्यारी टोड़ी राग बेनु भरि गायो—चतु ११।
त गावत 'नट नारायन' राग बुवति सन खेलत फाग—चतु ७३।
थ. गावत 'नट नारायन' राग मुदित देत पैन—कुंभन ७४।
द तत्थई, तत्थेइ, तत्थई, तत्थई भैरव राग मुरली बजावें—कृष्ण, भाव मीतल, ११।
ध. चहुँ दिसि राग 'मलार' सप्तसुर मगन भए सब गावत—गोविं १८।
न गरजत गगन दामिनी कौंधति राग मलार' अलाप—चतु ११६।
प तान मान सुगान गावें अमो राग मल्हार —कुंभन १२।

मुरज या मुरंज, शंख आदि का उल्लेख हुआ है[८१]।

३ *ताल-वाद्य*—पीतल काँसे या लकड़ी के बने वे बाजे इस वर्ग में आते हैं जो परस्पर चोट करके या अन्य किसी वस्तु से मधुर स्वर उत्पन्न करते हुए बजाये जाते हैं। अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित करताल, गिरगिरी, घंट या घंटा, झाँझ,

८१ क बीना झाँझ पखाउज आउज और राजसी भोग—सा ६-७५।
ख बाजत 'आवज' उपंग बाँसुरी, मृदंग चंग—छीत ५४।
ग. बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ मुरली मुरज 'उपंग'—परमा ९८८।
घ बाजत ताल मृदंग 'उपंग जु बाँसुरी—चतु ७।
ङ बेनु मुरज उपचंग 'चंग' मुख चलत विविध सुरताल—परमा २७८।
च मधुर जंत्र बाजत मुख 'चंगा —चतु ८६।
छ. बाजे ताल मृदंग झाँझ 'डफ' मधि मुरली पुनि थोरी हो—गोविं १२४।
ज. संख, घंट झाँझ, 'डफ मृदंग दोसना —कुंभन ७४।
झ. हर हँसत 'डमरु' बजाइ—सा १०-१७ ।
ञ. झिमझिमी 'पटह ढोल डफ' बीना मृदंग चंग अरु तार—सा २५ १।
ट डौड़ी के धर 'डौंड़ी' बाजी अब बढ्यो स्याम अनुराग—सा १ ६५।
ठ डाढ़िन मरी नाचे गावे, ढोई 'डाढ़' बजाऊँ—सा १ १७।
ड अबपुर बाजत सबही के घर ढोल 'दमामा भेरी'—परमा ९५५।
ढ 'दुन्दुभी' बाजे गहगही रँग भीजी ग्वालिनि—सा ९८६७।
ण 'भेरि दमामा धौंसा कोऊ कछू न सँभार—गोविं ११८।
त 'ढोल निसान दुन्दुभी' बाजत—चतु ८६।
थ. गल गरजो गोकुल में बैठे गरज 'निसान' बधाई—परमा ८६७।
द झाँझ, बीन, 'पखावज' किन्नरी डफ मृदंग बजाइए—कुंभन ७७।
ध ताल पखावज बीन बाँसुरी बाजत परम रसाल—गोविं १७ ।
न ताल निसान 'पटह' बाजे बाँके मधि मृदंग' पाँचल गंभेरे—गोविं १२१।
प. मधुर लंभरी पटह 'भवन' मिलि सुख पावत रत भंग—छीत १ ७५।
फ. बाजत ढोल भेरि' और महुवर नौबत पुनि पखौर बधाई—परमा १ ६।
ब. बाजत दुंदुभी 'भेरी पटह नीसान सोहाये—नंद पदा ६ परि , पृ ६६४।
भ रुन्झ, मुख 'डफ', बाँसुरी 'भेरिनि' की भरपूरि—छीत ५७।
म 'मृदंग' मुरली विविध नाद सुखकारी—छीत ११४।
य. बाजत ताल मृदंग' अघोटी बीना मुरली तान तरंग—कुंभन ७२।
र. बाजत 'चंग मृदंग' अघोटी 'पटह' झाँझ झालर किर बीरी—परमा १११।
ल विधि करि विधि करि 'मृदंग' मधुर-मधुर गावे—गोविं ६२।

झझरी, तार या ताल आदि बाजे इसी वर्ग के हैं[८१]। धातु या चीनी की सोलह कटोरियों या प्यालियों में जल भरकर बजाये जानेवाले 'जलतरंग' बाद्य का भी अष्टछापी कवियों ने उल्लेख किया है[८३]।

४ सुषिर वाद्य—मुँह से फूँककर बजाये जानेवाले बाजों को 'सुषिर वाद्य' कहते हैं[८४]। इस वर्ग के बाजों में अष्टछापी कवियों ने सबसे अधिक उल्लेख 'मुरली' या 'बाँसुरी' का किया है जिसे 'बंसी', बेनु आदि और भी अनेक नाम उन्होंने दिए हैं[८५]। इसके अतिरिक्त अष्टछाप-काव्य में उल्लिखित गोमुख, तूर, महुअरि या महुवरि, मुहचंग, विषाण, शंख शहनाई, सिंगी आदि बाजे भी 'सुषिर' वाद्य-वर्ग के ही हैं[८६]।

घ बाजत ताल 'मृदंग' झाँझ 'डफ मुरली 'मुरज' उपंग—परमा १८८।
ङ. डफ 'मुरज डफ 'दुंदुभी' मन-कर कठताल मुरंग—गोविं १२५।
च. चहुँ दिसि तें बाज बज 'डफ मुरज डफ' ताला हो—गोविं ११७।
छ 'डफ मुरज डफ बाँसुरी मरिनि की मरपूरि—छीत ५७।
८२.क बाज बहुत बजावही डफ दुंदुभी 'कठताला' हो—गोविं ११६।
ग झाँझताल 'करताल' बजावत मधुर मधुर मुद चंग—सारा १ ७५।
ग. मदन भेरि मर दाह गिरगिरी सुरमंडल झनकार—सा ९६१७।
घ मदन भेरि मुरबीन गिडगिडी झाँझि उपंग—परमा ८।
ङ 'चंग' बजत बज बजनदा गो—सा १ २६१।
च बाजत 'चंग' ताल बीन झालरी चंग मृदंग मुरली—छीत ११८।
छ. ताल मृदंग 'झाँझ डिंडिमि मिलि बीना बनु बजायो—सा १ १ ५।
ज बाजत चंग ताल बीन झालरी चंग—छीत ११८।
झ मैगल बाजत 'झालर ताल—परमा ५६।
ञ बाजत 'ताल मृदंग उपंगी बीना मुरली तान तरंग—कुंभन २।
ट. 'ताल पखावज भरि मन धुनि गावत—परमा १ ८।
८३ सुर सुरमंडल जल तरंग मिलि करत मोहिनी मैन—सारा १ ७१।
८४ 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' भाग १ पेज ८ ? ६५४-५५।
८५.क महुवरी चंग औ बाँसुरी बाजत गिरिधर लाल—परमा ११८।
ख 'बेनु' बजावो पर गोविंद गुननिधान—परमा १७२।
८६ क एक पाद एक गोमुख एक झाझ एक झालरी—सा १८ ५।
ग बाजत 'तूर बरना मिलि गावत लाल पार बैठारी—परमा ६६।
ग. माली महुअरि पुनि सुनि देखो आनंद सुर बनाये—सा १०८।

९ नृत्यकला—प्राचीन भारतीय कलाओं में 'नृत्य' कला भी प्रमुख स्थान की अधिकारिणी है। इसमें संगीत के ताल और लय के अनुसार ही पैर की गति होती है, इसी कारण संगीत से इसका घनिष्ठ संबंध है। नर्तक की वेषभूषा भी विशेष होती है। 'चोलना' पहनना, 'फेंटा' बाँधना, नूपुर धारण करना आदि उसकी सज्जा के अंग हैं जिनसे सज्जित होकर नाच और ताल के अनुसार उसके नाचने का उल्लेख सूरदास ने एक विनय-पद में किया है[८७]। 'नृत्य' के बोलों के साथ संगीत के अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सूरदास नंददास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी के कुछ पदों में मिलता है[८८]। नृत्य के समय मृदंग आदि वाद्य बजने की बात भी

घ 'महुवरी' संग सों बाँसुरी बजावत गिरिधर लाल केलि रस—परमा ११४।
ङ सुभ बेनु मुरली महुवरि' धुनि नीके सब्द सुनाए—चतु ७४।
च कंसताल कठताल बजावत सुभ मधुर 'मुहचंग'—सारा १ ७५।
छ. बेनु 'बिषान' मुरलि धुनि कीनी संख सब्द सहनाई—सा १८७२।
ज. बाजत घंटा ताल बीन झालरी 'संख'—छीत ११४।
झ. ताल पखावज भरि 'संख' धुनि गावत—परमा १ ४।
ञ. मुरज निसान सबद सहनाई' बाजत है जो बधाइ—परमा २७।
ट. ताल मृदंग उपंग झाँझ डफ ढोल भरि सहनाई—गोविं १ ९।

८७ अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध को 'पहिरि चोलना', कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत निंदा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्ना 'नाद' करति घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ-तिलक दियौ भाल—सा १ १५१।

८८.क होका होडी सरस करें, रीझि-रीझि अंक भरें।
ता ता, थेई थेई उघटत हैं हरषि मन—सा ११४९।
ख बेनु मधुर धुनि बोलत, थेइ-थेइ संगति नाच नचाए—सा ११५७।
ग. तत थेई ता ता थेई शब्द सघन उघट
उरप तिरप गति परें पग की पटक—नंद, पदा, १ १११।
घ नागर नंदलाल कुँवर गोपिनि संग नाचे।
तत्ता थेई थेई बजत नूपुर पग बाजे।
उरप तिरप सप्त स्वर धरत ध्यान साजे।
बार-बार हरषि निरखि बंसन गति रांचे—छीत ८।

इन कवियों ने लिखी हैं जिनकी ध्वनि के अनुसार ही 'नृत्य' चलता है[८९]।

रासलीला के नृत्य का विस्तृत वर्णन सभी अष्टछापी कवियों ने किया है[९०]। कुम्भनदास ने 'तांडव' और 'लास्य' नृत्यों की भी उसी प्रसंग में चर्चा की है[९१]।

समीक्षा—गायन, वादन, और नृत्यकला-संबंधी अष्टछापी कवियों के जो अवतरण ऊपर दिये गये हैं उनको लेकर यद्यपि तद्विषयक पारिभाषिक शब्दों और सामान्य बातों की ही चर्चा की गयी है, तथापि उतने से ही प्रत्यक्ष है कि संगीत के इन तीनों अंगों का उनको असाधारण ज्ञान था। इसके फलस्वरूप ही उनके गेय पदों

८ थमकित मुं मुं मुं मुं मुं मुं मुं मुं न न न न नृत्यत रसिक वर आनत गोपन संग।
ताल काछनी कटि किंकिनी पग नूपुर रुनमुनात सीस टिपारो अति लसौ सुरंग।
उरप तिरप चंद चाल मुरलिका मृदंग ताल संग मुदित गोप बाल गावत तान
तरंग—गोवि १५९।

८९ क सुर तालऽरु नृत्य प्यार, पुनि मृदंग बजाई—सा ११५१।
ख नचत राम रंगा रसिक रस भरे हो।
सुलप मान गति लेत थ थ त त तत थइ थइ बाजत मृदंगा।
ताल तंत्र विचरी अधर मा तैसीए उठत पुनि सरस उपंगा—गोवि ५९।
ग. गिड़ गिड़ धुग धुंगनि तकिटि धुगनि।
एक चरन कर सों झमे-झमे बहु मृदंग बजावे।
दूसरे कर चरन सों कठताल मिलि झं-झं।
झपताल में अवघर गति उपजाय—गोवि ७८।

९० क नव मुरलि की अति अनेक, नोखे मिलवति राग एक मन मोहन पिय की सुघर।
छंद भुवनि क भेद अपार नाचति कुंवरि मिले झपताल बन्यो नवै संगीत में।
—सा ११८।
ग राम रच्यो नन्द नन्द आनन्द-नंदिनी।
निरख युवती समूह रागरंग अति कुतूहल—कुंभन ७।
ग. रास मंडल मध्य मंडित मदन मोहन अधिक सोहत नागरी रूप-निधान।
ललितमल चरन नाच बरसत प्यारी भाँति मुख रास म विलास नैननि हीं म
मान—परमा ३११।
घ रास रंग सरस मान अद्भुत गति लेत तान—कुंभन १४।
ङ नरतत गुनी अनत गुन भर गावत मिल है दोउ आनन—चतु ३१।

९१. नाचत तांडव विहार लास्य मन मुरल म तान ल्याँ।
—कुंभन कीर्तन संग्रह भाग १ पृ ८१।

का संगीत-प्रेमियों में बहुत शीघ्रता से प्रचार हो सका जिससे ब्रजभाषा के क्षेत्र-विस्तार में भी बहुत सहायता मिली।

२ *विज्ञान*—साधारणतया गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के अतिरिक्त भौतिक, रसायन, वनस्पति, प्राणि, भूगर्भ आदि शास्त्रों की गणना 'विज्ञान' के अंतर्गत की जाती है। अष्टछापी कवियों ने इनमें से सर्वाधिक वर्णन 'ज्योतिष विज्ञान' का किया है। नंददास ने तो 'ज्योतिष शास्त्र' को 'अतीन्द्रिय ज्ञान' कहा है[१२]। 'ज्योतिषी' का मुख्य कार्य जन्मपत्र आदि बनाकर लग्नफल बताना, विभिन्न संस्कारों और मंगल-कार्यों के अवसर पर उनके लिए शुभ 'मुहूर्त' शोधना आदि कहा जाता है। सूरदास ने कृष्ण के जन्म के अवसर पर नंद जी के यहाँ 'आदि ज्योतिषी' के आने और 'लग्न सोधकर तथा जोतिष गिनकर' फल सुनाने की बात कही है[१३]। संवत, तिथि, वार, पक्ष घड़ी आदि की गणना करके ज्योतिषी जी शिशु का भविष्य फल बताते हुए कहते हैं कि 'वृष' लग्न में जन्म होने और 'निसिपति' के उच्च होने से इनको सदैव 'तन' का सुख मिलेगा। सिंह राशि के दिनकर होने से सकल 'मही' ये जीत लेंगे। 'बुध' में 'कन्या' के 'जोग' के फलस्वरूप उनके अनेक 'पुत्र' होंगे। 'तुला राशि' से युक्त 'शुक्र' के कारण इनके शत्रु नहीं 'रहने' पायेंगे, सातवें घर में राहु के फलस्वरूप ये उच्च तथा नीच कुल की अनेक युवतियों 'वरेंगी'। 'भाग्य-भवन' में 'मकर' और 'महीसुत' होने से ये बहुत ऐश्वर्य बढ़ायेंगे 'लाभ' स्थान में मीन' तथा 'बृहस्पति' के रहने से इनके यहाँ नवनिधि सदैव वास करेंगी। 'कर्म' स्थान का 'ईश' सनीचर' होने से इनका वर्ण स्याम होगा[१४]।

१२. ज्योतिष सास्त्र जु अतीन्द्रिय ग्यान' ताके तुम ही बीज निधान।
पूर्व जन्म जु सुभासुभ करै ता करि जंतु जगत संचरै।
—नंद, स्याम पृ २२९।

१३ (नंद जू) 'आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ पुत्र जन्म सुनि आयौ।
'लगन सोधि सब जोतिष गनि कै' चाहत तुमहिं सुनायौ—सा १०—८६।

१४ संवत सरस विभावन भादौं आठैं तिथि बुधवार।
कृष्ण पक्ष रोहिनी अर्ध निसि हर्षन जोग उदार।
वृष है लग्न उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथे सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैं।
पचयें बुध कन्या कौ जो है पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।

चतुर्भुजदास ने भी कृष्ण के जन्म के अवसर पर नक्षत्र, लग्न आदि ज्योतिष-संबंधी बातों का उल्लेख किया है[१५]। परमानंददास ने कृष्ण के 'कर्णवेध' संस्कार का शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए दो-चार निपुण ज्योतिषी बुलाये जाने की बात लिखी है जो 'गुरुबल', 'तिथिबल', 'नक्षत्र', 'वार', 'घड़ी' आदि की गणना करके मुहूर्त बताते हैं[१६]। एक अन्य पद में परमानंददास ने कृष्ण का 'हाथ देखकर' ज्योतिषी द्वारा भविष्य फल बताया जाना कहा है[१७]।

अष्टछापी कवियों ने ज्योतिष-संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्दों की भी चर्चा की है। उदाहरणार्थ सूरदास की गोपियाँ 'दाहिने सूक' होने के बुरे योग के फलस्वरूप दुख पाने की बात कहती हैं,[१८] तो परमानंददास ने 'ज्येष्ठा नक्षत्र' को उत्तम और

छठयें सुक तुला के सनि जुत सत्रु रहन नहिं पैहैं।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतयें राहु परे हैं।
भाग्य भवन में मकर महीसुत, बहु ऐश्वर्य बढ़ैहैं।
लाभ-भवन में मीन बृहस्पति, नवनिधि घर में ऐहैं।
कर्म-भवन के ईस सनीचर स्याम बरन तन ह्वैहैं—सा १०-८६।

१५. जदुकुल तिलक प्रगट प्रभु गोकुल नंद महरि घर पूत।
बरि भादों आयो जुग द्वापर अर्धराति बुधवार।
बालव करन अरु नक्षत्र रोहनी जनमे जगदाधार।
द्वादस लगन सुभग नवग्रह उदित आपन मिति देखि—चतु ५।

१६. गोपाल के बेध करन को कीजे
गुरुबल तिथिबल नक्षत्र-वार-बलि सुभ घरी बिचार लीजे।
गनिक निपुन द्वै-चारि बैठि कै भली बिचारयो नीको।
मुहूरत यामें दोस रहति गुन सागर है नीको—परमा ५१।

१७ क सुनो हो जसोदा आज कहूँ ते गोकुल में इक पंडित आयो।
अपने सुत को 'हाथ दिखायो' बहु करै जो बिधि निरमायो—परमा ५८।
ख दै असीस कर घर कर देख्यो सुनि किन्नात नैनी सुत के गुन।
लोचन चिन्ह दोऊँ ये श्रीपति उरदाम पावन सुभ चंदन।
इतन तूल पग रेख बहुत गुन भुज मंगल या सम नहिं कोऊ—परमा ५८।

१८. कहाँ लगि मानिए अपनी चूक।
× × ×
सूरदास ब्रजनाथ बली हम मनौं दाहिने सूक।
'भ्रमर-गीत-सार' संपा आचार्य रामचंद्र शुक्ल पद १६१।

शुभ बताया है[१] ।

वस्तुत भारतीयों ने ज्योतिष शास्त्रीय ज्ञान में बहुत अधिक उन्नति की थी जिससे उनके निर्देशित फलों की सत्यता सभी को प्रभावित करती रही है। 'ज्योतिषी' के प्रति भारतीयों की श्रद्धा का यही प्रमुख कारण है। ज्योतिष शास्त्र का अष्टछापी कवियों ने इतनी लगन से जो वर्णन किया है वह भी इस बात का द्योतक है कि इस शास्त्र के प्रति भारतीय हिंदू समाज की सदैव से आस्था रही है। आज भी प्रत्येक शुभ कार्य और संस्कार के अवसर पर 'ज्योतिषी' सादर आमंत्रित किया जाता है।

समीक्षा—इतिहास में मुगलकाल विभिन्न कलाओं की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है; विशेष रूप से उस युग की वास्तुकला के नमूने तो आज भी देशी-विदेशी कला-पारखियों और सौंदर्य प्रेमियों के आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं। अष्टछापी कवियों का तत्संबंधी वर्णन पढ़कर ज्ञात पड़ता है कि अपने युग की कला विषयक प्रगति से वे कवि भलीभाँति परिचित थे। यद्यपि अष्टछापी कवियों के वर्णन से किसी प्रकार की प्रेरणा उस युग के कलाकारों को मिली हो, ऐसा तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता परंतु इतना निश्चित है कि कला-संबंधी जिस चरम आदर्श की कल्पना मानव-मस्तिष्क कर सकता है, उस तक पहुँचने का प्रयास अष्टछापी कवियों ने अवश्य किया और उसमें जो सफलता उन्हें प्राप्त हुई वह निस्संदेह असाधारण है।

१९ 'उत्तम ज्येष्ठ ज्येष्ठा नक्षत्र' होत अभिषेक भगवनि मन भावै—परमा ७४ ।

---

११ उपसंहार

करते हैं कि भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ तथा भक्तों को सभी प्रकार के संकटों से बचाने के लिए नंगे पैर 'धाने' को सदैव प्रस्तुत रहता हूँ [७] तब अष्टछापी कवियों का भी समस्त मोह-भाव त्यागकर सबको समान रूप से प्रभु की भक्ति का अधिकारी समझने की उदारता दिखाना ही अपने परमाराध्य के प्रति निष्ठा का परिचायक हो सकता था।

दृष्टिकोण की यह उदारता यों तो प्रत्येक युग में भारतीय संस्कृति का अंग रही है, परंतु अष्टछापी कवियों-जैसे विदेशी शासनकाल में इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। धार्मिक कट्टरता और शक्ति के बल पर एक वर्ग दूसरे को अपने पथ पर लाने का प्रयत्न जिस युग में कर रहा हो उस युग में प्रतिक्रिया-जन्य वैसा ही संकुचित दृष्टिकोण न अपना कर जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया, वहीं उन्होंने भारतीय धर्म के उस संकुचित दृष्टिकोण का भी विरोध किया जो जन्म, कुल गोत्र आदि की दृष्टि से उच्चता और नीचता की भावना का प्रचार और परिपालन करके राष्ट्रीय अहित का विष-बीज बोने की प्रेरणा दे रहा था। तात्पर्य यह कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक दृष्टि से इतना उदार था कि धार्मिक भावों के प्रतिपादन और अभिव्यंजना के लिए लिखा गया उनका काव्य अपने युग में ही देशी विदेशी जातियों और ऊँच-नीच वर्गों द्वारा पर्याप्त सम्मान पा सका।

२ *विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—*

अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव-काल तक इस देश में इस्लामी संस्कृति का प्रचलन हुए लगभग तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी नगरों में इस्लाम धर्मानुयायी बहुत समय से बस गये थे और उनकी संस्कृति की बहुत सी बातें जन-समाज में प्रचलित हो गयी थीं। परंतु गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि स्थानों में जो 'अष्टछाप' के परमाराध्य की क्रीड़ाभूमि थी, इस्लामी

७ हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज हिय धरि कै पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौं तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ।—सूर १-२७२।

संस्कृति का प्रभाव अधिक व्यापक रूप में नहीं पड़ सका था जिसके फलस्वरूप अष्टछापी कवि भी उस प्रभाव से किसी सीमा तक बचे रहे। इसके मुख्यतः पाँच कारण हैं। पहली बात तो यह थी कि उन ग्रामीण क्षेत्रों का, युद्ध की दृष्टि से, विशेष महत्त्व न था; जिससे विदेशियों ने उनकी ओर नगरों-जैसा ध्यान न दिया। अतएव जनता के प्राचीन सांस्कृतिक विचार ही उन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित रहे। दूसरे, अष्टछापी कवियों ने अपने को राजकीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने का प्रयत्न किया। अकबर से सूरदास और कुंभनदास की एक-आध बार भेंट की चर्चा प्राचीन वार्ताओं में मिलती है, तथापि इन कवियों ने सदैव 'संतन को कहा सीकरी सों काम'-जैसा आदर्श ही अपनाये रखा, कभी किसी ऐसी बात की कामना नहीं की जिसके लिए उन्हें घनिष्ठ रूप से राजकीय संपर्क में आना पड़ता।

तीसरे, अष्टछापी कवि अधिक पर्यटनप्रिय भी नहीं थे जो सुदूर प्रदेशों की यात्रा करते समय विदेशी संस्कृति से निकट से परिचित होने का अवसर पा सकते। चौथी बात यह कि श्रीनाथ जी के समक्ष ही उन कवियों के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ जहाँ हर समय भक्ति-चर्चा ही होती थी। पाँचवें, उन्होंने श्रीकृष्ण का जो पौराणिक आख्यान लेकर अपना काव्य रचा उसके मूल ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' का पारायण उनके निकट ऐसे नियमित रूप से होता था कि इतर विषयों के सोचने का कभी उनको अवकाश ही नहीं मिल सका। परिणाम यह हुआ कि अष्टछाप काव्य का अंत और वाह्य स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ही निर्मित है, विदेशी संस्कृति की छाप उस पर नहीं के बराबर है।

इसलामी संस्कृति का यदि उनके काव्य में कोई रूप दिखायी देता है तो वह मुख्यतः उसमें प्रयुक्त भोज्य पदार्थों, वस्त्राभूषणों, बाजों आदि के लिए प्रयुक्त कुछ शब्दों के उल्लेख में मिलता है। वाणिज्य और व्यवसाय संबंधी अरबी-फारसी के कुछ शब्दों से ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल तक सामान्य वर्ग में उनका चलन हो गया था। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों के काव्य में प्रयुक्त शासन-संबंधी विदेशी शब्दावली की अधिकता भी सूचित करती है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में भी उसका प्रवेश हो चुका था। फारसी के 'सरकार' शब्द को लेकर सूरदास की गोपियों का यह कहना कि 'अंधधुन्ध सरकार' कैसे और कब तक 'निबहेगी'[८] वहाँ उनकी

---

८. सूरदास ऐसी क्यों निबहै, अंधधुंध सरकार'—सा ११ १।

'संस्कृति' की सरलतम परिभाषा है—'मौजी-मवारी जीवन-वृत्ति तथा जीवन चर्या'[1]। अष्टछाप काव्य में चित्रित जीवन-वृत्ति और जीवन चर्या के विविध अंगों का ही पिछले पृष्ठों में परिचय दिया गया है। उसके आधार पर सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में तीन बातों पर और विचार करना है—१ अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण, २. विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण और ३. सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्व।

१ अष्टछापी कवियों का भारतीय संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण—

भारतीय संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता है दृष्टिकोण की उदारता। अष्टछापी कवियों ने भी इस दृष्टिकोण का सदैव समर्थन किया है। उनके आराध्य जब अधम व्याध गीध, गणिका अजामिल आदि को तारते हैं,[2] सबरी के जूठे बेर खाते हैं,[3] विभीषण-जैसे निशाचर से भरत की तरह मिलते हैं,[4] कपट करके मारने आनेवाली बकी या पूतना को बैकुंठ लोक भेजते हैं[5] और अपनी भक्त-वत्सलता के कारण किसी की जाति गोत्र कुल, पद स्थिति आदि का ध्यान न करके सबको अपनाने को सदैव सहर्ष प्रस्तुत रहते हैं,[6] तब अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण संकुचित कैसे हो सकता था? जब उनके आराध्य स्वयं भौगुण मैं पीयण

१ डा. बलदेवप्रसाद मिश्र, 'भारतीय संस्कृति', पृ. ५।

२ व्याध अध गीध, गनिका, अजामील द्विज-चरन गौतम तिया परसि पावा।

—सा १११६।

३ सबरी कन्द बेर तजि, मीठे चाखि गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी भच्छ किए सत भाई—सा १११।

४ रावन अरि कौ अनुज बिभीषन ताकौं मिले भरत की नाईं—सा ११।

५ बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई—सा ११।

६ राम भक्त-वत्सल निज बानौं।
जाति गोत कुल, नाम गनत नहिं रंक होइ कै रानौं—सा १११।

७ प्रभु की और कौन पति करै।
भाँति-भाँति गुन-बानि न मानत बड़-गुननि मानै—सा ११६।

करते हैं कि भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ तथा भक्तों को सभी प्रकार के संकटों से बचाने के लिए नंगे पैर 'धाने' को सदैव प्रस्तुत रहता हूँ,* तब अष्टछापी कवियों का भी समस्त मोह-भाव त्यागकर सबको समान रूप से प्रभु की भक्ति का अधिकारी समझने की उदारता दिखाना ही अपने परमाराध्य के प्रति निष्ठा का परिचायक हो सकता था।

दृष्टिकोण की यह उदारता यों तो प्रत्येक युग में भारतीय संस्कृति का अंग रही है, परंतु अष्टछापी कवियों जैसे विदेशी शासनकाल में इसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। धार्मिक कट्टरता और शक्ति के बल पर एक वर्ग दूसरे को अपने पथ पर लाने का प्रयत्न जिस युग में कर रहा हो, उस युग में प्रतिक्रिया-जन्य वैसा ही संकुचित दृष्टिकोण न अपना कर जहाँ अष्टछापी कवियों ने अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया, वहीं उन्होंने भारतीय धर्म के उस संकुचित दृष्टिकोण का भी विरोध किया जो जन्म, कुल गोत्र आदि की दृष्टि से उच्चता और नीचता की भावना का प्रचार और परिपालन करके राष्ट्रीय अहित का विष-बीज बोने की प्रेरणा दे रहा था। तात्पर्य यह कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक दृष्टि से इतना उदार था कि धार्मिक भावों के प्रतिपादन और अभिव्यंजना के लिए लिखा गया उनका काव्य अपने युग में ही देशी विदेशी जातियों और ऊँच-नीच वर्गों द्वारा पर्याप्त सम्मान पा सका।

२ *विदेशी संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण*—

अष्टछापी कवियों के प्रादुर्भाव-काल तक इस देश में इस्लामी संस्कृति का प्रचलन हुए लगभग तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। दिल्ली, आगरा, मथुरा आदि सभी नगरों में इस्लाम धर्मानुयायी बहुत समय से बस गये थे और उनकी संस्कृति की बहुत सी बातें जन-समाज में प्रचलित हो गयी थीं। परंतु गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन आदि स्थानों में जो 'अष्टछाप' के परमाराध्य की क्रीड़ाभूमि थी, इस्लामी

* हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह व्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज हिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ—सा १-२७२।

संस्कृति का प्रभाव अधिक व्यापक रूप से नहीं पड़ सका था जिसके फलस्वरूप अष्टछापी कवि भी उस प्रभाव से किसी सीमा तक बचे रहे। इसके मुख्यतः पाँच कारण हैं। पहली बात तो यह थी कि उन ग्रामीण क्षेत्रों का, युद्ध की दृष्टि से, विशेष महत्व न था जिससे विदेशियों ने उनकी ओर नगरों-जैसा ध्यान न दिया। अतएव जनता के प्राचीन सांस्कृतिक विचार ही उन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित रहे। दूसरे, अष्टछापी कवियों ने अपने को राजकीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखने का प्रयत्न किया। अकबर से सूरदास और कुंभनदास की एक-आध बार भेंट की चर्चा प्राचीन वार्ताओं में मिलती है, तथापि इन कवियों ने सदैव 'संतन को कहा सीकरी सों काम'-जैसा आदर्श ही अपनाये रखा, कभी किसी ऐसी बात की कामना नहीं की जिसके लिए उन्हें अनिष्ठ रूप से राजकीय संपर्क में आना पड़ता।

तीसरे, अष्टछापी कवि अधिक पर्यटनप्रिय भी नहीं थे जो सुदूर प्रदेशों की यात्रा करते समय विदेशी संस्कृति से निकट से परिचित होने का अवसर पा सकते। चौथी बात यह कि श्रीनाथ जी के समक्ष ही उन कवियों के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ जहाँ हर समय भक्ति-चर्चा ही होती थी। पाँचवें, उन्होंने श्रीकृष्ण का जो पौराणिक आख्यान लेकर अपना काव्य रचा उसके मूल ग्रंथ 'श्रीमद्‌भागवत' का पारायण उनके निकट ऐसे नियमित रूप से होता था कि इतर विषयों के सोचने का कभी उनको अवकाश ही नहीं मिल सका। परिणाम यह हुआ कि अष्टछाप काव्य का अंत: और बाह्य स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ही निर्मित है, विदेशी संस्कृति की छाप उस पर नहीं के बराबर है।

इसलामी संस्कृति का यदि उनके काव्य में कोई रूप दिखायी देता है तो वह मुख्यतः उसमें प्रयुक्त भोज्य पदार्थों वस्त्राभूषणों, बाजों आदि के लिए प्रयुक्त कुछ शब्दों के उल्लेख में मिलता है। वाणिज्य और व्यवसाय संबंधी अरबी-फारसी के कुछ शब्दों से ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य-काल तक सामान्य वर्ग में उनका चलन हो गया था। इसी प्रकार अष्टछापी कवियों के काव्य में प्रयुक्त शासन-संबंधी विदेशी शब्दावली की अधिकता भी सूचित करती है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में भी उसका प्रवेश हो चुका था। फारसी के 'सरकार' शब्द को लेकर सूरदास की गोपियों का यह कहना कि 'अंधधुन्ध सरकार' कैसे और कब तक निबहेगी[८] जहाँ उनकी

८. सूरदास ऐसी क्यों निबहै अंधधुंध सरकार'—सा १६०१।

राजनीतिक चेतना की ओर संकेत करता है, वहाँ इस बात का भी प्रमाण है कि 'सरकार'-जैसे शासन-संबंधी अनेक शब्दों को अपनाकर वे विदेशी संस्कृति के प्रति अपने विरोध-भाव का त्याग कर चुके थे। इसी प्रकार विदेशी 'सवका' जैसे शब्दों के प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के सामान्य व्यवहार में भी विदेशी शब्दों का प्रचार हो चुका था। कंस के 'दरबार' के लिए 'हजूर' शब्द का प्रयोग भी स्पष्टतः विदेशी संस्कृति के प्रभाव का प्रमाण है[१०]।

विदेशी शब्दों के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की उदारता का उदाहरण उन स्थलों पर विशेष रूप से मिलता है जहाँ वे अरबी के 'साहिब' शब्द का प्रयोग अपने परमाराध्य के लिए और फारसी के 'दरबार' शब्द का प्रयोग श्रीपति, राम नंदराय आदि की आश्रय-दायिनी राजसभाओं के लिए[११] करते हैं[१२]। विदेशी संस्कृति के प्रति अष्टछापी कवियों के दृष्टिकोण की यह उदारता अपने आराध्य के लिए गो० तुलसीदास के 'साहिब' शब्द के प्रयोग में[१३] और अपने मान्य धर्मग्रन्थ के लिए सिक्खों के 'ग्रंथ साहब' प्रयोग में भी दिखायी देती है।

२ सांस्कृतिक चित्रण की दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का महत्त्व—

साहित्य को समाज का 'दर्पण' कहने का तात्पर्य, स्थूल रूप से, यह है कि कवि-विशेष ने किसी भी युग की कथा को लेकर काव्य रचा हो प्रसंगवश उसमें अनेक ऐसी बातों का भी उल्लेख हो जाता है जिनका संकलन करने पर कवि-काल का थोड़ा-बहुत परिचय सरलता से मिल सकता है। इसी प्रकार अष्टछापी

९. सूरदास प्रभु अपनें 'सवका', परहिं अन हम रीझे—सा १५७४।

१० जाइ सबै कंसहि गुहराणु।
दधि दूध लेत छुड़ाए, भागु 'हजूर' बुलावहु—सा १५११।

११ क. दास ध्रुव को अटल पद दियौ राम दरबारी—सा १ १७१।
ख. अति पौंचि ओठ पूछत नाहीं श्रीपति कैं दरबार'—सा १ २११।
ग. राग रंग रँगि मैंगि रह्यौ नंदराइ दरबार —सा २६ ४।
घ. जहाँ पालो तहाँ रहू चरन तर परबो रहूँ 'दरबार'—परमा ८७५।
ङ. पह-पख तें गोपनि सबै आए राइ 'दरबार'—कुंभन १।

१२. तुम साहब मैं बाँदी—सा १ ११।

१३ गौ बहोर गरीब नेवाजू सरल सबल साहिब रघुराजू'—मानस, बाल, दो ११।

कवियों का अध्ययन करने पर तत्कालीन युग का परिचय प्राप्त कर लेना भी संभव समझकर प्रस्तुत प्रबंध लिखा गया है। व्रजभाषा-कृष्ण-काव्य के आठ प्रमुख कवियों के काव्य के इस प्रकार के अध्ययन के लिए सुलभ होने से यह कार्य इस दृष्टि से और भी सुगम हो जाता है कि एक ही स्थान पर पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहनेवाले और लगभग एक ही जैसा सांप्रदायिक दृष्टिकोण रखनेवाले आठ व्यक्तियों के अभिव्यक्त मतों का संकलन करने के पश्चात् निकाले गये निष्कर्ष किसी सीमा तक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। इस प्रकार का अध्ययन इस कारण रोचक भी हो जाता है कि अष्टछाप के आठों कवियों की अवस्था में पर्याप्त अंतर था जिसका प्रभाव उनके काव्य पर पड़ना सर्वथा स्वाभाविक था।

इतना होने पर भी कुछ बातें ऐसी हैं जो प्रस्तुत अध्ययन-जैसे कार्य को कठिन बना देती हैं। सबसे पहली बात यह है कि अष्टछापी कवियों का दृष्टिकोण सामान्य कवियों के समान लौकिक नहीं था। फलस्वरूप उनके काव्य में समकालीन समाज का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं मिलता। अपने आराध्य की ही लौकिक लीला का दर्शन दिन-रात के प्रत्येक पहर में करने के अभ्यस्त उन कवियों में लोक के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा का ऐसा भाव आ गया था जिसने उन्हें प्रत्यक्ष जगत में ही नहीं, मानसिक जगत में भी प्रभु की जीवन-लीला के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्तित्व के संबंध में चिंतन और मनन करने से रोक रखा था। यही नहीं, स्वयं अपने ही इष्टदेव के जीवन की उन लीलाओं में अष्टछापी कवियों की अधिक रुचि नहीं थी जिनका प्रत्यक्ष संबंध लोक-जीवन से था और जिनके कारण भारतीय विचारधारा और चिंतन के इतिहास में वे लोकनायक और योगिराज के परम सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। इसी प्रकार उन कवियों के अध्ययन चिंतन और मनन, कथा-वार्ता और वार्ता के ग्रंथ और विषय तक सीमित रहे जिसके फलस्वरूप लौकिक या सामाजिक चित्रण की दृष्टि से उनका दृष्टिकोण निश्चय ही सीमित हो गया। जीवन के सामान्य क्षेत्र में मर्यादा-निर्वाह की वैदिक रीति-नीति के समर्थन का जो वर्णन उनके काव्य में मिलता है, दार्शनिक दृष्टिकोण से यद्यपि उसका धरातल बहुत ऊँचा है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक और लौकिक दृष्टि से वह माद्य नहीं समझा गया है।

तीसरी बात यह है कि प्रायः समस्त अष्टछाप-काव्य गीति-काव्य के रूप में लिखा गया जिसके लिए वर्णनात्मक प्रसंग उपयुक्त नहीं होते। स्वयं श्रीकृष्ण

के जीवन के ही विविध कथा प्रसंगों को न अपनाकर घटनाओं के केवल आधार सूत्रों को लेकर अष्टछापी कवियों ने पद रचे जो भाव-प्रधान और मार्मिक हैं। अतएव उनके काव्य में इतिवृत्तात्मकथा-निर्वाह के लिए स्थान ही नहीं था और स्वयं उन कवियों की मनोवृत्ति भी उससे बचने की ही रही। सूरदास ने अवश्य कुछ पौराणिक प्रसंगों के साथ-साथ श्रीकृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं को विवरणात्मक विस्तार देने का प्रयत्न किया, परंतु वहाँ भी कवि की दृष्टि कथा की सीमित परिधि में ही घूमती रही, उस क्षेत्र के बाहर न जा सकी।

उक्त सब कारणों का परिणाम यह हुआ कि अष्टछापी कवि लोक और समाज के जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण करने की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके। फिर भी अष्टछाप-काव्य का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ब्रजप्रदेश के तत्कालीन जन-जीवन की गति-विधि का परिचय करानेवाली पर्याप्त उपयोगी सामग्री उन कवियों की रचनाओं में बिखरी पड़ी है। अष्टछाप के जिन कवियों, यथा गोविंद स्वामी, छीतस्वामी, कुंभनदास और चतुर्भुजदास ने केवल कीर्तन-प्रसंगों, वर्षोत्सवों आदि पर ही विस्तार से लिखा उनके काव्य के अध्ययन से केवल तत्संबंधी जानकारी ही हो सकती है, परंतु सूरदास, परमानंददास आदि ने उक्त विषयों के साथ-साथ अपने आराध्य की लीला के अनेक मनोरम प्रसंगों को लेकर उनके भावों का विस्तार करके अनेक पद रचे जिनसे ब्रज-जन-जीवन के अनेक पक्षों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार सिद्धांत और दृष्टिकोण-संबंधी अनेक व्यवधानों के होते हुए भी अष्टछाप-काव्य सामूहिक रूप में अपने युग के समाज का इतना परिचय अवश्य देने में समर्थ है कि उसके आधार पर तत्कालीन जन जीवन की अच्छी जानकारी हो सकती है।

प्रत्येक युग के सामाजिक जीवन में अनेक ऐसी बातें प्रचलित रहती हैं जिनका संबंध तत्कालीन परिस्थिति से रहता है और इसके परिवर्तित हो जाने पर वे बातें भी बदल जाती हैं। स्थायी न रहनेवाली ऐसी बातें जितनी नागरिक जीवन में मिलती हैं, उतनी ग्रामीण जीवन में नहीं। कारण यह है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में समाज-शरीर के हृदय वास्तव में ग्राम ही हैं, जहाँ विविध संस्कारों और परंपराओं की जड़ें सहस्रों वर्षों तक उनके प्रचलन से, इतनी गहरी पहुँच गयी हैं कि उनमें सरलता से परिवर्तन नहीं होता। ऐसी परंपराएँ और मान्यताएँ दीर्घजीवी होती हैं। इसके विपरीत, जो बातें परिस्थिति जन्य होती हैं, उनका जीवन

अल्प होता है और समय के बदलते ही ये भी स्मृति की चोखा होती हुई रेखा छोड़कर लुप्त हो जाती हैं। अतएव युग विशेष के समाज का चित्रण करते समय दूरदर्शी कवि को यह देखना होता है कि समाज में प्रचलित कौन सी बातें परंपरागत हैं और कौन सी परिस्थिति-जन्य। यदि वह परिस्थिति-जन्य बातों को आवश्यकता से अधिक महत्व देता है तो उसकी लोकप्रियता का क्षेत्र धीरे-धीरे सीमित होता जाता है और यदि वह परंपरागत बातों का अपनाने की दूरदर्शिता दिखाता है तो उसके काव्य का महत्व अपेक्षाकृत स्थायी और प्रचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है।

संतोष की बात है कि अष्टछापी कवि दूसरे वर्ग में आते हैं जिनकी दूरदर्शिता इसी एक बात से पूर्णतया प्रमाणित है कि ब्रज के सांस्कृतिक जीवन से संबंधित जिन बातों की चर्चा उन्होंने अपने काव्य में की है, उनमें से अधिकांश केवल ब्रजप्रदेश में ही नहीं, लगभग सारे उत्तरी-भारत के हिंदू घरों में जहाँ की जनभाषा हिंदी अथवा उसकी कोई विभाषा है, आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हिंदी साहित्य में अष्टछाप-काव्य का, भारतीय इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन की दृष्टि से, महत्वपूर्ण स्थान है। कारण मुस्लिमकालीन भारत का जो इतिहास विदेशियों ने अथवा शासन से संबंधित व्यक्तियों ने लिखा, उसमें तो सम्राट और उसके दरबार की चर्चा ही मुख्यतः की गयी है; प्रजा, और उसमें भी ग्रामीण हिंदू प्रजा की सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण उनके क्षेत्र से सदा बाहर ही बना रहा। ऐसी स्थिति में विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल में ब्रज और निकटवर्ती प्रदेशों की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के प्रामाणिक साधनों में अष्टछाप-काव्य का निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है।

सांस्कृतिक दृष्टि से अष्टछाप-काव्य का मूल्यांकन करते समय यह भी देखना चाहिए कि अष्टछापी कवियों का मुख्य ध्येय वल्लभ-संप्रदायी सिद्धांतों का ध्यान रखते हुए अपने परमाराध्य की गोकुल-वृन्दावन-लीला के कुछ सरस प्रसंगों का गान मात्र है। यद्यपि वल्लभ-संप्रदायी सिद्धान्तों की छाप उनके काव्य पर पर्याप्त पड़ी है, तथापि सांप्रदायिक सिद्धांतों का विवेचन या प्रचार अथवा व्याख्या भी अष्टछापी कवियों की काव्य-रचना का लक्ष्य नहीं था। व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है उसका कुछ प्रभाव उसके विचारों पर पड़ता ही है; फिर अष्टछापी कवि तो महाप्रभु और उनके सुपुत्र के प्रति अत्यंत पूज्य भाव रखते थे उनके प्रवचन ही नहीं सुनते

प्रत्येक कथन बहुत ध्यान से सुनते और तदनुसार आचरण भी करते थे। ऐसी स्थिति में सांप्रदायिक सिद्धांतों की विवेचना या व्याख्या का कार्य यदि वे सानंद ग्रहण करते तब भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी; और न उस युग को देखते हुए इस कार्य के लिए उन पर सांप्रदायिक दृष्टि से अनुदार होने का दोष ही लगाया जा सकता था परंतु इष्टदेव की मधुरतम लीलाओं की तुलना में जब वैसा करना उन्होंने उचित नहीं समझा तब यह आशा कैसे की जा सकती थी कि अपना प्रियतम विषय छोड़कर वे ब्रज-जीवन के सांस्कृतिक पक्ष पर प्रकाश डालने को प्रवृत्त होते। अतएव उनके काव्य में तत्संबंधी जो उल्लेख मिलते हैं, वे प्रसंगवश ही आ गये हैं, जिससे वे तथ्य की दृष्टि से यथार्थ और समावेश की दृष्टि से नितांत स्वाभाविक हैं उद्देश्य-विशेष से जोड़े या बढ़ाये गये काव्यांश नहीं।

अष्टछाप-काव्य 'श्रीमद्भागवत' का शब्दानुवाद अथवा छायानुवाद नहीं है, यद्यपि अनेक स्थानों पर, जैसा पीछे लिखा जा चुका है, अष्टछापी कवियों ने उसका अनुकरण करने अथवा आधार लेने की बात कही है। वस्तुतः हमारे आलोच्य कवियों ने कथा-सूत्र के साथ-साथ 'श्रीमद्भागवत' का सैद्धांतिक दृष्टिकोण ही अपने सामने रखा जिससे अपने तद्विषयक विवरण के लिए उन्होंने एक प्रकार से सीमा निर्धारित कर ली। काव्यात्मक भावव्यंजना और विषय-विस्तार के लिए इन कवियों ने सर्वत्र पूरी स्वतंत्रता से काम लिया; यहाँ तक कि 'भँवर-गीत' और 'रास-लीला' जैसे इन प्रसंगों के विशद विवेचन में भी स्वतंत्र उद्भावनाओं के अनेक उदाहरण अष्टछाप-काव्य में मिलते हैं, जिनका अपेक्षाकृत अधिक भाग 'श्रीमद्भागवत' के विवरण-क्रम के अनुसार ही है।

यही बात अष्टछापी कवियों के सांस्कृतिक चित्रण के संबंध में कही जा सकती है। वस्त्रों, आभूषणों व्यंजनों बाजों आदि की जो सूचियाँ अष्टछाप-काव्य में मिलती हैं, उनमें गिनायी गयी वस्तुओं में से अनेक 'श्रीमद्भागवत' में मिल जाती हैं; परंतु इस साम्य से अष्टछापी कवियों की मौलिकता का मान कम नहीं होता; क्योंकि इन वस्तुओं में से अधिकांश का चलन सोलहवीं शताब्दी में तो था ही लगभग चार सौ वर्ष पश्चात् आज भी है। हमारे आलोच्य कवियों की तद्विषयक विशेषता इस बात में है कि 'श्रीमद्भागवत' की वस्तुओं के साथ उन अनेक नयी वस्तुओं का नामोल्लेख करना भी वे नहीं भूले जिनका प्रचलन पिछली कई शताब्दियों में अनेकानेक विदेशियों के आगमन से, उनकी संस्कृतियों के सम्मिलन

के फलस्वरूप हो गया था। वस्तुतः सूफी-संग्रह के कार्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है स्त्री-पुरुष वर्गों के जीवन के विविध पक्षों की गति-विधि और उनके कार्य कलाप का परिचय देना जिसके वर्णन में अष्टछापी कवियों ने सर्वदा स्वतंत्रता से काम लिया। सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से उनके काव्य का यही पक्ष उपयोगी है और इसकी मौलिकता के कारण वस्तुतः उनका प्रयास सर्वथा अभिनंदनीय समझा जाना चाहिए।

पिछले पृष्ठों में व्रजवासियों की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, और कला-कौशल-संबंधी विचारधारा और स्थिति पर प्रकाश डालनेवाले जिन उदाहरणों का संकलन अष्टछाप-काव्य से किया गया है, उनके आधार पर तद्विषयक पूरी-पूरी जानकारी सहज ही हो सकती है। भारत में अभी तक जन-जीवन के सांस्कृतिक-इतिहास-लेखन का कार्य सुचारु रूप से आरम्भ नहीं हुआ है। जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन उसके लेखक को विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पूर्वार्द्धकाल का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए अष्टछाप-काव्य से अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होगी और तभी काव्य-कला की दृष्टि से हिंदी साहित्य में उच्च स्थान के अधिकारी अष्टछापी कवि जन-जीवन की संस्कृति के सफल परिचायक के रूप में प्रतिष्ठित पद के अधिकारी समझे जायँगे।

नामानुक्रमणिका

(ग) ग्रंथ—

(ग) पत्र

कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक —२७, २५५ ५३७ ।
कल्याण, साधनांक —२१५ ।